

काव्यमाला. ६९.

श्रीक्षेमेन्द्रविरचिता

बृहत्कथामञ्जरी ।



जयपुरमहाराजाश्रितमहामहोपाध्यायपण्डितदुर्गाप्रसादद्वारक-
केदारनाथकृपाङ्गीकृतशोधनकर्मणा महामहोपाध्याय-
पण्डितशिवदत्तशर्मणा, मुम्ब्यापुरवासिपरबोपाह-
पाण्डुरङ्गात्मजकाशीनाथशर्मणा च
संशोधिता ।

द्वितीयसंस्करणम् ।

सा च

मुम्बय्यां निर्णयसागराख्ययन्त्रालये तदधिपतिना मुद्राक्षरैरङ्कयित्वा
प्राकाश्यं नीता ।

१९३१

मूल्यं ३॥ संपादय्यं रूप्यकत्रयम् ।

बृहत्कथामञ्जर्या विषयानुक्रमणिका



पृष्ठे ।

| | |
|--------------------------------|----|
| कथापीठाख्यप्रथमलम्बकारम्भः | १ |
| कथावतारः | १ |
| पाटलिपुत्रकथा | ७ |
| उपकोशाख्यायिका | १२ |
| योगनन्दमत्स्यहासकथा | १६ |
| आदित्यवर्मकथा | १९ |
| योगनन्दपुनश्चापमोक्षी | २१ |
| वररुचिशपमुक्तिः | २४ |
| शुगान्नकथा | २५ |
| पुष्पदन्तमात्यवाजामकथा | २९ |
| कथापीठनामकप्रथमलम्बकसमाप्तिः | ३२ |
| कथामुखाख्यद्वितीयलम्बकारम्भः | ३३ |
| श्रीदत्ताष्टायायिका | ३३ |
| सहस्रानीककथा | ४४ |
| चण्डमहासेनकथा | ४५ |
| कोहजङ्घाख्यायिका | ५१ |
| देवसिन्धवाख्यायिका | ५६ |
| विनयार्यायिका | ६५ |
| कथामुखाख्यद्वितीयलम्बकसमाप्तिः | ६७ |
| लावानकाख्यतृतीयलम्बकारम्भः | ६८ |
| परद्विताख्यायिका | ६८ |
| महिलकाख्यायिका | ६९ |
| देवसेनाख्यायिका | ७० |
| परिव्राटाख्यायिका | ७१ |
| पुण्यसेनाख्यायिका | ७२ |
| मुन्दोपमुन्दाख्यायिका | ७३ |
| पद्मावतीविवाहः | ७४ |
| उर्वराख्यायिका | ७७ |

पृष्ठे ।

| | |
|----------------------------------------|-----|
| विहितसेनाख्यायिका | ७८ |
| सोमप्रभाख्यायिका | ७९ |
| महत्याख्यायिका | ८१ |
| विदूषकाख्यायिका | ८१ |
| देवदासाख्यायिका | ९१ |
| श्रीवत्सेशदितिश्रजयः | ९३ |
| हलभूत्याख्यायिका | ९४ |
| लावानकाख्यतृतीयलम्बकसमाप्तिः | १०२ |
| नरवाहनजन्माख्यचतुर्थलम्बकारम्भः | १०२ |
| देवदत्ताख्यायिका | १०२ |
| श्राद्धणीसमागमकथा | १०५ |
| जीमूतवाहनाख्यायिका | १०५ |
| सिंहविन्महाख्यायिका | १११ |
| नरवाहनजन्माख्य- चतुर्थलम्बकसमाप्तिः | ११३ |
| चतुर्दशिकाख्यपञ्चमलम्बकारम्भः | ११४ |
| शक्तिदेवसमागमकथा | ११४ |
| शिवरात्रिवाख्यायिका | ११६ |
| हरस्वाम्याख्यायिका | ११९ |
| शक्तिदेवप्रवहणभङ्गरथा | १२० |
| अश्वोरुदत्ताख्यायिका | १२२ |
| देवदत्ताख्यायिका | १२८ |
| शक्तिदेवकथा | १३५ |
| चतुर्दशिकाख्यपञ्चमलम्बकसमाप्तिः | १३६ |
| सूर्यप्रभाख्यषष्ठलम्बकारम्भः | १३६ |
| कालकजापनाख्यायिका | १३६ |
| शुणशर्माख्यायिका | १४५ |
| सूर्यप्रभाख्यषष्ठलम्बकसमाप्तिः | १५६ |

| | पृष्ठे । | | पृष्ठे । |
|-----------------------------------|----------|------------------------------|----------|
| मदनमनुकाख्यसप्तमलम्बकारम्भः | १५७ | वेलाख्याष्टमलम्बकसमाप्तिः | २१५ |
| रत्नदत्ताख्यायिका | १५७ | | |
| विप्रधाण्डालाख्यायिका | १६० | शशाङ्कवत्याख्यनवमलम्बकारम्भः | २१५ |
| शिष्याख्यायिका | १६२ | कुञ्जराख्यायिका | २१५ |
| पिक्रमार्चिहाख्यायिका | १६२ | ललितलोचनालापकथा | २१८ |
| क्षमावदानम् | १६५ | मन्त्रगुप्ताख्यायिका | २२० |
| पैरभयवदानम् | १६६ | विनयवत्याख्यायिका | २२५ |
| मुलेचनाख्यायिका | १६७ | श्रुतधिममागमः | २२९ |
| राजपुत्राख्यायिका | १६९ | पारावताक्षशापः | २३२ |
| पिशवाख्यायिका | १७१ | संसारचक्रम् | २३४ |
| रुच्यप्रभारयायिका | १७२ | हंतावलीकथा | २३५ |
| धीतिवेनारयायिका | १७६ | मीमपराक्रमसमागमः | २४८ |
| हरिश्चन्द्रारयायिका | १७९ | गुणाचरसमागमः | २४९ |
| तेजोवत्याख्यायिका | १८६ | दानपारमिता | २५१ |
| मूर्खारयायिका | १८६ | शीलपारमिता | २५७ |
| रत्नपञ्चाख्यायिका | १९२ | शान्तिपारमिता | २५८ |
| श्रुतसेनाख्यायिका | १९५ | धैर्यपारमिता | २५८ |
| मार्जारपञ्चायिका | १९७ | ध्यानपारमिता | २५९ |
| प्रसेनजिदाख्यायिका | १९९ | प्रहारापारमिता | २६० |
| फलिहरेनापद्मवेगसमागमः | २०० | पिनीतमस्त्याख्यायिका | २६१ |
| पतिमतारयायिका | २०० | भगवतीस्तोत्रम् | २६२ |
| मदनमनुकाग्रन्थकथा | २०३ | भूतन्दाख्यायिका | २६८ |
| दशम्यायिका | २०३ | विविधव्यासमागमः | २७२ |
| शैवरात्र्याभिषेको } | २०४ | श्रीदशनाख्यायिका च } | |
| विषाखाष्टमिद्वितीया } | २०४ | प्रचण्डचक्रिणमागमः } | |
| योगनन्दाख्यायिका | २०४ | मीमभट्टारयायिका च } | २७८ |
| शत्रुभारयायिका | २०६ | प्रथमवेतालकथा | २८७ |
| मदनमनुबोधाख्यायिका | २०७ | द्वितीयवेतालकथा | ३०० |
| मदनमनुकरदगतमलम्बकसमाप्तिः | २०९ | पुरुषपुष्टाख्यायिका | ३०२ |
| | | प्रीडितारयायिका | ३०५ |
| विष्णुसप्तमलम्बकारम्भः | २०९ | तृतीयवेतालकथा | ३०८ |
| काश्याख्यायिका | २०९ | चतुर्थवेतालकथा | ३०८ |
| अग्निदेवसप्तमलम्बकारम्भः } | २१४ | पञ्चमवेतालकथा | ३१५ |
| मदनमलम्बकारम्भः } | | षष्ठवेतालकथा | ३१७ |

पृष्ठे ।

पृष्ठे ।

| | | |
|-----------------------------------|-----|-----|
| सप्तमवेतालकथा... | ... | ३१७ |
| अष्टमवेतालकथा... | ... | ३२१ |
| नवमवेतालकथा... | ... | ३२६ |
| दशमवेतालकथा... | ... | ३२७ |
| एकादशवेतालकथा... | ... | ३३२ |
| द्वादशवेतालकथा... | ... | ३३४ |
| त्रयोदशवेतालकथा... | ... | ३४१ |
| चतुर्दशवेतालकथा... | ... | ३४३ |
| पञ्चदशवेतालकथा... | ... | ३४५ |
| षोडशवेतालकथा... | ... | ३४९ |
| सप्तदशवेतालकथा... | ... | ३६३ |
| अष्टादशवेतालकथा... | ... | ३६६ |
| एकोनविंशवेतालकथा... | ... | ३६९ |
| विंशवेतालकथा... | ... | ३७३ |
| एकविंशवेतालकथा... | ... | ३७६ |
| द्वाविंशवेतालकथा... | ... | ३७९ |
| त्रयोविंशवेतालकथा... | ... | ३८० |
| चतुर्विंशवेतालकथा... | ... | ३८२ |
| पञ्चविंशवेतालकथा... | ... | ३८४ |
| मन्दारवल्गुस्थायिका... | ... | ३८५ |
| कुमुमायुवास्थायिका... | ... | ४०२ |
| केसदास्थायिका... | ... | ४०५ |
| कलिहस्तनालामवर्णनम्... | ... | ४०६ |
| शशाङ्कवल्गुद्राहकथा... | ... | ४०७ |
| शशाङ्कवल्गुस्थानवर्मलम्बकसमाप्तिः | ... | ४११ |
| निपमशीलाख्यदशमलम्बकारम्भः | ... | ४११ |
| टैम्प्राकरालास्थायिका... | ... | ४११ |
| खण्डकापालिकवचकथा... | ... | ४२१ |
| यक्षिणीसुनागमकथा... | ... | ४२१ |
| कन्याचतुष्टयप्राप्तिकथा... | ... | ४२३ |
| शबरराजपुत्रीलामकथा... | ... | ४२४ |
| गजवराहसापमुक्तिकथा... | ... | ४२६ |

| | | |
|------------------------------------|-----|-----|
| राजपुत्रीद्वयलामकथा... | ... | ४२६ |
| केसदास्थायिका... | ... | ४२७ |
| मूलदेवकथा... | ... | ४३० |
| विपमशीलाख्यदशमलम्बकसमाप्तिः | ... | ४३४ |
| मदिरावल्गुस्थायिकादशमलम्बकारम्भः | ... | ४३४ |
| द्विजपुत्रकथा... | ... | ४३४ |
| मदिरावल्गुस्थायिकादशमलम्बकसमाप्तिः | ... | ४४० |
| पद्मावल्गुस्थायिकादशमलम्बकारम्भः | ... | ४४१ |
| ब्रह्मदत्तास्थायिका... | ... | ४४१ |
| विद्युद्भुजवचकथा... | ... | ४४३ |
| मुक्तकेतुसापकथा... | ... | ४४७ |
| पद्मावल्गुद्राहादिकथा... | ... | ४४८ |
| पद्मावल्गुस्थायिकादशमलम्बकसमाप्तिः | ... | ४५० |
| पद्माख्यत्रयोदशमलम्बकारम्भः | ... | ४५० |
| सावित्र्यास्थायिका... | ... | ४५० |
| वेगवतीप्राप्तिकथा... | ... | ४५१ |
| गन्धर्वदत्तास्थायिका... | ... | ४५५ |
| भगीरथचम.प्राप्तिकथा... | ... | ४५६ |
| प्रभावतीप्राप्तिकथा... | ... | ४५७ |
| अजिनावतीप्राप्तिकथा... | ... | ४६२ |
| गोमुखकथा... | ... | ४६२ |
| मरुभूतिकथा... | ... | ४६६ |
| हरीशिवकथा... | ... | ४६७ |
| मानसवेगाधिवचकथा... | ... | ४६७ |
| पद्माख्यत्रयोदशमलम्बकसमाप्तिः | ... | ४६९ |
| रत्नप्रभाख्यचतुर्दशलम्बकारम्भः... | ... | ४६९ |
| सत्त्वशीलास्थायिका... | ... | ४६९ |
| महासत्त्वास्थायिका... | ... | ४७१ |
| रत्नप्रभास्थायिका... | ... | ४७३ |

| | पृष्ठे । | | पृष्ठे । |
|----------------------------------|----------|------------------------------------|----------|
| शीलवत्याख्यायिका | ४७७ | देवदासाख्यायिका | ५५१ |
| निधयदत्ताख्यायिका | ४८० | वज्रसारख्यायिका | ५५२ |
| मदनमालाख्यायिका | ४८८ | सिंहबलाख्यायिका | ५५३ |
| रूपशिक्षाख्यायिका | ४९१ | सुमानसाख्यायिका | ५५४ |
| अजरालाख्यायिका | ४९५ | कानराख्यायिका | ५६१ |
| नागार्जुनाख्यायिका | ५०० | काकवकाख्यायिका | ५६२ |
| इन्दीवरीनाख्यायिका | ५०१ | शशकाख्यायिका | ५६४ |
| वज्रधराख्यायिका | ५०५ | यूक्ताख्यायिका | ५६५ |
| अर्थलोभाख्यायिका | ५०५ | चण्डरवाख्यायिका | ५६५ |
| कर्पूरमञ्जर्युद्धाहकथा | ५०८ | उष्ट्राख्यायिका | ५६६ |
| रत्नप्रभाख्यचतुर्दशलम्बकसमाप्तिः | ५०९ | चच्छपमत्स्यविट्टिवाख्यायिका | ५६७ |
| अलंकारवत्याख्यपञ्चदशलम्बकारम्भः | ५१० | चतुराख्यायिका | ५६८ |
| रामाख्यायिका | ५१० | सूचीमुक्ताख्यायिका | ५७० |
| रूपलताख्यायिका | ५१४ | वधिवपुःत्रकाख्यायिका | ५७० |
| अनङ्गप्रभागाख्यायिका | ५१५ | खोहतुलाख्यायिका | ५७१ |
| धार्पटिकाख्यायिका | ५२३ | सिंहदृषाख्यायिका | ५७२ |
| धीरवराख्यायिका | ५२५ | जम्बुकाख्यायिका | ५७२ |
| नारायणदत्तेनकथा | ५२५ | मृषककाकवृषेकच्छपाख्यायिका | ५७५ |
| रामुद्रशराख्यायिका | ५२६ | रत्नमालाख्यायिका | ५७६ |
| अन्तराख्यायिका | ५२८ | नागशप्ताख्यायिका | ५७७ |
| अमराख्यायिका | ५३० | मार्गाराख्यायिका | ५७८ |
| लक्ष्मणाख्यायिका | ५३० | छायाख्यायिका | ५७९ |
| हिरण्यवर्णाख्यायिका | ५३१ | दमिताख्यायिका | ५८० |
| अनन्तलाख्यायिका | ५३३ | घोरराक्षसाख्यायिका | ५८० |
| कन्धुमालाख्यायिका | ५४० | रथकाराख्यायिका | ५८१ |
| मर्दकाराख्यायिका | ५४० | ग्रीष्माख्यायिका | ५८१ |
| पञ्चदशलम्बकसमाप्तिः | ५४० | गण्डसाख्यायिका | ५८२ |
| मालिनीनामकचौदशलम्बकारम्भः | ५४१ | हंसाख्यायिका | ५८३ |
| मन्थटाख्यायिका | ५४१ | काद्योदकाख्यायिका | ५८३ |
| कान्तारख्यायिका | ५४३ | शंकराख्यायिका | ५८३ |
| वेङ्कटाख्यायिका | ५४७ | शराख्यायिका | ५८४ |
| कालाख्यायिका | ५५० | सत्ताख्यायिका | ५८५ |

| पृष्ठे । | | | पृष्ठे । | | |
|---------------------------------|-----|-----|-----------------------------------|-----|-----|
| वानरशिखमाराख्यायिका... | ... | ५८६ | शूरसेनाख्यायिका | ... | ५९९ |
| घटाख्यायिका ... | ... | ५८६ | वत्सेश्वरशृङ्गपतनकथा | ... | ६०१ |
| नापिताख्यायिका... | ... | ५८७ | गोपालसन्ध्यासूक्त्या | ... | ६०२ |
| नकुलाख्यायिका ... | ... | ५८७ | कुराखाख्यायिका ... | ... | ६०७ |
| अनेकमूर्खाख्यायिका ... | ... | ५८८ | घीदराख्यायिका ... | ... | ६११ |
| श्रीवराख्यायिका ... | ... | ५८९ | चौराख्यायिका ... | ... | ६१३ |
| लक्ष्मीसेनाख्यायिका ... | ... | ५९२ | सुरतमञ्जरीकथा ... | ... | ६१४ |
| राजियशोनामकषोडशलम्बकसमा. | ५९४ | | तारावल्लोकाख्यायिका ... | ... | ६१५ |
| महाभिषेकाख्यसप्तदशलम्बकारम्भ | ५९४ | | सुरतमञ्जरीख्याष्टादशलम्बकसमाप्ति. | ६१७ | |
| महाभिषेककथा ... | ... | ५९४ | | | |
| महाभिषेकाख्यसप्तदशलम्बकसमा. | ५९९ | | उपसंहारारम्भः ... | ... | ६१७ |
| सुरतमञ्जरीख्याष्टादशलम्बकारम्भः | ५९९ | | लम्बकसमाप्तः ... | ... | ६१९ |
| | | | अन्यसमाप्तिः ... | ... | ६२० |

काव्यमाला ।



काश्मीरिकमहाकविश्रीक्षेमेन्द्रविरचिता
बृहत्कथामञ्जरी

कथापीठनामा प्रथमो लम्बकः ।

प्रथमन्वयः ।

उमाप्रणामसंक्रान्तचरणालक्तकः शशी ।

संन्यास्य इवामाति यस्य पायास्त वः शिवः ॥ १ ॥

सरस्वतीविभ्रमदर्पणानां सूक्तामृतक्षीरमहोदधीनाम् ।

सन्मानमोल्लासमुवाकराणां कवीश्वराणां जयति प्ररुपः ॥ २ ॥

दोषालोकननिपुणाः पुरुषगिरो दुर्जनाश्च धूकाश्च ।

दर्शनमपि मयजननं येषामनिमेषपिशुनानाम् ॥ ३ ॥

ओजोरजनमेव वर्णरचनाश्चित्रा न कस्य प्रिया

नानालंकृतयश्च कस्य न मनःसंतोषमातन्वते ।

काव्ये किं तु सतां चमत्कृतिकृतः सूक्तिप्रवन्धाः स्फुटं

तीक्ष्णाग्रा ज्ञदिति श्रुतिप्रणयिनः क्रान्ताकटाक्षा इव ॥ ४ ॥

एवं किल पुराणेषु सर्वागमविधायिषु ।

विश्वद्यासनशालिन्यां श्रुतौ च श्रूयते कथा ॥ ५ ॥

अन्ति विद्याधरव्यूहिलासहसितद्युतिः ।

जाह्नवीनिर्झरोष्णीपः शर्वाणीजनको गिरिः ॥ ६ ॥

निशाकरर्करस्मेरुतुषाररुचिरत्विषा ।

आशा धनपतेर्येन विमात्यनिशचन्द्रिका ॥ ७ ॥

यः शुभ्रमिन्दुरो माति शिवमौलीन्दुदर्शनात् ।

तरङ्गालिङ्गिताग्रश्रीः क्षीरणेव इवोत्थितः ॥ ८ ॥

यः प्रांशुरश्मिनिर्वहैर्विदधाति मुहुर्मुहुः ।
 त्रिदिवोचानहंसानां मृणालकवलग्रमम् ॥ ९ ॥
 यस्यास्मकृतसंघट्टविशीर्णपतनोत्थिताः ।
 मुहूर्तं तारकायन्ते व्योम्नि गङ्गाधुराशयः ॥ १० ॥
 फेनहासविलासिन्यः फुल्लकुवलयेषणाः ।
 विमान्ति कटके यस्य तरङ्गिण्यो महीभृतः ॥ ११ ॥
 उत्तरे तस्य कैलासनाम्नि स्फाटिकरोखरे ।
 बिजहार हरो हारगौरे गिरिसुतासखः ॥ १२ ॥
 नीलोत्पलद्युतिमुषा यस्य कण्ठविपत्तिषा ।
 मुहुर्गौरीकपोलेन्दोः क्रियेत लज्जनच्छविः ॥ १३ ॥
 विभाति मूषामुजौ खण्डेन्दुविष(श)शङ्कया ।
 कपालकलहंसैर्यः संत्यक्तैरिव सै(शै)वलैः ॥ १४ ॥
 यस्यामरसरितुङ्गतरङ्गालिङ्गितः शशी ।
 घत्ते मूर्ध्नि मुषासिन्धुभर्गस्त्रितिसुप्तं सदा ॥ १५ ॥
 ताण्डवे यम्य दोर्दण्डमण्डलोद्भूतमसाभिः ।
 छन्नास्तुदिनशैलेन म्पथां विभ्रति भूभृतः ॥ १६ ॥
 यम्यालोचय घनच्छायं कण्ठं स्कन्दशिलखण्डिनि ।
 मुहुः प्रनृप्ते हाराहिर्यार्जित्वाक्षं व्यचेष्टत ॥ १७ ॥
 कपालपुद्गरावर्तलुभ्यद्रक्षाम्बुनिन्दुभिः ।
 यः शेरसरगशिप्रीत्या नक्षत्रैरिव सेव्यते ॥ १८ ॥
 यम्यातिरासाः क्षुभितशीराब्जियधरलक्ष्मिणः ।
 कर्णचामरता यान्ति कैलासमुखदन्तिनः ॥ १९ ॥
 नं वदन्निद्रिमुता रहः प्रणयमन्थरम् ।
 प्राह यथाबुजावृष्टमरारागनिग्रमम् ॥ २० ॥
 देवापिलज्जगर्गान्तिरसिंहारकारण ।
 यम्य धेदः समुन्नेष यन् त्वां स्तोतुमीश्वरः ॥ २१ ॥

त्वन्मायामयनिर्माणजगद्वैचित्र्यसंकथाम् ।
 अनन्याकर्णितां चेतः श्रोतुमुत्क्रण्ठते मम ॥ २२ ॥
 इति प्रियावचः श्रुत्वा हर्षव्याकोशलोचनः ।
 ग्राह कृत्वा कुरङ्गाक्षीमङ्गे शीतांशुशेखरः ॥ २३ ॥
 किं तवाविदितं देवि चित्तसागरचन्द्रिके ।
 त्वं हि पीयूषसहिते जीवितं नो वहिष्वस्म् ॥ २४ ॥
 अनन्तरूपं मां द्रष्टुं पुरा हरिचतुर्मुखौ ।
 पातालमन्तरिक्षं च जग्मतुः कौतुकाकुलौ ॥ २५ ॥
 अनासाद्यैव पर्यन्तं महतो महसो मम ।
 महादेवोऽयमित्युक्त्वा चक्रते तौ तपस्ततः ॥ २६ ॥
 मदेकमक्तिर्मद्वाक्यादभूत्पूज्यतमो हरिः ।
 सुतं मामीहमानोऽभूदपूज्य[श्च?] प्रजापतिः ॥ २७ ॥
 सैव त्वं मम लोलाक्षि दयिता वैष्णवी तनुः ।
 मम धाम सहस्रांशुः शशी तव शुचिसिते ॥ २८ ॥
 सुष्ठु दक्षस्य तनया पुरा भूत्वा मम प्रिया ।
 देहं पितुर्निकारेण त्यक्तवत्यसि मामिनि ॥ २९ ॥
 स हि यज्ञे सुरगणं समानाव्य प्रजापतिः ।
 तदा महोत्सवं चक्रे प्रीणिताशेषशान्धवः ॥ ३० ॥
 तत्र प्रनृचर्गीर्वाणललनागीतनादिते ।
 अहं कपालमालीति पित्रा ते न निमग्नितः ॥ ३१ ॥
 त्वत्क्रोपादिष्टमार्गेण मम क्रोधमुवा मखः ।
 गणेनाकारि दक्षस्य कथाशेषमहोत्सवः ॥ ३२ ॥
 यत्परीवादकोपेन त्यक्त्वा दक्षमवां तनुम् ।
 सुता तुहिनशैलस्य जातासि यगमां निधेः ॥ ३३ ॥
 शंभोः शरीरार्थहरा भवानीयं तवात्मजा ।
 इति शुश्राव शैलेन्द्रो नारदाज्जनकस्तव ॥ ३४ ॥

ततस्त्वां यौवनारम्भविभ्रमोद्यानमञ्जरीम् ।
 सपर्यायै तपस्वस्य दिदेश हिमवान्मम ॥ ३५ ॥
 अत्रान्तरे तारकेण वन्दीकृतजयश्रियः ।
 शुश्रुबुखिदशास्त्राणं भाविनं त्वयि मे सुतम् ॥ ३६ ॥
 तदर्थमथ शक्रेण प्रेषितो रतिवल्लभः ।
 तपोवनं समजुपत्समायो मधुना सह ॥ ३७ ॥
 ततः कुसुमहासिन्यो विलोलालिकुलालकाः ।
 कणद्विहङ्गचलया हारिण्यो विवमुर्लताः ॥ ३८ ॥
 फान्ताकपोलसच्छाये प्रोढतां याति चम्पके ।
 अश्रोके गाढरागे च कामिनामिव चेतसि ॥ ३९ ॥
 नेत्रप्रभाकुवलयव्यासङ्गिकुसुमाञ्जलिम् ।
 क्षिपन्तीं प्रणतां देवि त्वामपश्यमहं पुरः ॥ ४० ॥
 ततोऽहं निशितामस्य कर्णान्तपरिसर्पिणः ।
 लक्ष्यतां त्वत्कटाक्षस्य यातः स्तरशरस्य च ॥ ४१ ॥
 हर्षान्मे त्वन्मुखाभोजभृङ्गाली त्वयि सोत्सुका ।
 दृष्टिः पपात लावण्यकल्लोलाकुलिताधरम् ॥ ४२ ॥
 प्रणिधाय मनः पश्चादपश्यं कुसुमायुधम् ।
 मौर्वीमधुकरारावतारकेहारकार्मुकम् ॥ ४३ ॥
 तदकारि मम क्रोधादथ लोचनवह्निना ।
 अङ्गनापाद्भवसतिर्येनापाङ्गोऽभवत्सरः ॥ ४४ ॥
 मानमश्लोमपवने शुष्टे मकरकेतने ।
 भयकम्पहृपाशोकव्याकुले तव चेतसि ॥ ४५ ॥
 दग्धोऽन्धकद्विषा रोपात्स्तरस्तत्रामि कारणम् ।
 इति ध्यात्वा तपस्वीशं तद्यत्परि शर्यति ॥ ४६ ॥
 नयि प्रगादगुमणां ज्ञात्वा ते निधितां मतिम् ।
 यातः शृङ्गार्धतां देवि तवायं प्रणयाञ्जनः ॥ ४७ ॥

१. कथापीठे-कथावतारः ।] बृहत्कथामञ्जरी ।



गेहे ततो हिमवतस्त्वद्विवाहमहोत्सवे ।
 ते तारकवधैकाम्ना ननन्दुर्नन्दनौकसः ॥ ४८ ॥
 एवं त्वमनवद्याङ्गि प्रेमामृततरङ्गिणि ।
 प्राप्ता मया विप्रत(म)भूः सरसंजीवनौषधिः ॥ ४९ ॥
 दिव्यमानुषसंवद्भां शृणु चित्रां कथामिमाम् ।
 यया मनसि वर्तन्ते निर्भरानन्दसंपदः ॥ ५० ॥
 इत्युक्त्वा विविधाश्चर्या विद्याधरधराभुजाम् ।
 कथामकथयद्देवः सप्तानां चक्रवर्तिनाम् ॥ ५१ ॥
 अत्रान्तरे समायातः पुष्पदन्तो गणाग्रणीः ।
 मानी महेश्वरं द्रष्टुं नन्दिना द्वार्यवार्यत ॥ ५२ ॥
 न कदाचिन्निपिदोऽहं किमेतदिति कौतुकात् ।
 चायुभूतः प्रविश्यातः सैरं शुश्राव तां कथाम् ॥ ५३ ॥
 जया नाम प्रतीहारी देव्याः केलिकला सखी ।
 कथां तामेव दयितापुष्पदन्तादथाशृणोत् ॥ ५४ ॥
 आश्चर्यश्रवणानन्दफुल्लद्वदनपङ्कजा ।
 तामेवाकथयन्मुग्धा पृष्टा गिरिजया जया ॥ ५५ ॥
 श्रुत्वेव कुपिता देवी वभापे शशिशेखरम् ।
 अनन्याकर्णिता चित्रा त्वया मे कथिता कथा ॥ ५६ ॥
 पश्येतां कथयन्त्येता रहःक्रीडासु योषितः ।
 इत्युक्त्वा कपटस्मेरच्छन्नकोषाकुलमवत् ॥ ५७ ॥
 कोपहासत्विषा तस्याः प्रणामानतशेखरः ।
 शंकरः क्षिप्रमवद्विगदशङ्क(ः)कलाधरः ॥ ५८ ॥
 पुष्पदन्तः प्रविश्यान्तर्वायुभूतः कथामिमान् ।
 शुश्राव नापराधो मे प्रियामित्याह धूर्जटिः ॥ ५९ ॥
 पुष्पदन्तनयाह्वय स्रुतीधूमविभ्रनम् ।
 शशाप शैलतनया दधती कोषपावकम् ॥ ६० ॥

मर्त्यलोके पत क्षिप्रमिति सत्या समीरिते ।

कारुण्यदेन्यसंत्रासविषण्णे गणमण्डले ॥ ६१ ॥

नहि निर्वेहणं यान्ति प्रभूणामाश्रिते रूपः ।

प्रसीद देवि मित्रार्थे माल्यवानित्यभाषत ॥ ६२ ॥

वयस्यशापनिर्वाणयाश्चाप्रणतशेखरम् ।

कुट्टां तमपि रुद्राणीं क्षशाप गणशेखरम् ॥ ६३ ॥

यशो धनदशापेन विन्ध्याटव्यां पिशाचताम् ।

अवाप्तः श्रोष्यति त्वत्तः कथाचोर कथामिमाम् ॥ ६४ ॥

काणभूतिर्यदा शापनिर्वाणं लप्स्यते तदा ।

पुनस्तमेव च कथां कथितां काणभूतिना ॥ ६५ ॥

श्रुत्वैव माल्यवानेप शापस्यान्तमवाप्स्यति ।

इति तद्याचितं देवी शापस्यान्तमकल्पयत् ॥ ६६ ॥

अयाच्युस्तौ चलन्मौलिमालान्याकुलपदपदौ ।

ततः शापाक्षरमार्तस्तौ कृष्टाविव पेततुः ॥ ६७ ॥

तयौश्चिरस्य शापेन वसुधामवतीर्णयोः ।

तद्वृत्तान्तं गिरिजया पृष्टः प्राह त्रिलोचनः ॥ ६८ ॥

क्रीशाम्बीवासिनः मुमु पुत्रतामग्रजन्मनः ।

प्रयातः सौमदत्तस्य पुष्पदन्तो महीतले ॥ ६९ ॥

कात्यायनः श्रुतधरस्तथा वररुचिश्च सः ।

गुणिनामग्रणीर्लोके नामभिसिभिरुच्यते ॥ ७० ॥

प्रतिष्ठानपुरे जातो माल्यवान्दक्षिणापथे ।

गुणाढ्य इति यो लोके विश्रुतो गुणगौरवात् ॥ ७१ ॥

इति गिरिशवचो निगम्य देवी किमपि बभूव कृपाविषण्णचित्ता ।

रतिविरहवृत्ता समागमाय प्रयतयिषा च जया मनश्चकार ॥ ७२ ॥

कथावनारः ॥ १ ॥

इति श्रीभोजेन्द्रविरचितायां बृहद्व्यासां कथावीर्यवक्त्रे प्रथमस्तरः ।

द्वितीयस्तरङ्गः ।

अवतीर्य घरां शापात्पुष्पदन्तो गणाग्रणीः ।
चिरं मृत्वा महामात्यो योगनन्दस्य भूपतेः ॥ १ ॥
मुहुर्निःसारसंसारकलनां कल्यन्धियः ।
कात्यायनाभिघो द्रष्टुं प्रययौ विन्ध्यवासिनीम् ॥ २ ॥
तपसा दर्शनं प्राप्य देव्यास्तद्वचसा गुहाम् ।
गत्वापश्यन्महामृतं पिशाचनिचयाचितम् ॥ ३ ॥
काणभृतिं तमासाद्य पूजां प्राप्य द्विजोचिताम् ।
पप्रच्छ विकटाकारमटवीवासकारणम् ॥ ४ ॥
स पृष्टः प्राह यक्षोऽहं पापमित्रनिषेवणात् ।
शतो घनाधिपतिना घोरां प्राप्तः पिशाचताम् ॥ ५ ॥
इदं निरुदकं स्थानं शुष्ककण्टकिपादपम् ।
शापोपनतमत्युग्रं पापेनाधिष्ठितं मया ॥ ६ ॥
भविता शापमोक्षो मे पुष्पदन्तसमागमात् ।
श्मशानवासिनः शंभोः श्रुतं कथयतो मया ॥ ७ ॥
निशम्येति वचस्तस्य शनैः कात्यायनः कथाम् ।
सत्सार पुष्पदन्तोऽहमिति संविदमास्थितः ॥ ८ ॥
काणभृतिस्ततस्तस्माच्छ्रुत्वावाश्चर्यशालिनीम् ।
कथां विद्याधरेन्द्राणां सप्तानां चक्रवर्तिनाम् ॥ ९ ॥
स्वाम्येत्य यदा मौनी ब्राह्मणो दक्षिणापथात् ।
गुणाढ्यः श्रोष्यति त्वत्तः कथामेतां मयोदिताम् ॥ १० ॥
तदागामान्तभासाद्य भवान्स च शनियतः ।
इति कात्यायनः प्राह कथान्ते तमुदारधीः ॥ ११ ॥
मेहृत्तमं तमालद्वय तपसा मर्त्यविग्रहम् ।
पप्रच्छ जन्मवृत्तान्तं काणभृतिः कुतूहलात् ॥ १२ ॥

स तेन पृष्टोऽकथयन्निजांश्चर्यमयीं कथाम् ।
 द्रष्टुमभ्युत्सुकः शंसुमवाप्य निजसंविदम् ॥ १३ ॥
 कौशाभ्याममवद्विप्रः सोमदत्तापराभिधः ।
 अग्निसोमः श्रुतेः क्षेत्रं पवित्रचरितव्रतः ॥ १४ ॥
 तस्याहं वसुदत्तायां जातः श्रुतवराभिधः ।
 कात्यायनो वररुचिश्चेत्यन्वर्यकृताह्वयः ॥ १५ ॥
 वाल्म्ये भम कालेन याते पितरि पञ्चताम् ।
 प्रैतिश्रयार्थिनौ पान्थायस्माकं विद्यतुर्गृहम् ॥ १६ ॥
 व्याडीन्द्रदत्तनामानौ तौ मे मतिमतां वरौ ।
 ततो गृहच्छयार्थातनटनृत्यानुकारिणम् ॥ १७ ॥
 यथा दृष्टवनातोचगीताभिनयसोविदम् ।
 विसर्गं जम्भतुर्वाक्ष्य ज्ञानग्रहणघारणैः ॥ १८ ॥
 धैतीव विस्मितौ क्षिप्रं प्रहर्षोत्फुल्लोचनौ ।
 विज्ञाय नामधेयं मे मन्मातरमवोचताम् ॥ १९ ॥
 ब्राह्मणौ चेतमपुरे वस्त्रिष्ठकुलसंभवौ ।
 करम्भो देवसोमश्च श्लाघ्यमानौ बभूवतुः ॥ २० ॥
 मातुस्तयोः स्वतनयौ भ्रान्तौ विचारिणी महीम् ।
 पुरं पाटलिपुत्राख्यं कार्तिकेयवरादृतौ ॥ २१ ॥
 निजा वर्षद्विजे सन्ति प्राप्येति स्कन्दशासनम् ।
 प्रदृष्टवदनी तत्र प्रविष्टौ वर्षमन्दिरम् ॥ २२ ॥
 निनेष निजवृत्तान्तं वर्षोपाध्यायगेहिनी ।
 आवाभ्यां गुरुवृत्तान्तं पृष्ट्वा प्राह प्रियंवदा ॥ २३ ॥

१. 'जन्तापर्वणकथाम्' ख. २. 'मप्यु' ख. ३. 'प्रायधित्ता' ख. ४. 'पान्थी
 कर्षी विस्मितुर्गृहम्' इति ख पुनश्च पाठः, परंतु 'ब्राह्मणद्वहमेव' इति कथा-
 गतिप्रमाणसंबन्धे 'हौ नो विस्मितुर्गृहम्' इति पाठः सापीयान् प्रतीयते, यद्वा
 'हम्' इति स्थिते 'हृत्' इत्यपि सापीयान्, स्वर्गोपे लट् साधुपाठः, ५. 'म्य' ख.
 ६. 'दाते' ख. ७. 'विस्मित विस्मयः' ख. ८. 'प्याचारे' ख.

शंकरत्नामिनामामृद्वाहणो वेदपारगः ।
 वर्षोपवर्षो तसेमौ तनयावत्तनुत्विपः ।
 संप्राप्य विद्यामवुलं विश्रुतो लोकपूजितः ॥ २४ ॥
 कनीयानुपवर्षोऽस्य मम मर्तुर्महाधनः ।
 ज्येष्ठश्चासावविज्ञातो मौर्ख्यादारिद्र्यमन्दिरम् ॥ २५ ॥
 ततः कदाचिद्विमबोन्मत्ता सरलचेतसे ।
 उपवर्षस्य दयिता स्वयं वर्षीय निस्त्रया ॥ २६ ॥
 मध्यं जघनमुद्राङ्गं पिष्टोद्धर्तननिर्मितम् ।
 ददौ प्रहृष्टस्तप्राप्य स च मधं न्यवेदयत् ॥ २७ ॥
 हानप्रयासचकिता रजसो विनिवृत्तये ।
 कुर्वन्ति शीतकालेषु स्त्रियस्ताद्विगतत्रयाः ॥ २८ ॥
 तमालोक्यासि निर्विण्णमत्यक्ता धूलुक्त्यभूतले ।
 हा हता मूर्खमार्याहमित्यशोचमघोमुखी ॥ २९ ॥
 विमृष्य लज्जितः क्षिप्रं गत्वा चक्रे ततम्रपः ।
 वर्षो येनास्य भगवानभयद्वन्द्वो गुहः ॥ ३० ॥
 दैयं श्रुतधरायेदं ज्ञानमित्याप्तशासनः ।
 सर्वज्ञतामवाप्यासौ पुनः प्राप्तः स्वमन्दिरम् ॥ ३१ ॥
 इत्युपाध्यायिर्नैवाक्यं श्रुत्वावां प्रणतौ गुरोः ।
 आज्ञां श्रुतवराहाने प्राप्य भ्रान्तौ महीतलम् ॥ ३२ ॥
 कालेन त्वद्दहे मातर्दष्टोऽसौ तनयस्तव ।
 यथार्थनामा मतिमानयं श्रुतधरः शिशुः ॥ ३३ ॥
 आवां वररुचिश्चायं त्वद्दत्तो वर्षमन्दिरम् ।
 विद्यार्थिनः स्वस्त्रिमन्तो गच्छामः शेषि नः शिवम् ॥ ३४ ॥
 ताम्भानम्यर्थिता नाता कथंचिदय मां शिशुम् ।
 आदिदेगोश्रुवदना प्रत्यप्रविहितव्रतम् ॥ ३५ ॥

दृष्टस्तदनुगः प्राप्य वर्षवेष्टम् अनैरहम् ।
 तस्मात्प्राप्याखिलान्वेदान्विधानामाश्रयोऽभवम् ॥ ३६ ॥
 ततः कदाचिदेकान्ते मुक्तान्ते समवस्थितः ।
 पृष्टः पाटलिपुत्रीयामुत्पत्तिं ग्राह मे गुरुः ॥ ३७ ॥
 अनावृष्टिहते काले आतरो ब्राह्मणाधियः ।
 भार्यासिक्तः परित्यज्य पुरा जम्मुर्दिगन्तरम् ॥ ३८ ॥
 अजीजनत्पुत्रं काले तासामेकैव गर्भिणी ।
 हेमलामः सदा तस्य मूर्ध्नि गौरीपतेवेरात् ॥ ३९ ॥
 प्रत्यहं सलु लब्धेन सहस्रेण स बालकः ।
 कालेन पुत्रकामिद्वयः प्राप्य राज्यं जनपियः ॥ ४० ॥
 तस्मिन्द्वारार्चनरते वातरि न्यक्तिमागते ।
 भ्रान्त्या दिगन्तानाजम्मुर्भिक्षार्थं ते द्विजान्नयः ॥ ४१ ॥
 विज्ञाय जननीशाययात्पुत्रकल्याणमहीपतिः ।
 पितरं च पितृव्यौ च सदा हृष्टोऽभ्यपूजयत् ॥ ४२ ॥
 सुखोपितास्ते श्वनकैः संभोगाद्दृष्टत्वा ययुः ।
 कं वा नामिनवा लक्ष्मीर्वारूणीव विमोहयेत् ॥ ४३ ॥
 तेषां बुद्धिरमृद्वाटमस्मिन्पुत्रे निपातिते ।
 स्वयं राज्यमवष्टभ्य तिष्ठाम इति निश्चिताः ॥ ४४ ॥
 ते विन्ध्यवासिनीपूजामपदिश्यात्मजं नृपम् ।
 निन्युर्गृहं समाधाय तद्वधाय महामदान् ॥ ४५ ॥
 तद्विज्ञाय गुरूणां स प्रतीकारपराङ्मुखः ।
 विन्ध्याटवीं विवेशैकस्त्यक्तराज्योऽयं पुत्रकः ॥ ४६ ॥
 पुत्रके त्यक्तराज्येऽयं जाते तेषां द्विजन्मनाम् ।
 राज्यं हतं कातराणां शत्रुभिर्वलवरीः ॥ ४७ ॥
 पुत्रकोऽप्यटवीं प्राप्य निर्वनां पर्यसागरः ।
 अमर्त्योपिनर्गचारमवाप गिरिकन्दरम् ॥ ४८ ॥

आत्रोरसुरयोः पैत्रे घने विवदमानयोः ।
 धावतोरधिको वेगो यः स स्वामी घने पितुः ॥ ४९ ॥
 इति तद्वचसा वेगगमने द्रुतयोस्तयोः ।
 उपानहौ च यष्टिं च प्राप्य पात्रं च तत्र सः ॥ ५० ॥
 यष्टिं समस्तनिर्माणे नमोगत्यामुपानहौ ।
 पात्रं निखिलभोगेषु स प्राप्येप्सितसिद्धिदम् ॥ ५१ ॥
 साकञ्जिकपुरीं गत्वा गूढं वृद्धा गृहे वसन् ।
 सेच्यमानस्तथा प्रैक्षः सततं काञ्चनप्रदः ॥ ५२ ॥
 महेन्द्रवर्मणो राज्ञस्तनयां रूपशालिनीम् ।
 विधुतां तत्र शुश्राव पाटलां पाटलाधराम् ॥ ५३ ॥
 उपानहौ समादाय राज्ञावुत्सत्य खेचरः ।
 आकाशमन्दिरगतां तत्प्रविश्य ददर्श सः ॥ ५४ ॥
 शयानां शयने स्वच्छे निजकान्त्युत्तरच्छदे ।
 नमोगतिः स तां मुसामेन्दवीमिव देवताम् ॥ ५५ ॥
 लावण्यसलिलसेरसरकलोलिनीमिव ।
 रत्नरेखिव विन्यस्तां मानसाकर्पणीपथिम् ॥ ५६ ॥
 यौवनोद्यानसंरूढां विलासलतिकामिव ।
 तां विलोक्य स्फुरद्रत्नकंपिशालोकमन्दिरम् ॥ ५७ ॥
 सहसा बोधयाम्येनां सुखमुत्तमहं कथम् ।
 चित्रन्यस्त इव क्षिप्रमिति ध्यानपरोऽभवत् ॥ ५८ ॥
 चिन्तादोलयिते तस्मिन्बहिःकश्चित्प्रसङ्गतः ।
 यामिको यामिकं ग्राह्यं सैरं निजकथान्तरे ॥ ५९ ॥
 निद्रामुद्रितलोचनरुचिम्नाजिष्णुकर्णोत्पला-
 मर्षावृत्तनिमेषदुःकृतिपदां जृम्भामिरामां मुहुः ॥

१. 'द्वतपादयोः' ख. २. 'आयज्ञिक' ख. 'आकर्षिण्यह्याम्' इति कथागरित्सागरे.
 ३. 'प्रदं' ख. ४. कथासरित्सागरे तु 'पाटलीम्' इति पाठः. ५. 'आकाशे मन्दिरगताम्'
 क. ६. 'ता प्रविश्य' क. ७. 'कपिललोच्यमन्दिरं' क. ८. 'चित्रन्यस्तमिव' ख.

यः प्राप्येन्दुमुखीं स्वयं न सहसा कण्ठे समालम्बते
 स प्रायः किमु पापदग्धविधिना सृष्टः शिलापुत्रकः ॥ ६० ॥
 इत्याकर्ण्य प्रेङ्गष्टः स पुत्रकः प्राह विस्मितः ।
 मामिवोद्दिश्य साधूक्तमहो केनापि धीमता ॥ ६१ ॥
 इत्युक्त्वा पाटलां कण्ठे जग्राह मदनाकुलः ।
 नवोत्कम्पिकुचन्यस्तहस्तस्त्रिककञ्चुकाम् ॥ ६२ ॥
 सा तेन त्रासविचलद्बोचनव्याकुलोत्पट्टा ।
 क्रान्तानताननाम्भोजा गजेनेव सरोजिनी ॥ ६३ ॥
 श्यामेव विस्फुरच्चित्रैहारमौक्तिकतारका ।
 सरस्वत्यभयभ्रान्तिभाजनं सहसामवत् ॥ ६४ ॥
 एवं प्रतिनिशं श्यामा संगमानङ्गमङ्गिना ।
 तेन कान्तवसन्तेन स्वैरं सा पुष्पिताभवत् ॥ ६५ ॥
 कालेन स परिज्ञातो राज्ञा प्रच्छन्नकामुकः ।
 आदाय पाटलां व्योम्ना प्रययौ जाह्नवीतटम् ॥ ६६ ॥
 सुखोपितस्तत्र तया सेव्यमानोऽथ पुत्रकः ।
 चकार नगरं यष्टिलेखाभिर्हेममन्दिरम् ॥ ६७ ॥
 पाटला वचसा राज्ञा पुत्रकेर्णाय निर्मितम् ।
 पुरं पाटलिपुत्राख्यमिदं विद्यानिवेशनम् ॥ ६८ ॥
 पाटलिपुत्रकथा ॥ १ ॥
 इति श्रुत्वा गुरोर्विद्याः प्राप्य सर्वाः सुखोपितः ।
 जपापमुपकोशाख्यानुपवर्षगुरोः सुताम् ॥ ६९ ॥
 उपकोशमवाप्याहं नीलनीरजलोचनाम् ।
 मरसाम्राज्यमैभजे भाजनं मृगसंपदः ॥ ७० ॥
 व्याडीन्द्रद्वयसहिते सप्रेजे मयि विधुते ।
 पाणिनिर्नाम वर्षग्य शिष्यः पूर्वं जज्ञस्तयः ॥ ७१ ॥

१. 'गनत्तय' ख. २. 'तदा तस्य वचनं ग्राह शिष्यिन.' ख. ३. 'छिन्न' ख.
 ४. 'इत्युद्दिश्य' ख. ५. 'मगधम्' ख.

तपसा शंकरात्प्राप्य नवं व्याकरणं वशी ।
 दिनान्यष्टौ विवादे मे प्रतिवादी चं मेऽभवत् ॥ ७२ ॥
 मया जिते ततस्तस्मिन्दुंकारेण विमोहयन् ।
 जहार नो हरः कोपाद्वैन्द्रव्याकरणस्मृतिम् ॥ ७३ ॥
 सहसा विस्मृते तस्मिन्स्तपसे कृतनिश्चयः ।
 द्रष्टुं सरहरं भर्तुं चरवं पार्वतीपतिम् ॥ ७४ ॥
 हिरण्यमुत्तनाम्नोऽथ वणिजः प्रतिवेश्मनः ।
 हस्ते गृहव्ययधनं विनिक्षिप्य गते मयि ॥ ७५ ॥
 उपकोशा विरहिणी नवयौवनशालिनी ।
 श्रुतज्ञा प्रोपिता योम्यं व्रतं चक्रे पतिव्रता ॥ ७६ ॥
 याति काले कदाचित्तां हारिणीं हंसगामिनीम् ।
 तनुस्त्वच्छाम्बरस्मेरस्फारपेनविलासिनीम् ॥ ७७ ॥
 विलीर्णश्रोणिपुलिनां द्यामां नेत्रनवोत्पलाम् ।
 सततलायिनीं गङ्गां व्रजन्तीं यमुनामिव ॥ ७८ ॥
 युवा लक्ष्मीमदोन्मत्तः क्षमापतेर्दण्डवासिकः ।
 पुरोहितश्च मन्त्री च ददृशुः सरमञ्जरीम् ॥ ७९ ॥
 तां वीक्ष्य मन्मथावेशात्सितेष्वयं पृथक्पृथक् ।
 तेषु भग्निसुतः प्राह प्रथमं भव मामिति ॥ ८० ॥
 स्नानात्प्रतिनिवृत्ता सा वीक्ष्य संख्यामुपसिताम् ।
 माता तमभ्यधादस्तु तृतीयेऽहि निशागमे ॥ ८१ ॥
 समागमस्तव मया वक्ष्यित्वेति तं ययौ ।
 तस्मात्प्रतिनिवृत्ताय पुरोहितमुवाच सा ॥ ८२ ॥
 द्वितीययामे यामिन्यास्तृतीयेऽहि वनास्मि ते ।
 उक्त्वेति तस्मादुत्तीर्णा दण्डेवासिकमभ्यधात् ॥ ८३ ॥
 तृतीयेऽहि तृतीयांशे शर्व्यां वक्ष्यामि ते ।
 इति संविदमाधाय त्यक्त्वा तानविशद्बृहम् ॥ ८४ ॥

कीर्णोत्पला इव दृष्टो विधाय चकितेक्षितैः ।
 प्रस्तुतापहवापाया निजमर्तृधनार्थिनीम् ॥ ८५ ॥
 हिरण्यगुप्तोऽपि गृहे तामयाचत संगमम् ।
 तृतीयेऽहि निशाशेषे स्वाधीना तेऽसि का क्षतिः ।
 इत्युक्त्वा तं परिजने कथामेतां न्यवेदयत् ॥ ८६ ॥
 ततः प्राप्ते तृतीयेऽहि तस्या मन्त्रिसुतो गृहम् ।
 विनष्टदीपं साकम्पो विवेश विवशो निशि ॥ ८७ ॥
 उपकोक्षा तमवदन्नास्त्राते त्वयि मे रतिः ।
 इति तस्या गिरा स्नातुं विवेशान्धगृहोदरम् ॥ ८८ ॥
 तत्रोद्वर्तनमादाय मसृणं तैलकज्जलम् ।
 ललितपुष्पेटिकास्तस्य चिरं गात्राणि कामिनः ॥ ८९ ॥
 अथान्यस्मिन्निशायामे तूर्णं प्राप्ते पुरोहिते ।
 भङ्गूपरूपं संदर्श्य विवृतं दारुकोष्ठकम् ॥ ९० ॥
 प्रविश प्रविश क्षिप्रमसौ प्राप्ते गृहाधिपः ।
 इत्युक्त्वा कोष्ठके ज्येष्ठमुपकोक्षा न्यवेशयत् ॥ ९१ ॥
 दत्त्वा श्लोद्गार्गलां तस्मिन्पुरोहितमुवाच सा ।
 नास्त्रातोऽर्हसि मां स्मृणुमिति सोऽपि तथा कृतः ॥ ९२ ॥
 तस्मिन्तैलमपीलिष्ठे तृतीयोऽपि समापयो ।
 सत्यं स्मरन्निदग्धेन मुग्धः को न विदन्वितः ॥ ९३ ॥
 पुरोहितेऽपि विन्यसे तत्रैव भयविह्वले ।
 सोऽपि क्रमेण तेनैव पिशाचसदृशः कृतः ॥ ९४ ॥
 हिरण्यगुप्ते संश्रान्ते रात्रिशेषे बणिम्वरे ।
 दारुमाण्डे तथैवासौ निहितो दण्डवांसिकः ॥ ९५ ॥
 धधोपकोक्षा बज्रजमुपविष्टं वरासने ।
 कोष्ठकामिनुग्रां प्राह निक्षेपो दीयतामिति ॥ ९६ ॥

१. 'दिशाय चकितेक्षितैः' क. २. 'तथादीनानि का क्षतिः' ख. ३. 'मन्त्रिवर'
 ग. ४. 'लक्ष्मणस्मिन्निशाशेषे' क. ५. 'दिशयम्' ख.

हिरण्यगुप्तस्तामाह भव मां चारुलोचने ।
 तव भर्ता विनिक्षिप्तं विद्यते सुतनो धनम् ॥ ९७ ॥
 सा श्रुत्वेत्यवदत्तारं शृण्वन्तु गृहदेवताः ।
 मृतानि साक्षिणः सन्तु विद्यतेऽस्मिन्धनं मम ॥ ९८ ॥
 इत्युक्त्वा स्नानकूटेन कृत्वा तमपि कज्जलैः ।
 दुष्प्रेक्ष्यमत्रवीक्षीणा क्षपा गच्छेति सत्वरम् ॥ ९९ ॥
 वणिक्संतर्जनमयात्प्रययौ संवृताननः ।
 भक्ष्यमाणो दुग्धकानां कृतकोलाहलैः श्वभिः ॥ १०० ॥
 इति रक्षितचारित्रा गते तस्मिन्मनस्विनी ।
 प्रातर्नन्दस्य नृपतेः सर्वास्यानसमां ययौ ॥ १०१ ॥
 उपवर्षस्य दुहिता भार्या वररुचैः सती ।
 प्राप्तेत्यावेदिता तत्र मानिता भूमुजावदत् ॥ १०२ ॥
 निहुतं वणिजा राजन्मम भर्तुर्धनं बहु ।
 न्यासं हिरण्यगुप्तेन प्रमाणमघुना नृप ॥ १०३ ॥
 ततस्तस्मिन्समाहृते प्राप्ते वितथवादिनि ।
 उपकोशावदद्वैव साक्षिणः सन्ति मे गृहे ॥ १०४ ॥
 आनीयन्तां मम गृहादेवताः कोष्ठकसिताः ।
 ता वक्ष्यन्ति यथातथ्यमित्युक्त्वा विरगम सा ॥ १०५ ॥
 नृपाज्ञया समानीते मञ्जूषाकोष्ठके नरैः ।
 विन्यस्ये च समामध्ये पुनराह पतिव्रता ॥ १०६ ॥
 भो भो सततपूजाढ्याः सत्यं मे ब्रूत देवताः ।
 क्षिप्रं दहामि मञ्जूषां साक्ष्ये चेन्मौनमाहितम् ॥ १०७ ॥
 श्रुत्वेति भीतास्ते प्राहुः सत्यमस्त्येव ते धनम् ।
 हस्ते हिरण्यगुप्तस्य साक्षिणोऽत्र त्रयो वयम् ॥ १०८ ॥

१. 'हमिनि' ख. २. 'बुध मे' ख. ३. 'प्रातर्ज' ख. ४. 'दुग्धकानाम्परो नामो
 नृपकोलाहलो जनैः' ख. 'दुग्धकानो निजं गृहम्' इति कथा. ५. 'पूजार्हा' ख.
 ६. 'भर्ता मे धनम्' क.

इत्याकर्ष्याद्भुतं सर्वे विसितास्ते समासदः ।

ददशुक्तां समुद्राद्यं मणीलिसान्दिगम्बरान् ॥ १०९ ॥

ततो विदितवृत्तान्तस्तात्रिगृह्य महीपतिः ।

धनेन धर्ममग्निनीमुपकोशामपूजयत् ॥ ११० ॥

अजान्तरे वराच्छंभोः स्मृतव्याकरणोऽप्यहम् ।

श्रुत्वा निजगृहोदन्तं प्रहृष्टो गुरुमभ्यगात् ॥ १११ ॥

उपकोशाख्यायिका ॥ २ ॥

प्रतिश्रुत्य गुरोस्तत्र हेमकोटीश्चतुर्दश ।

व्याडीन्द्रदत्तसहितः प्रयातो नन्दभूपतिम् ॥ ११२ ॥

एकानं जातरूपस्य यस्य कोटीशतं गृहे ।

तस्याय नन्दनृपतरेककोट्यर्थिनः शनैः ॥ ११३ ॥

प्रतिष्ठानपुरं हृष्टा यस्मिन्नेव दिने गैताः ।

तस्मिन्नेव दिने दैवात्स भूपालो व्यपद्यत ॥ ११४ ॥

अकालाशानिसंकाशं तच्छ्रुत्वा दुःखिता वयम् ।

दिनैर्कर्त्तव्ये राज्ञो लोभान्ममं समास्विताः ॥ ११५ ॥

अथेन्द्रदत्तः संमग्न्य संत्यज्य निजविग्रहम् ।

विवेकं राज्ञो योगेन शरीरमनिलोपमः ॥ ११६ ॥

तस्मिन्प्रविष्टे सहसा समुत्तस्यौ स भूपतिः ।

व्याडिं निधाय रक्षार्थमिन्द्रदत्तकलेबरे ॥ ११७ ॥

अभ्येत्य याचितो राजा स मया गुरुदक्षिणाम् ।

इन्द्रदत्तसमाविष्टः सुप्तोत्थित इवाय सः ।

मग्निं शकटाग्न्यं दीयतामित्यभाषत ॥ ११८ ॥

येनाप्याविष्टदेहोऽयमिति निश्चित्य बुद्धिमान् ।

अनादयन्मग्निरवरः सोऽन्विष्य प्रेतविग्रहान् ॥ ११९ ॥

ततो नन्दशरीरस्यो दग्धदेहोऽतिदुःखितः ।
 इन्द्रदत्तो रहः प्राह मां व्याडिं चांशुगद्गदः ॥ १२० ॥
 द्विजो भूत्वा कथं लोमादसिन्धुद्वक्त्रकलेवरे ।
 स्यात्सामि शकटालेन निर्दग्धनिजविग्रहः ॥ १२१ ॥
 इति दुःसाकुलं व्याडिरहं च नृपतिं शनैः ।
 वीतशोकं समाधाय तद्वाज्ये मन्त्रितां श्रितौ ॥ १२२ ॥
 गूढं निबद्धमूलोऽपि त्रिनाशमयशङ्कितः ।
 सततं नृपतिर्धैरं शकटाले व्यचिन्तयत् ॥ १२३ ॥
 योगनन्दोऽथ कालेन मग्नयित्वा चिरं मया ।
 वज्रान्धकूपे चित्रेषु शकटालं सुतैः सह ॥ १२४ ॥
 वदः पुत्रशतं प्राह प्राप्यैकं पुरुषाशनम् ।
 सोऽश्वात्तु यः प्रतीकारे शक्तो भूमिपतेरिति ॥ १२५ ॥
 अशक्ता वयमित्युक्ते तैः स तद्भुक्त्वांस्तदा ।
 उपवासकृशाङ्गाश्च तत्र ते निघनं ययुः ॥ १२६ ॥
 योगनन्दोऽपि संप्राप्य विमूर्तिं रतिमाययौ ।
 कुम्भेषु च करीन्द्राणां कुचेपु च मृगीदृशाम् ॥ १२७ ॥
 शुरवे दक्षिणां दत्त्वा विमुखो भव संततेः ।
 व्याडिं विरक्तहृदयः समामङ्ग्य विनिर्ययौ ॥ १२८ ॥
 इति नन्दस्य साचिव्यं प्राप्तस्य मम जाह्नवी ।
 भक्त्या बभूव वरदा सदा हेमशतप्रदा ॥ १२९ ॥
 ततः कालेन करुणाकूणितेन मया नृपम् ।
 विबोध्य शकटालोऽपि तैमःकृपाद्रिमोक्षितः ॥ १३० ॥
 पुनर्मेत्रिपदं प्राप मदेकग्ररणः सदा ।
 प्रदध्यौ मनसा वैरं शकटालो महीपतेः ॥ १३१ ॥
 कदाचिदथ गङ्गायां करपञ्चनिजालुलीः ।
 दर्शयन्तं ततो दृष्ट्वा मामपृच्छत्सकौतुकः ॥ १३२ ॥

अदर्शनं करं नीत्वा सन्दर्श्य सान्नुलिद्वयम् ।
 द्वावप्यमेधौ तिष्ठन्तु पञ्चेत्यहमथाम्यधाम् ॥ १३३ ॥
 इति मे बुद्धिविमवं दृष्ट्वा विस्रयमाययुः ।
 राजा च शकटालश्च ये चान्ये तत्र संगताः ॥ १३४ ॥
 एवं नन्दशरीरस्यः संभोगासक्तमानसः ।
 इन्द्रदत्तो विसस्मार ब्राह्मण्यं कौपमाश्रितः ॥ १३५ ॥
 तस्य लक्ष्मीमदान्धस्य संभोगासक्तचेतसः ।
 ईर्ष्यालोर्ददृशुर्नैव मरुतोऽपि बधूजनम् ॥ १३६ ॥
 स कदाचित्प्रियां सुप्रबलमीर्षिंस्वरसितः ।
 तिथिप्रश्ने द्विजन्मानं मापमाणां प्रियं वचः ॥ १३७ ॥
 विलोक्य क्रोधविवेशो अकुटीकुटिलाननः ।
 ब्राह्मणस्य वयं क्षिप्रं दण्डवासिकमभ्यधात् ॥ १३८ ॥
 स तीव्रशासनेनाशु राज्ञादिष्टः पुराधिपः ।
 निनाय निग्रहस्यानं ब्राह्मणं संभ्रमाकुलम् ॥ १३९ ॥
 कूप्यमाणं महाकार्यैर्द्विजमालोक्य बर्त्मनि ।
 जहास विक्रयन्यस्तो मत्स्यो विगतजीवितः ॥ १४० ॥
 तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं निवृत्तो दण्डवासिकः ।
 न्यजिज्ञपन्महीपालं राज्ञा पृष्टा वयं च तत् ॥ १४१ ॥
 शकटारुप्रभृतिषु क्षमापतेः क्षणमन्तिके ।
 विस्रयध्यानमूकेषु ध्यात्वा पृष्टोऽहमभ्यधाम् ॥ १४२ ॥
 निवार्यतां मद्वचसा ब्राह्मणो वधसाहसात् ।
 प्रैवक्ताम्यद्भुतं प्रातर्मत्स्यहासस्य कारणम् ॥ १४३ ॥
 इत्युक्त्वाहं त्रिपथगां गत्वा निशि निश्चातधीः ।
 अपृच्छं मत्स्यहासस्य हेतुं पृष्टाप्रवीच सा ॥ १४४ ॥

१. 'य सन्दर्श्यान्नुलिद्वयम्' ख. २. 'द्वौ मुख्य' ख. ३. 'कौम्य' ख. ४. 'शेय' ख.
 ५. 'स्मिता' प्र' ख. ६. 'य दृष्टव्यम्' ख. ७. 'विपुतो' ख. ८. 'पुराद्वि' ख.
 ९. 'अपृष्टाम्यधु' ख.

योऽयं शिशिरसंकाशशापावलयसंकुलः ।
 करालस्तालविटपी च्छन्नोऽत्र श्रोप्यसि स्थितः ॥ १४५ ॥
 इत्यहं तद्गिरा गूढं स्थितस्तालतरोरधः ।
 अर्धरात्रे महाकायामपश्यं रञ्जनीचरीम् ॥ १४६ ॥
 कृतानुयात्रां विकटाकारसखसपुत्रकैः ।
 दीप्तोर्ध्वकेशनयनां कालरात्रिमिवापराम् ॥ १४७ ॥
 ततो मातुः प्रणयिनां निविटाडिम्भरस्रसाम् ।
 भोजनं देहि देहीति तेषामशृण्वं गिरः ॥ १४८ ॥
 प्रातर्विशसिता पुत्राः स विप्रो राजशासनात् ।
 दिनमेकं परित्रातो मन्त्रिणा मत्स्यदासतः ॥ १४९ ॥
 तस्यैव मांसैः पण्मासांस्तृप्तिं यास्यथ बालकाः ।
 मातुः श्रुत्वेति पप्रच्छुस्ते मत्स्यस्मितकारणम् ॥ १५० ॥
 साब्रवीदीर्घ्यया राजा मूर्खो द्विजवधे विमुः ।
 अन्तःपुरेषु स्त्रीरूपांश्च वेत्ति पुरुषान्विस्तान् ॥ १५१ ॥
 एतन्मत्सेन हसितं श्रुत्वैतद्राक्षसीवचः ।
 प्रातर्बिदितवृत्तान्तो नरेन्द्रमवदं रहः ॥ १५२ ॥
 अन्तःपुरेषु स्त्रीरूपाः स्थितास्ते मा द्विजे कुप ।
 अजातश्मश्रवो देवदेवीनां दयिता नराः ॥ १५३ ॥
 मत्स्यस्य हसिते हेतुरयमेव नरेश्वर ।
 श्रुत्वेति तान्नरान् राजा निजग्राह प्रियाश्च ताः ॥ १५४ ॥

योगनन्दमत्स्यदासकथा ॥ ३ ॥

अथ फालेन भूपाले सर्वोत्थानसमास्थिते ।
 प्रतिज्ञां चित्रवचिष्ये कृत्वा चित्रकरोऽविशत् ॥ १५५ ॥
 स चिन्तयित्वा चित्रज्ञो राजानं दयितासखम् ।
 लिलेख लेखकुशलः प्रतिचिम्बमिवाम्बुनि ॥ १५६ ॥

ततः कदाचित्तं राज्ञः प्रतिमाषट्मद्रुतम् ।
 जपश्यमहमेकान्ते नूतनान्तपुरे स्थितम् ॥ १५७ ॥
 तत्र सर्वगुणोपेतां दृष्ट्वा नरपतेस्तनुम् ।
 विद्युदत्तामिमां देवीं त्रिलोक्य स्फुटलक्ष्णाम् ॥ १५८ ॥
 मानोन्मानममाणञ्चिन्नैविच्यसिद्धये ।
 ध्यात्वाहं तिलकं तस्या गुह्यदेशे न्यवेशयम् ॥ १५९ ॥
 ततः संपूर्णलक्षणं कदाचिदवलोक्य ताम् ।
 चित्रस्यां महिषीं राज्ञा तुकोपेर्ष्याविनष्टवीः ॥ १६० ॥
 जघने लक्षणं देव्याः केनेदमुपपादितम् ।
 नादृष्ट्वा विहितं मन्ये प्राहेत्यन्तपुराशयात् ॥ १६१ ॥
 देव कात्यायनेनेदं न्यस्तं मन्त्रिवरेण ते ।
 इति वर्षराष्ट्रत्वा शकटालमुवाच सः ॥ १६२ ॥
 पापो धरुचिः क्षिपं हन्यतामिति तद्वचः ।
 मतिगृक्षेव मामेत्य शकटालो गृहेऽववत् ॥ १६३ ॥
 राजा तव वधो दिष्टश्चित्रे तिलककारिणः ।
 कर्ता नास्मि च तद्वाक्यं त्वं हि देवो न मानुषः ॥ १६४ ॥
 अयत्रेन समर्थस्त्वं निहन्तुमपकारिणम् ।
 इति ज्ञात्वा मया मीत्या रक्षितोऽसि न गौरवात् ॥ १६५ ॥
 दुर्नात्याभिहतो राजा ध्रुवमेव विनह्यति ।
 नौरिकाकर्णधारा श्रीर्मग्निहीना हि सीदति ॥ १६६ ॥
 असमीक्षितकारित्वार्च्छोच्यो नन्दस्त्वया विना ।
 आदित्यमणो राज्ञः किं कथा न श्रुता त्वया ॥ १६७ ॥
 इत्युक्त्वा शकटालो मां धृत्वा गूढं समन्दिरे ।
 हतो भवेति राजानं चौरं हत्वा व्यजिज्ञपत् ॥ १६८ ॥
 निगृहीतं तु मां राजा ज्ञात्वा पुरनिवासिनः ।
 उधुधुर्दुःस्वसंस्तप्ता कन्युदीना इवागिणम् ॥ १६९ ॥

प्रच्छन्नचारी सौहार्दात्ततोऽहमवदं निशि ।
 शकटालः सखे धार्ष्ट्यात्स्वबुद्ध्या रक्षितस्त्वया ॥ १७० ॥
 अस्ति मे राक्षसो मित्रं स हन्ति मम हिसकान् । —
 भवता रक्षितो ह्यात्मा वर्तमानेन मद्भित्ते ॥ १७१ ॥
 इत्युक्त्वा दीप्तनयनं ध्यानमात्रादुपस्थितम् ।
 करालाकारविस्फारं राक्षसं तमदर्शयत् ॥ १७२ ॥
 ततस्तद्दर्शनाद्भीतः शकटालोऽभ्यभाषत ।
 कथान्तरे मया पृष्टः कथामादित्यवर्मणः ॥ १७३ ॥
 आदित्यवर्मणो राज्ञः पुरा खैरैवती प्रिया ।
 अप्राप्तसंगमा भर्त्रा गर्भमाघत निरूपया ॥ १७४ ॥
 स तां विनष्टचारित्रां ज्ञात्वान्तःपुररक्षिणाम् ।
 वचसा शिववर्माख्यं महामात्यमशङ्कत ॥ १७५ ॥
 तं वयस्यस्य नगरं नृपतेर्भोगवर्मणः ।
 गूढलेखोदितवधं वद्धमूलं विसृष्टवान् ॥ १७६ ॥
 भोगवर्माणमासाद्य शिववर्माथ शङ्कितः ।
 गूढलेखोदितं राजा विवेद वधमात्मनः ॥ १७७ ॥
 सौऽज्रवीद्भोगवर्माणं तूर्णं छिन्धि शिरो मम ।
 न चेत्प्रभुहितोद्युक्तः स्वयं छेत्स्यामि मल्लकम् ॥ १७८ ॥
 ध्रुत्वेति विस्मितेनाशु पृष्टो राज्ञाब्रवीत्पुनः ।
 पतामि यत्र निहतस्तत्रावृष्टिमयं भवेत् ॥ १७९ ॥
 इत्याकर्ण्य भयाद्राजा विवेच्य सह मन्त्रिभिः ।
 सुरक्षितं प्रयत्नेन स्वपुरं विससर्ज तम् ॥ १८० ॥
 अत्रान्तरे वधूरूपं स्थितमन्तःपुरे नरम् ।
 आदित्यवर्मा विज्ञाय पश्चात्तापं समाययौ ॥ १८१ ॥

आदित्यवर्मकथा ॥ ४ ॥

इत्येवं कर्णचपला मदान्धः राजकुञ्जराः ।

विशृङ्खला विनश्यन्ति पतिताः सरशासने ॥ १८२ ॥

कंचित्कालं भवानास्तां प्रच्छन्नो मद्गृहे सुखम् ।
 विगुह्यं भवतो भावं नृपो ज्ञास्यति सानुगः ॥ १८३ ॥
 कथं ते राक्षसो मित्रमभवत्कौतुकं मम ।
 इत्येवं शकटालेन पृष्टो विश्रब्धमम्ययाम् ॥ १८४ ॥
 नन्दस्य राज्ञो नगरे अत्यहं दण्डवासिके ।
 भक्षिते रक्षसा पूर्वं वृत्तोऽहं तत्पदे क्रमात् ॥ १८५ ॥
 दण्टाधिपत्यमाप्ताद्य राज्ञाहं स्वयमर्थितः ।
 रक्षसा कालरूपेण तेनैव निशि संगतः ॥ १८६ ॥
 स मामुवाच चकितं वञ्चनायोऽप्रविग्रहः ।
 रूपेणाम्ययिका नारी का सत्यं कथ्यतामिति ॥ १८७ ॥
 या यस्यामिमता लोके सा तस्याधिकरूपिणी ।
 स निगम्येति मेद्वाक्यं संतुष्टो मित्रतामगात् ॥ १८८ ॥
 इत्युत्त्वा शकटालस्य वचसा प्रयताक्षयः ।
 प्रध्यातमात्रां सहसा साक्षाद्भ्रामदर्शयाम् ॥ १८९ ॥
 सा धूर्जटिजटाजूटमालिका जननीव माम् ।
 समाश्वासय ययौ तूर्णं हारवल्ली नमश्चियः ॥ १९० ॥
 यदाचिदथ नन्दस्य हरिगुप्ताभिषः सुतः ।
 वनं तुरगमाकृत्यो विवेका मृगयारसात् ॥ १९१ ॥
 तस्मिन्मातृगहने गजगण्डालिमण्डलेः ।
 मूर्च्छातलनिरालोके तस्य रात्रिरवर्तत ॥ १९२ ॥
 ततो वनेचरमयादास्य तस्यास्थिते ।
 राजपुत्रे सनम्यायादृशः सिंहमयाद्भुतः ॥ १९३ ॥
 तमेव तस्यास्य तमुवाच वनेचरः ।
 न मेतस्यं त्वया आतर्प्यतामो रजनीमिद ॥ १९४ ॥

करालकेसरसटः क्रुद्धदृष्टांशुसंचयैः ।
 विपाटयन्निव तमः शार्दूलोऽयमेवः स्थितः ॥ १९५ ॥
 निद्रां भजस्य राज्यधर्मं रक्ष्यमाणः सखे मया ।
 त्वयि प्रबुद्धे राज्यधर्महं स्वपिमि निर्भयः ॥ १९६ ॥
 इति तद्वचसा तत्र सुष्ठे राजसुते हरिः ।
 ऋक्षमाह प्रसुप्तोऽयं नरो मे त्यज्यतामिति ॥ १९७ ॥
 सोऽवदद्वन्त निःसत्त्वो हरिणाधिपते भवान् ।
 न हि मित्रद्रुहः पापं शान्येज्जन्मशतैरपि ॥ १९८ ॥
 इत्युक्त्वा सोऽपि मुञ्चाप प्रतिबुद्धे नृपालजम् ।
 राजन्यमाह सिंहोऽयं त्यजेनं त्वं सुहृन्मम ॥ १९९ ॥
 इति सिंहवचः श्रुत्वा मित्रं सुप्तमशङ्कितम् ।
 उत्सङ्गन्यस्तमूर्धानं राजसूनुस्पातयत् ॥ २०० ॥
 सहसा पातितस्तोन नस्वैर्विष्टम्भ्य पादपम् ।
 उत्तीर्णो बलवद्देवादुःखा हि खलसंगतिः ॥ २०१ ॥
 शशाप कुपितोऽभ्येत्य तमृक्षो विगतत्रपम् ।
 यो ज्ञास्यति कथामेतां स ते त्राणमिति ब्रुवन् ॥ २०२ ॥
 उन्मत्तोऽयं ॥ तच्छापाद्वत्वा प्रातर्निजां पुरीम् ।
 प्रविश्य विगतच्छायः शोकदः क्ष्मापतेरभूत् ॥ २०३ ॥
 पुत्रमुन्मादविधुरं योगनन्दो विलोक्य तम् ।
 सस्मार मां विपत्प्राप्तः शकटालस्ततोऽवदत् ॥ २०४ ॥
 देव जीवत्यसी मग्नी हितः कात्यायनस्तव ।
 श्रुत्वेति नृपतिः पुत्रं प्राहिणोचं मदन्तिकम् ॥ २०५ ॥
 ऋक्षसिंहकथामिज्ञो मोचयित्वा नृपालजम् ।
 ततोऽहमगमं द्रष्टुं योगनन्दं द्विया नतम् ॥ २०६ ॥
 कथं ज्ञातस्त्वया शापः शृष्टोऽहमिति भूमुजा ।
 यया ते तिलकं बद्धा बुद्धं चेत्यभ्यधामहम् ॥ २०७ ॥

योगनन्दपुत्रशापमोक्षौ ॥ ५ ॥

अथ राजानमामध्य राजकार्यविरक्तधीः ।
 प्रातोऽसि पाटलिपुरीमश्रौषं गृहचेष्टितम् ॥ २०८ ॥
 योगनन्देन निहते दिक्षु व्यर्क्तं गते त्वयि ।
 गाता ते स्वर्ययी शोकादुपकोशमिमाविशत् ॥ २०९ ॥
 उपवर्षेण कथितं श्रुत्वेत्यशनिदारुणम् ।
 अगमं तपसा द्रष्टुं निःसङ्गो विन्व्यवासिनीम् ॥ २१० ॥
 वियोगदावद्गन्धानां तृष्णासतसचेतसाग् ।
 सुखाय सर्वसंन्यासः संतोषामृतनिर्झरः ॥ २११ ॥
 ततस्तपोवनस्योऽहं योगनन्दपुरोहितम् ।
 वार्तां यदृच्छयायातमपृच्छं कौतुकाकुलः ॥ २१२ ॥
 स प्रोवाच मया पृष्टस्त्वयि याते स भूपतिः ।
 भक्त्या शकटालेन स पुत्रो विनिपातितः ॥ २१३ ॥
 चरणाघातकोपेन मूलोद्धृतकुशं पथि ।
 स दृष्ट्वा क्रोधेन विप्रं मत्वा श्राद्धे महीपतेः ॥ २१४ ॥
 न्यवेशयन्मुक्तशिखं चाणक्यं नाम दुःसहम् ।
 उपविष्टमधः पङ्क्त्यां शकटालस्त्रमब्रवीत् ॥ २१५ ॥
 राज्ञवमानितोऽसीति स च जज्वाल तद्विरा ।
 चाणक्यनाम्ना ते नाथ शकटालगृहे रहः ।
 कृत्यां विधाय सप्ताहात्सपुत्रो निहतो नृपः ॥ २१६ ॥
 योगनन्दे वसःशेषे पूर्वगन्दमुतस्रतः ।
 चन्द्रगुप्तो धृतो राज्ये चाणक्येन महौजसा ॥ २१७ ॥
 एवमन्तर्ज्वलद्वैरः शकटालो महीपतिम् ।
 निपात्य सानुगं बुद्ध्या तपसे स ययौ वनम् ॥ २१८ ॥
 श्रुत्वेति कलिकटोलसंसासार्णवविभ्रमम् ।
 रुद्रार्णमगमं द्रष्टुं जरामरणवारिणीम् ॥ २१९ ॥

ततो देवीप्रसादेन दृष्टस्त्वं शापमुक्तये ।

स्वस्ति तेऽस्तु तनुं त्यक्त्वा प्रयाम्येष निजं पदम् ॥ २२० ॥

संगतस्त्वं गुणाढ्येन न चिरात्प्राप्त्यसि श्रियम् ।

उक्त्वेत्यामङ्ग्य संदृष्टः काणभूतिर्ययौ वनम् ॥ २२१ ॥

महर्षिमिर्मोक्षकथाः कृत्वा दृष्ट्वाथ पार्वतीम् ।

सर्गत्र ज्ञाननिर्धूतविकारः स्वपदं ययौ ॥ २२२ ॥

इति वररुचिरप्रशापमुक्तो धनपटलादिव निर्गतः शशाङ्कः ।

अत्रिकलनिजबोधदुर्गसिन्धुः शिवपदमेव वभूव निस्तरङ्गः ॥ २२३ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचिताया बृहत्कथायां कथार्पीठलम्बके वररुचिमुक्तिर्नाम

द्वितीयो गुच्छः ।

तृतीयो गुच्छः ।

मात्यवान्पार्वतीशापादकतीर्य मदीतलम् ।

अमात्यः सुचिरं भूत्वा शातवाहनभूपतेः ॥ १ ॥

गुरुगुणवतां लोके गुणाढ्य इति विश्रुतः ।

काणभूतिं समासाद्य शापबन्धादमुच्यत ॥ २ ॥

जातिसारः स पृष्टोऽथ कथान्ते काणभूतिना ।

उवाच निजवृत्तान्तं कथां श्रुत्वा हरोदिताम् ॥ ३ ॥

अभूतां दाक्षिणात्यस्य द्विजातेः सोमशर्मणः ।

वत्सगुल्मामिधौ पुत्रौ श्रुतार्था कन्यका तथा ॥ ४ ॥

गते समार्ये कालेन त्रिदिवं सोमशर्मणि ।

श्रुतार्था यौवनवती आत्रोश्चिन्तावहामवत् ॥ ५ ॥

कदाचिदथ कन्या सा गर्भिणी दुःखदा तयोः ।

वभूव पौण्ड्रसुरसी गर्भमृग्मास्तलद्रतिः ॥ ६ ॥

परस्परं श्रद्धितयोर्प्रात्रोः सा प्राह लज्जिता ।

स्वयं वृताहं नागेन ततो मे गर्भसंभवः ।
 इत्युक्त्वा ध्यानमास्थाय ताम्बां नागमदर्शयत् ॥ ७ ॥
 सोऽश्वीद्वासुकिर्भ्रातृपुत्रोऽहं दयिता च मे ।
 शापाद्विद्याधरवधूः कन्येयं युवयोः स्वसा ॥ ८ ॥
 गणावतारः पुत्रोऽस्मा भविष्यति गुणाधिकः ।
 उक्त्वेत्यदर्शनं याते मुजङ्गे मामसूत सा ॥ ९ ॥
 मज्जन्माचविशायौ च वत्सगुरुमौ निजं ततः ।
 मासौ विद्याधरपदं कालेन जननी च मे ॥ १० ॥
 ततो निसिलविद्यानामाश्रयो वेदपारगः ।
 शातवाहनभूपालं द्रष्टुं यातोऽस्मि तत्पुरम् ॥ ११ ॥
 तत्राश्रुण्वमाश्चर्यं कलाविद्याश्रयाः पथि ।
 कथाः पण्यगृह्यतृगीतवाद्यादिजीविनाम् ॥ १२ ॥
 कश्चिदाह घनातोयतैतवाद्येऽस्मि कोविदः ।
 कश्चित्माह प्रगल्भोऽहमेक एव धनार्जने ॥ १३ ॥
 उवाच कश्चिद्विक्रीय गतासुं मूषकं पुरा ।
 चणकैर्हेमकोटीनां प्रभुरवासि मूरिदः ॥ १४ ॥
 कश्चित्प्रोवाच विक्रीय धनिनो मुग्धकामुकान् ।
 चेद्यागृहेषु मतिमान्दातातीव भजेऽस्मि तम् ॥ १५ ॥
 शृण्वन्निति गिरस्तत्र नृपं वैश्रवणोपमम् ।
 प्रविश्य शिष्यैः सहितो हृष्टाहं भग्नितां श्रितः ॥ १६ ॥
 तत्र भक्षिपदं प्राप्य द्रैष्टुमुद्यानमुत्तमम् ।
 मया गोदावरीतीरे कात्यायिन्या विनिर्मितम् ॥ १७ ॥
 इति श्रुत्वा कथामग्ये काणभूतिरुवाच तम् ।
 स शातवाहनामिन्यां कथं प्राप्तो नरेश्वरः ॥ १८ ॥
 इति पृष्टो गुणाद्यस्तं प्रोवाच विकचक्षुतिः ।
 दीपकर्णामिधो राजा हरपूजारतोऽभवत् ॥ १९ ॥

तस्य शक्तिमती देवी बल्लभामृच्छुचिसिता ।
यस्याः कटाक्षबाणेन जनूम्भे विजयी सारः ॥ २० ॥
ततः कदाचिदानन्दसिन्धौ मधुपवान्धवे ।
आमोदमन्दरे काले कलिकालंकृते मघौ ॥ २१ ॥
देवीकुचस्थले राजा प्रफुल्लकुचस्थले ।
विजहार मारोदारः सैरं हारिणि हारिणी ॥ २२ ॥
राजपुत्री रतश्रान्ता सन्तकर्णोत्पला ततः ।
अवाप निद्रामुद्याने बालनिलचललका ॥ २३ ॥
सुखमसुखमभ्येत्य तां भुजङ्गोऽदशत्करे ।
रम्यं छिनत्ति सहसा पापः फालकुठारिकः ॥ २४ ॥
स तथा रहितो राजा विरहक्षामविग्रहः ।
ब्रह्मचर्यव्रतः समे ददर्श वरदं शिवम् ॥ २५ ॥
सिंहाधिरूढो विपिने सप्तर्षेः शिशुः स्थितः ।
अपुत्रस्य स ते पुत्रो भविष्यति वरान्मम ॥ २६ ॥
इत्युक्तवान्ममालोक्य प्रणतः शंकरं नृपः ।
अपश्यत्काननं गत्वा बालं केसरिवाहनम् ॥ २७ ॥
डिम्भे च नलिनीस्तण्डक्रीटादम्बरतत्परे ।
जिवृक्षुर्मृगिपालसं जघर्षन्केयुषा हरिम् ॥ २८ ॥
शार्दूलो निहतश्रेण यक्षो भूत्वा वराकृतिः ।
त्वत्प्रसादादहं मुक्तः क्षापादित्यभ्यधाद्यृषम् ॥ २९ ॥
शौतनामासि यक्षः प्राग्धनवानुचरो वने ।
मुनिभिः कन्यरुजकागी शप्तः सिंहत्वमागतः ॥ ३० ॥
सिंहगृत्वा च सा कन्या शिशुं हरिणलोचनम् ।
अजीजनदिभं काले मत्त एव महाबलम् ॥ ३१ ॥

१. 'पुत्रेव वपुर्नय' रा. २. 'वर्षस्थितः शिशुः' ग. ३. 'क्षातो' ख.
४. '३३' रा.

तस्यां विमुक्तशापायामहं विधृतवालकः ।
 त्वच्छराद्योतनिमुक्तशापः प्राप्तो निजां श्रियम् ॥ ३२ ॥
 इति वादिनमाम्रय शातयक्षं नरेश्वरः ।
 शातवाहनमासाद्य पुत्रं प्रायान्निजां पुरीम् ॥ ३३ ॥
 इत्यन्वर्थान्वितः काले दीपकर्णसुतो नृपः ।
 ररक्ष वंसुधां घन्वी धैर्यमूः शातवाहनः ॥ ३४ ॥
 स कदाचिद्वरोद्याने विमाने पुष्पघन्वनः ।
 वसन्ते कामिनीकान्तो जलकेलिरतोऽभवत् ॥ ३५ ॥
 निपिञ्चन्कङ्कणमणिच्छापाशवलवारिणा ।
 तरुणीनां स्तनतटे विवह्वार स्तरोपमः ॥ ३६ ॥
 तत्रैका महिषी राज्ञा हता सावेगमम्बुना ।
 मामोदकेन राजेन्द्र ताडयेत्यभ्यधातृपम् ॥ ३७ ॥
 श्रुत्वेति मूर्खो भूपालः क्षिप्रमाहृत मोदकः ।
 मा चारिणेति देव्यास्तद्वचो श्रुत्वा द्वियं ययौ ॥ ३८ ॥
 शब्दज्ञाभिः स देवीभिर्मृत्यैश्च श्रुतशालिभिः ।
 सान्तर्दासं मैनामृष्टो बभूव भृशखेदिर्तः ॥ ३९ ॥
 अमृष्टतीर्थसलिलैरजापैरतपस्विभिः ।
 त्रिलोचनमनाराध्य कथं विद्याधिगम्यते ॥ ४० ॥
 मोऽथ शोकमिसंतप्तः समुत्सारितसेवकः ।
 अविज्ञातामयोऽविद्यैस्तस्यो मौनी दिवानिशम् ॥ ४१ ॥
 कालेन शर्वचर्मोऽस्यो मग्नौ सह मया नृपम् ।
 प्रोवाच राजन्नस्त्राने कोऽयं शोकग्रहस्तव ॥ ४२ ॥
 स्वयं शिक्षिनया किं ते विद्याया चक्रवर्तिनः ।
 विपुषास्त्यां निषेचन्ते पश्य शकमिवेश्वरम् ॥ ४३ ॥

१. 'वर्षित्या' रा. २. 'पातयदन्त' रा. ३. 'मिष.' रा. ४. 'स्वल्पवः'
 पादोन्तः' वा. ५. 'गमादृष्टो' रा. ६. 'दु' रा.

अथाहमवदं घ्यात्वा गुणाढ्योऽहं यथार्थवाक् ।
 पण्डितं त्वां विधास्यामि पञ्चभिर्वत्सरैरिति ॥ ४४ ॥
 ततोऽब्रवीच्छर्ववर्मा मासैः षड्भिर्बहुश्रुतम् ।
 अहं नृपं करिष्यामि विश्राम्यन्तु भवद्विधाः ॥ ४५ ॥
 इति श्रुत्वा विहस्याहं कुपितस्तारमभ्यधात् ।
 भाषात्र ये मेविष्यामि मौनीपारंगते त्वयि ॥ ४६ ॥
 शर्ववर्माब्रवीदसि वोढा द्वादशवत्सरान् ।
 त्वत्पादुके प्रतिज्ञेया यदि मे न फलिष्यति ॥ ४७ ॥
 प्रतिज्ञायेत तपसा विलोक्य वरदं गुहम् ।
 स कातत्रेण नृपतिं मासैश्चक्रे बहुश्रुतम् ॥ ४८ ॥
 ततः पराजितो मौनी नृपेण स्वातुमर्थितः ।
 शिष्याभ्यां सहितो दुःखाघातोऽहं दिशमुत्तराम् ॥ ४९ ॥
 तपसा तत्र रुद्राणीं दृष्ट्वा तद्वचसा ततः ।
 त्वाभासाद्य गते शापे मया जातिः स्मृता सखे ॥ ५० ॥
 ज्ञात्वा देवीप्रसादेन त्वक्तमापात्रयोऽप्यहम् ।
 पैशाचिमनपभ्रंशसंस्कृतप्राकृतां श्रितः ॥ ५१ ॥

गुणाढ्यकथा ॥

गुणाढ्येनेति कथितं श्रुत्वा संहृष्टमानसः ।
 काणभूतिः पुनः ग्राह मुमुक्षुः शापबन्धनात् ॥ ५२ ॥
 स्वदागमनमद्यैव मेघिण्या कथितं निशि ।
 मम दिव्यदृशा धन्यं रक्षसा भूतिवर्मणा ॥ ५३ ॥
 इदं कथय तावत्त्वं विपुलं कौतुकं हि मे ।
 त्वं कथं माल्यवानाम्ना पुष्पदन्तः कथं च सः ॥ ५४ ॥
 इति पृष्टः पिशाचेन गुणाढ्यः ग्राह दिव्यधीः ।
 द्विजप्रहारे जाह्नव्यास्तीरे बहुसुवर्णके ॥ ५५ ॥

विप्रो गोविन्ददत्ताख्यो बभूव श्रुतिपारगः ।
 पद्मार्धसंस्तस्य तनयाः सुरूपाः शास्त्रवर्जिताः ॥ ५६ ॥
 मूर्खान्विनष्टमर्यादांस्तान्दृष्ट्वाभ्यागतो द्विजः ।
 वैश्वानरामिधस्तेषां निनिन्द पितरं क्रुधा ॥ ५७ ॥
 गोविन्ददत्तोऽप्यभ्येत्य प्रसाद्य क्रुद्धमग्रजम् ।
 शुशोच तनयान्मौनी चण्डालानिव वर्जयन् ॥ ५८ ॥
 ततः कनीयाङ्गयेष्ठश्च पुत्रको तस्य लज्जया ।
 जम्मुत्तुप्तपसा द्रष्टुं देवदेवं त्रिलोचनम् ॥ ५९ ॥
 विचित्रमाल्यैर्वलयैर्चयित्वा महेश्वरम् ।
 तद्वरान्माल्यवाघाम योऽभवत्सोऽहमग्रजः ॥ ६० ॥
 धन्योऽपरश्च यतर्षीर्वरं प्राप्य महेश्वरात् ।
 कालेन मुक्तसंभोगो गणतां प्राप्स्यतीति सः ॥ ६१ ॥
 चन्द्रमौलेर्वरं प्राप्य विद्यार्जनरतो महीम् ।
 आन्त्वा गुरुं वेदैकुन्ममवाप श्रुततत्परम् ॥ ६२ ॥
 स कदाचिच्छ्रूयं नाम भूपतेर्वसुवर्मणः ।
 ददर्श यौवनवतीं तनयामेतनुद्युतिम् ॥ ६३ ॥
 सापि श्रेणाभिहता तेन रूपवशीकृता ।
 संज्ञां दन्तेन पुष्पाणि खण्डयन्ती मुहुर्व्यधात् ॥ ६४ ॥
 संज्ञानभिज्ञो विवशः पुष्पचापशिलीमुखैः ।
 तैदन्वर्धमुपाध्यायाद्विवेद सरलाशयः ॥ ६५ ॥
 उद्याने पुष्पदन्ताख्ये गूढं संविचया कृता ।
 गुरोः श्रुत्वाैव तत्रैव प्रयातश्चामवाप्तवान् ॥ ६६ ॥
 तामासाद्य मुधासिक्तशरीर इव कातरः ।
 जग्राह कण्ठे सौत्क्रण्ठमुत्क्रण्ठसरलालसः ॥ ६७ ॥
 सा वमापे तमानन्दमन्दिरं स्मितमुन्दरी ।
 कथं ज्ञाता त्वया संज्ञा पृष्ट इत्यब्रवीच्च सः ॥ ६८ ॥

संतप्ते मयि विज्ञातमुपाध्यायेन धामता ।
 श्रुत्वेति सा वृषं मेने तं विष्णविवर्जितम् ॥ ६९ ॥
 ततो मयापदेशेन त्यक्त्वा तं हंसगामिनी ।
 प्रययौ सुगन्धमनसं रमन्ते न हि योषितः ॥ ७० ॥
 लज्जावमानविधुरस्तद्वियोगाश्रितापितः ।
 स मुमोहेन्दुवदनाध्यानस्मिमितलोचनः ।
 अत्रान्तरे व्रजन्व्योम्ना भगवान्पार्वतीपतिः ॥ ७१ ॥
 सं विलोभय कृपाविष्टो देव्या च स्वयमर्थितः ।
 दिदेश पञ्चचूटस्थं गणं तद्वाञ्छितासये ॥ ७२ ॥
 स धूर्जटिसमादिष्टः समेत्य ब्राह्मणान्तिकम् ।
 तं समाश्वास्य विहितव्रतवेधो ज्वलन्निव ॥ ७३ ॥
 द्विजं कृत्वा वधूवेपं वसुवर्माणमभ्यगात् ।
 तमुवाच महीपालमिमां रसं श्रुपां मम ॥ ७४ ॥
 चिरं यातमुतं याचञ्जान्त्वा द्रक्ष्यामि मूले ।
 इत्युक्तो न्यासभूतां तां ततो जग्राह भूपतिः ॥ ७५ ॥
 कन्यकान्तपुरे राज्ञो धृत्वा तां ब्राह्मणो ययौ ।
 स राजपुत्रीमालिङ्ग्य वधूवेपः जनैर्विशि ॥ ७६ ॥
 बुधैः किं नास्ति विज्ञातस्त्वया प्रज्ञासमन्विते ।
 पुरा संज्ञानमिज्ञोऽहं मूर्खोऽसीति विटम्बितः ॥ ७७ ॥
 तया स्मरधरैः सुसु सदा सर्वो विमुच्यति ।
 उक्त्वेति स्मरमञ्जर्या मुन्दर्या संगतस्त्वया ॥ ७८ ॥
 ययावलङ्कितः प्रातद्विजवेपधरं गणम् ।
 गणोऽपि तं समाद्रुय तस्थं वर्जराकृतिः ॥ ७९ ॥
 उवाच गत्वा राजानं प्राप्तोऽयं तनयो मया ।
 श्रुपां देहीति तच्छ्रुत्वा राजा ज्ञात्वा च तां गताम् ॥ ८० ॥

श्वेनरूपेण शक्रेण शिविर्नरपतिः पुरा ।
 परीक्षितो भ्रमन्त्येवं देवा इति मया नृपः ॥ ८१ ॥
 द्विजं प्रसाद्य प्रणतो निर्जां दुहितरं ददौ ।
 एवं गणप्रभावेन प्राप्य राजसुतां द्विजः ॥ ८२ ॥
 तस्यामुत्पाद्य तनयं महीपालं महीधरम् ।
 पुष्पदन्तो गणः सोऽमृत्यैवोद्यानसंज्ञया ॥ ८३ ॥

पुष्पदन्तमाल्यवानामकथा ॥

श्रुत्वा गुणाढ्यकथितं काणभूतिरुवाच तम् ।
 शोणितेन लिख क्षिप्रं सप्तानां चक्रवर्तिनाम् ॥ ८४ ॥
 कथां विद्याधरेन्द्राणां कथयामि स्थिरो भव ।
 इति श्रुत्वा लिलेखाशु सप्तलक्षाप्यनन्यधीः ॥ ८५ ॥
 प्राहिणोत्तां लिखित्वा च शातवाहनभूमुजे ।
 स च लक्ष्मीमदोन्मत्तो नामन्यत विशृङ्खलः ॥ ८६ ॥
 पैशाचीवाम्मपीरक्तं मौनोन्मत्तश्च लेखकः ।
 इति राजाग्रवीत्का वा वस्तुसारविचारणा ॥ ८७ ॥
 बुद्ध्या त्यजन्त्यनासाद्य मूर्खाश्चाचर्वणक्षमाः ।
 श्रोतारो नाप्रसिद्धेषु राजतौ क सुभाषिताम् ॥ ८८ ॥
 अवमानावधृतां तां कृत्वा मौनी बृहत्कथाम् ।
 व्याख्याय शिष्यसहितो गुणाढ्योऽधाचयत्सयम् ॥ ८९ ॥
 जुहावामौ महाकोपः पत्रं पत्रमनारतम् ।
 तस्मिन्व्याख्यातरि कथां निःशेषमृगपक्षिणः ॥ ९० ॥
 त्यक्त्वाहाराः समभ्येत्य शूश्रुवुः साश्रुलोचनाः ।
 ततस्तच्छुष्कमांसाशी नृपतिर्मृशमातुरः ॥ ९१ ॥
 विवेद लुब्धकगिरा मृगाणां शोपकारणम् ।
 द्रष्टुं सुमहदाश्चर्यमाययौ शातवाहनः ॥ ९२ ॥

लक्षैकशेषामासाद्य ततो राजा बृहत्कथाम् ।

शुशोच चर्वणासक्तप्रेक्षमाणः पदं पदम् ॥ ९३ ॥

सदा पूर्णः क शीतांशुः क दृष्टममृतं बहु ।

क वा हरमुखोद्गीर्णा लभ्यते निखिला कथा ॥ ९४ ॥

श्रुत्वा गुणाब्जादखिलं वृत्तान्तं कौतुकाकुलः ।

ययौ तच्छिष्यसहितः समादाय नृपः कथाम् ॥ ९५ ॥

गुणाब्जोऽपि परिज्ञानबहिर्निर्दग्धविग्रहः ।

मास्यवत्यदमासाद्य विजहार हरप्रियः ॥ ९६ ॥

राजापि तच्छिष्यसमर्पितश्रीरवाप्य पूर्वाम्यधिकप्रभावः ।

कथां त्रिनेत्राननपद्मसूतिं सौमाम्यपूर्तां कथयज्जटर्प ॥ ९७ ॥

इति सेनेन्द्रविरचिते बृहत्कथासारे कथापीठनामा प्रथमो लम्बकः समाप्तः ॥

कथामुपनामा द्वितीयो लम्बकः ।

प्रथमो शुच्छः ।

गुणाब्जेनेति लिखितां श्रातवाहनमूपतिः ।

बृहत्कथामकमयद्विदुषां सुहृदां पुरः ॥ १ ॥

महेश्वरात्सुप्यदन्तः काणमूर्तिरिमां ततः ।

तस्माद्गुणाब्जस्तस्माच्च श्रुतैवाब्द्यातवाहनः ॥ २ ॥

कान्ताकटाक्षवपुषे नमः कुसुमयन्वने ।

जायते येन सच्छायो विस्सोऽपि भवद्भुमः ॥ ३ ॥

सुजङ्गमङ्गिसुमगा कन्दर्पजयशालिनी ।

कौशाम्बी शाम्बीव श्रीरस्ति स्वस्तिमती पुरी ॥ ४ ॥

नीलरत्नमहासौधरश्मिवल्लिवितानके ।

यत्र रात्रिषु कुर्वन्ति तारकाः कुसुमम्रमम् ॥ ५ ॥

अर्जुनाभिजने जातो जनमेजयसंभवः ।
 शतानीकोऽभवत्तत्र राजा राजेन्द्रशेखरः ॥ ६ ॥
 वभार चन्दनाद्रेण यो गङ्गानिर्गरोज्ज्वलम् ।
 मुजेन भूमिवलयं मुक्ताहारं च वक्षसा ॥ ७ ॥
 संपूर्णचन्द्ररुचिरा मुक्तानिकरहारिणी ।
 स्वकीर्तिरिव यस्य श्रीः कीर्तिः श्रीरिव सा वमौ ॥ ८ ॥
 अद्वितीयगुणोदारं यस्य मुच्छायमुन्नतम् ।
 छत्रं यश इव स्वच्छं यशश्छत्रमिवामलम् ॥ ९ ॥
 सारसालंकृतिर्यस्य रणे कुवल्याश्रयः ।
 वंगौ त्पद्मसलज्जलः कुप्रणः कमलकरः ॥ १० ॥
 यो वसन्त इव क्षमामृन्मौली न्यस्तशिखीमुखः ।
 कलिकालंकृतं सर्वमशोकं रुचिरं व्यधात् ॥ ११ ॥
 वभूव तस्य राज्याब्धेः कर्णधारो महाभूतिः ।
 मन्त्री युगंधरो नाम शक्रस्येव बृहस्पतिः ॥ १२ ॥
 सेनानीः सुप्रतीपश्च विप्रः शास्त्रार्थवित्तया ।
 स्वरेच्छानर्मसचिवस्तथामुद्बलमो विभोः ॥ १३ ॥
 तस्य विष्णुमती नाम विष्णोः श्रीरिव बल्लभा ।
 वभूव विभ्रममही जैत्रमखं मनोभुवः ॥ १४ ॥
 स भृगुपुत्रसङ्गेन कदाचिन्निर्गतो वनम् ।
 ददर्श त्रेजसां राशिं मुनिं शाण्डिल्यमाश्रमे ॥ १५ ॥
 नामाभिजनमावेद्य तं प्रणम्य महीपतिः ।
 अयाप तस्मादुचितं पुत्रलभवरं च सः ॥ १६ ॥
 स राज्ञो वरदः धीमान्कौशार्म्यमित्य सादरम् ।
 पुत्रेष्ट्या पुत्रकामस्य याज्ञकोऽभून्महामुनिः ॥ १७ ॥

ततो मुनिप्रसादेन राजा दशरथोपमः ।
 ईष्ट्वा राममिव प्राप सहस्रानीकमालजम् ॥ १८ ॥
 संपूर्णकान्तवपुषि प्रौढिं याते कल्पपतौ ।
 तस्मिन्सितमुधावान्नि ग्रील्लयम नृपाम्बुधि ॥ १९ ॥
 स यौवराज्ये तनयं विधाय विभिन्ना नृपः ।
 पीयूषविम्बित इव आलेखकरणोऽभवत् ॥ २० ॥
 अत्रान्तरे सुस्पतिं दृष्ट्वा युद्धाय सानुगः ।
 आगतस्तन्वधिरसा यमदंष्ट्रो महामुरः ॥ २१ ॥
 वर्तमाने दिवि महौसंगरे मुरखसाम् ।
 आनिनाय अतानीकं साहाय्ये तं पुरंदरः ॥ २२ ॥
 नीतो मातलिनाम्येत्य सादरं स धनुर्वरः ।
 विधाय प्रेक्षकान्देवाज्जघान दितिजात्रणे ॥ २३ ॥
 हतदैत्याधिपः सोऽथ निहतः संमुखे दिवि ।
 जहासेवात्रविभ्रान्तस्त्रलभेममौक्तिकैः ॥ २४ ॥
 ततः शकस्य वचसा शरीरं तस्य मातलिः ।
 नीत्वा महीतलं चक्रे तनयेन यथोचितम् ॥ २५ ॥
 महिष्या सह भूपाले संप्राप्ते कीर्तिशेषताम् ।
 मेजे राज्यं अतानीकतनयो मन्त्रिणां गिरा ॥ २६ ॥
 याति काले महेन्द्रेण स नन्दनमहोत्सवे ।
 निमग्नितस्तत्कथितां भाविनीमशृणोत्कथाम् ॥ २७ ॥
 स्वयौषिद्रक्षणः शापादयोध्यायामलम्बुषा ।
 जाता मृगावती कन्या मृपतेः कृतवर्मणः ॥ २८ ॥
 विधूमो नाम च वसुः स्वर्लोकल्लनां पुरा ।
 तामेव ब्रह्ममुवने दृष्ट्वानिलहतांशुकाम् ॥ २९ ॥

सारतां मदनाक्रान्तं श्लापान्मर्त्यत्वमागत ।
 सैव ते ललना राजन्माविनी नो वरादिति ॥ ३० ॥
 श्रुत्वा तदुत्सुकमना समागच्छ शचीपतिम् ।
 कौशाम्बीं प्रस्थितो हृष्टः स तिलोचनया पथि ॥ ३१ ॥
 स्वरसेर किमपि ता भौषमाणामनन्यधी ।
 ध्यायन्शतक्रतुवचो ना लुलोके महीपति ॥ ३२ ॥
 सा शशाप नृप सुभ्रूनादरतिरस्कृता ।
 सौभाग्यमत्ता मानिन्यो न सहन्ते च धीरणाम् ॥ ३३ ॥
 चतुर्दशसमा भूयाद्विप्रयोगो हृदिस्थया ।
 तव राजन्निति तथा शप्त प्रायान्निजा पुरीम् ॥ ३४ ॥
 ततः कालेन तनया क्षमापते कृतवर्मण ।
 तामाससाद दयिता सर्वस्य पुष्पधन्वन ॥ ३५ ॥
 मृगावर्तं समासाद्य विलासतस्त्वह्वरीम् ।
 विभ्रमाम्भोघिलहरीं ननन्द मदनयुति ॥ ३६ ॥
 सा तस्माद्गर्भमाधाय भवानीवेन्दुशेखरात् ।
 पाण्डिज्ञा शशिलेखेव पीयूषक्षलिता बभौ ॥ ३७ ॥
 अगन्तरे मघ्नवर सेनानीश्च महीपते ।
 द्विजो नर्मवयस्यश्च पुत्रान्याप कुञ्जोचितान् ॥ ३८ ॥
 सुतो युगधरस्यासीन् ग्रीमान्यौगन्धरायण ।
 रमण्यान्पुत्रीपत्य द्विजस्य च वसन्तक ॥ ३९ ॥
 सुन्दरी दौर्दव्यत्तेरथ पौरन्दरीव दिक् ।
 रराज रानमहिषी रचनीकरगर्भिणी ॥ ४० ॥
 पत्यौ समारितहृत्तिलेच्छया मतिरघयो ।
 तस्या रत्नगर स्नाते तद्यामन्यत भूपति ॥ ४१ ॥

कौसुम्भसलिलस्थाने विहिते सरसि क्षणात् ।

सरोमृगदशाधीमान्को हि दैवे पराङ्मुखे ॥ ४२ ॥

ततस्तामामिषधिया सुपर्णकुलसंभवः ।

जहार विकटः पक्षी मुग्धां दग्धविधेर्वशात् ॥ ४३ ॥

नीत्वा विहायसा दूरं स तामचलसंनिभः ।

तत्याज मोहविवशमुदयाचलकन्दरे ॥ ४४ ॥

लब्धसंज्ञा शनैः कम्पविलोलतनुवल्लरी ।

कीर्णोत्पला इव दिशश्चकार चकितेक्षणैः ॥ ४५ ॥

तस्याः शोकांनिलोत्कम्पिकुचपर्वन्तपातिनी ।

असूत्रहारतां प्राप क्षणमश्रुकलेवली ॥ ४६ ॥

हा राजन्मन्दपुण्याहं क नु द्रक्ष्यामि ते मुखम् ।

इत्युक्त्वा गैजसिंहानां पुरोऽभूद्बद्धकाङ्क्षिणी ॥ ४७ ॥

सा स्वयं केसरिगजैस्त्यक्ता न निधनं ययौ ।

विपद्विसंकटे काले मरणं लभ्यते कुतः ॥ ४८ ॥

तस्याः करुणमाकर्ण्य ऋन्दितं साखुलोचनाः ।

मृगा विच्छिन्नरोमन्थनिःस्पन्दगतयोऽभवन् ॥ ४९ ॥

ततो यदृच्छया यातस्तां विलोक्य तथा सिताम् ।

निर्नाय करुणासिन्धुर्मुनिपुत्रस्तपोवनम् ॥ ५० ॥

मुतेयाश्वासिता तत्र कृपया जमदग्निना ।

असूत तनयं काले सेनान्यमिव पार्वती ॥ ५१ ॥

तस्याकाशमया वाणी चकारोदयनाभिधाम् ।

निजवंशशशाङ्कस्य भविष्यच्चक्रवर्तिनः ॥ ५२ ॥

आश्रमे स मुनीन्द्रेण कृतचूडादिकस्ततः ।

वष्ट्ये बालकशशी सह मातुर्मनोरथैः ॥ ५३ ॥

१. अत्र किञ्चिदुद्धृतं भवेत्. २. 'कणा' इति भवेत्. ३. 'नाथाकृतपु' ख.

४. 'राज' ख. ५. 'सर्प' ख. ६. 'धा' ख. ७. 'न' ख.

विद्याकलाकलितधीर्युवा नयननन्दनः ।
 सोऽपश्यन्मृगयासक्तो व्याधवद्धं भुजङ्गमम् ॥ ५४ ॥
 दीनमालोक्य भुजगं शवराय धनार्थिने ।
 अमोचयत्स्रजनीदत्तं दत्त्वा स्वकङ्कणम् ॥ ५५ ॥
 स सषों मोचितस्तेन नागो भूत्वा कृताञ्जलिः ।
 सस्यं विधाय पातालं निनाय तमुदारधीः ॥ ५६ ॥
 स किन्नराभिधो नागो धृतराष्ट्रसुतः प्रियम् ।
 पाताले प्रेमविनतस्तं वयस्यमपूजयत् ॥ ५७ ॥
 भगिनीं ललितामिह्यां ददाबुदयनाय सः ।
 यस्या मुखशशिद्योतैर्जाता पातालकौमुदी ॥ ५८ ॥
 तद्रुर्माधानपर्यन्तशपा सापि भुजङ्गमी ।
 ययौ विद्याभरपदं स्वयमामृष्य बल्लभम् ॥ ५९ ॥
 ताम्बूलीस्रजमग्लानां वीष्णां घोषवतीमपि ।
 अत्याप राजतनयः फणीन्द्रात्स्वाश्रयं ययौ ॥ ६० ॥
 मुनीन्द्राश्चास्यमानां स जननीं शोककशिताम् ।
 समेत्यानन्दमुदितां चक्रे नय इव श्रियम् ॥ ६१ ॥
 अत्रान्तरे स शवरः कौशाम्ब्यां वणिजं ययौ ।
 सहस्रानीकनामाङ्कमणिकङ्कणविक्रयी ॥ ६२ ॥
 आदाय रत्नकटकं स विमीतो महीभुजे ।
 निवेद्य शवरोपेतः प्रणम्य स ययौ वणिक् ॥ ६३ ॥
 भृगावतीवियोगामिदद्यमानतनुर्नृपः ।
 तद्याहुवहरीसद्गुणार्द्रं प्राप्य कङ्कणम् ॥ ६४ ॥
 नीलकण्ठ इवोत्कण्ठो नूतनाम्बुदनिन्दितः ।
 श्रुत्वा चलयमंप्राप्तिकयां कृत्वा पुरोगमम् ॥ ६५ ॥
 शवरं तां दिशं दष्टः प्रतप्ते सह भविभिः ।
 ययन्दुमाङ्कमुग्धो लभते सहस्रोदयम् ॥ ६६ ॥

स ब्रजन्नाजसिन्दूरसंध्यायितदिगन्तरः ।
 कंचिन्मार्गं समुल्लङ्घ्य तस्यौ विश्रान्तसैभिकः ॥ ६७ ॥
 तस्मिन्विनिद्रे दयितासंगमध्यानतत्परे ।
 कथां संगमकामिस्यः कथकोऽकथयन्निशि ॥ ६८ ॥
 भविष्यत्यचिरादेव तच्च देव्या समागमः ।
 विस्तीर्णे तु खजलघौ मद्रमेवाप्यते यथा ॥ ६९ ॥
 अभूतां मालवे विप्रौ कालनेम्यमयामिधौ ।
 गुणाभिजनशीलाढ्यौ निर्विण्णौ कृतचेतसौ ॥ ७० ॥
 विष्णुवक्षस्यलनमश्चन्द्ररेखामय श्रियम् ।
 यत्र होमव्रतपरः कालनेमिरतोपयत् ॥ ७१ ॥
 विभूतिं प्राप्य तनयं श्रीदत्ताष्ट्यमवार्प सः ।
 पृथिवीनाथ तां यस्य जन्मानि श्रीरभाषत ॥ ७२ ॥
 प्राप्तो विक्रमशक्तेः स राजसूनोर्वयस्यताम् ।
 रूपविद्यागुणोपेतो ललास द्विजपुत्रकः ॥ ७३ ॥
 वयस्या बहवोऽप्यासन्बाहुशालिपुरुगमाः ।
 तैर्युतं राजतनयो न सेहे तं यलाधिकम् ॥ ७४ ॥
 तस्मिन्बूढबधोद्युक्त श्रीदत्तो दूरदेशगः ।
 अपश्यदङ्गनां गङ्गातरङ्गौषहतां पुरः ॥ ७५ ॥
 बभ्रजार्कैन्दिनीं त्रातुं तामम्भसि विगाह्य सः ।
 शीघ्रानुसारी बलवान्ममामनुममज्ज च ॥ ७६ ॥
 जलान्तरे ततोऽपश्यद्रक्तपुष्पकृतार्चनम् ।
 शंकरं तत्पुरः पूजाव्यग्रां तामेव चाङ्गनाम् ॥ ७७ ॥
 कृतपूजां मणिगृहं निजं प्राप्तां सखीवृताम् ।
 तामपृच्छत्स यत्नेन निषण्णां शोककारणम् ॥ ७८ ॥

१ 'विष्टौ' ख. २ 'भयान' ख. ३. इदं पदं ख पुस्तके नास्ति. ४. 'कदा-
 चित्तीर्थयात्राया' ख. ५. 'कृष्णा' ख.
 ५ वृ० मं०

साधवीद्विष्णुना दग्धः पितास्माकं विरोचनः ।
 सिंहेन तत्प्रयुक्तेन संनिरुद्धं पुरं च नः ॥ ७९ ॥
 श्रुत्वेति ललनावाचं स जघान महाहरिम् ।
 खड्गैरङ्गं ददौ तस्मै श्वापमुक्तोऽथ केसरी ॥ ८० ॥
 अमुरेन्द्रमुत्ता चाग्र्यं वितताराङ्गुलीयकम् ।
 विषापहारं तत्प्राप्य स प्रायात्प्रार्चितस्तया ॥ ८१ ॥
 स्नातुं मग्नः पुनर्गङ्गाकूलादेवोन्ममज्ज सः ।
 वयस्यात्तत्र शुश्राव नृपेण पितरं हतम् ॥ ८२ ॥
 भावी नृपः सुतोऽस्येति श्रुत्वा विक्रमशक्तिना ।
 श्रुत्वेत्युज्जयिनीं गन्तुं प्रस्थितो भृशदुःखितः ॥ ८३ ॥
 वयस्येन सहारव्यां ददृशार्कन्दिनीं खियम् ।
 मा भैषीरिति तामुक्त्वा तयैव सहितो निशि ॥ ८४ ॥
 प्रविश्य शन्यनगरीं तामपश्यन्निशाचरीम् ।
 तयैव भक्षितं दृष्ट्वा वयस्यं कोऽपि कम्पितः ॥ ८५ ॥
 धीरो जग्राह केशे त्वं कङ्कालोत्तालितायुषाम् ।
 सा गृहीता दृढं तेन प्राप्य शापान्तमम्यगात् ॥ ८६ ॥
 कौशिकेनासि शप्ता प्राक् तपसो विम्वकारिणी ।
 त्यक्तरस्पर्शपर्यन्तः शपोऽयं विगतो मम ।
 इत्युक्त्वा निष्ठुरं नाम तद्वयस्यमजीवयत् ॥ ८७ ॥
 ततो ब्रजन्मथि पुनः श्रीदत्तोऽन्यान्वयस्यकान् ।
 प्राप्य स्वैरं गृहे तत्सौ सुहृदो यादुशालिनः ॥ ८८ ॥
 ततः कदाचिन्मत्तालिमालिताशोकचम्पके ।
 वगन्ते ससिन्धिः सार्धमुद्याने विजहार ततः ॥ ८९ ॥
 तत्रापश्यन्नृपमुतां चामरालोलितालकाम् ।
 निभृतिमिव रूपस्य विग्रमस्येव संपदम् ॥ ९० ॥
 रश्मीनिव शशाङ्कस्य कुमुभेपोरिव मियम् ।

समृद्धिमिव दर्पस्य शृङ्गारस्येव देवताम् ।

निर्घण्यन्स तां कान्तां रागान्मूढ इवामवत् ॥ ९१ ॥

स्फूर्जद्भिश्चालविषवह्निकरालदंष्ट्रा-

नार्शाविषान्वज्रमुपेत्य नयन्ति धीराः ।

सिंहांश्च केसरसटात्रिकटाट्टहासा-

न्कन्दर्पदर्पदलने न तु कश्चिदीशः ॥ ९२ ॥

सा मृगाङ्गवती दृष्ट्वा भूपतिर्विम्बकेः सुताम् ।

श्रीदत्तं मन्मथोदारं ययौ पञ्चेपुलक्ष्यताम् ॥ ९३ ॥

मनोमवनवारम्भविभ्रमव्यग्रमानसाम् ।

भुजङ्गः कदलीकेलिलोलां तामदशत्करे ॥ ९४ ॥

जातः सरविकारेण मुह्यद्वा प्रेरितस्ततः ।

निजाङ्गुलीयं दत्तैव श्रीदत्तस्तामजीययत् ॥ ९५ ॥

आर्गीविषविषोन्मुक्ता ततः सा लब्धजीविता ।

मनोमवभुजङ्गेन मुमोह मुहुरर्दिता ॥ ९६ ॥

ततो विदितवृत्तान्ता सखी भावनिष्ठाभिधा ।

स्मरातयैर्न श्रीदत्तं तस्याः संतापमभ्यधात् ॥ ९७ ॥

मुहुरिदममममय विरहक्षामविग्रहः ।

बहिदाहापदेशेन स जहार नृपात्मजाम् ॥ ९८ ॥

वयस्यैस्तां पुरो नीत्वा स्वयं गत्वान्यवासरे ।

ददर्श शरनिर्मितां दीनां भावनिष्ठां पथि ॥ ९९ ॥

किमेतदिति पृष्ट्वाय निषिलान्सचिवांस्रव ।

शरैर्विदार्याभिमुत्तान्क्षत्रियैर्मे हता सखी ॥ १०० ॥

श्रुत्येत्यशनिसंक्राशं मुह्यद्वा वीक्ष्य विक्षतान् ।

जवेन स तुरङ्गस्थः क्षत्रियान्कुपितोऽन्वयात् ॥ १०१ ॥

भुजगेन सख्येन कीर्तिनिर्गोक्रशालिना ।

व्यसृन्विधाय सहसा राजन्यान्प्राप तां प्रियाम् ॥ १०२ ॥

रणात्तुरंगमादाय विपुलाघातपीडितम् ।
 प्रययौ हर्षसंपूर्णं समारुह्य प्रियाससः ॥ १०३ ॥
 विकटामटवीं प्राप्य तुरगे पञ्चतां गते ।
 अध्वश्रमार्ता दयितं कान्ता जलमयाचत ॥ १०४ ॥
 तृष्णातां तां तरुतले निधाय स जलशयान् ।
 खड्गद्वितीयोऽरण्येऽथ वज्रमोद्भ्रान्तमानसः ॥ १०५ ॥
 अत्रान्तरे सहस्रांशौ पद्मिनीविरहादिव ।
 प्रविष्टे जलधौ सान्द्रतमांस्यनुजजृम्भिरे ॥ १०६ ॥
 तमालतालव्यालोलमत्तलिकुलमांसलैः ।
 स विसस्मार तद्वर्त्म तमोभिर्दुर्नयैरिव ॥ १०७ ॥
 हा प्रिये क नु लप्स्यामि शैवन्निति ससंभ्रमम् ।
 नाससाद् वनस्यान्तं व्यसनस्येव दुर्मतिः ॥ १०८ ॥
 ततः प्रमाते दयितावियोगविधुराशयः ।
 न्यमोधमधिरुक्षाशु विलोक्य विललाप सः ॥ १०९ ॥
 वृक्षमूलधृतं खड्गं तस्य तोयजिघृक्षया ।
 जहार धमरापीशो दुःखं दुःखे हि वर्धते ॥ ११० ॥
 स तमाह प्रिया नूनं तव पक्षीनिवासिभिः ।
 मद्गृह्येरेत्य या नीता तामन्विष्य स्वयं व्रज ॥ १११ ॥
 ततः प्रतिनिवृत्तस्य खड्गं दास्यामि ते सखे ।
 धृत्वेति सह तद्गृह्येर्ययौ पक्षीं स्खलद्गतिः ॥ ११२ ॥
 तत्र ग्रान्तश्चिरं श्रान्तः क्षणं निद्रावशं गतः ।
 भलैर्दुर्गोपहाराय निवद्धो बाहुशृङ्खलैः ॥ ११३ ॥
 तैतो नेत्रोत्पलच्छाया जितकर्णशिसृष्टिका ।
 शबरेन्द्रमुता वीक्ष्य तं सारव्याकुलमवत् ॥ ११४ ॥
 ॥ विम्बापरशोणान्गुर्व्यक्तमुज्जाफलसजम् ।
 पुलिन्दमुन्दरीं भेजे तां कान्तासंगमाश्रया ॥ ११५ ॥

ततः सा 'दोहदव्यक्तगर्भनृम्मात्मसा शूनः ।
 अमोचयत्तं दयिता पुनर्दर्शनसंविदा ॥ ११६ ॥
 तया श्रीदण्डमुतया सुन्दर्या मुक्तवन्धनः ।
 मत्सहो जनकाद्राक्षसामित्युक्त्वा विनिर्ययो ॥ ११७ ॥
 ॥ मृगाश्चवतीमेव विचिन्वन्कानने चिरम् ।
 चचार विश्रयगतिर्यथग्रष्ट इव द्विपः ॥ ११८ ॥
 अपि कष्टशनामार्गे प्रिया दृष्टेति वादिनम् ।
 तं वृद्धशवरोऽभ्येत्य जगदे जीवयन्निव ॥ ११९ ॥
 शोचन्ती त्वामदुःस्वार्हा सा मया तव यत्नमा ।
 दृष्ट्वा श्रीदत्तकृपया रक्षिता च मुता यथा ॥ १२० ॥
 सा जगद्भुवानी मुग्धा तरुणी पल्लिवासिमिः ।
 क्रान्तेति माधुरं ग्रामं नीता नागस्रलं मया ॥ १२१ ॥
 साधोर्द्विजन्मनो गेहे विश्वदत्तस्य मानिनी ।
 न्यस्ता तत्र स्वयं गच्छेत्सुक्त्वा तं शवरो ययौ ॥ १२२ ॥
 तच्छ्रुत्वा मारुतजवो विश्वदत्तं समेत्य सः ।
 देहि प्रियामिति प्राह स च प्रीतस्तमन्मयात् ॥ १२३ ॥
 अमात्यः शूरसेनस्य नृपतेरमयाभिषः ।
 द्विजन्मा तस्य सा गेहे मया न्यस्ता तपस्विनी ॥ १२४ ॥
 शुत्वेति गन्तुकामोऽथ स्नातुं यातः ॥ दीर्घिकाम् ।
 चौरवदमहाहारं व्यत्ययात्प्राप कर्पटम् ॥ १२५ ॥
 तं तु दृष्ट्वा राजाहं मुक्ताहारं महम्भवि ।
 अवाप्तो राजपुरुषैर्मर्त्यमानो व्यहृष्यत ॥ १२६ ॥
 तं वधाय समाकृष्टं राजद्विष्टिमघोषैः ।
 निर्गता ब्राह्मणीमध्ये ददर्श निजवह्मम् ॥ १२७ ॥

सा गत्वा दुःखसंश्रान्तदरितेवाशुनाथ तम् ।
 अमात्यतः प्रियतमं वधवन्धादमोचयत् ॥ १२८ ॥
 रक्षितः सोऽभ्यास्येन मन्त्रिणा प्राप्य तां प्रियाम् ।
 ज्ञात्वा तमेव च शनैः पितृव्यं प्राप निर्द्वैतिम् ॥ १२९ ॥
 यक्षाङ्गनाराघनतः प्राप्य तां महतीं प्रियाम् ।
 स पितृव्यो ददौ तसौ विवाहं च तयोर्व्यधात् ॥ १३० ॥
 ततस्तैः संगतो मित्रैः शूरसेनमुतामपि ।
 पितृव्यस्य धिया प्राप सह हस्त्यश्वसंपदम् ॥ १३१ ॥
 कदाचिदथ कालेन संनिरुद्धः स वर्त्मनि ।
 दस्युभिर्दस्युसेनान्यमवधीद्विक्रमोर्जितः ॥ १३२ ॥
 शक्तिघाताकुलं पश्चान्न्युक्तं शैवरा बलात् ।
 चण्डिकायतनं घोरं नररक्ताक्षवेदितम् ॥ १३३ ॥
 श्रीदण्डतनयां तत्र ददर्शार्चितचण्डिकाम् ।
 पीरसेनाभिघ्नं पुत्रं तस्यां जातमवाप सः ॥ १३४ ॥
 सङ्गरत्नं प्रियां तां च रुचिरां शयराजिताम् ।
 कल्पितां कीर्तिशेषेण श्रीदण्डेन पुरा स्वयम् ॥ १३५ ॥
 पुलिन्दवाक्यमासाद्य बिम्बकः श्रियमाप्य च ।
 हृत्वा विक्रमशक्तिं च पापं पितृवधकुधा ॥ १३६ ॥
 अयाप्य दयितास्तिस्रः पृथ्वीराज्यमवाप्तवान् ।
 श्रीदत्तेनेति दुःसाब्धिमुत्तीर्यासाः सुखश्रियः ॥ १३७ ॥
 इति श्रीदत्ताष्ट्यायिका ॥ १ ॥
 श्रुत्वेति संगमकतः कथकादद्भुतां कथाम् ।
 निनाय राजा रजनीं राजपुत्रीं व्यचिन्तयत् ॥ १३८ ॥
 ततः कालेन ककुर्मं प्राप्य जम्मारिपौलिताम् ।
 जामदग्न्याश्रमं प्राप निर्द्वैरहरिकुञ्जरम् ॥ १३९ ॥

१. 'सा गत्वा दुःखसंश्रान्तदरितेवाशुनाथ' इत्यानुशासनात् । अमात्यस्य प्रियतमा दुःखा...
 भादमोचयत् ॥' इति रा-पुष्पकम्पः पाठः. २. 'दस्यवो' ख. ३. 'राज्यं तस्य समासा'
 'म. ४. 'पर्व' ख. ५. 'रक्षिता' ख.

मुनिना पूजितस्तत्र दयितां विरहादिताम् ।
 लेभे हर्षविशोकाश्चस्तनयं चातनुद्युतिः ॥ १४० ॥
 अयं त्यक्तो नरपते मृगावत्यां यशोनिधिः ।
 जातः श्रीमान्मुमुक्षो जेता धनंजय इवापरः ॥ १४१ ॥
 उक्त्वेति मुनिना दत्तं गृहीत्वोदयनं नृपः ।
 प्रियासहायः स्वपुरीं प्रतस्थे मन्त्रिभिर्वृतः ॥ १४२ ॥
 ततः प्रविश्य कौशाम्बीं तनयाय ददौ नृपः ।
 पुत्रान्युगंधरादीनां पौरराज्यत्रिया सह ॥ १४३ ॥
 यौगन्धरायणो मग्नी रुमृष्वान्वाहिनीपतिः ।
 वसन्तको नभसुहृद्राजसूनोरभूत्ततः ॥ १४४ ॥
 ततो विहृत्य सुचिरं दयिताकेलितत्परः ।
 सहस्रानीकनृपतिः कीर्त्यैव जरया स्रुतः ॥ १४५ ॥
 पद्मनाभम्पिकदलीदललोलां भवसितिम् ।
 धियैव कलयन्प्रायात्सहामाल्यो महापथम् ॥ १४६ ॥

रामा न कस्य रतये मदनाभिरामा
 कस्यामृतं न धनयौवनकेलिवैन्ध्याः ।*

सर्वात्मना विषयसंगम एव कस्तु
 भृङ्गोत्तरङ्गकरिकर्णविशाललोलः ॥ १४७ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचितायां बृहत्कथायां कथामुखलम्बके सहस्रानीककथा-
 नाम प्रथमो गुच्छः ।

द्वितीयो गुच्छः ।

कुलोचितपदं याते पार्थवंश्ये महीपतौ ।
 प्रियासहायस्तत्पुत्रश्चक्रे शास्त्रोदितां क्रियाम् ॥ १ ॥
 क्रमागतं सुमासाद्य राज्यं वत्सेश्वरस्य च ।
 किरीटिरचिताश्चर्ये जनं चक्रे श्रुत्यादरम् ॥ २ ॥

यौगन्धरायणन्यस्तराज्यचिन्तापरोऽनयत् ।

कालं वीणाविनोदेन स मृगव्यामसेवत ॥ ३ ॥

अत्रान्तरे शृथारम्भं तं ज्ञात्वोज्जयिनीपतिः ।

चक्रे चण्डमहासेनस्तज्जयार्यं ततं मनः ॥ ४ ॥

कन्या वासवदत्तेयं तयोम्यैव मुता मम ।

निसर्गशत्रुर्नार्यो मे मानी स च न याचते ॥ ५ ॥

बहुदुर्गो महाकोशो रक्ताभात्यो विशालधीः ।

उपायैर्नैव शक्योऽसौ मृगयाच्छब्दना विना ॥ ६ ॥

इत्येवं नृपतिर्घ्यात्वा चिरं वत्सेश्वरस्थले ।

सुष्टाव दुर्गमुद्यानं गत्वा पुष्पकरण्डकम् ॥ ७ ॥

इच्छासिद्धिवरं प्राप्य मगवत्यास्ततो नृपः ।

विविच्य धीमान्मुचिरं बुधदेवेन भग्निरा ॥ ८ ॥

बध्नाति कुञ्जरान्नित्यं वीणानादहतान्वने ।

ग्राह्यः स क्रूरनागेन विधायेति पियं पुरः ॥ ९ ॥

दिदेश दूतं कृतकप्रणयोपायनैः सह ।

वत्सेश्वराय संदेशमैष्यधाञ्च दृढाशयः ॥ १० ॥

स्वप्रकाशश्रिया स्फारमिन्दोरिव कलानिधेः ।

मानसोद्भासिनियते प्रमृता कीर्तिकौमुदी ॥ ११ ॥

पुत्री मे कुलसर्वस्वमियं गान्धर्ववेदिनः ।

वीणायां श्रुतितत्त्वज्ञशिष्यतां तव वाञ्छति ॥ १२ ॥

तदेष्टुज्जयिनीं देव प्रणयाहुहितुर्मम ।

सन्तोऽर्थनामु महतां निषेधं न हि शिक्षिताः ॥ १३ ॥

इत्युक्त्वा प्रेषितो दूतः कौशाम्बीं त्वरितो ययौ ।

तत्रोदयनमासाद्य यथादिष्टं न्यवेदयत् ॥ १४ ॥

१. 'वाचस्पतिः' ख. २. 'स्व' ख. ३. 'मिलदा' ख. ४. 'प्रस्तुता' ख. ५. 'वद-
स्तुमदिनीमतां देव प्रणयतस्तव' ख.

वीणां वासवदत्तौसी ज्ञासत्यम्येत्य मत्पुरीम् ।
 शिष्यो गुरुगृहं याति न हि शिष्यगृहं गुरुः ॥ १५ ॥
 इति प्रतीपसंदेशं प्राप्य दूते गते नृपः ।
 यौगन्धरायणो मन्त्री चुक्रोपावन्तिममुजे ॥ १६ ॥
 स प्राह मृकुटीधूमव्यक्तकोपानलाकुलः ।
 यौगन्धरायणो वीरः संरम्भाकम्पिकुण्डलः ॥ १७ ॥
 पश्य राजपक्षोर्द्वेपं संमोहाच्चातचेतसः ।
 अस्मदाहानसंदेशो निष्कम्पस्य प्रगल्भता ॥ १८ ॥
 बध्नाहं सानुबन्धं तं मित्याप्रणयवादिनम् ।
 यास्यामि कोपजलधेः पारं सेना विधीयताम् ॥ १९ ॥
 शुत्वेत्याह महामन्त्री राजन्सदृशमुच्यते ।
 अवज्ञामन्यरा वाचो न सहन्ते मनस्विनः ॥ २० ॥
 स्नाच्छन्यं मुखसक्तेन रतिपेशलतेजसा ।
 देव त्वया स्वयं नीतः प्रतापो दिक्षु शीतताम् ॥ २१ ॥
 यवन्तं मृगयासक्तं विज्ञायाङ्कुरितानयम् ।
 मन्येऽहं प्रतिसामन्तः किञ्चिदुद्यः हृतं शिरः ॥ २२ ॥
 प्रणयेनैव ललना विनयेनैव कीर्तयः ।
 नरनाथ विनश्यन्ति कुनयेन नृपश्रियः ॥ २३ ॥
 महेन्द्रवर्मणो नम्रा जयसेनयुतो नृप ।
 चण्डीवराहमहासेनः स चण्डार्हानृपोऽभवत् ॥ २४ ॥
 राजा चण्डमहासेनः स विजेतुं न शक्वते ।
 यत्नैर्ददौ स्वयं देवी कृपाणं विन्यवासिनी ॥ २५ ॥
 नडागिरिगिरीन्द्रायो गजेन्द्रस्तस्य विद्यते ।
 मन्ये यस्य मैदामोर्द्विमुख्यं यान्ति दिग्दिपाः ॥ २६ ॥

१. 'तेयं' ख. २. 'ज्ञानमायातु मे पुरीम्' ख. ३. 'धीरः' ख. ४. 'तस्य' ख.
 ५. 'चण्डीवराह' ख. ६. 'धे' ख. ७. 'स' क.

मृगयानिर्गतो हत्वा स दैत्यं क्रोडरूपिणम् ।
 अङ्गारकाख्यं पाताले ततः प्राप तदात्मजाम् ॥ २७ ॥
 तामङ्गारवतीं प्राप्य रूपलवण्यशालिनीम् ।
 गोपालपालकौ पुत्रौ तस्यां प्राप सुतां तथा ॥ २८ ॥
 पुत्री वासवदत्तास्या स्वप्ने वासवसूचिता ।
 श्रूयते तनयो मावी यस्यां विद्याधरेश्वरः ॥ २९ ॥
 यौगन्धरायणस्येति श्रुत्वा राजमुतां नृपः ।
 प्रदध्यौ मनसा हृष्टः सरो हि ज्ञानलोचनः ॥ ३० ॥
 अत्रान्तरे प्रतिवचो दूतादाकर्ण्य निःस्पृहम् ।
 ध्यायंश्चण्डमहासेनः किमपि व्याकुलोऽभवत् ॥ ३१ ॥
 व्याधैरम्भःकृतपदं कृत्वा मग्नं महागजम् ।
 विन्ध्याटव्यां ससर्जाशु सशैलमिव जङ्गमम् ॥ ३२ ॥
 तं विलासालसगतं विलोलश्रवणार्नेनम् ।
 व्याधैः सुरगजाकारं विवेदोदयनो नृपः ॥ ३३ ॥
 दृष्ट्वा तं तुरगप्रायं सैन्यं कृत्वाटवीमुखे ।
 गजेन्द्रबन्धकुशलो विवेशैको महद्वनम् ॥ ३४ ॥
 तत्रापदयन्महानागैर्महंकारमिवोन्नतम् ।
 संसारमिव निःसारमैश्वर्यमिव चञ्चलम् ॥ ३५ ॥
 अशीलमिव दुःखान्तं कुमन्त्रमिव निष्फलम् ।
 स्त्रीचित्तमिव दुर्लक्ष्यमज्ञानमिव मोहदम् ॥ ३६ ॥
 अधर्ममिव नायाद्यं मनोरथमिवायनम् ।
 चेष्टारागमिवासत्यमनघ्नमिव हारिणम् ॥ ३७ ॥
 दुर्बुद्धिमिव दुःसाध्यं निरङ्कुशमिवेश्वरम् ।
 परद्रोहमिवामद्रमदानं लोभसन्निभम् ॥ ३८ ॥

१. 'वपुःलोच' इ. २. 'मोघैरन्. इत्याद्यं चण्डो यन्महागजम्' ए. ३. 'न्त'
 ए. ४. 'मिव' ए. ५. 'नं पिश्यामहमिकेतमम्' ए.

कूटकुञ्जरमालोक्त्य वीणामधुरगीतिभिः ।
 स जिघृक्षुर्मुधा तस्थौ सेवामिरिव दुर्वनम् ॥ ३९ ॥
 क्व यत्रकृत्रिमो हस्ती वीणया क्व च तद्ग्रहः ।
 प्रायेण व्यसनासक्तिर्मोहाय महत्तमपि ॥ ४० ॥
 तस्मिन्धोषवतीव्यग्रे योधाः कुञ्जरनिर्गताः ।
 अभ्याययुः सुसंरब्धाः सहसा तं जिघृक्षवः ॥ ४१ ॥
 स तानशङ्कितो दृष्ट्वा धैर्यनिष्कम्पमानसः ।
 मण्डलोत्तालचरणो जघान सुमदानुरणे ॥ ४२ ॥
 हतशेषैः सहाम्येत्य महाकालवरोर्जितः ।
 एको वीरवरः पञ्चाज्जग्राह छत्रना नृपम् ॥ ४३ ॥
 तच्छ्रुत्वा स्वयमेत्याह पुनरुज्जयिनीपतिः ।
 यत्तेश्वरं समासाद्य स विवेष निजां पुरिम् ॥ ४४ ॥
 पौरैरभ्यर्धितोऽभ्येत्य स क्रूरविजयां नृपः ।
 लज्जया मार्दवं प्राप विरराम च तद्गयात् ॥ ४५ ॥
 ततः प्रणम्य वत्तेशं सह पौरैर्व्यजिज्ञपत् ।
 मान्योऽसि मम राजेन्द्र न हि मे किल्बिषं त्वयि ॥ ४६ ॥
 ह्युत्त्वा तनयामस्मै न्यवेदयदमन्दयीः ।
 वीणागेयकलाज्ञाने शिष्येयं भवतामिति ॥ ४७ ॥
 सां ददर्श ततो राजा नीलनीरजलोचनाम् ।
 शृङ्गारमार्स्ताघूतसराब्जवेल्हरीमिव ॥ ४८ ॥
 अलतावीचिरचनां हारडिण्डीरपाण्डुराम् ।
 छत्रग्रहां च मानामिनिर्वापणनदीमिव ॥ ४९ ॥
 दधतीं त्रिवलीकान्तिवर्णालीलोमवहरीम् ।
 हारहंससमुत्सृष्टां सेवाललतिकामिव ॥ ५० ॥
 शोणावरां ससिन्दूरकुचकुम्भाभिरागिणीम् ।
 सितांशुचामरोदारां कन्दर्पकरिणीमिव ॥ ५१ ॥

विलोक्य राजतनयां स कम्पतरलोऽभवत् ।
 कान्तिकल्लोलिनीकूले शशाङ्क इव त्रिम्बितः ॥ ५२ ॥
 राजपुत्री तमालोक्य लज्जानतमुखी बभौ ।
 मेखलारत्नकिरणैर्धृतैर्वोर्ध्वविकाशिभिः ॥ ५३ ॥
 स्वेदवारिपरामृष्टकपोलगुरुरपत्रिका ।
 चक्रम्पे कैरुणार्द्रेण साहतेव मनोभुवा ॥ ५४ ॥
 प्रेमप्रणयशालिन्या सेव्यमानस्तया नृपः ।
 राज्यस्थितिं विससार सुखयेवामरीकृतः ॥ ५५ ॥
 श्रुत्युत्कर्षापकर्षेण स्वैः स्नाननिपातिभिः ।
 मूर्च्छनाव्यजनोदारतालच्छिन्नायतिक्रमैः ॥ ५६ ॥
 निर्विशेषं प्रियतमा ततस्तरललोचना ।
 प्राचीप्यं प्राप वीणायामवन्तीनृपतेः सुता ॥ ५७ ॥
 अत्रान्तरे तथाभूतं कृत्वा यत्सनरेश्वरम् ।
 संमम्य सेनापतिना सह पौरैश्च दुःखितः ॥ ५८ ॥
 यौगन्धरायणो धीमान्निर्मयौ योगकोविदः ।
 विपद्गल्लीकुठारो हि सत्सहायसमागमः ॥ ५९ ॥
 ब्रजन्विमध्यादवीं प्राप्य त्वैरितस्तरमालिनीम् ।
 झुवत्कपिकुलालोलवासहिन्तालपल्लवाम् ॥ ६० ॥
 शल्लकीकवलोद्गारिकरकुञ्जरसंकुलाम् ।
 जृम्भमाणमहासिंहदं भ्रांशुवलयोज्ज्वलाम् ॥ ६१ ॥
 तामतीत्याचलोपान्ते पल्लीपतिमुदारधीः ।
 पुलिन्दकाभिषं प्राप यत्सन्तःसुतः पथि ॥ ६२ ॥
 मुहदं यत्मराजस्य तं सर्वशवरेश्वरम् ।
 सहायः कायशोभे त्वमित्यामक्य ययौ रहः ॥ ६३ ॥
 दिनेर्दशमिराप्ताय योगेनोज्जयिनीं ततः ।
 मदाभयं मदावाङ्मनशानमवसन्निधि ॥ ६४ ॥

कपालशकलाकीर्णं चटत्करचितानलम् ।
 वेतालोत्तालकङ्कालकेशिकोलाहलाकुलम् ॥ ६५ ॥
 तत्र योगेश्वराख्येन मित्रतां ब्रह्मरक्षसा ।
 प्राप्य रूपपरावृत्तिं योगं लेभे महामतिः ॥ ६६ ॥
 क्षणाद्व्यूहं सखाटः पञ्चबूढो महाहनुः ।
 लम्बोदरस्तनुग्रीवः ककुदी जरसादितः ॥ ६७ ॥
 वसन्तः सोऽपि तेनैव नीतः क्षिप्रं विरूपताम् ।
 बभूव विकटाकरो हस्त्यायतनभात्मनः ॥ ६८ ॥
 योगन्धरायणः प्राप्य राजमार्गं स्खलद्गतिः ।
 गान्धर्वसन्ध्यावस्तृप्तजनमहासयन् ॥ ६९ ॥
 सवालकरतालाङ्गफेलीकलकलाकुलः ।
 कन्यकान्तःपुरोपान्ते नितान्तोन्मत्तकोऽभवत् ॥ ७० ॥
 कौतुकात्तत्र नारीमिनीतो गान्धर्वशालिकाम् ।
 कन्यागुरुं ददर्शाद्य नृपं पुनरिवार्जुनम् ॥ ७१ ॥
 सुसंयतं समालोक्य रुरोद विगतज्वरम् ।
 रदो युक्तं समामाप्य योगेनान्तर्हितोऽभवत् ॥ ७२ ॥
 वत्सेश्वरोऽपि संप्राप्य योगं योगन्धरायणात् ।
 ददर्श मग्नसंकेतविपरीतं वसन्तकम् ॥ ७३ ॥
 तेन मग्निविदग्धेन रञ्जिता राजकन्यका ।
 जहर्प श्रीयुताः सर्वं विपरीतेषु सादराः ॥ ७४ ॥
 धुर्यः कथाविदामस्मि ब्रूवाणमिति तां कथाम् ।
 पप्रच्छ राजतनयाष्टोऽथाह वसन्तकः ॥ ७५ ॥
 मधुरेत्यस्मिन्न नगरी यदग्रे न गरीयसी ।
 सापि शत्रुपुरी रम्या स्वकिमणीव हरिप्रिया ॥ ७६ ॥
 पारकीर्तिमुपाधौतरत्नप्राजिष्णुमन्दिरे ।
 श्वेतद्वीपधिषा यत्र साक्षात्सनिहितो हरिः ॥ ७७ ॥

वसूव रूपिणी नाम तत्र वारविलासिनी ।
 वशीकरणचूर्णेन निर्मितेव मनोमुवा ॥ ७८ ॥
 सुरालयगतापश्यत्सा कदाचिन्मनोरमम् ।
 द्विजं साङ्गमिवानङ्गं साकारमिव यौवनम् ॥ ७९ ॥
 दृष्टकामुकलोकापि तं विलोक्य जहर्ष सा ।
 करोति कं न वक्ष्णं सामिलापं प्रियो जनः ॥ ८० ॥
 ततस्तं लोहजङ्घारूपं भूत्वा प्रसममर्थिनम् ।
 निजं निनाय सा गेहं रत्नांशुकपिशोदरम् ॥ ८१ ॥
 तेन बालकुरङ्गाक्षी रममाणा धनस्तनी ।
 ललामलचिरं तत्र निषिद्धाशेषकामुका ॥ ८२ ॥
 तनो मकरदंष्ट्रास्त्वा जननी हरिणीदृशः ।
 अनेकक्रामुकच्छिन्ननासा श्रवणमीपण्या ॥ ८३ ॥
 सदा कलहनिर्लतनिःशेषकचसंचया ।
 अतीतकामुकप्रातकेनाघातव्रणान्तिका ॥ ८४ ॥
 भयदा कालरात्रीव वज्रपारेव कुट्टिनी ।
 घोरा चित्तामिमालेव कङ्कालीव नराशिनी ॥ ८५ ॥
 विलोक्य निर्धनं पुण्या बहभं शुन्निरसितम् ।
 कपालमांसरसिका राक्षसी साऽववीक्षुताम् ॥ ८६ ॥
 अहो विमृतिरहितं पुत्रि गेहं न राजते ।
 शुष्कवीथीव वेद्या हि पूर्यन्ते लोकयात्रया ॥ ८७ ॥
 पशुर्दारिद्र्यसाहाय्यं सतीनामेव शोभते ।
 अभ्यासं तु धनव्रतैः सदा नवनवोत्सवः ॥ ८८ ॥
 अम्यामरहिता विद्या निरुद्योगां नृपधियः ।
 धेपयोवाध रगिष्यो हाम्यायतनमङ्गने ॥ ८९ ॥

१. 'न' स्यात् पाठिष्वं वपुः' एव. २. 'दंष्ट्रा' एव. ३. 'विष्णाद्विद्या' ४.
 ५. 'अभ्यास' एव.

इदं हि यौवनं बाले सरङ्गजैवगतस्म ।
 अस्मिन्मयाते वृद्धानां को ददाति कपदिक्कम् ॥ ९० ॥
 दृष्टिच्छटेव तीक्ष्णा तां कुण्डिला मूलतेव वा ।
 सप्तसलीव कठिना वेद्या सर्वत्रहारिणी ॥ ९१ ॥
 निष्कामाः कामचारिण्यो भोगिन्यो न कुलादराः ।
 नित्योपहारहारिण्यो नृमन्ते वास्योपिताः ॥ ९२ ॥
 विचित्रमायाबहुला बन्धुकी मोहिनी नृणां ।
 अस्माद्विधा हि सरले संसृतावपि संसृतिः ॥ ९३ ॥
 धनेनाल्योपचारेण हरन्ति द्रविणं बहु ।
 विदग्धपण्यलल्लाः कर्णोदकमिवाम्भसा ॥ ९४ ॥
 स्तितं नृत्यं प्ररुदितं रागो रूदिरुदात्ता ।
 सप्तदृष्टमिवादीपमसत्यं वारयोपिताम् ॥ ९५ ॥
 कामुके नूतनासङ्गगाढालिङ्गनकावरे ।
 गणिका गेहगणनां करोति ध्यानमासिता ॥ ९६ ॥
 धनाय यत्नेन परा भव पुत्रि महीसुजाम् ।
 वेद्यानां चाधेदीनानां तृणेनापि न विक्रयः ॥ ९७ ॥
 पठन्ति सङ्गधारामु विश्रन्ति मकराङ्गुस्म ।
 किं न कुर्वन्ति मुमग्ने कष्टमर्थार्थिनो नराः ॥ ९८ ॥
 पुत्रि धन्या वयं यासां संभोगेन धनार्जेनम् ।
 करं शिरो वा विक्रीय धनं मुग्ने न लभ्यते ॥ ९९ ॥
 त्यजन्तं निर्धनं विप्रं मा रूपवशात्ता भव ।
 न हि दास्यन्ते हस्ती करोति सनरक्रियाम् ॥ १०० ॥
 इति मानुर्वचः श्रुत्वा रूपिणी कोपकम्पिता ।
 मेवं वादीः पुनरिति प्रोवाच दृढरागिणी ॥ १०१ ॥

गूढं मकरदंष्ट्राय राजपुत्रं स्वमन्दिरे ।
 निधाय निर्धनं श्रद्धा निरास सपदि द्विजम् ॥ १०२ ॥
 स निरस्तोऽर्धचन्द्रेण ताडितो लगुडैर्भृशम् ।
 क्षिप्तश्च कर्दमे प्रायाददवीं रवितापितः ॥ १०३ ॥
 रागावसानसंतापदुःखदैन्यग्रमाकुलः ।
 छायाथीं शुष्ककरिणः प्रविवेश कलेवरम् ॥ १०४ ॥
 अरण्ये जम्बुकत्यक्ते कीटनिष्क्रुषितान्तरे ।
 स निद्रामाययौ तस्मिन्नन्ध्रवातगतागतैः ॥ १०५ ॥
 अत्रान्तरे समुत्तस्यौ मेघस्तापिच्छसच्छविः ।
 यदृष्टिपूर्वैः ककुभो बभूवुर्जलसंकुलाः ॥ १०६ ॥
 महौघेन हतः सोऽथ सरिद्वारिगतो गजः ।
 समुद्रमाससादाशु तरङ्गालिङ्गितो मुहुः ॥ १०७ ॥
 ताक्ष्यवंशस्ततः पक्षी तमादायामिषाशया ।
 भीतस्तत्याज लङ्कायां दृष्ट्वा तं निर्गतं नरम् ॥ १०८ ॥
 निःसृतोऽथ गजाद्विप्रः शनैः प्राप विमीषणम् ।
 अवाप्यातिथिसत्कारं तत्र राघवगौरवात् ॥ १०९ ॥
 पृष्टो विमीषणेनार्थं प्राहाहं मथुराश्रयः ।
 विसृष्टो विष्णुना साक्षाद्रत्नार्थं भवदन्तिकम् ॥ ११० ॥
 विमीषणोऽपि तच्छ्रुत्वा विष्णोर्देयमुपायनम् ।
 गृह्यचक्रगदारत्नमित्युक्त्वासौ ददौ विभुः ॥ १११ ॥
 तदाज्ञयेव सौवैर्णवाहनं प्राप्य पक्षिणम् ।
 रत्नानि च महाह्राणि प्रययौ मथुरां क्षणात् ॥ ११२ ॥
 तत्र दिव्याम्बरधरः सग्री रुचिरकुण्डलः ।
 उल्लसत्तमोऽङ्गो रत्नैः रूपिण्या समेतः पुनः ॥ ११३ ॥
 रूपिणी विष्णुना साक्षात्कामिताहमिति स्फुटम् ।
 उवाच लक्ष्मीसौम्याम्यमदातरत्नमानसा ॥ ११४ ॥

१. 'तो' ख. २. 'दीप्ति' ख. ३. 'प्य तन्मात्र' ख. ४. 'सौ' ख. ५. 'य' ख.
 ६. 'गर्द.परणया' ख.

नो वक्ति द्विज संतापे देवताहमिति स्थिता ।
 कथंचिज्जननीं वक्ति सा पदान्तरिताकृतिः ॥ ११५ ॥
 एवं प्रतिनिशं तस्यां संगते देवविग्रहे ।
 यत्नान्मकरदंष्ट्रा तां यत्रैकान्ते ज्यलोकयत् ॥ ११६ ॥
 ततः प्रणम्य तनयां रूपिणीं सा व्यजिज्ञपत् ।
 सशरीरा दिवंगन्तुं... तेनाहमर्थये ॥ ११७ ॥
 इति मातुर्गिरा ग्राह सा प्रियं विष्णुविग्रहम् ।
 माता मे त्वत्प्रसादेन स्वर्गं गन्तुं समीहते ॥ ११८ ॥
 तच्छ्रुत्वा केशवाकारस्तथेत्युक्त्वा दिदेश ताम् ।
 लिप्तार्धा पञ्चचूला च प्रातः कार्येत्यनारदात् ॥ ११९ ॥
 तदादेशादयं कृता कुट्टिनी पञ्चचूलिका ।
 सिन्दूरलितैककुचा मसीन्यस्तत्रिपुण्ड्रिका ॥ १२० ॥
 एकादश्यां संनिधिर्मे माधुरेऽसिन्धुरालये ।
 उक्त्वेति नम्रा सहसा निनाय स्वगवाहनम् ॥ १२१ ॥
 ततस्तां तोरणस्तम्भे निधायैकादशीवत्ते ।
 उवाच निशि देवाग्रे संगतान्ब्राह्मणांल्लघु ॥ १२२ ॥
 मारी पतिष्यति क्षिप्रमद्य वो मीपणाकृतिः ।
 रक्षा विधीयतां काचिदित्युक्त्वा लक्षतां ययौ ॥ १२३ ॥
 आकाशभाषितं श्रुत्वा ते द्विजालासविह्वलाः ।
 श्रान्तिस्तस्मिन्मग्नप्राद्वस्तोत्रैश्चकुर्महारवम् ॥ १२४ ॥
 कुट्टिन्मपि विरन्यस्ता तत्र शीतानिलादिता ।
 हा हा पतामीति मयाद्विरराव खरस्वरम् ॥ १२५ ॥
 तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणा भीता मा पतेत्यार्तवादिनः ।
 मारि मारि नमस्तुभ्यं त्वं त्राणमिति चुकुशुः ॥ १२६ ॥
 सात्रवीत्रिपताग्येषा कम्पमाना पुनः पुनः ।
 मा मा पतेति चात्यन्तर्गीताः प्राहुर्द्विजातयः ॥ १२७ ॥

पतामि मा पतित्येवं तस्यास्तेषां च सा निश ।
 मय्यसौ कन्दतामेव शतसंक्सरोपमा ॥ १२८ ॥
 सद्द्विवालनगरे संप्राप्ते कौतुकाकुले ।
 प्रातर्दूरात्परिज्ञात्वा द्विजेनैकेन कुट्टिनी ॥ १२९ ॥
 लोहजङ्घेन चरितं हस्त्यमेतदिति द्विजाः ।
 विज्ञाय कुट्टिनीं वरे प्रसिद्धं ददृशुश्च तम् ॥ १३० ॥
 स्वरूपं लोहजङ्घोऽपि विज्ञाय बहुस्तदः ।
 रूपिणीं भूपवित्वा च धृतिं स प्राप पुष्कलाम् ॥ १३१ ॥
 इति लोहजङ्घाख्यायिका ॥ १ ॥

श्रुत्वेति राजतनया कथामद्भुतशालिनीम् ।
 जमन्दानन्दनिस्पन्दयौतघौतमुखी ययौ ॥ १३२ ॥
 अथ राजानमभ्येत्य सैरं योगन्परायणः ।
 विमुक्त्युपायं समञ्च्य योगं दत्त्वा ययौ पुनः ॥ १३३ ॥
 प्ररुदग्गदविश्रम्भां प्रेमवन्धवशीकृताम् ।
 राजपुत्रीं नृपो ज्ञात्वा योगस्फाटिकबन्धनः ॥ १३४ ॥
 भद्रां भद्रवतीं नाम करिणीं लक्ष्मणोचिताम् ।
 आद्यायापाढकं कृत्वा दानैर्हस्तिपकं वशे ॥ १३५ ॥
 यसन्तकेन सहितः सार्धं वासवदत्तया ।
 तस्मिन्प्रेमविश्वासमुवा काञ्चनमाढया ॥ १३६ ॥
 निशि सर्वासुधोषेतो हत्वा नगररक्षिणः ।
 ययौ करेणुकावेगपृतहारतरङ्गितः ॥ १३७ ॥
 प्रयाते वत्सन्पत्नी यमूवोज्जयिनीपतिः ।
 मिहस्तमस्तमुमद्यतकोलाहलः पुरे ॥ १३८ ॥
 नन्नागिरिं समारुह्य पालकः कुपितोऽथ तम् ।
 रैष्ठेयोऽभिगम्यारैकस्मज्जात्वावन्तिपोऽब्रवीत् ॥ १३९ ॥

१. 'पदार्थमयः' इति. २. 'वत्सवत्' इति. ३. 'ह' इति. ४. 'मित' इति.
 ५. 'वत्सवत्' इति.

कोपनः पालकः शूरो मान्यो वत्सेश्वरश्च नः ।
 गच्छ गोपाल तद्युद्धं निवारय जैवादिति ॥ १४० ॥
 पितुर्नियोगादास्त्र मुग्धीवास्त्रं तुरङ्गमम् ।
 गोपालः प्रययौ तूष्णं ततो आतृनिवर्तने ॥ १४१ ॥
 वत्सेश्वरोऽपि निविटध्वान्तलीने निग्रामुखे ।
 वज्रचराज आजिष्णुतारहारांशुमूचितः ॥ १४२ ॥
 अथोज्जगाम ललनाकपोलललितयुतिः ।
 रजनीराजतनयाकर्पूरतिलकः शशी ॥ १४३ ॥
 मुष्टिग्राहे निशाकान्तकान्तिपूरे प्रसर्पति ।
 अकस्मादाननिर्घोषमज्यमानेव मूरभृत् ॥ १४४ ॥
 कल्पान्तोज्ज्वान्तचण्डीशलउड्डुमरुकोद्भवम् ।
 आपाटकः समाकर्ण्य शब्दं राजानमभ्यधात् ॥ १४५ ॥
 एष देव महामेघघोरघोषो नडागिरिः* ।
 शब्दो रुणद्धि विध्व..... ॥ १४६ ॥
 उक्त्वेति ध्रिस्ते तस्मिन्नदृश्यत नडागिरिः ।
 मेघं संसर्गमलिनः सुरद्विष इवापरः ॥ १४७ ॥
 तदाज्ञया विना नैव मम सा स्वपदस्थितिः ।
 इति बागस्त्यमन्वेष्टुमायातो विन्ध्यमूषरः ॥ १४८ ॥
 सिन्दूरपूरारुणितं घण्टाभ्यां तद्वपुर्वभी ।
 उदयास्तसिताकेंदुबिम्बं सांध्यमिवाम्बरम् ॥ १४९ ॥
 फरेणुदन्तमुसलच्छायैमूत्रेण शोभितः ।
 सेवार्हन्ते विशेषेण मा पीटय महीमिति ॥ १५० ॥
 मी कदाविद्धि साकारकरं तारापतिं हरेत् ।
 इति नक्षत्रमालामिः सेत्यमान इवामितः ॥ १५१ ॥

. 'ममाम् च' स. २. 'वह' स. ३. 'द्वजनि' म. ४. 'रिः' स.
 गद्ये' म. ५. 'सुरेण से' स. ७. 'स' स.

स पालकेन कृतिना युद्धसज्जेन कुञ्जरः ।
 प्रेरितोऽपि विकोपोऽमृद्दृष्ट्वा च भगिनीं पुरः ॥ १५२ ॥
 आकर्णाञ्चितकोदण्डमण्डलोच्चण्टसायकः ।
 आलोक्य भगिनीमग्रे विरराम च पालकः ॥ १५३ ॥
 राजापि निर्दयोद्धूतघन्वा धैर्यनिधिर्धुधि ।
 चिच्छेद पालकस्यापि चक्रतोमरकार्मुकम् ॥ १५४ ॥
 खड्गखण्डैर्निपतितैस्तस्य संग्राममूरमूत् ।
 जयश्रीरतिशयेव कीर्णकर्णोत्पलच्छदैः ॥ १५५ ॥
 अत्रान्तरे समभ्येत्य गोपालो जवनैर्हयैः ।
 निनाय स्वपुरीमेव पालकं पितुराज्ञया ॥ १५६ ॥
 निवृत्ते राजपुत्रेऽथ नलागिरिवलोत्कटे ।
 द्रुतं याति च वत्सेशे प्रययौ यामिनीं शनैः ॥ १५७ ॥
 अन्येघुरथ मध्याहे प्रचण्डकिरणे रवौ ।
 नृष्णार्ता करिणीत्याह नृपमापाठको बने ॥ १५८ ॥
 सतस्तडागमासाद्य पीत्वा भद्रवतीजलम् ।
 विषदूषितमाकण्ठमवतीर्य तृपापतत् ॥ १५९ ॥
 अहं मायावती नाम विद्याधरवधूर्नृप ।
 त्वत्सेवया मुक्तशपा भविष्याम्युपकारिणी ॥ १६० ॥
 भाविनस्तव पुत्रस्य सर्वविद्याधरप्रभोः ।
 इति पद्मत्वमापन्ना प्राह भद्रवती दिवः ॥ १६१ ॥
 ततो वसन्तकेनाशु समाहूय पुलिन्दकम् ।
 तत्पुरीं प्रययौ राजा हत्वा दस्युगणं पथि ॥ १६२ ॥
 यौगन्धरायणेनाथ निजपेशवता नृपः ।
 ननन्द संगतमैस्य समं वासवदत्तया ॥ १६३ ॥

अत्राम्येति समादाय रत्नाश्वस्कुञ्जरान् ।
 गोपालकस्त्वद्विवाहे विसृष्टोऽवन्तिमूमुजा ॥ १६४ ॥
 इति धान्यवणिग्भाक्यं ज्ञात्वा राजा प्रियाससः ।
 विसृज्य दूतान्स्रपुरीं स्वसैन्याय व्यलम्बत ॥ १६५ ॥
 मनोविनोदनं किञ्चित्कथयेत्यथ सादरम् ।
 विवाहोत्सुकया देव्या पृष्टः प्राह वसन्तकः ॥ १६६ ॥
 अमवत्ताग्रलिप्तायां धनगुप्तमिधो वणिक् ।
 ब्राह्मणान्पुत्रकामोऽसावपृच्छत्तेऽप्यथोचिरे ॥ १६७ ॥
 एकपुत्रः पुरा राजा सोमको यागपावके ।
 जन्तूनामश्रुतं हुत्वा पुत्राणां शतमाप्तवान् ॥ १६८ ॥
 एवं श्रुत्वा स पुत्रेष्टा पुत्रं प्राप कुलोचितम् ।
 गुहसेनामिधं यस्य कन्दर्पो लज्जते पुरः ॥ १६९ ॥
 धनगुप्तोऽथ कालेन समुतो रत्नविक्रयी ।
 समुद्रं यानपात्रेण प्रययौ धनदोषमः ॥ १७० ॥
 धेनिनो धर्मगुप्तस्य तत्र वर्धरवासिनः ।
 सोऽयाचत सपुत्राय कन्यां लावण्यशालिनीम् ॥ १७१ ॥
 दूरे देदो प्रियापत्यः पिता तां न ददौ मिया ।
 वणिकपुत्रं समालोक्य सा त्वंभूदभिलाषिणी ।
 सस्यावेदितवृत्तान्ता तद्देहमगमत्सयम् ॥ १७२ ॥
 देवसितामिधानां तामादाय स्वयमागनाम् ।
 ताम्रलिप्तां समम्येत्य पुत्रस्योद्वाहमादधे ॥ १७३ ॥
 गुहसेनमया तत्र बालसारङ्गनेत्रया ।
 संगतोऽनङ्गमुनयः सुधासिक्त इवामवत् ॥ १७४ ॥
 कालेन त्रिदिवं याते धनगुप्ते स तत्सदे ।
 प्रतिष्ठां प्राप्य यात्रायां चक्रे कन्धुगिरा चियम् ॥ १७५ ॥

उद्यतः ॥ ततो गन्तुं समुद्रं घनवृद्धये ।
 विवेश बलमां द्रष्टुं वियोगभयकातराम् ॥ १७६ ॥
 दोलाविलोलहृदयस्तां पपौ सुचिरं दृशा ।
 रागो निर्भरतामेति विरहो हि भविष्यति ॥ १७७ ॥
 प्रियं मुदयितं ज्ञात्वा सावदत्साज्जनाश्रुभिः ।
 प्रौढा प्रावृडिव श्यामा श्यामीकृतपयोधरा ॥ १७८ ॥
 ध्रुवं सौभाग्यैर्निघयस्त्वां यौवनसुरद्रुमम् ।
 दृढबन्धं करिष्यन्ति दिगन्तेषु भृगीदृशः ॥ १७९ ॥
 इति प्रणयिनीवाक्यं स निशम्य सराकुलः ।
 स्वप्ने ददर्श वरदं समार्यं पार्वतीपतिम् ॥ १८० ॥
 वियोगे रतिमन्यत्र युवयोर्यः प्रयास्यति ।
 मेलनिमेप्यति मद्दत्तं हस्ते तस्येदमम्बुजम् ॥ १८१ ॥
 इति रक्ताम्बुजयुगं स्वप्ने ताभ्यां ददौ शिवः ।
 तदादाय प्रवृद्धैव दम्पती तौ ननन्दतुः ॥ १८२ ॥
 ततो यातः भ्रष्टस्तेऽहि दिगन्तं सचिवैः सह ।
 कटाक्षद्वीपमासाद्य तस्यौ बहुलविक्रयः ॥ १८३ ॥
 वणिग्भिः संगतस्तत्र तत्रत्यैर्मदमोहितैः ।
 पृष्टो रक्ताम्बुजं दृष्ट्वा तत्कथामब्रवीच्च सः ॥ १८४ ॥
 युवानस्तत्र तां ज्ञात्वा प्रियां देवसिताभिधाम् ।
 गृदाश्चे ताग्रलिप्तायां ययुस्ते संगमाशया ॥ १८५ ॥
 तद्दृष्ट्वा न्वेयणपरास्ते तु आन्त्वासिलां पुरीम् ।
 तपमीं विजने प्रापुर्वृद्धां योगकरण्टिकाम् ॥ १८६ ॥
 तथा संजातविश्वासा निजागमनकारणम् ।
 निवेद्य तस्य कामार्ताधिरं तन्पुस्तदाश्रमे ॥ १८७ ॥

१. 'दियां' 'द्विन' एत. २. 'मत्रयैस्त्वा' 'मन्दयैषु' एत. ३. 'दं' एत. ४. 'सोप
 १. ५. 'दुदं' एत.

देवलिताभिर्नां तेषां साहाय्ये प्रतिपन्नघाः ।
 मन्त्रप्रयोगकुशला तानुवाच हि तापसां ॥ १८८ ॥
 गुह्येनस्य दयितां तामहं भवतां वशे ।
 करिष्याम्यस्मि मे शिष्या सर्वविज्ञानशालिनी ॥ १८९ ॥
 सा हि सिद्धिकरी नाम पुरा देवान्तरागतम् ।
 मन्त्रज्ञा वशगं चक्रे षण्णिजं पालितामिषम् ॥ १९० ॥
 तत्त्व मूरिधनं हत्वा मणिकाञ्चनमौक्तिकम् ।
 प्रययौ छेद्ययोगेन सर्वसर्वस्वहारिणी ॥ १९१ ॥
 धनभारान्तां मार्गे हन्तुकामोऽथ भीषणः ।
 दम्भुः श्वपाको विजने शनैस्तुमसार ताम् ॥ १९२ ॥
 क्रूरं यमागन् दृष्ट्वा सा प्रोवाच घनार्थिनम् ।
 भर्त्रा निरस्ता क्रुद्धेन प्राप्ताहं शरणार्थिनी ॥ १९३ ॥
 अस्त्रिद्व्यप्रोधविरटे सज्जीकुरु कृमानिधे ।
 पाशानि, जेषशोकाग्निगान्तये प्रणयादिति ॥ १९४ ॥
 अयत्तोपनतं दृष्ट्वा वराहस्तद्धनं यदु ।
 तूर्णं विषाय वृक्षाम्ने पाशं तामम्यमापत ॥ १९५ ॥
 सज्जीकृतं मया मातः क्षिप्रमास्त्रतामिति ।
 साव्रवीन्मम शिष्यायै दर्शयेत्तद्धनं सखे ॥ १९६ ॥
 इति तद्वचसा मूढो ललम्बे द्रविषाशया ।
 कण्ठे तदुपदेशाय पाशं कृत्वा मुवेष्टितम् ॥ १९७ ॥
 इत्थं विधायतां कण्ठे तूर्णं समिति वैश्रितम् ।
 पादेन सा चक्रेपाशु स च कृष्टोऽभवद्ययुः ॥ १९८ ॥
 श्वपाकमिति हत्वा सा प्रस्वितैकाग्रिनी पयि ।
 पालितानुचरदंष्ट्रा क्रुद्धेद्रनिणहारिणी ॥ १९९ ॥
 सा तान्दृष्ट्वा सनाय्य वृक्षं तस्यै लज्जान्तरे ।
 तन्मध्यादधिरसैकः शनैरगमसाद तान् ॥ २०० ॥

सात्रवीत्सामिलापाहं त्वय्येव सततं विमो ।
 धनं त्वदर्थमेवेदं शपथं कुरु शुभ्य माम् ॥ २०१ ॥
 इत्युक्त्वा वञ्चनं चक्रे निवेश्य दशनेस्ततः ।
 जिह्वां चिच्छेद सा तस्य लल्लल्लेति माषिणः ॥ २०२ ॥
 ततो निपतिते तस्मिन्कर्कशीविनि भूतले ।
 भूतग्रस्तोऽयमित्युक्त्वा शेषास्ते द्रुद्रुर्भयात् ॥ २०३ ॥
 इति तद्वञ्चनावाप्तं धनं मह्यं न्यवेदयत् ।
 सा शिष्या विश्वविश्वासच्छब्देतुर्महाशया ॥ २०४ ॥
 समागतैव सा मन्ये मम साहाय्यकारिणी ।
 देवसिता संगमं वो लीलयैव विधासति ॥ २०५ ॥
 तस्यामित्युक्तवत्यां सा सहसाम्याययौ कुटीम् ।
 शिष्यां सिद्धिकरीं तां च दृष्ट्वा सर्वे ववन्दिरे ॥ २०६ ॥
 ततो विदितवृत्तां तां कृत्वा योगकरण्डिका ।
 शिष्यां देवसितागेहं तयैव सहिता ययौ ॥ २०७ ॥
 गुहसेनगृहं प्राप्य द्वास्पालमुपेत्य सा ।
 कण्ठे जग्राह सोत्कण्ठं कृत्वा चै पटसंग्रहे ॥ २०८ ॥
 त्वं मे जन्मान्तरसुहृन्नेत्राभ्यां विनिवेदितः ।
 इत्युक्त्वा मोदकांलसौ दत्वा तद्वचसाविशत् ॥ २०९ ॥
 गुहसेनजनन्या च पूजिता मध्यमन्दिरम् ।
 प्रविश्य विरहक्षामां प्राप्य देवसितां सतीम् ॥ २१० ॥
 अट्टां भास्करेणापि दृष्ट्वा तां गुप्तमन्दिरे ।
 प्रणतां 'वीक्ष्य चार्दीर्भिरभिनन्द्याथमं ययौ ॥ २११ ॥
 अन्येषुमांसशकलं प्रभूतमरिचं करे ।
 श्रुत्वा तशिष्या प्रययौ पुनर्देवसितान्तिकम् ॥ २१२ ॥

१. 'लल्लल्लेति माषिणः' ख. २. 'र' ए. ३. 'उग्र' ए. ४. 'पटसंग्रहम्' ए.
 ५. 'य' ए. ६. 'विरहासी' ए.

तृप्तां मरिचमांसेन कृत्वा वेश्माग्रगां शुनीम् ।
 पूजितासनपुष्पाद्यैः सशिष्या समुपासत ॥ २१३ ॥
 अथाश्रुवर्षिणीं दृष्ट्वा शुनीं मरिचतापिताम् ।
 स्रोद तापसी तां च सा पप्रच्छ वणिग्बधूः ॥ २१४ ॥
 तापसी प्राह पृष्टाय पुत्री जन्मान्तरे मम ।
 पतिव्रता सपत्नीयं बभूवातिप्रिया शुनी ॥ २१५ ॥
 अहमेषा च विप्रस्य भार्ये देशान्तरस्थिते ।
 लावण्ययौवनोपेते प्राप्ते निर्दिश्यतां पुरा ॥ २१६ ॥
 अहं नयनवोदारवल्लभा सुमगाभवम् ।
 ह्यमासीच्च सततं सती नियमदुर्भगा ॥ २१७ ॥
 मन्यामहे न हि वयं पापीयांसमतः परम् ।
 यः संरुद्धेन्द्रियो मोहात्क्षतघ्नं शोषयेन्मनः ॥ २१८ ॥
 निर्गलेन्द्रियमुक्ता नित्यानन्दोपयोगिनी ।
 अहं योगिपदं प्राप्ता सा सर्वजनकामिनी ॥ २१९ ॥
 ममत्या तु मे सपत्नीयं पुत्रि जातिसरा शुनी ।
 तिर्यग्भावमियं प्राप्ता साध्वी मौनसदृषिता ॥ २२० ॥
 सैषा चिरेण मां दृष्ट्वा रोदिति स्मृतवल्लभा ।
 श्रुत्वैतत्तापसीवाक्यं निनिन्द मनसा सती ॥ २२१ ॥
 किंलिप्यं मानसगतं तस्या द्रष्टुं समुद्यता ।
 साग्ररीचदि धर्मोज्ज्वलं कंचिदानय मे प्रियम् ॥ २२२ ॥
 इति देवसितावाक्यं श्रुत्वा योगकरण्डिका ।
 प्राहाश्रमे मे चत्वारो युवानो वणिजः स्थिताः ॥ २२३ ॥
 सह मोदिष्यसे तैस्त्वमित्युक्त्वा तत्कृते ययुः ।
 देवसिताप्यनुचरीं वमापे कोपकम्पिता ॥ २२४ ॥

भ्रुवं देशान्तरस्थेन मद्भर्त्रा वणिजां पुरः ।
 कथिता मधुदत्तेन मत्कथा पद्मकौतुके ॥ २२५ ॥
 तथैव नूनं वणिजस्तस्मिन्नुत्र चिरस्थिते ।
 मद्दर्थमागतास्तेषां करिष्यामि यथोचितम् ।
 इत्युक्त्वात्मनिमां कृत्वा दासीं निजपदे व्यधात् ॥ २२६ ॥
 ततो वणिजमानीय तापसी रत्नभूषितम् ।
 निशि सिद्धिकरीवेषं ययौ विन्यस्य तद्गृहे ॥ २२७ ॥
 स प्रविश्य निजं रूपमासाद्य स्मरमोहितः ।
 दासीं देवस्मितावेषां ननन्द प्राप्य सुन्दरीम् ॥ २२८ ॥
 ततो घत्स्त्रकोपेतं पीत्वा मधु तदाहृतम् ।
 धमूय सस्तवसनः कान्तः काष्ठोपमाकृतिः ॥ २२९ ॥
 निश्चेष्टं तं ललाटाम्रे गृहीतामरणाम्बरा ।
 औङ्गं कृत्वा स्वपादेन चिक्षिपुः कर्दमे स्त्रियः ॥ २३० ॥
 प्रमाते प्रतिबुद्धोऽथ पट्टिकाच्छादितालिकः ।
 गत्वा परानुवाचाहं हतो दम्स्युगैरिति ॥ २३१ ॥
 इति क्रमेण तेनैव सर्वे ते तत्पदाङ्किताः ।
 स्वदेशं प्रययुर्गूढा निन्दन्तो निजदुष्कृतम् ॥ २३२ ॥
 तेनैव मधुना मत्तां कृत्वा योगकरण्टिकाम् ।
 कर्णेनासाविरहितां तच्छिष्यां च वणिग्बधूः ॥ २३६ ॥
 प्रतस्थे वचसा स्वस्या गुहसेनाश्रितां दिशम् ।
 मा कदाचिन्मम पतिं हन्युस्ते लज्जिता इति ॥ २३४ ॥
 ब्रजन्ती प्राह सा श्वश्रू गत्वा रक्षाम्यहं प्रियम् ।
 शक्तिमत्या यथा पूर्वं परित्रातः पतिर्धिया ॥ २३५ ॥
 मणिमद्रालये पूर्वं निरुद्धो दण्डवासिना ।
 वणिक्सागरदत्ताख्यो जारः सह परस्त्रिया ॥ २३६ ॥

बद्धं विज्ञाय वं चायां तस्य अकिन्ताती स्ती ।
 प्रविश्य पूजाव्याजेन निशि तस्यै सुरालये ॥ २३७ ॥
 तामसाध्वी प्रियां मर्तुर्निजामरणवत्तिता ।
 मालतुल्यां विधायाशु विसर्ज्य हिंसा नञान् ॥ २३८ ॥
 ततः प्रभाते भूषणस्तमां नीत्वा वणिग्जनैः ।
 दृष्टः स्वमायांसहितस्ततो राजा विचारषां ॥ २३९ ॥
 मित्या बद्धोऽप्यमित्युक्त्वा कुपितो दण्डवाप्तिकम् ।
 बन्धेति पुरा तस्या रक्षितः साहसालतिः ॥ २४० ॥
 गत्वाहमपि मर्तारं रक्षामोत्यमिषाय सा ।
 वणिग्वेषाब्धिमुत्तीर्य ददर्श निजवत्तमम् ॥ २४१ ॥
 विधाय पौरुषं वेषं तत्र राजानमेत्य च ।
 व्यजिज्ञपत्तमो पत्युर्दीप्ता ने हरिता इति ॥ २४२ ॥
 गृहाणैतान्तमानस्ये विचिन्त्य सकलं जनम् ।
 इति राज्ञा सनादिष्टांलाजप्राह वैदिन्दरान् ॥ २४३ ॥
 मयाहिताः तपादेन प्रतिज्ञमेति संसदि ।
 तान्मिरपदमुद्धात्य सा प्रत्यक्षनदर्शयत् ॥ २४४ ॥
 ततो विदितवृत्तेन तस्यै दत्ता महीमुजा ।
 वणिजो मोक्षितो दास्यादनेन निजदम्बुभिः ॥ २४५ ॥
 इति भूरि धनं लब्ध्वा गुह्येननवाप्य च ।
 ताम्रलिप्तां सनम्पेत्य सा ननन्द चिरं सती ॥ २४६ ॥
 इति देवलिप्यस्यायिका ॥ २ ॥
 वनन्तकेन कथितं निशन्पेति नृपालका ।
 ननन्द साध्वी चरितेस्तुन्यते च सतीनः ॥ २४७ ॥
 जत्रान्तरे प्रतीहारो नहात्तेननहीपतेः ।
 बलेभरं सनम्पेत्य सनसीनं न्यविज्ञत् ॥ २४८ ॥

देव चण्डमहासेनसमादिष्टः समेप्यति ।

गोपालकस्त्वद्विवाहयोग्यरत्नाश्वसंपदा ॥ २४९ ॥

श्रुत्वेति हृष्टः सेनानीः सज्जीकृतवलाम्बुधिः ।

राजा विवेश कौशाम्बीं कौतुकार्कुलतां गताम् ॥ २५० ॥

अथ गोपालके प्राप्ते प्रवृत्ते च महोत्सवे ।

विवाहवसुधां राजा देव्या सह समाविशत् ॥ २५१ ॥

तयोर्बभौ विवाहश्रीः कुसुमायुधजीविनी ।

प्रवृत्तसंहृष्टगणा पुनरीश्वर्योरिव ॥ २५२ ॥

देवी प्रदक्षिणा वृष्टतारहारा रराज सा ।

मुधाकण्ठोलयैलिता कमलेव नवोदिता ॥ २५३ ॥

सा भेजे कीर्णकर्पूरपूरस्मेराम्बरोज्ज्वला ।

क्षीरक्षालितविम्बस्व चन्द्रस्येव सितच्छटा ॥ २५४ ॥

विक्षिप्तलाजकुसुमा तद्विवाहमही बभौ ।

देवीमुखशशिप्रीत्या नक्षत्रैरिव सेविता ॥ २५५ ॥

संपूर्णोद्वाहसुभगे नृपे मन्त्री चमूषतिः ।

समस्तजनसत्कारे तस्यतुः प्रभुशासनात् ॥ २५६ ॥

रुमण्वानमयोवाच ध्यात्वा यौगन्धरायर्षणः ।

विनियुक्तौ नृपेणावां दुष्करे वत कर्मणि ॥ २५७ ॥

को हि भोजनसंमानैरवलेपधनं जनम् ।

समर्थः संयुक्तीकर्तुमसिन्नाजमहोत्सवे ॥ २५८ ॥

भोजने याति विपुलं कोपं बालोऽथ पूजितः ।

अवमानकृत्यां पूर्वां कृतं बालेन कौतुरुम् ॥ २५९ ॥

देव सेनाग्रहारेऽमृद्द्रव्यार्थमिधो द्विजः ।

विनष्टपाख्यस्त्रस्यासीन्मात्रा हीनः कृशः सुतः ॥ २६० ॥

१. 'कुलितानन' रा. २. 'नि' रा. ३. 'व' रा. ४. 'सि' रा. ५. 'सा'
रा. ६. 'गम्' रा. ७. 'एवाल्लनम्' रा. ८. 'क्ष' रा.

अपरा तस्य जननी निरादरधिया सदा ।
 तस्य दीर्घरसं चक्रे सेहाच्छादनभोजनम् ॥ २६१ ॥
 त्वपुत्रपोषणस्तां क्रुद्धां तां वीक्ष्य बालकः ।
 कदाचित्प्राह पितरं द्वितीयोऽस्ति पिता मम ॥ २६२ ॥
 इत्यव्यक्ताक्षरां वाचं श्रुत्वा तस्याभवहिजः ।
 शङ्कितो निजदारेषु सहसा मृकृटीमुत्तः ॥ २६३ ॥
 तदेवं सततं बाले ब्रुवाणं परिभैस्सिता ।
 भर्त्रा तं दारकं प्राह रहः सा मृगदुःखिता ॥ २६४ ॥
 त्वमुताभ्यधिकस्त्वं मे किं त्वया कोपितः पिता ।
 इति श्रुत्वाब्रवीद्बालः क्रुद्धोऽस्म्यस्याननार्दितः ॥ २६५ ॥
 प्रमादितोऽथ प्रणयात्तया पितरमागतम् ।
 निर्दिश्य दर्पणं प्राह द्वितीयोऽयं पिता मम ॥ २६६ ॥
 श्रुत्वेति प्रत्ययं प्राप्य रद्गदार्मा पृति ययौ ।
 इत्यममानितः कोपं याति बालोऽपि भोजने ॥ २६७ ॥
 इति विनष्टाख्यायिका ॥ ३ ॥

इत्युक्त्वा भूमिपालानां नानादेननिवासिनाम् ।
 पौराणां च व्यघात्पूजां विवाहोत्सवसङ्गिनाम् ॥ २६८ ॥
 बलेश्वरं समामश्य गोपाले शासनान्तिवुः ।
 प्रयाते क्षपुरी राजा विजहार प्रियामशः ॥ २६९ ॥
 सतो रीमाकुलोदारकटाञ्जनवपलवः ।
 विलासहासपुमुमो देव्याः कारत्तर्त्वमी ॥ २७० ॥
 गूढं रजनिक्काममी राजा तां च विष्कतहः ।
 इति गोत्रापराधेषु सा ब्रुवाणा स्वं ययौ ॥ २७१ ॥
 अयं नरेन्द्रस्य शरीरतुल्यः स्वीचक्रिवावर्षचक्रवर्ती ।
 उक्त्येति दार्मीभिरनङ्गदुतं वमन्तकं भूमिपतेर्वचन्य ॥ २७२ ॥

सा कृत्वा यत्पथविरचिता तापसीना विदग्धा
तैस्तैः श्लेषप्रणयवचनैस्त्यक्तकोषा विधाय ।

राज्ञश्चक्रे स्वयमविलसत्प्रेमकण्ठावलम्बा
लक्ष्मीमिन्दोरिव जलधरच्छेदलब्धप्रसादाम् ॥ २७३ ॥
देवी ततः सितविमक्तकपोलकान्ति-
मुक्त्वा वसन्तकमवाप्य रूपं चकार ।

राजा ननन्द च तदाननपद्ममृङ्ग
कोपप्रसादसुभगो रतये हि काम ॥ २७४ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचिते बृहत्कथासारे कथामुखनामा द्वितीयो लम्बक समाप्तः ।

लाचानकनामा तृतीयो लम्बकः ।

प्रथमो गुच्छः ।

सानन्दनन्दिहतपुष्करनिर्भराणि
हेरम्बकण्ठहंसितानि चिरं जयन्ति ।
कुर्वन्ति यानि घनशङ्खिकुमारवर्हि-
नृत्येर्विचित्ररुचिमाञ्जलि दिगन्तराणि ॥ १ ॥

ततः प्रियतमाकेलिविलासरसतत्परः ।
शनैर्नभूव वत्तेशः प्रजाकार्ये पराश्रुतः ॥ २ ॥
रमण्यानमयाह्वयनिशि योगन्धरायणः ।
अचिन्तयत्प्रैमुहितमग्निमूला हि सपदः ॥ ३ ॥
सोऽब्रवीदेव नृपतिर्हृत्तो मकरकेतुना ।
न पश्यति निजा लक्ष्मीं निपातभयदुःखिताम् ॥ ४ ॥
मैन्दमन्यसचारा विलासालसदर्शिनः ।

सत्यं स्मरेण वच्यन्ते राजानः कुञ्जरा इव ॥ ५ ॥
वीतंयः कुहतेनेव व्यमनेनेव बुद्धयः ।
गहमैव विनश्यन्ति दुर्नयेन नृपश्रियः ॥ ६ ॥

महासेनाभिषो राजा पुरा शत्रुवशं गतः ।
 श्लोकानिना दक्षमानो गुल्मव्याधिमवाप्तवान् ॥ १७ ॥
 मूलपूर्वं गतच्छायं दृष्ट्वा परहितमिवः ।
 वैद्यः कूटप्रियाञ्जलसंदेहाकुलितोऽभवत् ॥ ८ ॥
 ॥ प्राहाम्येत्य नृपतिं वदन्मा तव पञ्चतन्म् ।
 यातेति तत्समाकर्ण्य मृपालो न्यपतद्भुवि ॥ ९ ॥
 सस्य वेगान्निपतनः स्फुरिते गुल्मबन्धने ।
 शरीरमापयो स्वास्थ्यमिति सन्त्येव युक्तयः ॥ १० ॥
 इति परहितस्त्यायिका ॥ १ ॥
 युक्त्येव नाशयिष्यामि नृपतेर्व्यसनामयम् ।
 मग्निभिः परिरक्ष्यन्ते सौन्मद्रा हि नरेश्वराः ॥ ११ ॥
 मगधाधिपतेः पुत्री यदि पद्मावती नृपः ।
 प्रामोत्यन्मत्प्रयत्नेन तदेषा नः सहायता ॥ १२ ॥
 श्रुत्येति मग्निवचनं सेनापतिरभाषत ।
 चक्रवर्तिषुः सा हि भाविनीति श्रुतं मया ॥ १३ ॥
 न हि वासवदत्तायां सक्त्यामै महीमुने ।
 ददाति मगधापीडो याचितोऽपि म्रियां मुवाप् ॥ १४ ॥
 इत्यारुर्ण्यप्रानीन्मघ्नी दग्धा देवीति कृत्रिमम् ।
 नृत्या प्रयोगं सावर्ष्यं लभ्यते मगधालका ॥ १५ ॥
 श्रुत्येति सेनाधिपतिः प्राह साहसशङ्कितः ।
 वयं नु सहते राजा दग्धा देवीति दुर्वचः ॥ १६ ॥
 वियोज्यते नृपो देव्या यदेतच्छमलक्ष्मणम् ।
 संशयाय वियोगो हि यूनोर्वद्वानुगम्योः ॥ १७ ॥
 विशामित्रेन वणिजा मयुरवासिना पुरा ।
 बहिसकास्यायः सन्निधौ निनृष्टो रत्नविक्रये ॥ १८ ॥

तेनादिष्टः स निपुणे युवजानिर्धनार्जने ।

ययौ प्रिया समामङ्ग्य संस्तम्य विरहव्यथाम् ॥ १९ ॥

सापि तस्मिन्गते द्वारकपाटालम्बिनी चिरम् ।

तद्वर्त्म वीक्ष्य शनकैर्वभूव गजजीविता ॥ २० ॥

निर्वर्तितोऽथ तद्वर्ता दृष्ट्वा तां च तथागताम् ।

शोचन्म्यसुरमूदेवं दुःसहो विरहानलः ॥ २१ ॥

इति बहिल्लकाख्यायिका ॥ २ ॥

सत्यमस्त्युदयायैव किन्तु मयं न रोचते ।

अन्यद्विधेते पुरुषः करोति विधिरन्यथा ॥ २२ ॥

देवसेनामिधो राज्ञो योऽवन्त्यामभवत्पुरा ।

स कदाचित्समासीनो विज्ञप्तो बणिजामभवत् ॥ २३ ॥

देवास्ति यौवनवती तनया मम रूपिणी ।

उन्मादिनीति सत्याग्न्या सुधेव स्मरजीविनी ॥ २४ ॥

तव योग्येत्यनावेध न दत्तासौ मया क्वचित् ।

श्रुत्येति तद्वचो राजा द्रष्टुं तां प्राहिणोद्विजान् ॥ २५ ॥

विलोचयोन्मादिनीं विद्याः स्मरोन्मादवशीकृताम् ।

अनया संगतो राजा ध्रुवं सगाद्विनश्यति ॥ २६ ॥

संचिन्त्येति नृपं प्राहुः कन्या दुर्ललितेति च ।

तद्वाक्याद्विमुखे राज्ञि सेनापतिरवाप ताम् ॥ २७ ॥

याति काले स मृषालो हर्म्यस्थां कुजरे स्थितः ।

ददर्श कान्तितटिनीं तामेवोत्सललोचनाम् ॥ २८ ॥

निरीक्ष्य लोचनमुधां चित्तकैरवकौमुदीम् ।

स संतप्तोऽमवन्त्यं विपरीतगतिः स्मरः ॥ २९ ॥

दशमीमन्ययावन्मामीषुपि क्ष्मापतो दिनैः ।

सेनार्नाशान्तृष्टान्मममुवाच ततो रटः ॥ ३० ॥

मम देव घनं दाराः प्राणाश्च किमतः परम् ।
 सर्वमेव तत्रायत्तं गृहाणोन्मादिनीं प्रभो ॥ ३१ ॥
 नृपः श्रुत्येति तद्वाक्यं न जग्राह परम्वियम् ।
 लोकस्थितौ हि राजानः प्रमाणं घर्मसेतवः ॥ ३२ ॥
 मुरालये विधास्यामि नर्तकीं तामतो मञ्ज ।
 इति सेनापतिवचः श्रुत्वा कोपाकुलोऽभवत् ॥ ३३ ॥
 भार्यामदोषां संत्यक्तुं नार्हसीत्यल्लोक्षणाम् ।
 इति निर्भर्त्स्य तं भूमृन्तूनं अविचलाशयः ॥ ३४ ॥
 सै विस्मृष्टश्चाम् याते ततः संतापमूर्च्छितः ।
 त्याजितो जीवितं राजा मन्मथेन प्रमाथिना ॥ ३५ ॥
 इति देवसेनाख्यायिका ॥ ३ ॥

पुरा विवेक्ष मिश्रायं कस्यचिद्वणिजो गृहम् ।
 परिग्राह प्रयतो मौनी किञ्चिन्मीलितलोचनः ॥ ३६ ॥
 मिश्रादानौघतकरां स ददर्श वणिक्मुताम् ।
 कल्पित्रामिष कामेन मनःसारङ्गवागुराम् ॥ ३७ ॥
 तां दृष्ट्वा मन्मथानिष्टस्त्वक्त्वा मौनमनन्यधीः ।
 हा कष्टं कष्टमित्याह तच्छ्रुत्वा निर्यया वणिक् ॥ ३८ ॥
 सोऽप्रनीतकौतुकाविष्टो भगवन्सहसैव किम् ।
 परित्यक्तं त्वया मौनमिति पृष्टोऽभ्यधाच्च सः ॥ ३९ ॥
 दुर्भगा तव कन्येयं शरीरघनहारिणी ।
 त्यजन्तां निद्रि गङ्गायां मञ्जूषे सुषिधानके ॥ ४० ॥
 मूर्ध्ना प्रदीपे विन्यस्य ततस्त्वे मोक्षमे गयान् ।
 इत्युक्त्वा स्वाश्रमं प्रायात्परिश्रवाद् तदनन्तरम् ॥ ४१ ॥
 दीपाद्विष्टेऽयं मञ्जूषे तां त्यक्त्वा वणिजा गयान् ।
 गङ्गाकुलम्विनः कोऽपि प्राप राजकुमारकः ॥ ४२ ॥

तां प्राप्य राजतनयो धीमान्सततकोपनम् ।
 मञ्जूषा वानरं धृत्वा ययौ वेश्म तथा सह ॥ ४३ ॥
 अत्रान्तरे निजाब्धिप्यान्परिवाडब्रवील्लघुः ।
 गङ्गामन्विष्य मञ्जूषा तूर्णमानीयतामिति ॥ ४४ ॥
 तैराहतां समादाय स कन्यारतिलम्पटः ।
 तान्प्राहोत्कण्ठतो वाञ्छन्पातुं निर्मक्षिकं मधु ॥ ४५ ॥
 सुप्ताभिर्न प्रवेष्टव्यं श्रुत्वापि वचनानि मे ।
 इत्युक्त्वार्गलितद्वारां विवेशैको निजां कुटीम् ॥ ४६ ॥
 उद्धाटितेऽथ मञ्जूषे क्रुद्धो निर्गतवानरः ।
 कर्णनासाविरहितं तं चकार सरातुस्म् ॥ ४७ ॥
 कपिचीत्कारमिश्रेण तस्य हाहारवेण ते ।
 नाश्रमं विविशुः शिष्यास्तदाज्ञामङ्गमीरवः ॥ ४८ ॥
 ततस्तच्चरितं ज्ञात्वा जहास सुचिरं जनः ।
 इति दैवगतिश्चित्रा पुरुषस्य न लक्ष्यते ॥ ४९ ॥

इति परिवाडाख्यायिका ॥ ४ ॥

सेनापतेरिति श्रुत्वा ग्राह यौगन्धरायणः ।
 क्रिमेतच्छङ्कसे मिथ्या बत्सेशः श्रियमेप्यति ॥ ५० ॥
 न हि दाशरथी रामो जानकीविरहातुरः ।
 संयातः पञ्चतां वीरो दशकण्ठकुलान्तकः ॥ ५१ ॥
 अमात्ययुक्तिमिर्मूपाः प्रामुषन्त्येव संपदः ।
 सन्मग्निषो हि मूपानां श्रीरक्षापरित्वाचलाः ॥ ५२ ॥
 पुण्यसेनामिषो राजा निरुद्धो विषये पुरा ।
 शत्रुमिर्मग्निषां बुद्ध्या गूढमिथ्यामृतः कृतः ॥ ५३ ॥

तं विनाय यशःशेषं दृष्टास्तस्य ततोऽग्रयः ।

विदुष्टसेना निःशङ्कास्तदनात्यैर्षिया हताः ॥ ५४ ॥

इति पुण्यसेनास्यायिका ॥ ५ ॥

मद्ययित्वेति विश्रब्धं बहु यौगन्धरायणः ।

गोपालमानिनाथाशु स्वपुत्रीं नृपसेवने ॥ ५५ ॥

कृत्वा त्रिदित्तवृत्तान्तं तं नरेन्द्रहिते रत्नम् ।

कूटं वामवदत्ताया दाहे निश्चयमासवान् ॥ ५६ ॥

स लावानकयात्रायां चक्रे मृपतिस्तुल्यकम् ।

देवीं च को हि जानाते चारते प्रौढमन्त्रिणाम् ॥ ५७ ॥

जन्मान्तरे नरपतां सर्वास्वानसमाश्रिते ।

विवेश नारदः श्रीमान्दीप्तः पिङ्गरित्ताम्यरः ॥ ५८ ॥

मगम्य पूजितो राजा सह वासवदत्तया ।

देवर्षिरम्यधादिलु निरन्दशनचन्द्रिकाम् ॥ ५९ ॥

त्वां च वासवदत्तां च दृष्ट्वा राजीवलोचनान् ।

१. स्तरामि पाण्डुपुत्रस्य कृष्णपाश्वर्यं मृगादृष्टः ॥ ६० ॥

वृत्तान्तं कथितं तस्य मया मुन्दोपमुन्दयोः ।

रत्नता आलुनं मेदं द्रौपदीवरणे पुरा ॥ ६१ ॥

मुन्दोपमुन्दावसुरावमूतां बलिनौ पुरा ।

निदावीकृतहेमन्तौ दिवापि कृतचन्द्रिकौ ॥ ६२ ॥

तत्पराक्रमविग्रहदेवैरम्ययितस्ततः ।

येषां विनिर्भये कान्तां मुरनारीं तिलोत्तमाम् ॥ ६३ ॥

सा विद्यामरसावामदात्तविभ्रमगालिनी ।

मत्तालिक्रोक्त्रिले काले विजहार तपोः पुरः ॥ ६४ ॥

तां दृष्ट्वा शृणुल्लोधी वायुनोचालितांशुनाम् ।

नैनवेयं नैनवेयमिति तां मेदमास्तुः ॥ ६५ ॥

ततस्तौ समरोत्तलौ करालभुजशालिनौ ।

कृतान्तातिथितां याताविति भेदोपपत्तये ॥ ६६ ॥

इति सुन्दोपसुन्दाख्यायिका ॥ ६ ॥

इत्युक्त्वा नारदो देवीं विलोक्य प्रणतां पुरः ।

विद्याधरेन्द्रजननीं भाविनीत्याह दिव्यधीः ॥ ६७ ॥

तिरोहिते ततस्तस्मिन् राजा लावानकं ययौ ।

सेनापिहितदिक्चक्रः सह वासवदत्तया ॥ ६८ ॥

आगतं वत्समृषतिं ज्ञात्वा दूतेन मागधः ।

शङ्कया संभृतस्तस्यै मघ्नवर्गबलोद्यमेः ॥ ६९ ॥

चत्सराजोऽपि दयितासंभोगामृतनिर्भरः ।

लावानकपुरोचाने विजहार सरोपमः ॥ ७० ॥

अथ तस्मिन्मृगयायां क्रीडायै विपिनं गते ।

योगन्धरायणोऽभ्येत्य सार्धं गोपालकादिभिः ॥ ७१ ॥

शृत्वा ज्ञातकथां देवीं प्राणैः पत्युर्हितैः पिणीम् ।

सा च पद्मावती दृष्ट्वा तां च पद्मावती मुहुः ।
 परस्परमहो रूपमित्यासक्तमवोचताम् ॥ ७८ ॥
 अवन्तिकाभिधानां तां छात्रां वीक्ष्य द्विजन्मजाम् ।
 मागवी देवतां मेने रूपलावण्यरांश्चिभिः ॥ ७९ ॥
 उवाच छात्रयोगेन दमयन्ती नलप्रिया ।
 कृष्णा च पाण्डवधूम्राद्विधेयं भविष्यति ॥ ८० ॥
 ध्यात्येत्युपचारेतां प्रणता देवतामिव ।
 ततः पद्मावतीमाता तां दृष्ट्वा विस्मितावदत् ॥ ८१ ॥
 कुन्ती भोजस्य तनया पुरा दुर्वाससं मुनिम् ।
 आराध्य पितुरादेशाद्वाप प्रवरं वरम् ॥ ८२ ॥
 सप्तादवन्तिकापुत्री दिव्योचितमनः सती ।
 भसादाराधनीयेयं सत्सेवा हि महाफला ॥ ८३ ॥
 इति मातुर्नियोगेन तां सिपेवे नृपालज्जा ।
 मन्दीकृत्य शुचं किञ्चित्सहायमिव चेष्टितैः ॥ ८४ ॥
 विरहानलरतिपमूर्च्छितापि मुहुर्मुहुः ।
 संकल्लोलसितप्रेयोदार्द्रनेन धृतिं ययौ ॥ ८५ ॥
 अग्रान्तरे मृगक्रीडानिदृष्टो वत्सभूषतिः ।
 देवीं लावानके दग्धामज्ञासीत्सवसन्तकाम् ॥ ८६ ॥
 श्रुत्यैव स पपाताशु विस्फुरत्कटको मुवि ।
 दारांशुनिर्भरस्मेरो वज्रदल इवाचलः ॥ ८७ ॥
 तुषारचन्दमज्जैर्विबुद्धो विलपन्प्रियाम् ।
 तत्सपत्नीति भीत्येव मुमोचालिक्रितां महीम् ॥ ८८ ॥
 स समाश्वासमानोऽपि रयाद्रोषालकादिभिः ।
 औससाद् धृतिं राजा नयहीन इव श्रियम् ॥ ८९ ॥

१. 'श्रीरमः' ख. २. 'तनुः' ख. ३. '२' ख. ४. 'तसा' ख. ५. 'प्राकार' ख.

६. 'मदा' ख. ७. 'नाय' ख.

८ पु० सं०

ततस्तौ समरोचालौ करालभुजशालिनौ ।

कृतान्वातिथिता याताविति भेदोपपत्तये ॥ ६६ ॥

इति सुन्दोपसुन्दाख्यायिका ॥ ६ ॥

इत्युक्त्वा नारदो देवा विलोक्य प्रणता पुर ।

विद्याधरेन्द्रजननी भाविनीत्याह दिव्यधी ॥ ६७ ॥

तिरोहिते ततस्तस्मिन् राजा लावानक ययौ ।

सेनापिहितदिव्यचक्र सह वासवदत्तया ॥ ६८ ॥

आगत वत्सनृपतिं ज्ञात्वा दूतेन मागध ।

शङ्कया समुत्तस्तस्यौ मन्निवर्गबलोद्यमे ॥ ६९ ॥

वत्सराजोऽपि दयित्वासमोगामृतनिर्भर ।

लावानकपुरोद्याने विजहार सरोपम ॥ ७० ॥

अथ तस्मिन्मृगयाया क्रीडायै विपिन गते ।

यौगन्धरायणोऽभ्येत्य सार्धं गोपालकादिभि ॥ ७१ ॥

घृत्वा ज्ञातकथा देवीं प्राणे पत्युर्हितैपिणीम् ।

गूढ वसन्तकोपेता निनाय मगधा क्षणात् ॥ ७२ ॥

तस्य योगेन तरणीं सामवद्ब्राह्मणी तदा ।

वसन्तक काण्वदु स्रय घृद्धद्विजश्च स ॥ ७३ ॥

तेषु यातेषु मगधा गोपालोऽपि रमण्वता ।

सह लावानक दग्ध्वा गूढमग्नधरोऽभवत् ॥ ७४ ॥

मग्नी घृद्धद्विजानार भविष्य मगधापते ।

कन्यकान्त पुर प्राह प्रौढ पद्मावतीं शनै ॥ ७५ ॥

राजपुत्री सुतेषु मे रूपिणी तनयोऽप्ययम् ।

अन्येषुमस्या गच्छामि निरविप्रोषित पतिम् ॥ ७६ ॥

निश्चिन्तेय त्वयि मया सुतध्याय प्रियवद ।

इत्युक्त्वा प्रययौ मग्नी तथेत्यभिहितस्तया ॥ ७७ ॥

सा च पद्मावती दृष्ट्वा तां च पद्मावती मुहुः ।
 परस्परमहो रूपमित्यासक्तमवोचताम् ॥ ७८ ॥
 अवन्तिकामिधानां तां छात्रां वीक्ष्य द्विवन्मज्जाम् ।
 मागधी देवतां मेने रूपलवण्यरात्रिमिः ॥ ७९ ॥
 उवाच छात्रयोगेन दमयन्ती नलप्रिया ।
 शृणु च पाण्डवधूम्राद्विधेयं भविष्यति ॥ ८० ॥
 ध्यात्येत्युपचरैतां प्रणता देवतामिव ।
 ततः पद्मावतीमात्ता तां दृष्ट्वा विमितावदद् ॥ ८१ ॥
 युन्ती भोजस्य तनया पुरा दुर्वाससं मुनिम् ।
 आराध्य पितुरादेशादत्राप प्रवरं वरम् ॥ ८२ ॥
 तसादयन्तिष्ठापुत्री दिव्योचितमैनः सती ।
 यत्तादाराधनीमेयं सत्सेवा हि महाफला ॥ ८३ ॥
 इति मातुर्निबोधेन तां सिपेचे नृपालजम् ।
 मन्द्रीकृत्य शुचं किञ्चित्सहायमिव चेष्टितैः ॥ ८४ ॥
 विरहानलस्रस्तोषमुच्छ्रितापि मुहुमुहुः ।
 संकल्पोद्विस्तितेभ्योदर्शनेन धृतिं ययौ ॥ ८५ ॥
 अप्रान्तरे मृगक्रीडानिवृत्तौ क्लमूपतिः ।
 देवीं लावानके दग्धामञ्जारीत्सवसन्तकाम् ॥ ८६ ॥
 श्रुत्वैव स पपाताशु विस्फुरत्कण्ठो मुनिः ।
 दाराशुनिर्भस्मेतो यज्ज्वल इवाचलः ॥ ८७ ॥
 तुषारचन्दनजलेर्विवुद्धो विलम्बप्रियाम् ।
 तत्संप्राप्तिं भीत्येव मुमोचालेङ्गितां महीम् ॥ ८८ ॥
 स समाश्वासमानोऽपि रथाट्टोपायकादिभिः ।
 औससाद् धृतिं रात्रौ नयहीन इव श्रियम् ॥ ८९ ॥

१. 'शोरभः' ख. २. 'तनु' ख. ३. '२' ख. ४. 'तता' ख. ५. 'शान्द' ख.
 ६. 'गना' ख. ७. 'दय' ख.
 ८ वृ० सं०

विचाधरेन्द्रजननीमाविनीति मुनेर्वचः ।
 स्मृत्यापारोऽमवर्त्तिकिदाशाठम्बितजीवनः ॥ ९० ॥
 गोपालमग्निषौ दृष्ट्वा मन्दशोकौ मुसत्त्विषा ।
 इक्षितज्ञः शुचं त्यक्त्वा विचारपदमाययौ ॥ ९१ ॥
 किञ्चित्प्रतनुशोकेऽथ विरहार्तमहीपती ।
 देवी दग्धेति संलपे दिक्चक्रे परिसर्पति ॥ ९२ ॥
 प्रचोतो मगवाधीशो दूतेनाभ्यर्थ्य मृमुजे ।
 दातुं पद्मावतीमैच्छत्पार्वतीमिव शूलिने ॥ ९३ ॥
 मियं प्राप्स्यति तां प्राप्य क्षुत्वेति सचिवाग्रपः ।
 अमन्यत निजोद्धाहं विरहानलद्रुःसहः ॥ ९४ ॥
 ततस्तुरगसैन्येन मागर्षी प्राप्य मूपतिः ।
 विवाहयसुषां मेजे राजपुत्र्या सहोचितान् ॥ ९५ ॥
 वह्निमदक्षिणे तत्र प्राह यौगन्धरायणः ।
 प्रदत्तां देहि मे वाचं पूर्वदिग्विजये प्रभो ॥ ९६ ॥
 इति मग्निगिरा तेन वत्सराजजयं प्रति ।
 निबद्धवचने स्मैरं विवाहधीरवतंत ॥ ९७ ॥
 अवन्तिकाविरचितां तिलकं मालिकां तथा ।
 अंघ्रानां वीक्ष्य भूपालो वर्णयित्वा धूर्तिं ययौ ॥ ९८ ॥
 कथं जीवति मे देवी नान्या वेति तथा विना ।
 मालिका तिलकं चेदमिति घ्यात्वा जहर्प सः ॥ ९९ ॥
 पद्मामिव समासाद्य ततः स पुरुषोत्तमः ।
 पद्मावतीं ययौ ध्यायन्देवीमेव निर्जां पुरीम् ॥ १०० ॥
 प्रविश्यान्तःपुरं तत्र नववध्यापि संगतः ।
 न ननन्द स्मरन्कान्तां कामकेलिकुमुद्वतीम् ॥ १०१ ॥
 ततः प्रणयवादिन्यः पद्मावत्या वशान्विताः ।
 अवन्तिकान्शुक्लच्छत्रयेनानु समाययौ ॥ १०२ ॥

गोपालान्तःपुरं प्राप्तां ततस्तां वत्सभूपतिः ।
 वत्समां स्वां परिज्ञाय मुमोह विरहाकुलः ॥ १०३ ॥
 राजानं विह्वलं दृष्ट्वा देवीं चोत्तन्मितां शुचा ।
 पापोऽस्मि कारणमिति प्राह यौगन्धरायणः ॥ १०४ ॥
 अथाश्रुकणसंदिग्धतारहारस्तनस्थली ।
 उवाच देवी निःश्वासग्लपिताधरपल्लवा ॥ १०५ ॥
 आर्यपुत्रहितायैषा तीर्णा गूढस्थितिर्मया ।
 स्वस्त्यस्त्यिदानीं वैक्ष्यामि बहौ दुःखालयां तनुम् ॥ १०६ ॥
 श्रुत्वेति वचनं देव्याः सह गोपालकादिभिः ।
 पद्मावती च राजा च मन्त्री च रुरुदुः पृथक् ॥ १०७ ॥
 धन्योऽसि वत्सनृपते महेश्वर इवापरः ।
 यस्य वासवदत्तेयं सती हृदयवल्लभा ॥ १०८ ॥
 इत्याकाशमवा बाणी सतीभावविशुद्धये ।
 उच्चचार नृपक्षां च श्रुत्वाभूत्स मदाकुलः ॥ १०९ ॥
 ततः प्रहृष्टाः पीयूषसिक्ता इव परस्परम् ।
 प्रशंसन्तो मुमुदिरे ते वर्धितमहोत्सवाः ॥ ११० ॥
 देवीविलोचनच्छायानीलोत्पलवर्णं मधु ।
 पद्मावतीस्मितस्मेरुकुमुमाङ्गं पपी नृपः ॥ १११ ॥
 इति पद्मावतीविवाहः ॥ ७ ॥
 देव्योर्मध्ये स भूपालो रतिप्रीत्योरिव स्मरः ।
 विराजमानः प्रोवाच महामात्यं कथान्तरे ॥ ११२ ॥
 स्वत्प्रसादमवोऽयं मे हर्षः प्रीणाति मानसम् ।
 वियोगदुःखप्रशमे प्रसादन्ति मुँस्तत्रियः ॥ ११३ ॥
 पुरा पुरुरवा नाम राजा राज्यवशःशर्दा ।
 यभूय भूमिकन्दर्पः शत्रुनाशनशासनः ॥ ११४ ॥

सुरवारवधूरासीदुर्वशी तस्य बलमा ।

जातः शोकादिवापाण्डुर्यन्मुखाब्जजितः शशी ॥ ११५ ॥

स कदाचित्सुरपुरीमारूढो दैत्यसंयुगे ।

सहायः सुरराजस्य ददर्श विजयोत्सवम् ॥ ११६ ॥

तत्र प्रवृत्ते शक्रस्य पुरा नृत्ते सुराङ्गनाम् ।

जहासाभिनयच्छेदे वैदग्ध्यादुर्वशीप्रियः ॥ ११७ ॥

हातेन कुपितस्तस्य प्राह क्रुद्धः शतक्रतुः ।

वियोगस्ते सहोर्वश्या भूयादिति शशाप तम् ।

प्रार्थितो नैरराजेन स तच्छापान्तमभ्यधात् ॥ ११८ ॥

पर्यटन्पृथिवीमेव उर्वशीविरहातुरः ।

वदर्याश्रममासाद्य भगवद्दर्शनादिति ॥ ११९ ॥

ततो वियोगमासाद्य सरपावकतापितौ ।

उर्वशी च नरेन्द्रश्च तस्यतुर्निधनाशया ॥ १२० ॥

तस्याहारलतापाशवत्त्वाद्योगोऽभवत्पुनः ।

मोहो निःसहता कम्पश्चेति जीवितहेतवः ॥ १२१ ॥

याति काले स भूपालो मदनोन्मत्तमानसः ।

वदर्याश्रममासाद्य दुःसहं शापमत्यजत् ॥ १२२ ॥

उर्वश्या संगतो राजा विजहार ततः सुखी ।

इति दुःखानलस्यान्ते भवन्ति सुखसंपदः ॥ १२३ ॥

इत्युर्वश्याख्यायिका ॥ ८ ॥

अवन्तिराजतनया श्रुत्वेति नृपतेर्वचः ।

विरहे निधनं नास्मि यातेत्यासीद्विलज्जिता ॥ १२४ ॥

पैलध्याविनतां देवीं दृष्ट्वा योगन्धरायणः ।

धीमानुवाच राजानं युक्तिज्ञः श्रूयतामिति ॥ १२५ ॥

१. 'नाल्याषायो हि तुम्बरः' ख. २. 'यु' ख. ३. 'गा' ख. ४. ख-पु
एगदुगरम् 'शापस्यान्तमभाप्सति । इत्युच्छो दुःखितः प्रायाश्रमधानीं निजां तत
रिगुप्तः च तथा दुःखी ब्रह्म विषयो मदीम् ॥' इत्यभिधमलि.

राजा विहितसेनाह्वयः कपिलायाममृतपुरा ।
 तस्य तेजोवती नाम वम्बामिनवा वधूः ॥ १२६ ॥
 स कदाचिज्ज्वराक्रान्तो वारितोऽपि मिषधरैः ।
 न मुयोच प्रियां पार्श्वार्त्तन्मुखन्यस्तलोचनः ॥ १२७ ॥
 ततः संमध्य दुःस्वार्ता मिषग्मिः सह मन्त्रिणः ।
 चक्रुर्मिथ्या मृतां देवीं गूढमारोन्यकाङ्क्षिणः ॥ १२८ ॥
 तथा विरहितो राजा दुःखितः स्वास्थ्यमाययौ ।
 मुक्तामयश्च तां प्राप सितमुक्तामयच्छविः ॥ १२९ ॥
 सहन्ते दुःखमित्येवं साच्यो मर्तृहिते स्ताः ।
 प्लुरमुदयं कृत्वा जीवितालम्बनं हृदि ॥ १३० ॥

इति विहितसेनाह्वयायिका ॥ ९ ॥

शुत्वेति मन्त्रिवचनं राजा रुज्जानतोऽभवत् ।
 आयासितं मनो देव्या किं मयेति विमर्शयौ ॥ १३१ ॥
 अद्वो सततदुःखाय कर्कशाय त्रिवृत्तयः ।
 निर्वेदमाययौ ध्यायन्निति योगन्धरायणः ॥ १३२ ॥
 रतिमानय वल्लेष्टो मनोमय इवापरः ।
 ननन्द यौवनोद्याने देव्योर्मध्ये महोत्सवे ॥ १३३ ॥
 वल्लराजप्रणयिनीं कृत्वा दूतेन मागधः ।
 मुतां प्रेमपदं पत्युः सपत्न्याश्च श्रुतिं ययौ ॥ १३४ ॥
 संत्यक्तवटुवेपोऽय हासयन्पूर्वचेष्टितैः ।
 कथां वसन्तकः पृष्टः प्राह देवीं विनोदिनीम् ॥ १३५ ॥
 अमवदमगुप्ताह्वयो वज्रिष्वाटलिपुत्रके ।
 तस्य सोमप्रभा नाम वनयामृत्सिंहासिता ॥ १३६ ॥
 उवाच जातमात्रैव सा स्फुटार्थपदान्वयम् ।
 दातव्याग्निं न कलैचिदिति विचोतितस्वर ॥ १३७ ॥

गूढं पित्रा विनिहिता नास्ति पुत्रीति वादिना ।
 सा प्राप्य यौवनं काले वसन्तमिव माधवी ॥ १३८ ॥
 तां शक्रोत्सवयात्रायां दैवाद्वातायनस्थिताम् ।
 गुहसेनमुतोऽपश्यद्गुहचन्द्रामिधो वणिक् ॥ १३९ ॥
 विलोक्य मन्मथक्षरासारजर्जरितस्मृतीः ।
 सोऽभवद्दीर्घनिःश्वासस्तत्पक्षपवनैरिव ॥ १४० ॥
 गुहसेनः सुतं दृष्ट्वा सरोन्मादवशीकृतम् ।
 ययाचे ज्ञातवृत्तान्तो धर्मगुप्तमुतां स्वयम् ॥ १४१ ॥
 न ददौ नास्ति पुत्रीति यदा तां जनकोऽभ्यधात् ।
 तदा तदर्थसाहाय्ये वप्रे रत्नप्रदो नृपम् ॥ १४२ ॥
 ततो राजबलाक्रान्तो धर्मगुप्तः सुतां ददौ ।
 स्पर्शं न दूषणीयेयमित्याभाप्य भयाकुलः ॥ १४३ ॥
 वणिक्पुत्रः कृतोद्वाहः शैय्यायां वचसा पितुः ।
 तां प्राप्य मुदितोऽपश्यद्दीर्घमभृकुटिविभ्रमान् ॥ १४४ ॥
 क्रोधोत्तालाद्गुल्लिभ्रान्त्या तया क्षिप्रं निपातितः ।
 जनको गुहचन्द्रस्य भसीकृत इवामिना ॥ १४५ ॥
 ततस्तां सानुगो गेहे प्रौढामग्निसिखामिव ।
 बालुलोके न पस्पर्श नानुमेने च सोऽनिशम् ॥ १४६ ॥
 शत्रुसेनामिव ध्यायन्वर्जयन्मन्त्रगीमिव ।
 तां वणिक्तनयस्तस्यौ गेहे दुःखानलाकुलः ॥ १४७ ॥
 ततः कदाचिदासाद्य मित्रैर्मम्यागतं द्विजम् ।
 अतोपयद्गतपरः संहोत्रा हव्यवाहनम् ॥ १४८ ॥
 अमिजो दिव्यपुरुषो द्विजवेपथो गृहे ।
 क्षणमुवास मुक्तैकां तस्य वाञ्छितसिद्धये ॥ १४९ ॥

१. 'संग' ख. २. 'मिवा' ख. ३. 'मजायां' ग. ४. 'स्पष्टं' ख. ५. 'मन्त्र
 मन्त्रादिना' ग. ६. 'य हेतोर्हे' ख. ७. 'मु' ख.

विधाय अमराकरं तमात्मानं च स द्विजः ।

देवतासंगतां रात्रौ तस्य ज्ञायामदर्शयत् ॥ १५० ॥

ततो विप्रवितीर्णेन मन्त्रेणास्थामवत्प्रिया ।

सा निषिद्धाप ललना स्वयं कण्ठावलम्बिनी ॥ १५१ ॥

इत्येवं संगतो देव्या स ननन्द तया वणिक् ।

देवताभिर्भवन्त्येव धन्यानामिति संगमाः ॥ १५२ ॥

इति सोमप्रभाख्यायिका ॥ १० ॥

अवन्तिराजतनयो देवताभ्यां ध्रुवं व्रते ।

त्वया संपन्नावत्या च धन्यौ वत्सनरेश्वरः ॥ १५३ ॥

सकृतैरेव मुकृतैरीदृशी प्राप्यते स्थितिः ।

शापदुःखमयलेखान्ताहन्ते तु विपर्यये ॥ १५४ ॥

पुरा मार्जाररूपेण प्रियां शक्रेण धर्षिताम् ।

अहल्यां गौतमो ज्ञात्वा श्रोवाच ज्ञानलोचनः ॥ १५५ ॥

आश्रमे कः प्रविष्टोऽन्नं श्रुत्वेति ग्राह तद्वधूः ।

मार्जार इत्यपग्रंशगिरा तैत्परिरागिणी ॥ १५६ ॥

इत्युवत्या धुमितस्याशु तस्य शापेन बृत्रहा ।

अभूद्योनिसहस्राङ्गः शिला च मुनिकामिनी ॥ १५७ ॥

तिलोत्तमां सहस्राक्षो दृष्ट्वाहल्या च राघवम् ।

अवाप्स्यतः शापशान्तिमित्याह मुनिपुंगवः ॥ १५८ ॥

इत्यापदो भवन्त्येव महतामपि दुष्कृतैः ।

वसन्तकस्येति वचः श्रुत्वा देव्यौ ननन्दतुः ॥ १५९ ॥

इत्यहल्याख्यायिका ॥ ११ ॥

प्रभायतीमुत्साम्भोजमधुषो नृपतिस्ततः ।

ललासावन्तितनयावदनेन्दुमुषाम्बुधिः ॥ १६० ॥

ईर्ष्याविरहसंतापतापितापि मुहुर्मुहुः ।

इदं मया कृतमिति प्रापावन्तिमुता प्रीतिम् ॥ १६१ ॥

तनये प्रेयसः प्रेम प्रौढमालम्बनं रतः ।
 आवन्त्यमागधौ ज्ञात्वा दूतैर्निर्वृतिमापतुः ॥ १६२ ॥
 कदाचिदथ राजानं सर्वास्वानसमागतम् ।
 व्यजिज्ञपद्विजोऽभ्येत्य प्रतीहारेण सूचितः ॥ १६३ ॥
 एकपुत्रस्य पुत्रो मे देव गोपैर्मदोद्धतैः ।
 अटव्यां निग्रहीतोऽयमश्रुताक्रन्दितो जनैः ॥ १६४ ॥
 इति ब्राह्मणविज्ञस्या समाहृता वनेचराः ।
 ऊर्चुर्दृष्टो वने देव गोपालो देवसैनिकः ॥ १६५ ॥
 राजास्मीत्याहितक्रीडः सदास्माभिः प्रणम्यते ।
 ध्यमाज्ञाधरस्तस्य स्वयं प्रमुपदक्षितः ॥ १६६ ॥
 अयं यदृच्छयायातः प्रणनाम न तं द्विजः ।
 ततोऽस्माभिस्तदादिष्टैर्निकृत्तचरणः कृतः ॥ १६७ ॥
 इति वाक्यान्महीपाले किञ्चिदाकुञ्चितम्रवि ।
 यौगन्धरायणः प्राह विमृश्य क्षणविसितः ॥ १६८ ॥
 महता फारणेनात्र भवितव्यं नरेश्वर ।
 स्वयं तत्रैव गच्छामो यत्र मेक्यो नृपः सितः ॥ १६९ ॥
 इत्यामद्य गिरा राजा तुरगं प्राह सैनिकः ।
 गत्वाससाद् विपुलामैटवीं गोप्यैर्यिताम् ॥ १७० ॥
 यौगन्धरायणस्तत्र भुवमोधाय यत्नवान् ।
 ध्यानं विधाय शनकैर्महानिधिमदर्शयत् ॥ १७१ ॥
 क्षयं नीलशिलाकारं पूजयित्वावनिस्थितम् ।
 यौधिष्ठिरं धनचयं सिंहासनमवाप च ॥ १७२ ॥
 शृगुरन्नासनं प्राप्य निधानं च नरेश्वरः ।
 स्वयं प्रविश्य कौशाम्ब्यामादिदेश महोत्सवम् ॥ १७३ ॥

१. 'सिनहः' ख. २. 'गोप' ख. ३. 'मारु' ख. ४. 'दर्शिताम्' ख. ५. 'मा.
 गन्धरा' ख. ६. 'यानं विधाय चनद्वै' ख. ७. 'यनि' ख.

युधिष्ठिरस्य साग्राज्यविजयावार्त्तमासनम् ।
 विलोक्यन्नरपतिः प्राह यौगन्धरायणम् ॥ १७२ ॥
 इदं दिग्विजयप्राप्त राजसूयस्य भूपतेः ।
 अनिर्जितदिगन्तेन लङ्घयते कथमासनम् ॥ १७५ ॥
 तौ प्रद्योतमहासेनौ त्वया बुद्धयेव यश्चितौ ।
 वशीकृतौ वत्तवशात्तद्यापि दुनोति माम् ॥ १७६ ॥
 वत्सराजवचः श्रुत्वा महामात्योऽबदत्पुनः ।
 यथार्थं देव निस्त्रिलं सत्यमेव न संशयः ॥ १७७ ॥
 देव पूर्वां दिशं पूर्वं जेतुमर्हसि संमृतः ।
 दिग्धमेतां समाक्रम्य सर्वांशमरणे रविः ॥ १७८ ॥
 हस्तिनापुरमासाद्य भव सर्वजयो नृप ।
 जिता हि ककुमः सर्वास्तत्रस्वैस्त्वत्पितामहैः ॥ १७९ ॥
 निशम्येति नृपः प्राह किं क्रमेण दिशां जये ।
 विजये सत्त्वं साराणामुत्साहे हि न कल्पते ॥ १८० ॥
 श्रूयतां सत्त्वं सारस्य कथेत्यामाप्य मन्त्रिणम् ।
 देवी गोपालसेनानीमुहदामव्रीत्सुरः ॥ १८१ ॥
 आदित्यसेन इत्यासीत्सावित्रैर्मौमनरेश्वरः ।
 विभाति भुवनोद्याने फुल्ल यत्कीर्तिमालिनी ॥ १८२ ॥
 नानादिगन्तमृपालमौलिछलितद्यासनः ।
 स्फुटस्फटिकसौघायामुज्जयिन्यामुवास सः ॥ १८३ ॥
 कुलीनसत्सुरोपान्तनिलयोऽभ्येत्य तं सखम् ।
 कदाचिर्छिन्नवधर्मास्यः समासीनं व्यजिज्ञपत् ॥ १८४ ॥
 कन्यारत्नं मम गृहे विद्यते नयनामृतम् ।
 पात्रं त्वं देव रत्नानां प्रमाणमधुना नृपः ॥ १८५ ॥

उक्त्वेत्यदर्शयत्कन्यां देहवद्भामिव धृतिम् ।
 विवाहं नार्थं तां मेजे राजा राजीवलोचनाम् ॥ १८६ ॥
 साथ तेजोवती नाम तमासाद्य नरेश्वरम् ।
 जहार कान्तिं रोहिण्यास्त्रारापतिसमागमे ॥ १८७ ॥
 तदाननमुधापानमदमन्यरमानसः ।
 न रात्रिं न दिवं मेने स संत्यक्तनृपक्रियः ॥ १८८ ॥
 आक्रन्दितेन पौराणां मन्त्रिणां वचने न च ।
 मेजे संमुखतां किञ्चित्पुत्रानां प्रत्यवेक्षणे ॥ १८९ ॥
 ततः कदाचिदुद्योगयात्रायां तुरगोत्तमम् ।
 आसुरोह वशे गत्वा अष्टं रविरथादिव ॥ १९० ॥
 सहायः पार्थिसंस्पर्शरोपाख्योमपतन्निव ।
 जवाज्जहार राजानमाप्रोप्य प्रसरत्सुरः ॥ १९१ ॥
 स हृतोऽधेन सहसा व्यसनेनेव विभ्रुतः ।
 निशि विप्रमठोपान्तमवापोद्भ्रान्तमानसः ॥ १९२ ॥
 तत्र प्रतिश्रयाकाङ्क्षी स निपिद्धो भठद्विजैः ।
 रात्रौ सशानरक्षोऽयमिति वेदजडात्मभिः ॥ १९३ ॥
 तेषामेको महासत्त्वः शूरोऽभिजनभूषणः ।
 विदूषकाभिधो बह्विरावासासि दुःसहः ॥ १९४ ॥
 रत्नप्राजिष्णुकटकं राजानं दीप्तकुण्डलम् ।
 तं सिपेवे निशि स्वैरं स्नानसंमानभोजनैः ॥ १९५ ॥
 तस्योपचारमाचारनिधिः सोऽमन्यतामृतम् ।
 अल्पाप्युपकृतिर्याति विस्तरं विषमस्थितौ ॥ १९६ ॥
 ततः प्रमाते भूपालः प्रणम्यास्त्र वाजिनम् ।
 जातिसारो राजधानीं ययौ वेगधुतांशुकः ॥ १९७ ॥
 तूर्णं प्रत्यागते राज्ञि कल्पिते नगरोत्सवे ।
 देवी तेजोवती कन्यामसूत कुलचन्द्रिकाम् ॥ १९८ ॥

अथ सादस्माह्वय नरनाथो विदूषकम् ।

श्रीत्या पुरोहितं चके ददौ ग्रामांश्च तन्मठे ॥ १९९ ॥

प्राप्य ग्रामान्महीपालदर्पान्धाम्नेऽमवन्दिजाः ।

नानामताः स्वयं चक्रुः स्वाम्यं खलु विशृङ्खलाः ॥ २०० ॥

अहं प्रभुरहं स्वामी ममैवेदं ममाखिलम् ।

इति तेषां समालोपो बभूव ग्रामलुण्ठने ॥ २०१ ॥

उत्सादिते मठे तस्मिंस्तृप्तैर्बर्बरद्विजैः ।

एकश्चक्रुषो नाम धिष्युष्मान्मघ्रकण्टकान् ॥ २०२ ॥

पदे पदेऽधविघ्रासकक्षानिधिसकुण्टिकाः ।

विदूषकप्रसादेन ता भिक्षा वोऽथ विस्मृताः ॥ २०३ ॥

सखाः कुम्भघृता विषोत्पणरत्नः क्रुद्धा वरं पत्रगाः

कल्लोलकुलकूलनीलसलिले ग्राहास्तथोग्रग्रहाः ।

न त्वेते मठपुष्टदुष्टवपुः षण्टाः स्वयं स्वामिनः

फटं पेटंफचेटकोत्कटनदीवापाटगोष्ठीदृढाः ॥ २०४ ॥

स्त्रीनायकं वरं स्नानमथ वा बालनायकम् ।

जनायकं वरं यावन्न चैव बहुनायकम् ॥ २०५ ॥

अथैव शस्त्रे निहताः स्नाने पुरुषाश्च यः ।

यत्नेषां नासिकां रात्रौ छित्त्वादाय समेप्यति ॥ २०६ ॥

अथुनैकः स नः स्वामी स्पर्शा हि मठनाशिनी ॥

इति क्रुद्धद्विजगिरा तत्र ते प्रादुरग्रजाः ॥ २०७ ॥

स्नानगमनं घ्यात्वा ते प्रयीताः ससंग्रमाः ।

विदूषको ययौ खड्गी कंवची चोन्मुखो निशि ॥ २०८ ॥

सोऽपत्यद्राक्षसोद्दामर्मतिफेत्कारमीषणम् ।

उद्वण्टताण्डवोचण्डमृतमण्डलमण्डितम् ॥ २०९ ॥

१. 'सैखदहपा' ख. २. 'लेल' ख. ३. 'धण्टा' ख. ४. 'निधुरचेटकोत्कटनदी-
वाटगोष्ठीमठ' ख. ५. 'बरवीरोन्मु' ख. ६. 'शायी' ख.

कपालकुहरभ्रान्तिक्षिप्तहुंकारमारुतम् ।
 कङ्कालकलितोत्तालवेतालवल्याकुलम् ॥ २१० ॥
 सूत्कारिर्मदोविकटचितानलचयाचितम् ।
 निशीथमिव नारास्यित्तरमङ्गारमेचकम् ॥ २११ ॥
 चिन्ध्याचलमिवालोढपलाशितैरुसंश्रयम् ।
 बहुपुण्यजनव्याप्तं महापथमिवायतम् ॥ २१२ ॥
 संग्राममिव निःसत्त्वजनजीवितखण्डनम् ।
 वैश्याचित्तमिवानेकनरसंहारदारुणम् ॥ २१३ ॥
 दारिद्र्यमिव दुःस्वानां प्रत्यग्राणां निकेतनम् ।
 स्मशानं तत्र दृष्ट्वासौ न चकम्पेऽप्यनाकुलः ॥ २१४ ॥
 तेषां शूलनिविष्टानां त्रासकारिविकारिणाम् ।
 आदाय नासिकां तूर्णं परिग्राजं ददर्श सः ॥ २१५ ॥
 तं घोरमठकासीनं ध्यानस्त्रिमितलोचनम् ।
 पश्यन्त कौतुकस्थानं तच्छायायामलक्षितम् ॥ २१६ ॥
 परिग्राह्य सर्पपद्मेतनाभिमध्यसमुद्धृतान् ।
 आदाय प्रेतकारुढो ययौ शून्यमुरालयम् ॥ २१७ ॥
 प्रणम्य चण्डिकां तत्र तदाज्ञां प्राप्य देहि मे ।
 आदित्यसेनतनयामुपहारमिति स्फुटम् ॥ २१८ ॥
 द्रायेवानुगतस्तस्य सर्वं श्रुत्वा विदूषकः ।
 प्रदध्यौ स्वामितनयापरित्राणकृतेक्षणः ॥ २१९ ॥
 साधकोऽपि क्षणेनेव तां कन्यां राजमन्दिरात् ।
 आनिनाथ महामायः क्रन्दन्तीं प्रेतवाहनः ॥ २२० ॥
 तां हन्तुमुद्यतं दृष्ट्वा कृपाकोपकरम्बितः ।
 जहारास्य शिरश्छित्त्वा त्रस्तां मृपतिकन्यकाम् ॥ २२१ ॥
 पितुः पुरोहितं दृष्ट्वा किञ्चिन्दुमीलितेक्षणा ।
 गाढं जग्राह तं कण्ठे साकम्पतरलाकृतिः ॥ २२२ ॥

आगन्तव्यं पुनरिति स शुथावाशरीरिणीम् ।
 वाणीमभ्युद्यतो गन्तुं निशि व्याकोशलोचनः ॥ २२३ ॥
 तान्तिद्वसर्पपात्राप्य राजपुर्वीं विहाय सा ।
 नीत्वा विदूषकः क्षिप्रं चिक्षेपान्तःपुरान्तरे ॥ २२४ ॥
 जनलोकनर्मीत्या तं गन्तुमभ्युद्यतं निशि ।
 नृपात्मजा न तत्याज विभेमि मुतरामिति ॥ २२५ ॥
 तन्मन्दिरस्थिते तस्मिन्मनिद्रावशं गते ।
 सौविदल्लाः प्रविविशुः प्रातः कञ्चुकिमिः सह ॥ २२६ ॥
 ते शयानं तमालोक्य कोपादेत्य व्यजिज्ञपत् ।
 आदित्यसेनः सोऽप्याशु तमाह्वात्रवात्कुथा ॥ २२७ ॥
 किमेतदिति पृष्टोऽथ तद्वृत्तान्तं निवेद्य सः ।
 जदर्शयन्नरपतेः साधकं कृतमस्तकम् ॥ २२८ ॥
 राजा मृत्ययमासाद्य हृष्टस्तसै ददौ मुताम् ।
 श्रियं चोपकृतिप्रीत्या किमदेयं महात्मनाम् ॥ २२९ ॥
 स तया संगतोऽनङ्गसाक्षीकरणविद्यया ।
 राजपुत्र्या नृपोद्याने रराम रतिलालसः ॥ २३० ॥
 ततः कदाचित्कालेन स्मारितः प्रियया रहः ।
 तामाकाशगिरं मोहात्पायात्तैर्त्रीं विदूषकः ॥ २३१ ॥
 मद्रां नाम ततः प्राप्य पूर्वां रचितसंविदाम् ।
 विद्याधरीं यया नीतः सारो निःशङ्कमहताम् ॥ २३२ ॥
 स तां पञ्चेपुविजयद्विपकुम्भोपमस्तनीम् ।
 उद्भूतयौवनसरःसरोजललितेक्षणाम् ॥ २३३ ॥
 फुल्लकान्तिललासक्तश्रमसकारकुन्तलाम् ।
 वासाद्य भुरवासको विससार नृपात्मजाम् ॥ २३४ ॥
 याति काले पितुर्मीत्या मर्त्यसन्नापराधतः ।
 तमामभ्योदयगिरिं सा ययौ सिद्धरश्मितम् ॥ २३५ ॥

तस्यां गतायामुन्मत्तस्त्यक्त्वा भूमिपतेः सुताम् ।
 हा भद्रेत्यसकृत्तारं विलयंस्तत्र पर्यगात् ॥ २३६ ॥
 ब्रजत्रय दिशं प्राचीं निःश्वासम्लपिताधरः ।
 स पुण्ड्रवर्धनं नाम पुरं प्राप सरावुरः ॥ २३७ ॥
 तत्र विप्रगृहे वृद्धा तमाह ब्राह्मणी ततः ।
 पुत्र सर्वं मम धनं गृहाणामिमतोऽसि मे ॥ २३८ ॥
 यतः स्वपुत्रविरहाभियं त्यक्ष्यामि जीवितम् ।
 दुःखलब्ध्यामिषा पुत्री देवसेनस्य भूपतेः ॥ २३९ ॥
 इहास्ति येन येनासौ वृता याति स पञ्चताम् ।
 चौरैर्गृहाद्गृहात्तस्य नीयन्ते पुरुषाः सदा ॥ २४० ॥
 सयं यातेष्वनेकेषु मम पुत्रोऽद्य नीयते ।
 तद्विनाशे विनङ्क्ष्यामि तुभ्यं सर्वं तदाम्यतः ॥ २४१ ॥
 इति तद्वाक्यमाकर्ण्य करुणाद्रौ विदूषकः ।
 अहं तत्र गमिष्यामि न नङ्क्ष्यामीत्युवाच ताम् ॥ २४२ ॥
 तथा कृच्छ्रेण मुक्तोऽथ प्राप्य भूपालमन्दिरम् ।
 तत्र शय्यासनस्रोरं कन्यान्तःपुरमाविशत् ॥ २४३ ॥
 अथावयौ राजपुत्री तारहारा मुहासिनी ।
 राहुग्रस्तस्य दशिनः सस्तेव श्रीः सतारका ॥ २४४ ॥
 स तां केनापि न स्पृष्टां दृष्ट्वा यौवनशालिनीम् ।
 उद्दामसंसारभमरां श्वभ्रजातां लतामिव ॥ २४५ ॥
 अनासादितपर्याणां काम्बोजतुरगीमिव ।
 फांतुककृलितस्रस्रौ द्वारान्तर्निमृतो निशि ॥ २४६ ॥
 ततः करिकराकारं कर्कशं घोररक्षसः ।
 मुखं प्रविष्टं ह्यरेण ददर्शोद्भ्रान्तमन्तिके ॥ २४७ ॥

१. 'सतुल्यमगात्र' ख. २. 'पाण्डुवर्धनं' ख. ३. 'रत्नपट्या' ख
 ४. 'दीप' ख.

हेष्टैव दीप्तनेत्रस्य जीर्णजगरसंनिभम् ।
 आग्नेयेनासिना बाहुं तस्य दीर्घं चकर्त सः ॥ २४८ ॥
 मृणालनालनिर्झने पतिते दोष्णि भूतले ।
 दुद्राव विसवद्रक्तस्ततो निशि निशाचरः ॥ २४९ ॥
 प्रातस्तत्कर्मतुष्टोऽथ देवसेनो नृपः सुताम् ।
 विदूषकाय प्रददौ लक्ष्मीं चाद्भुततेजसे ॥ २५० ॥
 दिव्यनौरीमिवारण्यमोगप्राप्तां सुरद्विपा ।
 स तां नेत्रोत्पलां प्राप्य सविलासमुखाम्बुजां ॥ २५१ ॥
 किञ्चित्कालं नृपगृहं स्थित्वा राजसुतां प्रियः ।
 प्रययौ संस्मरन्मद्रामनिद्रो विद्वताशयः ॥ २५२ ॥
 समुद्रतीरमासाद्य तरङ्गगणमीपणम् ।
 स्कन्ददासेन वणिजा प्राप्तसख्यं प्रियंवदः ।
 आरुरोह प्रवहणं तस्योर्ध्वतपताकिन ॥ २५३ ॥
 रेतो महायुधे मध्ये विचचाल न चेटकः ।
 कर्णधारेण विधृतो व्याघ्रवातगतागतः ॥ २५४ ॥
 तस्मिन्कन्दे प्रवहणे साक्रन्दे सार्धधर्मिणि ।
 स्कन्दवासोऽवदन्सालं शोचन्स विपुलं श्रियम् ॥ २५५ ॥
 बलेन यः प्रवहणं प्रेरयेद्रविणादिहै ।
 अर्थं तस्मै प्रदास्यामि कन्यां चायत्तलोचनाम् ॥ २५६ ॥
 विदूषकोऽथ कारुण्याद्विहस्य घनदायिनम् ।
 ममज्ज मयितो रज्ज्वा भकराकरवारिणि ॥ २५७ ॥
 निमज्ज प्राणिसघायां कृत्वा ग्रन्थिममोचयत् ।
 तस्मिन्निमुक्ते स वणिक्छित्त्वा रज्जुलतां ययौ ॥ २५८ ॥

१. 'दृष्टा प्रकीपः सहसा पी' ख. २. 'वापीमिवानन्यगजगुता सुरद्विप.' ख.
 ३. 'म' ख. ४. 'तस्मिन्महाम्बुधेर्मध्ये' ख. ५. 'रचितः प्रस्नावस्तुता गत.' ख.
 ६. 'भिरुदे वसिजामाक्रन्दे व्योमसर्पिणाम्' ख. ७. 'दहम्' ख. ८. 'ममज्ज रम्भयितो
 करालवारिणि' ख.

वणिजा घनलुब्धेन स च्छिन्नालम्बनो ययौ ।
 निकृत्तपाणिजङ्घाग्रः समारूढोऽम्बुघेस्तटम् ॥ २५९ ॥
 मैनसो विषयं प्राप्य पथि शुश्राव भूषते ।
 नित्यं हवैकपुरुषां तनयामार्यवर्मणः ॥ २६० ॥
 अविश्य पूर्ववत्तत्र राक्षसं हन्तुमुद्यतः ।
 सख्यं तेनार्थितः प्राप्य ध्यातो यः स्वानसंविदा ॥ २६१ ॥
 आर्यवर्मा ददौ पुत्रीं तस्मै तां सह संपदा ।
 स्थित्वा तु सुरतासक्तः किञ्चित्कालं पुनर्ययौ ॥ २६२ ॥
 स्मरन्विद्याधरसुतां सोऽवमेने नृपात्मजाम् ।
 पारिजातलतामुज्जो न हि जातीषु सादरः ॥ २६३ ॥
 अगम्यां भूमिमासाद्य ध्यातस्त्रेन स राक्षसः ।
 मुहूर्त्तं यमदंष्ट्राख्यस्तमुवाहं महाजवः ॥ २६४ ॥
 अयोदयाद्रिपर्यन्ततटे सिद्धनियेषिते ।
 त्यक्तः स रक्षसा तस्यौ न ततो रक्षसां गतिः ॥ २६५ ॥
 तत्र पुष्करिणीतीरस्थितं दिव्याङ्गनाजनम् ।
 ददर्श रत्नकलशैर्जलाहरणतत्परम् ॥ २६६ ॥
 ताः पृष्टाः कौतुकाचेन प्राहुर्विद्याधरात्मजाः ।
 भद्रा नाम पितुर्भात्या तिष्ठतीह सुलोचना ॥ २६७ ॥
 मर्त्यशक्ता पुरा सामूर्त्तमोहोहनिवारणे ।
 जलाहृतैरियं नित्यमस्माकं कमलेक्षणा ॥ २६८ ॥
 इति श्रुत्वाभृतेनेव सिको रत्नाङ्गुलीयकम् ।
 भद्रयेव पुरा दत्तं चिक्षेप कलशे लघु ॥ २६९ ॥
 मन्दस्याप्य नरः स्यात्, विज्ञाप्य महत्सादरम् ।
 भद्रा तामिन्द्रमानाप्य तत्याज विरहव्यथाम् ॥ २७० ॥
 • अथ तत्पुनरारम्भे स्मिरा विद्याधरी क्षणात् ।
 विससार निजां विद्यां भद्रा मर्त्यानुरागिणी ॥ २७१ ॥

ततो वाहनमादाय राक्षसं सहितस्तथा ।

ब्रजन्गृहीत्वा तनयां नृपतेर्यवर्मणः ॥ २७२ ॥

स्कन्ददासस्य बणिजो हत्वा सह धनैः सुताम् ।

दुःखलब्धां समादाय देवसेनसुतामपि ॥ २७३ ॥

अवाप्योज्जयिनीं हृष्टः सत्त्वोदारो विदूषकः ।

आदित्यसेनतनयां मेजे लक्ष्मीं च पुष्कलाम् ॥ २७४ ॥

इति विदूषकाख्यायिका ॥ १२ ॥

इत्येवं सत्त्वमहतां क्षूराणां विजयः करे ।

इति बत्सेश्वरवचः श्रुत्वा सर्वे मुदं ययौ ॥ २७५ ॥

स गृहीतजयोद्योगस्तपसा त्रिपुरान्तकम् ।

अतोपयदसाध्यं हि किं शिवस्मरणानृणाम् ॥ २७६ ॥

विषाघरेश्वरो भावी तनवाद्विजयश्च ते ।

इति शर्वाद्वरं प्राप त्रिरात्रोपोषितो नृपः ॥ २७७ ॥

नृपवृत्तानुवृत्ते च देव्यौ दृष्ट्वा पतिव्रते ।

हृष्टो वसन्तकः प्राह प्रशंसस्तद्विवेष्टितम् ॥ २७८ ॥

पुरा शर्यातितनया सुकन्या च्यवनं मुनिम् ।

लोपामुद्रा तन्नागस्त्यं तपसेवमतोपयत् ॥ २७९ ॥

इति गोपालकादीनां पुरो जल्पन्वसन्तकः ।

पद्मावतीं व्रतक्षामां नमोक्तिमिरहासयत् ॥ २८० ॥

अन्येषुरथ भूषाले जयोद्योगकबान्तरे ।

पौरुषं देवसफलं प्राह योगन्धरायणः ॥ २८१ ॥

अवश्यं पृथिवीपाल गुरुजां विजयः श्रियः ।

भवत्युत्साहनित्यानामिहामुत्र च सिद्धये ॥ २८२ ॥

अवाप्यते शुभफलं सुहृदैः पूर्वसंचितैः ।

पश्याचिन्तितमेवासं त्वया यौषिष्ठिरं धनम् ॥ २८३ ॥

वमूव पाटलिपुरे देवदासामिधो वणिक् ।

महाधनकुले जातो द्यूताहुर्गतिमागतः ॥ २८४ ॥

स ध्वस्तवदनच्छायो नगरे पुण्ड्रवर्धने ।

धञ्जुरस्य गृहं प्रायात्कन्धालम्बिपटाम्बरः ॥ २८५ ॥

धञ्जुरावसयोपान्तमवाप्याचिन्तयत्क्षणम् ।

कथं दीनो गतच्छायः प्रविशामीति लज्जितः ॥ २८६ ॥

धन्यः शवो निरुच्छ्रासो दीर्घनिद्रातिशीतलः ।

सावज्ञः करुणापात्रं बन्धूनां न तु दुर्गतः ॥ २८७ ॥

दावाभिध्वन्दनं तस्य विपपानं मधूत्सवः ।

विश्रान्तिर्मरणं चास्य स्वजनो येन पाच्यते ॥ २८८ ॥

शूरो विदग्धः सुजनोऽमिमानी विद्वान्कुलीनः कुशलः कलावान् ।

तावद्यशस्वीह विमाति पुंसां शवन्न देहीति वचोऽभ्युपैति ॥ २८९ ॥

देवदासो विचिन्त्येति निश्चि प्राप्य प्रतिथियम् ।

केनापि वणिजादिष्टो भाण्डशालां पुरःस्थिताम् ॥ २९० ॥

अपश्यत्तत्र वणिजो ललनां स्त्रैरमागताम् ।

निजजायां परिज्ञाय तामेवाभूत्सुदुःखितः ॥ २९१ ॥

रतान्ते साम्नुपपतिं ग्राह्य मद्भर्तृमन्दिरे ।

तत्पूषेपुलक्यन्त्यस्तं निधानं विद्यते प्रिय ।

स्नुपाणामेव तत्कर्णे पारम्पर्यश्रमात्स्वितम् ॥ २९२ ॥

निधानोत्पादनमनाः क्रीडामूल्येन तद्ब्रह्म ।
 दृष्ट्वा शून्यं महास्वार्तं मूल्यमेवान्वयाचत ॥ २९६ ॥
 विवादे भूषतिपुरो देवदासो यथाश्रुतम् ।
 निवेद्य निजवृत्तान्तं तामाह्वासतीं वधूम् ॥ २९७ ॥
 परदाररते राज्ञा निगृहीते च तामपि ।
 कर्मनासाविरहितां कृत्वा तामासृचान्वधूम् ॥ २९८ ॥
 इत्थं पितामहधनैर्देवदासोऽभवत्सुखी ।
 इति पुण्यवतां देवात्स्वयमायान्ति संपदः ॥ २९९ ॥
 इति देवदासाख्यायिका ॥ १३ ॥
 श्रुत्वेति मन्त्रिवचनं राज्ञा विजयललसः ।
 दिदेश दिग्जयोद्योगे सेनान्यमपि तद्बुद्धिः ॥ ३०० ॥
 ततो भ्रातरमाहूय पद्मावत्पुत्रं नरेश्वरः ।
 विदधे सिंहवर्माणं चेद्धि राज्ये बलाधिकम् ॥ ३०१ ॥
 गोपालकं च विदधाराज्ये धृत्वा जयोत्सुकः ।
 कृत्वा मन्त्रिगिरा दृष्टं वाराणसां महीपतिम् ॥ ३०२ ॥
 ब्रह्मदत्तं ॥ संहृष्टसर्वसामन्तमण्डलम् ।
 जेतुं सज्जगजानीकतुरगोत्स्वातमूतलः ।
 ययौ मुमटसमर्द्धव्याढोलितदिगन्तरः ॥ ३०३ ॥
 पाण्डुरेणातपन्नेन यात्रायां विवर्णौ विभुः ।
 स्त्रीरश्मोमसमुखेन दश्राद्धेनेव मन्दरः ॥ ३०४ ॥
 पार्थिवंक्षयस्य तस्याग्रे गिरिवर्णां गजा वभुः ।
 सेवान्नतमिवापन्ना मेघाः स्वाण्डवतर्जिताः ॥ ३०५ ॥
 तस्य सैन्ये मयाधृता विवर्णौ खड्गमण्डली ।
 पातालवासिर्प्रीत्येव संप्राप्ता मुजगावली ॥ ३०६ ॥
 काण्डलिकप्रणधिभिर्देवजव्यञ्जनैरपि ।
 आनन्कर्य रिपोर्मन्त्रं गूढं योगन्वरायणः ॥ ३०७ ॥

ब्रह्मदत्तस्य सचिवो धीमान्योगकरण्डकः ।
 व्यधाद्वत्सेश्वरस्याम्भो घासं च विपदूषितम् ॥ ३०८ ॥
 उल्कासंदर्शनं धोरं मायास्ताश्च सुदुःसहाः ।
 यौगन्धरायणस्तस्य प्रेतियोगैरिवामवत् ॥ ३०९ ॥
 व्यर्थं चकार सकलं मायानिर्माणडम्बरम् ।
 ततो बद्धाञ्जलिर्धामान्नलोपायनसंयुतः ॥ ३१० ॥
 ब्रह्मदत्तं स जित्वैव सर्वाशाविजयी नृपः ।
 न्यवेशयत्सूर्य इव प्रतापं मूर्ध्नि भूसृताम् ॥ ३११ ॥
 ततः समस्तसामन्तमस्तकन्यस्तशासनः ।
 पूजितोऽवन्तिराजेन मागधेन च सानुगः ॥ ३१२ ॥
 देवीभ्यां सहितः श्रीमांहावानकपुरं ययौ ।
 पौरनारीमुखाम्भोजविकासनवभास्करः ॥ ३१३ ॥
 इति श्रीवत्सेशदिग्विजयः ॥ १४ ॥
 चक्रवर्तिधियं प्राप्य हेमरत्नाम्बरप्रदम् ।
 भेजे शृङ्गारसाम्राज्यं कान्ताकेलिकलो नृपः ॥ ३१४ ॥
 ततः कदाचित्सचिवं प्राह वत्सेश्वरो जयी ।
 भवन्मतिप्रभावोऽयमहो मद्विजयश्रिये ॥ ३१५ ॥
 पश्य मे भ्रूलताक्षेपैरुत्सातप्रतिरोपिताः ।
 जाता नरापिपाः पादक्षुम्बिचूडामणित्विपः ॥ ३१६ ॥
 मन्येऽहं ब्रह्मदत्तोऽसौ नितान्तं कुटिलाशयः ।
 वशं नीतोऽपि यत्नेन दर्पान्धो विचलिष्यति ॥ ३१७ ॥
 संमानितस्त्वया देव स राजा न चलिष्यति ।
 शुभं शुभकृतादेव विपरीताद्विपर्ययः ॥ ३१८ ॥
 स्वच्छासनद्विपन्नस्य भुवं श्रीर्नमविष्यति ।
 अग्निदण्डोऽभवद्विप्रः पद्मास्ये विषये पुरा ॥ ३१९ ॥

सोमदत्तोऽभवत्तस्य पुत्रः शास्त्रविवर्जितः ।
 वैश्वानराभिघञ्चान्यः श्रुतः श्रुतिविदां वरः ॥ ३२० ॥
 अग्निदत्तस्तयोः कृत्वा विवाहं प्रययौ दिवम् ।
 सोमदत्तस्ततो मौर्स्यात्सदाचारविवर्जितः ॥ ३२१ ॥
 राज्ञोऽपि निग्रहपदं ययौ दुर्जनचेष्टितैः ।
 आत्रा संरक्षितोऽभ्येत्य निदुषा नृपशासनात् ॥ ३२२ ॥
 त्यक्त्वाग्रहारं सुकृशो जग्राह कृषिजीविकाम् ।
 बटवृक्षं पृथुच्छायं पूज्यन्सततं व्यधात् ॥ ३२३ ॥
 क्षेत्रकर्माभवद्येन प्रवृद्धः सम्यसंपदा ।
 हलभृतिरिति प्राप संज्ञां स कृषितत्परः ॥ ३२४ ॥
 ततः परधेनायत्तैः क्षणेनाथ चिनाशिता ।
 सा तस्य श्रीर्विधौ वामे पौरुषं हि कदर्शिता ॥ ३२५ ॥
 स शोकव्याकुलो राज्ञो नष्टनिद्रो वटान्तिके ।
 शुश्रावाकाशवचनं समार्यः साधुलोचनः ॥ ३२६ ॥
 'मिहारो नाम यज्ञोऽहं प्रसन्नस्ते सदा र्विनात् ।
 वेदानामुहि मद्वाक्याद्विपुलां श्रियमाप्स्यसि ॥ ३२७ ॥
 आदित्यप्रभमासाद्य श्रीकण्ठविषये नृपम् ।
 गृही गत्वा सदा कार्येष्वपृष्टः पृष्ट एव वा ॥ ३२८ ॥
तत्त्वं मया दिष्टमपठत्स च तत्पुरः ।
 शुभं शुभकृतादेव विपरीताद्विपर्ययः ॥ ३२९ ॥
 इत्याकर्ण्य स तद्वाक्यं तस्य राजा सितप्रियः ।
 ददौ सुविपुलां लक्ष्मीं तस्मै विस्मयकारिणीम् ॥ ३३० ॥
 ततः कदाचिद्गुपालस्तेन विश्रम्भसाक्षिणा ।
 ययौ मृगव्यां पौरखीकटाक्षोत्पलमालितः ॥ ३३१ ॥

चिरात्प्रतिनिवृत्तोऽर्थ कान्तां कुवल्यावलीम् ।
 हृष्टां हृष्टोऽविशद्वष्टुमेक एव नरेश्वरः ॥ ३३२ ॥
 रुद्धप्रवेशो नृपतिर्दर्विमन्तःपुरे ततः ।
 गवाक्षान्तरितोऽपश्यद्योगमण्डलपङ्कजे ॥ ३३३ ॥
 दिगम्बरां मुक्तकेशीं रक्तचन्दनचर्चिताम् ।
 ददर्श तत्र दयिताममिचारोचितस्थितिम् ॥ ३३४ ॥
 प्रविष्टो विस्मयक्रोधशङ्काकुलितमानसः ।
 ततस्तथा नरपतिर्दृष्टश्चकितनेत्रया ॥ ३३५ ॥
 संत्रासतरलाकारा कम्पमाना धनस्तनी ।
 अभयं दीयतां देव कथयामीत्यभाषत ॥ ३३६ ॥
 दत्तामया नृपतिना कथामकथयन्निजाम् ।
 असि देव पितुर्गेहे पुराहं कन्यका सती ॥ ३३७ ॥
 नानादेशसमायातसखीमण्डलमण्डिता ।
 मधौ मधुरसंलापकोकिले कलिकाकुले ॥ ३३८ ॥
 मलयानिललोलालिकुलाकुलितचम्पके ।
 उद्यानमगमं लीलानिलयं पुष्पधन्वनः ॥ ३३९ ॥
 तत्र मामवदन्तस्त्वयः सखि देवः प्रणम्यताम् ।
 ऊर्ध्वरेतसि संनिधिः ॥ ३४० ॥
 श्रीमान्स हि विघ्नाधिपो विभुः ।
 विवाहविजयोद्योगेष्वेको लोकेषु पूज्यते ॥ ३४१ ॥
 श्रुत्वेति ता मया पृष्टास्तत्प्रभावं वमापिरे ।
 ऊर्ध्वरेतसि चण्डीशे गौरी पुत्रार्थिनी पुरा ॥ ३४२ ॥
 प्रदध्यौ तच्च विज्ञाय हृष्टोऽभूत्पाकशासनः ।
 भुवं देव्याः मुतोऽस्माकं भविष्यति जयत्रिये ॥ ३४३ ॥

१: 'दयितान्त.' ख. २. 'महास्तनी' छ ६' ख. ३. 'अद्वयसंनिधिः श्रीमा
 विघ्नाधिपो विभु' इति ख-पुस्तके पाठः.

ध्यात्वेति शक्रः पद्मेषु दिदेश मधुना सह ।
 स गत्वा शंकरमनःक्षोभायाक्षयसायकः ।
 चक्रे तपोवनं शंभोरकालमधुमण्डितम् ॥ ३४४ ॥
 सहस्रोत्फुल्लककुमाशोककेसरकिंशुके ।
 तत्र त्रिलोचनं कामो विव्याधोन्मादनेपुणा ॥ ३४५ ॥
 विकारं मनसो दृष्ट्वा कुपितस्त्रिपुरान्तकः ।
 स्मृतिशेषं सारं चक्रे माललोचनवह्निना ॥ ३४६ ॥
 तद्गुःखात्साक्षुनयनां देवीं पुत्रार्थिनीं हरः ।
 उवाच देवि विभेदः पुत्रार्थं नार्चितस्तवया ॥ ३४७ ॥
 इत्युक्ते भगवान्देवैरर्थ्यमानो मनोमवन् ।
 चकार मानसाबासं द्विगुणोत्साहदर्पणम् ॥ ३४८ ॥
 अथ तारकवित्रस्तत्रैदशप्राणमात्मजम् ।
 स्रष्टुं सतीरतक्रीडां भेजे शीतांशुशेखरः ॥ ३४९ ॥
 सहस्रं दिव्यवर्षाणां शंकरे रतितत्परे ।
 छटद्गिरिचरोद्धृतसागरा विचचाल भूः ॥ ३५० ॥
 ततो मीतैः सुरैः सर्वैः परमेष्ठिगिरानलः ।
 त्रिनेत्ररतिविभ्रायंमन्यष्टो न व्यदृश्यते ॥ ३५१ ॥
 शुक्रभेकगजैर्नीत्वा प्रच्छन्नोऽग्निर्निवेदितः ।
 यदा जिह्वापरावृत्तिः श्रापं तेभ्यो ददौ तदा ॥ ३५२ ॥
 याचितोऽथ सुरेन्द्रेण शर्वस्य सुरतोत्सवे ।
 विवेश सूक्ष्मवेषाग्निर्विरसाम ततः शिवः ॥ ३५३ ॥
 विरतो रेतसो वेगं चिक्षेपाग्निमुखे हरः ।
 क्रीहि मादेश्वरं तेजो विनाग्निं धर्तुमीश्वरः ॥ ३५४ ॥
 ततो गिरिमुत्ता कोपाच्छयाप सुरमण्डलम् ।
 मा वः सदृशसंसर्गजन्मा कस्य सुतोऽस्त्विति ॥ ३५५ ॥

पुत्रार्थं न त्वया देवि पूजितो विघ्ननायकः ।
 इति पत्युर्गिरा गौर्या प्राप्ते विघ्नेऽर्चितोऽथ सः ॥ ३५६ ॥
 ततो वर्षसहस्रान्ते श्रमार्तो हव्यवाहनः ।
 तत्याज गर्भं गङ्गायां साप्यघत्त तमुत्कटम् ॥ ३५७ ॥
 जाह्नवी तारकत्रस्ता तं शंभोर्वचसात्यजत् ।
 मुमेरोर्दक्षिणे पार्श्वे सहस्रांशुसितद्युतिम् ॥ ३५८ ॥
 कृत्तिकारक्षितः श्रीमान्क्षितो हरकिंकरैः ।
 पप्पुस्वस्तेजसा चक्रे सज्ज्वालाजटिला दिशः ॥ ३५९ ॥
 नारदस्य गिरा ज्ञात्वा दृष्ट्वा च तमतिप्रमम् ।
 सहस्राक्षो मुमोचाशु तस्मै वज्रं पुनः पुनः ॥ ३६० ॥
 वज्रप्रहारैस्तनया बभूवुस्तस्य दुर्मदाः ।
 शाखो विशाखः मुमुखश्चेति शक्रदवानलः ॥ ३६१ ॥
 अयोत्थिते कार्तिकेयडिम्बे समरदुर्मदे ।
 वासवस्तम्भितकरे दुद्रावैरावणो रणे ॥ ३६२ ॥
 ततस्त्रिलोचनोऽभ्येत्य मुरेन्द्रकृपया शिशुः ।
 सान्निवतः सह पार्वत्या शक्रे प्रीतिं च लम्बितः ॥ ३६३ ॥
 ततोऽभिपेके पृतनापत्ये तस्याशु कल्पिते ।
 हरेः सकुलिशो बाहुः स्तम्भतां विघ्नतो ययौ ॥ ३६४ ॥
 अथ शर्वस्य वचसा पूजिते गणनायके ।
 विघ्नप्रशान्त्या शक्रस्य बाहुः स्तम्भादमुच्यत ॥ ३६५ ॥
 हेरम्बेणागिपिक्तोऽथ स्वयं सेनामवाप्य सः ।
 दिव्यकान्त्या महासेनो न्यवधीतारकामुरम् ॥ ३६६ ॥
 एवं महाप्रमावोऽयं प्रणम्यो विघ्ननायकः ।
 सार्गीनामित्यहं वाक्यात्तत्तत्प्रमगमं भुदा ॥ ३६७ ॥
 गणेन्द्रमध्वर्यतेले पूजयित्वा महेश्वरम् ।
 सार्गीनां सदसापश्यमाकाशेन गतागतम् ॥ ३६८ ॥

तद्वद्वा विसितात्यन्तमपृच्छं कौतुकेन ताः ।
 सख्यः कथं वो नमसा गतिरित्यूचिरे च ताः ॥ ३६९ ॥
 महाकालप्रसादाच्च पूजनाच्च गणप्रभोः ।
 महामांसाशनाच्चेयमस्माकं सिद्धिरुत्तमा ॥ ३७० ॥
 छन्ना वयं च टाकिन्यः काप्यूर्ध्वव्यापिनी च नः ।
 अस्त्यसौ कालरात्रीति सा चाहता समेप्यति ॥ ३७१ ॥
 ततो मदुपदेशाय समाहता समाययौ ।
 कालरात्री सखीभिर्मे कुम्भलम्बोदरस्तनी ॥ ३७२ ॥
 अहं तदीक्षया क्षिप्रं महामांसाशनेन च ।
 दृष्ट्वा देवं महाकालमभवं योगिनीं ततः ॥ ३७३ ॥
 मायारूपपरावृत्तिर्दृष्टिबन्धमिचारके ।
 मारणोच्चाटनाकर्षे जाताहं तद्गुणाधिका ॥ ३७४ ॥
 तस्याः प्रच्छन्नडाकिन्याः कालरात्र्याः पतिद्विजः ।
 निष्पुत्तामीत्युपाध्यायः श्रोत्रियोऽस्मि बहुश्रुतः ॥ ३७५ ॥
 तस्य सुन्दरको नाम शिष्यो रूपेण सुन्दरः ।
 कालरात्र्या युवा स्वरं याचितो रतिदक्षिणाम् ॥ ३७६ ॥
 जननी गुरुमर्या मे त्वं पुत्रोऽहं तवानघे ।
 इति सुन्दरकः प्राह प्रार्थ्यमानस्तयाऽसकृत् ॥ ३७७ ॥
 ततः क्षिप्रं स्वनस्त्रैः सा विदार्य निजं वपुः ।
 कृतं सुन्दरकेणेदमित्याह कुपिता पतिम् ॥ ३७८ ॥
 उपाध्यायस्ततः क्रुद्धस्तं त्रिप्यं शिष्यसेनया ।
 लगुडैर्जर्जरतनुं विधाय बहिरस्त्यजत् ॥ ३७९ ॥
 स रात्रौ निजने त्यक्तश्चिरेणावाप्तजीवितः ।
 उत्थाय दूत्यं गोवाटमविशच्छङ्किताशयः ॥ ३८० ॥
 ततोऽर्धरात्रे निर्यातामपश्यद्भुविनीवृताम् ।
 कालरात्रीमुपाध्यायदयितां मीपणानैनाम् ॥ ३८१ ॥

तदुत्पत्तनमग्रेण दिवमुत्पतिते गृहे ।

सगोवाटे स जग्राह तन्मग्नं धीमतां वरः ॥ ३८२ ॥

आन्त्वा प्रतिनिवृत्तायां पुनस्तस्याः क्षपाक्षये ।

सन्नशालाश्रितः सोऽथ पुनरेत्यार्थितस्तया ॥ ३८३ ॥

अद्यापि मन्मथरुचे भज मां स्वयमागताम् ।

उपाध्यायवधूं याहि देहि जीवितदक्षिणाम् ॥ ३८४ ॥

इत्युपाध्यायिनीवाक्यं श्रुत्वा कर्णौ पिपाय सः ।

जगाम धर्ममर्यादां लङ्घयन्ति न साधवः ॥ ३८५ ॥

प्रत्याख्यानं रुपाम्येत्य विष्णुस्वामी पुनस्तया ।

त्वच्छिष्येण हतास्मीति गिरा कोपाकुलः कृतः ॥ ३८६ ॥

उपाध्यायोऽथ तत्कोपादविज्ञाय तदाश्रयम् ।

तस्य भोजनमभ्येत्य सन्नशालां न्यवारयत् ॥ ३८७ ॥

स चोत्पत्तनमग्नज्ञः पवनसंत्रासमाययौ ।

पुनस्तमेव गोवाटं तत्रापश्यच्च तां निशि ॥ ३८८ ॥

तासामुत्पतितानां च स्थितः प्रच्छन्नवाटके ।

भूलकानां चयं प्राप महार्थं दूरदेशगः ॥ ३८९ ॥

तद्विक्रये प्रभातेऽथ तदाहृतिसंगतैः ।

नीतो विवादो नृपतेः पुरस्तादयदच्च सः ॥ ३९० ॥

प्रासादमधिरुह्य देवं विज्ञापयाम्यहम् ।

इति प्रासादमास्त्र मग्रेणोत्पत्य दूरगः ॥ ३९१ ॥

द्वितीयं नृपमभ्येत्य प्राह्राहं धूर्जटेर्गणः ।

दीयतां हेमरत्नानि मह्यं माहेश्वरो ह्यसि ॥ ३९२ ॥

इत्युक्त्वा विपुलैश्चर्यं तस्मादासाद्य हर्म्यगः ।

यदृच्छोपगतां सिद्धिं प्राप्य मग्नं निपातितम् ॥ ३९३ ॥

१. 'पानमग्नार्थमा' ख. २. 'अलंकारान्तर्यं प्राप महाप्यान् दूरदेशगः' ख.
'नैर्विशदि' ख.

१. लवानके-हलमूल्यास्वायिया ।] वृहत्कथामञ्जरी ।

कालरात्रिकथां राज्ञे सर्वमेत्य न्यवेदयत् ।
 राजा तत्त्वं परिज्ञाय तस्या निग्रहमभ्यधात् ॥ ३९४ ॥
 सा ततोऽन्तर्हिताम्बेत्य स्निता चान्तःपुरे मया ।
 इत्येतत्कथितं तुभ्यं याथातथ्यं मया त्रिमो ॥ ३९५ ॥
 एहि सिद्धिं भज क्षिप्रं प्रयोगे समयां भव ।
 मुदञ्च वीर महामांसं निर्विकल्पपदं श्रय ॥ ३९६ ॥
 इति देवीगिरा राजा घृणाघूर्णितनानसः ।
 सधैरि चक्रे कृच्छ्रेण बहुशो योचितस्तया ॥ ३९७ ॥
 त्वयाकृष्टः पशुः कोऽत्र धृष्टेति जगतीमुजा ।
 हलमूर्तिरिति ग्राह स्वैरं कुबल्यावली ॥ ३९८ ॥
 लक्ष्मिं स समाकर्ष्य देव्या च मृशमर्थितः ।
 राजा दोलायितननाश्विरेण प्राप निश्चयम् ॥ ३९९ ॥
 ततः साहसिकं नाम सूदनाह्वय दंपती ।
 तंमूचतुः समम्येत्स यो वक्ष्यति महानसे ॥ ४०० ॥
 राजयोग्यां वैभुमतीं कुरुष्वेति त्वमेव तम् ।
 हत्वा तन्मांसमृषिष्टं तूर्णं भोजनमानय ॥ ४०१ ॥
 इति संविदमावाय ॥ समामण्डपं पुनः ।
 हलमूर्तिं रूपः ग्राह भोज्यं मे क्रियतामिति ॥ ४०२ ॥
 तूर्णं तदग्न्या गन्तुं प्रस्तुतं तं महानसम् ।
 ऊचे चन्द्रप्रमोऽम्येत्य राजसनुस्त्वसकूलः ॥ ४०३ ॥
 मल्लुण्डलो हतो गच्छ शुत्वेत्याह च स द्विवः ।
 राजभोजनमादिश्य सूदनेप्याम्यहं क्षणात् ॥ ४०४ ॥
 इति राजसुतः श्रुत्वा हलमूर्तिनमापत ।
 अहं महानसं गत्वा सूदं वक्ष्यामि ते वचः ।
 व्रज मल्लुण्डलार्थं त्वमित्युक्तो जन्तुः पृथक् ॥ ४०५ ॥

१. 'तद्व्यासपुराणम्' ख. २. 'तद्वचतुः' ख. ३. 'महानसि.' ख. ४. 'रघुवती'
 व. ५-६. 'हलमूर्तिम्' इति कथापरिभाषागरे.

राजपुत्रमथायान्तं दृष्ट्वा श्रुत्वा च तद्वचः ।

हत्वा यथोक्तमकरोत्सूदः समययन्निः ॥ ४०६ ॥

तन्मांसभोजनं राजा भुक्त्वा स्वैरं वधूसखः ।

प्रातर्विदितवृत्तान्तः पपात विलपन्मुवि ॥ ४०७ ॥

सुपुत्रं निहतं ज्ञात्वा हलभूतिं विलोक्य च ।

शुभं शुभकृतादेव सस्मारेति स तद्भिरः ॥ ४०८ ॥

हलभूतिं नृपपदे धृत्वानुशयतापितः ।

ब्राह्मणेभ्यो महादानं वितीर्य यमुनातटे ॥ ४०९ ॥

निकृत्तनिजमांसेन हुत्वा वह्निं ससंभ्रमः ।

समार्थः प्रययौ स्वर्गं सत्त्वनिर्धूतकल्मषः ॥ ४१० ॥

शुभं शुभकृतादेव हलभूतिरवाप्तवान् ।

न हि कश्चिच्छुभकृतस्तव राजा चलिष्यति ॥ ४११ ॥

इति हलभूत्याख्यायिका ॥ १५

यौगन्धरायणवचो निशम्येति जनाधिपः ।

एवमेतदिति ग्राहं विस्मयाविष्टचेतनः ॥ ४१२ ॥

ततः प्रियतमाकेलिविलासरसिको नृपः ।

परित्यक्तं इवाम्येत्य रराज विजयश्रिया ॥ ४१३ ॥

कौशाम्बीमथ सौधसङ्कितरुणीं नेत्रांशुनीलोत्पल-

सद्गमाममरणाधिवासमुभगः कान्तासहायो नृपः ।

आकर्णायतकामकामुकलताकैकारतारैर्मुहुः

प्रत्यग्रोत्सवलोलपोरललनाकाञ्चीरवैः पूरिताम् ॥ ४१४ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचिते बृहत्कथासारे खवानकनामा तृतीयो लम्बकः समाप्तः ।

नरवाहनजन्मनामा चतुर्थो लम्बकः ।

प्रथमो गुच्छः ।

ललाटलोचनं पायात्मदीप्तं त्रिपुरद्विपः ।

कुमाररक्षासिन्दूरं वितरन्किरणैरिव ॥ १ ॥

स सार्वभौमविभवं प्राप्य भूमिपुरंदरः ।
 वमार वल्लभा कान्तिनलिनी राजहंसताम् ॥ २ ॥
 सभास्थानसमासीनमभ्येत्यावाप्तसत्कृतिः ।
 जगाद नारदो दन्तद्युत्या धवल्यन्दिशः ॥ ३ ॥
 अपि राजेन्द्र कार्येषु प्राप्य लक्ष्मीं न मुह्यसि ।
 ऐश्वर्यमदमत्ता हि न पश्यन्ति नृपद्विषाः ॥ ४ ॥
 अपि संकोचमायाति न श्रीर्न्यसनवारिदैः ।
 जङ्घीकृतप्रतापस्य हेमन्ते नलिनीवने ॥ ५ ॥
 स पाण्डुः पृथिवीपालस्तत्र पूर्वपितामहः ।
 मृगायाज्यसनासक्तो मुनिं हरिणरूपिणम् ।
 निर्गमं नाम वाणेन जघान रतिमोहितम् ॥ ६ ॥
 तस्मात्स रतिपर्यन्तजीवितं श्लाघमाप्तवान् ।
 इति राज्ञां विनाशाय व्यसनं महतामपि ॥ ७ ॥
 कुलाधिकं पदं वीर संप्राप्तोऽसि किमुच्यते ।
 सर्वविधाधराधीशो भविष्यति तवात्मजः ॥ ८ ॥
 कुमारजनकं देवमाराध्य शशिशेखरम् ।
 देवी वासवदत्तयं जनयिष्यति तं सुतम् ॥ ९ ॥
 हिरनेत्राग्निनिर्धूतः स्मरः सोऽवतरिष्यति ।
 रतिप्रदः प्रसन्नेन शंकरेण विनिर्मितः ॥ १० ॥
 उक्त्वेति नारदमुनौ क्षिप्रमेव तिरोहिते ।
 वत्सराजोऽभवच्चैवमगन्दानन्दमौनसः ॥ ११ ॥
 ततः क्रद्धाचिद्धारिद्र्यचिध्वस्ता यमजौ सुतौ ।
 गृहीत्वा शरणं प्रायाद्वाङ्मणी वत्समूपतिम् ॥ १२ ॥
 विसृष्टान्तःपुरं राजा सा कृपापूर्णचेतसा ।
 न्यस्तैव संपदामङ्गीकृता वासवदत्तया ॥ १३ ॥

पुत्रीणां वत धन्यासि निजां कथय मे कथाम् ।
 देव्या पृष्टेति सा खैरं ब्राह्मणी प्राह निर्वृता ॥ १४ ॥
 कृच्छ्रेण महता देवि दारिद्र्यं रक्षितं मया ।
 न हि धर्तुं समायाति शीलं प्रोपितयोपिताम् ॥ १५ ॥
 उत्तरसां दिशि पुरा जयदत्तोऽभवन्नृपः ।
 देवदत्ताभिधस्तस्य पुत्रो दुश्चरितः कुले ॥ १६ ॥
 स राजा पवनालोलकदलीदलचञ्चलाम् ।
 नृपश्रियमिति ज्ञात्वा वणिजां चाक्षयां श्रियम् ॥ १७ ॥
 महाधनवणिगपुत्र्या पुत्रस्योद्वाहमादधे ।
 धनकाञ्चनरत्नौघैः प्राप व्याकोशकोशताम् ॥ १८ ॥
 ततः कालेन भूपाले दिवं याते तदात्मजः ।
 स गोत्रशत्रुविजितो जीवशेषो ययौ निशि ॥ १९ ॥
 स मात्रा प्रेरितो दुःखाद्गच्छ श्वशुरमन्दिरम् ।
 महाधनः स हि वणिक्त्वां ध्रुवं पूरयिष्यति ॥ २० ॥
 इति मातुर्गिरा गत्वा पुरं पाटलिपुत्रकम् ।
 श्वशुरावसथं प्राप्य न विवेश द्विया नतः ॥ २१ ॥
 ॥ पान्थसत्रशालायां श्रयानस्तद्ब्रह्मान्तिके ।
 निजजायां ददर्शाथ निशि केनापि संगताम् ॥ २२ ॥
 तां चौर्यमुरताकम्पकणन्मुखरमेखलाम् ।
 दृष्ट्वापि दुर्गतिं ध्यायन्न चकम्पे चुक्रोष वा ॥ २३ ॥
 ततः सौ रतिसंमर्दअष्टं हेमविमूषणम् ।
 नाज्ञासीन्मणिताटङ्गं रागान्धः को हि पश्यति ॥ २४ ॥
 तद्वज्रमणिसंछन्नं प्राप्य कर्णविमूषणम् ।
 ययौ लक्ष्मीं कृतारम्भो राजपुत्रोऽप्यलक्षितः ॥ २५ ॥

१. 'पक्षा विहीना या देवी दारिद्र्यं र' एव. २. 'देवद' एव. ३. 'जयद' एव.
 ४. 'विनिवृत्तं ययौ समायाति' एव. ५. 'येन काञ्चनरत्नौघैः' एव. ६. 'धनम्' एव.
 ७. 'मातुर्गिरा' एव.

वन्द्ये निधाय बहुना द्रविणेन तदुत्तमम् ।
 क्रीत्वा तुरङ्गान् राजानं पश्मेश्वरमभ्यगा(या)त् ॥ २६ ॥
 तमुपाश्रित्य बलिनं हत्वा शत्रुगणान्युधि ।
 पितृपैतामहं राज्यमवाप विमलद्युतिः ॥ २७ ॥
 सतोऽन्यां राजतनयां परिणीय कुलोचिताम् ।
 वणिजः प्राहिणोत्क्षिप्रं वाटङ्गं दुहितुश्शुतम् ॥ २८ ॥
 तदालोक्येव सा मर्त्रा प्रहितं रत्नमुपितम् ।
 स्मृत्वा दुर्विनयं मीता सहसा पञ्चतां गता ।
 इति विमोषितं स्त्रीभिः श्रीलं दुःखेन रक्ष्यते ॥ २९ ॥
 इति देवदत्ताख्यायिका ॥ १ ॥

अहं शंकरदेवस्य जाया देवि द्विजन्मनः ।
 ब्राह्मणी पिङ्गला नाम देवाद्वैधज्यमागता ॥ ३० ॥
 हिते कुलप्रहारे मे सगोत्रैर्बल्यचरैः ।
 देवरे च विदेशस्थे चिरं शान्तिकरामिधे ॥ ३१ ॥
 पुत्राविमो समादाय यातासि शरणं नृपम् ।
 मर्तारं तव संतप्तजनतासुस्पादपम् ॥ ३२ ॥
 श्रुत्वैव राजमहिषी तद्वृत्तान्तं कृपावती ।
 पुरोहितं शान्तिकरं तस्या विज्ञाय देवस्म ॥ ३३ ॥
 संमानमधिकं चक्रे हेमरत्नाम्बरप्रदा ।
 तापि तं देवरं प्राप्य भर्तुदुःखं शशंस तम् ॥ ३४ ॥
 संपूजिता देवरेण राज्ञा देव्या च सादरम् ।
 सा तस्यौ ब्राह्मणी तत्र बालसंवर्धनप्रता ॥ ३५ ॥
 इति ब्राह्मणीसमागमकथा ॥ २ ॥

कदाचिदय दद्वैव देवी वातायनस्थिता ।
 कुम्भकौर्याः सुतान्यश्च प्रदत्तौ दुःखित्वा क्षणम् ॥ ३६ ॥

अपि पामरनारिभ्यो विधिः पुत्रान्प्रयच्छति ।
 ननु मे मन्दभाम्यायास्तनयावासिसंकथा ॥ ३७ ॥
 इत्युदश्रुमुक्तीं देवीं विलोक्य प्राह पिङ्गल ।
 सैमरश्रीरिव जयं देवि पुत्रमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥
 स्थ्यादूकरतुल्यानां पापिनां बहुलोऽन्वयः ।
 देवात्तु सत्त्वमहतां जन्म पुण्यवतां क्वचित् ॥ ३९ ॥
 ब्राह्मणीवचसा किञ्चिद्वासा शोक्तानवम् ।
 स्वयं वत्सेश्वरोऽभ्येत्य देवीं चक्रे धृतेः पदम् ॥ ४० ॥
 साथ पुत्रार्थिनी देवमाराध्य तपसा शिवम् ।
 स्मरावतारं तनयं प्राप्स्यसीत्याप तद्वरम् ॥ ४१ ॥
 स्वप्ने च शुभ्रमहसा जटामण्डलधारिणा ।
 दत्तं दिव्यफलं प्राप्य राज्ञे सर्वं न्यवेदयत् ॥ ४२ ॥
 अथादत्तशुचिच्छाया गर्भं भूपालवल्लभम् ।
 चन्द्रं क्षीरोदवेलेव जाह्नवीव पडाननम् ॥ ४३ ॥
 सा व्यक्तदोहदा चेन्दुमुखी जृम्भालसंस्थितिः ।
 वमार भग्नत्रिवलीलेखारम्यतरं वपुः ॥ ४४ ॥
 तस्या दौहदसंकल्पो बभूवोन्नतिसूचकः ।
 आकाशगमनोत्साहे तस्यामन्यत भूपतिः ॥ ४५ ॥
 विधाय यंत्ररचितं विमानं जवनेर्हयैः ।
 व्यपाद्वासवदत्ताया नैम.क्रीडारतिं नृपः ॥ ४६ ॥
 विधाघरक्याध्ययधवणे जातकौतुकाम् ।
 योगन्धरायणोऽभ्येत्य तामाह नृपसंनिधौ ॥ ४७ ॥
 अवश्यमुक्तताचारमत्त्वं पुत्रमवाप्स्यसि ।
 शुनोऽन्यथा व्योमगतौ शुभाख्याने च ते मेतिः ॥ ४८ ॥

शृणु विद्याघरकथां हर्षपीयूषवर्षिणीम् ।
 भावी कल्याणवसुधे फलितं त्वन्मनोरथैः ॥ ४९ ॥
 अस्ति साधुमनःखच्छस्फटिको हिमभूमृतः ।
 विद्याघराणां वसतिः कैलासो नाम शेखरः ॥ ५० ॥
 जीमूतकेतुरभवत्तत्र विद्याघरेश्वरः ।
 वंशे कल्पतरुर्यस्य संपूरितमनोरथः ॥ ५१ ॥
 जीमूतवाहनस्तस्य पुत्रोऽमूलसत्त्वसागरः ।
 यद्यश्चन्द्रिकायौतमद्यापि भुवनत्रयम् ॥ ५२ ॥
 पित्रा दत्ताभिषेकोऽसौ विततार सुरदुमम् ।
 हेमवर्षणमर्थिभ्यः कलणापूर्णमानसः ॥ ५३ ॥
 दत्तकल्पतरोस्तस्य पापा राज्यजिहीर्षवः ।
 विद्याघराधिपास्तस्थुः संहताश्छान्निधयाः ॥ ५४ ॥
 जीमूतवाहनो ज्ञात्वा तेषां कुटिलचेष्टितम् ।
 स्वयं शक्तोऽपि तत्याज राज्यं वैरपराङ्मुखः ॥ ५५ ॥
 स पित्रा सहितः प्रायाद्विरक्तो मलयाचलम् ।
 मस्ताण्डवितोऽण्डश्रीखण्डतरुमण्डलम् ॥ ५६ ॥
 तत्र निर्झरहुङ्कारिरमणीयशिलतले ।
 आसीनः संददशभि दिव्यं सिद्धकुमारकम् ॥ ५७ ॥
 विलोक्य कौतुकाविष्टस्तं पप्रच्छ महाद्युतिम् ।
 कस्त्वं कस्य सुतो वेति स च पृष्टोऽभ्यभाषत ॥ ५८ ॥
 विश्वावसोः सिद्धपतेरहं मित्रावसुः सुतः ।
 स्वसा मलयवत्यस्ति गम लावण्यकौमुदी ॥ ५९ ॥
 जाने विद्याघरेन्द्रं त्वां देव जीमूतवाहनम् ।
 योग्यां तवैव तां मन्ये रतिं रतिपतेरिव ॥ ६० ॥
 इति प्रियं वचः श्रुत्वा प्राह जीमूतवाहनः ।
 सरामि पूर्वभार्यासौ दयितौ तव चेत्त्वसा ॥ ६१ ॥

शृणु जन्मान्तरकथां ममेमां तत्समागमे ।
 निर्माल्योल्लङ्घनाच्छंभोः पुरा मानुषतां गतः ॥ ६२ ॥
 महाधनस्य वणिजः संप्राप्तः पुत्रतामहम् ।
 वसुदत्तामिधानोऽहं विसृष्टो द्रविणार्जने ॥ ६३ ॥
 पित्रा विन्ध्याट्वां घोराभविशं शबराकुलम् ।
 तत्र दस्युबलैर्वध्वा नीतोऽहं चण्डिकागृहे ।
 दृष्टः शबरराजेन तद्वन्धाच्च विमोक्षितः ॥ ६४ ॥
 ततः प्रतिनिवृत्तोऽहं पित्रे सर्वं निवेद्य तत् ।
 स्थितस्तत्प्रत्युपकृतिध्यानस्त्रिमितमानसः ॥ ६५ ॥
 ततः कदाचिद्दलिनो राज्ञस्तं वशमागतम् ।
 कृतोपकारं शबरं धनेनाहममोचयम् ॥ ६६ ॥
 स वधान्मोचितो यत्नात्कृतज्ञः शबरो मया ।
 कन्यां दृष्ट्वा मया भद्रं प्रतिकर्तुं ममाह च ॥ ६७ ॥
 ततोऽहं स्वयमुत्तालतमालसरलाकुलम् ।
 नीतः प्रालेयशैलेयच्छायाशवलिताम्बरः ॥ ६८ ॥
 तत्र यामाह शबरः पुरा दृष्टेह कन्यका ।
 मया मदनमाद्गल्यमालिकालोचनामृतम् ॥ ६९ ॥
 सिंहाभिरूढा गौरीव हराराधनसंगता ।
 सोल्लुका धनमभ्येत्य मया त्वत्कथया कृता ॥ ७० ॥
 इत्युक्त्वा नलिनीखण्डमण्डितोपान्तमादरात् ।
 सोऽदर्शयत्तदा चारु मम शंभुनिकेतनम् ॥ ७१ ॥
 भवं शिवार्चनरता न चिरादेप्यतीत्यहम् ।
 ध्यात्वा चिरं स्थितस्तत्र कृतज्ञानहरार्चनः ॥ ७२ ॥
 अथ पद्याननारूढामागतां तत्र कन्यकाम् ।
 दर्शितां शबरेणारादपश्यं मन्मथोत्सवम् ॥ ७३ ॥

१. 'कन्यां दृष्ट्वा गुणराशं प्रतिकर्तुं ममापन.' इति. २. 'दंतेन्द्रं दिनसीदेति
 मन्दिरम्' इति.

शीतांशुशुभ्रवसनां तारहारकरोज्ज्वलाम् ।
 नुपारशिसरीन्द्रस्य प्रत्यक्षामिव देवताम् ॥ ७४ ॥
 अथाचं तामहं कान्तां पूर्वं रचितसंविदम् ।
 शवरेण कुरङ्गाक्षीमचिरेण मनोवतीम् ॥ ७५ ॥
 तामादाय ततः कान्तां गत्वा निजपुरीं शनैः ।
 अभजं शवरोपेतः कायं विभ्रमवान्स्त्रियम् ॥ ७६ ॥
 ततः स सिंहः सहसा भूत्वा विद्याधराकृतिः ।
 ब्रवाच नष्टशापो मे दिष्ट्या युष्मत्समागताम् ॥ ७७ ॥
 अहं चित्राङ्गदो नाम जयादुल्लङ्घ्य नारदम् ।
 तच्छापासिंहतां यातः पुरा विद्याधराधिपः ॥ ७८ ॥
 इयं मनोवती नाम तनया मम सुन्दरी ।
 तव भार्या निरं स्पृष्टा धृता केसरिणा मया ॥ ७९ ॥
 यदा तव सुतां कश्चित्परिणेष्यति मानुषः ।
 तदा विमोक्ष्यसे शापान्भामुवाचेति नारदः ॥ ८० ॥
 तदेतन्मुक्तं शापोऽहं गच्छामीत्यभिधाय सः ।
 प्रययौ भूषणमणिच्छायाशबलिताम्बरः ॥ ८१ ॥
 [सितोऽहमपि कालेन भुवत्वा मर्त्यसुखश्रियम् ।
 हिरण्यदत्तमासाद्य पुत्रं वंशविवर्धनम् ॥ ८२ ॥]
 मनोवतीसखी गत्वा पुण्यं कालंजरं गिरिम् ।
 शवरानुगतो ध्यात्वा शंकरं तनुमत्यजम् ॥ ८३ ॥
 जीमूतवाहनः सोऽहं कन्या मलयवत्यपि ।
 मिया मनोवती सैव शवरस्त्वं स मे मुहूर्त् ॥ ८४ ॥
 इति मित्रावसुः श्रुत्वा विद्याधरपतेर्वचः ।
 मित्रे निवेद्य वृत्तान्तं विवाहं विदधे स्वसुः ॥ ८५ ॥
 अवाप्य सिद्धतनयां मानसोऽस्मात्तन्निद्रिकाम् ।
 लवण्यविभ्रममह्यं मनोरथशतचित्ताम् ॥ ८६ ॥

स्मरसंभोगसुमगास्तद्विलासरसाकुलः ।

अमन्दानन्दसंदोहं भेजे जीमूतवाहनः ॥ ८७ ॥

ततः कदाचिद्विहरन्स मित्रावसुना सह ।

ददर्श दुःखनिमृतध्यानं फणिकुमारकम् ॥ ८८ ॥

स तेन शङ्खचूडाख्यः पृष्टः प्राह भयाकुलः ।

कद्वश्च विनता चेति कश्यपस्य प्रिये पुरा ॥ ८९ ॥

बालधौ मास्कराश्वानां सितासितविवादतः ।

मणं दास्याय चक्राते प्रतिज्ञाकृतनिश्चये ॥ ९० ॥

कृष्णबालान्विधायाध्वान्कद्रूपुत्रैर्भुजंगमैः ।

दास्यं निनाय विनतां व्याजाद्गरुडमातरम् ॥ ९१ ॥

तस्या निश्चम्य दास्यं तत्पीयूषाहरणावधिः ।

यैनतेयो बहन्नागान्मानुर्दास्यमवारयत् ॥ ९२ ॥

जवात्पीयूषमाहृत्य जित्वा शक्रं स्वगेश्वरः ।

प्रदाय काद्रवेयेभ्यो दासभावादमुच्यत ॥ ९३ ॥

भूतं पीयूषकलशं कुशेष्वभ्येत्य वासवः ।

जहार तत्क्षणाद्रांश्च लिलिहुः पन्नगाः कुशान् ॥ ९४ ॥

ततो द्विजिह्वां प्राप्ताः स्वरदर्भाविलेहनैः ।

विष्णोर्वरात्सुपर्णस्य भक्ष्यतां पन्नगा ययुः ॥ ९५ ॥

ततः कुलक्षयभयात्त्वसां धारेण फल्पितः ।

नागो वामुकिना नित्यं स धारोऽद्य मम क्रमात् ॥ ९६ ॥

इत्यारुर्ण्यैव करुणापूर्णो जीमूतवाहनः ।

अदं तादर्थ्यं भवद्वेषो गच्छामोत्यभ्यभाषत ॥ ९७ ॥

निर्भरिता चिनयता प्रियवादिता च

प्राणैरपि प्रणयिनां प्रियपूरणं च ।

इत्युभयोर्मदमानविषोस्त्वणम्य

संगारयोरजलधेरमृतच्छटेव ॥ ९८ ॥

मित्रावसुं विसृज्याथ व्यपदेशेन सत्वरः ।
 शङ्खचूडं च सत्त्वस्थे वैततेयशिलां ययौ ॥ ९९ ॥
 तत्र नागास्थिसंघाते निर्यङ्गुरिवसाकुले ।
 गरुडागमनाकाङ्क्षी तस्यौ विगत्संग्रमः ॥ १०० ॥
 ततः प्रलयसंग्रान्तकल्पान्तपवनाकुलम् ।
 [अकम्पत जगत्तुङ्गतरङ्गोत्तुङ्गसागरम् ॥ १०१ ॥] ,
 अथादृश्यत मार्तण्डमण्डलोद्भृतेजसा ।
 गरुत्मान्काञ्चनमयीः कुर्यन्निव दिशो दश ॥ १०२ ॥
 स चण्डचधुचरणाघातबिस्लिष्टविग्रहम् । - -
 जीमूतवाहनं चक्रे सहसा पतगेश्वरः ॥ १०३ ॥
 अत्रष्टचदनच्छायं तमालोक्य निराकुलम् ।
 धुर्यः सत्त्वयतां कोऽयमिति ताक्षर्यो व्यचिन्तयत् ॥ १०४ ॥
 पृष्टः कोऽसीति वृत्तान्तं स्वयं तसौ न्यवेदयत् ।
 लुप्तं वरदोऽसीति तमाह भुजगान्तकः ॥ १०५ ॥
 हतानामस्त्रिभूतानां जीवितं फणिनां ततः ।
 नागाशननिवृत्तिं च सोऽप्याचत वरं वरम् ॥ १०६ ॥
 पतगेन्द्रे तथेत्युवत्वा गते सिक्त्वा सुधारसैः ।
 पित्रा मलयवत्या च संगतो बान्धवैरपि ॥ १०७ ॥
 विद्याधरैः समभ्येत्य प्रार्थितस्तुहिनाचले ।
 चक्रवर्तिपदं भेजे निजं जीमूतवाहनः ॥ १०८ ॥
 श्रुत्वेति राजमहिषी विद्याधरकथाद्भुता ।
 वैभूव हर्षसपूर्णा घ्यायन्ती तस्य चेष्टितम् ॥ १०९ ॥
 इति जीमूतवाहनाख्यायिका ॥ ३ ॥
 पुनः कदाचित्प्रत्यूषे देवीं संसदि भूपतिः ।
 यौगन्धरायणपुरः प्रोवाच श्रवणामृतम् ॥ ११० ॥

देवि मामवदत्त्वमे भस्मसेरो जटाधरः ।
 गजेन्द्रकृत्तिवसनः श्यामकण्ठस्त्रिशूलधृक् ॥ १११ ॥
 सर्वविद्याधराधीशं सरं जन्मान्तरागतम् ।
 जनयिष्यसि लोलाक्षि पुत्रं वंशविभूषणम् ॥ ११२ ॥
 प्रातर्वत्सेश्वरपुरो दम्पत्योर्मविता मिथः ।
 विद्यादस्तत्र पुरुषो निष्पापो न तु तद्वधूः ॥ ११३ ॥
 उपत्वेत्यदर्शनं याते तस्मिन्हर्षवशादहम् ।
 प्रबुद्धा मागधवधूधृन्दमङ्गलगीतिभिः ॥ ११४ ॥
 इत्युक्तवत्यां भूपालवल्लभायां नरेश्वरम् ।
 प्रविश्य प्रणतोऽभ्येत्य प्रतीहारो न्यजिज्ञप्त् ॥ ११५ ॥
 देव द्वारि स्थिता कापि योपिहन्धूजनावृता ।
 भर्त्रा विवादं भर्तव्यं यात्रायां समुपागता ॥ ११६ ॥
 रापुत्रया तया कृष्टस्तद्वन्धूजनताडितः ।
 स वक्ति पुरुषः सर्वं दत्तमस्मै मया धनम् ॥ ११७ ॥
 न किञ्चिदिति योपिह प्रमाणमधुना नृपः ।
 इति प्रतीहारवचः श्रुत्वा मन्त्रीत्यवोचत् ॥ ११८ ॥
 साक्ष्यं साक्षान्निनेत्रेण देव्याः स्वप्ने प्रमापितम् ।
 निष्पापः पुरुषस्तावत्तथाप्यन्विष्यतां पुनः ॥ ११९ ॥
 तस्यै दत्तं न दत्तं वा ज्ञातव्यं चेति साक्षिभिः ।
 लोकप्रत्ययसारा हि महतां प्रभुविष्णुता ॥ १२० ॥
 उपत्वेत्यमात्ये विरते तयोर्विवदमानयोः ।
 सयं श्रुत्वा नृपश्चक्रे साक्षिशेषं विनिर्णयम् ॥ १२१ ॥
 तनो वसन्तकः प्राह तां कथावसरे हसन् ।
 अन्यामक्तेव योषैषा सती द्वेष्टि निजं पतिम् ॥ १२२ ॥
 वाराणस्यां पुरा वीरो यमूव नृपसेवकः ।
 रूपाभिजनगणपतो नाम्ना सिद्धपराक्रमः ॥ १२३ ॥

भार्या कलहकार्याख्या तस्मासीत्तरुपक्षरा ।
 धनमद्रोऽपि स तया शोषितः कलहाम्बिना ॥ १२३ ॥
 स विन्ध्यवासिनीं गत्वा तपसा प्राप तद्वरात् ।
 निधानं हेमसंपूर्णं रत्नपात्रं च निर्मलम् ॥ १२५ ॥
 चक्षुस्त्रासिन्समाधाय पात्रे यो यः प्रतीक्षते ।
 लोकेऽसिंस्तस्य तद्वारा पूर्वजातिर्विजोयते ॥ १२६ ॥
 इति देवीगिरा ज्ञात्वा पात्रे कृत्वा स लोचने ।
 प्राजातौ सिंहमात्मानं जायामृक्षी च पृष्टवान् ॥ १२७ ॥
 त्यक्त्वा जातिविरुद्धं च सत्कलत्रं रूपः पदम् ।
 समानजातिसुभगां तेनेत्रालोक्य कन्यकाम् ।
 १सिंहमात्मा न जायकाम् ॥ १२८ ॥
 रत्नगुल्लस्य यणिजो भेजे सिंहवतीं मुताम् ।
 निरस्य योषितं हीनां प्राणिजातविरोधिनीम् ॥ १२९ ॥
 इत्येवं पूर्वसाजात्यविरोधात्कमत्वोऽपि वा ।
 नृणां भार्यामुद्वत्पुत्रैर्जायते कलहानलः ॥ १३० ॥
 इति सिंहपराक्रमान्यायिका ॥ ४ ॥
 वसन्तकस्येति गिरं श्रुत्वामृद्धिमितो नृपः ।
 साक्षिषादनितां तां च निराश्वक्रुर्वेचं पुरान् ॥ १३१ ॥
 अग्रान्तरे मुतं प्राप तुल्यं यौगन्धरायणः ।
 महामूर्तिकनामानं निधानमिव संपदाम् ॥ १३२ ॥
 पुरं हरिद्रिस्ताम्यं च रमण्वान्समवाप्तवान् ।
 नित्योद्यतः प्रतीहारो लेभे पुत्रं च गोमुक्तम् ॥ १३३ ॥
 पते सहाया वत्सेन्नसूनोर्विद्यावरप्रभोः ।
 भविष्यन्ति गिरं जातेष्वेपु देवी तमन्वरात् ॥ १३४ ॥
 अथ पुण्यकृतां योम्ये मुहूर्तं शुभदैवते ।
 अमृतं तनयं देवी मुरारिमिव देवकी ॥ १३५ ॥

सा तेन स्फारमहसा चौरिवामृतरोविषा ।
 वमौ देवी कुमारेण कुमारेणेव पार्वती ॥ १३६ ॥
 ततो महोत्सवोत्साहप्रभोदाकुलतां गतम् ।
 वभूव नगरं हर्षादालिङ्गितमिव श्रिया ॥ १३७ ॥
 अथोच्चचार गगनात्पुष्पवर्षपुरःसरा ।
 दिव्यवाणी नृपस्याग्रे पीयूषादिव निर्गता ॥ १३८ ॥
 अर्घं विद्याधरनृपश्चक्रवर्ती तवात्मजः ।
 नरवाहनदद्याल्यो जातः कामो महीपतौ ॥ १३९ ॥
 इति शङ्खस्वराविद्धं दिव्यं दुन्दुभिसंभृतम् ।
 श्रुत्वाप्सरोगीतियुतं ननन्द वसुधाधिपः ॥ १४० ॥
 मरुभृतिप्रभृतिभिर्मन्त्रिसेनाधिपात्मजैः ।
 सेव्यमानः स वष्टु सद् लोकमनोरथैः ॥ १४१ ॥
 जातेनोदयमभूताथ महसा तेन प्रवृद्धश्रिया
 हर्षोल्लासकलाकलापनिधिना नेत्रामृतस्यन्दिना ।
 आनन्दस्फुटचन्द्रिकामृतमुधारान्तेन बालेन्दुना
 सर्वांशपरिवेशमूपणतुलामासाथ बन्धोऽभवत् ॥ १४२ ॥
 इति क्षेमेन्द्रविरचिते वृहत्कथासारे नरवाहनजन्मनामा चतुर्थो लम्बकः समाप्तः ।

चतुर्दशिकांशनामा पञ्चमो लम्बकः ।

प्रथमो गुच्छः ।

त्वङ्मृदङ्गमुदङ्गदिन्दुशकलं वेङ्गत्तुलाकुलं

पायाद्वः श्वसदङ्गद्वोरुमुजगं चण्डीपतेस्नाण्डयम् ।

यस्योद्भ्रान्तमुजप्रबन्धचलनायातोत्तलत्मागर-

स्फाराग्मःपटलैः पुरं पटमिवासक्तं समातेन्वत् ॥ १ ॥

अथ दृष्टं महीपालं प्राह यौगन्धरायणः ।

सुरोचितमुनावास्या देव दिष्टा चिवर्धसे ॥ २ ॥

रक्षायै तव पुत्रस्य स्वयमेत्य पिनाकिना ।
नियुक्तः स्तम्भको नाम दुरितस्तम्भको गणः ॥ ३ ॥
अवतीर्णं प्रभुं ज्ञात्वा सर्वे विद्याधराधिपाः ।
वर्तन्ते भवतः सूनोरभिषेकप्रतीक्षिणः ॥ ४ ॥
इति नारदनिर्दिष्टं निवेद्यामात्यपुंगवः ।
विदधे राजपुत्रस्य विद्याविनयसंपदम् ॥ ५ ॥
प्रकृष्टानन्तसामन्तमौलिमास्यधरां समाम् ।
अध्यासीनेऽथ नृपतौ हिमवर्षमभूजमः ॥ ६ ॥
ततोऽधतीर्य नमसा सर्वां विद्याधरोऽविशत् ।
शक्रचारुशतैः कुर्वन्मूपणांशुशतैर्दिशः ॥ ७ ॥
गण्डताण्डवितानीलरत्नकुन्तलकान्तयः ।
मुखेन्दो चक्रिरे तस्य लक्ष्म लेखा शशजगम् ॥ ८ ॥
दयामलाकाशखट्वांशुमूपितः स यमौ मुहुः ।
अदभ्रमिय विज्राणो नीलोत्पललक्ष्मजम् ॥ ९ ॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य विस्रयाग्निभृतो नृपः ।
लोलहारः समुत्तस्थो संस्मरणिताङ्गदः ॥ १० ॥
प्रातपूजासने तस्मिन्नाज्ञा सह समासदः ।
तन्मुखन्यस्तनयना यमवर्लिखिता इव ॥ ११ ॥
पृष्टः कोऽसीति स प्राह शुभ्रदन्तांशुसंचयः ।
कैलासवासिप्रीत्येव रचयन्स्फाटिकीं समाम् ॥ १२ ॥
नेत्रोत्सवं श्रुतिमुखं कल्याणानां च संपदम् ।
किरन्ति दर्शनालापसंगतानि भवादृशाम् ॥ १३ ॥
शक्तिदेवाभिधानोऽहं देव विद्याधरेश्वरः ।
कैलासवासस्तत्पूर्वं स्वामिनं द्रष्टुमागतः ॥ १४ ॥

सर्वविद्यामृतामेव चक्रवर्ती मविप्यति ।

हरप्रसादादाकर्ण्य स्मरः साक्षात्तवात्मजः ॥ १५ ॥

इत्याकर्ण्य सुधाधारसिक्ताङ्ग इव भूपतिः ।

अदर्शयत्सुतं तस्मै देव्या उत्सङ्गमूपिणम् ॥ १६ ॥

ततः पृष्टो निजकथां भूपालेनाभ्यभाषत ।

प्रणम्य राजतनयं शक्तिदेवः कृताञ्जलिः ॥ १७ ॥

इति शक्तिदेवसमागमकथा ॥ १

राजा परोपकारीति वर्धमानपुरेऽभवत् ।

तस्य हेमप्रभा नाम बल्लभामूदनहम्भूः ॥ १८ ॥

कन्या कनकलेखाख्या तस्यां तेन महीभुजा ।

उपपादि जगज्जैत्रयात्रा लक्ष्मीर्मनोभुवः ॥ १९ ॥

कनकाख्या ननु पुरी दृष्टा येन मे पतिः ।

इत्युद्वाहविधौ चक्रे सा व्रतं दृढनिश्चया ॥ २० ॥

पुण्याः प्रतिज्ञां जिज्ञाय प्रौढयौवनसंपदः ।

अज्ञातां च पुरीं मत्वा नृपः शोकाकुलोऽभवत् ॥ २१ ॥

दृष्टा कनकपुर्याख्या येन लक्ष्मीं सुतां स मे ।

संप्राप्स्यतीति विदधे नृपः पटहघोषणम् ॥ २२ ॥

न दृष्टा न धृता वापि सा पुरीति महीतले ।

यचो निशम्य लोकानां राजामूढशुद्धुःखितः ॥ २३ ॥

अत्रान्तरे शक्तिदेवो द्विजन्मा घूतकृन्मृषा ।

भूपालमव्रगीदेत्य मया दृष्टेति सा पुरी ॥ २४ ॥

इति ब्रुवाणं तं राजा नीरसं स्वतनयान्तिकम् ।

अनेन पुत्रि सा दृष्टा पुरीति ग्राह सादरम् ॥ २५ ॥

क वा कथं वा दृष्टेति पृष्टः कनकलेखाया ।

पुरीमकथयन्मिथ्या वर्णनानिपुणोऽथ सः ॥ २६ ॥

असकृद्बहुजस्योऽयमिति मिथ्यावचः कृषा ।
 स तथा श्रुकुटिप्रान्त्या चेष्टिकाभिस्त्रिस्तुतः ॥ २७ ॥
 निरस्तोऽजमानाभिषुष्टो दुर्गतिपीडितः ।
 कनकाख्यां पुरीं द्रष्टुं प्रययौ कृतनिश्चयः ॥ २८ ॥
 तं समुत्सारितं कृत्वा चिन्तासंतापितो नृपः ।
 शुशोच तनयां पश्यन्फुल्लयौवनञ्जालिनीम् ॥ २९ ॥

..... ॥ ३० ॥

अयासकन्यकारत्वं पुरोहितमनुस्मितम् ।
 यत्कौसलेन नगरे धनवान्को न वञ्चितः ॥ ३१ ॥
 ततो महाधनं ज्ञात्वा भूमिपालपुरोहितम् ।
 निर्जरे रत्नमालेन कथं दुःखा [च] मे सुता ॥ ३२ ॥
 किं निरस्तस्त्वया पुत्रि स दृष्टा येन सा पुरी ।
 पितुः श्रुत्वेति सा प्राह कन्या कमललोचना ॥ ३३ ॥
 धूर्तः स कितवो देव न तत्त्वं किञ्चिदुक्तवान् ।
 साधुभ्रान्त्या हि मुष्णन्ति धूर्ताः सरलवचकः ॥ ३४ ॥
 पुरा रत्नपुरे धूर्ताविमूर्ता शिवमाधवौ ।
 उज्जयिन्यां पृथग्वेपी जम्भतुर्वच्चनोद्यतौ ॥ ३५ ॥
 पूर्वं शिवः समभ्येत्य सैरं दम्भवतं ब्रितः ।
 शिप्रातीरे जपरतस्तस्यौ विश्वासयजनम् ॥ ३६ ॥
 विमृष्टराजवंशेन धूर्तश्च स हि माधवः ।
 तं पुरोहितमभ्येत्य दत्तोपायनमभ्यधात् ॥ ३७ ॥
 त्वया सौहार्दमाधाय सेवे राजानमुत्तमम् ।
 इति शंकरदत्ताख्यः श्रुत्वा वाचं पुरोहितः ॥ ३८ ॥
 अहं खदेशविभ्रष्टो राजपुत्रो महाधनः ।
 तथेत्युक्त्वास्य विदधे राजसिंहेन संगमम् ॥ ३९ ॥

सेवमानो नरपतिं पुरोहितगृहस्थितः ।
 स कदाचिदनिर्देश्य रोगान्मिथ्यातुरोऽभवत् ॥ ४० ॥
 अस्वस्थमथ विज्ञाय दुःस्वाक्रान्तः पुरोहितः ।
 पुनः पुनः समभ्येत्य तमपृच्छदनामयम् ॥ ४१ ॥
 सोऽब्रवीद्राजयोग्यं मे विद्यते रत्नभूषणम् ।
 पात्रमानय यस्यै तद्वत्त्वा यास्यामि सद्गतिम् ॥ ४२ ॥
 यियासोः पञ्चतां पुंसः सुहृदां भिषजां पुरः ।
 दीर्घान्धकारे पततो दानमेव परा गतिः ॥ ४३ ॥
 इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सरलात्मा पुरोहितः ।
 आनिनाय बहन्विप्रान्स च तान्नाभ्यमन्यत ॥ ४४ ॥
 ततः क्षिप्रान्तदस्थं तं जपव्रतपरायणम् ।
 पुरोहितः शिवं गत्वा प्राह मित्रमनोगतम् ।
 किं धनैरगृहस्थस्य मामेत्यामीलितेक्षणम् ॥ ४५ ॥
 अथोपपण्विचनैस्तमभ्यर्च्य पुरोहितः ।
 प्रियां पुत्रीं प्रदायास्मै प्रतिग्रहमदापयत् ॥ ४६ ॥
 माधवस्तद्विरा तस्मै काचकृत्रिमभूषणम् ।
 प्रतिपाद्याभवत्त्वस्यो मूर्तां मायामिवात्मनः ॥ ४७ ॥
 विक्रीणानन्ततो ज्ञात्वा प्राह जामातरं शिवम् ।
 पुरोहितो न कालेऽस्मिन्योग्यस्ते रत्नविभूषणः ॥ ४८ ॥
 गृहाण मे धनं सर्वं मय्येवार्पय भूषणम् ।
 इत्युत्त्वा तौ परावृत्तिं धनलेखं न चक्रुः ॥ ४९ ॥
 शिवस्तद्वनमादाय माधवेन सहानिष्टम् ।
 प्रमोदं प्राप्य संभोगमुपासंसिक्तमानसः ॥ ५० ॥
 पुरोहितोऽपि कालेन व्रीतकृत्रिमभूषणः ।
 नितः स्युहम्नलेखेन विवादे भूपतेः पुरः ॥ ५१ ॥
 स्वया व्याजादिदं दणमिति पृष्टः सभामन्दैः ।
 माधवोऽप्याह दणं यत्फलं समुपेक्ष्यति ॥ ५२ ॥

इति अगन्ति कूटेन घूर्ता वञ्चयितुं जनम् ।

कस्तेषां हि वशे घीमान्विश्वासं याति मायिनाम् ॥ ५३ ॥

इति शिवमाधवाख्यायिका ॥ २ ॥

श्रुत्वेति वचनं पुञ्याः ग्राह शोकाकुलो नृपः ।

पुत्रि त्वया प्रतिज्ञाय सश्रये जनिता वयम् ॥ ५४ ॥

त्वां यौवनवतीमाह कन्यैव सुमध्यमे ।

अप्रत्ययश्च लोकोऽयं न जाने किं भविष्यति ॥ ५५ ॥

अन्यं भर्तारमासाद्य कल्पिताश्चर्यवादिनः ।

नरास्त्यक्तस्वर्माणो मोदन्ते साधुनिन्दया ॥ ५६ ॥

परापवादं संहृष्टा गुणलेशासहिष्णवः ।

लीलयोत्पादयन्त्येव मिथ्यादोषं सतां खलः ॥ ५७ ॥

कुसुमाख्ये पुरे पूर्वं तपस्वी नियतेन्द्रियः ।

उवास ब्राह्मणवरो हरस्वामी गुणाधिकः ॥ ५८ ॥

ततः कदाचिज्जनिता मध्ये तद्गुणसत्तवे ।

उवाच दुर्जनः कश्चिदुष्मासिः किं तु न श्रुतम् ॥ ५९ ॥

बाला दुरात्मनानेन भक्षिता निखिलः पुरे ।

इति तत्पक्षे वाक्यमेकद्वित्रिचतु क्रमात् ॥ ६० ॥

हा हरस्वामिना कृत्वा बालका भक्षिता. पुरे ।

प्रवाह इति सर्वत्र वभूव निरवग्रहः ॥ ६१ ॥

ब्रह्मोत्तरे जनपदे तद्विधासनसगते ।

निजापवादनिर्विण्णो हरस्वामी सभां ययौ ॥ ६२ ॥

तमागतमभिप्रेक्ष्य सामर्पणमविह्वल ।

चक्रन्प्रे मक्षणभयात्कृतान्तालोकनादिव ॥ ६३ ॥

ततो व्यजिज्ञपत्सर्वान्हरस्वामी कृताञ्जलिः ।

दारका भक्षिताः कस्य मया भृतां स ससदि ॥ ६४ ॥

कियन्तस्ते कियन्तस्ते पुत्राः सन्तीति तान्क्रमात् ।
 पप्रच्छ भक्षितास्तेभ्य कियन्तश्चेति गण्यताम् ॥ ६५ ॥
 श्रुत्वेति तस्य वचनं गणयित्वा निजान्सुतान् ।
 निर्विकारा वयमिति प्रययुर्लेज्जिता द्विजाः ॥ ६६ ॥
 इत्यनालोक्ष्य सद्भावं वदन्त्येके तथा परे ।
 पशूनामिव यूथोऽयं गतानुगतिको जनः ॥ ६७ ॥
 इति हरस्याभ्याख्यायिका ॥ ३ ॥

पितुः श्रुत्वेति वचनं न चचाल समीहितान् ।
 वज्रलेपादपि दृढो मानिनीना हि निश्चयः ॥ ६८ ॥
 अत्रान्तरे शक्तिदेवः प्रययौ दक्षिणा दिशम् ।
 द्रष्टव्या फाञ्चनपुरी मर्तव्य चेति सपदा ॥ ६९ ॥
 ततो विन्ध्याटवीं प्राप्य तालहिन्तालमालिताम् ।
 वदर्श सूर्यतपस मुनिं मुनितपोवने ॥ ७० ॥
 पृष्टः कं प्रस्थितोऽसीति मुनिना विगतक्लमः ।
 गच्छामि काञ्चनपुरीं कं च सास्तीत्यभाषत ॥ ७१ ॥
 प्रयासि नैव जानासि विचित्रं चै तवेप्सितम् ।
 अहं तौत न जानामि चिरायुरपि ता पुरीम् ॥ ७२ ॥
 कैम्पिलेऽस्ति मम आता स्थितो दीर्घतपा मुनिः ।
 अपि जाने स जानाति न चेदन्यो न विद्यते ॥ ७३ ॥
 इति तस्य गिरा गत्वा काम्पिले मुनिसत्तमम् ।
 पप्रच्छ तं स च ब्राह्म न जानामीति सा पुरीम् ॥ ७४ ॥
 दासराजोऽग्नि अल्पावुत्पलद्वीपसथयः ।
 मन्ये सत्यव्रताद्भ्योऽसौ वृद्धो जानाति ता पुरीम् ॥ ७५ ॥
 क्षुरेति दीर्घतपसः शक्तिदेवो मुनेर्वचः ।
 तूष्णमुत्पलद्वीपं मन्ये वृत्तनिश्चयः ॥ ७६ ॥

१ 'गिरि' ख. २ 'संवाच' ख. ३ 'तव चेष्टितम्' ख. ४ 'तावता' ख.
 ५ 'सो विदरे भगवो मे स्थितो दीर्घतपा मुनिः' ख पुनर्लेख्य पाठः.

स गच्छन्नाससाद्वाय्यौ वणिजं द्वीपगामिनम् ।
 समुद्रमत्यन्तानामनं निधिनायमिवापरम् ॥ ७७ ॥
 आरुह्य तत्प्रवहणं सौहार्देन निषेव्य तम् ।
 ददर्श पयसां सार्धं गन्मीरावर्तमीपणम् ॥ ७८ ॥
 ब्रह्माण्डं मण्डपस्फारस्फटिकस्तम्भविभ्रमैः ।
 उत्तुङ्गविपुलमोगतरङ्गेर्लङ्घिताम्बरम् ॥ ७९ ॥
 घनगर्भितविस्फूर्जन्मरुजध्वनितोज्जितम् ।
 अंताण्डवचलञ्चण्डवीचिदोर्दण्डमण्डलैः ॥ ८० ॥
 आसेन्यमानमभितो पृथुपर्जन्यसंचयैः ।
 नैनाकरक्षासंजातप्रणयैरिव मूर्धैः ॥ ८१ ॥
 संसारमिव दुष्पारमायासमिव दुःसहम् ।
 भायाजालमिवानन्तं मूर्खं खलमिवोद्धतम् ॥ ८२ ॥
 तत्र प्रवहणारूढः सोऽपद्यन्निलिला दिशः ।
 स्फारकलोलपटलीदुकूलबलिता इव ॥ ८३ ॥
 अधोदतिष्ठद्योमश्रीः कालगुरुविशेषकः ।
 मेघस्तमालमलिनयालसूकरविभ्रमः ॥ ८४ ॥
 यातः ॥ शृद्धिं सहसा दुर्जनव्यसनोपमः ।
 चक्रे लोकं निरालोकं विमोह इव मानवम् ॥ ८५ ॥
 ततस्तत्प्रभवोद्भूतवात्याबलयसंभवैः ।
 ययौ जलघितां व्योम व्योमतां च महोदधिः ॥ ८६ ॥
 तस्मिन्सरस्त्रसंघट्टम्फोटिताशेषदिक्कटे ।
 उद्भूतमलयोज्ज्वान्तपुष्करावर्तकध्वनिः ॥ ८७ ॥
 ततस्तदिति साटोपश्रुतिताशेषवन्धनैः ।
 अभज्यत प्रवहणं वणिजां हृदयैः सह ॥ ८८ ॥
 तस्मिन्निर्माणैः मत्स्येन विशालवपुषा ततः ।
 शक्तिदेवः परिपतन्गीर्णस्तूर्णं सरंहसा ॥ ८९ ॥

१. 'त ताण्डवितमुद्दण्डवीचिदोर्दण्डमण्डलैः' श. २. 'द्वीपगामिनं' स. ३. 'मते' स.

वणिक्पुत्रः फलहृक्सादनात्प्राप्तजीवितः ।

मत्स्योऽप्यसावुत्पलकद्वीपवद्धो निषादकैः ॥ ९० ॥

धीवरोर्विनिकृत्तोऽथ मत्स्यो दासपतेः पुरः ।

स विप्रो निर्ययौ जीवन्दुर्विज्ञेया विधेर्गतिः ॥ ९१ ॥

घोरान्धकारानिर्मुक्तः शक्तिदेवोऽथ विसयात् ।

पृष्टो दासाधिपतिना ग्राह्यगमनकारणम् ॥ ९२ ॥

कनकाख्यां पुरीं द्रष्टुं आन्तोऽस्मि पृथिवीमिमाम् ।

न सा दृष्टा शुक्ता वापि ततः पृष्टो मया मुनिः ॥ ९३ ॥

स मामुवाच दासानामस्ति सत्यव्रतः पतिः

तं प्रच्छेति निशम्याहं संप्राप्तो मकराकरम् ॥ ९४ ॥

तत्र प्रवहणे भस्मे निर्गीर्णोऽहं जलौकसा ।

दैवादुर्बुधमिमां प्राप्तः कर्मबन्धो हि नान्यथा ॥ ९५ ॥

इत्याकर्ण्यत्रिषीदासः कौतुक्कलितो द्विजम् ।

सत्यव्रतोऽहमेवासौ न दृष्टा नगरी मया ॥ ९६ ॥

यत्नादन्विष्य वक्ष्यामि विथान्ति भज निर्दृतः ।

इति तस्य गिरा तस्मै तत्र रात्रिं द्विजाश्रमे ॥ ९७ ॥

इति शक्तिदेवप्रवहणमङ्गकथा ॥ ४ ॥

ततस्तु संगतो दैवाच्चिराद्वीपान्तमाधितः ।

विज्रातो मातुलेयेन आत्मा निजकथान्तरे ॥ ९८ ॥

स ग्राह विष्णुदत्तात्म्यः शक्तिदेवं मुदान्वितः ।

काकतालीययोगेन दिष्ट्या मे बन्धुसंगमः ॥ ९९ ॥

इत्युक्त्वा तत्कथां श्रुत्वा स विनिद्रः श्रमातुरम् ।

तं ममाश्रमस्येद्वीरं कथामकथयन्निशि ॥ १०० ॥

गोविन्दस्वामी नाभागद्वारागो यैमुदातटे ।

निजयानोपदत्ताय्या तस्य पुत्रो बभूवतुः ॥ १०१ ॥

दुर्मिश्रोपहतेस्त्यक्त्वा स कदाचिविजां पुरीम् ।
 प्रययौ काशिनयरीं सपुत्रः सह मार्यया ॥ १०२ ॥
 ततः प्रयागमासाच पुण्यं दृष्ट्वा महावटम् ।
 कपालमालामरणं सोऽपश्यद्व्रतिनं पुरः ॥ १०३ ॥
 स पृष्टो ब्राह्मणं प्राह वियोगस्ते भविष्यति ।
 क्षिप्रं विजयदत्तेन भविता च समागमः ॥ १०४ ॥
 श्रुत्वेत्युयाच शर्वर्यौ शून्यदेवालयान्तरे ।
 समार्यः समुतो विप्रः सदूराध्यश्रमाकुलः ॥ १०५ ॥
 अशोकदत्तः सहसा ब्राह्मणी च निरन्तरम् ।
 निद्रामवाप्तुः सर्वदुःखनिःसरणावधिम् ॥ १०६ ॥
 सतो विजयदत्तोऽम्बुद्वयं शीतज्वरादितः ।
 कुण्डोत्फुल्लतनुः क्षिप्रं जले मत्स्य इवामितः ॥ १०७ ॥
 गाढं पित्रावगूढोऽपि शीतं सत्याज नैव सः ।
 यत्राल्लेहान्न तत्याज यथार्थमिव दुर्जनः ॥ १०८ ॥
 ययाचे बह्निनेवासौ पितरं दीनया गिरा ।
 मध्ये स्मन्वानमालोक्य दूरादेव चित्तानलम् ॥ १०९ ॥
 पुत्र वित्रासजनकश्चितामिः स्पर्शदूषकः ।
 अमङ्गलो न सेव्योऽयमिति प्रोवाच तं पितृ ॥ ११० ॥
 दन्तैर्दीणास्फुरद्वक्त्रो रोमाञ्चोद्भुतविग्रहः ।
 शीतज्वरार्तस्तं वह्निं पुनःपुनरयाचत ॥ १११ ॥
 पुत्रखेदाभिभूतोऽयं समाहर्तुं चित्तानलम् ।
 गोविन्दस्त्तामिनि गते दासकोऽप्यन्वयाद्भुतम् ॥ ११२ ॥
 समाप्य तापविकटां विकीर्णास्थिचितां चिताम् ।
 आलिङ्गन्निव सावेगः शनैर्निर्वृतिमाप्तवान् ॥ ११३ ॥
 ततः प्रोवाच पितरं तातेदं परिवर्तुलम् ।
 द्विजस्य सन्तु श्रुत्वेति काष्ठाग्रेण जघान तम् ॥ ११४ ॥

प्रदीप्ततरमाभाति बहौ रक्ताम्बुजोपमम् ।
 श्रुत्वेति तनयं प्राह ब्राह्मणो वीक्ष्य तत्पुरः ।
 येन तत्स्फुटनोद्गीर्णवसासिक्कमुखोऽभवत् ॥ ११५ ॥
 आस्वाद्यैव समादाय तत्कपालसमाकुलः ।
 पीत्वा वसां महाकायो बभूवातिभयंकरः ॥ ११६ ॥
 सोऽभूत्प्रकटदंष्ट्राख्यो विकटो निशि राक्षसः ।
 यस्यादृष्टासेन दिशश्चक्रन्दुः स्फुटिता ह्य ॥ ११७ ॥
 तस्मिन्वेगात्समाकृष्य पितरं हन्तुमुद्यते ।
 मा कृथाः साहसमिति प्रादुरासीद्वचो द्विजः ॥ ११८ ॥
 त्यक्त्वा जनकमाकाशं प्रययौ स्फोटकं जवात् ।
 कपालस्फोटनामाद्य समाहूतः स राक्षसैः ॥ ११९ ॥
 प्रातः सुतवियोगार्तिदह्यमानतनुर्द्विजः ।
 सभार्यो विललापोच्चैः कारुण्याद्वीक्षितो जनैः ॥ १२० ॥
 समुद्रदत्तनाम्नाथ वणिजा दुःखकर्षितः ।
 समाश्रय्य गृहं नीत्वा कृतो निजधने विभुः ॥ १२१ ॥
 स्मरन्महामतिवचः पुत्रसंगमलालसः ।
 स तस्यै वणिजो गेहे मनोरथशताकुलः ॥ १२२ ॥
 अशोकदत्तः शैलाम्बकल्पविद्याविशारदः ।
 द्वितीयोऽथ द्विजमुतः प्रक्षयातो नगरेऽभवत् ॥ १२३ ॥
 अत्रान्तरे नरपतिः प्रतापभुकुटाभिधः ।
 समायाते महामते तद्युद्धाय जुष्टाय तम् ॥ १२४ ॥
 अशोकदत्तस्तं भूपुरो बलवतां वरम् ।
 दाक्षिणात्यं महामते मायाविनमपानयत् ॥ १२५ ॥
 तत्कर्मगुह्योऽथ नृपः चक्रे भाजनं धियः ।
 विचित्रकर्मभिर्नयैः किमलभ्यं महात्मभिः ॥ १२६ ॥
 सैनानियुक्तः स गदा युत्तगलाशो दिवानिशम् ।

द्यायेव तस्यौ नृपतेरत्तसोचितसंनति ॥ १२७ ॥
 अथ कालेन मूपालः शिवार्चयै विनिर्गतः ।
 दूरात्पदोपसंघ्यायां शुश्राव विजने गिरम् ॥ १२८ ॥
 राजन्सत्यापराधोऽहं यत्रुमेरण्या सकृत् ।
 दण्डपालेन निक्षिप्तः शूले निर्घृणचेतसा ॥ १२९ ॥
 दिनमद्य चतुर्थं मे शूलस्वस्यैव जीवतः ।
 प्राणाः सुखेन निर्यान्ति नहि दुष्कर्मकारिणाम् ॥ १३० ॥
 भृशं मां बाधते तृष्णा तां निवारय मूपते ।
 श्रुत्वैव राजा कारुण्यादिदेशाग्रे स्थितं द्विजम् ॥ १३१ ॥
 अशोकदत्तोऽप्यादिष्टः क्षमाभुजा निशि धैर्यभूः ।
 ययौ कलशमादाय स्मशानं मारुघट्टनम् ॥ १३२ ॥
 स तत्र शूलप्रोतस्य ददर्शाघःस्थितां वधूम् ।
 दिव्याभरणरोचिष्णुमभां सिद्धिमिवात्मनः ॥ १३३ ॥
 सा प्राह वल्लभोऽयं मे राजा शूले समर्पितः ।
 व्यथते चातिकृपणः पश्य प्राणान्न मुञ्चति ॥ १३४ ॥
 अस्मौहं मरणोद्युक्ता स्थिताहं विजने निशि ।
 तृपितो याचते वारि मामयं व्यथते मुहुः ॥ १३५ ॥
 शूलप्रोतोऽदुतग्रीवं देवान्नवमिवेश्वरम् ।
 नासि प्रोपयितुं शक्ता जलमेवमद्य स्थिता ॥ १३६ ॥
 अशोकदत्तः श्रुत्वेति करुणाब्धिरुवाच ताम् ।
 मातर्मे स्कन्धमारुह्य देहासौ शीतलं जलम् ॥ १३७ ॥
 श्रुत्वेति नतैष्ट्यांसं सा पञ्चामारोह तम् ।
 प्रत्यग्रं निपतद्भूमौ रुधिरं च ददर्श सः ॥ १३८ ॥
 उन्नाम्य वदनं दृष्ट्वा मक्ष्यमाणं तयैव तम् ।

१. 'निहित' ख. २. 'अपानि याति' ख. ३. 'मरणोद्युक्तास्थिताहं' ख.
 ४. 'प्रापयितुं' ख. ५. 'प्रवपुर्ण' ख. ६. 'उत्तानवदनो दृष्ट्वा' ख.

अशोकदत्तो जग्राह तस्याः पादस्य नूपुरम् ॥ १३९ ॥
 सा त्यक्त्वा नूपुरं प्रायाद्बहुरत्नं विहायसा ।
 द्विजात्मजसुतादाय प्रययौ च नृपान्तिकम् ॥ १४० ॥
 तद्वीरचरितं ज्ञात्वा ददौ तस्मै महीपतिः ।
 सुतां मदनलेखाख्यामनालेख्यामिव श्रियम् ॥ १४१ ॥
 कदाचिदथ तं दिव्यनूपुरं वीक्ष्य भूपतिः ।
 तुल्योऽस्यान्यः कुतः प्राप्य इत्याहोत्कलिकाकुलः ॥ १४२ ॥
 अभिप्रायं नरपतेर्विज्ञाय कृतनिश्चयः ।
 स्मशानं नूपुराहारी स पुनः प्रययौ द्विजः ॥ १४३ ॥
 विक्रीणानो महामांसं भन्नाकृष्टमहाशयः ।
 गृहाणेश्वर्यया चाचा वैचने श्रावयन्दिशः ॥ १४४ ॥
 तत्र राक्षसकन्याभिः संगतः सत्त्वसागरः ।
 तत्त्वैरभिनीं समासाद्य प्रत्यभिज्ञानमाप्तवान् ॥ १४५ ॥
 ममैवासौ त्वया नीतः पुरा वीरेन्द्र नूपुरः ।
 गृहाण रत्नचिरं द्वितीयमपि नूपुरम् ॥ १४६ ॥
 इत्युक्त्वा नूपुरं तस्मै सा सुतां प्रददौ प्रियाम् ।
 यत्पुरः कान्तिदारिद्र्याद्विनिद्रो निशि चन्द्रमाः ॥ १४७ ॥
 विलासालंकृतमदां मदालंकृतविभ्रमाम् ।
 विभ्रमालंकृतानद्गामनद्गालंकृताकृतिम् ॥ १४८ ॥
 विद्युत्किर्दीमुतां प्राप्य स तां विद्युत्प्रमाभिषाम् ।
 हेमाक्षं नूपुरं तं च पुनः प्राप नृपान्तिकम् ॥ १४९ ॥
 राजाप्रतापमुकुटो नूपुरप्राप्तिनन्दितः ।
 कमलकलिकमलकारं प्राप्य तदम्बुजम् ॥ १५० ॥
 राज्ञा शंकरपूजार्थं ज्ञात्वान्यकमलायिताम् ।
 अशोकदत्तः प्रययौ पुनर्नक्तं चरिं प्रति ॥ १५१ ॥

१. 'पदं नूपुरम्' ख. २. 'वचसा' ख. ३. 'कान्तिनी स' ख. ४. 'पुरा' ख.
 ५. 'त्वया' ख. ६. 'साधारा' ख. ७. 'तत्र पुनः प्रायाद्' ख. ८. 'राजा सा' ख.
 ९. 'पदा' ख.

तं याचमानहेमाब्जं सा श्वश्रूः प्राह राक्षसी ।
 त्रिघण्टनाम्नि हिमवच्छिस्त्ररेऽस्ति पतिर्मम ॥ १५२ ॥
 लम्बजिह्व इति स्यात्तस्तेन तस्मात्समम्बुजम् ।
 प्रभोः कपालविस्फोटनाम्नो राक्षसमूपतेः ॥ १५३ ॥
 इति तद्वाक्यमाकर्ण्य नय मां राक्षसप्रभोः ।
 तस्य हेमाम्बुजसरो जग्मादेति द्विजात्मजः ॥ १५४ ॥
 तथा विहायसा नीतस्ततस्तत्काञ्चनं सरः ।
 जघान रक्षारक्षींति स मारुतिरिवापरः ॥ १५५ ॥
 स्वयं कपालस्फोटोऽथ निहताशेषराक्षसम् ।
 तं ददर्श सस्त्रीरे श्वापं द्वैव सोऽत्यजत् ॥ १५६ ॥
 श्वापमुक्तः स विज्ञाय आतरं संमदाकुलः ।
 आतर्विजयदत्तोऽहमित्याह प्रणनाम च ॥ १५७ ॥
 जमवं राक्षसपतेरहं सेनापतिश्चिरम् ।
 गन्धर्वैर्निहते तस्मिन् श्वापं तत्पदं ततः ॥ १५८ ॥
 अधुना मुक्तशपोऽहं श्रुत्वेत्यनुजभाषितम् ।
 अशोकदत्तः स्वजनैः संगतः प्राप निर्गुतिम् ॥ १५९ ॥
 प्रैजसिकौशिकाभिर्यो विबाधरपतिस्ततः ।
 तावभ्यधाद्युवां पूर्वं विबाधरकुमारकौ ॥ १६० ॥
 गालवस्य मुनेः कन्यां दृष्ट्वा कामवशं गतौ ।
 तच्छापान्मर्त्यजन्माद्य युवयोः क्षपितं च तत् ॥ १६१ ॥
 गृहीतमधुना विधामित्युक्त्वा विततार सः ।
 ततो विबाधरपदं प्राप्य तौ सह चान्धवैः ॥ १६२ ॥
 गोविन्दकूटनामानं दिव्यं न्योगमं पुरम् ।
 ननन्दतुस्तमप्येवं आत शङ्के श्रियः पदम् ॥ १६३ ॥

इत्यशोकदत्ताख्यायिका ॥ ५ ॥

श्रुत्वेति मातुलमुतादपरेषुरूपेत्य तम् ।
 सत्यव्रतं दासपतिं शुश्राव निजवाञ्छिते ॥ १६४ ॥
 रत्नकूटाह्वयद्वीपे सशुद्धेन प्रतिष्ठितः ।
 विष्णुस्तद्वादशीयात्रासमाजे बहुसंगमैः ।
 सर्वद्वीपागतजने^१ शङ्के सौ ज्ञायते पुरी ॥ १६५ ॥
 श्रुत्वेति दाससहितः शक्तिदेवोऽम्बुधिं ययौ ।
 ब्रजन्पोतेन जलधौ द्विजं दासाभिधो(धिपो)ऽभ्यधात् ॥ १६६ ॥
 इदमावर्तसंघट्टं महावेगतरङ्गिभिः ।
 गडवाभौ प्रबहणं पातितं मे महानिलैः ॥ १६७ ॥
 अयं महाघटतरुर्जले दिव्यमहीरुहः ।
 शौक्लामस्यावलम्बस्व नाहं शक्तो जराश्रितः ॥ १६८ ॥
 इत्युक्त्या चिटपालम्बितनौ तस्मिन्ममज्ज सः ।
 धन्यः पुण्यवत्तामेव परार्थे जीवितस्ययः ॥ १६९ ॥
 ततस्तल्लतासक्तो निशि शोकानलाकुलः ।
 ददर्श तं महावृक्षं महाकायैः खगैर्वृतम् ॥ १७० ॥
 तेषामेको गिरीन्द्राभो जटायुरिव जर्जरः ।
 अवदन्मानुषगिरा गत्या गमकथान्तरे ॥ १७१ ॥
 यूयं युवानो गन्तारः प्रातरर्गादिशो दश ।
 गन्तव्या काञ्चनपुरी वृद्धेन तु मया केचित् ।
 अपि गन्तुं न शक्या सा तयूयं यात मा चिरम् ॥ १७२ ॥
 श्रुत्वेति दाशनिधनप्रसोकोऽपि जहर्ष सः ।
 पुंगुं स्रक्र्मवैचित्र्यान् दुःखं न सुखं सदा ॥ १७३ ॥
 तनः भविष्य तद्वहः पक्षान्तविचरोदरे ।
 तद्वेगयातात्पत्यूपे तां प्राप स पुरीं क्षणात् ॥ १७४ ॥
 ततर्गा काञ्चनपुरीं काञ्चनश्यामलोरणाम् ।

१. 'दि' ख. २. 'मे' ख. ३. 'ने' ख. ४. 'गा' ख. ५. 'शारावलम्ब' १५मश्लोके जटायुः ख. ६. 'पतद्वेपथ' ख. ७. 'विह' ख.

कौतुकानां कुटुम्बं निधानं सर्वसंपदाम् ॥ १७५ ॥
 मनोरथैरप्यगम्यामप्राप्यां पवनैरपि ।
 प्रमोदनिर्मेरो दृष्ट्वा दृष्ट्यै ललिताक्षनाः ॥ १७६ ॥
 नीतः प्रियंवदस्तामिः संभाष्य मणिमन्दिरम् ।
 विद्याधरेन्द्रतनयां दृष्ट्वा नान्द्रमङ्गलाम् ॥ १७७ ॥
 लीलाशिल्पिनिस्त्रिषण्डामनेन च्छायावतंसकाम् ।
 पुनः श्रीकण्ठधरानुवृत्तामिव पार्वतीम् ॥ १७८ ॥
 तारुण्यकुञ्जराकृतां विलासकर्मलाकुञ्जाम् ।
 मूर्तामिव मनोजस्य त्रैलोक्यविजयश्रियम् ॥ १७९ ॥
 विद्रुमद्रुमलावण्यसुण्डाकैरधरांशुभिः ।
 बालातपैरिव सृष्ट्वां कामकेलिवनस्त्रलीम् ॥ १८० ॥
 धदग्रविभ्रममर्ही नेत्राभूततरङ्गिणीम् ।
 विलोक्य शक्तिदेवतां चिन्तयामादिति चिन्तयन् ॥ १८१ ॥
 विभ्रमामरणं रूपं द्यवप्यामरणं वपुः ।
 अहो बालकुरङ्गाक्ष्या विलासामरणा स्थितिः ॥ १८२ ॥
 निवेदितात्मवृत्तेन प्राप्तसत्कारसंपदा ।
 पृष्टां निजकथां तेन सा वभाषे शुचिमिता ॥ १८३ ॥
 पिता मे शशिलक्ष्ण्डाक्ष्यः श्रीमान्विद्याधराधिपः ।
 चतस्रस्तनयान्नस्य ज्येष्ठा तातामहं विभो ॥ १८४ ॥
 अहं चन्द्रप्रभा नाम चन्द्रदेवता भमानुजा ।
 शशिप्रभा च सुमते शशिलेखा च मुप्रभा ॥ १८५ ॥
 शापादयोमनपसो मुनेर्मैत्यैत्वमागताः ।
 जातिसारा भगिन्यो मे वभूवुः शोकद्वयः पितुः ॥ १८६ ॥
 तदुःशास्त्र्यत्कराज्येऽथ याते ताते तस्रो वनम् ।

इह स्थिताहमेकैव भगिनीसंगमाश्रया ॥ १८७ ॥
 गौरी पुरा मामवदन्मनुष्यस्ते मविष्यति ।
 पतिर्विधाधराधीशपदं प्राप्यानुजाश्च ते ॥ १८८ ॥
 भवानेनागिरुचितो जनस्यास्य मनःप्रभुः ।
 पित्रे निवेदयाम्येतत्स्वाधीना न हि कन्यकाः ॥ १८९ ॥
 त्वत्संगमे गुरोराज्ञां प्राप्तुं गच्छाम्यहं वनम् ।
 विनोदयेथा हृदयं त्वमिहैव क्षणान्तरम् ॥ १९० ॥
 ऊर्ध्वमन्दिरपाली च द्रष्टव्या नैव तु त्वया ।
 इत्युक्त्वा प्रययौ कान्ता लिम्पन्ती कान्तिभिर्नमः ॥ १९१ ॥
 कौतुकाकुलितः सोऽथ प्रविष्टो मन्दिरावलीम् ।
 ददर्श योषितस्त्रिभुवनं क्षयानां गतजीविताः ॥ १९२ ॥
 पृथग्देशेषु पर्यङ्के स्वच्छवीनपटावृताः ।
 सजीवा इव हरिष्यन्निद्राया इव निश्चलाः ॥ १९३ ॥
 पूर्वमंशुकमुद्राया ददर्शकां सुमध्यमाम् ।
 जित्वा जगत्स्मृतिभुवा न्यस्तां चापलतामिव ॥ १९४ ॥
 स्वयं चन्द्रर्षगुरुणा प्रतिष्ठार्मेघशंसिनीम् ।
 अधिवाम इव न्यस्तां शयने कान्तिदेवताम् ॥ १९५ ॥
 ततः कैनकलेखां तां परिज्ञाय महीपतेः ।
 परोपकारिणः पुत्री प्रदध्यौ विस्मितः क्षणम् ॥ १९६ ॥
 विरदौर्धानलोलप्रवासव्यसनाम्बुधौ ।
 यत्कृतेऽहं निपतितः संवेषा मन्मथोपधिः ॥ १९७ ॥
 इन्द्रजालमिदं किंस्विद्य वा सारवचना ।
 ध्यात्वेति शक्तिदेवोऽथ क्रमेणान्यां ददर्श च ॥ १९८ ॥
 तां दृष्ट्वा विमयाविष्टो मन्दिरेभ्योऽवरस्य सः ।

१. 'प्राप्तुमनुष्यस्ते' इति मवेत्. २. 'मनोऽन्तः' इति. ३. 'मवेत्सु' इति.
 ४. 'मवेत्' इति. ५. 'मवेत्सु' इति.

अपश्यद्विच्यतुरां मातङ्गस्यैव विस्मृतम् ॥ १९९ ॥
 सुरेणोत्सरितस्तेन पतितः सरसीजले ।
 वर्धमानपुरोपान्तादुन्ममज्ज ससंभ्रमः ॥ २०० ॥
 त्वमदृष्टमिवाशेषं मन्यमानोऽतिदुःखितः ।
 आन्ता नगरधीशेषु राजद्वारमवाप्तवान् ॥ २०१ ॥
 दृष्ट्वा हेमपुरी येन हृष्यते स नृपात्मजात् ।
 पुनः श्रुत्येति पटहं प्रतीहारमुवाच सः ॥ २०२ ॥
 सा मया काञ्चनपुरी दृष्टा राज्ञे निवेद्यताम् ।
 इति तस्य प्रतीहारो वचः क्षमापं व्यजिज्ञपत् ॥ २०३ ॥
 न्यस्तः कनकलेखाग्रे शक्तिदेवोऽथ ममूजा ।
 मया दृष्टा पुरी सा च सम्याः सप्रविभाधिकम् ॥ २०४ ॥
 असत्यवादी धूर्तोऽयं पुराणामिन्द्रिस्तुतः ।
 परोपकारितनया प्राद्वेति क्षणमस्मिता ॥ २०५ ॥
 शक्तिदेवोऽवदत्मुग्र दृष्टाश्चन्द्रप्रमानुजाः ।
 तिस्रः कनकपुर्यां त्वं तासां मध्ये निरीक्षिता ॥ २०६ ॥
 जातिसरा निघ्नमेति राजपुत्री कृतादरा ।
 श्रुत्वा हेमपुरीवातां विस्तरेण तद्विदिताम् ॥ २०७ ॥
 यया विद्याधरी मृत्वा तां पुरीं सा विहायसा ।
 अनुसंतुमशक्तोऽसीत् यमव मूढदुःखितः ॥ २०८ ॥
 पुनरव्यवसायैकसहायः पुरसंचयात् ।
 प्रामारण्यनदीर्घलोहहृत्पुत्रप्रययो धनैः ॥ २०९ ॥
 विटङ्कपुरमायाय तमेव वणिजं पुनः ।

१. 'भास्वरस्यैव विनिष्ठा' ख. २. 'धर्ममालः सुरावाता' ख. ३. 'जाह
 त्वात्प्रतिनोषिकम्' ख. ४. 'दुःखिता' ख. ५. 'मयेक्षिता' ख. ६. 'तस्यान
 गानुं देहं निर्मोहमिव पश्यामी । प्रयातां काञ्चनपुरीं तां विदोष्य विहायसा' ख.
 ७. 'गन्तुं' ख. ८. 'समुन्नीर' ख.

समुद्रमत्स्यनामानं दैवशात्यन्तविसितः ॥ २१० ॥

तीर्थः फलहकेनाहं भ्रमपोतस्तदाम्बुधौ ।

पित्रा यदृच्छयासेन वीक्षितो द्वीपगामिना ॥ २११ ॥

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य कथयित्वा निजां कथाम् ।

सत्कल्पितप्रवहणः शक्तिदेवोऽम्बुधिं ययौ ॥ २१२ ॥

द्वीपमुत्पलकं प्राप्तो दृष्टः सत्यव्रतात्मजैः ।

अनेन नः पिता नीतो हतो वेत्यभिभर्त्सितः ॥ २१३ ॥

तद्वाक्यात्पितरं ज्ञात्वा वडवाम्रिपतङ्गताम् ।

यातं ते च क्रुधा विप्रं यागे पशुमकल्पयन् ॥ २१४ ॥

स गाढनिगडावद्धः स्वप्ने कात्यायिनीवरात् ।

कृत्वा विद्याधरीं गूढां भेजे सत्यव्रतात्मजाम् ॥ २१५ ॥

विमुक्तबन्धनः प्राप कन्यां विन्दुमतीं सतीम् ।

गोमांसमारनम्रांसं ददर्श श्वपचं पथि ॥ २१६ ॥

दासपुत्री च तं दृष्ट्वा हर्म्यस्था प्राह वल्लभम् ।

गर्वां विकारलेशेन जातास्म्यनुचिते कुले ॥ २१७ ॥

गोमांसमक्षणात्पापाज्ञां जाने यान्ति कां गतिम् ।

धेनुस्त्रायुमयी तस्मै भया दन्तेन खण्डिता ॥ २१८ ॥

पीणाविनोदेनात्पापादियं मे दाससंगतिः ।

श्रुत्वेति तां कथां पृष्ट्वा शक्तिदेवेन सावदत् ॥ २१९ ॥

भविष्यत्यरा भार्या तव तद्गर्मपाटकः ।

यदि स्यात्तत्कथागेतां प्रवं शार्स्येति वार्त्ता ॥ २२० ॥

इति विन्दुमतीवाक्यं श्रुत्वा विप्रः सकौतुकः ।

१. 'समुद्रमत्स्य' इति कथापरिमाणरे १२८ पृष्ठे. २. 'मथूता' ख. ३. 'गोविं'
ख. ४. 'जात्यसचं' इति कथापरिमाणरे १२८ पृष्ठे. ५. 'श्रुत्वा' ख. ६. 'विगर्ह'
ख. ७. 'धेनुस्त्रायुमयी' ख. ८. 'गवाक्षरमलेवेन' ख. ९. 'दे तत्ता' ख.
१०. 'वर्षास्य' ख. ११. 'मयि' ख. १२. 'ना' ख.

बहिः कलकलं श्रुत्वा निर्ययौ सज्जकार्मुकः ॥ २२१ ॥
 ततः पुञ्जीकृतजनं दंष्ट्रिणं कज्जलच्छविम् ।
 सेन्दुलेखमिव ध्वान्तमपश्यत्सूकरं पुरः ॥ २२२ ॥
 तं जघान हतानेकजनं तीक्ष्णेन पत्रिणा ।
 स च सच्छरनिर्मिन्नो विवेश विपुलं विलम् ॥ २२३ ॥
 क्रोडानुसारी सहसा शक्तिदेवो रसातलम् ।
 प्रविश्य तस्य नगरीं वार्षीं कन्यां च दृष्टवान् ॥ २२४ ॥
 तमाह कन्यका दैत्यः शूकरोज्यं त्वया हतः ।
 अथैवासि हता तेन राजपुत्री सुरद्विपा ॥ २२५ ॥
 प्रमो गृहाण मे पाणिं तुल्योऽसि मम बल्लभः ।
 इत्युक्त्वावधां तां प्राप्य स जगाम यथागतम् ॥ २२६ ॥
 ततस्तां बिन्दुलेखाख्यां कालेनालोक्य गर्भिणीम् ।
 ज्येष्ठा बिन्दुमती प्राह शक्तिदेवं रहःस्थिता ॥ २२७ ॥
 तस्याः पाटय गर्भं त्वमिति श्रुत्वा विकृणितः ।
 स समेत्यैचिरत्कान्ताममूढ्यानपरायणः ॥ २२८ ॥
 सावदत्सिन्नमालोक्य दैयिता संनतानना ।
 प्रिय पाटय गर्भं मे बिन्दुमत्या वचः कुरु ॥ २२९ ॥
 श्रुत्वेति बिन्दुलेखायाः शक्तिदेवोऽतिविस्मितः ।
 सर्वज्ञां मन्यमानस्तामुवाच रचिताञ्जलिः ॥ २३० ॥
 नृशंसं कर्म पापिष्ठं कथमसद्विधौ जनः ।
 कुर्याद्वचः कथं ज्ञात्वा तत्पापमनुमन्यसे ॥ २३१ ॥
 इति प्रियतमेनोक्ता बिन्दुलेखावदत्पुनः ।
 नैतदध्रेयसे कर्म शृणु चित्रां कथामिमाम् ॥ २३२ ॥
 कैशुकस्नाननिलयो देवदत्तः पुरा जितः ।

द्यूतापहारिताशेषधनो वभ्राम भूतले ॥ २३३ ॥
 महाव्रतिनमासाद्य जालपादाभिघ्नं ततः ।
 तेनार्थितो बभूवासौ तन्मन्त्रोपरिसाधकः ॥ २३४ ॥
 तेनादिष्टस्ततो गत्वा सागानं वटश्चास्त्रिने ।
 पूजां कुसुमधूपार्घवलिपूर्वा प्रयच्छति ॥ २३५ ॥
 निष्पन्नसिद्धिः कालेन प्रविश्य स वटान्तरम् ।
 लेभे यक्षमुतां कान्तां सिद्धिं मूर्तिमतीमिव ॥ २३६ ॥
 हिरण्यवैर्पनाम्नस्तां तनयां यक्षभूपतेः ।
 विद्युन्मतीं समामग्र्य जालपादान्तिकं ययौ ॥ २३७ ॥
 जालपादोऽथ तं प्राह सिद्धिज्ञो हर्षसम्प्लुतः ।
 गच्छ गर्भं समुत्पाद्य तस्यास्तूर्णमिहानय ॥ २३८ ॥
 महाव्रतिवचः श्रुत्वा गत्वा यक्षमुतान्तिकम् ।
 स पापकर्मनिर्विण्णो नोचे किञ्चिदधोमुखः ॥ २३९ ॥
 विज्ञातैतदभिप्राया आह यक्षमुता द्विजम् ।
 क्षिप्रं पाटय मे गर्भं मा स भूः संशयाकुलः ॥ २४० ॥
 तच्छ्रुत्वा सोऽतिकारुण्याच्च चकार नृशंसतोम् ।
 यदा तदास्मै सा गर्भं पाटयित्वा स्वयं ददौ ॥ २४१ ॥
 प्राप्यते भक्षयित्त्वेन विद्याधरगतिं श्रमो ।
 इत्युक्तः संहसा गत्वा तद्गर्भं व्रतिने ददौ ॥ २४२ ॥
 जालपादोऽपि विधिना भुक्त्वा तद्गर्भमात्मना ।
 विद्याधरपटं प्राप देवं पयान्यवञ्चकः ॥ २४३ ॥
 यज्ञितो देवदत्तोऽथ निःशेषचरुमक्षणात् ।
 जालपादेन भूमिम्यस्तं ददर्श नभोगतिम् ॥ २४४ ॥
 यज्ञितोऽहं कृन्मनेन ध्यायन्निति मुदु रितः ।

१. 'गता' ख. २. 'पूर्ण' ख. ३. 'वर्ण' ख. ४. 'विद्युन्मती' इति वधवारित्वा
 १११ ११२ ५. 'य' ख. ६. 'य' ख. ७. 'य' ख. ८. 'त तदा' ख. ९. 'त'
 ग. १०. 'त' ख.

दत्त्वा स्वमांसं विदधे वीरो वेतालसाधनम् ॥ २४५ ॥

वेतालवाहनो गत्वा देवदत्तो विहायसा ।

विद्याधरपदं प्राप्य जालपादभवासवान् ॥ २४६ ॥

यक्षजातिविमुक्तां च प्राप्तां विद्याधरीपदम् ।

विद्युन्मतीमवाप्यासौ जालपादमपातयत् ॥ २४७ ॥

वेतालबलविभ्रष्टे महाव्रतिनि स द्विजः ।

विद्याधरो यमैव तवाप्यस्ति पुरः शुभम् ।

श्रुत्येवं शक्तिदेवोऽपि प्रसन्नहृदयोऽभवत् ॥ २४८ ॥

इति देवदत्ताख्यायिका ॥ ६ ॥

क्षिप्रं पाटय मे गर्भं नैतदश्रेयसे तव ।

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य शुश्राव नमसो गिरम् ॥ २४९ ॥

शक्तिदेवाचिरादेव गर्भं पाटय पाटय ।

राजा कनकपुर्यां त्वं व्योमचारी भविष्यसि ॥ २५० ॥

इत्युक्तस्तद्विधायासौ त्यक्तदेहं प्रियां पुरः ।

आकाशगामिनीं दृष्ट्वा गगनादशृणोर्युनः ॥ २५१ ॥

कण्ठे पीडय गाढं त्वं गर्भमेतं विनिःसृतम् ।

श्रुत्येति मुष्टिना गाढं तं जग्राह महाद्ययः ॥ २५२ ॥

स तेन पीडितो गर्भः सन्नोऽभूद्भुजगच्छविः ।

फुल्लोत्पलवनानीय ययमाभिरमूजमः ॥ २५३ ॥

यातायां विन्दुलेखायां ग्राह दासमुवा पतिम् ।

अयं स्वप्नस्त्वया प्राप्तो विद्याधरगतिप्रदः ॥ २५४ ॥

अहं कनकलेखायां विन्दुलेखा च या त्वया ।

शयने विगतप्राणा दृष्टा बलम ता वयम् ॥ २५५ ॥

क्षिता कनकपुर्यां सा ज्येष्ठा चन्द्रपमा मम ।

क्षिप्रं तदेहि गच्छाव शपोऽसौ विगतोऽयं नः ॥ २५६ ॥

इति तद्वचसा व्योम समुत्पत्य तथा सह ।
 शक्तिदेवो ययौ खञ्जी पुरीं तां कनकाह्वयाम् ॥ २५७ ॥
 चतस्रः कन्यकाः प्राप्य सरसागरचन्द्रिकाः ।
 तत्र विद्याधरो भूत्वा नमन्दानन्दविभ्रमः ॥ २५८ ॥
 शशित्वण्डश्रियं प्राप्य शक्तिदेवो महाशयः ।
 शक्तिवेगाभिघां लेभे खञ्जविद्याधरेश्वरः ॥ २५९ ॥
 इत्याससाद विभवं वत्सेश्वर चिराय यः ।
 सोऽदमेवागतो द्रष्टुं त्वत्पुत्रं नरवाहनम् ॥ २६० ॥
 सर्वविद्यामृतां नाथो दृष्टोयं तनयस्तब ।
 स्वस्त्यस्तिपदानीं गच्छामि पुनरन्तु समाम्भः ॥ २६१ ॥
 इति शक्तिदेवकथा ॥ १

इति गिरममृतौघस्यन्दिनीं वत्सराजः
 प्रियसचिवसहायन्स्य रम्यां निशग्य ।
 अभवदतुलहर्षसोरकान्तिप्रतापै-
 प्रकटितनिजमूनुः स्वच्छकैान्तिप्रवाहः ॥ २६२ ॥
 आमद्वय राजानमदीनसत्त्वो विद्याधरेन्द्रो दिवमुत्पपात ।
 कुर्वन्मुहुः कुण्डलताण्डवेन मार्तण्डमालाभरणा इवाशाः ॥ २६३ ॥
 इति केमेन्द्रविरचिते पृथक्कथासारे चतुर्दशरत्नामा पञ्चमो लम्बकः समाप्तः ।

सूर्यप्रभनामा षष्ठो लम्बकः ।

पञ्चमो शुद्धः ।

देवो भवः न भवतां भवताद्विभूत्यै
 यस्यार्वहन्त्यसितमूपणमोगिमोगः ।
 नेत्रानलाकलितकालकलेवरोत्थ-
 पर्यत्पुष्पपटलीवलनाविनोदम् ॥ १ ॥

१. 'नन्तविभ्रमः' ख. २. 'न' ख. ३. 'दीनि' ख. ४. 'भवेद्वसि'
 ५. 'रिलासम्' ख.

ततः कदाचिद्वत्सेनो सर्वास्वानसमास्थिते ।
 ततश्चाञ्जनसन्ध्यायगृहस्थत नमस्तत्पु ॥ २ ॥
 गगनादवतीर्णोऽथ सन्वी रुचिस्तुण्डलः ।
 द्वितीय इव भार्तेण्डः सभां विद्याधरोऽविशत् ॥ ३ ॥
 स नेत्रानन्दसदोद्दृश्याङ्को रुचिराम्बरः ।
 पूजितो वत्सराजेन पृष्टः प्राहाथितासैनः ॥ ४ ॥
 राजन्नरोपसुवनोद्यानचन्द्रोदयश्रिया ।
 त्वत्कीर्त्या मानसोल्लासः कस्य नाम न जायते ॥ ५ ॥
 सर्वविद्याधरेन्द्राणां चक्रवर्ती तवात्मजः ।
 भविता शंकरादिष्टम्भं द्रष्टुमागतः ॥ ६ ॥
 अथ मासुनिजौत्साहमेनं वन्दामहे वधम् ।
 जनैरभ्यधिकानन्दैर्बलिन्दुरभिनम्यते ॥ ७ ॥
 शिखरै वज्रकूटाख्ये तुषारपरिणीमृतः ।
 राजा वज्रप्रभाख्योऽहं विद्याभिवेज्जविग्रहः ॥ ८ ॥
 विद्याधरश्रियं पूर्णं श्यामतः शिवसेविनः ।
 स्वप्रभावात्प्रणमतो जौता कर्त्तृप्रयी मम ॥ ९ ॥
 त्वत्पुत्रोऽस्तमभुः कस्य चक्रवर्ती भविष्यति ।
 नरवाहनदत्तोऽसौ पुरा सूर्यप्रभो यथा ॥ १० ॥
 इति श्रुत्वा प्रहृष्टेन सावरं वत्सभूमुजा ।
 पृष्टः सूर्यप्रभकथां प्राह विद्याधराधिपः ॥ ११ ॥
 देवीभ्यां सहितो देवः सुहृद्भिर्मन्त्रिमिश्रया ।
 शृणु प्राप्ता मनुष्येण यथा विद्याधरेन्द्रता ॥ १२ ॥
 मन्त्रेषु शाकलपुरे राजा चन्द्रप्रभोऽभवत् ।
 इन्द्रस्थाने मुखीभिर्गीयते वत्सराजनः ॥ १३ ॥
 सर्वभोगसमृद्धेन प्रोक्ष्याज्यं ज्वलिताग्निना ।
 यज्ञेनायवर्णोक्तेन यो रुद्रं समतोपयत् ॥ १४ ॥

तस्य कान्तिमती नाम कान्तिकलोलिनी प्रिया ।
 रुचिभ्रमभ्रमद्वीचिरमूत्सौभाग्यवारिधीः ॥ १५ ॥
 तस्य स्कन्द इवेशस्य जयन्त इव वज्रिणः ।
 सूर्यप्रभोऽभवत्सूनुः प्रतापाक्रान्तमूधरः ॥ १६ ॥
 वभूवुः सचिवास्तस्य समग्रगुणदर्पणाः ।
 महार्थश्च प्रभावश्च भासः सिद्धार्थकस्तथा ॥ १७ ॥
 चन्द्रप्रभो ददौ तस्मै यौवराज्यं मुदान्वितः ।
 स्वयमेवापिंता घर्मैरन्वये श्रीर्विलोक्यते ॥ १८ ॥
 ततः कदाचित्स्थाने स पुत्रं तं नगरेश्वरम् ।
 दानवाधिपतिः श्रीमान्मयः कार्यार्थमाययौ ॥ १९ ॥
 तमालश्यामलः शुभ्रदंष्ट्रांशुशबलच्छविः ।
 बलाकाबलयव्याप्तः प्राष्टपेण्य इयाम्बुदः ॥ २० ॥
 स्फुरत्कुण्डलकेयूरमौलिरत्नांशुसंचर्यः ।
 नृत्यच्छिखरखण्डवचयो नीलाद्रिरिव जङ्गमः ॥ २१ ॥
 स पूजितो नृपतिना मेजे स्फाटिकमासनम् ।
 गजेन्द्र इव बिस्फारं तुषारगिरिकन्दरम् ॥ २२ ॥
 नम्रेण भूसुजा पृष्टः प्राहागमनकारणम् ।
 श्लिग्धगम्भीरनिर्घोषो विर्वर्षिपुरियाम्बुदः ॥ २३ ॥
 राजन्महेश्वरादिष्टः सुत्रं सूर्यप्रभं तव ।
 प्राप्तः समन्विद्यानां नेतुं भाजनतामहम् ॥ २४ ॥
 विजित्य श्रुतिशर्माणमेव विद्याधरेध्वरम् ।
 विषाभृतां चक्रवर्ती भविता शिवशासनात् ॥ २५ ॥
 पक्षे म्यिताः सुराः सर्वे संशकाः श्रुतिशर्माण ।
 ययं च तव पुत्रस्य दानवाः पक्षमाश्रिताः ॥ २६ ॥

१. 'भूति' ख. २. 'धे' ख. ३. 'न्ये' ख. ४. 'ततः कदाचिदास्थाने' ख.
 ५. 'वाद्यात्' ख. ६. 'धेः' ख. ७. 'शिखरयो' ख. ८. 'वी'
 ९. 'यम्' ख. १०. 'सञ्जया' ख.

इति तद्वत्सा राजा हर्षपीयूषनिर्घरः ।
 उवाच त्वत्प्रसादेन सर्वमेतद्विष्यति ॥ २७ ॥
 धन्यः सुतो मे यस्य त्वं श्रेयसे स्वयमुद्यतः ।
 त्वाद्दर्शा दर्शनेनापि सवन्तीप्सितसिद्धयः ॥ २८ ॥
 इति ब्रुवाणं मूपालं तमथामभ्य तद्विरा ।
 सूर्यप्रभं स सुचिरं पातालमनयद्वयम् ॥ २९ ॥
 तत्र तस्मै ददौ त्रिधां सौनुगाय यथाविविः ।
 भूतासनं विमानं च स्वयमेव विनिर्मितम् ॥ ३० ॥
 प्रासत्रिघो विमानेन तूर्णमेत्य रसातलात् ।
 चवन्दे राजतनयो जननीं जनकं तथा ॥ ३१ ॥
 ईतस्ततो विमानेन विचरन्पितुराज्ञया ।
 दिक्षु सरावृत्तिः प्राप्य स कन्याः स्वयमागताः ॥ ३२ ॥
 गान्धर्वेण विवाहेन भजे पूर्वं मुलोचनाम् ।
 लावानकपतेः पुत्रीं पारवत्स महीभृतः ॥ ३३ ॥
 राज्ञो वीरमहाह्वयस्य ताम्रलिप्तापतेः सुताम् ।
 लेभे मदनसेनाभ्यां मदनोद्यानमञ्जरीम् ॥ ३४ ॥
 चीनकौट्टाघिनायस्य सुरम्भाभ्यस्य चात्मजाम् ।
 संपूर्णचन्द्रवदनां विद्युन्मालमवाप्तवान् ॥ ३५ ॥
 सुमटाभ्यस्य तनयां कौट्टाघिपतेस्त्रया ।
 आससाद् मुधासादिसौन्दर्यां चन्द्रिकायतीम् ॥ ३६ ॥
 जनमेजयपुत्रीं च कौट्टाघ्नीं हरिणेश्रवणाम् ।
 परंपुष्टामिषां प्राप त्रित्वा विद्यार्थमुद्यताम् ॥ ३७ ॥
 रेचरं हरिणा साक्षात्समरे परिपालितम् ।
 दामोदराभिधं वीरं मायार्थपुत्रवासिनम् ॥ ३८ ॥

१. 'नम्रता' ख. २. 'नमः' ख. ३. 'सोऽनुनास' क. ४. 'धरावर्ति' ख.
 ५. 'तदसेन' ख. ६. 'त्रिणी' कथावर्तिप्रयोगे. ७. 'सुरेन्द्रस्य' कथावर्तिप्रयोगे.
 ८. 'समिद' ख. ९. 'वर' ख.

राज्ञो रम्भाभिधानस्य सुतां वज्रपुरप्रभोः ।
 प्राप तारावर्लीं नाम श्यामां शीतांशुसुन्दरः ॥ ३९ ॥
 तेषां महीसुजां गत्वा सानुगो गगनाग्रगः ।
 पुराणि क्रमतो मेजे ताभिः परिणयोत्सवम् ॥ ४० ॥
 स ताभिः सह कान्ताभिः संनिवृत्तोत्सवोऽभितः ।
 मेजे निजां पुरीं प्राप्य बाहिनीभिरिवाम्बुधिः ॥ ४१ ॥
 ततः कदाचिदास्थानसमां पित्रा सैमाश्रिताम् ।
 समेत्य पूजितः प्राह श्रीमान्मयमहासुरः ॥ ४२ ॥
 राजपुत्र रिपुध्वंसे किमद्यापि विलम्बसे ।
 प्रतापः कुण्ठतां सत्यं यात्यनुद्योगमन्यरः ॥ ४३ ॥
 मानिनां सत्त्वमहतां वीराणां शौर्यवर्तिनाम् ।
 उत्साहारम्भमात्रेण वर्धन्ते सर्वसंपदः ॥ ४४ ॥
 इति तद्वचसा क्षिप्रं राजसूनुर्जयोन्मुखः ।
 नृपेभ्यः प्राहिणोद्धृतं तूर्णमागम्यतामिति ॥ ४५ ॥
 राज्ञास्तृष्टेपु दूतेषु मुहूर्तसंबन्धिवन्धुषु ।
 सूर्यप्रभः सट्टामात्यो बभूव समरोत्सुकः ॥ ४६ ॥
 अग्रान्तरे सुरमुनिः प्रभापिञ्जरिताम्वरः ।
 तौ समां नारदोऽप्यायाद्विसृष्टः शतमन्युना ॥ ४७ ॥
 रा प्रविद्याससत्कारः संप्राप्य कनकासनम् ।
 शनैरवाच राजानं दानवाधिपमंनिधौ ॥ ४८ ॥
 अभिपते सहस्राक्षः क्षापते त्वां प्रमादिनम् ।
 रुद्रयजोद्धतः किं त्वं ममाप्यप्रियमीहमे ॥ ४९ ॥
 कुलप्रमागतो राज्ञा श्रुतशर्मा महाबलः ।
 विषापरानां तस्य त्वं प्रतिपक्षदशां ध्रितः ॥ ५० ॥

१. 'मी' ख. २. 'मरुतभोगदीधिति' ख. ३. 'रेजे' ख. ४. 'द'
 'गद स्थितम्' ख. ५. 'द्वि' ख. ६. 'शक्तिना' ख. ७. 'जायते'
 'प्रति' ख. ८. 'प्रमयणा' ख. ९. 'उत्साव' ख.

तस्य सर्वं वयं युद्धे विजयाशंसिनः स्वयम् ।
 रद्रयजकृताश्वासः किं वृथा नृप भायसि ॥ ५१ ॥
 एकयज्ञोद्धतो राजन्सहस्रशतयात्रिमिः ।
 स्वर्था दधानमिदृशैः कथमेको न लज्जते ॥ ५२ ॥
 बलवद्विर्विरोधो हि हास्यायैव न सिद्ध्ये ।
 विफलो दुर्गतस्यैव धनिकस्पर्धयोत्तमः ॥ ५३ ॥
 नारदेनेति कथिते जातकौघे च मूपतौ ।
 मयः प्राह स्फुरत्कोपकम्पव्याकुलकुण्डलः ॥ ५४ ॥
 भगवन्न परिज्ञाय धीर्यसत्त्वबलबलम् ।
 संदिष्टं सुरराजेन रद्रयज्ञावमानिता ॥ ५५ ॥
 सहस्राक्षमुक्ता यस्य गोर्वाणाः पत्रमाश्रिताः ।
 स रेचैरश्वियं युद्धे श्रुतगर्भा किमद्भुतम् ॥ ५६ ॥
 किं नु सूर्यप्रभजये स रद्रः स्वयमुद्यतः ।
 यदिच्छानात्रसंपत्तिर्जगतः प्रलयादयः ॥ ५७ ॥
 शक्रः क्रतुगतावाप्तगत्त्वः सत्यं तदुच्यते ।
 तत्र श्रुमः क्रतुर्नाम बाह्यद्रविणटम्बरः ॥ ५८ ॥
 किं यज्ञैर्विपुलायैः किं शत्रैः कायशोषणैः ।
 निर्व्याजसेवा मुमगा भक्तियेषां महेधरे ॥ ५९ ॥
 पक्षपाते क्षिता वृषमलङ्घिरिङ्गुलेषु वनू ।
 तत्र शक्रास्पर्धं युन्मत्यभावो विदितो हि नः ॥ ६० ॥
 छलेन बध्नितो यश्च बलिमत्कस्य मानसम् ।
 प्रीणाति यच्च तेनैव ते वृत्रप्रमुखा हताः ॥ ६१ ॥
 नयत्येति वचः श्रुत्वा समामद्वय नृपं वयौ ।
 नगवाचाखरो ज्योम्ना चन्द्रराशिरिवोज्ज्वलः ॥ ६२ ॥

ततश्चन्द्रप्रभो राजा दूतैः संबन्धिर्नो नृपान् ।
 आनिनाय मयेनोक्तः पुत्रस्य जयसिद्धये ॥ ६३ ॥
 सुरम्भः पौरवो वीरः प्रभटो जनमेजयः ।
 रम्भोदयश्च ते वीरास्ततस्तूर्णं समाययुः ॥ ६४ ॥
 सूर्यप्रभं हरादिष्टः सानन्दं नन्दिकेश्वरः ।
 समेत्याह स दिव्यां त्वं स्वां श्रियं प्राप्स्यसीत्यथ ॥ ६५ ॥
 इरावतीचन्द्रभागासंगमे व्रतदीक्षितम् ।
 कृत्वा चन्द्रप्रभं हृष्टः सपुत्रमवदन्मयः ॥ ६६ ॥
 भार्याः सूर्यप्रभस्यैता भूपते जनकैः सह ।
 तिष्ठन्त्वहैव पातालं प्रविशामो वयं नृप ॥ ६७ ॥
 इति दानवनाथेन निर्दिष्टो वसुधाधिपः ।
 चन्द्रप्रभस्तथा कृत्वा सभार्यः ससुतोऽविशत् ॥ ६८ ॥
 सूर्यप्रभे प्रविष्टेऽथ पित्रा सह रसातलम् ।
 श्रुतशर्मा समभ्यायान्नभसा गुटिकाधरः ॥ ६९ ॥
 स राजपुत्रदैयितास्ता जहार बहिः स्मितः ।
 मायया मोहयित्वाशु तान्नृपान्युद्धसंमुखान् ॥ ७० ॥
 सुतावियोगशोकेन दयाकुला वसुधाधिपाः ।
 ते भर्तुमुद्यताम्नाश्च शुभ्रवर्णभसो वचः ॥ ७१ ॥
 रक्षिताः शंकरेणाप्ता राजपुत्रस्य वल्लभाः ।

चन्द्रप्रभादयस्तेऽपि सत्तुगाः स्वप्रमोज्ज्वलम् ।
 पातालगृहमासाद्य शुश्रुवर्मयमापितम् ॥ ७५ ॥
 मयं विपुलसन्त्वाद्यां पृथक्कर्मसहं वपुः ।
 मैजध्वं वज्रकठिनं तुल्यं दानवमूमुजाम् ॥ ७६ ॥
 अत्र मावोऽयुसदेहः स्मृत्याहं मावविग्रमे ।
 इयं देहपरावृत्तिर्ध्वान्द्रावरणसंनिभा ॥ ७७ ॥
 वासनानुगतो देही गृहाद्गृहमिवागतः ।
 शरीरान्तरमासाद्य मुह्ये कर्म शुमाशुभम् ॥ ७८ ॥
 देहान्तरे स्वदेहे वा नायं नश्यति सर्वदा ।
 घेनुस्वर्णादिदानानां फलभोगः कुतोऽन्यथा ॥ ७९ ॥
 जपध्यानमयं योगं राजेन्द्र मज्ज सांप्रतम् ।
 योगप्रवर्गसंकल्पकल्पवृक्षो यतो जपः ॥ ८० ॥
 अत्रैवं श्रूयतां राजन्पौराणि जैपिनः कथाम् ।
 बभूव कालको नाम द्विजातिर्जपतत्परः ॥ ८१ ॥
 वरं गृहाणेत्यवदत्तं फलेन प्रजापतिः ।
 भूत्वा स निश्चलज्यानो जप इत्यवदत्त सः ॥ ८२ ॥
 तत्सान्ववरत्नमुत्स्यात्प्रवृद्धे जपिनः फले ।
 भीताः शतक्रतुमुत्तास्तद्विभं समचिन्तयन् ॥ ८३ ॥
 तत्प्रभावान्निसंततैरपि देवैः पुरस्सितैः ।
 पुनः पुनः प्रार्थ्यमानो नामहालचञ्चल सः ॥ ८४ ॥
 ततस्तदयित्वा प्रायाद्युहिनाचलकन्दरम् ।
 मबन्तु मन्दसंतापस्त्रिदशा इति शीतलम् ॥ ८५ ॥
 जपन्तं तत्र मूपालो मैक्षणा प्रेरितोऽयं तम् ।
 उवाचेऽत्राकुरम्येत्य गृहाण द्विज मद्भस्म ॥ ८६ ॥

१. 'गर्म' ख. २. 'भवता' ख. ३. 'समोह' ख. ४. 'वज्रामरण' ख.
 ५. 'नृतेखपयं मावो' ख. ६. 'जापि' ख. ७. 'प्रतिन' ख. ८. 'प्रत' ख.
 ९. 'भूपाप' ख. १०. 'नाक्षत्र' ख.

भवान्ददातु वा महामिति श्रुत्वा स जापिक ।
 मानी राजानमवदद्दाम्येवासि तद्वरम् ॥ ८७ ॥
 इति विप्रवच श्रुत्वा सहसा क्षितिपोऽभ्यधात् ।
 प्रयच्छ मे जपस्यार्धमित्युक्त्वानुशय ययौ ॥ ८८ ॥
 सहस्राशुकुले जात कथं नु पृथिवीपति ।
 उत्तानपाणिर्निर्लज्जं सहे याचकतामिति ॥ ८९ ॥
 ततो यदृच्छयायातौ विवादाकुलितौ द्विजौ ।
 तत्रैव न्यायमिक्ष्वाकुनृप पप्रच्छतुर्मिथ ॥ ९० ॥
 एकं पप्रच्छ नृपतिं गौरनेन समर्पिता ।
 प्रतिप्रदत्तां गृह्णाति नैयामित्युद्धताशय ।
 दत्तं नैव पुनर्ग्राह्यमित्यन्योऽप्यवदद्विज ॥ ९१ ॥
 अत्र न्यायं नृप पृष्ठो विचार्येक्ष्वाकुरब्रवीत् ।
 दीयमानं न गृह्णीयात्मा तु दुर्नयवानिति ॥ ९२ ॥
 ततो देवा नृप प्राहुस्त्वमप्येषविधो नृप ।
 दत्तं यो नैव गृह्णाति जपस्यार्धं द्विजन्मन ॥ ९३ ॥
 परोपदेशो सज्जो हि सदा भवति पण्डित ।
 इति राजा सुरगिरा जपार्धं फल्गुमग्रीहीत् ॥ ९४ ॥
 ततो दिव्यनिमानेन प्रययौ शिवमच्युतम् ।
 घामं भूमिपतिर्वन्द्य सुरासुरनमस्तनम् ॥ ९५ ॥
 व्ययीकृतं च संपूर्य जपम्यार्धमथ द्विज ।
 स चमूव तैत क्षिप्रं तेन परममाश्रित ॥ ९६ ॥
 इत्येव जपयोगेन दुर्लभं प्राप्यते नृप ।
 तन्नाडवानपि क्षिप्रं जपना जपमुत्तमम् ॥ ९७ ॥

इति कालकनापकाम्यायिका ॥ १

मयस्वेति गिरा राजा पुत्रेण सचिवैर्मनथा ।
 महिष्या कान्तिमत्या च सह प्राप्यामुरालयम् ॥ १८ ॥
 विन्नीर्णकजरमालोक्य दैत्यमुत्तानजायितम् ।
 उपविश्य जजापाशु निश्चलध्यानधारणः ॥ १९ ॥
 सुनीथो नाम तनयो मयस्य मुमदाबलः ।
 केनापि हेतुना तत्र सुपुंसेः पदमास्थितः ॥ १०० ॥
 चन्द्रप्रगोऽथ नृपतिर्वायव्यं करणोत्तमम् ।
 कृत्वा देहं परित्यज्य सुनीथननुमाविशत् ॥ १०१ ॥
 ततः सुप्तोस्थित इव सुनीथे वैत्वपुंगवे ।
 ननन्दुर्ममसुख्यान्मे यथार्हविहितोत्सवाः ॥ १०२ ॥
 मयभार्या सुतं दृष्ट्वा तं चिरात्प्राप्तर्जायितम् ।
 लीलयाती हर्षमुचापूर्णनेत्राम्बुजामबत् ॥ १०३ ॥
 सूर्यप्रभमथ प्राह मयस्यज्जननी पुरः ।
 अयं सुनीथपुत्रो मे ययौ चन्द्रप्रमात्मताम् ।
 सुमण्डीकरनामा च त्वमस्मैव पुरातनः ॥ १०४ ॥
 षष्ठे मद्रार्धपुंशः सन्निवासस्य दुर्मदाः ।
 अचर्तनीयाः क्षितिं वीराः कार्यार्थं दानयोत्तमाः ॥ १०५ ॥
 इति पुत्राणे दैत्येन्द्रे दृष्टास्तूष्णं समावयुः ।
 प्रह्लादप्रभुरा दैत्याः सर्वे भलिपुरोगमाः ॥ १०६ ॥
 ततः समाम्ययाच्छुक्रो दानवाम्युदये स्तः ।
 वैद्यमानो नर्मद्युतास्तपिद्वैः सुरारिभिः ॥ १०७ ॥
 स्ताप्तनोपविष्टेषु तेषु तत्र यथाक्रमम् ।
 सूर्यप्रभस्य विजये चन्द्रोत्साहेषु सर्वदा ॥ १०८ ॥

१. 'गि' रा. २. 'बहिर्' रा. ३. 'सुमण्डीको परः स वे । पुत्रः पुत्रीऽप्य पुत्रस्य
 ततः सूर्यप्रभोऽप्ययम्' कथा. ४. 'दिब' रा. ५. 'प्रमुखाः सचिवागमस्य' रा.
 ६. 'सुप्रदागोन्मु' रा. ७. 'ईष' रा. ८. 'चण्ड' रा.

नारदः शक्रवचसा समेत्यावाप्तसत्कृतिः ।
 उवाच सर्वे शृण्वन्तु भवन्तः शक्रमापितम् ॥ १०९ ॥
 वैरं यदभवत्पूर्वं भवद्भिः सह नैश्वरम् ।
 शान्तं तदधुना मन्ये धर्म्यमासाद्य सत्सदम् ॥ ११० ॥
 वैरिणो मित्रतां यान्ति मित्राण्यायान्ति शत्रुताम् ।
 कालस्य परिणामेन सर्वं हि परिवर्तते ॥ १११ ॥
 दीर्घः कालः प्रयातोऽसौ प्राप्तो नो किञ्चिदस्ति नः ।
 वर्तमानहे मिथः स्नेहं न कलिः कारणं विना ॥ ११२ ॥
 किञ्चिद् भुतशर्माणं विद्याघरघराधिपम् ।
 यूयं जेतुं समुत्तुक्ताः सुरपञ्चसमाश्रयम् ॥ ११३ ॥
 सूर्यप्रभो मनुष्योऽयं स च खेचरसत्तमः ।
 स्पर्शनयोः कथं नाम शुष्मत्पक्षे न चेद्भवेत् ॥ ११४ ॥
 मनुष्यमात्रसौहादाद्मा संरुढं यदृच्छया ।
 ऐकात्म्यं दानववरा विनाशयत निर्जरैः ॥ ११५ ॥
 इति श्रुत्वा बलिर्षीरोऽवदद्दानवशेखरः ।
 यथात्थं भगवान्सर्वं सत्यमेतदसंशयम् ॥ ११६ ॥
 नैतन्न विदितं लोके यदन्माकं स वृत्रहा ।
 वर्तते परया प्रीत्या मिथो जानाति यामनः ॥ ११७ ॥
 वैरस्य कारणं श्रान्तं यदेतदभिधीयते ।
 तत्पत्न्यं भवतां लक्ष्मीः कदा नामस्सुरप्रदा ॥ ११८ ॥
 विद्याभृतां चक्रवर्ती श्रुतशर्मा निजां श्रियम् ।
 शुन्तस्तथाश्रयो भुङ्क्ते विमतिर्नास्तिकन्य चित् ॥ ११९ ॥
 किं तु मूर्खप्रभस्यार्थं स्वयं देवमिलोचनः ।
 उपनमिदनाः सर्वे यदिच्छामासमृणयः ॥ १२० ॥

तद्राज्ञया वयं सर्वे यदि सूर्यप्रभोदये ।
 निविष्टास्तत्किमस्माभिः सुराणामप्रियं कृतम् ॥ १२१ ॥
 मोहालक्ष्मीमदाद्वापि प्रमादाद्वा शचीपतिः ।
 अनालोच्यैव यद्वक्ति तत्कस्य हृदयं स्पृशेत् ॥ १२२ ॥
 अथवा भगवन्सर्वं त्वमेव शिवशासनम् ।
 जानीषे ब्रूहि नस्तत्त्वं विचार्य यदिहोचितम् ॥ १२३ ॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा मुनी याते निरुचरे ।
 सूर्यप्रभो दानवेन्द्रैः पूज्यमानोऽवसस्तुल्यम् ॥ १२४ ॥
 ततो वनुजमुख्यास्ते विरादेकत्र संगताः ।
 भोगान्बुभुजिरे दिव्यास्नानारसनिरन्तरान् ॥ १२५ ॥
 अनेकयोजनायाममण्डलेषु मयादयः ।
 स्वच्छकैर्विविधच्छायेर्जाङ्गलैः शूलकुट्टकैः ॥ १२६ ॥
 दिव्यौषधिकृतैः शकैः सधृतैः शुचिशालिभिः ।
 स्वगोलाकेसररजःसुगन्धिदधिखाण्डवैः ॥ १२७ ॥
 मलेहैर्वैतवरीश्व मक्ष्यमण्डकमोदकैः ।
 पानकैर्माज्जितामिश्र दुग्धपिण्डैः सशर्करैः ॥ १२८ ॥
 मुक्त्वा प्रासादमारुह्य प्राप्तामाल्यविलेपनाः ।
 मिथो गृहीततान्मूलाः कर्पूरागुरुधूपिताः ॥ १२९ ॥
 ददृशुर्नयनानन्दि नृत्यं दानवयोपिताम् ।
 पातालवासिनो दैत्या वेणुवीणास्तनोचितम् ॥ १३० ॥
 ततः सूर्यप्रभं तत्र दैत्यकन्याः सुलोचनाः ।
 सरार्ताः स्वयमायाता मेजुः संभोगलोलताः ॥ १३१ ॥
 ततेत्याः कन्यकाः कान्ताः सप्त पातालवासिनाम् ।
 अवापोद्वाहविधिना क्रमेण जनकपतिताः ॥ १३२ ॥

१. 'दयं' ख. २. 'महोदयाः' ख. ३. 'सप्तकुट्टकैः' ख. ४. 'दुग्ध' ख.
 'य' ख. ५. 'पयसैर्मज्जितामिश्र' ख. ६. 'सुगुग्धैः' ख. ७. 'मानसाः'
 ८. 'यः स क' ख.

सुतां हेमीलकाख्यस्य दितिसूनोः कलवतीम् ।
 पुत्रीं च मृगशावाक्षीं प्रह्लादस्य महलिकाम् ॥ १३३ ॥
 कान्तां वैमुदिकामिख्यां दुरारोहस्य चात्मजाम् ।
 तरुणीं तन्त्रुकच्छस्य तनयां च मनोवतीम् ॥ १३४ ॥
 संपूर्णचन्द्रवदनां सुन्दरीं च बलेः सुताम् ।
 एताश्चान्याश्च ता बह्वीः परिणीय सुलोचनाः ।
 नवसंभोगसुभगो भेजे सूर्यप्रभो रतिम् ॥ १३५ ॥
 ततो मयेन सहितः समुत्थाय रसातलात् ।
 जयोद्योगकृतारम्भः स गत्वा कश्यपाश्रमम् ॥ १३६ ॥
 दितिं दनुं चादितिं च कश्यपं च तपोनिधिम् ।
 धवन्दे विपुलानन्दो वीरः प्रोप तदाशियम् ॥ १३७ ॥
 अथ शक्रः समभ्येत्य वज्रांशुज्वलिताङ्गदः ।
 प्रणम्य कश्यपं तत्र मयं प्राह रुपा ज्वलन् ॥ १३८ ॥
 अस्मत्पक्षाश्रयस्यापि वीरस्य श्रुतशर्मणः ।
 चार्यमाणोऽतिकौटिल्याद्विप्रिये त्वं समुद्यतः ॥ १३९ ॥
 उक्त्वेति वेगोत्सावेगं वज्रमुद्यम्य जृम्भहा ।
 मयं ससार क्रोधेऽपि निर्विकारस्मिताननम् ॥ १४० ॥
 कश्यपेन सभार्येण भर्त्सिते विरते हरौ ।
 मयो जहास निःशङ्कं संरम्भेऽपि प्रियंवदः ॥ १४१ ॥
 शक्रे प्रयाते दैत्येन्द्रो मयः प्राप्य वरान्वरान् ।
 सभार्यात्कश्यपमुनेः सूर्यप्रभसखो ययौ ॥ १४२ ॥
 इरावतीचन्द्रभागासंगमे प्राप्य तत्पुनः ।
 संबन्धिनो भूमिपालानशृणोदथ विप्रियम् ॥ १४३ ॥
 सूर्यप्रभो महिष्यस्ता दृता शत्रुबलैरिति ।
 तद्दुःखपावकन्यासं मयस्मिं प्राह सस्मितः ॥ १४४ ॥

१. 'हमील' इति दैत्येन्द्रो' कथा- २. 'वैमुदिकती' कथा- ३. 'ह' रा. ४.
 तरुणिकाम्' रा. ५. 'कोश' रा. ६. 'मुयो' रा. ७. 'म' इति ८. 'संबन्धिनो' रा.

अपि शत्रुकरं प्राप्ता मया तव जयेप्सुना ।
 माययैता हता वत्स निगद्येति स ता ददौ ॥ १४५ ॥
 ततः सूर्यप्रभो हृष्टः सौत्कण्ठः प्राप्य बल्लभा ।
 मेजे निजपुरं गत्वा समोगमुमगा श्रियम् ॥ १४६ ॥
 ताम्यो नरेन्द्रपुत्रीम्य स कालेन ततः सुतान् ।
 दैत्यान्सप्राप्य शौर्यश्रीकुलाचारगुणोचितान् ॥ १४७ ॥
 ततो रत्नप्रभं नाम सुतं राज्ये जनप्रियम् ।
 अभिषिच्य जयारम्भे व्यग्रसेन्यो विनिर्ययी ॥ १४८ ॥
 भूतासनं समारुह्य विमानं बल्लमासख ।
 तेनैव दत्तविद्यैश्च सह सर्वैर्नरेश्वरैः ॥ १४९ ॥
 सुनीयो मयनिर्दिष्टं हिमवत्पार्श्वमेत्य स ।
 सुमेरुं नाम सुहृदं चक्रे विद्याभराविपम् ॥ १५० ॥
 आसु सुवाससं नाम शमोस्तेजोर्यैमाकृतिम् ।
 कुमारं रणसाहाय्ये लेभे सूर्यप्रभमन्त ॥ १५१ ॥
 तस्याभूत्कटकानन्धो गन्वाजिरथाकुलः ।
 अर्शातियोचनायाभो नरखेचरसकुलः ॥ १५२ ॥
 वल्मीकास्य समासाद्य दिव्यदेवः क्रमेण ॥ ।
 विकटाजगराकारच्छत्रं तूणमवाप्तवान् ॥ १५३ ॥
 अक्षयं तूणमासाद्य धनुर्दिव्यं च तद्विषम् ।
 विमानं च मटापद्मं मांसं सप्त चौपधी ॥ १५४ ॥
 मृतसजीवनीमुन्म्या गुह्यार्गमाञ्जयोत्सुकः ।
 श्रुतशर्माणमाकर्ण्य दूतवाक्याट्टणोन्मुक्तम् ॥ १५५ ॥
 प्रतस्थे समरारम्भदुन्दुभित्तेनमन्यरैः ।
 सैन्यैर्गजघटाघण्टागर्भारस्त्रनिग्रहैः ॥ १५६ ॥

प्रस्थित त समभ्येत्य सुवासा खेचरैर्वृत ।
 ग्राह सूर्यप्रभ यत्नात्तिष्ठन्तु तव सैनिका ।
 देवासुराणां समर सुघोरोऽयमुपस्थित ॥ १५७ ॥
 पीयूषमथने पूर्वं प्राप्तश्चीचन्द्रकौस्तुभै ।
 पीयूषप्लुव्धैरमरैर्देत्यानामभवत्कलि ॥ १५८ ॥
 सदा बह्वृच्छला देवा दैत्यानां कूटयोधिनाम् ।
 ते सहास्मिन्नणे तावदप्रमादं विधेहि न ॥ १५९ ॥
 एव सुवाससो वाक्यं श्रुत्वा मूर्ध्नाभिवन्द्य च ।
 त्रिकूटकटके प्राप नगरीं श्रुति(त)शर्मण ॥ १६० ॥
 ततो विनिर्ययौ कोपात्सज्जीकृतमलम्बुधि ।
 श्रुति(त)शर्मा सहामात्यैर्विमानेन धनुर्धर ॥ १६१ ॥
 अथ व्यूढेष्वनीकेषु प्रवृत्ते समरोत्सवे ।
 आययुस्त्रिदशा सर्वे व्योम्ना शक्रपुरोगमा ॥ १६२ ॥
 महादबलिमुत्थाश्च देत्यवीरा मयानुगा ।
 समाययुः सप्रहारैः सूर्यप्रभजयेषिण ॥ १६३ ॥
 ततो विद्याधरेन्द्राणां द्वन्द्वयुद्धमभून्मथ ।
 रंजप्रहारविस्फूर्जत्स्फुलिङ्गवल्याकुलम् ॥ १६४ ॥
 मेकारैश्चापदण्डानां घृपत्कानां च पूष्टतैः ।
 रणितैश्च वृषाणानां व्योमरन्ध्रमपूर्यत ॥ १६५ ॥
 अर्धं च द्वाग्रनिर्लेजैर्विद्याधरमहीभुजाम् ।
 यत्रैवभासे वगुधा विकासिकमरैरिव ॥ १६६ ॥
 दामोदरादयस्तस्य सचिवा श्रुति(त)शर्मण ।
 चक्र सूर्यप्रभानीकं शरजालनिरन्तरम् ॥ १६७ ॥
 अथापरेऽदि रविनश्चक्रव्यूहरणे परैः ।
 सूर्यप्रभगिरा यीरा कुमारान्तूर्णमाविशन् ॥ १६८ ॥

१ 'सूर्यप्रभ' वा. २ 'शीरोद' वा. ३ 'बद्ध' वा. ४ 'कुटिग'
 ५ 'नः' वा. ६ 'न' वा. ७ 'गोडिरजगद्वाज' वा. ८ 'धवज' वा

तस्मिन्निन्द्रारिते व्यूहे द्विपतां त्रिदिवौकसाम् ।
 सूर्यप्रभादयः सर्वे विविशुः शत्रवं बलम् ॥ १६९ ॥
 महावीरक्षये तत्र कृतान्तविततोत्सवम् ।
 युद्धं विद्याधरेन्द्राणां निर्मेर्यादभवर्तत ॥ १७० ॥
 तेषां सेनासमुद्राणाम्यचलैः कुञ्जरादिभिः ।
 ह्योदितानां वसुः खन्नाः कालकूटच्छटा इव ॥ १७१ ॥
 सैसर्जे धवलोज्जीपच्छत्रैर्वर्षावपाण्डुराः ।
 खड्गमीनगजग्राहाः रणे रक्ततरङ्गिणीः ॥ १७२ ॥
 ततो दिनान्ते विपुलज्याग्रामश्लथकण्टकाः ।
 ध्रुवहारं मिथश्चक्रुः समरे गुलिकाधराः ॥ १७३ ॥
 निशि सूर्यप्रभो धीररसोत्साहपरायणः ।
 रौमे न निद्रामासन्नविवाह इव बालकः ॥ १७४ ॥
 विनोदिनीं कथां कांचित्कथयेत्यय सादरम् ।
 पृष्टः सूर्यप्रभेणाह मुहूर्त्तानभयामिधः ॥ १७५ ॥
 उज्जयिन्यां महामेनो बभूव पयुषापिपः ।
 रत्नसाधोकवती नाम मुन्दरी दयितामवत् ॥ १७६ ॥
 गुणशर्माभिधो विप्रः सचिवश्च गुणाधिकः ।
 विद्यानां च कलाणां च केलिसौम इवोन्नतः ॥ १७७ ॥
 स कदाचित्सविश्रम्भो राजा भार्यासखो रहः ।
 प्राह दर्शय मे नृत्यं नृत्यजोऽसीति सादरम् ॥ १७८ ॥
 सोऽब्रवीद्राजर्षद्विषयपुरः कथमहं विमो ।
 निर्लज्जो नर्तक इव प्रभवामि स्वदीप्सिते ॥ १७९ ॥
 अहं सर्वकलामित्रः पश्य मे कौतुकं परम् ।
 नृत्यं हि ललितं वस्तु योविजानेव श्रोतते ॥ १८० ॥

वदन्निति नरेन्द्रेण सनिर्वन्धं पुनः पुनः ।
 प्रार्थ्यमानः शनैर्नृचं कलाश्च समदर्शयत् ॥ १८१ ॥
 कैशिकीकोमलं लस्यं वीरोदारं च ताण्डवम् ।
 सर्वरागानुगं गीतं वीणां च मृदुमूर्च्छनाम् ॥ १८२ ॥
 ततस्तस्य समालोक्य पुष्पेयोरिव मैत्रिणः ।
 तत्र शोकवती देवी सराद्रहदयाभवत् ॥ १८३ ॥
 अभिलाषरसावेशं निगृह्य नृपमब्रवीत् ।
 सा स्वेच्छावत्प्रणयिनं तत्कालोचितविभ्रमा ॥ १८४ ॥
 अभ्यर्थयैनं येनायं देव शिक्षयति क्षणात् ।
 मां मञ्जुर्भोषिणीं वीणां स्वरश्रुतिविचक्षणः ॥ १८५ ॥
 इति देवीगिरा राज्ञा गुणशर्मार्थितश्चिरम् ।
 प्रातः शिक्षयितास्मीति निगद्य स्वगृहं ययौ ॥ १८६ ॥
 शिष्यां दृष्टिं समालक्ष्य शङ्कितो राजयोषितः ।
 विवेशान्तःपुरे प्रातर्बीणां शिक्षयितुं स्वयम् ॥ १८७ ॥
 अङ्गे वीणां समाधौय तत्पुरः सा सराकुल ।
 दाशंसाक्षिविकारैश्च भ्रूविलासैश्च हृद्गतम् ॥ १८८ ॥
 विदग्धानां नखाग्रेण संज्ञां मन्मथकारिताम् ।
 गुणशर्मा जगद्गैनां देवि संवृणु दुर्नयम् ॥ १८९ ॥
 प्रभुभार्या त्वमस्माकं मा कृथा गर्हितां मतिम् ।
 इति सा तद्वचः श्रुत्वा भोजं मामित्युवाच सा ॥ १९० ॥
 कम्पमानस्तनी लीलासंरम्भगलितांशुका ।
 कर्णौ पिधाय यातेऽयं तामनादृत्य सुन्दरीम् ॥ १९१ ॥
 तस्मिन्नरेन्द्रमहिषी बभूव चिरहातुरा ।
 अत्रान्तरे नरपतेः प्रविश्याद्वारमण्डपम् ॥ १९२ ॥

- १. 'निर्वन्धात्' ख. २. 'हृदिण.' ख. ३. 'नी' ख. ४. 'तारणां' ख. ५.
 ख. ६. 'कथयाम्' ख. ७. 'संभ्रमाग्रवुवाच तम्' ख.

विपदानोद्यतं सूदं गुणशर्मा व्यलोकयत् ।
 सूदं नष्टमुखच्छाये सकम्पं गद्गदस्तरम् ॥ १९३ ॥
 स ताडयित्वा पप्रच्छ मूपतिद्रोहकारणम् ।
 सोऽब्रवीन्मालवेन्द्रेण राज्ञा विक्रमशक्तिना ॥ १९४ ॥
 विपदाने नियुक्तोऽहं वैरिणास्य महीपतेः ।
 इत्युक्तवति तत्कोपात्सूदे तस्मिन्निपातिते ॥ १९५ ॥
 कालेन मालवाधीशः स्वयं योद्धुं समाययौ ।
 दुर्जेयं तं महानीकं ज्ञात्वा द्यूतं नराधिपम् ॥ १९६ ॥
 मन्त्रेणान्तर्हितः प्रायाद्गुणशर्मा तदन्तिकम् ।
 स कूटसिद्धो भूत्वा तं दिवः प्राह महीपतिम् ॥ १९७ ॥
 मा कृथा विग्रहं राजन्महासेनेन भूसुजा ।
 प्रणमैनं महीपालं श्रेयसीं प्राप्स्यसि श्रियम् ॥ १९८ ॥
 उक्त्वेत्यलक्षिते याते गुणशर्मणि विधया ।
 मालवेन्द्रो महासेनं प्रसाद्य प्रणनाम तम् ॥ १९९ ॥
 कृतसल्ये प्रयातेऽथ स्वपुरीं मालवेश्वरे ।
 गुणशर्मकृतां मायां प्रशशंसुश्च पार्थिवाः ॥ २०० ॥
 ततः कदाचिद्गङ्गायां जलक्रीडारतं नृपम् ।
 महासेनं महाग्राहो ब्रूयाद् गजसन्निभः ॥ २०१ ॥
 गुणशर्मा सममेत्य स्वामिनं प्रोज्जहार तम् ।
 ग्राहं विधाय दलशः शस्त्रेण विपुलाश्रयः ॥ २०२ ॥
 पुनर्दष्टं मुजग्मेन मघ्नज्ञस्तमजीवयत् ।
 इत्यनेकोपकारोऽसौ स्नेहाद्रिं नृपतिं व्यधात् ॥ २०३ ॥
 कदाचिदथ निःशङ्कं प्राप्तमन्तःपुरं द्विजम् ।
 तं सा मृणालमहिषी भजसेत्यम्यवात्सुनः ॥ २०४ ॥

अनादृत्यैव मूयोऽपि याते तस्मिन्नृपप्रिया ।
 लज्जाकोपसराकान्ता सा निशश्चास भामिनी ॥ २०५ ॥
 रहः क्षमापं समग्येत्य सावदत्साश्रुलोचना ।
 गुणशर्मा तवात्यन्तं प्रियो देव किमुच्यते ॥ २०६ ॥
 पुरा विषपदः सूदो हतो यत्नेन तच्छृणु ।
 एककार्यनिविष्टौ तौ ततो मेदस्तयोरभूत् ॥ २०७ ॥
 भवत्प्रसादाद्यैचललक्ष्मीमदतरङ्गिणा ।
 अहं तेनाद्य विजने याचिता सुरतं सती ॥ २०८ ॥
 बलाद्वियसनां कृत्वा क्रोधान्तीं काममोहितः ।
 पाणिना मां स पस्पर्श स्तनयोर्जघने तथा ॥ २०९ ॥
 श्रुत्वेति मोहं प्रययावीर्ष्यासंमूर्च्छितो नृपः ।
 तयैवाश्वासितः संज्ञां प्राप्य कोपादकम्पत ॥ २१० ॥
 स समामण्डपं गत्वा निर्लज्जो जनसंसदि ।
 उवाच गुणशर्माणं देवीवृत्तान्तमाकुलः ॥ २११ ॥
 परिशुद्धिवचस्तस्य क्रोधान्यो वसुधाधिपः ।
 अगृण्वन्नेव तं शस्त्रैः सानुगो हन्तुमुद्ययौ ॥ २१२ ॥
 कृतधर्मो वद्ययित्वा स राजानं भटांश्च तान् ।
 ययावलक्षितो वेगाद्गुणशर्मा विधेर्वेशात् ॥ २१३ ॥
 दक्षिणापथमासाद्य ब्राह्मणस्य निवेशनम् ।
 अग्निदत्ताभिधानस्य स विवेश सुदुःसितः ॥ २१४ ॥
 वेदवेदान्तसारज्ञः पृष्टस्तेन द्विजन्मना ।
 गुणशर्मा निजां जातिं जातछेदं जगाद तम् ॥ २१५ ॥
 अहं सुलोचनारयायां शुले यज्वद्विजन्मनः ।
 आदित्यगर्भेणो जातो गुणशर्माभिधः सखे ॥ २१६ ॥

१. 'प्रिया' ख. १. 'दोषवसाद्वर्णीयता' ख. १. 'दे' ख. ४. 'या'
 'रमा' ख. १. 'वर्म' ख. ७. 'दोष' ख.

गृह्यकीजनसंपर्काद्धनदस्य गृहे स्थितम् ।
 यद्वच्छयागतः अरुः प्राह मज्जनकं रुपा ॥ २१७ ॥
 प्रणमत्सु समस्तोपु यक्षेषु मयि सादरम् ।
 द्यप्रस्त्यं न प्रणमसि धौयो मामवगम्यसे ॥ २१८ ॥
 लोकपालपुरादस्मात्पत क्षिप्रं महीतले ।
 इति मुवाणो देवेन्द्रो मत्पित्राय प्रसादितः ॥ २१९ ॥
 तं प्राह त्वत्सुनो भूमिं यात्वात्मैव सुतो यतः ।
 इति शापान्महेन्द्रस्य यतोऽहं वसुधातर्लम् ॥ २२० ॥
 अविस्मृतानेकविधः प्राप्तो भूपतिमग्निताम् ।
 महासेनामिधानेन मिथ्या तेन महीमुजा ॥ २२१ ॥
 भार्यादृषितचित्तेन निरस्तोऽहमकिस्त्रियः ।
 अग्निदत्तो निशम्येति कैयितं गुणशर्मणा ॥ २२२ ॥
 उवाच गुणिने तस्मै दातुमभ्युद्यतः सुताम् ।
 श्रीमतः कार्तिकेयस्य जयिनस्तारकद्विपः ॥ २२३ ॥
 गृहाण मघमेतेन जहि तं पार्थिवाधमम् ।
 रुद्रस्य देवीसुरते विघ्नोऽमृतसुरमासनात् ॥ २२४ ॥
 बदेन्द्रवानने वीर्यं तत्पात्रं च महेश्वरः ।
 जाते वर्षसहस्रेऽथ तंदुद्गीर्णं कृशानुना ॥ २२५ ॥
 जग्याल सलिलान्तस्थं गङ्गायां बत्सरायतम् ।
 मन्दाकिन्या समुत्सृष्टे शार्वे तेजसि दुःसहे ॥ २२६ ॥
 जानः शरवणे तस्मिन्कृत्तिकावर्धितः शिशुः ।
 पञ्चाननः सर्मास्थाय सुरेन्द्रेणार्थितो मयात् ॥ २२७ ॥
 सेनापतिपदं प्राप्य तारकं निजयान सः ।
 तस्मै न प्रवरं मघं त्वं गृहाण जयत्रिये ॥ २२८ ॥

उक्त्वेति विधिवन्मग्नं तस्यैविप्रवरो ददौ ।

मुतां च सुन्दरी नाम सौन्दर्यशशिचन्द्रिकाम् ॥ २२९ ॥

तां कान्तां गुणशर्मा च प्राप्यायतविलोचनाम् ।

जित्वा नृपं महासेनं तद्राज्यं समवाप्तवान् ॥ २३० ॥

इति गुणशर्माख्यायिका ॥ २ ॥

इति वीतमयान्येन कथितां सुहृदा कथाम् ।

सूर्यप्रभो निशम्यैव प्रीतो निद्रां समाययौ ॥ २३१ ॥

ततः प्रभाते संनद्धः स्नातः कृतजयोचितः ।

अवाप्य संग्राममुवं दिव्यं व्यूहमकल्पयत् ॥ २३२ ॥

अथ स्वयं शक्रमुखास्त्रिदशा दैत्यदानवैः ।

अयुध्यन्त सुसंरब्धाः श्रुतिशर्मजयैषिणः ॥ २३३ ॥

ततो विनिहताः पेतुर्विद्याधरवरा भुवि ।

रत्नांशुभासुराकाराः क्षीणपुण्या इव ग्रहाः ॥ २३४ ॥

स्वयं सूर्यप्रभस्तत्र ध्यात्वा देवं पिनाकिनम् ।

व्यधात्याशुपतं घोरं शस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ २३५ ॥

तेन बद्धा सहामात्यं श्रुति(त)शर्माणमाहवे ।

हरहंकारविध्वस्तान्देवान्सूर्यप्रभोऽजयत् ॥ २३६ ॥

ततः शिवान्नया सख्यं विधाय श्रुति(त)शर्मणा ।

स जयश्रियमाप्ताद्य ननन्द सह दानवैः ॥ २३७ ॥

प्रहादतनयां तत्र कामचूडामणिं ततः ।

परिणीयाभिपेकाय स प्रायादपमाचलम् ॥ २३८ ॥

साक्षाद्विलोक्य हेरम्वं प्रणतो विघ्ननायकम् ।

गौरीपतिं च सानन्दो लेभे निर्वृतिमुत्तमाम् ॥ २३९ ॥

सुमेरुप्रमुखैस्त्रय विद्यापरधराधिपैः ।

शक्रादिभिः सुखरेर्भयमुख्यैर्महासुरैः ॥ २४० ॥

शुनिभिः कदयपमुखैरभिषिक्तो यथाविधि ।

सूर्यप्रभश्चक्रवर्तिश्रियं मेजे सुहृद्भूतः ॥ २४१ ॥

कान्ताभिः सह सर्वाभिः संमोगसुरतोत्सवे ।

कृतकृत्यो रतिं प्राप साक्षादिव स मन्मथः ॥ २४२ ॥

इति सूर्यप्रभेणाप्ता विद्यार्भिश्चक्रवर्तिता ।

त्वत्पुत्रोऽप्यधिकं देव लप्स्यते नरवाहनः ॥ २४३ ॥

अवाप्तविद्यमचिराद्विजितारातिमण्डलम् ।

एवं पुनः स्मेभ्यामीत्युक्त्वा सूर्यप्रभो ययौ ॥ २४४ ॥

सूर्यप्रभस्येति निशम्य वृत्तं वत्सेश्वरो हर्षसुषामिषिक्तः ।

देवीमुखाम्भोजनिविष्टदृष्टिः पस्पर्श पुत्रस्य करं करेण ॥ २४५ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचिते बृहत्कथासारे सूर्यप्रभो नाम पद्यो लम्बकः ।

मदनमञ्जुकानामा सप्तमो लम्बकः ।

प्रथमो शुच्छः ।

भूलेखाधनुरानतं विचलितो लीलाकटाक्षः शरो

हासस्तत्सितपुङ्गपक्षरचना मौर्वी च पक्षच्छविः ।

कैफूरः कलपञ्चमाश्रयिवचो यस्येत्यमासूयते

जैवं तत्प्रमनारतं युवतिभिः कामाय तस्मै नमः ॥ १ ॥

सूर्यप्रभकथां श्रुत्वा वत्सराजः प्रियासखः ।

पुत्रप्रभावं कलयन्वभूवानन्दनिर्भरः ॥ २ ॥

अत्रान्तरे स्मरं ज्ञात्वा नरवाहनरूपिणम् ।

अवतीर्णं वराच्छंभोर्भुवं रतिरवातरत् ॥ ३ ॥

दैयितानुव्रता साथ तपसा पार्वतीवरात् ।

कान्ता यत्र यथा जाता तदिदानीमिहोच्यते ॥ ४ ॥

अस्ति संतोषजननी निर्विकारसुखस्थितिः ।

चितस्ता मोक्षवीथीव सिद्धसेन्या महानदी ॥ ५ ॥

यस्यास्तुपारनिकरस्मरशीकरमारुतैः ।

पुंसां (भवन्मरुद्भ्रान्ति)तैपापाये च का कथा ॥ ६ ॥

तस्यास्तक्षशिला नाम तीरेऽस्ति रुचिरा पुरी ।

यात्सौधकान्तिभिर्व्योम्नि जायते दिनैकौमुदी ॥ ७ ॥

तस्यां कलिङ्गदत्तोऽभूद्भूपालो धर्मभूषणः ।

त्रिजगद्धापिनी यस्य पुण्या कीर्तितरस्वती ॥ ८ ॥

शशिप्रभापराभिरूयः स विहारश्चतैर्भुवम् ।

लोफनाथः प्रविदधे परमिव सुखावतीम् (९) ॥ ९ ॥

करुणापूर्णहृदयो नानायुक्तिनिदर्शनेः ।

संदेशनामिश्व जनं व्यधात्सुगतभाजनम् ॥ १० ॥

वितस्तादत्तनयस्तस्य राज्ञः पुरे वणिक् ।

चमूव रक्तदचाख्यो विमुखो जिनशासने ॥ ११ ॥

मिक्षुभ्यः प्रणतं नित्यं दातारं पितरं युवा ।

सोऽवदद्वेदवाक्यानां धिक्त्वां निपतितं वशे ॥ १२ ॥

जात्याचारविहीनानां दम्भमीलितचक्षुषाम् ।

मिक्षूणां धूर्तधुर्याणां धीमान्को नाम विश्वसेत् ॥ १३ ॥

इति पुत्रवचः श्रुत्वा दुःखितो नृपतिं धीमौ ।

सन्मार्गे मत्सुतं देव स्थापयेत्यब्रवीद्वचः ॥ १४ ॥

नृपोऽप्याह्वय तत्पुत्रं स प्रत्यक्षनिदर्शनेः ।

लोकलोकोत्तरान्धमानुपदेष्टुं प्रचक्रमे ॥ १५ ॥

तदादेशश्रुतिपरो न चमूव वणिक्त्ततः ।

भूमङ्गमीषणक्रोधस्तमुवाच महीपतिः ।

अयं नराधमः क्षिप्रं हन्यतां हन्यतामिति ॥ १६ ॥

१. धनुर्मध्यगतः पाठः क. पुन्यके नास्ति. २. 'ताये पाये' ख. ३. 'निशि' ख.
४. 'पुण्यपतीम्' ख. ५. 'तिः' ख. ६. 'जगो' ख. ७. 'ति वणिक्त्ततः' ख.
८. 'ये' ख. ९. 'वो' ख.

ततः स भ्रान्तहृदयो वेषमानः कृताञ्जलिः ।
मीतः प्रसादयामास जनकस्तस्य भूपतिम् ॥ १७ ॥
तद्वाक्यानुपतिस्तस्य चक्रे मासद्वयावधिम् ।
वधे तद्वासरारम्भमुहूर्तगणनार्थुपः ॥ १८ ॥
भयाद्विगतनिद्रोऽथ विचर्यो निःसुखः क्लेशः ।
मरणं प्रत्यहं ध्यायन्सोऽकम्पत वणिक्सुतः ॥ १९ ॥
कङ्काल इव निर्मासः सोऽस्थिशेषतया नरः ।
जाते मासद्वये मेने कृतान्तं शिरसि स्थितम् ॥ २० ॥
ततो राज्ञा समाहूतो वधायावधिवासरे ।
दृष्टश्चिन्ताज्वरग्रस्तः स भीतो वणिजः सुतः ॥ २१ ॥
तमाह राजा चकितं कृशोऽसि वत निष्प्रभः ।
दृश्यसे स्त्रायुशेषाङ्गो ध्यायन्मरणजं भयम् ॥ २२ ॥
मासद्वयावधेर्भीतो मूर्ख किं परितप्यसे ।
मरणस्यावधिर्नास्ति मुहूर्तमपि देहिनाम् ॥ २३ ॥
एवंविधं भयं नृणां सर्वदेवोपपद्यते ।
को हि निद्रां समायाति मृत्युदन्तान्तरे स्थितः ॥ २४ ॥
ज्ञात्वेति धर्मपन्थानं श्रय दुःखौघशान्तये ।
धर्म एव ह्यवः पुंसां संसारमकराकरे ॥ २५ ॥
श्रुत्वेति वणिजा पृष्टः कथं मुक्तिरिति प्रभुः ।
ग्राह लोकोत्तरं धर्मं वक्ष्यामीति नरेश्वरः ॥ २६ ॥
ततस्तृतीयेऽदि पुनर्भूमिपालस्तमन्यधात् ।
आदायोत्सवयात्रायां संपूर्णं तैलभाजनम् ॥ २७ ॥
प्रदक्षिणीकुरु पुरीं विन्दुमात्रमपातयन् ।
पतेद्यदि ततो विन्दुर्हन्त्यसे सप्तपाणिभिः ॥ २८ ॥

१. 'परः' ख. २. 'निर्दिष्टो' ख. ३. 'यो भयानुरः' ख. ४. 'मह' ख.
५. 'नीतो' ख. ६. 'तत्सर्वं' ख.
१५६ मं०

मत्प्रदिष्टैरिति श्रुत्वा पात्रहस्तो ययौ वणिक् ।
 समुद्यतासिभिर्भीमैः पात्रपातप्रहारिभिः ॥ २९ ॥
 तैलभाजनमादाय वभ्राम निखिला पुरीम् ।
 आन्त्वा नृपान्तिकं प्राप मयादच्युतभाजन ॥ ३० ॥
 हृष्टः प्रोवाच राजानं देवादेशं कृतो मया ।
 न दृष्टं न श्रुतं किञ्चिदुत्सवेऽस्मिन्महाजने ॥ ३१ ॥
 ध्यानैकाग्र्येण पात्राग्रे न्यस्तं नेत्रद्वयं मया ।
 निश्चयेत्यवदद्राजा मोक्षवर्त्मतदेव यत् ॥ ३२ ॥
 सर्वतो विनिवृत्तस्य ध्यानैकाग्र्ये मनोगतैः (म्) ।
 इत्याग्रहेण वणिजश्चकारानुग्रहं नृप ॥ ३३ ॥

इति रत्नदत्ताख्यायिका ॥ १ ॥

एव स सनेजनतातारणेऽमृत्कृतोद्यमः ।
 तारादत्ताभिधानास्य बभूव नृपते प्रिया ।
 क्षमेवोत्तमसत्त्वस्य कर्त्तुर्गोचरचेतसः ॥ ३४ ॥
 अत्रान्तरे सुरेन्द्रेण यात्रायां त्रिविधाङ्गना ।
 क्षप्ता सुरमिदत्ताख्या विद्याधररता दिवि ॥ ३५ ॥
 सा शक्रशपपतिता जनेने गर्भमाविशत् ।
 राज्ञः कलिदत्तस्य जायायां स्वप्नसूचिता ॥ ३६ ॥
 दोहदापाण्डुरमुखी रजनीवेन्दुमण्डिता ।
 तारादत्ताभवत्प्रीत्यै नितरामयं भूपते ॥ ३७ ॥
 ततः सा रत्नदीपस्य शिखयेवान्तराश्रिता ।
 ददर्श राज्ञी निखिला प्राग्गन्मस्थितिमात्मनः ॥ ३८ ॥
 जातिस्मरा नृपः प्राह पुरा मे जननी विमो ।
 नागलक्ष्मीं प्रियं प्राह धर्मदत्तं महीपतिम् ॥ ३९ ॥

१ 'गोऽनुपात' ख २ 'शृष्ट' ख ३ 'नि' ख ४ 'म' ख. ५ 'यत'
 ख ६ 'नृ' ख ७ 'इदं देवो विप्रस्य माधवाख्यस्य कथ्यन्ति', 'गृहेऽहमभव'
 दासी गृहता पूर्वजमनि' कथा.

अन्यसिद्धन्मनि विमो कुम्भदासी वणिग्मृहे ।
 अभवं देवदासश्च गर्ताभून्मम भेद्विधः ॥ ४० ॥
 तदावां सर्वदुर्भिक्षे परपिण्डोपजाविनौ ।
 याचितावर्थिनाभ्येत्य ह्युत्क्षामेन द्विजन्मना ।
 दत्त्वा स्वमशनं तस्मै तच्छेषकृतभोजनौ ॥ ४१ ॥
 तदा मम पतिः शोकाग्निघनं समवासवान् ।
 तस्यानुमरणादस्मि जाता जातिसरा विमो ॥ ४२ ॥
 इति कोशलभूपालः श्रुत्वा जायावचो रहः ।
 देवदासोऽहमेवेति जातिं सोऽप्यस्मरन्निजाम् ॥ ४३ ॥
 जातिं स्मृत्वा तयोर्दिन्यं धाम धर्म्यं प्रपन्नयोः ।
 पितृभ्यामथ हीनाहं मातुः सखा विवर्धिता ॥ ४४ ॥
 कन्ययैव ततः कश्चिन्मुनिरभ्यागतो मया ।
 आराधितः पुरा कुन्त्या पार्थजन्मभुवा यथा ॥ ४५ ॥
 तद्वरात्त्वां वरं देव लोकरुणथशिरःसितम् ।
 अभितानमवाप्याहं प्राप्ता संमन्तिनीपदम् ॥ ४६ ॥
 इत्याकर्ण्य नृपः प्राह देवीं सत्त्ववतां मतिः ।
 अमोघामृतसुः कामधेनुरन्येषु जन्मसु ॥ ४७ ॥
 त्वत्पिता मुगतिं प्राप्तः सत्त्वादेव प्रियासखः ।
 सत्त्वप्रकाशद्वसतिः सतां हि दिवि शाश्वती ॥ ४८ ॥
 गङ्गाकूले पुरा विप्रश्चण्डालश्च जलार्थिनौ ।
 चक्राते त्यक्तमात्मानं निषेव्यानशनमतम् ॥ ४९ ॥
 नियमस्यौ ददृशतुस्तौ निषादर्जनं ततः ।
 प्रत्यग्रदृष्टमत्स्यौघभोजनव्यग्रमग्रतः ॥ ५० ॥
 द्विजस्तान्वीक्ष्य मत्स्यादांलौल्यादन्नोदकाकुलः ।
 तस्यावनशनक्षामो निगिरजिव सस्पृहम् ॥ ५१ ॥

चण्डालोऽपि विलोक्यैव कुत्सयन्मत्स्यघातकान् ।

पुष्पाति प्राणिभिः प्राणान्धिगेतानित्यचिन्तयत् ॥ ५२ ॥

चिन्तयित्वेति तौ यातौ त्रिदिवं तीर्थसेवया ।

जन्मान्तरे क्षेत्रफलाजातिसरपदं श्रीतौ ॥ ५३ ॥

पर्यन्तभावसदृशं प्रापतुश्च कुलं पृथक् ।

द्विजोऽभूद्धीवरसुतश्चण्डालश्च द्विजात्मजः ।

शुद्धशुद्धी हि चित्तस्य जन्तूनां सुखदुष्कृतेः ॥ ५४ ॥

इति विप्रचण्डालख्यायिका ॥ २ ॥

उपाध्यायो द्विजः कश्चित्कुण्डिने नगरे पुरा ।

सप्तभिः सहितः शिष्यैर्दुर्भिद्ये क्षुधितोऽभवत् ॥ ५५ ॥

गत्वा मच्छुशुराचूर्णं गामानयत् पुत्रकाः ।

तत्क्षीरेणास्तु नो वृत्तिरिति शिष्यानुवाच सः ॥ ५६ ॥

शिष्यास्तदाज्ञया गत्वा गुरुश्चसु(शु)रमन्दिरम् ।

गामादाय परावृत्ताः प्राप्य गां विषमेऽध्वनि ।

निराहारा निपतिताः श्वासशेषा व्यचिन्तयन् ॥ ५७ ॥

अस्मिन्मरुतटे प्राप्तो मृत्युरस्माभिरुत्कटे ।

अस्मिद्विनाशे गौरेषा विनङ्कयति गुरुस्तथा ॥ ५८ ॥

तदर्दलं सविधानेन गामेतां याजिनो वयम् ।

भुक्त्वा प्राणानवाप्स्यामस्तेषु धर्मः प्रतिष्ठितः ॥ ५९ ॥

चिन्तयित्वेति बहुशो विशस्य विधिर्नैव गाम् ।

तथागशेषं भुक्त्वा ते शिष्या गुरुगृहं ययुः ॥ ६० ॥

यथावृत्तं निवेद्यासौ निःसङ्गाः सत्यवादिनः ।

जातिसरास्तद्वराचे शिष्याः प्रापुः परां गतिम् ॥ ६१ ॥

इति शिष्याख्यायिका ॥ ३ ॥

इति सत्त्वविशुद्धानां सतामायान्ति सपदः ।

त्यजन्ति सत्त्वहीनां स्तु दारा अपि निरादराः ॥ ६२ ॥

अस्ति गौरीव नगरी चन्द्रचूडस्य वड्ढमा ।
 श्रीमत्युज्जयिनी नाम जननी जनसंपदाम् ॥ ६३ ॥
 तस्यां विक्रमसिंहोऽमृद्धमिपालो महाबलः ।
 निःशेषविजितारतिर्यस्य युद्धे मनोरथः ॥ ६४ ॥
 दर्पकण्डूलदोर्दण्डं तं युद्धगतमानसम् ।
 उवाचामसुसास्यः कदाचिन्मग्निपुंगवः ॥ ६५ ॥
 देव बाणोऽसुरः पूर्वं महत्समुजदुर्मदः ।
 ययाचे त्रिपुरारतिं योद्धा मे दीयतामिति ॥ ६६ ॥
 ततो नियुद्धसंबन्धयुद्धसंनद्धचेतसा ।
 माधवेन निकृतास्य चक्रेण मुजमण्डली ॥ ६७ ॥
 अमिमनोऽवमानाय दत्तानामिह भूसुताम् ।
 युद्धप्रतिनिधिर्देव मृगयास्ति नृपोचिता ॥ ६८ ॥
 मुनीनां प्रातिकूल्येनै प्रमोदाद्वरवाजिनाम् ।
 राजामतिप्रसन्नाच्च मृगया दुःसदायिनी ।
 तस्मान्मृगरणक्रीडां भज व्यसनवर्जितः ॥ ६९ ॥
 इति मन्त्रिगिरा राजा सानुगः प्रययौ वनम् ।
 कुञ्जरकोटग्रामं द्वीपिकेसरिसंकुलम् ॥ ७० ॥
 ततः कृतश्रमोऽभ्येत्य लीलाहतवनेचरः ।
 त्रिनिवृत्तो ददृशाग्रे कयासक्तौ मिथो नरो ॥ ७१ ॥
 एकान्ते चिरसंलापौ तौ दृष्ट्वा शङ्कितौ नृपः ।
 चौराविति तद्राहाने प्रतीहारमचोदयत् ॥ ७२ ॥
 प्रतीहारसमाहृतौ सर्वास्त्रानं महीपतेः ।
 ततस्तौ ब्राह्मणौ प्रातः प्रविष्टौ मयकम्पितौ ॥ ७३ ॥
 दत्तामये नरपतौ स्ववृत्तं कथ्यतामिति ।
 तयोरेकोऽत्रवीद्राजन्मृत्युतां नौ विचेष्टितम् ॥ ७४ ॥

पितृभ्यां विप्रयुक्तोऽहं बालो विप्रः पुरा नृप ।
 नियुद्धशस्त्रकुशलो घूतकृदुर्मदोऽभवम् ॥ ७५ ॥
 याति काले नवोद्धाहामपश्यं पथि योषितम् ।
 युग्याधिरूढां प्रत्यग्रमङ्गलवद्वकद्वणाम् ॥ ७६ ॥
 अत्रान्तरे महावेगः स्फोटितालानशृङ्खलः ।
 तां विवाहमहावाद्यकुपितः कुञ्जरोऽभ्ययात् ॥ ७७ ॥
 त्यक्त्वा तां द्विरदत्रासाज्रयातेष्वनुयायिषु ।
 गजो जिघृक्षुस्तां प्राप मुखाब्जां नलिनीमिव ॥ ७८ ॥
 दृष्ट्वाहमतिकारुण्यान्नादेनाहूय वारणम् ।
 वञ्चयित्वा श्रमाभ्यासाद्विह्वलां ताममोचयम् ॥ ७९ ॥
 तस्मान्महाभयान्मुक्ता सावदन्मां सुलोचना ।
 बलमस्त्वं जनस्यास्य प्राणानामधुना विमुः ॥ ८० ॥
 त्यक्तासि येन संत्रासाद्विग्विक्तं कातरं नरम् ।
 नाहं संदूषिता तेन न च स्मृक्ष्यामि तं जडम् ।
 प्रच्छन्नानुगतस्त्वं मैमच्चिरात्समवाप्स्यसि ॥ ८१ ॥
 इति मे संविदं कृत्वा संगता स्वजनेन सा ।
 ययौ भर्तृगृहं तन्वी मय्येवार्पितमानसा ॥ ८२ ॥
 तामेवानुप्रयातोऽहं प्रेमपाशवशीकृतः ।
 प्रच्छन्नवृत्तिर्बद्धाशः शून्यदेवगृहे स्थितः ॥ ८३ ॥
 तत्रापश्यमिमं विप्रमहं प्रच्छन्नकामुकम् ।
 तस्या मर्तुः स्वसुगृहं रूढरागैकभाजनम् ॥ ८४ ॥
 अनेन जातसौहार्द्रस्ततस्तां कामिनीमहम् ।
 श्रुत्वा गूढमयं प्राप्तस्थापनिर्वापणौषधिम् ॥ ८५ ॥
 जामिं च तस्याः प्राप्यायं मुहन्मे निर्वृतोऽभवत् ।
 तदर्थं देय संलापः शून्योऽमृचिरमावयोः ॥ ८६ ॥

श्रुत्वेति तद्वचो राजा तुष्टः सत्यनिवेदनात् । --

ताभ्यां वमु ददौ को हि सद्भावेन न तुष्यति ॥ ८७ ॥

इत्येवं सत्त्वसारेण प्राप्ता कान्ता द्विजन्मना ।

ह्रीवेन सत्त्वहीनेन कातरेण तु हारिता ॥ ८८ ॥

इति चिक्रमसिंहाख्यायिका ॥ ४ ॥

राजः कलिहृदयस्य श्रुत्वेति वचनं प्रिया ।

तारादत्ता वरानन्दमुन्निद्रवदना यमौ ॥ ८९ ॥

अथ कालेन संपूर्णदोहदाहतिशालिनी ।

अमृत सा सुतां देवी यौः दग्धाक्कलामिव ॥ ९० ॥

जातां पुत्रा नृपः श्रुत्वा वमूव विमना इव ।

चिन्ता मूर्तिमती कन्या फस्य प्रीणाति मानसम् ॥ ९१ ॥

स चिन्तास्त्रिमितो गत्वा विहारं शंभुमन्दिरे ।

शुश्राव धर्मं^१ भिक्षूणां तत्र मोहप्रशान्तये ॥ ९२ ॥

अहिंसा परमो धर्मः संन्यासः परमं धनम् ।

कारुण्यं परमः कामो मोक्षश्च परमः क्षमा ॥ ९३ ॥

अमेव सर्वसत्त्वानां पुण्यपीयूषवाहिनी ।

मैत्री च सर्वमृतेषु^२ संसारमरुवारिदः ॥ ९४ ॥

पुरा तपोवनोपान्ते राजपुत्रः प्रियासक्तः ।

विललासानिलालोल्यालचूतलतावने ॥ ९५ ॥

इतिश्रान्त्याश्च मुक्तास्ताः कुतूहलविनिश्चलाः ।

अपला राजपुत्र्यस्ता विचेरुः केलिकानने ॥ ९६ ॥

तदुपान्ते मुनिं ध्यानमीलितार्धं विलोम्य ताः ।

तत्पुर्मत्ता विलासिन्यः कुतूहलविनिश्चलाः ॥ ९७ ॥

१ 'परा' ख. २. 'सुपाद' ख. ३. 'मैत्र्यवे' ख. ४. 'विन्द' ख. ५. 'समारे मधुवारिदम्' ख. ६. 'रतिश्रान्तेऽव मुने ता' इति सवेत्तः; 'रतिश्रान्ते मधुमदात्त-सिद्धिद्रावसंगते' ख.

राजपुत्रः प्रबुद्धोऽपि भिया दृष्ट्वा मुनेः पुरः ।
 तं जघानेर्ष्याया ग्रस्तः खड्गेन निस्वग्रहः ॥ ९८ ॥
 तेनाहतोऽपि बहुशः शस्त्रेण न चुकोप सः ।
 सत्यं मुहुरिदं शत्रौ च शमिनां सदृशा दृशः ॥ ९९ ॥
 निर्दग्धुमुद्यताः पापं तं तपोवनदेवताः ।
 अवधारयत्कृपापूर्णः^१ स क्षमामागतो मुनिः ॥ १०० ॥
 खड्गप्रहारनिर्वर्जनात्रोऽपि मुनिसत्तमः ।
 तथैव देव्या संस्पृष्टो बभूव खच्छविग्रहः ॥ १०१ ॥
 इति क्षमावदानम् ॥ ५ ॥

कुमार्यः सैत रूपिण्यो मूपाख्यस्य हुकेः सुताः ।
 ययुः श्मशानं वैराम्यास्यक्तसंसारवासनाः ॥ १०२ ॥
 स्वजनेनार्पिताः प्राहुस्तः शरीरमिदं हि नः ।
 जस्यिमांसशिराचर्मसंवीतमपि कुरिसतम् ॥ १०३ ॥
 जस्यिन्काये श्मशाने च को विशेषः प्रदृश्यते ।
 पच्यन्ते सततं यत्र बहिना सप्त धातवः ॥ १०४ ॥
 विरक्तो राजपुत्रः प्राङ्म्रियतो मिक्षुकव्रतः ।
 दृष्टः प्रविष्टो भिक्षायै कैयाचिद्वरयोपिता ॥ १०५ ॥
 तं रूपमिव रूपस्य यौवनस्येव यौवनम् ।
 विलोक्य कामवशगा भिक्षादानोद्यताभवत् ॥ १०६ ॥
 अहो सुभग रूपं ते मानसाभृतदीधितेः ।
 वर्षतीयामृतं दृष्टिस्तव राजीवलोचन ॥ १०७ ॥
 इति लोचनसौन्दर्यविचाराधिकसस्पृहाम् ।
 तां वीक्ष्य निजमुत्पाद्य लोचनाब्जमुवाच सः ॥ १०८ ॥

१. 'तां' ख. २. 'तां' ख. ३. 'वं' ख. ४. 'क्षमासागरो' ख. ५. 'पष' ख.
 ६. 'कवेः' ख. कथापरिभाषायां तु 'इतनाप्रो महीपतेः' इत्येव पाठः. ७. 'रूपवान्यो-
 यत.

चर्मावनद्धं पश्येदं वारि सौकं न लोचनम् ।
 अलिन्ननोहरं नातः किं कुलितशरीरके ॥ १०९ ॥
 इति तस्य गिरा सापि विरक्षा विनैकाप(द्याप्त)नम् ।
 प्रपदे जन्मसंतापजगन्गवारणम् ॥ ११० ॥
 इति वैराग्यावधानम् ॥ ६ ॥

कलिकदत्तः श्रुत्वेति बुद्धः सद्धनेदशनम् ।
 अशृगोद्वाङ्मणवचः कन्यकाज्जन्दुःस्त्रितः ॥ १११ ॥
 कुलारीबल्लना राजन्किं वृथा परितप्यसे ।
 पुत्ररक्षक्यं दत्तुं तत्तुतामिरवाप्यते ॥ ११२ ॥
 सुपेगं इति नृपालश्चित्रकूटचलेऽनवत् ।
 कर्पूरकणपूरोऽमृद्यद्यः सुरयोषिताम् ॥ ११३ ॥
 कौन्तावर्गसनारम्भः प्रिया त्वत्तु गुणाधिका ।
 न विना चन्द्रिकां लक्ष्मीश्चन्द्रे कान्ते प्रसीदति ॥ ११४ ॥
 स निर्ममे नवोद्यानं विनाननिव गां गतम् ।
 संकेतसम कान्त्य वसन्तनिव कल्पितम् ॥ ११५ ॥
 रममाणः सदा तलिन्त नानाकुतुनोज्ज्वले ।
 ननन्द नन्दनगतः शतश्रुतिवापरः ॥ ११६ ॥
 कदाचिन्नयनानन्दनिलन्दनबुवाहिनी ।
 गौर्वाणनतंकी रम्भा तं ददर्शाय तां च सः ॥ ११७ ॥
 सा तं विलोक्य सच्छायं शृङ्गारसुरपादपम् ।
 सर्वातिशायिनिर्माणपुष्पाहनिव वेषसः ॥ ११८ ॥
 स च तां वीक्ष्य पूर्गेन्दुनवलावध्यचन्द्रिकाम् ।
 कौशिकीरसिकस्येव कान्त्य रतिनूतिकाम् ॥ ११९ ॥
 वनूद्युः सरसराजरासंनिभमानसा ।
 उत्पन्नपवनेनेव सरोमोहनवेपथू ॥ १२० ॥

सा मानुषतनुर्भूत्वा तमुपेत्य घनस्तनी ।
 गङ्गेव शंतनुं भेजे सुपेणं नाककामिनी ॥ १२१ ॥
 कासीति प्रच्छनीयाहं न राजन्निति संविदा ।
 तां प्राप्य भूमिपालोऽभूत्सरसाम्राज्यदीक्षितः ॥ १२२ ॥
 रममाणः सह तथा रतिमानिव मन्मथः ।
 मधुमास इव श्रीमान्नवोद्यानमभूषयत् ॥ १२३ ॥
 ततः सा गर्भमासाद्य कालेन वसुधाधिपात् ।
 असूत तनयां कान्तिसंतानजितचन्द्रिकाम् ॥ १२४ ॥
 सावदन्नृपतिं नाथ स्वस्ति गच्छाम्यहं दिवम् ।
 रम्भामवैहि मां देव देवी देवविलासिनीम् ॥ १२५ ॥
 सुताप्रसवपर्यन्तं संगमो मे भुवि त्वया ।
 पुनः पुञ्ज्याः प्रमायान्मे भविता संगमस्त्वया ॥ १२६ ॥
 इत्युक्त्वा प्रययौ व्योम्ना तडित्सफुरितविश्रमा ।
 कृत्वा भुजङ्गी नृपतिं वियोगविषमूर्च्छितम् ॥ १२७ ॥
 ततः सुलोचना नाम सा कन्या विभ्रमा विधिः ।
 मियासमागमायैवै ववृधे नृपतेः शनैः ॥ १२८ ॥
 तां यौवनवसन्तेन संगतां स्तवकस्तनीम् ।
 द्रयामामपश्यद्दधुतिमान्काश्यपो मुनिपुत्रकः ॥ १२९ ॥
 अभिलाषवतीं दृष्ट्वा स तां हरिणलोचनाम् ।
 युवा ययाचे नृपतिं सैरतप्तः सुलोचनाम् ॥ १३० ॥
 याचितो मुनिना सोऽथ प्रोवाच वसुधाधिपः ।
 रम्भावृत्तान्तमावेद्य शनैर्विरहनिःसहः ॥ १३१ ॥
 सैमागमे मे रम्भायास्तनया संभविष्यति ।
 अनीश्वरोऽस्मि दानेऽस्या मुने तत्संगमावधि ॥ १३२ ॥

१. 'वति' ख. २. 'धे' ख. ३. 'द्यतम.' ख. ४. 'सयं' ख. ५. 'सरसेर'
 ६. 'ययै' ख. ७. 'समागमाय' ख.

श्रुत्वेति वचनं राज्ञो वमापे मुनिपुत्रकः ।
 सहं स्वत्पत्नीं ऽशेन समरीरत्य ते दिवि ।
 रम्भासिनागमं कर्ता देहि राजन्मुलोचनाम् ॥ १३३ ॥
 पुरा प्रमद्वरां वायां मृगवंशमवो गुरुः ।
 आयुषोऽर्धेन दुष्टाहिदध्मनेवनजीवयन् ॥ १३४ ॥
 इत्युक्त्वा संगमं राज्ञो विदधे रम्भया दिवि ।
 मुलोचनां मुनिः प्राय स्मरामृततरङ्गिणीम् ॥ १३५ ॥
 इति कन्याप्रभावेण प्रामुबन्तीप्सितं नराः ।
 शयादिकारणाद्देव्यो नत्येष्ववतरन्ति च ॥ १३६ ॥
 इति मुलोचनास्यायिका ॥ ७ ॥

इति विप्रगिरा राजा चिन्तां तत्याज निर्वृतः ।
 कलिङ्गसेनां तनयां पश्यन्मयनचन्द्रिकाम् ॥ १३७ ॥
 सा पितुर्मन्दिरे बाह्य केलिलीलाविलासिनी ।
 दृष्ट्वा सौमन्विता व्योम्ना कद्राचिदित्यकन्यका(या) ॥ १३८ ॥
 मयस्य तनया तन्वी साथ सौमप्रभामिषा ।
 हृत्वा मन्योचितं वेषं सम्यं चक्रे तया सह ॥ १३९ ॥
 तयोर्विश्रन्तसद्भावेनप्रणयपटुता ।
 संसिका स्नेहपायूपैयश्वेषे प्रेनवठरी ॥ १४० ॥
 ततो मयनुवा प्राह तां विश्वासकयान्तरे ।
 राजपुत्रि सुगुप्तोऽयं संगमो मे प्रियस्त्वया ॥ १४१ ॥
 नान्निग्राजगृहे स्नातुं शक्ता प्रकटिता त्वया ।
 आर्त्ताविषगुहाचोरं राजगेहं सुदुःसहम् ॥ १४२ ॥
 नास्म्यं मुक्तसद्वत्तां गृहसेनो नृपालजः ।
 मित्रं वज्रिक्तुं चक्रे प्रणयेनार्थितं पुरा ॥ १४३ ॥
 संगतो राजपुत्रेण स्नेहसंनानकारिणा ।

मेनसा स प्रियहितव्रतः सोऽभृद्वणिक्मुतः ॥ १४४ ॥
 राजपुत्रोऽपि जन्यर्थयात्रायां मित्रसंवृतः ।
 उदयाद्रिरिव प्रायात्सितच्छत्रेन्दुमण्डलः ॥ १४५ ॥
 स व्रजन्पथि विश्रान्तः सैनिकैः सुहृदा सह ।
 विवाहोत्कण्ठितो धीतनिद्रो धात्रीमभापत ॥ १४६ ॥
 शृणु प्रहर्षजननीं कथामाश्चर्यशालिनीम् ।
 इत्युक्त्वैवामवत्क्षीवो भेजे निद्रां समाकुलः ॥ १४७ ॥
 धात्र्यामपि प्रसुप्तायामेक एव वणिक्मुतः ।
 विनिद्रो निशि शुश्राव वाणीमाकाशयोपिताम् ॥ १४८ ॥
 अहो नु राजपुत्रेण कथिता नैव सा कथा ।
 कौतुकाद्वयमायाताः सुप्तश्चैव भदाकुलः ॥ १४९ ॥
 आभाष्य कथयामीति मूर्खो यो याति मूकताम् ।
 कौतुकाच्छ्रोतुमायातास्तं शपन्त्यनु देवताः ॥ १५० ॥
 हारं वर्त्मनि संप्राप्य यदा कण्ठे करिष्यति ।
 तदा तेनैव पौशेन कृतान्तमयमेप्यति ॥ १५१ ॥
 भक्षयित्वाभ्रवृक्षस्य फलान्येव विनह्वयति ।
 अथ वास्योपरिगृहं क्षिप्रमेव पतिष्यति ॥ १५२ ॥
 क्षुतशब्दशते नौस्य जीवशब्दशतं न चेत् ।
 फर्चिर्दास्यति तेनैव प्रयास्यत्येव पद्यताम् ॥ १५३ ॥
 अस्य आपप्रतीकारं यः कुर्यात्पशुचेतसः ।
 सोऽपि व्यसनमासाद्य संशये निपतिष्यति ॥ १५४ ॥
 श्रुत्वेति शापान्देवीभिर्वितीर्णान्मुहुरो मिथः ।
 सत्यतीपातसंनद्धः स वगूय वणिक्मुतः ॥ १५५ ॥
 प्रभाते कृतयात्रोऽथ राजपुत्रः सहानुगः ।

१. 'पुनर्न तत्रिद' ग. २. 'भाषि' ग. ३. 'सच्छ' र. ४. 'पापेन' र.
 'वा' र. ५. 'दस्य' र. ६. 'पानं' र.

यथोक्तमेव देवीमिहारे प्राप्य फलानि च ॥ १५६ ॥
 वणिक्पुत्रेण सहसा निषिद्धो नाग्रहीत् तम् ।
 महागृहनिपाताच्च तेनैवाम्येत्य रक्षितः ॥ १५७ ॥
 ततः स विहितोद्वाहो नवकान्तासमागमः ।
 उवाम राजतनयः श्वशुरावसथे सुखम् ॥ १५८ ॥
 वणिक्पुत्रोऽपि रक्षायां तस्योत्सृष्टजविग्रहः ।
 क्षुतो(मुष्टो) विनिग्रः शुश्राव क्षुतशब्दशतं निधि ॥ १५९ ॥
 जीव जीवेति शब्दानां स स्वैरं शतमभ्यवात् ।
 इत्यस्य श्रापनिर्वाणं विदधे स मुहुरः ॥ १६० ॥
 ततः प्रमाते वि(प्र)च्छन्नो निर्गतोऽन्तःपुराद्वणिक् ।
 दृष्टो राजसुतेनाशु क्रोधव्याकुलचेतमा ॥ १६१ ॥
 अयमन्तःपुरे पापच्छन्नो निधि करोति किम् ।
 इत्युक्त्वा मृदुटीभ्रान्त्या दिदेशात्स वधं कृषा ॥ १६२ ॥
 स राजपुत्रवचसा गाढवद्धः पुरःसरः ।
 अचिन्तयद्गहो कृष्टा नृणां राजकुले स्थितिः ॥ १६३ ॥
 व्यालाः सुखेन सैव्यन्ते वानोद्धृताश्च बहयः ।
 नतु नित्यमद्राघ्याता राजानः कुटिलाग्रयाः ॥ १६४ ॥
 ध्यात्वेति दुःखसंतप्तो राजपुत्रमुपेत्य सः ।
 हितं यथा कृतं सर्वं तत्त्वमस्मै न्यवेदयत् ॥ १६५ ॥
 ततस्तत्त्वविचारेण राजपुत्रो वणिक्पुत्रम् ।
 हितैषिणं प्रियं मित्रं प्रसाद्य मुदितोऽभवत् ॥ १६६ ॥
 इत्येवं राजमिः सस्यं सखि दुःखेन रक्ष्यते ।
 को हि मुष्टेन सिंहेन कृतकम्पग्रहः स्वप्न ॥ १६७ ॥
 इति राजपुत्राख्यायिका ॥ ८ ॥
 कलिङ्गदत्ततनया निग्रम्येति सखीवचः ।
 उवाच सत्यमेवैते कृतज्ञाः सखि भूमिषाः ॥ १६८ ॥

शून्याशयाः प्रिया घोरा दुःखसाध्या विकारिणः ।
 मित्रविद्वेषिणो ज्ञेया पिशाचा इव भीषणाः ॥ १६९ ॥
 कथां शृणु पिशाचानां राजपुत्रानुकारिणाम् ।
 पुरा यज्ञस्थलग्रामे ब्राह्मणोऽल्पधनोऽभवत् ॥ १७० ॥
 कदाचित्स कुठारेण भिन्दन्काष्ठाग्रमक्षमः ।
 अपाटयन्निजां जङ्घां तेनामूर्त्परमातुरः ॥ १७१ ॥
 सर्वोपायपरिक्षीणैः सै(त)तस्त्यक्तश्चिकित्सकैः ।
 नाडीघणार्तो मित्रस्य स बाधयाध्यक्तिमाप्तवान् ॥ १७२ ॥
 पिशाचं साधयेत्येवं मित्रवाक्यार्थतत्परः ।
 अतोपयनिशि महापिशाचं बलिपुष्पदः ॥ १७३ ॥
 ततो वरात्पिशाचस्य तद्दत्तैरौषधिभ्रजैः ।
 स्वस्यः स्वच्छन्दसंचारो विजहार सुखं द्विजः ॥ १७४ ॥
 रुद्धनाडीघणं काले तमुवाच पिशाचकः ।
 रोहत्येवं मया दृष्टं द्वितीयं दर्शय भ्रणम् ॥ १७५ ॥
 अपरं चेद्भ्रणं विप्र न मे दर्शयसि स्फुटम् ।
 मया क्रोधानलज्ज्यत्वं नीतो नैव भविष्यसि ॥ १७६ ॥
 पिशाचवाचं श्रुत्वेति पुनश्चिन्तामितापितः ।
 भ्रदध्यौ स्वगृहं गत्वा निश्वासग्लपिताघरः ॥ १७७ ॥
 भ्रूल एवासि पापेन कुतो नाडीघणी जनः ।
 इति ध्यायन्स सुतया दृष्टो नष्टधृतिस्मृतिः ॥ १७८ ॥
 दृष्ट्वा विज्ञाय वृत्तान्तं सा चण्डी निखिलं पितुः ।
 नाडीघणं पिशाचाय दर्शयामीत्यभाषत ॥ १७९ ॥
 स पिशाचः समाहनो हृष्टेनाथ द्विजन्मना ।
 विदग्धां त्रिजने प्राप तत्सुतां दुर्महाकुलः ॥ १८० ॥
 वराप्तं विभूतं कृत्वा सा पिशाचमभाषत ।

सत्ते नाडीनणम्यास्य सनद्धो मय रोहणे ॥ १८१ ॥

इति श्रुत्वा पिशाचोऽर्मा मुग्धस्तद्वचन मृदु ।

यत्ताहर्नापयत्रातैस्तत्तर वृशता ययौ ॥ १८२ ॥

प्रमवन्ति यतो लोका प्रलय यान्ति येन च ।

समारचेत्र विप्रान्त क पिघातु तदीश्वर ॥ १८३ ॥

तत पिशाच सन्निग्रश्चिरात्कुण्ठक्रियाम् ।

मयात्पलाय्य प्रययौ गर्हयन्निजदुर्ग्रहम् ॥ १८४ ॥

इत्येव दुर्ग्रहात्मान पिशाचा रोजयोनय ।

सैवा कलुषचिच्छाश्च रानपुत्रास्ततोऽधिका ॥ १८५ ॥

मुहूर्तमद्वमौहार्दा विलज्जा बहु मेविवा ।

लुप्या नृपाश्च नेशाश्च दूरन्या एव शोभना ॥ १८६ ॥

इति पिशाचाम्ब्यायिका ॥ ९ ॥

वच कलिङ्गसेनाया तुल्येत्यमुरकन्यरा ।

रजाच चन्द्रवदना वीक्ष्य सचारुण नम ॥ १८७ ॥

अय कमलिनीकान्त प्राप्तोऽस्त्राचलमौलिताम् ।

गच्छामि पुनरेष्यामि पन्था मे पष्टिजोत्तन ॥ १८८ ॥

इत्युक्त्वाकाशमानिष्ठ्य तूष्णं सोमप्रमा ययौ ।

विधाय वदनोद्योतेर्नहु सोमप्रम नम ॥ १८९ ॥

तत सस्या प्रयाताया रानपुत्री व्यचिन्तयत् ।

केय विद्याधरी देवी मुनङ्गी वा सखी मम ॥ १९० ॥

श्रूयते मानुषै सस्य मनन्ति किल देवता ।

पृथ्वीपते पृथो पूर्वं पुत्र्या सम्यमरुन्वनी ॥ १९१ ॥

मेने नयनमार्गेण प्रीतिर्हि विशति स्वयम् ।

वासिष्ठयेनु तद्वाक्यार्दानिनाय च मूलम् ॥ १९२ ॥

१ 'प ख' २ 'वम खनन ख' ३ 'ध्माता' ख. ४ 'जह्नुद्वय' ख.
५. 'यत्र' ख. ६ 'कन्या' ख ७ 'जन' ख. ८ 'नामिव' ख ९ 'व' ख.
१० 'पृथुरानाय भू' ख.

अमृतं तत्पथो दिव्यं ददौ तस्ये मुदुर्लभम् ।
 गावोऽवतीर्णा लोकेऽसिंखं त्रभृत्येव पावनाः ॥ १९३ ॥
 तदेषा कापि मे देवी सखी पुण्यैः समागता ।
 कलिङ्गसेना घ्यात्वेति निनाय रजनीं शनैः ॥ १९४ ॥
 अथापरेचुरादाय विचित्रा यन्त्रपुत्रिकाः ।
 सखीं समभ्ययात्तूर्णं सोत्कण्ठा मयपुत्रिका ॥ १९५ ॥
 सा वभापे तया पृष्टा सुताहमसुरप्रभोः ।
 मयस्य भायावैचित्र्यघातः सोमप्रभामिधा ॥ १९६ ॥
 स्वयंप्रभा मे भगिनी सौख्ये पातालमन्दिरे ।
 हनूमत्प्रमुखैर्दृष्टा र्क्षीतान्वेषगतैः पुरा ॥ १९७ ॥
 कुबेरतनयः श्रीमान्मर्ता मे नलकूबरः ।
 यच्छापात्स दशस्योऽपि नामूत्परवधूविभुः ॥ १९८ ॥
 हत्युक्त्वा यन्त्रवैचित्र्यात्सजीवा यन्त्रपुत्रिका ।
 फरण्डिकां समुद्रात् ददौ सख्यै प्रिया र्यतः ॥ १९९ ॥
 ततो गूढसखीसक्तां त्यक्ताहारां मुतां नृपः ।
 अस्वसां मन्यमानस्तां वैद्यं पप्रच्छ दुःखितः ॥ २०० ॥
 वैद्योऽवदद्राजपुत्र्या राजन्व्याधिर्न लक्ष्यते ।
 प्रेमातिहर्षसंपूर्णा नामिनन्दति भोजनम् ॥ २०१ ॥
 ततो विज्ञाय वृत्तान्तं दुहितुस्तां च तत्सखीम् ।
 फलिद्रदत्तो देवी च परां मुदमवाप्तुः ॥ २०२ ॥
 पित्रा विदितवृत्तेन दद्यानुज्ञा च सा तदा ।
 सोमप्रभां सविधग्ममियेष प्रकटां सखीम् ॥ २०३ ॥

१. 'मयः प्रगति' ख. २. 'सर्जिका' ख. ३. 'याती' ख. ४. 'जानकीमार्गणः'
 ख. ५. 'द्व' ख. ६. 'ता' ख. ७. 'भूरां सप्तभोज्यां मोहितां वीक्ष्य भूपतिः' ख.
 'रा' ख.

सा तत्र राजभवने पूजिता तेन मूसुजा ।
 विजहार समं सत्या विहारे तैरहारिणी ॥ २०४ ॥
 सा यन्नपुत्रिकानीतदिव्यकाञ्चनपङ्कजैः ।
 विहारपूजनं चक्रे ततोऽमूद्विस्मितो नृपः ॥ २०५ ॥
 अनुज्ञाता ततः पित्रा सहान्तःपुररक्षिभिः ।
 मायायन्नविमानेन तां निनाय मयात्मजा ॥ २०६ ॥
 नीता स्वयंप्रभां द्रष्टुं ज्येष्ठां स्वमगिनीं तथा ।
 पुरं ददर्श वैचित्र्यचित्रकर्मेव वेद्यतः ॥ २०७ ॥
 तत्रापश्यज्जटापुञ्जविराजिवदनां बधूम् ।
 नलिनीमिव शैवालजटालोत्फुल्लपङ्कजाम् ॥ २०८ ॥
 स्फाटिकेनाक्षसूत्रेण निराजितकराम्बुजाम् ।
 कैरप्रसूतलावण्यविन्दुमालाङ्कितामिव ॥ २०९ ॥
 उच्छून्नकुचपर्यङ्क(न्त)पर्यस्तपवलांशुकाम् ।
 चक्रवाकयुगन्यस्तफेनवेगामिवापगाम् ॥ २१० ॥
 विलोक्य तां राजपुत्रीं प्रणनाम नतार्ननाम् ।
 अस्य(इय)त्कर्णोत्पलरजोरेखासंवलितस्तनीम् ॥ २११ ॥
 स्वयंप्रभा राजपुत्रीं तां विलोक्य सुलोचनाम् ।
 नैमाभिजनमाकर्ष्य फलान्यसौ स्वयं ददौ ॥ २१२ ॥
 जरानिवारणान्याशु भुक्त्वा तानि फलानि सा ।
 बभूव बाल्य पीयूषक्षालितेवाधिकद्युतिः ॥ २१३ ॥
 ततो विचित्रमुद्यानं दिव्याभिप्रायनिर्मितम् ।
 वार्पां च काञ्चनाम्भोजां दृष्ट्वा प्रीतिमवाप सा ॥ २१४ ॥
 स्वयंप्रभामयामन्नय सा सोमप्रमया सह ।
 ययौ यन्नविमानेन पितुस्तस्यशिलां पुरीम् ॥ २१५ ॥

अन्तःपुरगता तत्र कदाचिदशृणोद्वचः ।

सोमप्रभाया विश्रम्भकयासु मृगलोचना ॥ २१६ ॥

सखि मन्ये यदा कश्चिद्वरस्त्वां परिणेष्यति ।

तदा नौ सहवासोऽयं ध्रुवं दूरीमविप्यति ॥ २१७ ॥

प्रवेक्ष्यामि कथं स्वैरं सखि भर्तृगृहं तव ।

जामिश्वश्रूजनायतं विपमं भर्तृमन्दिरम् ॥ २१८ ॥

इति स्वयंप्रभासमागमः ॥ १० ॥

शृणु श्वश्रुकृतैर्दुःस्वैर्यथासा कीर्तिसेनया ।

विपत्सबुद्ध्या च यया निस्तीर्णा व्यसनोदधिम् ॥ २१९ ॥

घनपालित इत्यारोद्धणिक्पाटलिपुत्रके ।

कीर्तिसेनाभवत्तस्य कन्या लावण्यवाहिनी ॥ २२० ॥

तां यौवैनवतीं काले स सारङ्गविलोचनाम् ।

देवसेनाय वणिजे मगधावासिने ददौ ॥ २२१ ॥

सा भर्त्रा ललित्वा स्वैरं श्वश्रवा कलहपीडिता ।

उवास गेहे श्रीखण्डवने सर्पाकुले यथा ॥ २२२ ॥

ततः कदाचिद्वैल्भीं प्रसितो द्रविणार्जने ।

देवसेनः प्रियावेश्म विवेशामन्नणोद्यतः ॥ २२३ ॥

तमवनीत्कीर्तिसेना त्वयि याते ध्रुवं विभो ।

भर्तृमविप्यति मां श्वश्रूः कलहेन निरन्तरम् ॥ २२४ ॥

इति प्रियावचः श्रुत्वा संस्तम्भ्य विरहव्यथाम् ।

ययौ मातरमार्माप्य वर्तयेयाः क्षुपामिति ॥ २२५ ॥

तन्निगते तज्ज्वनी सततं क्रोधमूर्च्छिता ।

वियोगदुःखितां प्राह कीर्तिसेनां नताननाम् ॥ २२६ ॥

संश्रुते नित्यरुदिते दुर्भगे मङ्गलोज्जिते ।

मायं ते पितुरेवान् पुत्रो जीवतु मे चिरम् ॥ २२७ ॥

उक्त्वेति तत्परिजनं निरस्य सहसा गृहम् ।
 भयात्प्रसन्नवदनां पुनराह परेऽहनि ॥ २२८ ॥
 हासशीले तव पतिर्मयादेशान्तरं गतः ।
 त्वं नु वेश्येव निःस्नेहा विलासेनेक्षसे जनम् ॥ २२९ ॥
 इति नानाविधोद्वेगैः सावेगक्रोधदुःसहैः ।
 वाक्सायकैस्तामसकृज्जघान विरहेऽपि सा ॥ २३० ॥
 संभ्रम्य तद्वधोपायं तामयान्धगृहोदरे ।
 रक्षेऽहं भर्तृद्वविणं स्वमित्युक्त्वा न्यवेशयत् ॥ २३१ ॥
 श्वश्र्वा च पिहिते तत्र न्यस्ता सा निविडार्गले ।
 सदाशनचतुर्भागं लेभे ममशरावके ॥ २३२ ॥
 शरावकर्परेणार्थं सा चत्वन गृहं शनैः ।
 दैवात्प्राप्तेन च पुनः खनित्रेण महाविलम् ॥ २३३ ॥
 तेनैव निशि निर्गम्य गृहीतकनकान्वरा ।
 विधाय पौरुषं वेपं वलर्माप्रमुखं ययौ ॥ २३४ ॥
 पथि सार्धपतिं प्राप्य कृतराजमुताकृतिः ।
 प्रययौ पुरुषस्पर्शपरिहारपरैव सा ॥ २३५ ॥
 ततस्तस्मिन्महासार्धे पपाताशनिवन्निशि ।
 चौरसेना विधौ वामे ब्रुवन्त्यालम्बनान्यपि ॥ २३६ ॥
 सा चौरभयवित्रस्ता सार्धे निःशेषतां गते ।
 उवास गूढां रजनीं तृणे भूकुहरान्तरे ॥ २३७ ॥
 प्रातस्ततो विनिर्गत्य प्रविष्टा विकटाटवीम् ।
 सिंहव्यालैर्न निहता सतीतेजोऽतिदुःसहम् ॥ २३८ ॥
 राजपुत्रादृतिं दृष्ट्वा सामथ्र्यं श्रमतापिताम् ।
 कारुण्यात्सलिलैः शीतैर्वितृष्णामकरोन्मुनिः ॥ २३९ ॥
 तिरोहिते मुनिमुते निशीथे प्रत्युपस्थिते ।
 सा तस्मै दस्युचकिता सुपिरदुमकोटरे ॥ २४० ॥

ततोऽर्घरात्रे सप्राप्ते राक्षसीं सह पुत्रके ।
 छायामिव कृतान्तस्य ददर्शालिखि(रक्षि)ता पुर ॥ २४१ ॥
 भोजनं याच्यमानासौ तनयास्तानमापन ।
 महाकालेन निर्दिष्टं भोजनं नो भविष्यति ॥ २४२ ॥
 वसुदत्ताभिधो राजा वसुदत्तपुराधिप ।
 शतपद्या समाक्रान्तं कर्णरन्ध्रप्रविष्टया ॥ २४३ ॥
 तत्प्रसूतैः शतपदीशतैर्व्यासशिरोन्तर ।
 अविज्ञातामयो वैद्यैर्मवित्ता पूर्णभोजनम् ॥ २४४ ॥
 श्रुत्वेति कौतुकानिष्टैः सा पृष्टा राक्षसैः सुतैः ।
 नृपस्य जीवितोपायं वीतशङ्कममापत ॥ २४५ ॥
 धृताभ्यक्तं स मध्याह्नापे सतप्तपायसे ।
 उपलिप्तं शिरः कृत्वा श्रवणे वेणुनालकाम् ॥ २४६ ॥
 स्थापयेन्नालिकामान्ते कुम्भं यदि मुशीतलम् ।
 ततोऽस्मिन्नि सरन्त्येव शतपद्यो न सशय ॥ २४७ ॥
 निम्नेनायवास्माकं यातु राजा स पद्मताम् ।
 अस्मत्सत्पुत्रये तूर्णमित्युक्त्वा राक्षसी ययौ ॥ २४८ ॥
 कीर्तिसेना निशम्यैव प्रातलं प्रययौ नृपम् ।
 अदूरवासिनं क्षिप्रं वैद्यपेपोपलक्षिता ॥ २४९ ॥
 पूर्णेन्दुमुन्दरमुख्यं श्रीमानेकं दयाधिनो ।
 सुकुमारारविन्दाक्षो वैद्यो देशान्तरागत ॥ २५० ॥
 नृप स्वस्य विधास्यामि द्वाप्य प्रति दर्शयन् ।
 प्रविष्ट इति रात्रौ प्रतीहारो व्यनिज्जपत् ॥ २५१ ॥
 ततः क्षिप्रं समाह्वेयं राज्ञा देव्या च पूजिता ।
 वैद्यपेपाविशक्षिप्रं कीर्तिसेना नृपालयम् ॥ २५२ ॥
 ददर्श नृपतिं तत्र क्षयशीलमिवोदुपम् ।
 शोषितं घृणमपेन छायावृष्णमिवावृतम् ॥ २५३ ॥

देवीकरतल्लन्यसुकपालो वीक्ष्य तं नृपः ।
 निभृतोऽमृच्छुमप्राप्तौ मनः पूर्वं प्रसीदति ॥ २५४ ॥
 ततो यथोक्तं राक्षस्या सा विधाय महीपतेः ।
 चकर्ष शिरसो व्याधिं येन स्वस्थोऽभवत्क्षणात् ॥ २५५ ॥
 व्याधिमुक्तोऽथ नृपतिर्वैद्यवेपामुवाच ताम् ।
 राज्ञं ममाश्वरत्नाढ्यं गृहाणेति प्रसन्नधीः ॥ २५६ ॥
 सात्रवीश्यासमृतं मे संप्रति त्वयि तिष्ठतु ।
 याचितो दास्यसीत्युक्त्वागूढा तस्यौ तदालये ॥ २५७ ॥
 ततः कालेन स वणिग्देवसेनः समाययौ ।
 गहामाण्डघनामोगपूरिताशेषपत्तनः ॥ २५८ ॥
 राज्ञा निवारितं गन्तुं शुल्कायतमुपेत्य सा ।
 चिरसंगमर्पायूषष्ठाव्यमानामवन्मुहुः ॥ २५९ ॥
 देवसेनः स विज्ञाय कीर्तिसेनां सकौतुकः ।
 दृष्ट्वा निशम्य वृत्तान्तं बभूव प्रमदाकुलः ॥ २६० ॥
 मूपालोऽपि तदाश्चर्यं विदित्वा निखिलं ततः ।
 उवाच धर्ममणिनी ममेयं त्वं स्वमुः पतिः ॥ २६१ ॥
 वैद्यत्रेपं विधायैषा जीवितं विततार मे ।
 इत्युक्त्वा वणिजे राज्ञा राज्यार्घं मुदितो ददौ ॥ २६२ ॥
 इति श्वश्र्वा सुविपुले पातिता शोकसागरे ।
 कीर्तिसेना स्वधैर्येण तारिता प्राप बल्लभम् ॥ २६३ ॥
 इति कीर्तिसेनाख्यायिका ॥ ११ ॥
 कलिङ्गसेनतनया निशम्येति सखीवचः ।
 सतीचरितमाश्चर्यं प्रदध्यौ मनसा सती ॥ २६४ ॥
 ततोऽहि तनुतां याते वयस्यां गन्तुमुद्यताम् ।
 कलिङ्गसेना प्रोवाच सखि दर्शय मे निजम् ॥ २६५ ॥

सुतं घनाधिनाथस्य भर्तारं नलकूबरम् ।
 इति सोमप्रभा श्रुत्वा राजपुत्रीमभाषत ॥ २६६ ॥
 त्वं यौवनवती कान्ता स युवास्ति विशृङ्खलः ।
 परस्परविरुद्धं हि दर्शनं तव तस्य च ॥ २६७ ॥
 इष्याकोपेन नौ तत्र सौहार्दं नह्यति ध्रुवम् ।
 नदीकूलद्रुमस्येव जेहखे नो विपत्तये ॥ २६८ ॥
 उक्त्वेति प्रययौ दिक्षु तन्वाना कान्तिकौमुदीम् ।
 हर्म्ये कलिङ्गसेना च तस्यौ व्योमावलोकिनी ॥ २६९ ॥
 ततो यदृच्छयायातो विद्याधरधराधिपः ।
 युवा मैन्दरवेगाख्यस्तां ददर्श नभोर्गतिः ॥ २७० ॥
 तां वीक्ष्य सरसौन्दर्यविभ्रमाणां समागमम् ।
 अमृताहरणे शौरेः शिष्यां कान्ताकृतामिव ॥ २७१ ॥
 सोऽभवन्मन्मथशरासारजर्जरितैस्मृतिः ।
 तथा दृष्टिविषेणेव भुजङ्ग्या मुहुरर्दितः ॥ २७२ ॥
 स धैर्यं क्षिप्रमास्थाय कथं विद्याधरस्य मे ।
 मानुषी मोहयेच्चित्तमिति ध्यानपरोऽभवत् ॥ २७३ ॥
 ततो विवेद प्रज्ञसिविद्यया गुलिकाधरः ।
 स तामप्सरसः शापादवतीर्णां शतक्रतोः ॥ २७४ ॥
 कृत्वेति तद्रतमना कालंजरगिरौ निजाम् ।
 राजधानीं सममेत्य तस्यौ सुखपराङ्मुखः ॥ २७५ ॥
 स हेमकदलीकुजे किन्नरीगीतनादिनि^१ ।
 तां गञ्जतनयां ध्यायन्न लेभे तत्र निर्वृत्तिम् ॥ २७६ ॥
 चिन्तयंस्तन्मुस्ताम्भोजं मेजे नान्तःपुरे रतिम् ।
 मन्दारमालामालोक्य मालत्यां को हि सादरः ॥ २७७ ॥

१. 'पति' ख. २. 'तनयं' ख. ३. 'मदनवे' ख. ४. 'गत.' ख. ५. 'तादृतिः' ख.
 ६. 'म' ख. ७. 'सावेति' ख. ८. 'कालंजरगिरौ' ख. ९. 'ते' ख.

रावणस्येव तस्यामूच्छापः स्त्रीहरणे बलात् ।
 यद्विगतस्तेन सहसा कर्तुं तां नाकरोन्मतिम् ॥ २७८ ॥
 सोऽभवद्विरहायासपाण्डुरः स्तण्डिताशयः ।
 पौर्णमासीविरहितः शशीव क्षामविग्रहः ॥ २७९ ॥
 किं विद्याधराज्येन कान्तारसदृशेन मे ।
 यत्र नेत्रामृतं कान्ता न सा कण्ठावलम्बिनी ॥ २८० ॥
 तपसा वरदं देवमाराध्य गिरिजापतिम् ।
 ध्रुवं कान्तामवाप्सामि तामायतविलोचनाम् ॥ २८१ ॥
 अनुकूलः सुहृद्दानमानिताश्रीः सितं यशः ।
 मनोरमा च दयिता नात्रुष्टे पार्वतीपती ॥ २८२ ॥
 इति ध्यात्वा हरं देवं त्र्यम्बकं तपसे ययौ ।
 संकल्पकल्पविटपी कस्य नाम न शंकरः ॥ २८३ ॥
 अथ तस्य गिरेः शृङ्गे तपसा तस्य धूर्जटिः ।
 तुष्टः प्रोवाच तं कन्यां तामवाप्स्यसि युक्तिः ॥ २८४ ॥
 कलिङ्गसेनतनया वत्सराजं स्वयंवरे ।
 यावन्नैति पुरं गत्वा तद्रूपेण त्वमाग्रुहि ॥ २८५ ॥
 इत्यवाप्य वरं शंभोर्विद्याधरपतिर्ययौ ।
 तत्संगमादाया क्षिप्रं सुधमेव परिहृतः ॥ २८६ ॥
 अत्रान्तरे नृपतयस्तनयां रूपशालिनीम् ।
 कलिङ्गदत्तं नृपतिं दूतैः सर्वे ययाचिरे ॥ २८७ ॥
 ततो विचार्य नृपतिः कुलचारणैर्नृपान् ।
 अमन्यत वरं योग्यं पुञ्याः सेनाजितं नृपम् ॥ २८८ ॥
 रहः कलिङ्गसेनाय ग्राह सोमप्रभां सखीम् ।
 द्येनजिचाम मृपालः पितुर्मेऽभिमतो वरः ॥ २८९ ॥

मयपुत्री निशम्येति प्राह साश्रुविलोचना ।
 अहो नु दग्धविधिना न योम्यः संगमः कृतः ॥ २९० ॥
 त्रैलोक्यसुन्दरीः सुभ्रूः प्रवयास्तं वथ पार्थिवः ।
 मधुपोऽर्हति न प्रष्टुं बालं कल्पलतामिव ॥ २९१ ॥
 वत्सेशोदयनो नाम कौशाम्ब्यामस्ति भूपतिः ।
 स ते समुचितः कान्तवरो गौर्या इवेश्वरः ॥ २९२ ॥
 तस्य चासवदक्षास्ति दयिता रूपशालिनी ।
 सा लेभे तनयं तस्माद्भावि विद्याधरेश्वरम् ॥ २९३ ॥
 इत्युक्त्वा वत्सराजस्य ^१वंशवृत्तान्तविक्रमान् ।
 निषेधं निखिलं सख्यै पुनराह नृपात्मजाम् ॥ २९४ ॥
 त्वां वीक्ष्य वत्सराजोऽसौ भुवं तां त्यक्ष्यति प्रियाम् ।
 कमलाकमलं दृष्ट्वा नान्यदब्जं स्पृशत्यलिः ॥ २९५ ॥
 उपाया चित्रलेखासौ बाणपुत्र्या यथा पुरा ।
 प्रैद्युम्नि संगमं चक्रे करिष्यामि तथाच ते ॥ २९६ ॥
 इत्याकर्ण्य सखीवाक्यं राजपुत्री जगाद ताम् ।
 अन्येभ्यः सखि भूपालः कान्ताभिः स निषेध्यते ॥ २९७ ॥
 महासेनमुतासक्तो दुर्लभोऽन्यजनस्य तु ।
 अकामकामाः कामिन्यः सखिं गच्छन्ति हास्यताम् ॥ २९८ ॥
 राजपुत्र्या निशम्येति प्राह सोमप्रभा पुनः ।
 यत्तमत्र विधास्यामि देवायत्तास्तु सिद्धयः ॥ २९९ ॥
 स्वयं दयेनजितं पूर्वं वीक्ष्य गौटमहीपतिम् ।
 रस्यमावोदितारातिः प्रेक्षस्वोदयने पुनः ॥ ३०० ॥
 लावण्यस्यास्य ते मुमुर्त्तामाग्यस्य कुलस्य च ।
 भुवं समुचितं मयं चन्द्रचूडः करिष्यति ॥ ३०१ ॥

१. 'एतां ग' रा. २. 'यमु' रा. ३. 'श' रा. ४. 'ध' रा. ५. 'स्य जन'
 रा. ६. 'य.' रा. ७. 'यान्तयेव' रा. ८. 'मरुतावोदितमतिः' रा. ९. 'नं सतः' रा.

राज्ञो विक्रमसेनस्य सुता तेजोवती पुरा ।
 कंचिद्युवानमालोक्य बभूव सस्तापिता ॥ ३०२ ॥
 सस्या देवगृहे तेन कृत्वा संगमसंविदम् ।
 निर्ययौ राजपुत्री सा स्तोकमूकविमूषणा ॥ ३०३ ॥
 अत्रान्तरे राजपुत्रः स गोत्रवर्लमी पुनः ।
 राजसंश्रयकामस्तदेवायत्नमन्यगात् ॥ ३०४ ॥
 अवाप तत्र तां दैवात्स राजतनयां युवा ।
 अधन्यैराहूतं नाम कल्याणीभिरवाप्यते ॥ ३०५ ॥
 सा तमासाद्य दयितं सोपमच्यधिकं ययौ ।
 मृद्वी चम्पककामेव पारिजातसमागता ॥ ३०६ ॥
 तत्संभोगमुधासिक्तः स राजानमवाप्य तम् ।
 प्रातः समुचितां पूजां प्रपेदे गूढकामुकः ॥ ३०७ ॥
 सुतां समुचितां दातुं तस्मै रतिरमृदुदा ।
 कन्यावृतं च तत्सर्वं विवेद नृपतिः शनैः ॥ ३०८ ॥
 तद्विज्ञाय क्षितिपतिर्निजामात्यानभापत ।
 सोमदत्ताय कन्येयं मनसा कल्पिता मया ॥ ३०९ ॥
 स्वयं गान्धर्वविधिना पूर्वमेव वृतोऽनया ।
 विधिरेव समाधानं यौतं सदृशसिद्धये ॥ ३१० ॥
 राज्ञः श्रुत्वेति वचनं प्रत्यभापन्त मन्त्रिणः ।
 दिष्ट्या सदृशयोगेन शोच्येयं न तवात्मजा ॥ ३११ ॥
 स्वयं वृतोऽनया श्रीमान्राजपुत्रः कुलोचितः ।
 देव देवेन लिखितं प्रमादुं कस्य कः क्षमः ॥ ३१२ ॥
 हरिश्चन्द्रा पुरा विप्रो दारिद्र्यार्हास्ततां गतः ।
 कुटुम्बिनो धनवतः समार्यः सहपुत्रकः ॥ ३१३ ॥

१. 'विदतः' ख. २. 'यान' ख. ३. 'ह' ख. ४. 'राशोऽपि स्वमुता दातुं तस्मै
 मतिरभू' ख. ५. 'जातं' ख. ६. 'द्विषति' ख.

गृहे कुटुम्बिनस्तस्य वैवाहिकमहोत्सवे ।
 भक्ष्ये भोज्ये प्रविस्तीर्णे स ननन्द स्पृहाकुलः ॥ ३१४ ॥
 दिनान्ते भोजनव्यग्रे सर्वसिञ्जनमण्डले ।
 विस्मृतः क्षुत्परिक्षामः प्रदधौ दुःस्मितः क्षणम् ॥ ३१५ ॥
 अवमानावधूतस्य दारिद्र्योपैस्तत्त्विषः ।
 कथमादरमाधत्ते प्रसिद्धशरणो जनः ॥ ३१६ ॥
 अहो विद्याविहीनोऽयं निर्धनः शोच्यतां गतः ।
 दीपपात्रमिवादीपालोकं दग्धदशाश्रयात् ॥ ३१७ ॥
 क्षणं स चिन्तयित्वेति निजजायामभापत ।
 विस्मृतं पश्य मां दीनमस्मिन्नुत्सवभोजने ॥ ३१८ ॥
 ईति दूरतरं नीत्वा जनस्यैवास्य घोटकम् ।
 छन्नं स्थापय विज्ञानी भविष्यामि तस्मैयन् ॥ ३१९ ॥
 कूटज्ञानी हयप्राप्त्या प्रसिद्धिं परमां गतः ।
 भावमानमवाप्स्यामि कल्पवल्ली हि धूर्तता ॥ ३२० ॥
 इति भर्तृवचः श्रुत्वा नीत्वा सा तुरगं निशि ।
 यवन्ध विजने धीरा जने मधुविमोहिते ॥ ३२१ ॥
 हारितोऽथ इति प्रातर्जने कोलाहलाकुले ।
 प्राक्षणी प्राह भर्ता मे हरिशर्मा प्रणयवित् ॥ ३२२ ॥
 ततः कुटुम्बिनाम्येत्य प्रार्थितः प्राह स द्विजः ।
 कृतकग्रहविज्ञानात्स्नाहुलीगणनापरः ॥ ३२३ ॥
 नातिदूरे स्थितः सोऽथश्चरैर्विरहितो बने ।
 इति तद्वचसा लब्धे हये ख्यातो वमूष सः ॥ ३२४ ॥
 ततः कदाचिद्विणे हरिते राजवेश्मनि ।
 प्रसिद्धः स समाहृतो मूर्खोऽस्मीति भयाकुलः ॥ ३२५ ॥

१. 'तने' ख. २. 'संबन्धित्र' ख. ३. 'ह' ख. ४. 'हं' ख. ५. 'दीपमात्र-
 मिवादीपं लोकं दग्धदशाश्रयात्' ख. ६. 'दतो' ख. ७. 'स्वैकस्य' ख. ८. 'तदास्य'
 ग. ९. 'हापितो' ख.

प्रातर्वेक्षासि संचिन्त्य समामाप्येति श्रूयतिम् ।
 निर्जने मन्दिरं तस्यौ स विप्रो ध्याननिश्चलः ॥ ३२६ ॥
 अत्रान्तरे नरपतेर्जिह्वास्या गर्भवाटिकाम् ।
 तच्चौरी शङ्किता गत्वा तमपदपदलक्षिता ॥ ३२७ ॥
 सोऽपि दुःखाकुलः प्राह राजमीत्या वृथा मतिः ।
 धिग्जिह्वे त्वां यया प्राणसंशयः स्वयमाहृतः ॥ ३२८ ॥
 निर्जंजिह्वामिति मुहुस्तस्य भर्त्सयतो वचः ।
 श्रुत्वा सा चेदिका तूर्णं पादयोरपतद्भयात् ॥ ३२९ ॥
 विज्ञाता भवता पापा साहं जिह्वेव तत्करी ।
 इत्युक्तवाचयतो ज्ञात्वा स दम्भमधिकं व्यधात् ॥ ३३० ॥
 ततो राजानमभ्येत्य कृतकज्ञानगर्वितः ।
 मुहूर्त्तवर्लितैकभ्रूदृष्टाद्भुलितलो मुहुः ।
 चकार प्रकटं सर्वं धनं राज्ञाय पूजितः ॥ ३३१ ॥
 स्थातिपूजासमुत्तरे तस्मिन्नभ्येत्य मन्त्रिणः ।
 घूर्तोऽयं चौरसंकेती मूर्ख इत्युचिरे नृपम् ॥ ३३२ ॥
 राजाय तत्परीक्षायै मण्डूकं पिहिते घटे ।
 निधायाम्बुनिम्बमस्त्रीति प्राह तं मन्त्रिसंसदि ३३३ ॥
 पुनः स दुःस्वितश्चिन्ताध्याननिश्चललोचनः ।
 हा मण्डूक हतोऽस्तीति जगादोच्चैर्मयाहृतः ॥ ३३४ ॥
 मण्डूकेत्यमिघा तस्य बाल्ये मात्रा कृताभवत् ।
 ज्ञातं ज्ञातमिति प्राहुर्जनास्तं विसयाकुलः ॥ ३३५ ॥
 ततो नरपतिस्तस्य यथेष्टं विभवं ददौ ।
 इत्येवं दैवविहितं स्वयं भवति सिद्धये ॥ ३३६ ॥

इति हरिशर्मास्यायिका ॥ १२ ॥

श्रुत्वेति मन्त्रिणैः वाक्यं राजा तेजोवतीं ददौ ।
 राजपुत्राय गान्धर्वविधिना पूर्वसंगताम् ॥ ३३७ ॥
 इत्येवं किल सौभाग्यरूपाचारकुलीचिताम् ।
 तेजोवतीं पतिं प्राप त्वमप्येवमवाप्स्यसि ॥ ३३८ ॥
 इति तेजोवत्याख्यायिका ॥ १३ ॥

अथार्चयित्वा श्रीकण्ठं विधिना पार्वतीपतिम् ।
 नभसा जग्मतुः सख्यौ ते विमानेन भासता ॥ ३३९ ॥
 वृद्धवर्षधरोपेता राजपुत्री मनोजवम् ।
 यन्त्रचक्रविमानं तद्वेजे दोलानिलासवत् ॥ ३४० ॥
 नृपं श्येनजितं द्रष्टुं वत्सराजं च सुन्दरी ।
 प्रस्थिता गमनं चक्रे राजपुत्री सुधामयम् ॥ ३४१ ॥
 श्रौण्वन्तीं नगरीं प्राप्य विमानादधिरुह्य सा ।
 सख्या श्येनजितं दूराद्दर्शितं नाभ्यमन्यत ॥ ३४२ ॥
 श्रीमानपि स राजेन्द्रस्तस्या नाभिमतोऽभवत् ।
 यन्त्राकर इवोत्फुल्लसरत्पूर्णशशित्विषः ॥ ३४३ ॥
 अलक्षिता तमालोक्य प्राह सोमप्रभां ततः ।
 सखि वत्सेश्वरं द्रष्टुं त्वरते मम मानसम् ॥ ३४४ ॥
 इत्युक्त्वा यन्त्ररचितं विमानमधिरुह्य सा ।
 क्षणादेवाप कौशाम्बीं विलाससदनं श्रियः ॥ ३४५ ॥
 अवतीर्य वरोद्याने तत्र सख्या सहोचिते ।
 तस्यावलिकुललोललताजालतिरोहिता ॥ ३४६ ॥
 अत्रान्तरे नवोद्याने विलाससतत्सरः ।
 वत्सेश्वरः समम्भायाचं देशमतुलद्युतिम् ॥ ३४७ ॥
 तमाललोके सानन्दं कम्पमानधनस्तनी ।
 फलिद्रसेना स्नेहाम्बुक्षाल्यमानविशेषका ॥ ३४८ ॥

स तत्ता मानमोहात्तपूर्वचन्द्रोदयो नृप ।
 चन्द्रोत्पत्तिर्जालेन्यहर्गकिलिवाऽऽकम् ॥ ३४९ ॥
 सहसा तन्तननिर्वन्मूव लिवितेव सा ।
 पुरोचननालोक्य कम्लेव नवोदिता ॥ ३५० ॥
 गभीर्धरास्त्रनि त विलोक्य जर्ष ना ।
 घृतमत्रोचिताका हरवैरादिव स्तम् ॥ ३५१ ॥
 सोमप्रभा सती दृष्टा नरेन्द्रगतनानसा ।
 उवाच सखि तिष्ठेह पुनर्नत्तग्लावविन् ॥ ३५२ ॥
 सन्दनाननिद्र चनुर्नेष्टनाशसतीव मे ।
 धिर्यव तन्मनाम्यान् कर्तव्या नाष्टतेस्त्वया ॥ ३५३ ॥
 यौगधगयागिर विनानात्र नरेन्द्र ।
 स त्वयानुगतो नित्यममीष्टेऽतिप्रवर्तते ॥ ३५४ ॥
 तत्सायताद्विधान्यानि तव वत्सेय सगतिन् ।
 गच्छामि त्वनविनाता त्रिरम्बवेह सुन्दरि ॥ ३५५ ॥
 इत्युक्त्वा दंष्टतनया प्रसभो ज्योनगामिनी ।
 तस्या कलिङ्गनेनाथ वन्तरात्रामिन्नापिणो ॥ ३५६ ॥
 ताम्यन्ती नन्मयाद्रन्ता तत कञ्चुकिन निजम् ।
 आहिणोद्वान्तरात्रम् दूत सा वान्छितावने ॥ ३५७ ॥
 रात्रिन्विराजना त्वा वरप्रीती नहीपतिम् ।
 सुता कलिङ्गदत्तव्य प्राप्तेत्य स नृपतिम् ॥ ३५८ ॥
 उक्त्वा विदुतस्तदप्या त्वमप्राप्ता नृपान्जवार ।
 हर्षादमन्यजालान धन्योऽन्नीति नरेन्द्र ॥ ३५९ ॥
 ततो रह सनाइय हृष्टो यौगधरायात् ।
 रात्रेन्द्रचन्द्र प्रोवाच विदिग्दन्तवन्त्रिकाम् ॥ ३६० ॥
 राज कन्दिदत्तम्य तनया नृपविश्रुता ।
 वरप्रीती तव प्रप्ता मानद्य नदनावनि ॥ ३६१ ॥

विधीयतां समारम्भस्तद्विवाहमहोत्सवे ।
 तूष्णं दुर्लभलभेषु बहुविम्भा हि सिद्धयः ॥ ३६२ ॥
 श्रुत्वेति भूपतिवचः प्रदध्यौ मन्त्रिकुञ्जरः ।
 जनेष्वेतेऽस्मिन्व्यसने भूपतिर्मा पतस्त्विति ॥ ३६३ ॥
 को ह्यसामान्यसौन्दर्यलावण्यतरलश्रुवाम् ।
 मुच्येतै वशमासाद्य स्वमावरसिको जनः ॥ ३६४ ॥
 जमात्यश्चिन्तयित्वेति नीतिज्ञो गणकैर्व्यवात् ।
 विवाहलज्जयाजेन कालहारं महीपतेः ॥ ३६५ ॥
 नृपोऽथ रत्नरुचिरं यरोद्यानमुदारधीः ।
 ददौ कलिङ्गसेनायै गृहं परिणयोत्सुकः ॥ ३६६ ॥
 यौगंधरायणोऽप्यस्य सार्धं यासवदत्तया ।
 पद्मावत्या च संमन्त्र्य कालहारमचिन्तयत् ॥ ३६७ ॥
 सोऽत्रवीदेवि संस्तम्भ्य कोपगीर्ण्यसमुत्थितम् ।
 कुर्वाथां भूपतिपुरः कृतकः स्वस्वमानसम् ॥ ३६८ ॥
 नवोद्वाहे नरपतेर्वर्तते भृशमादरम् ।
 स धत्तुं प्रातिगुल्येन शक्यः केनानिलोपमः ॥ ३६९ ॥
 जडा विपर्ययायैव विषमेषु तरहिताः ।
 संनद्रा विनिवर्तन्ते नदीयेषा इवेश्वराः ॥ ३७० ॥
 धानुगुल्येन युक्त्यैव सेविता यान्ति मार्दवम् ।
 येनोत्सृष्टा हि शाम्यन्ति ज्वराकाल इवेश्वराः ॥ ३७१ ॥
 फालहारेण नहुषो बधितः प्रार्थनापरः ।
 शक्या चारित्ररक्षायै शत्रे विप्रोषिते पुरा ॥ ३७२ ॥
 इति संविदभाषाय मग्री वासवदत्तया ।
 मित्रं सत्सार कार्यायै यौगेनं ब्रह्मराक्षसम् ॥ ३७३ ॥
 तं ध्यातमात्रमायानं वृत्तं ज्ञातुं न्यवेशयत् ।
 गृहं कलिङ्गमेनाया मन्दिरे मुक्तिर्योविदः ॥ ३७४ ॥

अत्रान्तरे मयमुता समभ्येत्य त्रिहायसा ।
 कलिङ्गसेनां सोत्कण्ठं कण्ठे जग्राह सादरम् ॥ ३७५ ॥
 चिरायाता सरीवृत्तं निज्जाय ज्ञानचक्षुषा ।
 ग्राह सोमप्रभा सोमप्रभावैयनशालिनी ॥ ३७६ ॥
 स्वयं भयि प्रयातायां किमात्मा वत्समूपतेः ।
 तस्या प्रकाशितः सत्यमनीरं ललनामनः ॥ ३७७ ॥
 मन्मतं समतिक्रम्य रैमसा हतसाहमम् ।
 कृतं सुष्टु त्वया मौग्यान्मूर्खाः साधुमतद्विषः ॥ ३७८ ॥
 अन्तर्मेधां द्विजग्रामे वसुदत्तमुतो द्विजः ।
 निष्पुदतोऽभवद्विद्यामधुविभ्रमदर्पणः ॥ ३७९ ॥
 स मित्रैः सप्तभिर्मूर्खैः सह गन्तुं भृशोत्थितः ।
 बलिभिस्तुरयाविष्टैरनश्वरैः विनिर्ययी ॥ ३८० ॥
 दुर्निमित्तं समाग्रेच्य तेन ते स्नातुमर्षिताः ।
 अज्ञानदुर्ग्रहप्रज्ञा न व्यलम्बन्त सत्वरः ॥ ३८१ ॥
 अपि यत्नेन ग्रन्थन्ते घृतं प्रलयमास्त्राः ।
 त्रिदृढाश्च नदीरेणा न तु मूर्खा हितद्विषः ॥ ३८२ ॥
 स गत्वा सह तैर्दूरं बन्धा अथयसन्निभम् ।
 निशि प्रतिश्रथाकाङ्क्षी त्रिवेश पुरमन्दिस्म् ॥ ३८३ ॥
 मुक्त्वा श्रमार्तास्ते तत्र मूर्खान्प्रस्थानुयायिनः ।
 भृशं समाययुर्निद्रां स न जामद्विचारधीः ॥ ३८४ ॥
 महानिद्रा महामोषा महामोहा महाश्रनाः ।
 मूर्खाः पशूनां वा शिष्या मूर्खाणां पशुरोऽथरा ॥ ८५ ॥
 स त्रिनिद्रमृतोऽपश्यन्निति तद्ब्रह्मयोषितम् ।
 निभ्रगामिन् तास्त्वन्यमहावेगतरङ्गिताम् ॥ ३८६ ॥

प्रच्छन्नकामिनी यूना केनापि रतिसंगता ।
 संकम्पाकुलनिःश्वासो विदधे तस्य कौतुकम् ॥ ३८७ ॥
 रतिनिद्रापरीतायां तस्यां स्वगृहमाविशत् ।
 गृहस्वामी समायातो^१ विसृज्य निजसेवकान् ॥ ३८८ ॥
 स राजवंश्यः स्वबधूं दृष्ट्वा केनापि संगताम् ।
 शिरश्चिच्छेद मुसस्य प्रियाचारित्रहारिणः ॥ ३८९ ॥
 खड्गं तद्रक्तससिक्तं दीप्तं विभ्रत्स पाणिना ।
 तान्माह पान्थाभिर्गत्य जलमानीयतामिति ॥ ३९० ॥
 विष्णुदत्तो विनिद्रोऽथ समुत्थाय ससंभ्रमम् ।
 जलं तस्मै ददौ पाणिस्थितस्वङ्गाय वारणम् ॥ ३९१ ॥
 पाणिं प्रक्षाल्य राजन्ये मोहाग्निद्रामुपागते ।
 प्रबुद्धा छिन्नशिरसं सापश्यन्नरमङ्गना ॥ ३९२ ॥
 मनःप्रियं तमादाय निहतं लघुचारिणी ।
 भस्मकूटे सुपिहितं स्थोपान्ते न्यवेशयत् ॥ ३९३ ॥
 तं निघाय प्रविश्याशु पत्युः सुसस्य मस्तकम् ।
 चिच्छेदाकृत्य निक्षिप्तं घोरं हि स्त्रीविचेष्टितम् ॥ ३९४ ॥
 ततश्चुकोश सा तारमयं प्राणपतिर्मम ।
 दस्युभिर्निहतो रात्रौ तच्छ्रुत्वा विविशुर्जनाः ॥ ३९५ ॥
 तैर्गृहीतांशुकाः पान्थास्ते भृशं वेपविह्वलाः ।
 घौरा इति वधूवाक्यान्मूर्खा नो किञ्चिद्विरे ॥ ३९६ ॥
 ययापृतं ययादृष्टं विष्णुदत्तसौतोऽब्रवीत् ।
 भग्महृदयान्तरपृतं तत्सदृश्य कलेवरम् ॥ ३९७ ॥
 प्रत्यायातैश्च मुक्तो दुर्निमित्तविनिर्गतान् ।
 निन्दन्वयम्यान्मयं विष्णुदत्तः भ्रमन्दिरम् ॥ ३९८ ॥

१. 'ता दृष्ट्वाकुलनिःश्वासो' इत्य. २. 'तान्' इत्य. ३. 'प्राणपतिवारणे' इत्य.
 ४. 'नी' इत्य. ५. 'यावदम्' इत्य.

इत्येवमनिमित्तानि मूर्खैरगणितान्यपि ।

फलन्ति मेपजं तेषां साधुविद्वत्समागमः ॥ ३९९ ॥

इति मूर्खाख्यायिका ॥ १४ ॥

सखि तूर्णं त्वया मोहात्किमात्मा प्रकटीकृतः ।

सपत्नीनां प्रयत्नो हि त्वद्विवाहविपर्यये ॥ ४०० ॥

रक्षणीयासि मे यत्नात्सपत्नीगोचरं गता ।

मायावतीनां वरेण योपितां को हि मुच्यते ॥ ४०१ ॥

दृढवैर्माभिधो राजा मृगयानिर्गतः पुरा ।

इक्षुमत्याः परिसरे हृतोऽध्वेनाविशद्वनम् ॥ ४०२ ॥

सोऽपश्यदलिलालोलशैलरम्ये तपोवने ।

तत्र कन्यां समासाद्य लावत्यललिताकृतिम् ॥ ४०३ ॥

तां विलोक्य मनःसिन्धुचन्द्रिकां क्षुभितो नृपः ।

प्रणम्य तस्या जनकं मुनिं पप्रच्छ मङ्गलम् ॥ ४०४ ॥

भगवन्कस्य कन्येयमस्मिन्नपि तपोवने ।

यत्कटाक्षकृतालम्बो मुष्णाति मदनो जनम् ॥ ४०५ ॥

श्रुत्वेति भूपतेः कन्यालभलोलुपचेतसः ।

मुनिः प्रोवाच तां तस्मै दातुमभ्युद्यतः स्वयम् ॥ ४०६ ॥

ममैवाप्सरसो वीक्ष्य मेनकां धैर्यविप्लवात् ।

सुतेयं कदलीगर्भा कदलीगर्मसंभवा ॥ ४०७ ॥

गृहाणेमां शशिमुखीं पात्रमेवासि भूपते ।

दुष्यन्त इव कण्ठेन पुरा दत्तां शकुन्तलाम् ॥ ४०८ ॥

उक्त्वेति प्रददौ तस्मै स कन्यामायतेक्षणाम् ।

अप्सरःकल्पितोद्वाहां योग्यकौतुकमङ्गलाम् ॥ ४०९ ॥

भूसुजा सह तां गन्तुं प्रस्थितां शासनात्पितुः ।

ऊचुरप्सरसः खेहादृत्वास्यै सिद्धसर्पपान् ॥ ४१० ॥

पुत्रि भूयाः सपत्नीषु सावधानात्मरक्षणे ।
 न सहन्ते हि मानिन्यः पत्युरन्यासमागमम् ॥ ४११ ॥
 खिन्ना भर्तृगृहे सुश्रु यदा पितरमेप्यसि ।
 तदा मार्गोपदेशाय तवेयं सर्षपावलीः ॥ ४१२ ॥
 इत्युक्त्वा तामिरगमत्सा पत्युरनयायिनी ।
 उदयाभ्युत्थितस्येव रक्ता भानुमतः प्रभा ॥ ४१३ ॥
 सा राजधानीमासाद्य रुचिरोद्यानगूमिषु ।
 रममाणा चिरं तस्यौ प्रियप्रणयपांलिता ॥ ४१४ ॥
 तस्यामासक्तमालक्ष्य नृपं त्यक्त्वाखिलक्रियम् ।
 ज्येष्ठा नरेन्द्रमहिषी बभूव भृशदुःखिता ॥ ४१५ ॥
 उवाच सासमेकान्ते सा समाहूय भूपतेः ।
 सचिवानेकसक्तोऽयं क्षमापतिर्वार्यतामिति ॥ ४१६ ॥
 तदाकर्ण्यध्रुवन्देवीं स्वैरमालोक्य भव्निणः ।
 वयं प्रणयिनि प्रेमच्छेदे न स्वामिनः क्षमाः ॥ ४१७ ॥
 स्त्रियोऽत्र विनियुज्यन्ते भिक्षुकी बाध तापसी ।
 मायाकुहककौटिल्यकलौकोशा हि योपितः ॥ ४१८ ॥
 श्रुत्येति लज्जितेवासौ कृत्वा तद्वचनं हृदि ।
 दग्धानै युक्तमित्युक्त्वा तान्विसृज्य तथाकरोत् ॥ ४१९ ॥
 गर्भदासं विसृज्यासौ समाहूय सुपूजिताम् ।
 सपत्नीपरिहाराय योजयामास तापसीम् ॥ ४२० ॥
 गर्भघातेनतस्त्वनवद्याकर्षणमारणैः ।
 लब्धप्रतिष्ठा तत्कार्ये सा तथेत्याह पूजिता ॥ ४२१ ॥
 तत्प्रतिज्ञाय सा पश्चात्तापं मेजे निजाश्रमे ।
 गृहकाः प्रणयन्त्येते कथं नृपगृहे स्थितिः ॥ ४२२ ॥

रत्नमञ्चौषधिप्रीतसदैवज्ञपुरोहिते ।
 महाराजपुरे युक्ता नश्यन्ति क्षुद्रसिद्धयः ॥ ४२३ ॥
 ध्यात्वेति दुःखिता प्रायात्सुहृदं साथ नैपितम् ।
 यो मायाटम्बरचयैर्घौर्त्यराशिरिवोत्थितः ॥ ४२४ ॥
 तस्मै निवेद्य सा सर्वं राजपत्न्या विचेष्टितम् ।
 कार्येऽस्मिंस्त्वं सहायो मे तमुवाचेति तापसी ॥ ४२५ ॥
 स तन्निशम्य मनसा प्रदध्यौ हर्षसंभृतः ।
 अचिन्ते तमिदं तेन दिष्ट्याहं स्वयमर्थितः ॥ ४२६ ॥
 दिष्ट्या पिबामः स्नादामो वर्णयित्वा समजसम् ।
 पुण्यैरुपनमन्त्येव धूर्तानां जडबुद्धयः ॥ ४२७ ॥
 चिन्तयित्वेति विश्रब्धं तां स सादरमभ्यधात् ।
 स्थितोऽहमत्र निःशेषमायाकल्लोलसागरः ॥ ४२८ ॥
 राजपत्न्या करिष्यामि सपत्नीविनिवारणम् ।
 युक्तिजः साधयिष्यामि सर्वं तव मनोगतम् ।
 कर्णकौतुकमव्यग्रा महुद्विविभवं शृणु ॥ ४२९ ॥
 दुःशीलनामा भूषालः पुरा मे बहूभां रहः ।
 सदा सिपेवे तद्दुःखादभवं शुष्कविग्रहः ॥ ४३० ॥
 वमनक्षालनक्षीणं विधायाहं ततो वपुः ।
 अवदं भूमिपालेन पृष्टो दौर्बल्यकारणम् ॥ ४३१ ॥
 भार्या मे ढाकिनी रात्रावाकृष्याद्भानि भक्षति ।
 गुदद्वारेण तेनाहं विवर्णो निष्प्रभः कृशः ॥ ४३२ ॥
 सशक्नोमिति राजानं विधौयाहं स्वमन्दिरे ।
 अवोचं राश्रुनयनो निजजायापधोमुखः ॥ ४३३ ॥
 गुदे राज. समुत्पन्नं दंष्ट्रायुगलमुत्कटम् ।
 क्षुरं छिनत्ति सततं तेन मे कर्मकारिणः ॥ ४३४ ॥

वृत्तिच्छेदाद्विनष्टोऽहं शस्त्रभाण्डक्षये सदा ।
 इति मेद्वचसा सागूडूरिविस्रयकौतुका ॥ ४३५ ॥
 ततो रहः समेतस्य स्तौ सा भूपतेर्निशि ।
 गुदं पस्पर्श हस्तेन सशङ्कस्य कुतूहलात् ॥ ४३६ ॥
 तैस्तस्तां ढाकिर्नी मत्वा स पलाय्य ययौ जवात् ।
 इति युक्त्यैव दयिता मया घूर्तेन मोचिता ।
 बाढं देव्याः करिष्यामि निःसपत्नीभयं मनः ॥ ४३७ ॥
 उक्तवेति तापसीं पृष्टः प्रदध्यौ नापितः क्षणम् ।
 राजद्रोहे न शक्तोऽहं किंतु जीवामि वर्णनैः ॥ ४३८ ॥
 विचिन्त्येत्यवदद्युक्तिं नृपस्थान्तःपुरान्तिके ।
 हस्तपादशिरःखण्डान्काञ्चिस्त्रिपतु पौरुषान् ॥ ४३९ ॥
 विलोक्य जातशङ्कस्तां सापवादां मुनेः सुताम् ।
 दृढवैर्मां नृपः कोपाद्भुवं त्यक्ष्यति बल्लभाम् ॥ ४४० ॥
 इति तद्वाक्यमाकर्ण्य तापसी राजमन्दिरे ।
 देवीहिताय तत्सर्वं चकारालक्ष्यचारिभिः ॥ ४४१ ॥
 तद्विलोक्य नृपो घोरां तां मत्वा शाकिर्नी वधूम् ।
 सपत्नीरचितासत्यदोषां तत्याज मूढवत् ॥ ४४२ ॥
 पितुराश्रममासाद्य सर्पपादिष्टवर्त्मना ।
 न्ययेदयत्सवृत्तान्तमात्मनः क्षितिपत्स्य च ॥ ४४३ ॥
 विज्ञाय स हि तद्वृत्तं दिव्यधार्यङ्गणो मुनिः ।
 चकाराम्येत्य यत्नेन संजातप्रत्ययं नृपम् ॥ ४४४ ॥
 इति माया सपत्नीनां दुर्लभदा नृपस्थानसे ।
 गच्छाम्यहं त्वया मुमु स्वातन्त्र्यं सावधानया ॥ ४४५ ॥

१. 'तद्' एव. २. 'वन्मन्' एव. ३. 'व' एव. ४. 'विज्ञाय दृष्टितुर्गतं दिव्यधी-
 नं ह्यो मुनिः' एव. ५. 'मूढ' एव.

वर्तमानां परगृहे त्वामहं स्मृपस्थिता ।

चारिता बल्लभेनाद्या सौदयिष्यामि तं पुनः ४४६ ॥

इति सपत्न्यास्यायिका ॥ १५ ॥

इत्यामञ्ज्य सखी खैरं प्रयातायां विहायसा ।

सोमप्रभायां तत्सर्वमाकर्ण्य ब्रह्मराक्षसः ॥ ४४७ ॥

योगेश्वरः समभ्येत्य मन्त्रिणे^१ दिव्यलोचनः ।

सख्योः परास्परालापं निवेद्य पुनराविशत् ॥ ४४८ ॥

यत्सेश्वरोऽपि तत्सङ्गदिनध्यानपरायणः ।

निनिन्द मनसा नित्यं गणकान्गणनापरान् ॥ ४४९ ॥

दृष्ट्वा वासवदत्तां स निर्विकारमवस्थिताम् ।

यौगंधरायणकृतां कांचिन्नीतिमशङ्कतः ॥ ४५० ॥

तत्कारणं रहो राज्ञा पृष्टो यौगंधरायणः ।

प्राह देव मनस्विन्यैर्दोर्द्वयोः कोपो न लक्ष्यते ॥ ४५१ ॥

यत्सहासं मुखं कोऽपि^२ स्त्रीणां मे नातिनिश्चितम् ।

मरणे व्यवसायस्य स कोपस्खलितः क्रमः ॥ ४५२ ॥

इत्यादियुक्तिवचनैर्विनिधाय प्रभोर्मनः ।

॥ विवाहमहोत्साहे श्रुत्यादौरमिवाकरोत् ॥ ४५३ ॥

वत्सराजस्ततो ध्यात्वा विमनाः प्राह मन्त्रिणम् ।

संदेहाकुलितो वाक्यं विलोल इव यद्यदः ॥ ४५४ ॥

भजमानां प्रणयिनी यो मोहादवमन्यते ।

नमोऽस्तु षण्दपश्ये तस्मै कठिनचेतसे ॥ ४५५ ॥

असात्पुराणपुरुषः सोऽपि घीमान्धनंजयः ।

स्वर्गे रम्भामनादृत्य तच्छापात्पाण्ड्यमाप्तवान् ॥ ४५६ ॥

चिन्ताज्वरो दुःसहोऽयं त्यज्यते च नृपात्मजा ।

त्यक्त्वा लक्ष्मीं स्वयं प्राप्तमनुतापं भजेन्न कः ॥ ४५७ ॥

१. 'प्रसादयिष्यामि' ख. २. 'णो' ख. ३. 'न्या.' ख. ४. 'ध्या.' ख. ५. 'ये' ख.

६. 'रम्भ' ख. ७. 'लैव्यमा' ख.

इति वत्सेश्वरवचः श्रुत्वा मन्त्रीवरोऽवदत् ।
 कन्दर्परूपो नृपतिः श्रुतसेनाभिघोऽभवत् ॥ ४५८ ॥
 कदाचितीर्थपूतात्मा दृष्ट्वा सोमेश्वरं प्रभुम् ।
 अग्निशर्माभिघो विप्रस्तं यदृच्छागतोऽब्रवीत् ॥ ४५९ ॥
 पञ्चतीर्थं नृप ज्ञात्वा यत्र ताः सच्यसाचिना ।
 पूर्वमप्सरसो मुक्ता द्रष्टुं शर्वमहं गतः ॥ ४६० ॥
 दृष्ट्वा सोमेश्वरं देवं सुराष्ट्रामृतवारिदम् ।
 भ्रान्तस्तालीवनालोलदयामले जलधेस्तटे ॥ ४६१ ॥
 ततः कदाचिल्ललितामपश्यं राजकन्यकाम् ।
 राज्ञो वसन्तसेनस्य मुद्गानस्तंस्य मन्दिरे ॥ ४६२ ॥
 भर्त्री कुसुमचापस्य बर्त्री यौवनशास्त्रिनः ।
 पत्नी मदपुलिन्दस्य वीक्ष्य तां विस्मितोऽभवत् ॥ ४६३ ॥
 परां रतिमिवालोक्य तां त्वां स्मृत्वा स्मरोपमम् ।
 नृपतिः श्रुतसेनोऽस्या योग्य इत्यभ्यर्थां स्फुटम् ॥ ४६४ ॥
 स भवानेव तत्कन्यां वर्तुमर्हति नापरः ।
 इत्युक्त्वा तद्विरा गत्वा तामयाचत तच्छ्रुते ॥ ४६५ ॥
 द्विजशैत्यवितीर्णां तां पित्रा प्राप नृपः प्रियाम् ।
 विद्युद्द्योतां स्मरोद्यानविलासरसिकोऽभवत् ॥ ४६६ ॥
 याति काले तयोः प्रौढं प्ररूढे प्रेमपादपे ।
 अपरा विश्रुतगणं वरयित्री समाययौ ॥ ४६७ ॥
 नवां नरेन्द्रतनयां प्राप्तां पत्युः स्वयंवरे ।
 सा ज्ञात्वा प्रियैसंभोगमभ्रमीताभवद्यसुः ॥ ४६८ ॥
 तद्वियोगानललीढो नृपोऽपि प्राप पञ्चताम् ।
 वरयित्री च मानिन्या संशयाय निपातिता ॥ ४६९ ॥
 इति श्रुतसेनान्यायिका ॥ १६ ॥

यौगंधरस्येति वचो निशम्य जगतीपतिः ।
 स्मृत्वा देव्यां च कन्यां च तस्यौ दोलाविलोलीः ॥ ४७० ॥
 वीक्ष्य वासवदत्तां च सङ्गं तस्याः कथं नृपः ।
 प्रसन्नवदनोदरममृतस्य मनोरथः ॥ ४७१ ॥
 ततो योगेश्वरोऽभ्येत्य मन्त्रिणो रजनीचरः ।
 चारमावेदयानास समेत्यालक्षितो निशि ॥ ४७२ ॥
 गोपालकेन विदितश्चारः श्वसुरवेक्षणे ।
 राज्ञा कलिङ्गदत्तेन पुत्रीवृत्तान्तमाहिताः ।
 गूढव्यञ्जनसंचाराश्चारा दृष्टास्तथा मया ॥ ४७३ ॥
 इति रक्षोवचः श्रुत्वा ग्राह यौगंधरायणः ।
 कलिङ्गसेनवृत्तान्तं यत्नेन ज्ञातुमर्हसि ॥ ४७४ ॥
 त्वद्बुद्धिविमवेनाहं प्रमोर्ज्यसनमागतम् ।
 छेत्तुमिच्छामि राज्ञां हि दुश्चिकित्स्यः स्तरानलः ॥ ४७५ ॥
 त्राणं नैसर्गिकी बुद्धिर्दणामिति किमद्भुतम् ।
 तिरश्चामपि निष्पन्ना व्यसनोच्छिद्ये मतिः ॥ ४७६ ॥
 न्यमोषमूलपतितः पालितो नाम मूपकः ।
 जाले लोमशमार्जारं ददर्श पतितं पुरः ॥ ४७७ ॥
 वद्रे तस्मिन्गताशङ्कः स जिघ्रन्स्वयमागतः ।
 मुँजैर्बहिश्चरन्नाशु विलिखन्नखैर्महीम् ॥ ४७८ ॥
 ददर्श नकुलं तत्रोलूकं च विकृताननम् ।
 तौ दृष्ट्वा प्राणसंदेहे मूपकः समचिन्तयत् ॥ ४७९ ॥
 नकुलोलूकमातोऽहं मार्जारं बलिनां वरम् ।
 श्रयामि विषमस्थानां संधिं स्थाने हि शत्रुणा ॥ ४८० ॥
 चिन्तयन्निति तत्प्राशं छेत्स्यामि वद्धसौहृदः ।

१. 'ध्यात्वा' ख. २. 'निहितौ चारौ' ख. ३. 'निलयः' ख. ४. 'प्रैक्ष्यपत्नाननः'
 ख. ५. 'मत्स्यं बहिश्चरन्नाशु वि' ख. ६. 'संधिज्ञानं' ख. ७. 'शच्छेदायोयन-
 मानसः' ख.

मार्जारमवदन्नीलं काचकाञ्चनलोचनम् ॥ ४८१ ॥
 अमित्रो मित्रतां याति मित्रं वा यात्यमित्रताम् ।
 कालेन तस्य च्छेत्स्यामि पाशं ते बद्धसौहृदः ॥ ४८२ ॥
 इति श्रुत्वा संमधुरं मार्जारः सुहृदं व्यधात् ।
 गाढमङ्गे परिष्वज्य मूपकं विषदि स्थितः ॥ ४८३ ॥
 तं दृष्ट्वा नकुलोलूकौ निराशावाखुमक्षणे ।
 बभूवतुर्मन्दमुखौ तदुपाश्रयशङ्कितौ ॥ ४८४ ॥
 ततः शनैः शनैराखुश्चिच्छेद स्नायुबन्धनम् ।
 तूर्णमित्याह मार्जार विलावं चिरकारणम् ॥ ४८५ ॥
 स्वार्थमुद्दिश्य लम्बन्ते स वा भक्तिमिरीश्वरम् ।
 धूर्तस्तत्कार्यशेषेण थापयेत्कार्यकारणात् ॥ ४८६ ॥
 इति ध्यात्वा धियैवाखुर्लब्धकागमनावधि ।
 एकपाशांशशेषं तं चकार नयकोविदः ॥ ४८७ ॥
 कालांकारकरालेऽथ संप्राप्ते पाशजीविनि ।
 चकर्त पाशशेषं तं छित्वैव बिलमाविशत् ॥ ४८८ ॥
 भयान्मुक्तोऽथ मार्जारः कालेनाभ्येत्य मूपकम् ।
 बिलद्वारस्थितः प्राह सखे निर्गम्यतामिति ॥ ४८९ ॥
 तीक्ष्णवक्रोच्चदशनस्रश्रुसूचीनिभाननम् ।
 कक्षासंघत्तलाद्गलं जिघ्रन्तं बिलसौरभम् ॥ ४९० ॥
 उच्चैकपादनिभृतं मीलितार्थविलोचनम् ।
 पार्श्ववलोकितं दृष्ट्वा मार्जारं मूपकोऽवदत् ॥ ४९१ ॥
 सौहार्देनोपयुक्तः प्राप्तव चाहं भवांश्च मे ।
 शम्भतां स मजः कालो न श्रमिर्दन्तास्तदहम् ॥ ४९२ ॥
 यद्भवान्मधुरं यकि मखं तन्नाच रोचते ।

१. 'मधुनिधं' ख. २. 'मंममयो' ख. ३. 'तं तूर्णं तूर्णमित्याह मार्जारथिरका-
 रिणम्' ख. ४. 'अथे सेयाम' ख. ५. 'माचकान्' ख. ६. 'शाशशेष' ख.
 ७. 'विमाननम्' ख.

यातस्ते कार्यकालोऽसावधुना नास्ति संगतिः ॥ ४९३ ॥

निजप्रयोजनापेक्षापेशलप्रेमभाषिणाम् । ।

दुर्लुब्धकूरमनसां घीमान्को नाम विश्वसेत् ॥ ४९४ ॥

कृतज्ञ भव मे मित्रं दूरादेवार्थचेतसाम् ।

न सङ्गोऽस्ति विरुद्धो हि भोग्यमोक्तुः समागमः ॥ ४९५ ॥

निरस्य बहुभिर्वाक्यैर्मार्जारमिति मूषकः ।

विलं तत्याज कालेन धूर्तं शत्रुं विलोक्य तम् ॥ ४९६ ॥

इति मार्जाराख्यायिका ॥ १७ ॥

इति बुद्धिमतां नीतिर्निगूढां कार्यसिद्धये ।

चित्तं हि नयनं प्रोज्ञो पापस्यात्मनि संभृतम् ॥ ४९७ ॥

पुरा प्रसेनजिनाम आवस्त्यां वसुधाधिपः ।

सभायां ब्राह्मणोऽभ्येत्य विज्ञप्तः शास्त्रचक्षुषा ॥ ४९८ ॥

दुःखार्जितं धनं देव हारितं त्वयि शास्त्ररि ।

वने नागबलावलीमूले विनिहितं मया ॥ ४९९ ॥

श्रुत्वेति राजा संचिन्त्य वैद्यानाहूय सर्वतः ।

अपृच्छदातुरेष्वथ प्रयुक्तं किं किमौषधम् ॥ ५०० ॥

इति प्रष्टेषु वैद्येषु प्राहैको वणिजो मया ।

दत्तो नागबलाकाथः प्रमाणमधुना नृपः ॥ ५०१ ॥

इत्याकर्ण्य तमन्विष्य सानिता येन सा लता ।

मेपजायाब्रवीद्राजा ब्राह्मणस्त्वं हर्त त्वया ॥ ५०२ ॥

इति घेत्रघराहृतः श्रुत्वा कम्पाकुलो नरः ।

राजमीतस्तथेत्युक्त्वा स विप्राय ददौ धनम् ॥ ५०३ ॥

इति राज्ञा स्वबुद्ध्यैव विप्रस्त्वं नष्टमाहृतम् ।

को हि नाम सै संकल्पो घीमतां यो न सिद्धयति ॥ ५०४ ॥

इति प्रसेनजिदाख्यायिका ॥ १८ ॥

इति मन्त्रिवचः श्रुत्वा प्रच्छन्नो ब्रह्मराक्षसः ।

कलिङ्गसेनामवनं तत्प्रयुक्तः पुनर्ययौ ॥ ५०५ ॥

अत्रान्तरे स्मराकृष्टश्चिरान्न्यस्तमनोरथः ।

धीमान्मदनवेगाख्यो विद्याधरपतिः स्वयम् ॥ ५०६ ॥

वत्सेशवेपमाधाय निर्विशेषमवाद्रितः ।

कलिङ्गसेनामवनं विवेश विशदद्युतिः ॥ ५०७ ॥

कलिङ्गसेना तं वीक्ष्य ध्यात्वा वत्सनरेश्वरम् ।

ससंभ्रमं समुत्तस्यौ रणभूपुरमेखला ॥ ५०८ ॥

लज्जानतमुत्ताम्भोजां कम्पमानां घनस्तनीम् ।

गान्धर्वोद्वाहविधिना हृष्टस्तामालिलिङ्ग सः ॥ ५०९ ॥

तं दृष्ट्वा तूर्णमासाद्य प्राह यौगंधरायणम् ।

राक्षसो वत्सराजेन राजपुत्री वृतेति सः ॥ ५१० ॥

असंभाव्यमिदं मन्ये नायं राजा विशृङ्खलः ।

ध्रुवं कश्चित्स तद्वेपो मग्नी प्राहेति विस्मितः ॥ ५११ ॥

नृपं वासवदत्ताया मन्दिरे वीक्ष्य मन्त्रिणा ।

विस्मृतो राक्षसः प्रायाद्रष्टुं कपटकामुकम् ॥ ५१२ ॥

कलिङ्गसेनामवने सोऽपश्यन्नृपरूपिणम् ।

विद्याधरेन्द्रं सुरतश्रमनिद्राविमोहितम् ॥ ५१३ ॥

इति कलिङ्गसेनामदनवेगसमागमः ॥ १९ ॥

ततो विज्ञाय निपुणो राजकन्याविचेष्टितम् ।

चक्रे विदितवृत्तान्तं नृपं यौगंधरायणः ॥ ५१४ ॥

कलिङ्गसेना केनापि वृत्ता विद्याधरेण सा ।

इति वासवदत्तां च मग्नी गूढमहर्षयत् ॥ ५१५ ॥

क्रोधशोकस्मरान्तो गत्वा वत्सेश्वरः स्वयम् ।

कलिङ्गसेनां निःशङ्कां ददर्शान्तन्तक्याम् ॥ ५१६ ॥

१. 'भ्य' ख. २. 'रि' ख. ३. 'ध्यात्र' ख. ४. 'मन्येत्' ख. ५. 'निपुणम्' ख. ६. 'शान्त' ख.

सा वत्सराजमालोक्य संभ्रमाद्गलितांशुका ।
 स्तनद्वयं विदधतीं घरोल्लिखितमात्रमौ ॥ ५१७ ॥
 दृष्ट्वाभिनवसमोगसंभावितमनोमवाम् ।
 सौभाग्यविभ्रमोद्भिन्नां तां लतामिव पुष्पिताम् ॥ ५१८ ॥
 वत्सराजो नियम्यान्तः कोपमन्मथविक्रियाम् ।
 प्राह केनापि पापेन वञ्चितासीति निश्चसन् ॥ ५१९ ॥
 कलिङ्गसेना तच्छृत्वा सद्यश्छिन्नमनोरथा ।
 नेदानीं त्वं सपत्नी मे क्षमामितीव व्यलोक्यत् ॥ ५२० ॥
 ततो वत्सेश्वरे याते साक्षाद्विद्याघरेश्वरम् ।
 वरं मदनप्रेमं सा वदर्श सरविभ्रमम् ॥ ५२१ ॥
 कुलामिजनमावेद्य मोज्जिता तेन मानिनी ।
 नोवाच किचिन्मनसा बबन्ध वैमुनिर्वृतिम् ॥ ५२२ ॥
 जय वत्सेश्वर स्वैरं सरानुद्ययतापितः ।
 विद्याघरेन्द्ररहितां राजपुत्रीं समाययौ ॥ ५२३ ॥
 स तामेत्यावदल्लज्जार्जाललोचनकान्तिभिः ।
 आगुरुष्कामिव निम्नाणां नीलोत्पलदलस्रजम् ॥ ५२४ ॥
 प्राप्ता मदर्थमेवासि भज मां सुश्रु नास्ति ते ।
 दोषो विशुद्धमावायाः प्रमाणं चात्र मे मनः ॥ ५२५ ॥
 इति राजवचः श्रुत्वा सात्रनीत्माश्रुलोचना ।
 दुर्निमित्तं विलोक्यैवं सम्याहं वारिता पुरा ॥ ५२६ ॥
 सोमप्रमावचः पथ्यमकृत्वा संशयं गता ।
 प्रजापाल तमेदानीमगम्याहं पराङ्गना ॥ ५२७ ॥
 इन्द्रदत्तामिधो राजा चेदानीममवत्पुरा ।
 पापसूदनतीर्थे च चक्रे दिव्यं मुरालयम् ॥ ५२८ ॥

स कदाचिद्वणिग्जायां तर्तीयं स्वातुमागताम् ।
 ददर्श कान्तिकलोलप्लाव्यमानामिवाभितः ॥ ५२९ ॥
 तामन्विष्य स्वयं राजा समेत्य विजने निशि ।
 भजस्वेत्यवदत्को हि कामेन न खलीकृतः ॥ ५३० ॥
 स्पृष्टा वह्निं विशामीति सा समामाप्य भूपतिम् ।
 तस्याज दयिता प्राणान्विषमं हि सतीव्रतम् ॥ ५३१ ॥
 भूपतेरपि तर्चीवपापसंकुचित्तयुपः ।
 मन्ये तस्य कथास्पर्शोज्ज्वल्यं लज्जतीव मे ॥ ५३२ ॥
 इति पतिव्रताख्यायिका ॥ २० ॥

सुराङ्गना शक्रशापादहं प्राप्ता दशामिमाम् ।
 निन्द्यासि चपला यद्वा भूमेषा भवितव्यता ॥ ५३३ ॥
 मनोरथशतास्पृष्टमभाष्यान्वदवाप्यते ।
 विधातृविहितं को हि कदा लङ्घयितुं क्षमः ॥ ५३४ ॥ —
 इदं विद्याधरेन्द्रेण वितीर्णं मणिकाञ्चनम् ।
 अहं युष्मत्पुरे राजन्निवसाम्यनपायिनी ॥ ५३५ ॥
 श्रुत्येति मदनार्तोऽपि विरराम नरेश्वरः ।
 सतां कलुषितं चेतः स्वयमेव प्रसीदति ॥ ५३६ ॥
 अथ कालेन संशुक्ता विद्याधरधराभुजा ।
 कलिह्रसेना संतोषं गर्भमाधत्त सुप्रभा ॥ ५३७ ॥
 ततो विद्याधरपतिस्तामामह्य ययौ प्रियः ।
 गर्भाधानावधिः स्त्रीणां खेचरैर्हि समागमः ॥ ५३८ ॥
 स्मृतमात्रः समेष्यामि याते कृत्वेति संविदम् ।
 विद्याधरेन्द्रे सा तस्यो दोहदापाण्डुरद्युतिः ॥ ५३९ ॥
 तनोऽमृत मुनीं काले संपूर्णे पूर्णलक्षणाम् ।
 चित्राह्नदोऽद्य गन्धर्वन्मामदृष्टां जहार वा ॥ ५४० ॥

अत्रान्तरे वराच्छंभोः साङ्गानङ्गार्थिता रतिः ।
 प्रच्छन्ना मायया तन्वी न्यस्ता तत्सूतिकागृहे ॥ ५४१ ॥
 नरवाहनदत्तस्य कामस्यापररूपिणः ।
 भाविनी बल्लभा गर्भव्यत्ययात्तलुताभवत् ॥ ५४२ ॥
 लवण्यकलिकाकारैस्तद्वपुःकान्तिसंचयैः ।
 प्राप्नुर्विवर्णतां दीपा द्यूतकारान्नता इव ॥ ५४३ ॥
 सुतां कलिङ्गसेनाया जातां श्रुत्वा महीपतिः ।
 पुत्रोद्गाहे मतिं चक्रे भावशो हि मनोरथः ॥ ५४४ ॥
 इति मदनमञ्चुकाजन्मकथा ॥ २१ ॥
 ज्ञात्वा यत्सेशसंकल्पं प्राह यौगंधरायणः ।
 राजन्नयोनिजैवेत्यमुत्पन्ना कन्यका रतिः ॥ ५४५ ॥
 गर्भयोर्व्यत्ययोर्वृत्तं श्रुतमस्माभिरित्यपि ।
 त्वत्पुत्रायावतीर्णया साक्षान्मन्मथरूपिणे ॥ ५४६ ॥
 विरूपाक्षमिषो यक्षो धनदानुचरः पुरा ।
 विशसो निषिपालेन भूतलन्यस्तजानुना ॥ ५४७ ॥
 देव पाशुपताचार्यः सहितो ब्राह्मणैस्त्रिभिः ।
 निधानोत्पादने लग्नो मधुरायामपेतमीः ॥ ५४८ ॥
 इति श्रुत्वा विरूपाक्षो हन्यतामित्यभाषत ।
 तद्विरा तं जघानासौ धनदस्तं निनिन्दे च ॥ ५४९ ॥
 कुत्रेरो ब्राह्मणवधाद्विरूपाक्षमथाशपत् ।
 तच्छापाद्भुवि विप्रस्य पुत्रोऽभूत्तोग्रहारिणी ॥ ५५० ॥
 घनेशमर्थयित्वांसौ तद्भार्यावततार च ।
 अयोनिजा मल्लुतेति दास्या स्नेहेन वर्धिता ॥ ५५१ ॥
 तां पूर्वभार्याभालोक्य सोऽपि द्विजकुमारकः ।
 कण्ठे जग्राह नश्यन्ति न हि प्राग्जन्मवासनाः ॥ ५५२ ॥

ततस्तयोर्विवाहोऽमृत्पित्रा संचिन्त्य कल्पितः ।

इत्येवं पूर्वसंवन्धात्संगमो देहिनामिह ॥ ५५३ ॥

इति यक्षाख्यायिका ॥ २२ ॥

इति मन्निवचः श्रुत्वा हृष्टो वत्सनरेश्वरः ।

देव्या च पद्मावत्या च विजहार सरार्तधीः ॥ ५५४ ॥

नखाहनदत्तोऽपि मात्रोरमृतनिर्झरः ।

पितुर्मनोरथैः सार्धं पूर्यमाणतनुर्वमौ ॥ ५५५ ॥

ततो वासवदत्तायाः शासनात्तनयां प्रियाम् ।

कलिङ्गसेना सानन्दा त्रिससर्ज नृपान्तिकम् ॥ ५५६ ॥

नखाहनदत्तस्तां दृष्ट्वा मदनमधुकाम् ।

स्फुटं जहर्प वालोऽपि सिच्यमान इवामृतैः ॥ ५५७ ॥

उत्सङ्गलालिता धाव्या तं राजतनयं विना ।

मुहूर्तमपि नो तस्यौ सा कन्या कामकन्दली ॥ ५५८ ॥

ततो राजा प्रशस्तेऽहि सुतं संपूर्णविग्रहम् ।

यौवराज्येऽभिषिच्याह मन्निपुत्रान्क्रमागतान् ॥ ५५९ ॥

नखाहनदत्तस्य यूयं मौला यथोचितम् ।

मृत्या मया समादिष्टाः पितृपैतामहे पदे ॥ ५६० ॥

इत्युक्त्वा तनयायैतान्प्रददौ मन्निपुत्रकान् ।

गौर्गंधरायणमुतं मरुभृतिं महामतिम् ॥ ५६१ ॥

वसन्तकस्य पुत्रं चावर्णक्षीलं सुमघ्रकम् ।

[गोमुखाद्यांश्च मुहृदो वीरं हरशिखं तथा] ॥ ५६२ ॥

अत्रान्तरे मयमुता भर्तारं नलकूबरम् ।

समामष्ट्यान्तिकं सख्याः स्मृतमात्रा सभाययौ ॥ ५६३ ॥

सा चक्रे दिव्यमुद्यानं व्योमगं मर्तृनासनात् ।

योग्यं कलिङ्गसेनायाः पुत्रीपरिषयोत्सवे ॥ ५६४ ॥

१. 'सु' क. २. 'य नर्मदीर्घं तपसकम्' ख. ३. एताकोऽततमंत. पाठः रा-पुन्यके मुद्रितः. ४. 'व्योमगं द्योणाद्रमानं भर्तृ' ख.

वत्सराज सहामात्यस्तदालोभ्यातिवैतुकात् ।

कलिङ्गसेना सानन्दमेते सर्गविदा धुरि ॥ ५६५ ॥

ततो रह स्थितो राजा रजनीतिलकानना ।

दृष्ट्वा वराङ्गना प्रह्वय पप्रच्छागमकारणम् ॥ ५६६ ॥

ता प्राहुर्मूपते सर्वा वय विद्या कलास्तथा ।

शरीर प्रविशामोऽद्य तत्र पुत्रस्य धीमत ॥ ५६७ ॥

तच्छ्रुत्वा वत्सराजस्ता सपूज्य प्रयत्न शुचि ।

महाप्रसाद इत्युक्त्वा बभूवानन्दनिर्मर ॥ ५६८ ॥

ततस्ता विविशुर्विद्या राजपुत्र कलाश्च ता ।

तदानीष्टश्च स वभो सुधासिक्त इवोर्दुप ॥ ५६९ ॥

इति यौवराज्याभिषेको विद्याकलासक्रान्तिश्च ॥ २३ ॥

नानाविद्याकलकैलिकानन स नृपात्मज ।

सर्गज पितुरजौसीद्वीणार्यो लक्षण शुभम् ॥ ५७० ॥

नृपाजया पुष्कराल्यो नृत्ताचार्यो दिनैर्व्यधात् ।

कलिङ्गसेनातनया नृत्यगीतादिकोनिदाम् ॥ ५७१ ॥

ता वीक्ष्य राजतनय सा च त स्मररूपिणम् ।

प्रापतु प्रेमवल्लर्या मधुमासविलासताम् ॥ ५७२ ॥

तयो परस्पर प्रेम्णि वर्धमाने मनोरथे ।

बभूव पुष्पचापस्य सैफल कार्मुकश्रम ॥ ५७३ ॥

तत कदाचिदेकान्ते दृष्ट्वा गोमुरमभ्यधात् ।

कलिङ्गसेना वामातुर्माविन मुहद प्रियम् ॥ ५७४ ॥

नरवाहनदत्तस्य सरस्युत्तव यशस्विन ।

दृष्ट्विद्वदानुरागा मे सुता मदनमञ्चुकाम् ॥ ५७५ ॥

सेय यदि वरारोहा र्याता तत्प्रीतिगालिनी ।

तदस्यो राजपुत्रश्च लज्जैषा केन सद्यते ॥ ५७६ ॥

१ 'न्द मेने सर्वाधना पद' ख. २ 'दय' ख. ३ 'व्यासीत्' ख. ४ 'या लक्षणे गुह' ख. ५ 'फल कार्मुकविश्रम' ख. ६ 'दृष्ट' ख. ७ 'रय' ख. ८ 'जा' ख.

श्रुत्वेति गोमुखः प्राह मातर्युक्तं प्रमापसे ।
 यूनोर्हि सदृशी प्रीतिः कस्य नानन्ददायिनी ॥ ५७७ ॥
 पुरा वररुचिः प्राह योगनन्दं महीपतिम् ।
 भारिकं कुम्भकारं च पथि वीक्ष्य समागतौ ॥ ५७८ ॥
 अनयोरुपरि प्रीतिः कीदृशी तव भूपते ।
 इति श्रुत्वाब्रवीद्राजा हन्तुमिच्छामि भारिकम् ॥ ५७९ ॥
 कुम्भकारं तु पश्यामि स्वबान्धवमिवागतम् ।
 इति राजवचः श्रुत्वा गत्वा वररुचिः स्वयम् ॥ ५८० ॥
 तौ वभाषे गतो राजा गैरं भक्ष्याद्य पञ्चताम् ।
 तच्छ्रुत्वा भारिकः प्राह दिक्षा निष्कण्टकं जगत् ॥ ५८१ ॥
 कुम्भकारोऽब्रवीत्सखं धिग्धिक् शून्याः कृताः प्रजाः ।
 छन्नं श्रोतरि भूपाले श्रुत्वा कात्यायनोऽब्रुवत् ॥ ५८२ ॥
 श्रुतं देव यथैव त्वं चानयोर्वृत्तिरीक्षिता ।
 तथैवैतौ त्वयि प्रायश्चेतश्चित्तं हि पश्यति ॥ ५८३ ॥
 प्रीतिविस्फारनयना यथा मदनमञ्जुका ।
 राजपुत्रे तथैवास्यां राजसुनुरसंशयम् ॥ ५८४ ॥
 इत्युक्त्वा गोमुखः प्रायात्प्रहृष्टः स्वं निवेशनम् ।
 फलिङ्गसेनापि मुताविवाहं समचिन्तयत् ॥ ५८५ ॥
 इति योगनन्दाख्यायिका ॥ २४ ॥
 कदाचिद्गोमुखं दृष्ट्वा काचित्सौरवणिग्वधूः ।
 भजसेत्यब्रुवत्सम्या स च तां नाम्यमन्यत ॥ ५८६ ॥
 सा लज्जितावधूता च क्रुद्धा च विदधे मतिम् ।
 प्रच्छन्ना तद्वधोपायं मधुमिश्रविषादिभिः ॥ ५८७ ॥
 पाने विषप्रदां बुध्वा तां प्रदध्यां च गोमुखः ।
 अहो निसर्गमलिनं कुटिलं स्त्रीविचेष्टितम् ॥ ५८८ ॥

१. 'योगनन्दोऽय पथ' ख. २. 'मनयोर्वर्गमे हता' ख. ३. 'ता य मुदा य
 र्दिने मायिनी मतिम्' ख.

सोद्वेगा कलुषा रूक्षा निम्नगा इव निम्नगा ।
 अहो नु योषितो नाम क्षोऽपि दोषममुच्चर ॥ ५८९ ॥
 अप्यन्विष्टा न लभ्यन्ते सत्यक्ता न त्यजन्ति च ।
 वामना इव समारमोहनेकगता बिभ्रम् ॥ ५९० ॥
 प्रहसन्ति त्रिपादिन्यो हृष्टा शोचन्ति हेलेया ।
 रागिष्योऽपि पतिं प्रप्तिं क्षत्रितं वेति योषितान् ॥ ५९१ ॥
 अथवा तथ्यमेतत्कथयन्ति कथानिद ।
 शुभ्रानना पुरषो यथामूढलिना वर ॥ ५९२ ॥
 गूढमन्यनैरामका निजजाया ददर्श स ।
 ता दृष्ट्वा त जघानाशु कुपित पारशारिकम् ॥ ५९३ ॥
 यथानीत शव स्कन्धे विधाय बलगर्वित ।
 अन्यरूपे स चिमेष वीड्यमाणो नतानन ॥ ५९४ ॥
 रूपे निरीक्ष्यमाण त पश्चादेत्य लघु क्रमात् ।
 न्यपानत्रनिवधूरिति पापाश्रया बिभ्र ॥ ५९५ ॥

इति शुभ्रान्यायिका ॥ २५ ॥

गोमुखश्चिन्तयित्वेति राजपुत्र ममभ्ययात् ।
 नरमृतिममृतिमि सेज्यमान मन प्रियै ॥ ५९६ ॥
 नानाकमान्तरे तत्र राननीतिविदो मिथ ।
 नरवाहनदत्ताग्रे तै प्राहु मेवका श्रुतम् ॥ ५९७ ॥
 ईप्ता कष्टेन मिद्धयन्ति हवक्त्रचपला नृपा ।
 ये सेज्यमाना कुप्यन्ति प्रसीदन्ति च वर्धिता ॥ ५९८ ॥
 समस्तचित्तग्रहण साहस तामिवञ्चनम् ।
 अहो त्रतमिद तीक्ष्ण योगिन सेवकस्य च ॥ ५९९ ॥

१ 'लालया' ख २ 'दामप्रमुच्चयमित्यथ' 'पुरा' ख ४ 'ता' ख ५
 'ना' ख. ६ 'ख चि' ख ७ 'प्राहणां नेवक्त्रचपलम्' ख ८ 'ह' ख ९ 'त्रि'
 ख १० 'सप्तसप्तविजर्जने' ख.

एतद्वि परमं तत्त्वं सेव्यते यन्महीपतेः ।
 संमस्तग्रहणे राज्ञो मरुतां च क ईश्वरः ॥ ६०० ॥
 राजा न संहताञ्जेतुं शक्नोति सरलाशयः ।
 यस्ताम्बिनचि यत्नेन तस्य लक्ष्मीर्विनश्वरी ॥ ६०१ ॥
 मथुरायां पुरा राजा शूरसेनः सुसंहतान् ।
 भृत्यान्विलोक्य भेदेन योजयामास योगवित् ॥ ६०२ ॥
 दत्त्वा प्रसादमेकस्मै तीव्रं परमदण्डयत् ।
 तमप्यदण्डयत्काले सर्वानेकैकशस्ततः ॥ ६०३ ॥
 इति सन्ति नृपाः प्राज्ञाः सेव्यास्ते तत्त्वदर्शिनः ।
 इत्यादि कथया तस्यौ वयस्यैर्नरवाहनः ॥ ६०४ ॥
 अथ मानसवेगास्थो विद्याधरपतिः स्वयम् ।
 कलिङ्गसेनातनयालमे चक्रे मनोरथम् ॥ ६०५ ॥
 ततः कलिङ्गसेनाया वचसा वत्सभूपतिः ।
 यौगंधरायणसखः पुत्रोद्वाहे समुद्ययौ ।
 इत्यादिकथया तस्यौ वयस्यान्नरवाहनः ॥ ६०६ ॥
 ततः कलिङ्गसेनाया वचसा वत्सभूपतिः ।
 यौगंधरायणसखः पुत्रोद्वाहे समुद्ययौ ॥ ६०७ ॥
 शस्ते मुहूर्ते विमले प्रवृत्ते देवतागणे ।
 पुष्पवर्षे सूरैर्मुक्ते विवाहोचितकङ्कणा ॥ ६०८ ॥
 विवेश भूषिता देवी कन्या मदनमञ्जुका ।
 निजक्रान्तिवित्तानेन भूषयन्ती विभूषणम् ॥ ६०९ ॥
 वह्निप्रदक्षिणे तस्याः पत्युः पार्श्वविलोकिनी ।
 ननाम दृष्टिः पर्यस्ता संस्तेवोत्पलमालिका ॥ ६१० ॥
 सकोपोऽभूत्तदा लक्ष्मीर्घोतेषां लग्नसंगमे ।
 वरूपविद्यामृतां यस्याः प्रभावश्चरुवर्तिता ॥ ६११ ॥

१. 'ग्रहणे मरुता राज्ञो मनसां च क ईश्वर' ख. २. 'राजान कुटिलैर्मृत्यैर्वाप्यन्ते
 कुटिलाशया.' ख. ३. 'वेदी' ख. ४. 'नस्ते' ख.

अथ नयनविलाससेखकेन्दुमासा

स्फुटमिह हि स रत्या संगतः पुष्पचापः ।

वत विधिविहतोऽयं कोऽपि नेत्रोत्सवो नः

क्षणमिति दिवि चेस्तद्विवाहे प्रवादाः ॥ ६१२ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचिते बृहत्कथासारे मदनमञ्जरीविवाहो नाम सप्तमो लम्बकः ।

वेलानामाष्टमो लम्बकः ।

प्रथमो गुच्छः ।

हेतवे सर्वसिद्धीनां कैल्मपक्षयकेतवे ।

भवाब्धिसेतवे तुभ्यं नमोऽस्तु वृषकेतवे ॥ १ ॥

ततः कदाचिदुद्याने विहरन्नुवाहनः ।

ददर्श राजतनयावश्विनाविव रूपिणौ ॥ २ ॥

तौ दृष्ट्वा निश्चलदृष्ट्वा स्मयसंतोषनिर्भरः ।

कुतो युवामित्यपृच्छन्मुखेन्दुकृतचन्द्रिकौ ॥ ३ ॥

उवाचैकः प्रणम्याथ देव त्वां द्रष्टुमागतौ ।

जावां तुरङ्गकरिणीजवाधिक्यविवादतः ॥ ४ ॥

अस्ति वैद्यालिका नाम नगरी संपदां निधिः ।

नन्दनो नाम नृपतिस्तस्यामर्सीन्महायशः ॥ ५ ॥

तस्य स्तननयौ लक्ष्मीसंक्रान्तिमणिदर्पणौ ।

अहं रुचिरदेवास्यः पोतश्चायं ममानुजः ॥ ६ ॥

कन्या जिनेन्द्रसेनास्या स्वसा च मम सुन्दरी ।

प्रकाशितं रत्नदीपशिखयेव कुलं यया ॥ ७ ॥

अस्ति मे करिणी मद्रा केशिनी नाम विश्रुता ।

निर्मिता जवजिज्ञायै मरुतामिव वेषसा ॥ ८ ॥

पोतस्याप्यस्ति तुरगो गस्तमानिव रंहसा ।

जगत्प्रदक्षिणीकर्तुं जवो मूर्तिमिवाश्रितः ॥ ९ ॥

तद्वेगजातविजये पणवन्धः कृतो मिथः ।
 आवाभ्यां देव तत्र त्वं प्रमाता भव सर्ववित् ॥ १० ॥
 तदेहसत्पुरीं तावद्गच्छाम इति तद्विरा ।
 ययौ मनोरथजवं रथमारुह्य तत्परम् ॥ ११ ॥
 तद्राजधनीमासाद्य कान्ताभिर्नयनोत्पलैः ।
 अर्च्यमानः स्मरधिया तदन्तःपुरमाविशत् ॥ १२ ॥
 ताभ्यां स पूजितस्तत्र भेजे रत्नासनं कृती ।
 धाम्नां निघेरिवोदारमुदयाचलशेखरम् ॥ १३ ॥
 अथायातां सपर्यायै तत्त्वसारं ददर्श सः ।
 जिनेन्द्रसेनामुज्जिद्रचन्द्रबिम्बनिभाननाम् ॥ १४ ॥
 मुहुर्मङ्गाङ्गनाकृष्टकेतकाम्रदलत्विषा ।
 कुर्वाणां दृष्टिभङ्गेन कृष्णसारप्रभा दिशः ॥ १५ ॥
 रुज्जावनतपक्ष्माग्नेत्रांशुशबलस्तनीम् ।
 अमद्भ्रमरसंभारस्तवकामिव मञ्जरीम् ॥ १६ ॥
 पुरः प्राप्तां प्रणामाय रणनूपुरमेखलाम् ।
 संचारिणीं कलरणत्कलहंसाभिवाञ्जिनीम् ॥ १७ ॥
 तां दृष्ट्वा पद्मवदनां विस्मितो नरवाहनः ।
 हर्षमन्मथकम्पानां क्षणात्परिचितोऽभवत् ॥ १८ ॥
 तत्प्रणामाकुला सापि बभौ कर्णोत्पलच्युतैः ।
 केसैरिव तत्कालं संजातपुलकाङ्कुरैः ॥ १९ ॥
 स्थित्वा मुहूर्तं वचसा स तयो राजपुत्रयोः ।
 सञ्जीकृतां तां करिणीमश्वं च द्रष्टुमभ्यगात् ॥ २० ॥
 विचार्य विपुलं दैत्ये तयोर्वाताधिकं जवम् ।
 चवन्ध विजयोष्णीपं करिष्याः कुम्भमण्डले ॥ २१ ॥
 जिते वाजिनि दन्तिन्या पुनरन्तःपुरं ययौ ।
 प्रीत्या रुचिरदेवेन सेवितो नरवाहनः ॥ २२ ॥

अत्रान्तरे वत्सराज विनष्टो लेखहारकः ।
 देव त्वामीहते द्रष्टुमित्याह नरवाहनम् ॥ २३ ॥
 श्रुत्वा रुचिरदेवस्तदुवाच रचिताञ्जलिः ।
 देवं वत्सेश्वरो वेत्तु निजद्रामगृहे स्थितम् ॥ २४ ॥
 इत्युक्त्वा विरते तस्मिन्प्रस्थानामिनुञ्चे तथा ।
 राजपुत्रे पितुर्भीत्या स्मिमितेव समाभवम् ॥ २५ ॥
 सूचितोऽथ प्रतीहार्या प्रणामानतश्चेत्तरः ।
 प्रविश्य चन्द्रसाराख्यः सार्धवाहस्तमम्यधात् ॥ २६ ॥
 देव यात्रामिषे देशे बभूव धनदोषमः ।
 वणिक्कुसुमसारास्यलस्याहं बद्धमः सुतः ॥ २७ ॥
 अहं तद्गङ्गाया यातः कदाचिद्भविष्यते ।
 सार्धं सुवचनाम्येन मुहुरा सरितां पतिः ॥ २८ ॥
 तत्रोद्धतमहाबातैः प्रतीपं तटमागते ।
 मम प्रवहणे राज्ञा बद्धोऽहं धनवाण्डया ॥ २९ ॥
 ततो महीधराम्येन परिज्ञाय कृमाजुषा ।
 वणिजा कुलमित्रेण सेवितोऽहं नृपाज्ञया ॥ ३० ॥
 संमानितो भूमिमुवा तत्पुरे सुचिरं स्थितः ।
 फुल्लवाललत्राजाले जाते मत्तलिकोकिले ॥ ३१ ॥
 वणिजः त्रिखरास्यस्य पुत्रीं जैत्रीं त्रिविधुतेः ।
 अवश्यमहमुद्याने विलासललितेक्षणाम् ॥ ३२ ॥
 तां दृष्ट्वा याचितोऽभ्येत्य तत्तप्तज्जनको मया ।
 प्राह मां सै न ते चैषा दातुं मे युज्यते स्वयम् ॥ ३३ ॥
 ज्ञानिना मिश्रुणा पूर्वमहमुक्तो हितैषिणा ।
 देया मातामहे नेयं नानुकूल तवात्मना ॥ ३४ ॥

इति तेन निपिद्धोऽहं न ददामि सुतां स्वयम् ।
 अथैव प्राहिणोम्येनां मातामहगृहे सखे ॥ ३५ ॥
 अब्धिना सिंहलद्वीपं^१ तं देशं त्वमपि व्रज ।
 इत्युक्त्वा विससर्जाशु पुत्रीं प्रवहणेन सः ॥ ३६ ॥
 ततो बलवता तस्याः कर्मणेव नभस्वता ।
 अभज्यत प्रवहणं तद्विवेद च तत्पिता ॥ ३७ ॥
 पुत्रीवियोगदुःखार्ते तस्मिन्बन्धुजनैः शनैः ।
 आश्वासिते तद्विरहादभवच्छोककर्षितः ॥ ३८ ॥
 ततः सह वयस्येन सिंहलद्वीपगं क्षणात् ।
 आरुह्याहं प्रवहणं प्रस्थितो दक्षिणां दिशम् ॥ ३९ ॥
 अथ प्रवहणे भग्ने ममापि भकराकरे ।
 अहं च फलकासक्तः प्राप्तो वेलावनावनिम् ॥ ४० ॥
 तत्र भ्रान्तश्चिरं प्राप्य मतङ्गाश्रमकाननम् ।
 कन्यां शिवार्चनरतामपश्यं तटिनीतटे ॥ ४१ ॥
 नवतामिव कामस्य यौवनस्येव दृसताम् ।
 पूर्णतामिव चन्द्रस्य रूपस्येव विचित्रताम् ॥ ४२ ॥
 तां दृष्ट्वा विसमयजुषा तत्प्रविश्य तपोवनम् ।
 दृष्ट्वा मया मतङ्गस्य तनया वृद्धकन्यका ॥ ४३ ॥
 यमुना नाम मां प्राह भाषा चित्रसरस्वती ।
 दन्तांशुमिः प्रोद्गिरन्ती मूर्ते पुण्यमियोज्ज्वलम् ॥ ४४ ॥
 भग्ने प्रवहणे पुत्र मतङ्गमुनिना स्वयम् ।
 प्रोक्ष्वा वणिजः पुत्री शिखराख्यस्य सुन्दरी ॥ ४५ ॥
 सुतेषु पालितास्माभिः शिवार्चनरता सदा ।
 समुद्रवेलालब्धेयमिह घेलेति विश्रुता ॥ ४६ ॥
 इति श्रुत्वा परिज्ञाता सा मया चारुहासिनी ।
 दर्पवेलाग्नारम्भविलोलतनुवाहरी ॥ ४७ ॥

ततो दिव्यदृशा ज्ञात्वा मुनिपुत्री पुनः स्मितम् ।
 ग्राह मां पूर्वभाष्येयं तव पुत्र मुलोचना ॥ ४८ ॥
 इत्युक्त्वा विततारसौ तां मद्यं त्वमुतामिव ।
 तामहं प्राप्य दयिताम्यश्रीषं मुनिमापितम् ॥ ४९ ॥
 इयं विद्याधरी पूर्वं जलकेलिविलासिनी ।
 मुनिनान्तर्जलस्थेन गप्ता मर्त्यपदं गता ॥ ५० ॥
 आदिष्टं चापि योगोऽस्यात्त्वया सह मुदुःसहः ।
 दुःस्वप्नेनैव दुःस्वान्तो नरवाहनदर्शनम् ॥ ५१ ॥
 वैशालिके पुरवरे तुरङ्गकरिणाञ्जवम् ।
 यो ब्रवीति स विज्ञेयो माविद्याधरेश्वरः ॥ ५२ ॥
 जन्मान्तरे तवाप्यस्ति शिवार्चा पुष्पहारिणः ।
 किल्बिषं तत्तमेवाशु दृष्ट्वा सर्वं विनश्यति ॥ ५३ ॥
 इति श्रुत्वा ततो लभे तां प्राप्य हरिणेषणाम् ।
 प्रस्थितः स्वपुरीं वेलातटं प्राप्तो महोदधेः ॥ ५४ ॥
 तत्रारोप्य प्रियां नावं यावदस्ति समुद्यतः ।
 तावत्सा कर्मयोगेन हता नौमे महानिलैः ॥ ५५ ॥
 ततो वियोगसंतप्तः प्रलापमुखराननः ।
 दिवापि तिमिराकान्तामिव भ्रान्तोऽस्ति मेदिनीम् ॥ ५६ ॥
 स च प्रबहणभ्रष्टः प्राप्तः पथि यदृच्छया ।
 ततो विरहदग्धेन मया सुवचनः सुहृत् ॥ ५७ ॥
 स मां प्रतापिनं ग्राह दृष्टास्माभिस्त्व प्रिया ।
 समुद्रतीरे शोचन्ती स्फुटं तु न विभाषिता ॥ ५८ ॥
 इति मित्रवचः श्रुत्वा प्राप्तोऽहं भवदन्तिकम् ।
 त्वदर्शनावधिः शापो मुनिनामिहितो यतः ॥ ५९ ॥

१. 'ततोऽहं' ख. २. 'जन्मान्तरे तवाप्यस्ति नरवाह' ख. ३. 'दृश्यति च' ख.
 ४. 'तप्यम्' इति भवेत्. ५. 'इत्यहं तद्वचः श्रुत्वा तां प्राप्य' ख.

अधुना क्षीणशापोऽहं द्रष्टुमिच्छामि तां प्रियाम् ।

उवत्वेति सार्थपः प्रायात्प्रणम्य नरवाहनम् ॥ ६० ॥

इति चन्द्रसाराख्यायिका ॥ १ ॥

चन्द्रसारे प्रयातेऽथ संगते च मृगीदृशा ।

वत्सेश्वरात्मजो हृष्टस्तत्कथाविस्मयाकुलः ॥ ६१ ॥

दत्तां रुचिरदेवेन राजपुत्रीमवाप्तवान् ।

विचाधराधिराज्याय पुरः सिद्धिमिवागताम् ॥ ६२ ॥

जिनेन्द्रसेनां संप्राप्य कन्यापरिणयोत्सवे ।

तामेवारुह्य करिणीं प्रययौ नरवाहनः ॥ ६३ ॥

व्रजन्सर्वात्मना प्राप्य मगधाधिपतेः पुरीम् ।

तेन संपूजितः प्रायात्कौशाम्बां बलमासत्रः ॥ ६४ ॥

तत्रै प्रणम्य वत्सेशं दृष्ट्वा मदनमञ्चुकाम् ।

ईर्ष्याकोपकपायाक्षीं प्रणामानतशेखरः ॥ ६५ ॥

रहः प्रसादयामास विलासहसितावधिम् ।

दृढकण्ठग्रहानन्दमुकुलीकृतलोचनाम् ॥ ६६ ॥

तां सेवमानो लावण्यनदीं मदनमञ्चुकाम् ।

नरवाहनदत्तोऽभूदभिपिक्त इवामृतैः ॥ ६७ ॥

ततः कद्राचित्रप्रत्यूषे फुल्ले कमलकानने ।

संध्यारागारुणे व्योम्नि तत्प्रभाभिरिवावृते ॥ ६८ ॥

प्रभातवातनिःश्वासान्गाढं रक्तंऽशुमालिनि ।

उदयाद्रिमिवारुढे वियुक्तां द्रष्टुमञ्जिनीम् ॥ ६९ ॥

शुधाव राजतनयस्तारमन्तःपुरान्तिके ।

अकाण्डे करुणारावं कीर्णशोकसशङ्कितः ॥ ७० ॥

निमेतदिति पृष्टोऽथ ययस्यलेन गोमुखः ।

चिरादकथयद्गमिं विलिखन्तासवीक्षितैः ॥ ७१ ॥

हता सा केन मूतेन देवी मदनमञ्चुका ।
 अदृष्टमूर्तिना रत्नपर्यङ्कोत्सङ्गशायिनी ॥ ७२ ॥
 श्रुत्वेति सुहृदो वाक्यं बभूव नरवाहनः ।
 अवारितमहाशोकपूर्णनिःस्पन्दलोचनः ॥ ७३ ॥
 स कोपशोकसंरुद्धो निष्प्रतीकारविक्रियः ।
 हा प्रिये प्रेमसुभगे वचो देहीत्यमापन ॥ ७४ ॥
 अन्तःपुरे मदनमञ्चुकया वियुक्तो
 . लीलाशुकेषु न ददौ स दृशं सत्राप्याम् ।
 ये तत्प्रसादनकला प्रणये बभूवु-
 र्नर्मोक्तिमिर्विहितविभ्रमकेलिकारः ॥ ७५ ॥
 इति जिनेन्द्रसेनासमागमो मदनमञ्चुकापहारश्च ॥ २ ॥
 इति श्रीक्षेत्रमेन्द्रविरचिते बृहत्कथासारे खेलानामाष्टमो लम्बकः ।

दशशङ्खचतीनामा नवमो लम्बकः ।

प्रथमो गुच्छः ।

सुवर्णगिरिकर्णके तरलतारकाकेसरे
 चलज्जलदपट्पदे स्फुटदिगन्तपत्रास्तृते ।
 स वः प्रमथनायकः प्रदिशतु श्रियं यत्करः
 करोति जगदम्बुजे चलितताललीलायितम् ॥ १ ॥
 ततो विरहसंतप्तः स्मरन्मदनमञ्चुकाम् ।
 कान्तिमात्रावशेषोऽमृन्निःसहो नरवाहनः ॥ २ ॥
 स चन्द्रकान्तपर्यङ्के निपण्णः सरिमिर्निशि ।
 प्रदधौ तप्तनिःश्वासेर्म्लापयन्मणिदीपकान् ॥ ३ ॥
 कथंचिद्रैतनिद्रार्थमीलिताक्षं सरातुरा ।
 तं जहार सपर्यङ्कं कापि विद्याधराङ्गना ॥ ४ ॥

द्वियमाणस्तथा स्वप्ने दृष्ट्वा तामेव सुन्दरीम् ।
 प्रबुद्धस्तन्मुखाम्भोजे ददौ दृशमलक्षिताम् ॥ ५ ॥
 स ददर्श विशालार्क्षी तामानन्दसुधानदीम् ।
 कान्तिकल्लोलपटलैः क्षालयन्तीमिवाखिलम् ॥ ६ ॥
 निःश्वाससौरभाकष्टव्योमगङ्गाब्जपट्पदैः ।
 वैद्धवेदीमिवाविद्धगतिव्यालोलवेणिकाम् ॥ ७ ॥
 वीक्ष्यमाणां निचलितग्रीवं खेचरशङ्कया ।
 मुहुर्लिकपरावृत्तिनिमज्जन्निवलीलताम् ॥ ८ ॥
 वेगोद्गतिविलोलेन तारहारेण भूषिताम् ।
 क्षुब्धस्त्रीराब्धिकल्लोलमीलितां कमलामिव ॥ ९ ॥
 विलोक्य तां स्मरस्येव नगरीं व्योमचारिणीम् ।
 सोऽभवन्निःसृतश्वासः क्षणं कृतकनिद्रया ॥ १० ॥
 सा तमादाय नैमसा गत्वा मलयपर्वतम् ।
 अवतीर्योच्चशिखरे प्रहृष्टा निर्धृतिं ययौ ॥ ११ ॥
 तत्र लङ्कानिलालोलबालचन्दनपल्लवे ।
 तस्यौ पर्यङ्कमारुह्य तदालिङ्गनलालसा ॥ १२ ॥
 नवस्मररसावेशोद्बोधौतविशेषका ।
 रुक्मां भेजे मुहूर्तं सा कम्पमानघनस्तनी ॥ १३ ॥
 बालामदृष्टसंभोगां मत्वा तां नरवाहनः ।
 पूर्वो युक्तिमुपाश्रित्य ग्राह निद्राकुलाक्षरम् ॥ १४ ॥
 अयि कासि कुरङ्गाक्षि प्रिये मदनमश्रुके ।
 इति नाम समाकर्ण्य तदाकारं चकार सा ॥ १५ ॥
 सविधया निर्विघ्नेपं भूत्वा मदनमश्रुका ।
 गद्गालिङ्गनसंनद्धा तस्यौ कुचपुरःगरा ॥ १६ ॥

ततः सितसेरमुखः सानन्दं नरवाहनः ।
 करकृशालकं तस्याश्चुम्ब वदनाम्बुजम् ॥ १७ ॥
 हते बलानीविवन्द्ये तस्मात्तेन विलासिना ।
 चक्रम्ये चूतवल्लीव स्तनस्तचकिनीतनुः ॥ १८ ॥
 हतांशुकं यद्यदङ्गं स वदशं मृगीदृशः ।
 दृष्टयस्तत्र तत्रास्य न चेलुः कीलिता इव ॥ १९ ॥
 ततस्तां गाढमालिङ्ग्य स ग्राह मधुरसितम् ।
 अहो रूपान्तराधाने वैदग्ध्यं तव सुन्दरि ॥ २० ॥
 इति प्रियस्य वचनं श्रुत्वात्यन्तविलासिनी ।
 सहसा निजमास्वाद्य रूपं मेजे स्तोत्सवम् ॥ २१ ॥
 ततः प्रियेण सा पृष्टा वभाषे दशनान्शुभिः ।
 ग्रन्थतीव्र गुणेर्हारं रतिनैर्मविसूत्रितम् ॥ २२ ॥
 हृदये मौक्तिकलता सुधासारे मनोरथे ।
 कर्णे कर्पूरपूरश्च त्यद्यगः मुदनां विभो ॥ २३ ॥
 अहं त्यद्यगसाहता तव प्रणयिनीपदम् ।
 प्राप्ता गिरिसुतां मन्ये स्वसौभाग्यतिरस्कृताम् ॥ २४ ॥
 इति विद्याधरीवाक्यं निशम्य नरवाहनः ।
 प्रभाते तत्कथाकेलिर्हृष्टतामित्यभाषत ॥ २५ ॥
 ब्रह्मसिद्धिरिति ख्यातो मुनिरासीन्महातपाः ।
 तस्यैव तदाश्रमोपान्तशुहायां बृद्धजम्बुकी ॥ २६ ॥
 दुर्दिनामिहते काले कदाचित्सा ह्युघादिता ।
 कथंचिदिव वत्राम प्रस्तलद्वीतिविह्वला ॥ २७ ॥
 ततः समाययौ गेज्जन्मचालिवलयो गजः ।
 स्मरन्करेणुकां यूयग्रष्टां मलिनलोचनः ॥ २८ ॥

तद्वयाद्विद्वता साथ जम्बुकी शरणं मुनिम् ।
 ययौ तच्छानयोगाच्च वभूव करिणी क्षणात् ॥ २९ ॥
 स तथा जातसंप्रीतिर्विजहार वने गजः ।
 उद्दण्डपुण्डरीकेषु काननेषु मदालसः ॥ ३० ॥
 ततः प्रियायै पद्मार्थं सरःपङ्के भ्रमज्ज सः ।
 तस्मिन्निमग्नो सा भेजे द्वितीयं गजयूथपम् ॥ ३१ ॥
 तं पूर्वेकरिणी दृष्ट्वा निमग्नं मर्तुमुद्ययौ ।
 भद्रजातिः कुलीनैर्हि प्रीतिः पर्यन्तनिश्चला ॥ ३२ ॥
 करुणाब्धेर्मुनीन्द्रस्य स गजेन्द्रोऽप्यनुग्रहात् ।
 उन्मज्ज्य कृच्छ्रात्तत्याज सदाचार इवापदम् ॥ ३३ ॥
 त्वद्विधाभिरिति प्रीतिरवसानेऽप्यनश्वरी ।
 जम्बुकी सा प्रयाता तु न स्थिरा खलसंगतिः ॥ ३४ ॥
 इति कुजराख्यायिका ॥ १ ॥

इति प्रियस्य वचनं श्रुत्वा विद्याधरात्मजा ।
 उवाच कान्यकुब्जेति स्म्यास्ति नगरी विभो ॥ ३५ ॥
 वामदेत्ताभिधानोऽभूत्तस्यां यज्वा द्विजोत्तमः ।
 कदाचिद्ब्राह्मणः कश्चित्तद्गृहं भोक्तुमाविशत् ॥ ३६ ॥
 उपविष्टस्ततस्तस्मिन्सज्जभोजनमण्डपे ।
 उत्थाय तूष्णं निर्गत्य वामदेत्तोऽभ्ययात्पुनः ॥ ३७ ॥
 भोजनान्तेऽर्धना पृष्टः स निर्गमनकारणम् ।
 वामदेत्तोऽवदत्त्वरं श्रूयतां कौतुकं द्विज ॥ ३८ ॥
 शशिप्रभेति भार्या मे वभूव सुमुरती पुरा ।
 तत्पुण्ड्रगृहमारोऽहं सज्जसेवापरोऽभवम् ॥ ३९ ॥
 ततः कदाचिन्मामाह पितृव्यः साश्रुलोचनः ।
 वामदत्तप्रिरांगते भार्या गोपालरामिणी ॥ ४० ॥

इति तद्वचसा शशाङ्कलितोऽहनलङ्घितः ।
 स्थितः प्राकारमुल्लङ्घ्य फुलवल्लीनिकुञ्जके ॥ ४१ ॥
 ततो महिषपालेन संगतां निजवद्वमान् ।
 अपश्यं प्रेनविश्वासकेलिलीलानिर्गलाम् ॥ ४२ ॥
 ततोऽहं मृदासंकुद्धो निहन्तुं पारदारिकम् ।
 समुद्यतस्तथा दृष्टो घाघ्रनिष्कम्पया पुनः ॥ ४३ ॥
 सा दृष्ट्वा मूर्ध्नि चिक्षेप घूलिमुक्षजलेन मे ।
 कित्तिपापहवक्रौर्यघारा नार्यो हि दुर्जयाः ॥ ४४ ॥
 ततो महिषतां यातः सइसाहं महाकृतिः ।
 कोपान्महिषपालेन तद्विरा तेन साहितः ॥ ४५ ॥
 वदं महिषशालायां ततः कालेन मां वणिक् ।
 कश्चिन्निनाय मूलेन दूरमारातिवाहिकम् ॥ ४६ ॥
 कदाचिदथ दूराच्चनिःसहं शुष्कविग्रहम् ।
 कन्यकानुगतापश्यत्कपि मामुचनाङ्गना ॥ ४७ ॥
 सा दिव्यदृष्टिः कारुण्यात्कातुं गङ्गावलेन माम् ।
 अनलस्येव महिषाकारं बन्धादनोचयत् ॥ ४८ ॥
 ततः प्राप्तस्वरूपाय सा मैद्यं तनयां ददौ ।
 कान्तां कान्तिमतीं नाम सिद्धि मूर्तिमतीमिव ॥ ४९ ॥
 अथ स्वगृहनागत्य तद्वचैः सिद्धसर्पैः ।
 सा कुमार्या मया दूराद्राहता बडवामवत् ॥ ५० ॥
 सेयं स्थिता मन्दुरायां सततं लघुदैर्मया ।
 तादृश्यते पञ्चभिर्मित्यं तदर्थं चालि निर्गतः ॥ ५१ ॥
 श्रुत्वेति विलिते याते तल्लिङ्गभ्यागते द्विजे ।
 जननी योगसंतिद्धा कान्तिमत्याः सनाययौ ॥ ५२ ॥
 तच्छिञ्चयानन्दतः कैलत्संकर्षणोऽस्मिन् ।

१. 'दि वलेन' ख. २. 'वयावलेन' ख. ३. 'च खां तन' ख. ४. 'दी' ख.
 ५. 'काले संकर्षणी प्रितः' ख.
 २० मृ० नं०

विद्यां श्रीपर्वते ध्यात्वा स्वङ्गविद्याधरोऽभवत् ॥ ५३ ॥

कान्तिमत्यामहं तस्य नाम्ना ललितलोचना ।

जाता विद्याधरेन्द्रस्य मलयाचलवासिनः ॥ ५४ ॥

साहं गौरीवरादिष्टा तव भार्या कुलोचिता ।

नास्म्ययोगकुलोत्पन्ना येनैतत्कथितं त्वया ॥ ५५ ॥

इति कान्तावचः श्रुत्वा विश्रब्धं नरवाहनः ।

विजहार तथा बालश्रीखण्डतरुमण्डले ॥ ५६ ॥

तत्र लीलारतश्रान्तमुजङ्गमिधुनस्पृशः ।

चन्दनामोदसुभगा मरुतस्तं सिपेविरे ॥ ५७ ॥

पुन्नागचम्पकाशोकचूतकिंशुककेसरैः ।

मालतीषु रतिं लेभे तटेपु दयितासखः ॥ ५८ ॥

इति ललितलोचनालपकथा ॥ २ ॥

ततः पुष्पोद्भवक्रीडाव्यग्रां ललितलोचनाम् ।

दृष्ट्वा दिव्यसरः स्नातुं प्रययौ नरवाहनः ॥ ५९ ॥

कमलकेलिसदने प्रफुल्लकमलाकरे ।

स्नात्वार्चयित्वा श्रीकण्ठमुपकण्ठं व्यलोकयत् ॥ ६० ॥

ततः सस्मार सहसा प्रियां मदनमञ्जुकाम् ।

रमणीयेषु यैस्सत्यं स्मर्यते दयितो जनः ॥ ६१ ॥

वदने शतपत्रेषु दृशं नीलोत्पलेषु च ।

वीचिषु श्रुविलासं च स शुशोच मृगीदृशः ॥ ६२ ॥

फलदंसकुलकाणकमनीर्या सरःश्रियम् ।

पदयन्प्रदध्यौ दयितां लीलामुस्वरमेखलाम् ॥ ६३ ॥

भक्त्यालिमालावलयव्यालोलनलिनीतटे ।

स्मृत्वा केलिरतालोललैकां तां च मुमोह सः ॥ ६४ ॥

पिङ्गजटनामाय तमेत्य मुनिसत्तमः ।

प्रत्यप्रचन्दनरमैः सिपेच करुणानिधिः ॥ ६५ ॥

लब्धसंज्ञः स विलपन्त्रियां मदनमञ्चुकाम् ।
 महाशुनिं पुरो दृष्ट्वा प्रणनाम हिया नतः ॥ ६६ ॥
 तं पिशङ्गजटः प्राह धैर्यान्वे मा शुचः प्रियाम् ।
 भवन्ति महतामेव दुःसहा दैवविक्रियाः ॥ ६७ ॥
 उक्त्वेति तं निनायाशु स मुनिर्निजमाश्रमम् ।
 मुनिकन्याकराकीर्णनीवारहरिणाकुलम् ॥ ६८ ॥
 तत्रार्द्रचन्दनरसैरुपलिप्तो जटाङ्गणे ।
 नरवाहनमासीनं मुनिमध्येऽभ्यघान्मुनिः ॥ ६९ ॥
 नरवाहन सहस्रैतं दुःसहं विरहानलम् ।
 अचिरात्प्राप्स्यसि मनःसुधां मदनमञ्चुकाम् ॥ ७० ॥
 श्रूयतां राजपुत्रेण यथासा चलमा पुरा ।
 राजन्मृगाङ्कदत्तेन निस्तीर्य विरहोदधिम् ॥ ७१ ॥
 अयोध्येत्यस्ति नगरी स्फाटिकैर्या महागृहैः ।
 कैलासवासरसिकं हसतीव मधेश्वरम् ॥ ७२ ॥
 तस्याममरदत्ताख्यो बभूव वसुधाधिपः ।
 यत्कीर्तिकौमुदी चित्रा लोकाम्बुजविकासिनी ॥ ७३ ॥
 मृगाङ्कदत्तस्तस्यासीत्तनयः कान्तिभूषणः ।
 यशःसरसि विस्फार मृगाङ्क इव बिम्बितः ॥ ७४ ॥
 शरीरतुल्यास्तस्यासन्विक्रान्ताः सचिवा दश ।
 स्वच्छासु दिक्षु दशसु प्रथिता इव मूर्तयः ॥ ७५ ॥
 स्थूलबाहुर्मेघवलस्तथा विक्रमकेसरी ।
 व्याघ्रसेनो विमलधीर्दृढमुष्टिर्गुणाकरः ॥ ७६ ॥
 चण्डशक्तिश्चित्रकथस्तथा मौमपराक्रमः ।
 इति कर्मेरितामिष्या बभूवुस्तस्य ते प्रियाः ॥ ७७ ॥
 ईश्वरो भूतशुभगैः स तैर्दशमिरावमौ ।
 एकादशात्मा संप्राप्तो रुद्रसाम्यदशमिव ॥ ७८ ॥

ततः कदाचित्तं प्राह स्वैरं भीमपराक्रमः ।
 देव स्वप्ने मया दृष्टः श्रूयतां कौतुकं महत् ॥ ७९ ॥
 तमोभिरञ्जनशिलापुञ्जरिव पुरस्कृतम् ।
 अपश्यं मत्तमातङ्गकपोलमलिनं जगत् ॥ ८० ॥
 ततः शुभ्रनखश्रेणीविसूत्रिततमःपटः ।
 ज्वालाविलोलजिह्वाग्रो मृगेन्द्रोऽभिससार तंम् ॥ ८१ ॥
 स मया कृष्टशस्त्रेण समाहूतो ययौ जवात् ।
 सरितः पारमुचाललङ्गलकपिकेसरः ॥ ८२ ॥
 अपरां निर्गतस्तस्य जिह्वां छित्त्वाहमागतः ।
 तयैवोत्तीर्य तटिनीं तदन्तिकमुपागतः ॥ ८३ ॥
 ततो वेतालतां यातं तमपृच्छं कुतूहलात् ।
 भार्या मृगाहृदत्तस्य का भवित्रीत्यलुप्तधीः ॥ ८४ ॥
 स प्राहास्ति सुरावासजयिन्युज्जयिनी पुरी ।
 तस्यां कन्दर्पसेनोऽस्ति राजा कन्दर्पदर्पजित् ॥ ८५ ॥
 उत्पन्ना च कलावत्यां कैन्यास्ति कमलेक्षणा ।
 पुत्री शशाङ्कवत्याख्या प्रत्याख्यात्री शशिश्रियः ॥ ८६ ॥
 मुन्दरी सुरमिश्रवासा सुधार्द्रसुभगस्वरा ।
 मुकुमारतरा यस्यास्तनुः सर्वेन्द्रियोत्सवा ॥ ८७ ॥
 विलासहासकुसुमा कटाक्षोज्झान्तपद्मदा ।
 यौवनोपवने यस्याः कुला विभ्रममञ्जरी ॥ ८८ ॥
 हाररत्नकरस्मेरत्रिवली मुष्टिमुद्रिता ।
 माति रोमावली यस्याः कामहस्तासिवह्वरी ॥ ८९ ॥
 हरप्रसादादहिता बलमासौ भविष्यति ।
 राज्ञो मृगाहृदत्तस्य निगद्येति तिरोदधे ॥ ९० ॥
 श्रुत्वेति राजतनयः मुह्यदः समकौतुकम् ।
 श्रुत्वा विदितवृत्तान्तानुवाच सचिवान्पुनः ॥ ९१ ॥

आश्चर्यं दृष्टवान्स्वप्ने वत मीमपराक्रमः ।
 मयाप्यथैव यदृष्टं स्वप्नं तच्च निशम्यताम् ॥ ९२ ॥
 युष्माभिः सहितो गन्तुं प्रस्थितो विक्रयटवीम् ।
 अहं तृपापरिश्रान्तः प्राप्तः शीतजलं नदीम् ॥ ९३ ॥
 वयं निषिद्धाः खन्नाग्रहस्तत्र ततो नरैः ।
 यावत्कोषाकुलस्तावन्नदी सादृश्यतां ययौ ॥ ९४ ॥
 ततस्तृष्णाभितसेन मया दृष्टः स्वयं शिवः ।
 तत्र नेत्रात्रिनेत्रस्य पेतुरश्रुकणाः क्षितौ ॥ ९५ ॥
 समुद्रतां स संप्राप्तः पीवः शर्वाज्ञया मया ।
 रक्ताक्तेन कपालेन तन्मध्यान्मौक्तिकावली ॥ ९६ ॥
 मया लब्धा दशसिता साथ कण्ठे निवेशिता ।
 निशम्य राजपुत्रेण तत्त्वममिति वर्णितम् ॥ ९७ ॥
 प्रशशंसुः प्रियावार्तिं जयं चास्योत्तमं पुरः ।
 नूतनाङ्कुरितोत्कण्ठः पुनः प्राह नृपात्मजः ॥ ९८ ॥
 राजा कन्दर्पसेनोऽसौ सत्त्वसाध्यो महाबलः ।
 याचितोऽपि न कन्यां च प्रयच्छति रणोत्कटः ॥ ९९ ॥
 दुर्गाश्रयो महाकोशो रक्तामात्यो महामतिः ।
 तस्मादुपायविच्छेदे धिया कार्ये विचिन्त्यताम् ।
 सतां हि वस्तुसंदेहे बुद्धिरभ्युदयश्रिये ॥ १०० ॥
 मगधाधिपतिः पूर्वं भद्रबाहुर्वराकृतिः ।
 घर्मगोपस्य नृपतेः सुतां श्रुत्वाभ्ययाचत ॥ १०१ ॥
 अनङ्गलीलां न ददौ स तां वाराणसीपतिः ।
 तस्मै दिग्गजतुल्येन गजराजेन गर्वितः ॥ १०२ ॥
 भद्रबाहोर्महामात्यो मन्त्रगुप्ताभिषेधतः ।

युवत्या वाराणसीं गत्वा सह शिष्यैरमूह्यती ॥ १०३ ॥
 तत्र प्रसिद्धिमायातः सिद्धान्ताख्यानकोविदः ।
 अमन्निशि ददर्शार्थं स्त्रियं द्वित्रिनरानुगाम् ॥ १०४ ॥
 सात्रवीचान्विमुञ्चन्तु मां भवन्तो मुहूर्तकम् ।
 कुजरेन्द्रं भोजयित्वा तूर्णमायाति मे पतिः ॥ १०५ ॥
 इत्याकर्ण्य महामात्यो ज्ञात्वा तां गजपालिकाम् ।
 ब्रंजन्तीं तां समादाय तेषां गृहमवैक्षत ॥ १०६ ॥
 ततः प्रभाते दयितारहितो हस्तिपालकः ।
 शोकाद्भुक्तविपो दृष्टस्तच्छिष्यैर्बान्धवाकुलः ॥ १०७ ॥
 तस्य मित्रैरैन्वितास्ते हर्तुं विषविषूचिकाम् ।
 तं गुरोर्व्रतिवेपस्य मन्निणो नित्युरन्तिकम् ॥ १०८ ॥
 स तं चीतविपं कृत्वा प्राह तं लप्स्यसे वधूम् ।
 मद्भ्रादिति संभाष्य तस्मै चौरानदर्शयत् ॥ १०९ ॥
 ततो हस्तिपकः शूरो हत्वा तान्प्राप्य तां प्रियाम् ।
 प्रणम्य प्राह भोक्तुं मे गृहमर्हति मन्निणम् ॥ ११० ॥
 सोऽवदत्पुत्र नास्माकमुचितो गृहसंगमः ।
 श्रुत्वेति हस्तिपः प्राह हस्तिशालामुपैहि मे ॥ १११ ॥
 इति तेनार्थितो मन्नी सशिष्यो नक्तभोजनः ।
 प्रमुकार्यार्धमविशद्भ्रतिवेपो गजालयम् ॥ ११२ ॥
 कृष्णसर्पं समाधाय मुषिरे वेणुनालिके ।
 तत्र भुक्तोत्तरं कर्णे विदधे तस्य दन्तिनः ॥ ११३ ॥
 प्रमुभे मधुसंभत्ते गजपालकमण्डले ।
 स गजः कृष्णसर्पस्य फूत्कारैर्विवशोऽपतत् ॥ ११४ ॥
 ततः प्रभाते स ययौ मागधस्यान्तिकं प्रभोः ।
 तापमन्यञ्जनो मन्नी पूजां भेजे च भूमजः ॥ ११५ ॥

१. 'रति' ग. २. 'तां समादाय यानानां तेषां गृहमवैक्षत' ग. ३. 'रयिता' ग.
 'मिह' ग. ५. 'गृहे तस्मिन् ययौ धीमान् मागधस्यान्तिकं' ग.

ययाचे सोऽथ दूतेन मद्रवाहुं नृपात्मजम् ।
 गजं सर्पहतं ज्ञात्वा राजा भीतश्च तां ददौ ॥ ११६ ॥
 द्रुत्येवं धीमतां बुद्ध्या भवन्त्यरिषिद्धयः ।
 पशूनामिव मूर्खाणां धीहीनं नु वलं वृथा ॥ ११७ ॥
 इति मध्वगुप्ताख्यायिका ॥ ३ ॥

राजमूनोरिति वचः श्रुत्वा चित्रकथोऽत्रनीत् ।
 अस्ति तक्षशिला नाम नगरी संपदां पदम् ॥ ११८ ॥
 तस्यां चन्द्राक्षनामामृतपतिर्धर्ममूषणः ।
 मन्तिक्षीणः क्षमेचासीत्प्रिया तस्याचलप्रमा ॥ ११९ ॥
 पुत्रकामः स नृपतिः शतपत्रशताष्टकम् ।
 नित्यं ध्यात्वा श्रियं देवीं जुहानामौ यतव्रतः ॥ १२० ॥
 ततः कदाचिदेकोने प्राप्ते पञ्चशताष्टके ।
 अत्यन्तशूरो ह्यसंघं विदार्य प्रददौ निजम् ॥ १२१ ॥
 अथ श्रीमत्स्य धरदा समधारानिवासिनी ।
 दुष्टा दिदेश तनयं शैशवं सवेभृभुजाम् ॥ १२२ ॥
 स पुष्कराक्षनामामूर्च्छीवराक्षपतेः सुतः ।
 घृतः पित्रा निजपदे लक्ष्मीसंक्रान्तिदर्पणः ॥ १२३ ॥
 स कदाचिन्मृगव्यायामुष्ट्रेण प्राप्तमन्तिकात् ।
 ददर्श भोगिमिथुनं भीनं कारुण्यवाद्भीः ॥ १२४ ॥
 उष्ट्रं जवान् वाणेन स भुजङ्गमयप्रदम् ।
 उष्ट्ररूपं परित्यज्य स च व्योमचरोऽभवत् ॥ १२५ ॥
 सोऽत्रनीचवत्प्रसादेन क्षापान्मुक्तः करोम्यहम् ।
 प्रियं तथोपकारस्य पुष्कराक्ष यथोचितम् ॥ १२६ ॥
 आसीत्तारावली नाम दयिता रङ्गमालिनः ।
 विद्याधरी खेचरस्य रोहिणीवामृतविषः ॥ १२७ ॥
 स्वयंवरप्रिया पित्रा शप्ता साय वियोगिनी ।
 चचार बान्धुरिणी यूथहीनेव कानने ॥ १२८ ॥

प्रियेण रहिता साथ ययौ सुरमिकाननम् ।
 विधाय अमरीरूपं विलपन्तीव गुञ्चितैः ॥ १२९ ॥
 तस्या दयितसंकल्पाद्वीजं जम्बूतरोः स्वयम् ।
 प्रत्क्षन्नं कुसुमे तेन तत्कुले कन्यकामवत् ॥ १३० ॥
 कालेन तत्फलाहारी विजितासुर्महामुनिः ।
 तां प्राप्य करुणासिन्धुः पुपोप तनयां शिवः ॥ १३१ ॥
 ततो विनयवत्याख्या सा प्राप्तनवयौवना ।
 मुनेस्तस्याश्रमे दृष्ट्वा मया ललितलोचना ॥ १३२ ॥
 तां हर्तुमुद्यतं यैलान्मां शशाप मुनीश्वरः ।
 रूपमत्तो विरूपां त्वमुद्रतामेप्यसीति सः ॥ १३३ ॥
 निहतः पुष्कराक्षेण राज्ञा स्वां तनुमेप्यसि ।
 भर्ता विनयवत्याश्च स एव भविता नृपः ॥ १३४ ॥
 इत्येवं मुनिना शप्तो मोचितोऽद्य त्वया विमो ।
 त्वैस्त्यस्तु ते व्रजामीति स निगद्य दिवं ययौ ॥ १३५ ॥
 स्वपुरीं पुष्कराक्षोऽथ प्रविश्य स्मरतापितः ।
 सचिर्वार्पितभूमारो ययौ प्राप्तुं मुनेः सुताम् ॥ १३६ ॥
 गौरीवरात्ममुत्तीर्य सोऽर्द्धि सिद्धतपोवने ।
 विजितासुं मुनिं प्राप्य प्रणनाम स चाब्रवीत् ॥ १३७ ॥
 तवैव पूर्वदयिता कन्या विनयवत्यसौ ।
 गृहाणेमां मया दत्तां वैजयन्तीं मनोमुषः ॥ १३८ ॥
 ताम्रलिप्तां वणिकपूर्वं धर्मसेनो बधूस्तवः ।
 चौरप्रहारस्त्रणाह्नो दीर्घरोगोऽग्निमाविशत् ॥ १३९ ॥
 स हंसमिधुनं व्योम्नि दृष्ट्वा तद्व्यस्तलोचनः ।
 समार्यः पद्यतां प्राप्य प्रयातो राजहंसताम् ॥ १४० ॥

१. 'दीर्घं' ख. २. 'ए' ख. ३. 'दशं' ख. ४. 'लहं' ख. ५. 'एवमुपरा
 त्परादर्थं यद्यपि गगनं ययौ' ख. ६. 'वन्द्यम्' ख.

पर्यन्तवृत्तिसंपत्त्या वियोगे देहजीवयोः ।
मनो निविशते यत्र तूष्णं याति तदात्मताम् ॥ १४१ ॥
स राजहंसः प्रेयसा सह फुल्लवज्रोमिषु ।
सरोवरेषु लहरीकेलीद्रोलापितोऽभवत् ॥ १४२ ॥
कनकाम्बुजजालेषु लीलाकण्ड्वयेन सः ।
विललास विलासिन्या क्षणं कुटिलकन्धरः ॥ १४३ ॥
मेघवातवियोगैश्च पुनर्देवाच्च संगमैः ।
तयोर्दीर्घतरः कालो विषामृतमयो ययौ ॥ १४४ ॥
कदाचिज्जालवद्धं सा तं प्रियं वीक्ष्य सारसी ।
जहार राजपुत्रस्य कस्यचिन्मणिसूत्रिकाम् ॥ १४५ ॥
तदाशया परित्यज्य जालं यातेऽथ लुब्धके ।
(मुंसं तस्तले दृष्ट्वा मर्कटं साय चिन्तयत् ॥ १४६ ॥
मर्तुर्विमुक्त्युपायोऽयं प्राप्तो दिष्ट्या मयेत्ययः) ।
दूरे रत्नावलीं त्यक्त्वा सा गुण्डेनादशक्तपिम् ॥ १४७ ॥
स मुसस्ताडितो नेत्रे जालं सपदि मर्कटः ।
चिच्छेद तारपीत्कारो बहिर्दग्ध इवोत्तलम् ॥ १४८ ॥
छिन्नभादो महाजाले सा हंसी प्रियसंगता ।
पद्माकरं जगामान्यं विया बद्धितलुब्धका ॥ १४९ ॥
लुब्धकोऽप्यथ तां प्राप्य रत्नमालां समागतः ।
दृष्टो राजमुतेनाराच्छङ्कितो विस्त्रलत्पदः ॥ १५० ॥
परिज्ञाय निजां रत्नसूत्रिकां राजसनुना ।
निर्गृहीतो न वा कस्य लोभात्प्राप्तं विनश्यति ॥ १५१ ॥
कदाचिदयं हंसोऽसौ कमलं प्रियया सह ।
समाद्राय गतो व्योम्ना निपादेनेषुणा हतः ॥ १५२ ॥

पद्मं तद्वदनभ्रष्टं गङ्गातीरे महामुनिः ।
 कुण्डादस्थार्चने शंमुलिङ्गे छत्रमिवापतत् ॥ १५३ ॥
 स च हंसो निपादेन मुक्तो हंसी च शूलिने ।
 नैवेद्यं मुनिनानेन कल्पिता कर्मशक्तितः ॥ १५४ ॥
 हंसस्त्वं भूपतिर्जातो पद्मपाताच्छिवार्चने ।
 विद्याधरी च कन्येयं जाता शर्वनिवेदनात् ॥ १५५ ॥
 हृत्येवं पूर्वभावेन कन्या विनयवत्यसौ ।
 पैर्यायभावसदृशी प्राणिनां सततं गतिः ॥ १५६ ॥
 नगर्यामेकलज्यायामेकैर्कर्णाभिधो मुनिः ।
 स्वयंभूशंभुनिलये तस्यौ जपपरायणः ॥ १५७ ॥
 देवदांसी ततोऽभ्येत्य मदलीलाविलासिनी ।
 चक्रे रूपवती नाम शंभोर्विजयवीजनम् ॥ १५८ ॥
 चामरानिलविर्त्रस्तो दहमानः क्रुधा मुनिः ।
 सोऽभवद्भृकुटीमीमस्ततस्तं प्राह नर्तकी ॥ १५९ ॥
 भजस्व जपमेकाग्रो मुनीनां विक्रमागमः ।
 शुभाशुभध्यानधिया भवत्येव भवभ्रमः ॥ १६० ॥
 क्रोधधूमेन धवलं मा मनो ग्लानतां नय ।
 जपयज्ञे स्थितो ह्यस्मिस्तच्चित्तस्तन्मना भव ॥ १६१ ॥
 तथा द्वाहं वणिकपुत्री मुने जन्मान्तरे पुरा ।
 (अंकरं ब्रह्मचर्याय प्रतिज्ञां कन्यका सती) ॥ १६२ ॥
 ततः कदाचित्सौधस्था नवयौवनशालिनी ।
 फमलाकरनामानमपश्यं तरुणं द्विजम् ॥ १६३ ॥
 तदेकाम्ना मनोजन्मद्वयश्रेणीवद्वीकृता ।
 नात्यजं ब्रह्मचर्यं कर्तुं कल्पं दृढनिश्चया ॥ १६४ ॥

१. 'ने' ख. २. 'शक्ति' ख. ३. 'पर्यन्तभाव' ख. ४. 'टर्णाभिधो' ख.
 ५. 'तन्मना' ख. ६. 'भद्रवदशमालः क्रुधा' ख. ७. 'मतिभ्र' ख. ८. 'यो' ख.
 ९. एतत्पद्येष्टान्तर्गतपाठः ख पुनश्च द्रुतितः.

संस्रयदमपरिक्षीणा ततोऽहं पञ्चतां गता ।
 गन्धवत्याः परिसरे सरितः पितुराजया ॥ १६५ ॥
 पुण्यतीर्थफलादस्मि सर्वत्रा सरचिन्तनात् ।
 वेद्या यातेतिपर्यन्तचिन्ता तुल्यपुनर्मवा ॥ १६६ ॥
 जातिसरायाः श्रुत्वेति वचस्तस्या महामुनिः ।
 बभूव विस्मयप्रसूतविकल्पघनडम्बरः ॥ १६७ ॥
 इत्युत्वा पुष्कराक्षस्य विजितासुः स्वयं ददौ ।
 रङ्गमालिनमाह्वय तत्पुत्रीं तरलेक्षणाम् ॥ १६८ ॥
 विद्याधरीं समासाद्य रथं च व्योमगामिनम् ।
 गत्वा स्वां नगरीं भेजे पुष्कराक्षो निजां श्रियम् ॥ १६९ ॥
 इति विनयवत्याख्यायिका ॥ ४ ॥
 भैस्त्येवं पूजिता देवाः पुण्यमाजामर्माप्सितम् ।
 मृगाङ्कदत्त कामं ते शर्तः सर्वं विधास्यति ॥ १७० ॥
 इति चित्रकथेनोक्तः श्रुत्वा राजमुतः स्मयात् ।
 गशाङ्कवत्याः स्यातेषु गुणेषु गणनां व्यधात् ॥ १७१ ॥
 ततः कदाचित्ताम्बूलगण्डपं हर्म्यगेसरात् ।
 मृगाङ्कदत्तस्तयाज ॥ पपात मुमन्निणि ॥ १७२ ॥
 मन्त्री विनयवान्नाम विलोक्य तदैशङ्कितम् ।
 प्रदध्यौ निविटक्रोधो राजसूनोः प्रतिक्रियाम् ॥ १७३ ॥
 मृगाङ्कदत्तोऽप्यालोच्य सचिवं गमने मतिम् ।
 शशाङ्कवत्यामेकामो विदधे ध्याननिश्चलः ॥ १७४ ॥
 पुरीं सुरक्षितद्वारां भत्वा ते गुप्तगोपुराम् ।
 महात्रतिकरेणेण गन्तुं चक्रुर्विनिश्चयम् ॥ १७५ ॥
 ततोऽस्त्रिकेशसट्पाङ्ककपालैर्भवतटम्बरम् ।
 गुप्तमाहत्य विदधे गृहे र्माभपराक्रमः ॥ १७६ ॥

अत्रान्तरे नरपतिं ज्ञात्वा लंघयिषूधिकम् ।
 मन्त्री विनयवानेत्य सै राज्ञः स्वैरमम्यधात् ॥ १७७ ॥
 राजपुत्रेण ते राजन्नायुषश्चिन्त्यते क्षितिः ।
 अभिचारं करोत्येष गृहे भीमपराक्रमः ॥ १७८ ॥
 ताम्बूलगण्डूपरुषा निगद्येति स दुःसहम् ।
 मत्स्यक्षतां निनायासौ तं कपालास्त्रिसंचयम् ॥ १७९ ॥
 क्षणादमरदत्तोऽथ क्रोधातो निजमात्मजम् ।
 पुरान्निर्वासयामास दशभिः सचिवैः सह ॥ १८० ॥
 स हृष्टः प्रस्थितो गन्तुं परित्यज निजां पुरीम् ।
 वयस्यान्माह "चित्तेऽन्तः स्वयं सिद्धो मनोरथः ॥ १८१ ॥
 अभिपिक्तोऽस्ति तातेन बाल एव सखा मम ।
 शक्तिरक्षितको नाम किरातेषु महीपतिः ॥ १८२ ॥
 र्वयं तस्य पुरीं गत्वा विधम्य कृतसंविदः ।
 शशाङ्कवत्याः सुभगां यास्यामो दक्षिणां दिशम् ॥ १८३ ॥
 इत्युक्त्वा राजतनयः प्रविवेश महादवीम् ।
 प्रत्यग्रभिन्नरागासृज्ज्वलकेसरिसंकुलम् ॥ १८४ ॥
 अथास्तशिखरं याते शशशोणितलोहिते ।
 नमःकृष्णभुजङ्गस्य फणरत्ने विवस्वति ॥ १८५ ॥
 ततस्तालतमालौघश्यामले व्योमकानने ।
 निर्गम्यमत्तवेतालमस्तालोके दिगन्तरे ॥ १८६ ॥
 मृगाद्वदत्तो दूराध्वयान्तस्तृष्णानिर्पाडितः ।
 सचिवैः सहितमस्मौ कीटशुष्कतरोरधः ॥ १८७ ॥
 ततो निद्रामघापुष्ते क्षणं मुद्रितलोचनाः ।
 अर्धरात्रे प्रबुद्धाश्च ददृशुर्विमलं नमः ॥ १८८ ॥

१ 'यागपिपूषि' रा. २. 'वारह' य. ३. 'एतन्नाङ्कदत्तोऽथ मोधान्धो' रा.
 ४ 'धर्मदामाग' य. ५. 'चित्रं ग.' रा. ६. 'मयं' रा. ७. 'नागाभक्षितके' रा. ८.
 ८. 'वने' रा. ९. 'तत्र निशमयतामो राज्ञं' रा.

शर्वरीशवरीकर्णकेतके तुहिनत्विषि ।
 समुद्गते नमःकालकपालदलविभ्रमः ॥ १८९ ॥
 स्फटिकस्तम्भसंभारहन्वरे रश्मिमण्डले ।
 दिग्दन्तिदन्तविपुले जाते हरिणलक्ष्मणः ॥ १९० ॥
 तस्य शुष्कतरोः सर्वे प्ररूढामङ्कुरश्रियम् ।
 विलोकयन्मल्लविनं पुष्पहासं च ते शनैः ॥ १९१ ॥
 ततः फलभरैर्नम्रः स बभूव महातरुः ।
 सर्वाशापूरणसहो गुणैरिव कुलोद्धतः ॥ १९२ ॥
 क्षिप्रं फलानि पकानि तस्य घेतुर्महीतले ।
 तं दृष्ट्वा त्रिस्मिताः सर्वे ते चक्रुः प्राणवर्तनम् ॥ १९३ ॥
 ततः स तैर्मुक्तफलो बभूव सहसा द्विजः ।
 शुभ्रमशोषवीताङ्गश्चन्द्रांशुभिरिवावृतः ॥ १९४ ॥
 फौटुकादथ तैः पृष्टः सोऽब्रवीदेर्तुमात्मनः ।
 आर्जवं ब्रह्मसुलभं दन्तांशुभिरिवोद्धमन् ॥ १९५ ॥
 दमर्धिर्नाम विप्रोऽभूदयोध्यानिलयः पुरा ।
 तस्य शान्तिमती नाम भार्यासीद्धर्मचारिणी ॥ १९६ ॥
 अहं च श्रुतधिर्नाम पुत्रस्तस्य मनीषिणः ।
 ततः कदाचिदुर्मिक्षे माता मे निजभोजनम् ॥ १९७ ॥
 दत्तार्थिने क्षुधार्ताय धन्या तत्याज जीवितम् ।
 ततः पिता मे वभ्राम ह्रान्तः क्षुद्रिकलः क्षितिम् ॥ १९८ ॥
 दत्तं पुण्यवता प्राप केनापि फलपञ्चकम् ।
 स मद्यं त्रीणि संकल्प्य फलानि द्वे तथात्मने ॥ १९९ ॥
 ममज्जान्तर्जले तातः क्षणं जपपरायणः ।
 ततः फलानि सर्वाणि लौल्यादहममक्षयम् ॥ २०० ॥

तत्कोपादसि शप्तश्च पित्रा शुष्कद्रुमोऽभवम् ।
 युष्मत्फलोपभोगान्तः स च शापो गतोऽद्य मे ॥ २०१ ॥
 शुभ्रशास्त्रेन्दुजलधिर्योग्योऽहं नृपसेवने ।
 अधुना प्रतिपन्नोऽहं भवेन्तं सेवितास्मि ते ॥ २०२ ॥
 इति श्रुतधिसमागमः ॥ ५ ॥
 श्रुतधेर्यचनं श्रुत्वा ते^१ निवेद्य निजां कथाम् ।
 तेनेव सहिताः प्रातः प्रैययुर्दक्षिणां दिशम् ॥ २०३ ॥
 करिमण्डितकं नाम ते प्रविश्य महद्भनम् ।
 द्विजैर्निमग्नितास्तत्र त्रिफलासत्त्वपायिभिः ॥ २०४ ॥
 याता पञ्चशती तेषां वत्सराणां किलायुषः ।
 आमध्य वज्रसाराङ्गास्तान्किरातपुरं ययुः ॥ २०५ ॥
 मुहुदा संगतस्तत्र किरातपतिना ततः ।
 कर्तव्यमानुकूल्यं मे^२ कार्येऽप्यिति तमर्भ्यधात् ॥ २०६ ॥
 शक्तिरक्षितकाव्येन सादरं तेन पूजितः ।
 महाटवीं प्रविश्यारादपश्यद्बद्धतापसम् ॥ २०७ ॥
 स तैः पृष्टोऽब्रवीत्पूर्वं शुद्धकीर्तिरभूद्भती ।
 तस्मासि शिष्यः पृथिवीं आन्तर्त्तद्दर्शनोत्सुकः ॥ २०८ ॥
 तत्र दृष्टो मया कश्चिद्भव्यो राजकुमारकः ।
 स्वस्वयेपं समाधाय निधिसिद्धरसोपधीः ॥ २०९ ॥
 स सर्वमुक्त्वा मामाह विन्ध्याटव्यां तृणावृते ।
 नामः पारावताख्योऽस्ति भवने हंससूचिते ॥ २१० ॥
 वैदूर्यकान्तिर्नामास्ति खड्गस्तस्य महाप्रमः ।
 सिद्धाधिपत्यं येनाशु पालिसक्तेन लभ्यते ॥ २११ ॥
 इत्याकर्ण्य प्रयातोऽहं मग्नोद्वेपोद्विमुच्य ताम् ।
 प्राप्याटवीमिमां सिद्धये सहायश्चिन्तितो मया ॥ २१२ ॥

१. 'वयविकतायिभि' ख. २. 'कथयित्वा' ख. ३. 'स्ते' ख. ४. 'ताना' ख.
 ५. 'न' ख. ६. 'सुवन' ख. ७. 'विदितोत्सुकः' ख. ८. 'पालित' ख. ९. 'वेता' ख.

चिरं ध्यात्वा न तु यदा योम्यं पंश्यामि कंचन ।
मुंचिरं मृगसंतप्तस्य दाहं मर्तुमुद्यतः ॥ २१३ ॥
मृगाङ्कदत्तः श्रुत्वेति तमुवाच तपस्विनम् ।
अहं सहायः सामात्यः स्थितस्ते मगवन्निति ॥ २१४ ॥
पादलेपं ततस्तेभ्यस्तमस्ती मुदितो ददौ ।
येन व्योमचराः सर्वे प्राप्नुर्विन्ध्याटवीं क्षणात् ॥ २१५ ॥
तत्र नागेन्द्रमवनोपान्ते मग्नविधिमतः ।
जुहाव शिशिषामूले स तपस्वी हुताशनम् ॥ २१६ ॥
स्वादिरेः कीलकैर्वद्धे दिक्चक्रे विनिधाय तान् ।
मृगाङ्कदत्तप्रमुत्सान्स वमौ दिक्पतीनिव ॥ २१७ ॥
ततोऽदृश्यत मत्तालिलोलनीलोत्पलेक्षणा ।
ललना स्मरसर्वस्वं विभ्राणा नवयौवनम् ॥ २१८ ॥
सा कणन्मेखलादामा मणिकैङ्करणनूपुरा ।
परिचर्या चकारास्य होमोपकरणे पुरः ॥ २१९ ॥
विलासवल्लिता तत्र व्यग्रा चटुलचारिणी ।
अलक्षितं सा पस्पर्श स्तनेनाङ्गं तपस्विनः ॥ २२० ॥
तत्कुचस्पर्शसंदर्पविकारक्षुब्धचेतसः ।
होममाण्डं पपाताशु तस्य कम्पजुषः करात् ॥ २२१ ॥
अत्रान्तरे समुत्तसौ नेयः सागितदिभ्युत्सवः ।
विद्युन्निपातनिर्घातयोरघोषः फणीश्वरः ॥ २२२ ॥
मृगाङ्कदत्तप्रमुखा वीक्ष्य नागं समुत्थितम् ।
गम्भीरधीरसंरम्भस्वहृष्टाः समुद्ययुः ॥ २२३ ॥
पारावताक्षः संनद्धान्दष्टा तानवदद्विषः ।
युष्मद्गुरुर्विपन्नोऽयं वञ्चितो विप्रयोपिता ॥ २२४ ॥
यूयमेकीकृता येन नियुक्ता मम विप्रिये ।
त्रियोगस्तूर्णमेवास्तु भवतां त्रिभिने मिथः ॥ २२५ ॥

इति तद्वचसा सर्वे तिमिरेण तिरस्कृताः ।

ययुः संग्रान्तमनसः सहसैव पृथक्पृथक् ॥ २२६ ॥

इति पारावताक्षशापः ॥ ६ ॥

मृगाङ्गदत्तः शोकार्तो ययौ श्रुतघिना मुहुः ।

आश्वासमानो यत्नेन ततो वज्रैरिवाहतः ॥ २२७ ॥

तत्संगमाशां हृदये विषायोज्जयिनी शनैः ।

निःसहः प्रस्थितो गन्तुं दृष्टो विमलबुद्धिना ॥ २२८ ॥

स साश्रुलोचनो गाढं परिष्वज्य नृपात्मजम् ।

उवाच दीर्घं निःश्वस्य हर्षशोककरम्बितः ॥ २२९ ॥

अस्याहं तेन नागेन क्षिप्तो विन्ध्यगिरेस्तटे ।

अपश्यं तेजसां राशिं ब्रह्मदर्ण्डं महामुनिम् ॥ २३० ॥

ततोऽपश्यं ललनया वर्त्यमानं समन्ततः ।

कुलालचक्रमुद्भ्रान्तैर्भ्रमरैरभितो घृतम् ॥ २३१ ॥

तत्र स्थितौ घृपत्वरौ तयोः फेनं सितारुणम् ।

पीत्वा ते तत्पुर्विद्यां भृङ्गाः सुप्तां सितासिताम् ॥ २३२ ॥

सहसा तत्समुद्रतांसन्नुकाराः सितत्विषः ।

असिताश्वासितोत्पन्नाश्चक्रुर्जालं सितासितम् ॥ २३३ ॥

तेन जालेन मधुपा बद्धा वर्णविभेदिनः ।

ययुर्विप्लवागमेके सिन्दुवारलतां परे ॥ २३४ ॥

ततो विपार्ताश्चक्रन्दुसच्छ्रुत्वाय विपस्पृशः ।

बुक्रुशुः करुणं तत्र कश्चिन्मुनिरथाशृणोत् ॥ २३५ ॥

तल्ललाटसमुत्पामिकणदम्पोग्रबन्धनाः ।

बंशजालेन निर्गत्य तेजसदलत्रमाविशन् ॥ २३६ ॥

इत्यहं कौतुकं दृष्ट्वा पुनश्चापश्यमुन्नतम् ।

दशबाहुं महासिंहं सिंहैरनुसृतं वने ॥ २३७ ॥

विदार्य कुञ्जरान्मत्तान्पुंसा लम्बोदरेण सः ।
 दृष्टमार्गः प्रियां प्राप केसरी घवलवृत्तिः ॥ २३८ ॥
 इत्याश्चर्यं तदालोच्य ब्रह्मदर्पिणं महामुनिम् ।
 अपृच्छं सोऽपि मामाह भगवान्ज्ञानलोचनः ॥ २३९ ॥
 संसारचक्रसंसक्ता मृज्जास्ते कामिनो नराः ।
 महामाया च सा योषिद्गर्गाघर्मा वृषखरौ ॥ २४० ॥
 विषं नरकदुःखं तत्सिन्दुवारं सुरालयः ।
 महेश्वरेण कृपया मुक्तास्ते ध्वस्तकिल्बिषाः ॥ २४१ ॥
 वंशेन ब्रह्मरन्ध्रेण यातास्तेजोमयं पदम् ।
 सिंहो मृगाङ्गवत्तस्य वयस्यस्तस्य बाह्वनः ।
 लम्बोदरप्रसादेन स कान्तां ध्रुवमाप्स्यति ॥ २४२ ॥
 इत्यहं तेन मुनिना प्रशान्तेन विबोधितः ।
 देवै त्वदन्तिकं प्राप्तः प्रमाणमधुना शिवः ॥ २४३ ॥
 इति संसारचक्रम् ॥ ७ ॥

मृगाङ्गदत्तः श्रुत्वेति चित्रं श्रुतधिना सह ।
 विस्मयं परमं मेजे धृतिं धीरो बबन्ध च ॥ २४४ ॥
 स गच्छन्नर्मदां प्राप फेनहासवित्प्रसिनीम् ।
 मौद्यद्विहङ्गवाचालमेखलां नर्मदायिनीम् ॥ २४५ ॥
 ददर्श तत्र सलिले युवानं शबराधिपम् ।
 स्थानव्यग्रमहाग्राहैर्गृहीतं कुञ्जरोपमैः ॥ २४६ ॥
 मृगाङ्गदत्तस्तदृष्ट्वा ग्राहं छित्त्वा महासिना ।
 'वीरो मायाबहुं नाम शबरेन्द्रममोचयत् ॥ २४७ ॥
 ततः संजातसौहार्दखेनानीतो निजालयम् ।
 प्रणम्य पूजितो दूराच्चण्डालैः शबराधिपैः ॥ २४८ ॥

तथा दुर्गपिशान्वाधैः साक्षाच्छक्र इवागतः ।
 मायावदुगृहे प्रीतः किञ्चित्कालमुवास सः ॥ २४९ ॥
 तत्र पर्जन्यनिर्घोषप्रनृत्तेषु शिखण्डिषु ।
 शबरेन्द्रप्रतीहारश्चण्डकेतुरभापत ॥ २५० ॥
 गृहे मम मयूरोऽस्ति योऽस्तं भानौ गते सदा ।
 जनपेक्षितपर्जन्यो नृत्यतीन्द्रायुधच्छविः ॥ २५१ ॥
 इत्युक्त्वा शबरेन्द्रेण द्युतकेलिकलापिनम् ।
 न चिरादानयामीति चण्डकेतुरभापत ॥ २५२ ॥
 ततः सूर्येऽस्तमायाते वृतासु तिमिरैर्धनैः ।
 मिहपल्लीषु मायूरपिच्छकच्छादनैरिव ॥ २५३ ॥
 नद्धासु दिक्षु सर्वासु कौञ्जरैरिव चर्मभिः ।
 आकाशे शबरीकेशयात्रासंकाशशोचिषि ॥ २५४ ॥
 एको मृगाङ्गदत्तोऽथ ब्रजन्केनापि ताडितः ।
 स्कन्धे स्कन्धे सैतिमिरे तत्कोपादिदमभ्यधात् ॥ २५५ ॥
 अरे दर्पोद्धतः कोऽयं मत्कोषामिपतक्तकः ।
 श्रुत्वेत्याह प्रतीहारश्चण्डकेतुरलक्षितः ॥ २५६ ॥
 चैरोऽहं नापराधो मे चन्द्रस्यैव व्यतिक्रमः ।
 यदालोकं विनालोकः सन्नेत्रोऽप्यन्धतां गतः ॥ २५७ ॥
 देवस्य वातिचारोऽयं येन त्रैलोक्यचक्षुषः ।
 तस्यापि भानोर्विहिताः संपदां परियुत्तयः ॥ २५८ ॥
 मृगाङ्गदत्तः श्रुत्वेति चैरोऽहमितिवादिनम् ।
 तमवादीदहमपि स्तेन एव परस्वदत् ॥ २५९ ॥
 इति तावत्परिज्ञाय मिथः सौहार्दमाश्रितौ ।
 सप्ततुः पथि तौ द्रयामातमःसंवीतविग्रहौ ॥ २६० ॥
 मायावटोः प्रतीहारः स हि मच्छन्नकाशुकः ।
 सदा तन्महिषीं रात्रौ भजते गूढरागिणीम् ॥ २६१ ॥

ततो मृगाङ्कदत्तेन स तेनानुगतः क्षणात् ।
 स चण्डकेतुरविशद्विलेनान्तःपुरोदरम् ॥ २६२ ॥
 मायाबटुप्रियां तत्र स मञ्जुमतिकामिधाम् ।
 प्राप्य लेभे स्मरसात्तदालिङ्गननिर्वृतिम् ॥ २६३ ॥
 अलक्षितो बिलच्छिद्रन्यस्तनेत्रो ददर्श तम् ।
 मृगाङ्कदत्तो दुःशीलां तां च मायाबटोर्वधूम् ॥ २६४ ॥
 द्वैर्प्याविवादे स तया प्रतीहारो विरोधितः ।
 चर्क्य शस्त्रं रागो हि खलानां कलहोदयः ॥ २६५ ॥
 रतोत्सवे प्रस्तुतेऽपि संजाते शस्त्रसंग्रमे ।
 छिन्ना निवारणे तत्र दास्याः करतलाङ्गुलिः ॥ २६६ ॥
 ततः क्रुद्धः स निर्गत्य निजवेश्म व्रजमिति ।
 मृगाङ्कदत्तमज्ञात्वा चण्डकेतुरभाषत ॥ २६७ ॥
 तूर्णमेवेहि गच्छाय. खिन्नौ दीर्घप्रजागरात् ।
 निद्रां प्राप्त्वा निजगृहं विश्रब्धो यास्यसि प्रिय ॥ २६८ ॥
 ह्यस्युक्त्वा तेन नीतोऽहं स्वगृहं द्रोहचेतसा ।
 दृष्टमच्चरितो बध्यो ममायमिति निश्चयात् ॥ २६९ ॥
 मृगाङ्कदत्तस्वदेहं प्रविश्यालक्षितो निशि ।
 प्रदिष्टेन निद्रार्थं शून्यमन्दिरमाविशत् ॥ २७० ॥
 प्रतीहारगृहे तत्र स्थितो दीपांशुमालिनि ।
 केलीशिसखिण्डनं दूराद्दर्श रुचिरच्छविम् ॥ २७१ ॥
 सुस्निग्धालोकिनस्तस्य बन्धोरिव गलस्थितम् ।
 स गाढबन्धनं सूत्रं कृपयैव व्यमोचयत् ॥ २७२ ॥
 कण्ठसूत्रे व्यपगते सोऽमृद्भीमपराक्रमः ।
 मृगाङ्कदत्तस्तं दृष्ट्वा दृष्टः पप्रच्छ विसयात् ॥ २७३ ॥
 सखे हर्षसुधासिन्धुसंग्रामः किमयं कुतः ।
 वृत्तं वा कथ्यतां सर्वं स पृथासि यतः स्फुटम् ॥ २७४ ॥ -

श्रुत्वेति तं परित्यज्य ग्राह भीमपराक्रमः ।
 अप्यहं नागशापेन प्रविष्टो विकटाटवीम् ॥ २७५ ॥
 दर्भसूचीचितां घोरां दावाग्निमुष्टपादयाम् ।
 उद्धूततप्तसंसिक्तां संज्ञातमृगतृष्णिकाम् ॥ २७६ ॥
 खिद्यद्वराहमहिषां ताम्यत्तप्तमुजङ्गमाम् ।
 शुष्यत्कुरङ्गशशकां तृप्यच्छिखिकुलकुलाम् ॥ २७७ ॥
 तत्र भ्रान्तं चिरं भ्रान्तं मूले शाल्मलिशाखिनः ।
 प्राणत्यागे कृतोद्योगं मां वृद्धपथिकोऽब्रवीत् ॥ २७८ ॥
 परिम्लानमुखच्छायो मद्र किं परितप्यसे ।
 संसारदुःखसरणिर्वैकुण्ठ्येन न लङ्घ्यते ॥ २७९ ॥
 इत्युक्त्वा भक्त्यां श्रुत्वा पुनराह महाद्युतिः ।
 वृद्धपान्थो न शोकेन^१ वीराणां स्पृश्यते मनः ॥ २८० ॥
 अवश्यं हि भवत्येव जीवतां संगमः पुनः ।
 धैर्यं श्रय विपत्स्फारजलधेः सेतुरेव तद् ॥ २८१ ॥
 कौशलयाममद्भूपो विभूतेः प्रथमाकरः ।
 तारापतिफराकारचरितो विमलाकरः ॥ २८२ ॥
 कमलाकरनामामूत्कमलाकमलाकरः ।
 तनयस्तस्य राजश्रीविलासमणिदर्पणः ॥ २८३ ॥
 साहोऽयमपरोऽनङ्गः सोऽङ्गनापाङ्गसंगतिः ।
 इत्थंचुर्यस्य यात्रासु तरुण्यो रूपविस्मिताः ॥ २८४ ॥
 बन्दिमागधसूतेभ्यो वितरन्मणिकङ्कणान् ।
 पठितां बन्दिवर्येण शुधावार्यां स विस्मितः ॥ २८५ ॥
 मुवल्यमूषणममलं गुणनिलयं कविसदृसनिर्घुष्टम् ।
 दंसायलिः कः रमते कान्तं कमलाकरं मुक्त्वा ॥ २८६ ॥

१. 'वद' ख. १. 'मतिः' ख. १. 'वीरा' ख. ४. 'रविष्ठो तुमलाकरः' ख.
 ५. 'पट्टरा' ख.

तात्पर्याद्भदितां श्रुत्वा स मनोरथसिद्धिना ।
 किमेतदिति पप्रच्छ तं रहः कौतुकाकुलः ॥ २८७ ॥
 सोऽज्ज्वीदस्ति नगरी विदिशा नाम विश्रुता ।
 आवर्तमानया लक्ष्म्या विदिशेव तमाश्रिता ॥ २८८ ॥
 मेघमालीति विख्यातस्तस्यामस्ति महीपतिः ।
 (यत्कीर्त्या विहिता नामङ्कालिङ्गननिर्वृतिः) ॥ २८९ ॥
 तस्य हंसावली नाम तनयास्ति शुचिस्मिता ।
 मुक्तावलीव कामस्य विस्तीर्णगुणगुम्फिता ॥ २९० ॥
 मुमुक्षी पल्लवकरी स्तनस्तवकशालिनी ।
 सचन्द्रपारिजातेव लहरी क्षीरवारिधेः ॥ २९१ ॥
 मन्मथायोपनीतेव वेधसा त्रिजगज्जये ।
 (नैवलावण्यनिर्माणहस्तोपायनपुत्रिका) ॥ २९२ ॥
 यदृच्छया गतो रम्यां स कदाचित्पुरीमहम् ।
 न्यवसं दुर्दुरास्यस्य नाट्याचार्यस्य वेदमनि ॥ २९३ ॥
 अत्रान्तरे रोजस्रुता नर्तकेन मुशिक्षिता ।
 पितुः पुरो नृत्यतीति प्रवादो नगरेऽभवत् ॥ २९४ ॥
 ततोऽहं कौतुकाविष्टो नाट्याचार्यसमाश्रयात् ।
 अविशं सार्जवं गर्जन्मुखं नाट्यमण्डलम् ॥ २९५ ॥
 मूर्च्छद्वीणासमालापतालच्छैत्रकलविधौ ।
 संप्रवृत्ते ध्रुवं गाने वरयात्राविधायिनी ॥ २९६ ॥
 अत्रान्तरे विश्वसृजा राज्ञे दत्ता जगज्जये ।
 नवलावण्यनिष्प्राणहस्तोपायनपुत्रिका ॥ २९७ ॥
 विवेश सत्त्वसंपन्ना सुधाभिनयशालिनी ।
 ततो हंसावली हेलविकीर्णकुसुमाञ्जलिः ॥ २९८ ॥

१. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख. पुस्तके त्रुटितः. २. 'मोहनैवपी' ख. ३. एतत्कोष्ठा-
 न्तर्गतपाठः ख. पुस्तके त्रुटितः. ४. 'अपश्यं कदाचित्तां पुरीमहम्' ख. ५. 'सा शु-
 भाती' ख. ६. 'मार्जवाराजान्यु' ख. ७. 'स्वितक' ख. ८. 'सुत्राभि' ख.

मूर्तेष्व कौशिकी वृत्तिर्नाथ्यसेवाधिदेवता ।
 सामात्यस्य पितुस्तत्र चक्रे कमपि विसृज्यम् ॥ २९९ ॥
 विलासललितं तस्या विवभौ वदनाम्बुजम् ।
 नान्दीश्रवणसंतोषाचन्द्रः साक्षादिवागतः ॥ ३०० ॥
 सा बालनिललोलेव पेशला कल्पवल्ली ।
 संसारसरसालोकैर्भावाभृतफलं ददौ ॥ ३०१ ॥
 बालचूताङ्कुरस्यादकलकोकिलनिःस्वना ।
 सा पपाठ विपञ्चीव पञ्चमानुगतस्वरा ॥ ३०२ ॥
 जयति स नामिसरोरुहमधुपटलैर्निवसिताकारः ।
 शौरिः श्रीमुखचन्द्रे यत्कान्तिर्लाञ्छनच्छाया ॥ ३०३ ॥
 इति भुवाणा वक्राब्जसौरमाहृतपट्टपदैः ।
 सा बभौ प्रेक्षकोद्भूतसाधुवादाक्षरैरिव ॥ ३०४ ॥
 ततो दिनान्तो तनयानाढ्यदर्शननिर्गते ।
 अन्तःपुरं गते राज्ञि वृते सामाजिकोत्सवे ॥ ३०५ ॥
 अचिन्तयमहं देव कन्येयं मृगलोचना ।
 कमलाकरदेवस्य योग्यैवेति मुहुर्मुहुः ॥ ३०६ ॥
 सतः कृतप्रवेशोऽहं युक्त्या राजनिकेतनम् ।
 कन्यान्तःपुरचित्रे त्वत्तुल्याकारमलीलिखम् ॥ ३०७ ॥
 विहितोन्मादमेपोऽथ वयस्यो मम दैर्दुरः ।
 चित्रस्यं प्रकटीकर्तुं त्वां तुष्टाय मुहुर्मुहुः ॥ ३०८ ॥
 नामामिजनमाकर्ष्य त्वदीयं तेन वर्णितम् ।
 त्वदाकारैकविन्यस्तलोचना सामवच्चिरम् ॥ ३०९ ॥
 ततो भवावतारेण सरेण रुचिरघुतिः ।
 सा भगवत् वसन्तेन लतेवोरुल्लिङ्गकुला ॥ ३१० ॥

प्रतिपञ्चन्द्रलेखेव ततः सा चारुहासिनी ।
मनोभवानलज्वालाकुलिता तनुतां ययौ ॥ ३११ ॥
क्षीणा ज्वरापदेशेन विभ्रती स्मरविक्रियाम् ।
द्रष्टुं पित्राम्यनुज्ञाता श्रेयसे श्रीपतिः स्वयम् ॥ ३१२ ॥
ततो ददुरेकेणाहं विहितो ज्ञाततत्कथः ।
कृतप्रवेशतेनैव युक्त्या तं देशमाविशम् ॥ ३१३ ॥
तत्र हंसावली दृष्टा मया विरहनिःसहा ।
हंसावलीव नलिनीदलशय्याकृतस्थितिः ॥ ३१४ ॥
दृष्ट्वा तां विष्णुनिलये राजपुत्रीं सरातुराम् ।
अपटं स्तुतिमभ्येत्य शीरीं तस्यमलोचनः ॥ ३१५ ॥
जय कमलाकरलालितचरणसमाक्रान्तविश्व विश्वात्मन् ।
प्रकटमुदर्शनकान्ते पुरोत्तम पुण्डरीकाक्ष ॥ ३१६ ॥
इति प्रिया तामश्निष्टां सा श्रुत्वा भगवत्स्तुतिम् ।
पुनः पुनः पठेत्याह मां हर्षाकोशलोचना ॥ ३१७ ॥
मत्पमिज्ञाय सा ममं ददौ चीनांशुरुद्वयम् ।
तैत्पल्लवे तथा न्यस्ता गार्धेया रक्तचन्दनैः ॥ ३१८ ॥
सेवेयं तत्करन्यस्ता दृश्यतेऽशुरुपल्लवे ।
गाथा पुष्पशस्त्रेव दीक्षामञ्जुशमालिका ॥ ३१९ ॥
श्रुत्येति राजतनयः सहसा मनसा दधौ ।
तामेव मन्मथक्रान्तो दिव्यं हि नयनं मनः ॥ ३२० ॥
कदाचिदयं पित्रामौ दिग्जयाय महामुजः ।
आदिष्टो निर्ययावन्निवेलाविश्रान्तसैनिकः ॥ ३२१ ॥
तैत्तुरज्जसुरोद्धृतसान्द्रधूलिकदम्बकैः ।
दिग्धारणाः क्षणं तस्युत्तदाघातसमुत्सुकाः ॥ ३२२ ॥
स राजतनयां ध्यायन्प्रययौ विजयोन्मुखः ।
संस्मरन्राजकदलीं भीलिताक्ष इव द्विषः ॥ ३२३ ॥

अङ्गराजं रणे जित्वा कुलमूर्तिं महाबलम् ।
 जीवन्नाहं गृहीतस्वं प्राहिणोज्जगरीं पितुः ॥ ३२४ ॥
 भग्नासु शत्रुसेनासु समरे प्रतिबिम्बितम् ।
 खड्गान्तर्निजमेवैकं सोऽपश्यत्संभुखं मुक्तम् ॥ ३२५ ॥
 क्षिप्त्वा यशो दिगन्तेषु सह भिन्नेभमौक्तिकैः ।
 कपोलपत्ररहिताः स चक्रे शत्रुयोषितः ॥ ३२६ ॥
 विदिशां शनकैः प्राप्य तस्यौ चैत्रवतीतटे ।
 नर्तयन्गजगर्जामिरुद्यानशिखिमण्डली ॥ ३२७ ॥
 तत्र दूतेन भूपालं ययाचे मेघमालिनम् ।
 हंसावलीं स्मरावासनिजमानसवासिनीम् ॥ ३२८ ॥
 ततः स्वयं समभ्येत्य मेघमाली प्रणम्य तम् ।
 उवाच कृतकृत्योऽहं त्वदाज्ञाकारणादिति ॥ ३२९ ॥
 निर्दिष्टा विष्णुनेत्रेणा भल्युता तव वल्लभा ।
 तैत्कर्तस्पृष्टशिरसां देहिनां शाम्यति ज्वरः ॥ ३३० ॥
 वितीर्णां तनया तुभ्यं वैत्स हंसावली भया ।
 प्रातः क्षपायां भविता युष्मत्पारेणयोत्सवः ॥ ३३१ ॥
 इत्युक्त्वा विदिशाधीशः प्रविद्यान्तःपुरं निजम् ।
 चक्रे विदितवृत्तान्तां तनयां वल्लभां तथा ॥ ३३२ ॥
 हंसावली चित्रगतं ध्यायन्ती कमलकरम् ।
 स एवान्योऽथवा कश्चिदिति दोलकुलामवत् ॥ ३३३ ॥
 सा दिदेश सखीं सैरं कान्तां कनकमञ्जरीम् ।
 दृष्ट्वा राजमुतं तूर्णमेहीत्याहितसंशया ॥ ३३४ ॥
 भद्रकूटजटाजूटा ततः कनकमञ्जरी ।
 कृष्णाजिनोपरसम्पर्पादितोच्चकुचमाली ॥ ३३५ ॥

१. 'लागी' ख. २. 'सहं प्रम्ममदोलेके' ख. ३. 'सकम्' ख. ४. 'प्रहणा-
 ति' ख. ५. 'य' ख. ६. 'वंगमुचलदी' ख.

राहुप्रस्तस्य शीतांशोरिव प्रजिता द्युतिः ।
 द्रष्टुं तपस्विनीवेषा प्रययौ कमलाकरम् ॥ ३३६ ॥
 रत्नोपायनहस्ता सा कान्तं दृष्ट्वा नृपात्मजम् ।
 बभूव मन्मथाविष्टा तेन संभाविता क्षणात् ॥ ३३७ ॥
 सा विस्मृतसखीखेहा तं निर्वर्ण्य सरोपमम् ।
 तस्यौ तदुन्मुखा कस्य सिद्धये तरुणी सखी ॥ ३३८ ॥
 ततो हंसावलीमेत्य सात्रवीन्मन्मथाहता ।
 उन्मत्तोऽसौ नृपमुतो दृष्टो मन्निवृतो मया ॥ ३३९ ॥
 भूतच्छायाभिभूतेन तेन ते नोचितः सखि ।
 चूतवल्लया इवासङ्गः कीटशुष्केण शाखिना ॥ ३४० ॥
 इति राजमुता श्रुत्वा न सोऽयमिति चेतसा ।
 निश्चित्योद्वाहविमुखी बभूव मृशदुःखिता ॥ ३४१ ॥
 सखि त्वं मम वेषेण पाणिग्रहमहोत्सवे ।
 भजैनं नहि मे चित्तमन्यत्र कमलाकरात् ॥ ३४२ ॥
 इति हंसावलीवाक्यं श्रुत्वा कनकमञ्जरी ।
 उवाच तद्वशास्तीति सानन्दकृतसंवृतिम् ॥ ३४३ ॥
 स्नातव्यं नगरोपान्ते कूटशाल्मलिकोटरे ।
 त्वया वृत्तविवाहाहं त्वां समेप्याभ्यलक्षिता ॥ ३४४ ॥
 हंसावलीमिति सैरमुत्त्वा कनकमञ्जरी ।
 तदामरणवासोभिस्तद्वेषां विदधे तनुम् ॥ ३४५ ॥
 कृत्वा विदितवृत्तान्ता सखिद्रोहे निजाकृतिम् ।
 दौत्यशोककरी नाम विवाहवन्धुषां ययौ ॥ ३४६ ॥
 ततो महोत्सवव्यग्रसममजनमण्डले ।
 हंसावली गूढवेषा प्रायातं शुष्कशाखिनम् ॥ ३४७ ॥
 तत्कोटरं समालोक्य भीषणं मृदुमानता ।
 एताज्जालन्तरे तस्यौ बाला बहुलशाखिनः ॥ ३४८ ॥

ततः कोलाहलोचालव्यालोलजनसंकुले ।
 तां कूटकन्यकां प्राप्य प्रययौ कमलाकरः ॥ ३४९ ॥
 स व्रजन्विजयस्तत्र यात्रायात इव स्मरः ।
 शाल्मलेः सविधं प्राप्य गर्जद्भ्रषटाकुलः ॥ ३५० ॥
 सहसा तत्र कृतकोदामत्रासाकुलेक्षणा ।
 त्रायस्वेत्याह तं कम्पलोला कनकमञ्जरी ॥ ३५१ ॥
 किमेतदिति तेनोक्ता सावददेव शाल्मलेः ।
 अस्यान्तरे स्थिता स्वप्ने मया दृष्टा निशाचरी ॥ ३५२ ॥
 तथा नित्रासितः कोऽपि ब्राह्मणो माममापत ।
 नादग्ध्या शाल्मलिं तेऽद्य श्रेयोऽस्तीति कृपाकुलः ॥ ३५३ ॥
 आर्यपुत्रोऽधुना सर्वं जानातीति तयोदितः ।
 शाल्मलिं सेवकैस्तूर्णं राजसूनुरदाहयत् ॥ ३५४ ॥
 दक्षमानं समालोक्य ज्वालालीढनभस्तलम् ।
 हा सख्या वञ्चितास्मीति ग्राह हंसावली मुहुः ॥ ३५५ ॥
 अहोऽनुरूपलोमेन सखी मां मुग्धमानसीम् ।
 दग्धमभ्युद्यता पापा निःशङ्कसुखकाङ्क्षिणी ॥ ३५६ ॥
 अयं रतिपतेस्तुल्यः प्रत्यक्षं पुरुषोत्तमः ।
 नाधन्यया मया प्राप्तो दैवं वा केन लङ्घ्यते ॥ ३५७ ॥
 अहो कान्तिरहो लक्ष्मीरहो यौवनसंपदः ।
 अहो नु राजपुत्रस्य नेत्रसंवरणं तनुः ॥ ३५८ ॥
 अयं स चित्रलिखितः श्रीमान्पद्मदलेक्षणः ।
 भन्मानसकृतावासो विलसतससारसः ॥ ३५९ ॥
 विप्रलब्धास्मि दैवेन प्रविशामि हुताशनम् ।
 प्रियाप्राप्तिनिरादौर्ण किं शरीरेण लोपिना ॥ ३६० ॥
 इति संचिन्त्य शनकैः स्मृत्वा भगवतो घचः ।
 प्रतीकाराय सख्याश्च नात्यजत्सा निजां तनुम् ॥ ३६१ ॥

कोशलयमय संप्राप्य प्रहृष्टः कमलाकरः ।
 अन्तःपुरं नृपो गत्वा रेमे बह्वभया सह ॥ ३६२ ॥
 तां मनोरथसिद्धिश्च दृष्ट्वा कनकमञ्जरीम् ।
 हा वञ्चितो राजपुत्रश्चिन्तयित्वेत्यगाद्बृहम् ॥ ३६३ ॥
 तत्र चिन्तापरो बन्दी तदन्वेष्टुं समुद्यतः ।
 मात्रा निवारितो राजरहस्यं निर्दहेदिति ॥ ३६४ ॥
 ततो हंसावली लोके दर्शनाशङ्किनी शनैः ।
 विवेश निशि निःशेषशोकशालामिवाटवीम् ॥ ३६५ ॥
 चिन्तामिव सनिर्वेदां खलसेवामिवापराम् ।
 'जीवन्तीमिव विच्छायां दुर्दशामिव तापिनीम् ॥ ३६६ ॥
 वेश्यामिव महातृष्णां चित्तामिव भयङ्करीम् ।
 मायामिव व्यस्रमानां डाकिनीमिव दुःसहाम् ॥ ३६७ ॥
 राक्षसीभिः शतग्रीभिर्निस्त्रिगैः पिशिताशिभिः ।
 शरजालैश्च निचितां युद्धममिमिवोत्कटाम् ॥ ३६८ ॥
 घोरां प्रविश्य तां तन्यी बभ्राम तरलेक्षणा ।
 हा तातेत्याशु ललितं विलपन्ती मुमोह सा ॥ ३६९ ॥
 शनैः समाश्वास्य मनः पत्रनाकुलितालका ।
 ददर्श शयनीं क्षीणां विरहार्तामिवाग्ननाम् ॥ ३७० ॥
 अयोदिते भगवति व्योमश्रीपतिकौस्तुभे ।
 भास्करे चन्द्रविरहकान्ते कुमुदिनीगणे ॥ ३७१ ॥
 शनैर्भजन्ती शोकार्ता सा बाढा तरुमुन्दरम् ।
 द्वितीयं काननं मेजे मञ्जुकृजद्विहङ्गमम् ॥ ३७२ ॥
 अत्रान्तरे बसन्तर्तुविशदाः कुमुदश्रियः ।
 विपादाः प्रोषितस्त्रीणां वनान्तेषु चकासिरे ॥ ३७३ ॥
 व्याकोशिकिशुकाशोकपलाशैर्विवमुर्दिशः ।
 सरणोपरुषा स्फूर्जज्वालाजालैरिवोद्भूतैः ॥ ३७४ ॥

चभुर्विरहिणीशोकतप्तनिःश्वाससोदराः ।
 चूतचम्पककिञ्जल्कपिञ्जरा दक्षिणानिलाः ॥ ३७५ ॥
 ततो हंसावली तत्र पूर्णपङ्कजिनीतटे ।
 जले तीरलतापुष्पैर्नारायणमपूजयत् ॥ ३७६ ॥
 अत्रान्तरे ज्वरार्तोऽभूत्स्वपुरे कमलाकरः ।
 तज्ज्ञात्वाचिन्तयत्सर्वं स्विन्ना कनकमञ्जरी ॥ ३७७ ॥
 अहो परीक्षाकालोऽयं प्राप्तो मे कूटयोषितः ।
 हंसावली ज्वरहरेत्येष वादो ह विश्रुतः ॥ ३७८ ॥
 आहता किं विधास्यामि भर्तुर्ज्वरनिवर्तने ।
 बुद्ध्याशोककरी तावत्कदाचिद्वेदिनी भवेत् ॥ ३७९ ॥
 सप्त्या द्रोहकराः सर्वा भवन्त्येव यथा ब्रह्म ।
 पुरा भद्रशिवा नाम योगिन्युपदिदेश यत् ॥ ३८० ॥
 शून्ये लिङ्गालये कृष्णच्छागासृक्पिशितार्चनैः ।
 'वीरो नरोपहारेण भवति ज्वरहा सतः ॥ ३८१ ॥
 तस्मात्तदेव कृत्वाद्य हत्वाशोककरीं सखीम् ।
 त्वरं च भेदशङ्कां च तुल्यमुन्मूलयाम्यहम् ॥ ३८२ ॥
 इति निश्चित्य मनसा कृत्वा शोककरीं रहः ।
 कार्ये विदितवृत्तान्तामुपहारकथां विना ॥ ३८३ ॥
 द्वारपालान्समाज्ञाप्य राज्ञो रक्षाबलिक्रमे ।
 यान्ति चायान्ति या नार्यो विध्या भोक्ष्या न ता इति ॥ ३८४ ॥
 गत्वा सखां समादाय शून्ये लिङ्गनिकेतने ।
 कृत्वा यपोदितं सर्वं सज्जाम्रेण जघान ताम् ॥ ३८५ ॥
 अभ्याहता यथा तारं त्रायस्वेति कृतारवा ।
 जवाद्विषेन क्षरणं सा राजद्वाररक्षिणः ॥ ३८६ ॥

मुक्तकेशीं खड्गहस्तां तस्याः पश्चात्समागताम् ।
 राक्षसीति निजघ्नस्ते ततः कनकमञ्जरीम् ॥ ३८७ ॥
 अथाशोककरी तेभ्यस्तद्वृत्तान्तं न्यवेदयत् ।
 विप्रलब्धः परिणये प्राग्यथा कमलाकरः ॥ ३८८ ॥
 राजपुत्रोऽथ विज्ञाय तस्याः कपटचेष्टितम् ।
 गृहाद्वन्दिनमानाय्य शुशोच मुषितो यथा ॥ ३८९ ॥
 क सा हंसावली याता ममापुण्यघनोच्चयैः ।
 अहो विधातुराश्चर्यं श्रमो निष्फलतां गतः ॥ ३९० ॥
 अहो नु दग्धा तां बालां बहौ कुसुमकोमलाम् ।
 मन्ये संतापमतुलं न त्यक्ष्यति युगैरपि ॥ ३९१ ॥
 हा हंसावलि मेघित्तचन्द्रिके कासि देहि मे ।
 वाचमित्यश्रुललितं विललाप नृपात्मजः ॥ ३९२ ॥
 ततस्तमवदद्वन्दी देव मा विह्वलो भव ।
 अवश्यं विष्णुना दिष्टां तां प्राप्स्यसि सुलोचनाम् ॥ ३९३ ॥
 अविषादेन मोहस्य धैर्येण व्यसनस्य च ।
 नयेन च प्रमादस्य मूलादुन्मूलनं क्षमम् ॥ ३९४ ॥
 धीमतां सत्त्वशीलानां कृतिनां व्यवसायिनाम् ।
 पुनः प्ररोहमायाति शुद्धितोऽपि मनोरथः ॥ ३९५ ॥
 शुत्वेत्युचितमाख्यातं स मनोरथसिद्धिना ।
 सह तेनैव दयितां विचेतुं प्रययौ स्वयम् ॥ ३९६ ॥
 आन्वा महीमविज्ञातो दैवात्तत्प्राप काननम् ।
 अवश्यमाविनो भावा यत्सत्यं मार्गदर्शिनः ॥ ३९७ ॥
 तत्र फुल्लताजाले लीनालिकुलसंकुले ।
 स्त्रियं पुष्पसरस्येव सोऽपश्यत्स्वकस्तनीम् ॥ ३९८ ॥
 सेयं हंसावलीत्याराचां मनोरथसिद्धिना ।
 दयितां पुण्डरीकाक्षपूजापरिकरोचताम् ॥ ३९९ ॥

लावण्यपुण्यसरितं सिद्धिं रतिपतेरिव ।
 यक्षमक्षयाय चन्द्रस्य सप्ततामिव रोहिणीम् ॥ ४०० ॥
 अलकालिकुलां लीलावल्लरीं पाणिपल्लवाम् ।
 पेशलामचिरावाप्तविप्रयोगविपल्लवाम् ॥ ४०१ ॥
 तां वीक्ष्य हर्षपीयूषवर्षिणीं निर्वृतोऽभवत् ।
 चिरान्मनोरथन्यस्तः कस्य लामो हि नोत्सवे ॥ ४०२ ॥
 सापि तन्मन्मथाशङ्काचकितायतलोचना ।
 हृष्टा बन्दिगिरा ज्ञात्वा प्रियं लज्जानताभवत् ॥ ४०३ ॥
 ततो निवेद्य संहृष्टौ विप्रलम्भकथां मिथः ।
 तौ बन्दिना समं क्षिप्रं जग्मतुः कोशलां पुरीम् ॥ ४०४ ॥
 मेघमालिनमाह्वय विदिशाधिपतिं ततः ।
 कृत्वा परिणयं मेजे तां कान्तां कमलाकरः ॥ ४०५ ॥
 इत्येवं जीवतां तात भवन्ति शुभसंपदः ।
 अवाप्त्यस्यचिरादेव वयसां मा कृशो भव ॥ ४०६ ॥

इति हंसावलीकथा ॥ ८ ॥

इति पान्यवचः श्रुत्वा संप्राप्योज्जयिनीं शनैः ।
 प्रतिश्रयार्थं वृद्धायाः प्रविष्टोऽहं निवेशनम् ॥ ४०७ ॥
 रूपकत्रयमादाय सा मे भोजनसिद्धये ।
 दिदेश खट्वां शान्तस्य याचितां जीर्णजालकाम् ॥ ४०८ ॥
 शयानस्तत्र जालेन तदुक्तां यवमुष्टिकाम् ।
 अपश्यं तां च संजातां सहसा फलितामपि ॥ ४०९ ॥
 तैर्यैर्विहितान्सत्कुन्मदर्थमुपकल्प्य सा ।
 पुनारेवात्मनश्चान्यान्ययौ खातुं नदीतटम् ॥ ४१० ॥
 तस्यां गनायामुत्थाय कांस्यपात्रद्वयसितान् ।
 श्रुत्वा विनिमयेनाह तांश्चैव पुनः स्मितः ॥ ४११ ॥

सा समभ्येत्य दत्त्वा मे स्वयं मुक्त्वा विपर्ययात् ।
 अमूच्छागलिका क्षिप्रं क्रमस्तुद्रो हि योषिताम् ॥ ४१२ ॥
 निजव्याजनिबद्धां तां छागीमादाय सौनिकम् ।
 ततो विक्रयकामोऽहं दृष्टः सौनिकयोषिता ॥ ४१३ ॥
 सा ग्राह मामहो पाप सखी मे वञ्चिता त्वया ।
 द्रक्ष्यसीत्युद्धता क्रोधकम्पमानकराधरा ॥ ४१४ ॥
 ततो दिनान्ते मुसोऽहं वृक्षमूले स्थितस्तथा ।
 कण्ठे बद्धेन सूत्रेण क्षिप्रं नीतो मयूरताम् ॥ ४१५ ॥
 कालेन धीवरैर्वध्या विक्रीतोऽहं विचित्ररुक् ।
 अस्मिन्प्रतीहारगृहे स्त्रीणां केलिपदे स्थितः ॥ ४१६ ॥
 अद्याहं त्वत्प्रसादेन मुक्तस्तिर्यङ्मिवन्धनात् ।
 भवत्सेवासुखं प्राप्तः प्रमाणमधुना मवान् ॥ ४१७ ॥
 त्वामवश्यं प्रतीहारो रहस्ये भेदशङ्कितः ।
 हन्ता प्रातः प्रतिनिशं को नाम न हतोऽमुना ॥ ४१८ ॥
 इदमर्गलितद्वारं गृहं सुभयरक्षितम् ।
 प्रभाते संशयश्चासौ न जाने किं भविष्यति ॥ ४१९ ॥
 अथवा तेन सूत्रेण मुहूर्तं बहिरूपिणो ।
 निर्गच्छावो गवाक्षेणेत्युक्त्वा तौ चक्रतुस्तथा ॥ ४२० ॥

इति मीमपराक्रमसमागमः ॥ ९ ॥

ततः श्रुतधिना प्रातस्तथा विमलबुद्धिना ।
 समेत्य तां कथां सर्वां राजपुत्रः समभ्यधात् ॥ ४२१ ॥
 समां मायावटोः प्राप्य ते प्रभाते महात्मनः ।
 बभूवुर्व्यग्रमनसो द्यूतकेलिकलाविधौ ॥ ४२२ ॥
 अयोधैः श्रुतधिः ग्राह नीलकण्ठोऽद्य नृत्यतु ।
 अलं द्यूतेन नः सचैः प्रतीहारेण वर्णितः ॥ ४२३ ॥

इति श्रुतधिवाक्येन ॥ मायावदुभूमुजा ।
 प्रतीहारोऽभ्यनुज्ञातस्तमाहर्तुं गृहं ययौ ॥ ४२४ ॥
 स चौरौ न मयाद्यापि हतः किं मन्दबुद्धिना ।
 इति ध्यात्वा गृहेऽपश्यन्न चौरं न च बर्हिणम् ॥ ४२५ ॥
 गृहात्प्रतिनिवृत्त्यासौ प्राह मायावदोः पुरः ।
 गतो बर्हीति तच्छ्रुत्वा जहास श्रुतधिर्मृशम् ॥ ४२६ ॥
 बर्ही चौरेण वा नीतश्चौरो वा बर्हिणा हतः ।
 अहो त्वया न विज्ञातं चौरबर्हिविचेष्टितम् ॥ ४२७ ॥
 इत्युक्त्वा श्रुतधिः सर्वां तत्कथां कौतुकस्पृशे ।
 निवेद्य शबरेन्द्राय दासीं कृत्वाङ्गुलीं च ताम् ॥ ४२८ ॥
 नमः स्त्रिय इति प्राह निन्दन्मञ्जुमतीं मुहुः ।
 तत्त्वं मायावदुर्ज्ञात्वा प्रतीहारं जघान तम् ॥ ४२९ ॥
 बधान्मृगाङ्गदत्तेन स्त्री न बध्येति रक्षिता ।
 ययौ मञ्जुमती कापि द्रोहः सत्त्वं विपत्फलम् ॥ ४३० ॥
 कदाचिदथ यातेषु वासरेषु व्यजिज्ञपन् ।
 शबराः शबराधीशं वीरः प्राप्तो महानिति ॥ ४३१ ॥
 सार्थो दुःखोपहराय रुद्धोऽस्माभिः स सत्त्ववान् ।
 शतानि पञ्च वीराणां जघान जितैर्विक्रमः ॥ ४३२ ॥
 इति तेषां वचः श्रुत्वा मायावदुरसंभ्रमः ।
 औनीयतामयं वीरो द्रष्टव्योऽयमुवाच तान् ॥ ४३३ ॥
 तमागतं समालोक्य सङ्ग्रामक्षतविग्रहम् ।
 गुणाकरोऽयमित्युज्जुस्ते परिज्ञाय विस्मिताः ॥ ४३४ ॥
 ततः क्षणं समाश्रुतं निबद्धव्रणपट्टकम् ।
 मृगाङ्गदत्तः पप्रच्छ किमेतदिति सानुगः ॥ ४३५ ॥
 इति गुणाकरसमागमः ॥ १० ॥

१. 'दुर्गायागोपहराय' ख. २. 'यन' ख. ३. 'मृगाङ्गदत्तमुमतेस्त्वर्णमेवानिनाय
 त्म' ग. ४. 'सैन्यमाश' ख.

सोऽप्रवीक्षागशपेन तद्वाहं देव मूर्च्छितः ।
 विन्ध्याटव्यां परिश्रान्तः संप्राप्तो विन्ध्यवासिनीम् ॥ ४३६ ॥
 नतो नैरशिरःकेशशङ्कुन्महिपसकुलम् ।
 द्वारालम्बिमहानीरमुण्डमण्डलमण्डितम् ॥ ४३७ ॥
 आक्रीटमिव कालस्य कङ्कशृङ्गस्रगाकुलम् ।
 क्षणं सध्याम्बुदमिव प्रत्यग्ररधिरारणम् ॥ ४३८ ॥
 बद्धै^१ करालमायूग्ररौरैः क्षणराहनैः ।
 उत्पक्ष्मभिः फालराज्या भ्रूमङ्गैरिव मीपणैः ॥ ४३९ ॥
 शुभ्रास्त्रिकुटसंघट्टैः स्पष्टीकृतदिगष्टकम् ।
 मारीचद्वैतमुल्लङ्घ्यरुद्रहार्मेरिवारुतम् ॥ ४४० ॥
 दुर्गायतनमामाद्य सशिरदलेत्तुमुद्यतम् ।
 ददर्श मां तु विमान्तं वृद्धा कापि तपस्विनी ॥ ४४१ ॥
 निराजिता भग्मशुभ्रे कण्ठे स्फटिकमालया ।
 स्वधियेवाश्रिता साक्षात्क्षीणरागरुद्रया ॥ ४४२ ॥
 सा मां निवार्य कृपया श्रुत्वा वीर्यां च मत्कथाम् ।
 उवाच मा शुचः पुत्र धुनं शुभमवाप्स्यसि ॥ ४४३ ॥
 न विद्या न कुलं न श्रौर्धयहीनस्य शोभते ।
 करिणो रणभग्नस्य मद्राङ्ग इव डिण्डिमः ॥ ४४४ ॥
 भ्रमराणामियादग्ने भ्रमतां भवकानने ।
 शरीरिणामवश्यं हि भ्रमत्येव समागमः ॥ ४४५ ॥
 अमृदुदयतुङ्गास्य पञ्चालेषु महीपतिः ।
 यशश्चन्द्रच्छलाद्यस्य यानमेकातपत्रताम् ॥ ४४६ ॥
 तस्मामन्यतीहारः श्रीस्त्वापरिस्वाचलः ।
 कमलाज्ञो मनिमतां धुर्यश्च नयनिश्रुतः ॥ ४४७ ॥
 विनीतमतिरित्यासांत्पुत्रमन्य गुणोचितः ।
 वंशमुक्तामणेर्यस्य कान्तिकान्ता निमृषणम् ॥ ४४८ ॥

स कदाचिन्निजयशःशुभ्रचन्द्रकरोज्ज्वले ।
 शुश्राव विचरन्धन्वी निशीथे रुदितध्वनिम् ॥ ४४९ ॥
 गत्वापश्यत्तस्तले कन्यां कमललोचनाम् ।
 विषणां कुञ्जरक्षोभां नलिनीनामिव श्रियम् ॥ ४५० ॥
 सा दुःखकारणं पृष्ट्वा तेन ग्राह्य सुमध्यमा ।
 दन्तव्रातनवज्योत्स्नारचितानेकचन्द्रिका ॥ ४५१ ॥
 पिता मे गन्धमालीति नागपाशेन वासुकेः ।
 कालजिह्वास्त्रयक्षस्य जिह्वभारिकर्ता गतः ॥ ४५२ ॥
 भ्राता तस्य महावीर्यो विद्युज्जिह्वः प्रियासखः ।
 यक्षो यक्षपतेः शापात्प्रयातश्चक्रवाकताम् ॥ ४५३ ॥
 सेहाञ्ज्वातुः सरोमध्ये स्थितस्य विहगाकृतेः ।
 समीपे वसतिं चक्रे कालजिह्वो मदोत्कटः ॥ ४५४ ॥
 (तत्र स्थितस्य पुष्पाणि मदाशापरिवर्जितः ।
 स मत्पिता गन्धमाली भारवाहा प्रयच्छति) ॥ ४५५ ॥
 तदुःखाद्विरिजा देवी नियतं सेविता मया ।
 यक्षे विनीतमतिना जिते शापान्तमभ्यधात् ॥ ४५६ ॥
 तदर्थं खड्गरत्नं मे वराश्वं च ददौ सती ।
 तत्प्राप्त्यर्थं मयाहृतः करुणाक्रन्दमौनया ॥ ४५७ ॥
 इति श्रुत्वा तदादाय खड्गरत्नं सवाजिकम् ।
 तदादिष्टेन मार्गेण तं यक्षं सोऽज्यद्रणे ॥ ४५८ ॥
 यक्षो विनीतमतिना यद्ययोग्योऽपि रक्षितः ।
 रत्नाङ्गुलीयकं तस्मै ददावीतिनिवर्हणम् ॥ ४५९ ॥
 ततो विमुक्तशापेन दद्यां नागनतां मुताम् ।
 लब्ध्वा विजयवत्याख्यां स ययौ निजमन्दिरम् ॥ ४६० ॥
 प्रातः कृतविवाहोऽथ राज्ञा पित्रा च स स्वयम् ।
 नागवन्द्यासखो भेजे विनीतमतिरस्युकः ॥ ४६१ ॥

अत्रान्तरे नरपतेः सुता विद्यामु कोविदा ।
 दर्पादुदयवत्यास्या विजिम्ये वादिनां गणम् ॥ ४६२ ॥
 जयेद्यो मां विवादेन स मे पाणिं ग्रहीष्यति ।
 इति कृत्वा प्रतिज्ञां सा वादिवृन्दं समाह्वयत् ॥ ४६३ ॥
 ततः पित्रा समादिष्टो विनीतमतिरेत्य ताम् ।
 जित्वा दीर्घेण वादेन प्राप दत्तां महीमुजा ॥ ४६४ ॥
 स तां बालमृगालोललित्वायतलोचनाम् ।
 प्राप्य स्नानरेन्द्रस्य यौवराज्यं समाप्तवान् ॥ ४६५ ॥
 कदाचिदथ तं द्यूतविनोदव्यग्रमानसम् ।
 ययाचे भोजनं विप्रः स च दासं तदादिशत् ॥ ४६६ ॥
 दासोऽपि सिकतापात्रं तस्मै वसाशृतं ददौ ।
 अमन्दनिम्बकटुकदुष्टा हि नृपचेटकाः ॥ ४६७ ॥
 अथ कालेन तं राजा धृत्वा राज्ये सुतापितम् ।
 प्रज्वाल्य शुम्भुं मूर्ध्नि वृद्धो वृद्धां वशां जयौ ॥ ४६८ ॥
 विनीतमतिरासाद्य राज्यं राज्यं प्रजापियः ।
 विदधे धर्मविधिना विबुधाराधनव्रतम् ॥ ४६९ ॥
 अत्रान्तरे समम्यायाद्वादिद्विरदकेश्वरी ।
 रत्नचन्द्रमतिर्नाम मिश्ररक्षणबौद्धधीः ॥ ४७० ॥
 अष्टमिर्दिवसैस्तेन वादिना स जितो नृपः ।
 जग्राह तत्पणे बद्धं सौवद्रं धर्मशासनम् ॥ ४७१ ॥
 स विहारं प्रविदधे हारापुण्यं फलं श्रियः ।
 लोकनाथसमायुक्तं मिश्रसंपन्नताचितम् ॥ ४७२ ॥
 ततः परोपदेशार्थं रत्नचन्द्रमतेर्गिरा ।
 स चक्षुर धरावीक्षो विधिना स्वमसाधनम् ॥ ४७३ ॥
 ज्वलितं सिकताकूटं सोऽप्यदयत्नेतमूमिगः ।
 मुहूर्त्वेत्यभिहितः स्वप्ने विकटैर्दण्डपाणिभिः ॥ ४७४ ॥

दत्तं प्राक्सिकतापात्रं घृतकेलिजुषा त्वया ।
 ब्राह्मणाय क्षुधार्ताय तस्यायं फलसंचयः ॥ ४७५ ॥
 दशकोटीः सुवर्णस्य दत्त्वाभूद्रुतकिंस्त्रिषः ।
 इति श्रुत्वा प्रबुद्धस्तु गुरवे स निवेदयत् ॥ ४७६ ॥
 तद्वाक्यात्काञ्चनं दत्त्वा पुनः स्वप्नविधिं व्यधात् ।
 भूयस्तदेव च स्वप्ने ददर्शोत्कम्पिताशयः ॥ ४७७ ॥
 हृते विप्रस्य हेमांशे चौरैस्तदफलं गतम् ।
 दशकोटीः पुनर्दत्त्वा हेम्नोऽभूद्रुतकल्मषः ॥ ४७८ ॥
 ततो बुद्धकथाजातं मिश्रुः स्वैरं तमभ्यधात् ।
 नरेन्द्र दानं वीराणामुत्साहः सिद्धये सताम् ॥ ४७९ ॥
 पुरा वराहरूपस्यो निधिसत्त्वः कृपानिधिः ।
 धर्माय सिंहरूपाय स्वं वपुर्मोजनं ददौ ॥ ४८० ॥
 हेलोचालानिलालोलजलकल्लोलचञ्चलैः ।
 प्राणैः पुण्यवतामेव प्रणयिप्राणपूरणम् ॥ ४८१ ॥
 इत्यादि बुद्धसंबद्धां कथामाकर्ष्य भूपतिः ।
 स वभूवार्थिसार्थानां जङ्गमः कल्पपादपः ॥ ४८२ ॥
 अथाम्येत्य ययाचे तं विप्रः कोऽप्यङ्गुलीयकम् ।
 रक्षामि राक्षसाविष्टं पुत्रमित्यनिवारितः ॥ ४८३ ॥
 रक्षारत्नाङ्गुलीयं तस्माद्ददौ तस्मै स सत्त्वधीः ।
 पूर्णरत्नार्थिनां सैत्यं सन्ति चिन्तामणिश्रियः ॥ ४८४ ॥
 रौजपुत्रस्ततोऽभ्येत्य विनीतमतिमभ्यधात् ।
 सगोत्रशात्रवाञ्छेतुं स्वप्नं साधयामयाचत ॥ ४८५ ॥
 तदपेनाथ स्वप्नेन राज्यं शत्रोर्जहार सः ।
 हृत्तराज्यः परोऽभ्येत्य विनीतमतिमभ्यधात् ॥ ४८६ ॥

१. 'निःश्रित्याप्यसि' एव. २. 'बोधिमत्त्वः' एव. ३. 'बो' ख. ४. 'नाम नृणां चिन्तामणिश्च यः' ख. ५. 'तमिन्दुकल्लक्षामिषः' एव.

राजन्पुष्पकृपाणेन हृता श्री शत्रुणा गम ।
 श्रुत्वेति करुणासिन्धुस्तस्यै राज्य निज ददौ ॥ ४८७ ॥
 त्यक्तराज्य प्रविश्याथ सभार्यो विकटाटवीम् ।
 स तप पुण्यपीयूषैश्चक्रे नन्दनसनिमम् ॥ ४८८ ॥
 सोमश्रमामिध तत्र पुरुष मर्तुमुद्यतम् ।
 निवार्य दुःखात्सोऽपृच्छ स च पृष्टस्तमभ्यधात् ॥ ४८९ ॥
 पिता मे नागशूराख्यो जाते मयि पुराशृणोत् ।
 चौरस्ते तनयो भारी न चिरादिति योगिन ॥ ४९० ॥
 ततो विद्याविद चक्रे स मा यत्नेन वत्सल ।
 विद्या ह्यहन्निमो दीप संमोहतिमिरे नृणाम् ॥ ४९१ ॥
 ततोऽहमभव चौरस्तद्विषा पतितो वशे ।
 ललाटे कर्मटे केन लिखित को निवर्तयेत् ॥ ४९२ ॥
 ज्ञातकालेन राज्ञा हि निबद्धोऽहं च तत्क्षणात् ।
 दैवाद्विभ्रष्टनागेन्द्रकैल्लोलेन विमोचित ॥ ४९३ ॥
 गजकोलाहलव्यग्र तीर्णोऽहं जनमण्डले ।
 अर्थापमेत्य पितरो मच्छ्लोकात्यक्तजीवितौ ॥ ४९४ ॥
 ततोऽहमपि तद्दुःखात्प्राप्तो मर्तुमिदं वनम् ।
 दृष्टं कारुण्यसंपूर्णधिया देव्या वनधिया ॥ ४९५ ॥
 विनीतमतिसंस्थानपुण्येऽसिन्मुत्र कानने ।
 क्षीण ते पातक गच्छ तस्मात्पारमिता शृणु ॥ ४९६ ॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा मया दृष्टो भवान्पुर ।
 भगवन्ब्रूहि मे पुण्या सम्यक्पारमिता कथाम् ॥ ४९७ ॥
 इत्याकर्ण्य कृपासिन्धुर्विनीतमतिराश्रमम् ।
 नीत्वा तमवदज्ज्ञानलोचनालोकिताखिल ॥ ४९८ ॥
 विचार एव जन्तूनां सदा सन्मार्गदर्शक ।
 स च स्फुरति तत्त्वेन नहि माया कृतात्मनाम् ॥ ४९९ ॥

पाञ्चालेष्वमवद्विप्रो देवभूतिरिति श्रुतः ।
 भोगदत्ताभिषानस्य भार्यामूद्धर्मचारिणी ॥ ५०० ॥
 पत्न्यौ स्नानाय निर्याते शाकवचननिर्गता ।
 सापश्यत्स्वरमारामे रजकेन निवेशितम् ॥ ५०१ ॥
 स तया चारितो यथा भीतः श्वभ्र इवापतत् ।
 पततः स्फुटिता तस्य सशब्दा जानुनालिका ॥ ५०२ ॥
 रंजकोऽपि तमालोक्य स्वरं खञ्जीकृतं तया ।
 तां मुष्टिभिर्जघानाशु लघुदैश्च धनेन सः ॥ ५०३ ॥
 च्युतो गान्धमहारेण गर्भस्तस्याः सशोणितः ।
 द्विजोऽप्यागत्य तद्दृष्ट्वा नगराधिपतिं ययौ ॥ ५०४ ॥
 जल्पं पुराधिनायोऽसौ श्रुत्वा रजकविप्रयोः ।
 न्यायं विचार्य मुचिरं ततो बल्लुं प्रचक्रमे ॥ ५०५ ॥
 उभयोरयमन्यायो ब्राह्मण्या रजकस्य च ।
 खरो विद्वैमितो यच्च गर्भो यत्पातितोऽमुना ॥ ५०६ ॥
 यत्नमारं बहत्पेयं स्वरस्यास्थ्यावधिं द्विजः ।
 आपत्तां रजको गर्भं ब्राह्मण्यां यत्नमास्थितः ॥ ५०७ ॥
 इति न्यायविदो वाक्यं श्रुत्वा पुरपतेर्द्विजः ।
 समार्यो विपपानेन बभूव सहसा व्यसुः ॥ ५०८ ॥
 स च राज्ञः पुरपतेर्निगृहीतो विनष्टधीः ।
 इत्येवं दुर्विनीतानां श्वभ्रपातः समे पथि ॥ ५०९ ॥
 तस्माद्विचारमास्ताय शृणु पारमितां कथाम् ।
 यया भवत्यमलधीर्न्यस्तससारवासनः ॥ ५१० ॥
 मलयप्रभनामामूत्कुरुक्षेत्रे महीपतिः ।
 श्रीमानिन्दुप्रभो नाम त्यागरत्नाकरः सुतः ॥ ५११ ॥

१. 'पायवोऽपि' ख. २. 'बलापुत्राधिनायो' ख. ३. 'अनया प्राणितो बद्रभोऽस्याः
 पातिनोऽमुना' ख. ४. 'पा सारण्यो भवेद्विजः' ख. ५. 'वासनां व नु यानं समे
 पथि' ख. ६. 'तादृशाम्' ख. ७. 'व्युत्पन्नं' ख. ८. 'पुरा मलयपनामाभू' ख. ९. 'श्व-
 भ्रपातः समे पथि' ख. १०. 'व' ख.

स कदाचिज्जनपदं दुर्मिक्षेण निपीडितम् ।
 संतार्य त्यागसत्त्वाभ्यां प्रतैः शक्रमतोपयत् ॥ ५१२ ॥
 तद्वरात्कल्पवृक्षोऽमृतसर्वाशापूरणस्तदा ।
 तैत्प्रसादादिवं सर्वे कुरुक्षेत्रनिवासिनः ॥ ५१३ ॥
 सशरीरा ययुः सत्यं सिद्धये स हि पादपः ।
 इत्येवं दानशीलस्य चिरं कल्पतरुस्थितेः ।
 तस्य कीर्तिः पताकेव विभात्येषा त्रिमार्गगा ॥ ५१४ ॥
 तौपपीयूषजलदस्तिमिरध्वंसमास्करः ।
 दानं हि नाम संसारे निदानं शुभसंपदाम् ॥ ५१५ ॥
 इति दानपारमिता ॥ ११ ॥

विन्ध्ये शुक्रसहस्रान्तः शुक्रो हेमप्रभोऽभवत् ।
 तस्य चारुमतिर्नाम प्रतीहारोऽभवच्छुक्रः ॥ ५१६ ॥
 कदाचित्तस्य निहता जालकैर्वल्लभा शुकी ।
 स तद्वियोगसंतप्तः प्रतीहारः क्रुशोऽभवत् ॥ ५१७ ॥
 तं वीक्ष्य विरहोन्मत्तं शीलवान्शुक्रभूपतिः ।
 तस्यामलं सरो गत्वा प्रतिविम्बमदर्शयत् ॥ ५१८ ॥
 आत्मनः प्रतिविम्बं च तस्य चान्तर्जले स्थितम् ।
 निर्दिश्योवाच तं पश्य प्रियामन्येन संगताम् ॥ ५१९ ॥
 एता मुहूर्तशालिन्यः क्रूराः संध्या इव स्त्रियः ।
 दर्शयन्ति तमः पश्चात्प्रलयावर्तभीषणम् ॥ ५२० ॥
 अहो नु सरलः पन्थाः कोऽप्ययं जडचेतसाम् ।
 यद्गताननुगच्छन्ति मत्स्यपुच्छग्रहाः स्त्रियः ॥ ५२१ ॥
 योषिद्विर्विप्रलब्धानां शोचतां जनसंसदि ।
 शीलं जैनमयेनेव दूरं यात्ययतात्मनाम् ॥ ५२२ ॥

सर्वे कङ्कणकेयूरकुण्डलप्रतिमा गुणाः ।

शीलं त्वक्त्रिमालोके लावण्यमिव मूषणम् ॥ ५२३ ॥

इत्येवं शुकराजेन स शीले विनिवेशितः ।

बभूव मनसा ध्यात्वा त्यक्तमन्मथविक्रियः ॥ ५२४ ॥

इति शीलपारमिता ॥ १२ ॥

अमृच्छुमनयो नाम मुनिः केदारकन्दरे ।

चौरास्तदाश्रमोपान्ते जालमन्त हतं धनम् ॥ ५२५ ॥

दाम्भिकोऽयं वृथा मौनी चौराणामपि चौर्यकृत् ।

लब्ध्वेति चक्रुस्ते कोपात्तं हीनचरणेक्षणम् ॥ ५२६ ॥

दस्युभिर्निगृहीतं तं नृपतिः शेखरद्युतिः ।

शिष्यः प्राप्तः प्रणामाय ददर्श पतितं क्षितौ ॥ ५२७ ॥

चारचक्रुस्ततश्चौरांस्तानानैव्य स मूपतिः ।

दिदेश तद्वपं क्रुद्धस्तथामन्यत नो मुनिः ॥ ५२८ ॥

यत्तात्मना ते च तेन रक्षिता राजशासनात् ।

चौरा ययुः स च प्राप मुनिः सिद्धिमनुचैभाम् ॥ ५२९ ॥

पुण्यतीर्थमनायासं क्रतुरद्रव्यदम्बरः ।

अशोषणं शरीरस्य क्षमा नाम परं तमः ॥ ५३० ॥

क्षेत्रं त एव पुण्यस्य भाजनं यशसां च ते ।

प्रहृष्टा हृदये येषां क्षान्तिवती महाफला ॥ ५३१ ॥

इति क्षान्तिपारमिता ॥ १३ ॥

शिशुर्मालाधरो नाम ब्राह्मणो दक्षिणापथे ।

ददर्श नममा यान्तं जवालिङ्गकुमारकम् ॥ ५३२ ॥

तं दृष्ट्वा ताल्यज्ञाभ्यां कृवात्मानं परिप्लुतम् ।

आक्रान्ते गमनाभ्यासं व्यपादुन्साहनिर्भरः ॥ ५३३ ॥

१. 'शुभं' ख. २. 'प्रागन्धमादाव' ख. ३. 'साच गहीपति.' ख. ४. 'यत्राशमा-
वता तेन' ख. ५. 'मनः' ख.

ततो यदृच्छया यातो भगवान्बरदो मुहः ।

तं दृष्ट्वा बालकूपया चकार व्योमगामिनम् ॥ ५३४ ॥

इति सोत्साहधैर्याणां स्वयं सिद्धिः प्रजायते ।

उत्साहो धर्मवीर्याणां मूलं सत्त्वमहातरोः ॥ ५३५ ॥

इति धैर्यपारमिता ॥ १४ ॥

अभून्मलयमालीति वणिक्कर्णाटदेशजः ।

सुतां कदाचित्तोऽपश्यदिन्दुकेसरभूपतेः ॥ ५३६ ॥

अमन्दानन्दनिष्पन्दसुन्दरेन्दुनिभाननाम् ।

स तामिन्दुयशां नाम दृष्ट्वाभूत्स्मरणीडितः ॥ ५३७ ॥

दुर्लभेयमिति ज्ञात्वा चित्रकारेण मुन्दरीम् ।

कृत्वा तु फलके तुल्यां स तां नित्यमपूजयत् ॥ ५३८ ॥

स तद्भयानपरः सर्ववृत्तिनिर्वाणनिश्चलः ।

अवाप्तः कामपि भुवं तस्थौ रागपरायणः ॥ ५३९ ॥

तां ततो भावनाक्रान्तो वासनालिखितां पुरः ।

अपश्यत्यरिसर्पन्तीं लतां वाताकुलामिव ॥ ५४० ॥

चन्द्रोदये नवोद्याने तां निर्धाय जगाम सः ।

तदर्थं पुष्पमाहर्तुं कमलोत्तंसभूषणम् ॥ ५४१ ॥

ततो यदृच्छया यातः संगतो विनयद्युतिः ।

अदृश्यो वीक्ष्य तं मूढं सर्पं चित्रपटेऽलिखत् ॥ ५४२ ॥

स च पुष्पाण्यधादाय दृष्ट्वा सर्पं प्रियान्तिके ।

सत्संयुक्तां प्रदध्यौ तां पुरो लीलाभिसारिणीम् ॥ ५४३ ॥

निहतामय सर्पेण पतितावयवां भुवि ।

विलोक्य निश्चलन्यानः स शुशोच मुलोचनाम् ॥ ५४४ ॥

हा प्रिये हा मनःसिन्धुचन्द्रिके क्व गतासि मे ।

विलप्येति स वृक्षाम्रादुत्सर्ज निजां तनुम् ॥ ५४५ ॥

रक्षितो बोधिसत्त्वेन तेनैव च विबोधित ।
 असत्यभावनामात्र मूढोऽस्मीति विवेद स ॥ ५४६ ॥
 यदेवानन्यमनसा ध्यान मुग्धाननाम्बुजे ।
 तत्त्वधास्ति यदि स्यात्तु भवेऽस्मिन्क पुनर्भवेत् ॥ ५४७ ॥
 तत स शासन पुण्यमर्हता दर्शने स्थित ।
 विरतेच्छाभयद्वेषो भेजे ससारशातनम् ॥ ५४८ ॥
 स कदाचिन्नरपतेस्तामेवेन्दुयश सुताम् ।
 दृष्ट्वा विरक्तस्ता माया स्मृत्वा साश्रुमुखोऽभवत् ॥ ५४९ ॥
 तत पृष्टो नरेन्द्रेण तस्मै सर्वं निवेद्य स ।
 जगाम कानन ध्याननिवृत्त सह मूसुजा ॥ ५५० ॥
 इत्येव ध्यानयोगेन भावित दृश्यते पुर ।
 सर्वेन्द्रियसमापत्तिलीनाना ज्ञानसचयै ॥ ५५१ ॥
 इति ध्यानपारमिता ॥ १५ ॥

सिंहलद्वीपवसतिश्चौरोऽभूत्सिंहविक्रम ।
 स कालेन जरा प्राप्य पपात नरक निजम् ॥ ५५२ ॥
 न शर्त्रेविष्णुशक्राणा मद्भक्तिर्गणनास्पदम् ।
 विचिन्त्येति सदा धीमाश्चित्रगुप्तमपूजयत् ॥ ५५३ ॥
 हेलकमलसचारचीत्कारकृतलेखया ।
 जगन्ति यैर्निवर्त्यन्ते कायस्यास्त्राजमेघ क ॥ ५५४ ॥
 विशाय दृढभक्त त मुनर्शतु तदाशयम् ।
 तद्गृह ब्राह्मणो मूढा चित्रगुप्तस्ततोऽविशत् ॥ ५५५ ॥
 स तत्र भोजितस्तेन प्रीत स्वस्त्ययनोन्मुख ।
 प्रार्थितो विप्रतुष्टो मे चित्रगुप्तो भवत्विति ॥ ५५६ ॥
 तन परीक्ष्य बहुशो भार्यादानेऽप्यविक्रियम् ।
 तमायुक्काममवदचित्रगुप्त स्वरूपपट्ट ॥ ५५७ ॥
 तुष्टोऽहं तव कस्याण क्षीणमायुस्तु दुर्लभम् ।
 तथापि युक्तिगाधित्य करिष्यामि दित तव ॥ ५५८ ॥

पारे समुद्रक्षेत्रस्य राजर्षेः शिवशासनात् ।
तपोवनतरङ्गिण्याः पारे मृत्युर्न बाधते ॥ ५५९ ॥
तदेहि वत्स तं देशमित्युक्त्वा तं निनाय सः ।
तत्र स्थितोऽसौ कालस्य दुर्लङ्घ्यो मनसाप्यमूत् ॥ ५६० ॥
याते वर्षसहस्रेऽथ कृतान्तो यत्नमास्थितः ।
विधाय मायाललनामाचकर्ष तमुत्सुकम् ॥ ५६१ ॥
तरङ्गिण्याः परं पारं प्राप्तं तं काममोहितम् ।
आकृष्य कालः पादोन निनाय यममन्दिरम् ॥ ५६२ ॥
पृष्टोऽयद्रच्चित्रगुप्तो घर्मराजेन तद्गतिम् ।
भक्तो ममायमित्यन्तः कलयंहेखिनीकरः ॥ ५६३ ॥
नरके नास्ति संख्यास्य दिनमेकं द्विजार्चनात् ।
खर्गभोगस्तु तत्पूर्वं स्वर्गं यात्वेष दुर्मतिः ॥ ५६४ ॥
इति तद्वचसा नाकं प्रयातस्तेन शिक्षितः ।
तत्र लिङ्गार्चनपरस्तस्यौ क्षपितकल्मषः ॥ ५६५ ॥
दग्धे शिवार्चनात्तस्य पातके त्रिदिवस्थितेः ।
परिज्ञानसमाधानादभवो विभवोऽभवत् ॥ ५६६ ॥
इति प्रज्ञायता तेन चारेण कुशलस्थितिः ।
प्राप्ता प्रज्ञामृते पुंसां बन्धुरन्यो न विद्यते ॥ ५६७ ॥

इति प्रज्ञापारमिता ॥ १६ ॥

इति पारमिताः श्रुत्वा विनीतमतिना स्वयम् ।
कथिताः सोमशूरोऽभून्मुनिस्तस्मिंस्तपोवने ॥ ५६८ ॥
अत्रान्तरे समग्यायाद्विजितो गूमिपात्मजः ।
तेनेन्दुफलशाल्येन विनीतमतिकाननम् ॥ ५६९ ॥
स तत्र क्षुत्परिथान्तः सामात्यो निःसहोऽभवत् ।
वनं च निष्फलच्छायं तद्भूदिन्द्रमायया ॥ ५७० ॥

ततः श्वश्रे निपतितं कृत्वात्मानं महामृगम् ।
 विनीतमतिरर्थिभ्यस्तेभ्यो भोजनतामसात् ॥ ५७१ ॥
 राजपुत्रेण भुक्ते वै भृगे तस्मिन्नशङ्कितम् ।
 घर्हि निपेततुस्तुल्यं विनीतमतिवल्लभे ॥ ५७२ ॥
 तज्ज्ञात्वा राजपुत्रोऽपि सामात्योऽग्निं समाविशत् ।
 सोमशरंस्तु योगेन तनुमुत्सृष्टमुद्ययौ ॥ ५७३ ॥
 ततो मायाकृतं सर्वमित्युक्त्वा पाकशासनः ।
 पीयूषेणास्त्रिशेषान्स्तान्समस्तान्समजीवयत् ॥ ५७४ ॥
 विनीतमतिरासाद्य जीवं चोषमथो ययौ ।
 दिव्यं तपोवनं श्रीमान्सर्वसत्त्वहितोद्यतः ॥ ५७५ ॥
 इत्येवं संगताः पूर्वं पैश्वतामपि ते गताः ।
 किं चित्रं भविता व्यक्तं जीवतां नः समागमः ॥ ५७६ ॥
 इति विनीतमत्याख्यायिका ॥ १७ ॥
 जैरत्पुलिन्दतापस्याः श्रुत्वेत्यहमवाप्तधीः ।
 नागनापकृतां मूच्छां शनैः किञ्चिदिवात्यजम् ॥ ५७७ ॥
 ततो दुर्गां प्रणम्याहं प्रस्थितो दक्षिणां दिशम् ।
 संप्राप्तः शर्वररैः समरे संप्रहारिभिः ॥ ५७८ ॥
 क्षणेन निहतानेकपुलिन्दक्षतविग्रहः ।
 त्वत्पादमूलमानीतसैरहं सुकृतैरिव ॥ ५७९ ॥
 भृगाङ्कदत्तः श्रुत्वेति हृष्टः सचिवसंगमात् ।
 गन्तुमुज्जयिनीं चक्रे प्रस्थानाभिमुखं मनः ॥ ५८० ॥
 त्वया दुर्गपि शान्तो मे दातव्योऽस्मिन्समीहिते ।
 चण्डालराजः साहाय्ये सगामद्वयेति तत्पुरम् ॥ ५८१ ॥
 मायावटुं सहामात्यो यथावुज्जयिनीं प्रति ।
 षतुर्भिः सचिवैः सार्धं स शशाङ्कवतीं सरत् ॥ ५८२ ॥

(विन्ध्याटवीमथासाद्य दीर्घां चेणीमिवावनेः ।
 तमालतालहिन्तालविशालसरलाकुलम्) ॥ ५८३ ॥
 पथि सुप्तोत्थिताः प्रातर्ददृशुस्ते पटावृतम् ।
 शयानमेकं पथिकं दीर्घाध्वश्रमपीडितम् ॥ ५८४ ॥
 ईषदंशुकमुद्धात्य तं विचित्रकथं ततः ।
 अपदयन्नमृतास्वादतत्समागमनिर्वृताः ॥ ५८५ ॥
 निवेद्य निजवृत्तान्तं स पृष्टस्तैरुवाच सान् ।
 अप्यहं नागशापेन जवात्कापि निपातितः ॥ ५८६ ॥
 ततोऽपश्यं पुरवरे मणिकाञ्चनमन्दिरे ।
 बधूम्यां सहितं दिव्यं पुरुषं रत्नमूपितम् ॥ ५८७ ॥
 दुर्लभार्थिजने तत्र तेनाहं पूजितो भृशम् ।
 मद्वृत्तान्तं समाकर्ण्य सान्त्वितः स्नानभोजनैः ॥ ५८८ ॥
 तद्वधूवचसा ज्ञात्वा तमहं यक्षनायकम् ।
 अपृच्छं शास्त्रनयनो वियोगव्याधिभेषजम् ॥ ५८९ ॥
 स मामुवाच वातूलनूलावर्तनिवर्तिनाम् ।
 नृणां भवे भवन्त्येव वैत्स दिष्टा समागमाः ॥ ५९० ॥
 अयमादेहपर्यन्तं कोऽपि व्याधिरभेषजः ।
 वियोगसारे संसारे प्रेम प्रियजनेषु यत् ॥ ५९१ ॥
 असिन्वाराङ्गनामङ्गिरिङ्गञ्जमङ्गमङ्गुरे ।
 कः संयोगवियोगाभ्यां नोन्मज्जति निमज्जति ॥ ५९२ ॥
 यक्षेणापि मया पूर्वं वत्स मानुषजन्मनि ।
 सुखदुःखपरावृत्तिरनुमृता मुदुःसहा ॥ ५९३ ॥
 पवित्रधननामामृत्तिगर्तविषये द्विजः ।
 स निर्धनो वनं गत्वा भेजे मध्रेण यक्षिणीम् ॥ ५९४ ॥

स संगतो मृगदृशा सौदामिन्याख्यया तथा ।
 लेभे श्रियं सुविपुलां रतिं च रतिलालसः ॥ ५९५ ॥
 स तां कदाचिदवदस्वत्पसादान्मम प्रिये ।
 संभोगसुभगः कोऽपि हर्षः प्रीणाति मानसम् ॥ ५९६ ॥
 संपूर्णसर्वसंकल्पं त्वत्तः पुत्रं सुलोचने ।
 प्राप्तुमिच्छामि पुण्यानां संतोषैकफलं फलम् ॥ ५९७ ॥
 इति भर्तुर्वचः श्रुत्वा सावदन्मञ्जुवादिनी ।
 रागं भूर्तमिवाधाय विम्बाधररुचा पुरः ॥ ५९८ ॥
 अहं पृथूदराख्यस्य तमालवनवासिनः ।
 सुता सौदामिनी नाम यक्षेन्द्रस्य धनश्रियः ॥ ५९९ ॥
 अट्टहासामिधानस्त्वं कान्तो यक्षकुमारकः ।
 घृतः पुरा भया हर्षनिर्भरः पितुराज्ञया ॥ ६०० ॥
 अत्रान्तरे धनपतेर्विधाय सदृशं वपुः ।
 मात्रा दीप्तशिक्षाख्येन नलकूबररूपिणा ॥ ६०१ ॥
 लीलया रममाणं त्वां सोऽपश्यन्नलकूबरः ।
 स पितुः सदृशं कोपात्त्वां शशाप नभःस्थितः ॥ ६०२ ॥
 मर्त्यो भविष्यसीत्याशु प्रार्थितश्चाभ्यधात्पुनः ।
 दुर्घृष्टो मम रूपेण दर्पमूढो बलापरः ॥ ६०३ ॥
 सौदामिन्यां यद्वा त्वं त्वं आतरं जनयिष्यसि ।
 गर्भदीप्तशिक्षामिच्छ्यं त्वं रूपं लप्स्यसे तदा ॥ ६०४ ॥
 इति तद्वचसा क्षिप्रं त्वमिमां तनुमास्थितः ।
 अहं चैतत्सखीवाक्याज्ज्ञात्वा त्वं शरणागता ॥ ६०५ ॥
 भविष्यत्यचिरादेव पुत्रः शापक्षयाय ते ।
 इत्युक्त्वा दीर्घकालेन प्रौढा मुत्तमसूत सा ॥ ६०६ ॥

१. 'यं राक्षसं पलम्' इति. २. 'विषर्जजः' पा. ३. 'या' का. ४. 'तत्त्वं' पा.
 ५. 'त्वां मे दर्पं गता' का.

जाते सुते क्षीणशायः स संप्राप्तोऽष्टहासताम् ।
 गृहं विप्रगृहे त्यक्त्वा पुत्रं मार्यासखो ययौ ॥ ६०७ ॥
 हेमरत्नावलीपूर्णं विन्यस्तं तेन दारकम् ।
 सुसोत्थितो द्विजः प्राप समार्यो देवदर्शनः ॥ ६०८ ॥
 बह्वेर्वराद्धर्मवता तेन दारिद्र्यदुःखिना ।
 धनेन सह संप्राप्तः पुत्रः श्रीदर्शनाभिषः ॥ ६०९ ॥
 कालेन सर्वविद्याभिः कलामिध्व कृतास्पदः ।
 शलालयुद्धकुशलो बभूव कृतिनां वरः ॥ ६१० ॥
 कदाचिदथ जाह्नव्या यमुनाशयले जले ।
 त्यक्त्वा तनुं दिवं याते स्वंपुण्यैर्देवदर्शने ॥ ६११ ॥
 दुःखाद्वहिं प्रविष्टायां ब्राह्मण्यां यन्बुवर्जितः ।
 श्रीदर्शनो घृतदोषादमूत्कालेन निर्धनः ॥ ६१२ ॥
 स पांशुधूसराकारैः शून्यस्वण्डिलञ्चायिभिः ।
 बाहूपधनैर्दिग्वन्मैर्घृतकारैः समीकृतः ॥ ६१३ ॥
 त्यक्त्वाहारो निरालम्बो भूकः श्रीदर्शनोऽभवत् ।
 अनिशं निश्चलध्यानप्राप्तो योगिदशामिव ॥ ६१४ ॥
 मर्तुकामं तमालोक्य सखा मुखरकामिषः ।
 उवाच यत धीरोऽपि विद्वानपि विमुद्यति ॥ ६१५ ॥
 अहो विवेकिनः कोऽपि तवापि हृदयभ्रमः ।
 यत्त्वमर्धरजो लुब्धः शरीरं त्यक्तुमुद्यतः ॥ ६१६ ॥
 अयमेव सद्रोषायो भाविफलयाणसंपदाम् ।
 त्रिवर्गसाधनं देहं रक्षेदाप्लु यो बुधः ॥ ६१७ ॥
 अनेनैव शरीरेण सखे किं नाम नाप्यते ।
 सर्वार्थसिद्धिरलानां क्रयविक्रयमूरियम् ॥ ६१८ ॥
 वितस्तेत्यस्ति तटिनी मोक्षश्रीहारवह्वरी ।
 रिक्तचरद्भ्रमद्भ्रैस्तर्जयन्तीव कल्पपम् ॥ ६१९ ॥

तयास्ति लोललहरीक्षाल्यमानरजोव्रजम् ।
 काश्मीरमण्डलं नाम मण्डलं सर्वसंपदाम् ॥ ६२० ॥
 यस्मिन्नारीकपोलेषु कान्तिकन्दलितोर्मिषु ।
 बिम्बागतः शशी घटे सुधागर्भसुखं पुनः ॥ ६२१ ॥
 तीक्ष्णं तपति नोष्णांशुः करैः कुसुमकोमलैः ।
 दंष्ट्रेषु यत्र लाघण्यनवनीतेन निर्मिता ॥ ६२२ ॥
 सूक्तापितारणत्तारहारनूपुरमेखलः ।
 नृत्यतीव कवीन्द्राणां यत्र वक्त्रे सरस्वती ॥ ६२३ ॥
 तत्र मूनन्दनामामूढूपतिर्मूषणं भुवः ।
 कर्पूरगौरो यद्वाहुरधाच्छेष इव क्षितिम् ॥ ६२४ ॥
 कदाचिच्छर्वरीशेषे स द्वादश्यामुपोषितः ।
 स्वप्ने नयनपीयूषां ददृशास्तुरकन्यकाम् ॥ ६२५ ॥
 प्रबुद्धस्तन्मयध्यानः सोऽभवन्मन्मथातुरः ।
 संसारे संसृतिः स्वप्नो रागस्तेनापि रागिणाम् ॥ ६२६ ॥
 सहसा निर्जिताशेषभुवनेन मनोमुवा ।
 स नीतः कामपि दशां शोकदो मन्त्रिणामभूत् ॥ ६२७ ॥
 आत्रेऽथ वसुनन्दाय राज्यं सचिवसंमते ।
 दत्त्वा ययौ स तपसे विशोकां शोकनाशिनीम् ॥ ६२८ ॥
 क्रमसाराभिधं यत्र पुण्यं विष्णुपदं सरः ।
 ब्रुहिणोपेन्द्ररुद्राणां यत्र शैल्यत्यना स्थितिः ॥ ६२९ ॥
 यत्र विष्णोर्वलिजये ताराकिङ्किणिकाकुलः ।
 पादो गङ्गादुकूलाङ्गः प्रयातः केतुदण्डताम् ॥ ६३० ॥
 स तत्र तीव्रतपसे निनाय नियतः समाः ।
 एकादशीं दशमन्तःसायिनीं भान्मयीं दधत् ॥ ६३१ ॥
 कदाचिदयं सं देशमायातः शंक्रोपमः ।
 तपस्वी भूभुजा तेन पृष्टः प्राह निर्जां कथाम् ॥ ६३२ ॥

यजुषो दाक्षिणात्यस्य तनयोऽहं द्विजन्मनः ।
 विभूतिवसुराचार्यपदं प्राप्तः शिवागमैः ॥ ६३३ ॥
 श्रीपर्वते तपोयोगाद्दृष्टः साक्षादुमापतिः ।
 मया प्रणम्य पृष्टश्च फलसिद्धिमुवाच सः ॥ ६३४ ॥
 बाणयुद्धे पुरा वृत्ते प्राप्ता द्वारवतीमुखा ।
 अनिरुद्धेन सहिता ललनोद्यानभूमिषु ॥ ६३५ ॥
 उद्यानरसिकं ज्ञात्वा बल्लभं मत्तकामिनी ।
 पातालोलम्बनं सा तं निनाय विधिनिर्मितम् ॥ ६३६ ॥
 नीतं तथा सुतं ज्ञात्वा प्रद्युम्नः पुत्रवत्सलः ।
 पप्रच्छ कृष्णं भगवन्कानिरुद्ध इति स्मयन् ॥ ६३७ ॥
 कैटभारिस्तम्बदत्तातालोलम्बने स्थितः ।
 अनिरुद्धः समं बाणपुत्र्या मन्मथलालसः ॥ ६३८ ॥
 पुत्र पातालमार्गोऽस्ति काश्मीरेषु विलम्बयम् ।
 एकं वितस्तासलिले प्रकटं भुवि चापरम् ॥ ६३९ ॥
 तत्राशु प्रकटद्वारि रक्षा काचिद्विधीयताम् ।
 केलिसक्तोऽनिरुद्धोऽसावसुराश्च बहुच्छलाः ॥ ६४० ॥
 तैतः शैरेर्वचः श्रुत्वा प्रद्युम्नः प्राप्य तं विलम् ।
 मिधाय गिरिशृङ्गेण तुष्टाव व्यक्षबलमाम् ॥ ६४१ ॥
 जयति प्रणतामर्त्यैर्मौलिनीलमणित्विषा ।
 भृङ्गपङ्क्तयेव कलितं देव्याः पादाम्बुजद्वयम् ॥ ६४२ ॥
 जयत्यहर्निशं स्मेरा गौरी चिद्योमचन्द्रिका ।
 विबोध कैरववनप्रकाशानन्दमुन्दरी ॥ ६४३ ॥
 पौद्रपातो विजयतां देव्यास्ताण्डवदम्बरे ।
 यस्य नूपुरपर्यन्ते शोणरत्नायते रविः ॥ ६४४ ॥
 मृढान्याः शूलदण्डोऽसौ जयत्यान्दोलितो मुहुः ।
 भाति यः सर्वदेत्यासृक्पानशीघ्रः स्खलन्निव ॥ ६४५ ॥

अट्टहासः स जयति काल्याः शुभ्रांशुमण्डलैः ।
 येन भैरवतां नीतं मुण्डस्वर्णैरिवाम्बरम् ॥ ६४६ ॥
 स्वहो जयति रुद्राण्या यस्य विम्वालमना रणे ।
 छेत्तुमन्तः प्रविष्टानि वक्त्राणीव सुरद्विषाम् ॥ ६४७ ॥
 जयत्युदञ्चद्रक्षाण्डं लड्डुमरुकोद्वटम् ।
 कीडाकलितकङ्कालकरालं भैरवीनपुः ॥ ६४८ ॥
 दुर्गा जयति यत्कोपे दृष्टः स महिषासुरः ।
 तन्मुखेन्दुकरस्रष्टृस्त्रमःकूट इवामरैः ॥ ६४९ ॥
 जयत्यतः कमलिनीकन्दकुण्डलिनी मुहुः ।
 नादभ्रमरसंयुक्ता मधुविन्दुविराजिता ॥ ६५० ॥
 जयति ब्रह्मकङ्कालमालाकलितशेखरा ।
 रुद्रस्यानेककल्पान्तगणनेव मनःप्रिया ॥ ६५१ ॥
 भगवत्याः स्तोत्रम् ॥ १८ ॥
 इति पुत्रस्य रक्षायै प्रयुक्तेन स्तुता सती ।
 चक्रार सारिकारूपा सहसा तस्यै सन्निधिम् ॥ ६५२ ॥
 अद्यापि दृश्यते देवी शिलरूपेण सारिका ।
 मयुजशिखरे सिद्धैः सेव्यमाना सहानुगा ॥ ६५३ ॥
 देवीं प्रणम्य प्रबुधे याते द्वारवतीं ततः ।
 कालेन मुनिशापाच्च क्षयं यातेषु पृष्णिषु ॥ ६५४ ॥
 सहसा दैत्यकान्ताभिरया पातालमन्दिरे ।
 स्थितेत्युक्त्वा त्रिनयनः सिद्धिं मे विपुलां ददौ ॥ ६५५ ॥
 पद्मभिः सहितः शिष्यैः प्रवेष्टुमहमुद्यतः ।
 विलं तदेहि राजेन्द्र मया ज्ञातं त्वदीप्सितम् ॥ ६५६ ॥
 उक्त्वेति गूढन्दसत्त्वो गत्वा काश्मीरमण्डलम् ।
 अवाप्य सारिकाकूर्तं संपूज्य च यथाविधि ॥ ६५७ ॥

१. 'वर्ग' क. २. 'द' क. ३. 'म' क. ४. 'अ' क. ५. 'न' क. ६. 'व' क. ७. 'रि' क.

वितस्तासलिले बुद्धा प्रयतो मग्नसर्पपैः ।
 विवृतं सलिलद्वारमात्मना सत्तमोऽविशत् ॥ ६५८ ॥
 घोरान्धकारं निस्तीर्य दिनैः पञ्चभिश्चमः ।
 पातालमङ्गां सोऽपश्यच्छेषच्छायामिवोज्ज्वलाम् ॥ ६५९ ॥
 सदा प्रचण्डमार्तण्डतापाद्भगमहीमृतः ।
 मूलादिव सृतां स्फारस्फटिकस्यन्दवाहिनीम् ॥ ६६० ॥
 कृष्णपक्षे क यातीन्दुर्नयनानन्दवान्धवः ।
 इति पातालमन्वेष्टुं प्रविष्टामिव चन्द्रिकाम् ॥ ६६१ ॥
 विलोक्य रावणत्रासालक्ष्मीं कण्ठाग्रलम्बिनीम् ।
 आनन्दशायिनः शैरेर्लीलाहासच्छटामिव ॥ ६६२ ॥
 स्नानाद्गतकृमास्तस्यां गत्वा दूरं क्रमेण ते ।
 अपश्यन्राजतं चारु सरो हेमाब्जभूषितम् ॥ ६६३ ॥
 रत्नपादपसंछन्नं हेमपक्षिकृतारवम् ।
 विघेरपूर्वनिर्माणचित्रपत्रावलम्बनम् ॥ ६६४ ॥
 सुमेरुशिखरप्रत्ये प्रासादे तत्र काञ्चने ।
 ते पूजयित्वा श्रीकण्ठं हेमाब्जैर्हाटकैश्चरम् ॥ ६६५ ॥
 ददृशुर्विद्रुमतं हेमशाखं महाफलम् ।
 हेरम्बं विघ्नसंघातैः सितं तत्र तदात्मना ॥ ६६६ ॥
 तत्फलं भक्षयित्वैको वारितोऽपि तपस्विना ।
 शिष्यः स्यावरतां यातो द्वितीयः फलतामपि ॥ ६६७ ॥
 शेषान्निवार्य यत्नेन शिष्यान्मूमिमुजा सह ।
 सोऽपश्यत्कनकोदारप्राकारप्रवरं पुरम् ॥ ६६८ ॥
 विज्ञाय ॥ समौ मेपौ स्थितौ द्वारि प्रहारिणौ ।
 स हत्वा मग्नदण्डेन सानुगोऽविशदन्तरम् ॥ ६६९ ॥
 रत्नभित्तिसमुत्कीर्णविराजच्छालभञ्जिके ।
 वैह्वर्यस्तम्भाविन्यस्तवसहाटकजालिके ॥ ६७० ॥

दीप्तायुषसहस्रोप्रमटाधिष्ठितगोपुरे ।
 तत्रोपविश्य माणिक्यवल्लीललितकानने ॥ ६७१ ॥
 क्षणं बद्धसमाधानो विघ्नजातं निवार्य सः ।
 अपश्यद्विवृतद्वारनिर्गतं चेटिकागणम् ॥ ६७२ ॥
 ताभिः सप्रणयं दृष्टमार्गास्ते विविशुस्ततः ।
 पुरं दानवकन्यानां रक्षाक्षेत्रं मनोमुबः ॥ ६७३ ॥
 ददृशुस्तेऽथ दैत्येन्द्रकन्याः कमललोचनाः ।
 मण्डलेषु मियो यासां कपोलः केलिदर्पणाः ॥ ६७४ ॥
 स्वप्नदृष्टामयापश्यद्भूनन्दो मृगलोचनाम् ।
 कान्ताराच्छादनं यस्या रत्नमूपणसंचयः ॥ ६७५ ॥
 कर्णोत्पलं कटाक्षग्रीर्हारो यस्याः सितच्छविः ।
 लावण्यमङ्गरागश्च पुनरुक्तमतः परम् ॥ ६७६ ॥
 तैनुवल्ली वसन्तेन मदोद्यानशिखण्डिनाम् ।
 विलासहंससरसा तारुण्येन तरङ्गिता ॥ ६७७ ॥
 तां वीक्ष्य मूपतिः सोऽमृद्भूयः प्रमदविस्मयः ।
 अमिषिक्तः स्मरेणैव स्नेदवारिसुधारसैः ॥ ६७८ ॥
 ततस्तमाह रम्भोरुः सा शनैर्मञ्जुवादिनी ।
 दन्तांशुभिर्दर्शयन्ती नवपातालचन्द्रिकाम् ॥ ६७९ ॥
 मदर्थं देव रुचिरं खिब्रोऽसि क्षम्यतां विमो ।
 अथवा सापराधेऽपि सतां दृष्टिः प्रसादिनी ॥ ६८० ॥
 इत्युक्त्वा अविलासेन निजदासीं दिदेश सा ।
 तत्कालम्फाल्गुनेनेव कार्मुकेण मनोमुबः ॥ ६८१ ॥
 इक्षितज्ञा तद्वादेशात्संभ्रमाराविनूपुरा ।
 दागी निनाय तं पानक्रीडायै नलिनीतटम् ॥ ६८२ ॥

१. 'यानं' विनायकम्' क. २. 'न्ति' क. ३. 'नेत्रव' क. ४. 'रि' क.
 ५. 'द्विज' क. ६. 'श' क.

तत्रापदयत्तरुलतालम्बिमर्त्यकलेवरेः ।
 वार्पा रुधिरसंपूर्णा वसाविपुलकर्दमाम् ॥ ६८३ ॥
 रत्नपात्रेण तत्पानं सा गृहीत्वा पुनः पुनः ।
 नृपं पिब पिबेत्याह न पर्षा स च कृणितः ॥ ६८४ ॥
 त्यजतो भ्रुवमश्रेयो भवतीति तयार्थितः ।
 नाददे सा च तत्पात्रं तस्य मूर्ध्नि न्यपातयत् ॥ ६८५ ॥
 नीत्वा च तं परां वार्पां चिक्षेप विमले जले ।
 निमग्नश्चोन्ममज्जासौ कूर्मसारसरसोटे ॥ ६८६ ॥
 स्वमदृष्टमिवाशेषं उतः स्पृत्वा शुशोच सः ।
 धूत्कृत्येव विधिप्राप्तं पश्चात्तापमुपागतः ॥ ६८७ ॥
 ततस्तस्यासुरपुरीसंक्रान्तामोदशालिनः ।
 गात्रे शिलीमुक्ताः पेतुः सरचापच्युता इव ॥ ६८८ ॥
 कामामिमलिनाङ्गारैरिव ध्यातः स पट्टपदैः ।
 धूताग्रपाणिर्नो लेभे शर्म भर्माहतो यथा ॥ ६८९ ॥
 अत्रान्तरे समभ्येत्य कश्चिन्मुनिकुमारकः ।
 तमब्रवीत्कृपाविष्टो वैक्लव्यं नृप मा गमः ॥ ६९० ॥
 कृष्णाजिनं गृहाणेतद्भृङ्गजालनिवारणम् ।
 एकनक्तेन सततं न त्वया कारणत्रयी ।
 क्षाराधिता समदृशा तेन विभक्तवोत्थितः ॥ ६९१ ॥
 ब्रह्मोपेन्द्रत्रिनेत्राणामभेदाराधनानृप ।
 अयाप्स्यस्मच्चिरैरेव कान्तां तां दैत्यकन्यकाम् ॥ ६९२ ॥
 मुनिमूनोरिति श्रुत्वा भूनन्दस्तन्मते स्मितः ।
 विधाय सर्वं पातालं चीतविभ्रः पुनर्ययौ ॥ ६९३ ॥
 तत्र पूर्णेन्दुवदनां प्राप्य तामसुराङ्गनाम् ।
 मेजे मनोमवसेरः सविलासरसोत्सवम् ॥ ६९४ ॥

इत्येवमविनष्टेषु शरीरेषु मनोरथाः ।

पूर्यन्ते वेधसा पुंसां सखे किं परितप्यसे ॥ ६९५ ॥

इति भूनन्दाख्यायिका ॥ १९ ॥

श्रुत्वा मुखरकस्येति लेभे श्रीदर्शनो धृतिम् ।

धैमल्यं मानसं याति सन्मतेः कतकैरिव ॥ ६९६ ॥

ततो भुक्त्वा तदानीतं मितं श्रीदर्शनो ययौ ।

तेनेव सह शर्वर्यां देशान्तरमलक्षितः ॥ ६९७ ॥

म्लाने माने घने याते स्रजने शत्रुतां गते ।

स्वदेशावस्थितिः पुंसां निदर्शनविडम्बनां ॥ ६९८ ॥

अट्टहासोऽवदद्भूराददृश्यः श्रेयसे सुतम् ।

इतस्त्वे त्वरितं गच्छ श्रीसेनं मालवेश्वरम् ॥ ६९९ ॥

कितवेभ्यः कृतस्तेन सर्वकामप्रदो मठः ।

स्वयं स द्यूतकारोऽमृद्भाल्ये वैयसि विप्रुतः ॥ ७०० ॥

परव्यथां न जानाति यो ह्यदृष्टस्ववेदनः ।

गृहे निर्घीकृतं भूमौ मातुस्ते रत्नमूषणम् ॥ ७०१ ॥

विद्यते तच्च पाथेयं गृहाण शुभमाप्स्यसि ।

इति पित्रा समादिष्टो यक्षेणादृष्टमूर्तिना ॥ ७०२ ॥

स व्रजन्वहुसस्याब्धं ग्रामं प्राप सुहृद्भूतैः ।

तृष्णाकुलस्तत्तडागतदं प्राप्तां सुलोचनाम् ॥ ७०३ ॥

सोऽपश्यत्कन्यकां कामकेलिकाननवल्लरीम् ।

सा पृष्टा कौतुकात्तेन वभापे हरिणेक्षणा ॥ ७०४ ॥

सुताहं पद्मगर्भस्य पद्मिण्यास्या द्विजन्मनः ।

आता मुखरको नाम ममामूढुणिनां वरः ॥ ७०५ ॥

धूतच्यसनसंतापाघाते तस्मिन्दिगन्तरम् ।

मया सह तमन्वेष्टुं आन्तस्तातोऽस्त्रिंशं भुवम् ॥ ७०६ ॥

कालेनेमां महीं प्राप्तः स चौरिण हतो निशि ।
 इहास्ते चौरराजासौ वमुभूतिर्द्विजाधमः ॥ ७०७ ॥
 पुत्राय दातुं च हता तेनाहं पापबुद्धिना ।
 स च सार्थप्रमायाय मत्पुण्यैस्तत्सुतो गतः ॥ ७०८ ॥
 अस्मिन्संसंशये स्थाने युवयोः किं भविष्यति ।
 इत्यासदुःखादधिकस्तापो मे हृदि वर्तते ॥ ७०९ ॥
 श्रुत्वेति तस्याः संकल्पं ज्ञात्वा तामेव सोदराम् ।
 ययौ मुखरको मोहं पितृप्रल्यदुःखितः ॥ ७१० ॥
 श्रीदर्शनेन सहसा संसिक्तः शीतवारिणा ।
 संज्ञामवाप्य भगिनीं स तां बालामसान्त्वयन् ॥ ७११ ॥
 विधाय कृतकात्वास्थ्यं ततः श्रीदर्शनो निशि ।
 आनाय्य तस्मै चौरं च तत्सर्वं स्वधनं ददौ ॥ ७१२ ॥
 मुमूर्षोः किं वधेनास्य येन मे कल्पितं धनम् ।
 तस्मिन्मृते गृहीप्यामि चिन्तयित्वेति दैत्युपः ॥ ७१३ ॥
 प्रतिश्रयं गृहोपान्ते ददौ तस्य विधेर्वशात् ।
 गृहीत्वा तौ च पद्मिष्ठां जग्मतुः सधनौ निशि ॥ ७१४ ॥
 ततो महाटवीं प्राप्य भिक्षित्वा यक्षयोपितम् ।
 अवाप्य भोजनं यातौ मालवाधिपतेः पुरम् ॥ ७१५ ॥
 स्वसारमथ यदिष्टां प्रीतो मुखरको ददौ ।
 श्रीदर्शनाय तौ दृष्ट्वा सानुरागौ परस्परम् ॥ ७१६ ॥
 ततः भविष्य श्रीसेनपुरं वृद्धनिकेतने ।
 ग्रितास्ते शुश्रुवुर्मूषं यक्ष्मव्याधिनिपीडितम् ॥ ७१७ ॥
 प्राप्तो मग्नपरमस्य क्षयव्याधिनिवृत्तये ।
 उवाच सिद्धिर्नास्त्येव द्वितीयं साधकं विना ॥ ७१८ ॥
 इत्युक्ते तेन सततं यत्नेनापि परीक्षितः ।
 न लभ्यते यदा वीरस्तदा नृपतिरैभ्यधात् ॥ ७१९ ॥

कश्चिदन्विष्यतां धीरो द्यूतकारो मठे मम ।
 सत्त्वसाहसधैर्याणां कितवः क्षेत्रमेव यत् ॥ ७२० ॥
 अत्रान्तरे मठं प्राप्तः स राज्ञे विनिवेदितः ।
 श्रीदर्शनो मन्त्रसिद्धयै सहायो हेल्याभवत् ॥ ७२१ ॥
 सह मन्त्रधरेणाथ श्मशानं मीरुर्मज्जनम् ।
 निशि प्राप्य चकर्षासौ मठकं तदनुज्ञया ॥ ७२२ ॥
 अपरः कोऽपि चाभ्येत्य तमेव चिरसाधकः ।
 बलादुल्लोठितनस्त्वारितो नेतुमुद्ययौ ॥ ७२३ ॥
 ताभ्यामाकृष्यमाणोऽसौ रुराव विकृतं शवः ।
 (धोरारवेण तेनाभूत्परासुः पूर्वसाधकः ॥ ७२४ ॥
 श्रीदर्शनः शवं प्राप्य हत्वादाय मृतं च तम् ।
 ययौ मन्त्रधराभ्याशं चितावलयमीषणम् ॥ ७२५ ॥
 विन्यसे तेन मठके तत्र यागस्थले क्षणात् ।)
 होता तदानने मन्त्री नरास्थ्यसृक्शुची व्यधात् ॥ ७२६ ॥
 ततो ज्वालाकुलमुखश्चक्रे कुहकहोरवम् ।
 मठकस्तेन सहसा व्यसृर्मन्त्रधरोऽभवत् ॥ ७२७ ॥
 श्रीदर्शनोऽपि तं धोरं महावेतालमुत्पितम् ।
 दृष्ट्वा निगीर्णं तेनैव तं च मन्त्रधरं पुरः ॥ ७२८ ॥
 ततो गणैः समम्येत्य तत्र निद्राकुलोऽथ सः ।
 नीतः स्वनगरीवेदम संकल्पैरिव शीघ्रगैः ॥ ७२९ ॥
 प्रतिबुद्धः स्मरशरैरुत्तजद्वैर्यविभ्रमः ।
 चक्रारुद्धमिवात्मानं मेने तां मुन्दरीं स्मरन् ॥ ७३० ॥
 तामप्यभिनवान्नकम्पसंपत्तरङ्गिताम् ।
 तत्पिता ज्ञातवृत्तान्तो दृष्ट्वा चिरमचिन्तयत् ॥ ७३१ ॥

१. 'भोजन' क. २. एतच्छेषान्तर्गतपाठः क. पुस्तके क्षुद्रितः. ३. 'करी' क.
 ४. 'पर' क. ५. 'दमेन' क.

(नौमावली भूषणेषु यस्येयं परिदृश्यते ।
 श्रीदर्शनः स नृपतिर्दूरस्थो ज्ञायते कथम् ॥ ७३२ ॥
 ध्यात्वेति ब्रह्मसोमाख्यं व्रतिनं ज्ञानलोचनम् ।
 पुञ्याः समीहितप्राप्त्यै गूढं राजा व्यजिज्ञपत् ॥ ७३३ ॥
 अन्येषु सर्वकार्येषु सिद्धिर्न सततं भवान् ।
 अस्मिन्समीहिते पुञ्याः प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ७३४ ॥
 इति भूमिपतेर्वाक्याद्विप्रमेव स लेखरः ।
 श्रीदर्शनपुरीं प्राप्य गणेशायतनं ययौ ॥ ७३५ ॥
 तत्र प्रणम्य विभ्रेशं संपत्कमलिनीरविम् ।
 स्तुतिं स चक्रे निर्यन्नमघ्नतन्नस्रतन्नवाक् ॥ ७३६ ॥
 गजाननं नमाम्युग्रविघ्नवज्रनिवर्हणम् ।
 गजतुण्डाममुजगावनद्वकटिमण्डलम् ॥ ७३७ ॥
 मदाम्बुसिक्तदंष्ट्रांशुव्याप्तं स्तौमि गणेश्वरम् ।
 जाह्नवीयमुनावारिक्रीडाशौण्डमिवानिशम् ॥ ७३८ ॥
 नौमि फूत्कारविक्षिप्तकुम्भसिन्दूरसंचयम् ।
 दैत्यक्षयाकालसंध्यां सृजन्तमिव शांकरीम् ॥ ७३९ ॥
 नौमि क्षिपन्तं मधुषान्कर्णतालानिलैर्मुहुः ।
 हेरम्बं दन्तचन्द्रांशुदीर्णध्वान्तकणानिव ॥ ७४० ॥
 नमामि तं गणाधीशं क्रीडासु गलगर्जितैः ।
 ताण्डवाटम्बराचार्यो यः यष्मुस्तद्विस्मयितः ॥ ७४१ ॥
 इति स्तुत्वा गणपतिं ब्राह्मणोऽसौ यदृच्छया ।
 प्राप्तमुन्मादवणिजं चकार सच्छविग्रहम् ॥ ७४२ ॥
 राजधानीं प्रविदयाथ श्रीदर्शनमवाप्य सः ।
 निवेद्य सर्वं वृत्तान्तं हंसद्वीपं निनाय तम् ॥ ७४३ ॥

तत्र पित्रा वितीर्णां तामवाप्यानङ्गमञ्जरीम् ।
 महोत्सवे सरस्मेरः कंचित्कालमुवास सः ॥ ७४४ ॥
 अतिना नमसा नीतः समार्यः स्वपुरं ततः ।
 आकृष्टस्वङ्गस्तं हन्तुमुद्ययौ कोपकम्पितः ॥ ७४५ ॥
 प्रसाद्य च ददौ तस्मै वेतालः सितसर्पपान् ।
 श्रीदर्शनस्तैर्नृपतिं प्रातर्वातक्षयं व्यभात् ॥ ७४६ ॥
 संदर्श्य तं मन्त्रघरं मठकस्योदरे मृतम् ।
 स्वस्योऽथ नृपतिस्तस्मै सत्त्वसाहसशालिने ॥ ७४७ ॥
 यौवराज्यं ददौ स्वल्पदानलज्जानताननः ।
 सुराज्यमुखसंभोगसंभावितमनोभैवः ॥ ७४८ ॥
 यद्दिष्टावदनाम्भोजपट्टपदः सुवभौ तदा ।
 कदाचिदथ विच्छेदविभवो वणिजां धरः ॥ ७४९ ॥
 उपेन्द्रशक्तिनामा तं देशं सार्धैः समाययौ ।
 श्रीदर्शनाय स ददौ दर्शनार्थमुपायनम् ॥ ७५० ॥
 समुद्रोर्मिसमुत्सृष्टं हेरम्भं हेमविग्रहम् ।
 तं प्रतिष्ठाप्य विधिवन्मन्त्रज्ञैः स द्विजन्मभिः ॥ ७५१ ॥
 प्रासादे रत्नरचिते चक्रे यात्रामहोत्सवम् ।
 साक्षात्संनिहितस्तत्र गणैः सह गणाधिपः ॥ ७५२ ॥
 (श्रीदर्शनश्रिये तोषादादिदेश गणान्हः ।
 हंसद्वीपाधिनाथस्य तनयानङ्गमञ्जरी ॥ ७५३ ॥
 मद्राद्राविनी भार्या न चिराच्चक्रवर्तिनः ।)
 अथमेवास्तु दयितस्तस्या मद्विहितोदयः ॥ ७५४ ॥
 तद्विधाने गणास्तूर्णं वर्तध्वं सहिता इति ।
 रत्नपर्यङ्कसंमुखो निशि श्रीदर्शनः स तैः ॥ ७५५ ॥
 हंसद्वीपं क्षणाव्रीतो ददर्शानङ्गमञ्जरीम् ।
 राशिः क्षयरक्षायै निर्मितामिव वेधसा ॥ ७५६ ॥

पीयूषवापीमल्लानवक्रनेत्रसरोरुहाम् ।
 हारवल्लीमिव रतेर्विलासहसितोज्ज्वलम् ॥ ७५७ ॥
 कटाक्षशर्वलच्छायां रत्नमालामिव द्युतेः ।
 कन्दर्पकेलिहरिणीमिव विस्तीर्णलोचनाम् ॥ ७५८ ॥
 विलासालससंचारं शृङ्गारकरिणीमिव ।
 अङ्गजां कान्तितटिनीममलां कान्तिकौमुदीम् ॥ ७५९ ॥
 अवलां विजितानेकनाकनायककामिनीम् ।
 वपुषा सौष्ठवपुषा हारिणीं हरिणीदशम् ॥ ७६० ॥
 लोललकान्तां तां कान्तां वीक्ष्य सोऽमूदनङ्गमूः ।
 र्वेया स्वरं समागम्य लीलाविनिमयं व्यधात् ॥ ७६१ ॥
 निजनामाङ्गमाणिक्यमूषणो तां सविस्मयः ।
 निखिलां पृथिवीं जित्वा चक्रवर्ती बभूव सः ॥ ७६२ ॥
 कालेन साय पद्मिष्ठा सा च द्वीपेश्वरात्मजा ।
 द्विजेन स्मारिते जातिं यक्षीरूपमवाप्तुः ॥ ७६३ ॥
 पद्मदर्शननामानं तथैवानङ्गदर्शनम् ।
 दृत्वा राज्ये मुतौ ताभ्यां वनं श्रीदर्शनोऽभ्यधात् ॥ ७६४ ॥
 ततस्ताभ्यां समभ्येत्य यक्षीभ्यां काननस्थितिः ।
 बल्लभः स्मारितो जातिं सोऽभवद्यक्षनायकः ॥ ७६५ ॥
 अट्टहासानुजः सोऽहं यक्षो दीप्तशिखाभिधः ।
 कृतानुयात्रे सर्वत्र ते चेमे मम बल्लभे ॥ ७६६ ॥
 अस्मिन्नसारे संसारे सततं पुत्र देहिनाम् ।
 भवन्ति सुखदुःखानि मा विषादे मनः कृथाः ॥ ७६७ ॥
 इत्थं तेन वात्सल्याद्वीतदुःखः शनैः कृतः ।
 कालेन तदनुध्यानाद्भवद्भिश्च समागतः ॥ ७६८ ॥
 विचित्रकथसमागमः । इति श्रीदर्शनाख्यायिका ॥ २० ॥

विचित्रकथवृत्तान्तमिति श्रुत्वा सविस्मयः ।
 मृगाङ्कदत्तः परमां प्रीतिं प्राप सहानुगः ॥ ७६९ ॥
 ततस्तेन सहान्यैश्च सं विवेश महद्वनम् ।
 तमालतालवलयश्यामलीकृतदिङ्मुखम् ॥ ७७० ॥
 उत्तुङ्गतेरुसंघातरुद्धसूर्याशुमण्डलम् ।
 इन्द्रनीलशिलास्तम्भं तिमिरस्येव मन्दिरम् ॥ ७७१ ॥
 उत्फुल्लफुल्लशबलं त्वङ्गद्वृक्षीतरङ्गितम् ।
 बर्हिषर्हावलीनीलं केशपाशमिव क्षितेः ॥ ७७२ ॥
 तत्र सान्द्रलतापुञ्जनिकुञ्जे कुञ्जराधिपम् ।
 ददर्श मृगसंघानामिव सकेतमण्डपम् ॥ ७७३ ॥
 (मैनुप्यवचित्रगिरा भापमाणं पुरः स्थितम् ।
 नरमन्यं मुहुः प्रेम्णा समाश्वास्य फलाम्बुभिः ॥ ७७४ ॥
 अपूर्वमथ संलापं श्रुत्वा गजमनुप्ययोः ।)
 मृगाङ्कदत्तः प्रोयाच सचिवान्विस्मयाकुलः ॥ ७७५ ॥
 अहो वत मनुप्योऽयमचक्षुः करिणासकृत् ।
 संभाष्यते बन्धुरिव प्रेम्णा दत्त्वा फलोदकम् ॥ ७७६ ॥
 प्रचण्डशक्तिसदृशः पुरुषोऽयं स एव वा ।
 श्रेणुमस्तावदित्युक्त्वा किमेतद्वदतो मिथः ॥ ७७७ ॥
 मृगाङ्कदत्तवचनादिति तेषु लतान्तरे ।
 स्थितेषु गूढं स गजसमन्यं प्रणतोऽबदत् ॥ ७७८ ॥
 अहं जन्मान्तरे राजपुत्रो भ्रातृवधेच्छया ।
 वृत्तवनस्त्रिनेत्रस्य शापात्प्राप्तोऽर्थं हस्तिताम् ॥ ७७९ ॥
 ब्रूहि तावत्त्ववृत्तान्तं पूज्यस्त्यमतिथिर्यम ।
 इति पृष्टो गजेन्द्रेण प्राहान्धो बाष्पगद्गदः ॥ ७८० ॥

१. 'प्रति' क. २. 'बदलीपुत्रश्चदसूर्याशुमण्डलम्' क. ३. 'एतत्त्वमेष्टान्तगतपादः
 क. पुनश्च द्रुतिवः. ४. 'सत्सपायं' क. ५. 'श्रेणुपमनयोस्तुर्म' किमेती वदतो मिथः'
 क. ६. 'मि' क.

अह मृगाङ्कदत्तस्य सचिवो दशम सखे ।
 प्रचण्डशक्तिर्नागस्य ग्रापत्पातो दशमिनाम् ॥ ७८१ ॥
 वृत्तान्तमात्मन सर्वं कथयत्यथ तेन न ।
 (प्रार्थितो द्विरद ग्राह नि श्वन्य पृथु प्लूतम् ॥ ७८२ ॥
 राठायामभवद्रूप श्रीमानुग्रमटामिष ।
 अमूमनोरथा नाम भार्या तस्य मनोरमा) ॥ ७८३ ॥
 कदाचिदथ नानादिग्देशसचारचक्षुः ।
 नतंक कालो नाम स नृप द्रष्टुमाययौ ॥ ७८४ ॥
 तत्सुता दामिका नाम तन्याग्रे वसुधापते ।
 ननर्ताहितैरुष्टमनिताकारभूमिका ॥ ७८५ ॥
 धमृताहरण सत्यमनया तु वृत्त मुटु ।
 कुतोऽन्यथा करोत्येषा लावण्यनयनामृतम् ॥ ७८६ ॥
 इति सचिन्त्य ता रात्रि निद्रां वभाषदे ।
 एतदेव श्रिय सार यत्कामो न विमन्यते ॥ ७८७ ॥
 स तथा कण्ठलम्बिन्या लान्घ्योत्सवग्रील्या ।
 मदावन्तेर शुशुभे हलीव वनमालया ॥ ७८८ ॥
 ततो मनोरमाम्याया ज्येष्ठो भीममयामिष ।
 लासिनाया च समरमट शर्यवता दर ॥ ७८९ ॥
 इति पुत्रेष्टियागेन पुत्री प्राप म पार्थिव ।
 (स्पर्शानुगन्धमनदौ भीमदुर्गोधनानि) ॥ ७९० ॥
 कलाभि शम्भुनिचाभिरभृद्भीममटोऽधिक ।
 सौभाग्यातिशयान्मातुर्द्वितीयस्तु पितु श्रिय ॥ ७९१ ॥
 तत मीटानियुद्धेन आत्रा स्फोटितमस्तनम् ।
 रक्ताक्त लासिका दृष्ट्वा पुन राजे न्यवेदयत् ॥ ७९२ ॥

१. एतन्मोहन्तस्तवठ क पुत्रक ज्ञान २. त पृष्ठं क. ३ 'निहन्' क.
 'एतन्मोहन्तस्तवठ' क पुत्रक ज्ञान ५. 'कुम' प्रि' क.

तत्कोपाकुलितो राजा निरस्यान्तःपुरात्सुतम् ।
 ज्येष्ठं कनीयसश्चक्रे राजपुत्रान्सहानुगान् ॥ ७९३ ॥
 पितुः प्रसादादर्पान्धो राजपुत्रः स तैर्वृतः ।
 सोऽवमेनेऽग्रजं मूढो मसच्छन्नमिवानलम् ॥ ७९४ ॥
 मित्रं भीममटस्यासीच्छङ्खदत्तामिधो द्विजः ।
 तच्चित्तदर्पणतले स्वचित्तमिव विम्बितम् ॥ ७९५ ॥
 ततो देशान्तरायातं वणिजस्तुरगोत्तमम् ।
 भीमो जग्राह मूढ्येन जम्भारेरिव विस्मृतम् ॥ ७९६ ॥
 निजसैत्त्वमिवात्युच्चं संकल्पमिव शीघ्रगम् ।
 ब्रह्मवाक्रामुकमिव प्राप्तं मार्तण्डमण्डलात् ॥ ७९७ ॥
 तुरङ्गरत्नमालोक्य आतुस्तल्लासिकामुतः ।
 ममायमिति दर्पान्धो हर्तुमभ्याययौ बलात् ॥ ७९८ ॥
 तदर्थं सुमटान्दत्त्वा शङ्खदत्तसैखो युधि ।
 तस्यानुगं वधप्राप्तं न तं भीममटोऽवधीत् ॥ ७९९ ॥
 ततो ययौ पितुर्भीत्या स रात्रौ सुहृदा सह ।
 मात्रा दत्तं समादाय रत्नभूषणसंचयम् ॥ ८०० ॥
 तुरगाभ्यां व्रजन्वेगाद्विवेश विपमं वनम् ।
 सुप्तसिंहगुहोपान्तसंकुचद्वारवारणम् ॥ ८०१ ॥
 तत्रोच्चखुरद्वारप्रबुद्धैर्हरिणारिभिः ।
 निहताश्वो ययौ पद्भ्यां सुहृदाश्वासितः शनैः ॥ ८०२ ॥
 जाह्नवीतटमास्ताव प्रभाते श्रमकर्षितः ।
 दृढदर्श नीलकण्ठाख्यं विप्रं व्रतिपदे स्थितम् ॥ ८०३ ॥
 युवा वृद्धोचिताचारः पृष्टो राजमुतेन सः ।
 उवाच घनवेकल्यात्स्थितो नाहं गृहाश्रमे ॥ ८०४ ॥

१. 'ग्रीवस्थो' छत्रः शिवालये' क. २. 'चिन्तितः' क. ३. 'वित' क.
 ४. 'क्षताम्' क. ५. 'युतो' क. ६. 'ययौ गङ्गा मुजाक्षेपैर्विप्रं' क.

इति श्रुत्वागिरि तस्मै दत्त्वा रत्ननिभूपणम् ।
 भीमो वयम्यसहितस्तुं गङ्गा समुद्ययौ ॥ ८०५ ॥
 उत्पुल्लपेनपटला साष्टहामामिवात्साम् ।
 सत्ताण्डयामिषोदण्डवीचिदोर्णण्डमण्डले ॥ ८०६ ॥
 तौ प्रणिष्टौ त्रिपथगा मुनाक्षेपे ससर्पतु ।
 क्षिपन्तौ रत्नकटकच्छायाशरलित पथ ॥ ८०७ ॥
 आन्दोलिते बुण्डलनीलरत्ननिषा मुदु ।
 सेयालपरीजाल कर्पन्तानिव रेजतु ॥ ८०८ ॥
 तत प्रालेयसक्रागे पुष्करावर्तशालिभि ।
 दूर दूत शस्त्रदत्त सलिलैर्नहुनिह्यै ॥ ८०९ ॥
 पार भीममन् श्राप्य मित्रेणाशु विनाहत ।
 शोकान्धकारममग्नयान् इवातुल ॥ ८१० ॥
 संपलु केलिसदन व्यमनेषु समाश्रय ।
 कोशो निश्रम्भचर्चासु कि नाम न मुदृष्टुणाम् ॥ ८११ ॥
 स तद्वियोगसतत संसृमात्मानमम्भसि ।
 समुद्ययौ प्रियग्रगो धीरैरपि न सद्यते ॥ ८१२ ॥
 तत साक्षाद्गवती गङ्गा कान्तितरङ्गिता ।
 त प्राह साहस पुन मा दृथा मित्रमाप्स्यसि ॥ ८१३ ॥
 ईमा च प्रतिलोमान्या दिव्यविद्या गृहाण मे ।
 यया भवन्ति सहसा यथेच्छा रूपरुचय ॥ ८१४ ॥
 इयुर्वा दन्तनिरणे क्षालयन्तीन दिक्षदीम् ।
 ददौ मुरण्डी त्रिया तस्मै स्वेच्छावृत्तिप्रदाम् ॥ ८१५ ॥
 तनो प्रनन्दैर्यसरो निनोत्माहरते स्थित ।
 स लाटत्रिपथ प्राप त्रिपथ मर्ममपदाम् ॥ ८१६ ॥

तत्रासौ राटल्लनाकटाक्षोत्पलदामभि ।
 भूष्यमाण इवापश्यद्द्यूतशाला सकोतुक ॥ ८१७ ॥
 स्वजानुसधिविन्यस्तम्पोलेर्निश्चलेक्षणे ।
 पराजये हृद्गारकराहतमहीतले ॥ ८१८ ॥
 अधिक्षेपपरासक्तै शपथाकोपकम्पिभि ।
 बंक्रानेकाङ्गविन्यासपरे कळकलाकुले ॥ ८१९ ॥
 भुजङ्गैरिव सोच्छ्रुगसै पथिकैरिव धूमरै ।
 उन्मत्तेरिव दिम्बलैर्व्यसनैरिव अधिकृते ॥ ८२० ॥
 क्रितवैहेल्या तत्र द्यूतकौलि विधाय स ।
 जित्वा धन ददौ तेभ्य परादानेऽपि शिक्षित ॥ ८२१ ॥
 न वय याचकृतया पात्र ते द्रविणोर्पणे ।
 इत्युक्त्वा तत्सुहृद्भूत्वा वसुदत्तोऽबहीद्वनम् ॥ ८२२ ॥
 तेन सजातविश्रम्भस्तमपृच्छत्कथान्तरे ।
 स्वैर भीमभटो वृत्त स च पृष्टोऽभ्यमापत ॥ ८२३ ॥
 बभूव शिवदत्ताख्यो द्विजन्मा हस्तिनापुरे ।
 तस्याह वसुदत्तारयन्मनय प्राप्तदुर्नय ॥ ८२४ ॥
 स वदाचिन्मम पिता सदाकलहशील्या ।
 गृहिण्या विहितोद्वेगो देश देहमिवात्यजत् ॥ ८२५ ॥
 गते तस्मिन्मम बभू सा निष्कारणकोपना ।
 तैस्तै सपर्यालापैश्चमारात्यन्तदु खिताम् ॥ ८२६ ॥
 सक्षामोक्तिषु दौर्जीत्य माने त्वं श्रमे मुग्धम् ।
 नये माया भये दम्भ सपर्याया च वञ्चनम् ॥ ८२७ ॥
 यत्किं यपामविरत दोषैरन्यस्तलोचना ।
 तद्दु रासाप्यगात्वापि क सदा महते व्यथाम् ॥ ८२८ ॥

१ 'दृष्य' क. २ 'यस्य' क. ३ 'तस्मिन्' क. ४ 'जित्वा' क. ५ 'गोद' क. ६ 'द्वजम्' क.

अपरा सुहृदा वाक्यात्परिणीता मया पुनः ।
 वृद्धा क्रमेण तेनैव सा निरासदुराशया ॥ ८२९ ॥
 तृतीयोद्वाहविषये प्रार्थितोऽहं सुहृज्जनैः ।
 गृहे दारुमयी योषा मिथ्याभार्यामकल्पयम् ॥ ८३० ॥
 कृतावगुण्ठनामन्तर्निहितामथ ता मया ।
 एकाकिनीं समभ्येत्य चक्रे कलहसूचनम् ॥ ८३१ ॥
 अनुत्तरामथालोक्य वधूगाम्भीर्यशङ्किता ।
 कृत्वा रक्ताक्तमात्मानं तुकोशं करुणस्वनम् ॥ ८३२ ॥
 अश्वान्धवाहं सुपया निहतेत्युच्चवादिनी ।
 मन्मित्रस्वजनैरेत्यं पृष्ट्वा कासौ वधूरिति ॥ ८३३ ॥
 दूरात्तयैव निर्दिष्टा मया सह विलोक्यताम् ।
 उद्वाह्य दारुल्लना जहसुस्ते सनि स्वनम् ॥ ८३४ ॥
 इत्यहं दुःसहैर्मात्रा परस्यै शोषितं सदा ।
 त्यक्त्वा स्वदेशमायातं स्वर्गभोगामिमां भुवम् ॥ ८३५ ॥
 इह धूतेन विजितां पणवद्वा भयानुगा ।
 एते चण्डभुजङ्गाद्या कित्ता पृथुसाहसाः ॥ ८३६ ॥
 इति भीमभट्टं श्रुत्वा तस्यौ तौ सह निर्वृतः ।
 गुणिना भयवपुषा पृथिवी निजमन्दिरम् ॥ ८३७ ॥
 अत्रान्तरे प्रावृषेण्यपयं पूरतरङ्गितान् ।
 विपाशासलिलान्प्राप्तो मत्स्यो हस्तीव धीवैरै ॥ ८३८ ॥
 ततः कोलाहलाकृष्टं प्राप्ते द्रष्टुं महाजने ।
 ततो^१ भीमभट्टोऽपश्यन्मानं निर्दारितोदरम् ॥ ८३९ ॥
 तन्मव्यादयं निर्यातं शङ्खदत्तं विलोम्य सः ।
 वभूवाचिन्तितप्रेऽस्मिन्परिवृत्ते च जालिकैः ॥ ८४० ॥

१ 'सुनोऽगुणा' क. २. 'त्र' क. ३ 'न पीयूषेणैव नन्दित' ॥ स तेन पृष्टं
 श्रोवाचं निगीर्णोऽहं जलीकृता । अनेन मातेनास्मै कृताहारोऽन्तरास्थितः ॥ अथ

निस्तीर्णस्तामवाप्तोऽहं धातु किं नाम दुर्घटम् ।
 इत्युक्त्वा तं परिष्वज्य तद्भृतान्तं निशम्य च ।
 शङ्खदत्तो नव सर्वं हर्षात्स्वर्गममन्यत ॥ ८४१ ॥
 ततो भीममटस्तत्र नागयात्रामहोत्सवे ।
 कदाचित्सानुगोऽपश्यत्कन्यकां ज्ञातुमागताम् ॥ ८४२ ॥
 सुता हसावली नाम चन्द्रादित्यस्य भूपते ।
 दासीसदृसानुगता राका तारावृतामिव ॥ ८४३ ॥
 विलोललोचनच्छायालेखनीभिः स्मृताकृते ।
 जनस्य सकल्पपटे याभिरालिख्यते स्मर ॥ ८४४ ॥
 मनोरथशताभ्यन्ता या यत्नशतसूत्रिता ।
 घटितेव शशाङ्गेन कान्तिस्फटिकपुत्रिका ॥ ८४५ ॥
 ता विलोक्य स पद्मेपुसरम्भानुलितोऽभवत् ।
 दुग्धाम्बुधिरिवास्फार चन्द्रकान्तितरङ्गित ॥ ८४६ ॥
 सा च तद्दर्शनारम्भप्रौढोद्भिन्नमनोभवा ।
 हसावली यथार्थभूतलिनीदलशायिनी ॥ ८४७ ॥
 तद्भृतीवृतसवेतो निशि भीममटस्ततः ।
 कन्यकान्तं पुरं प्राप विद्याभ्यासादलक्षित ॥ ८४८ ॥
 रत्नदीपाशुर्कपिशो दिव्यगन्धाधिगसिते ।
 तत्र गान्धर्वविधिना भेने तां चारुलोचनाम् ॥ ८४९ ॥
 तत्र कम्पाकुला तत्र सा तेनालिङ्गिता मुहुः ।
 लज्जानिमीलनयना लेभे कामपि निर्वृतिम् ॥ ८५० ॥
 धातुप्यमाणा तेनाभ्यामेखन् मधुरध्वनिम् ।

त्रैलोक्यात्ताम्रस्य परिष्वयेव जायते । विदारितो देवयागात्पानहं समुपस्थित ॥
 तत्र कम्पाकुलार्तं द्रष्टुं प्राप्ता पुनश्चिताम् । नायकमप्यग्रां राजतनयां तां ददर्श ॥
 गतां हृदयवतीं नाम स्मरवर्णितां राजिनीम् । विद्यायां जनसंवल्लपटे चोद्दिश्यत
 मार ॥ एव च पुनश्च पाठ

चकार सुरतारम्भनाट्यप्रस्तावनामिव ॥ ८५१ ॥
 तस्याः केलिकल्यप्तस्तकवरीकुसुमोत्थिताः ।
 मञ्जुगुञ्जन्मधुकराः सीत्काराचार्यतां ययुः ॥ ८५२ ॥
 धैर्यस्य यदनायत्तं लज्जाया यदगोचरम् ।
 यदशिष्यं विचारस्य सुरतं तदभूत्तयोः ॥ ८५३ ॥
 प्रातः प्रयाते भूपालमुते हंसावली शनैः ।
 रेतारम्भसमुत्सृष्टनिद्रोरुणविलोचना ॥ ८५४ ॥
 विलोलिता गजेनेव नलिनी कम्पशालिनी ।
 राज्ञे निवेदिता शङ्काकुलैरन्तःपुराधिपैः ॥ ८५५ ॥
 राजापि यन्नादन्विष्य द्वितीयेऽहि समागतम् ।
 परिज्ञाय ददौ तस्मै प्रियां पुत्रीं श्रिया सह ॥ ८५६ ॥
 अपुत्रेण ततो राज्ञा श्रियं तेनै समर्पिताम् ।
 लेभे भीमभटो छटविषये पौरसंमतः ॥ ८५७ ॥
 शस्त्रदत्तादिभिः सार्धं संमग्न्य भ्रातुरन्तिके ।
 प्राहिणोत्प्रतिराजस्य स दूतं विम्रहोत्सुकः ॥ ८५८ ॥
 मिथो बलैरधिक्षेपे ज्वलन्मन्युमहानली ।
 चक्रनुस्तौ बलम्भोधिसज्जखड्गोर्मिभीषणम् ॥ ८५९ ॥
 ततो भीमभटः प्राप्य रौद्रां दृढविनिश्चयः ।
 दिशश्चक्रे गजघटापुष्करावर्तसंकटाः ॥ ८६० ॥
 तस्योद्यचार कल्पान्तविग्रमो रणदुन्दुभिः ।
 यत्कम्पालौरनारीणां चक्रन्दुरिव मेखलाः ॥ ८६१ ॥
 ततः ससैन्यः समरभटो युद्धाय निययौ ।
 युर्वन्त्यद्रुप्रभाजालैर्नभो नीलाग्रविग्रमम् ॥ ८६२ ॥
 क्षिप्रं निपेतुर्वीरेषु स्वर्गसोपानमालिकाः ।

लक्ष्मीकटाक्षशवलाः करवालपरम्पराः ॥ ८६३ ॥
 वैरेवहो रणमुखे तेषां सुभटयज्वनाम् ।
 विस्फारचोपकेङ्कारमन्त्रा रेजुः करिखरैः ॥ ८६४ ॥
 चक्रुः शिरांसि शूराणां पतितानि महीतले ।
 जयश्रियो रक्तपङ्के पादन्यासोपलभ्रमम् ॥ ८६५ ॥
 ततो भीममटोऽभ्येत्य स्वयं समरशालिनः ।
 रिपोध्वक्तं खड्गेन शिरो व्याकुलकुण्डलम् ॥ ८६६ ॥
 विभ्राणस्तच्छिरो रेजे खड्गाग्रे क्षिप्रसंकटम् ।
 दर्शयन्निव वीराणां निजवीर्यतरोः फलम् ॥ ८६७ ॥
 निपातितेऽथ सैमरभटे भट्टयुगानुगे ।
 लेभे भीममटो राज्यं राजमानः सुहृज्जनैः ॥ ८६८ ॥
 मनोरमां प्रणम्याथ ग्रहृष्टां तत्र मातरम् ।
 प्रददौ शङ्खदण्डाय लाटराज्यमुदारधीः ॥ ८६९ ॥
 स्वयं स्थितः स राढायां पञ्चगौडमहीपतिः ।
 दिशो भीममटः सर्वा जित्वा साम्रज्यमाप्तवान् ॥ ८७० ॥
 ततः कदाचिदैश्वर्यविलासोद्यानकौमुदीम् ।
 हंसावलीं सेव्यमाने तस्मिन्मधुमदाकुले ॥ ८७१ ॥
 यदृच्छया समभ्यायादुत्तङ्गस्तेजसां निधिः ।
 यद्विरा सर्पसत्रेऽमृद्भुजङ्गानां कुलक्षयः ॥ ८७२ ॥
 स्वदर्शनविलम्बेन राज्ञः कोपमुपागतः ।
 भदद्विषो भवत्वाशु तं दशप सरालयेम् ॥ ८७३ ॥
 ततः प्रसादितो यन्नान्मुनिर्भीमभटेन तम् ।
 उवाच राजन्विपिने समाश्वास्य फलाम्बुभिः ॥ ८७४ ॥
 मृगाद्वदत्तसचिवं यदा त्वं तोषयिष्यसि ।

१. 'धैरेव' क. २. 'चापे मेष्टारप्रथमोद्धारतां यवी' ॥ अष्टममालाद्विद्यानल-
 हितमदृष्टगन् । मृगार्थसंज्ञितां यवः खेचरान्तरणेनव. ॥ तस्मिन्कोलाहले हेरा-
 यमुन्मीलितान्यधनः । चक्रुः शिरसि शूराणां' क. ३. 'समरभटे भट्टयुगानुगे' क.
 ४. 'वेराशु' क. ५. 'य' क.

त्वत्कथा च निश्चयेव चतुष्पान्म भविष्यति ॥ ८७५ ॥
 प्रचण्डशक्तिरुत्तार्य नागप्रापमनोदधिम् ।
 आराधितस्त्वया भक्त्या पूर्वं चन्द्रार्धशेखर ।
 अतस्तवपा शपान्ते शक्त्यान्धरराजता ॥ ८७६ ॥
 उस्त्वेत्यदर्शन याते मुनीन्द्रे मोऽमवद्वन ।
 सोऽस्मेमेह कालेन त्वया पुण्ये मनागत ॥ ८७७ ॥
 कथयित्वेति नागेन्द्रो गधरे मत्प्रामवत् ।
 प्रचण्डशक्तिमद्वृत्त श्रुत्वामृच्च सुलोचन ॥ ८७८ ॥
 मृगाङ्कदत्तमुद्धृत्वा त्रिलोक्य च मदाद्भुतम् ।
 प्रचण्डशक्तिमान्निह्य प्रीतिं प्राप सहानुग ॥ ८७९ ॥
 ता शशाङ्कवतीं कान्तामचिरात्प्रमवाप्स्यमि ।
 मृगाङ्कदत्तमवददन्धवं प्रणयादिति ॥ ८८० ॥
 स्मृतमात्र समेप्यामीत्युक्त्वा तस्मिन्निरोहिते ।
 ध्यायन्मृगाङ्कदत्तोऽमृदानन्तामृतनिर्झर ॥ ८८१ ॥

प्राप्नन्मपूतितमहेवरदिष्टद्विज्य-
 गन्धर्मावमुमगेन त्रिधाय तेन ।

सम्य स पञ्च भविष्यन्ममप्य हृष्ट
 शेषाप्तये त्रिपुल्यस्त्रयस्य प्रत्यये ॥ ८८२ ॥

प्रचण्डशक्तिममागत । भीममदाभ्यायिका ॥ २१ ॥

द्विषो गुणः ।

अथ प्रचण्डशक्तिप्राप्ता दयितानामिदं निषाम् ।
 मृगाङ्कदत्तो त्रिपिन त्रिवेग सचिवै मृ ॥ १ ॥
 ततो न याद्विष्मूत्रप्रचण्डशक्तिगो र्गो ।
 अथान्यनिवातापैस्तोप्यनान इवाम्बिले ॥ २ ॥

यद्वावगाहसनद्वमहिषे क्रोडमुज्जरे ।
 लोके प्रत्यग्रदिग्दाहधूमेरिव समावृते ॥ ३ ॥
 जनार्दनमृतारम्भे तर्षार्जुनसमाजुले ।
 कानने स्वाण्ड्य इव प्रौढदावानलाजुले ॥ ४ ॥
 उपविष्ट क्षण तत्र रानपुत्रो व्यनोक्त्यन् ।
 नरेण विकृताकारेणोद्यमान नर दिवि ॥ ५ ॥
 त दृष्ट्वा ग्राह सचिवानेष विन्मकेसरी ।
 केनापि दूयते यन्न क्रियतामस्य मोचने ॥ ६ ॥
 इति वादिनि सनद्धे स तस्मिन्स्वयमम्बरात् ।
 (भैवतीर्य वचन्दे तमानन्दस्यन्दसुन्दर ॥ ७ ॥
 श्रुतधिप्रमुग्वान्सर्वान्परिष्वज्य मुदान्वित ।
 सोऽथ त बाहननर प्रोवाच विकृताकृतिम् ॥ ८ ॥
 भो महासत्त्व गच्छ त्व पुनरेष्यसि मत्समृत ।
 इति तेन विसृष्टोऽसौ जगामादर्शन क्षणात् ॥ ९ ॥
 ततो मृगाङ्गदत्तस्त पप्रच्छ पृथुविस्मय ।
 करालाकारविम्फार कुतोऽय सचिवस्तव ॥ १० ॥
 इति तेनादरात्पृष्ट ग्राह विक्रमनेसरी ।
 मन प्रहादिर्ता दिक्षु दिशन्दशनचन्द्रिकाम् ॥ ११ ॥
 अयि तस्या प्रियामाया तेन नागेन क्षापित ।
 समूर्च्छित परिशिष्ट प्रौणे मृतमन शनै ॥ १२ ॥
 तत्र पुष्करिणीतीरे तृष्णासतापर्षाडित ।
 विश्रान्तोऽह क्षण पतिता जर शिताशुशतिलम् ॥ १३ ॥
 ततोऽभ्येत्य मुजङ्गेन दष्ट कश्चिज्जरहिज ।
 विषयथातं सलिले त्यक्तुमात्मानमुद्यत ॥ १४ ॥

सुपर्णविद्यया सोऽथ रक्षितः कृपया मया ।
 कृनञ्ज. प्राह मां कोऽपि देवस्त्वं सत्त्वसागरः ॥ १५ ॥
 वेतालोत्थापिनीं विद्यां गृहाण त्वं मयार्पिताम् ।
 अधीरे तु मया नैव सौपिता त्वं तु धैर्यवान् ॥ १६ ॥
 इति श्रुत्वाहमवदं वियुक्तस्य सुहृज्जनैः ।
 विद्यया किं मम सखे ज्योत्स्नयेव विर्वसतः ॥ १७ ॥
 इत्यसौ मत्कथां श्रुत्वा विस्तीर्णा ब्राह्मणोऽब्रवीत् ।
 कियन्मात्रं सुहृत्सङ्गो विद्यया सर्वमाप्यते ॥ १८ ॥
 श्रीत्रिविक्रमसेनोऽभूत्प्रतिष्ठानपुरे नृपः ।
 रत्नाकरः प्रसूतियो लक्ष्म्याः सत्त्ववतां वरः ॥ १९ ॥
 यद्यशोदर्पणतले तारहारविमृषितैः ।
 विम्बितेव विभाति घौरिन्दुमार्तण्डकुण्डला ॥ २० ॥
 रामाभिरामं तं द्रष्टुं श्रमणो नित्यमाययौ ।
 इव सीताग्रहच्छन्नच्छन्नो लङ्कापतिः पुनः ॥ २१ ॥
 क्षान्तिशीलाभिधानोऽसौ तस्यास्थाने ददौ सदा ।
 फलं नरपतिस्तच्च कोशाध्यक्षकरेऽक्षिपत् ॥ २२ ॥
 इति संसेवमानस्य ययुर्भिक्षोः समा दश ।
 कदाचित्तत्फलं राज्ञः प्राप केलिकपिः करात् ॥ २३ ॥
 तद्वन्तदलितात्तस्माद्दिव्यं रत्नं विनिर्ययौ ।
 तत्कान्त्या द्युरितः सर्वो बभूव स्थानमण्डपः ॥ २४ ॥
 नृपः कोशेशमाहूय फलान्यन्यान्याचत ।
 सोऽप्यदात्तद्रव्यचयं राज्ञे फलविनिर्गतम् ॥ २५ ॥
 दत्त्वा कोशेश्वरायैव रत्नानि त्यागसागरः ।
 पुनः श्रमणमायातं तं पप्रच्छ महीपतिः ॥ २६ ॥

क्षान्तिशीलव्यवसित चित्र ते प्रतिभाति मे ।
 किं रत्नं पृथिवीमूल्यं ग्रामुमिच्छस्यत परम् ॥ २७ ॥
 इति पृष्टो नृपतिना श्रमणं प्राह तं नर ।
 बद्धप्रतिज्ञमाधाय निजवाञ्छितसिद्धये ॥ २८ ॥
 अनुलङ्घितमर्यादां परायासासहिष्णव ।
 सेव्या न कस्य नृपते त्नादृशा शौर्यसागरा ॥ २९ ॥
 परार्थायोच्चैवपुं सर्वाशापोपशालिन ।
 राजदुर्गतिमित्रस्य त्नादृश को न याचक ॥ ३० ॥
 अस्या कृष्णचतुर्दश्या श्मशाने मग्नसाधना ।
 ममास्ति काचित्त्र त्वं द्वितीयो भव साधक ॥ ३१ ॥
 महाबटतरोर्मूले स्थिते मयि निशि त्वया ।
 आगन्त यं महापीरं करवालविभूषिणा ॥ ३२ ॥
 इत्याभाष्य तथेत्युक्त्वा क्षमापालेन प्रतिश्रुते ।
 श्रमणं प्रययौ हृष्टः प्रवेष्टुं मग्नसाधनम् ॥ ३३ ॥
 ततस्तस्या निशि नृपः खड्गी रुचिरकुण्डल ।
 तं ययौ भूतलशशी यशोविशदचन्द्रिक ॥ ३४ ॥
 चलद्वज्राशुक्रकच्छायाशरलिताम्बर ।
 किरीटमणिसच्छायो रत्नाद्विरिव जङ्गम ॥ ३५ ॥
 तमालकलितोत्तसकालागरविलेपन ।
 नीलाशुको गजच्छायायासाकार इवेश्वर ॥ ३६ ॥
 रराज त्रनतमस्य तारहारकरो निशि ।
 तत्कालोल्लासिवपुषा सत्त्वेनेव प्रकाशितम् ॥ ३७ ॥
 फस्तूरीशोढता गात्रे जयकुञ्जस्ता पुर ।
 मायूरच्छत्रता भूर्ध्नि मुहुस्तास्य ययौ तम ॥ ३८ ॥
 मौलिमालापरिमलयालीलातिरुणैर्भौ ।
 तपानामग्नये रुद्ध्या स्वामिवादाश्रुरिव ॥ ३९ ॥

ततः श्मशानं स प्राप निःशब्दो भूतसंकुलम् ।
 सर्वापायमयं कायमिवायासश्रुताश्रयम् ॥ ४० ॥
 मन्त्रिष्कलितशुभ्रास्त्रिप्रकरं लोहितासवम् ।
 आर्काडमिव कालस्य कपालचपकाकुलम् ॥ ४१ ॥
 धूमान्धकारमलिनं चरेन्द्रारावगर्जितम् ।
 चैद्यचित्तामितटितं कालमेवमिवोत्थितम् ॥ ४२ ॥
 गृध्रकृष्टाघ्नमालाभिः कृतं प्रारम्भविभ्रमम् ।
 काल्या इवोरसवोन्मत्तकृत्तिकाभृतकम्पतिम् ॥ ४३ ॥
 जीर्णास्त्रिनलकच्छिद्रैक्षिप्रविज्ञानमारुतम् ।
 संचरद्योगिनीवृन्दनूपुरैरिव रावितम् ॥ ४४ ॥
 दिक्षु प्रतिकैलद्वोपस्फारहुंकारहुंकृतम् ।
 त्रिजगत्पल्लवारम्भकृतोद्धारमिवान्तकम् ॥ ४५ ॥
 मण्डितं मुण्डस्रण्टेन दुष्टकङ्कालमालिनम् ।
 ज्वलिताङ्गारनयनं द्वितीयमिव भैरवम् ॥ ४६ ॥
 मत्स्यप्रहृषिराभूरसंपूरितवृंकोदरम् ।
 कर्णशल्क्योद्धृतारावं दुःशासनवपाकुलम् ॥ ४७ ॥
 संचरद्वीमपुरुषं द्वितीयमिव भारतम् ।
 बहुच्छलं घृतमिव स्त्रीचित्तमिव दारुणम् ॥ ४८ ॥
 अविवेकमिवानेकशङ्कातट्टनिकेतनम् ।
 सरोत्कटजननानं घोरसर्पनस्तावृतम् ॥ ४९ ॥
 दण्डकारण्यसदृशं मारीचरुचित्रान्तरम् ।
 आताकम्पनधूमाश्लेषनादविमूषणम् ॥ ५० ॥
 लङ्कादाहमिवोद्धृतं जीवद्रवणविस्तृतम् ।
 समप्रदुःस्तनिलयं मृतसंयमर्हणम् ॥ ५१ ॥

बहुच्छिद्रं घनाच्छिष्टप्रेतराशिनिरन्तरम् ।
 पलाशशतसंवाधं चितानिःशेषितद्रुमम् ॥ ५२ ॥
 शिवाभिर्व्याप्तमशिवं आन्तान्तकमनन्तकम् ।
 निकुम्भकुचकुम्भाभिर्विपुलश्रोणिभिर्मुहुः ॥ ५३ ॥
 दिगम्बराभिर्नारीभिः कल्पिताकाण्डताण्डवम् ।
 गृध्रगोमायुगहनं काककङ्ककुलाकुलम् ॥ ५४ ॥
 प्रमत्तमृतचेतालं मालामेलकमालितम् ।
 पिशाचशाकिनीयुक्तं लड्डुमल्लमण्डलम् ॥ ५५ ॥
 स्पृष्टाट्टहासमकटं क्रीडच्चक्रेधरीचयम् ।
 भयंकरं भयस्यापि विमोहस्यापि मोहनम् ॥ ५६ ॥
 तमसोऽप्यन्धतमसं कृतान्तस्यापि कम्पनम् ।
 दृष्ट्वा पितृवनं घोरं डाकिनीगणसेवितम् ॥ ५७ ॥
 क्षान्तिशीलं वटतले सोऽपश्यत्कृतमण्डलम् ।
 दृष्ट्वा प्रणम्य तं ग्राह्यं प्राप्तोऽहं करवाणि किम् ॥ ५८ ॥
 इति श्रुत्वावदद्विषुर्हर्षव्याकोशलोचनः ।
 राजन्सत्त्ववतां धुर्य धैर्येणानेन तेऽधुना ॥ ५९ ॥
 मन्ये समस्तघीराणां यशसां केतुराहितः ।
 क्रोशमात्रमतिक्रम्य दक्षिणाशामुखः प्रभो ॥ ६० ॥
 इतो गच्छ तमानेतुं शिशिपोल्लम्बितं नरम् ।
 इति तस्य गिरा राजा घोरे तमसि सोल्लसुकः ॥ ६१ ॥
 गत्वा ददर्श तं शुष्कं वृक्षं नीचमिवोद्धतम् ।
 दद्विमिव विच्छाद्यं पिशाचमिव भीषणम् ॥ ६२ ॥
 शुकाव्यमिव विच्छिष्टं विद्रालं शिथिलतरुम् ।
 सुमाननं चावनतं सरलसस्तदोर्युगम् ॥ ६३ ॥
 दीर्घाग्रपादं तैस्याग्रे स चापदयधृपः शयम् ।
 शुवि पुण्यं मया नीप्तं हस्तेनाप्तं न किञ्चन ॥ ६४ ॥

विमुक्तहस्तं संतापाद्वितीबाधोमुखं स्मितम् ।
 तस्मात्स्थ तं मुक्त्वा कण्ठपाशमपातयत् ॥ ६५ ॥
 पतितः सोऽथ चुकोश हा हतोऽस्तीति सञ्चयन् ।
 करुणाकृणितमना भूपालोऽप्यनुरुह्य तम् ॥ ६६ ॥
 मुहुर्मुहुः परामृश्य निनिन्द निजसाहसम् ।
 स च क्षणादट्टहासं मटेको विकटं व्यधात् ॥ ६७ ॥
 भूतानां समभूधेन स्पष्टं कण्ठकिता तनुः ।
 ततस्तूर्णमदृश्योऽसौ तस्मिन्नेव लतान्तरे ॥ ६८ ॥
 तेनैव कण्ठपाशेन तथैवोद्भवितः स्मितः ।
 वेतालमायां विज्ञाय पुनरास्थ पादपम् ॥ ६९ ॥
 तमादाय नृपः स्कन्धे जवेन महता ययौ ।
 स्कन्धस्थितस्तमवदद्वेतालः शृणु भूपते ॥ ७० ॥
 कथयामि कथां तुभ्यं दूरेऽञ्चनि मुनन्दिनीम् ।
 अस्मि वाराणसी नाम श्रीकण्ठदयिता पुरी ॥ ७१ ॥
 गौरीहृताहिमगिरिस्फारैः स्फटिकमन्दिरे ।
 प्रतापमुकुटो नाम तस्मासीन्महीपतिः ॥ ७२ ॥
 धौर्यत्वापमुकुटा ससंख्येवानिशं बभौ ।
 तस्य भूमिपतेः प्राणप्रिया सोमप्रमामवत् ॥ ७३ ॥
 शक्तिः पुत्रशरत्सेव त्रैलोक्यविजयोद्यमे ।
 द्युतिमान्वज्रमुकुटमस्तां तेन मुतोऽञ्चनि ॥ ७४ ॥
 सरेन्दुनायका यस्य लज्जन्ते रूपसंपदा ।
 तस्य बुद्धिशरीराख्यो मन्त्रिपुत्रः सस्तामवत् ॥ ७५ ॥
 अद्वितीयः सदा प्रेमलीलाविश्रम्भसंपदान् ।
 कदाचित्तेन सहितः स ययौ मृगयारसात् ॥ ७६ ॥
 वनं कुरङ्गनातङ्गशार्ङ्गलशरमाकुलम् ।
 स तत्र चापकेहारकूक्रोषान्मृगेश्वरान् ॥ ७७ ॥

हत्वा विवेश व्याकोशकुलवल्लीयुतं वनम् ।
 तस्याविदूरे फुल्लान्नं ददर्श विमलं सरः ॥ ७८ ॥
 स्फाटिकं वनदेवीनामिव विभ्रमदर्पणम् ।
 तत्सरः स्नातुमायातां कन्यां दासीशतैर्वृतम् ॥ ७९ ॥
 आलुलोके नृपसुतः शशिलेखामिवोद्भूताम् ।
 तस्याः कुवलयच्छायैः कटाक्षैश्चटुलांशुभिः ॥ ८० ॥
 नृत्यच्छिखण्डमालेव चकासे काननस्थली ।
 अघरांशुभिराकाशे निविडैर्विम्बबन्धुभिः ॥ ८१ ॥
 या बभारेव लावण्यजलधौ विद्रुमावलीम् ।
 जातौ यस्याः कुचौ कान्तिवापीकर्मलकोरकौ ॥ ८२ ॥
 ययोर्दोर्धुगलं घटे विसकाण्डकुटुम्बताम् ।
 उवाह या तनुलता भृङ्गालीं रोमवल्लरीम् ॥ ८३ ॥
 पश्चाद्विपक्तां वैमल्याद्विम्बितामिव वेणिकाम् ।
 या हंसगामिनी रेजे निःकणन्मणिनूपुरा ॥ ८४ ॥
 श्रीरिवाम्बुजसंचारलया सिञ्जानपट्टपदी ।
 तां विलोक्येन्दुवदनां नयनानन्दकौमुदीम् ॥ ८५ ॥
 सहसा राजपुत्रोऽभूत्किमप्युल्लासिमानसः ।
 सापि तं वीक्ष्य कामस्य प्रतिमानं धनुर्धरम् ॥ ८६ ॥
 बभौ बालानिलालोलवल्लीव ललिताकृतिः ।
 लीलवती समादाय सा निजं शेखरोत्पलम् ॥ ८७ ॥
 कर्णे चकार लोलाक्षी सचिवं लोचनश्रियः ।
 अपनीय ततः कर्णान्मुहुर्दन्तैरवौदयत् ॥ ८८ ॥
 सविभ्रमं च चिक्षेप खण्डितं पादयोस्तले ।
 ततोऽप्याहृत्य सा कन्या निदधे तत्कुचस्थले ॥ ८९ ॥

इति सराकुला चक्रे किमप्यात्योर्षसूचकम् ।
ततो महत्तेराहता सा ययौ वलितानना ॥ ९० ॥
विस्मज्य राजपुत्राय दूर्ती नेत्रप्रमामिव ।
ध्यायन्ती राजतनयं सा प्राप्य निजमन्दिरम् ॥ ९१ ॥
बभूव विरहक्षामा प्राचीव दशिनः कला ।
राजपुत्रोऽपि नगरीं प्रविश्य सरतापितः ॥ ९२ ॥
दिनैरेवामवद्बालप्रवालशयनाश्रयः ।
ततो बुद्धिशरीरस्तं सैरं मग्निसुतोऽब्रवीत् ॥ ९३ ॥
कोऽयं देव तवापायो धैर्यस्य धृत्तिसागरः ।
कासौ कास्ते सुता कस्य केति चिन्ताज्वरं सखे ॥ ९४ ॥
त्यज जानाम्यहं सर्वं तथैव प्राद्विवेदितम् ।
कर्णे यदुत्पलं चक्रे तत्कर्णोत्पलमूपतेः ॥ ९५ ॥
पुरःस्थिता सा कालिङ्गः स प्रसिद्धो हि पार्थिवः ।
संग्रामवर्धनो नाम सचिवो दन्तघाटकः ॥ ९६ ॥
विश्रुतो दिक्षु तस्यास्ति तत्पुत्री सा भुवं सखे ।
अत एवोत्पलं तत्र दन्तेन खण्डितं तया ॥ ९७ ॥
सा च पद्मावती नाम पादपद्माहितोत्पला ।
यद्यघातघ हृदये तत्तस्या बल्लभो भवान् ॥ ९८ ॥
तदेहि तावद्दृष्ट्वावो भृगवाच्छन्नना पुनः ।
इति श्रुत्वा नृपसुतस्तत्सखः प्रययौ क्षणात् ॥ ९९ ॥
कालिङ्गविषयं पृथ्वी विप्रसंध्या हि रागिणाम् ।
तत्र प्रविष्टौ वृद्धायाः प्रतिश्रयधिया गृहम् ॥ १०० ॥
पप्रच्छतुस्तावैत्र त्वं जानीषि दन्तघाटकम् ।
इति ताम्यां रंहः पृष्ट्वा सावदज्जर्जराकृतिः ॥ १०१ ॥

संग्रामवर्धनो मन्त्री राज्ञोऽसौ दन्तघाटकः ।
 तस्य पद्मावती नाम तनयास्ति मुलोचना ॥ १०२ ॥
 तद्गृहे गर्भदास्यसि सर्वं जानामि तत्कुले ।
 इति वृद्धावचः श्रुत्वा निजवृत्तं निवेद्य तौ ॥ १०३ ॥
 चक्राते दत्तसंकेतौ तस्यास्तामेव दूतिकाम् ।
 सा तदन्तःपुरं गत्वा तस्यै सर्वं निवेद्य यत् ॥ १०४ ॥
 पद्मावती चै तच्छ्रुत्वा मिथ्याकोपाकुलामवत् ।
 आ वृद्धदासि दुःशीले वालां भामवमन्यसे ॥ १०५ ॥
 उक्त्वेति कर्पूरकरात्तां जघान कपोलयोः ।
 ततो भग्नमुखी वृद्धा समम्येत्य निजं गृहम् ॥ १०६ ॥
 ताभ्यां सर्वं यथावृत्तं साधुनेत्रा न्यवेदयत् ।
 राजपुत्रस्ततः प्राह निःश्वासग्लपिताधरः ॥ १०७ ॥
 अहो मे पुण्यहीनस्य वृथा जातोऽयमुद्यमः ।
 स्वस्ति तुभ्यं मम प्राणाः कापि गन्तुं समुद्यताः ॥ १०८ ॥
 न सहे विरहं सद्यस्तया छिन्नो मनोरथः ।
 इति मन्त्री वचः श्रुत्वा राजपुत्रेण भाषितम् ॥ १०९ ॥
 रहस्तमवदद्वैर्यं भज सिद्धं समीहितम् ।
 दशास्या गण्डयोः पश्य सकर्पूराः कराङ्गुलीः ॥ ११० ॥
 तयोक्तं शुक्लपक्षस्य दश शेषा निशा इति ।
 अलक्षितः कृष्णपक्षे ध्रुवं तां समुपैष्यसि ॥ १११ ॥
 इति तेन कृताश्वासो राजपुत्रो व्यलम्बत ।
 ततो दशमु यातेषु वासरेषु यदृच्छया ॥ ११२ ॥
 कन्यकान्तःपुरं गत्वा वृद्धा पुनरुपाययौ ।
 अलक्षकाङ्क्षमालोक्य हृदि तस्यास्त्रिचन्द्रकम् ॥ ११३ ॥
 रहो मग्निमुतः प्राह सोत्कण्ठं भूमिपात्मजम् ।
 सरेऽस्या रजसा रात्रित्रयमावर्तते तनुः ॥ ११४ ॥

पद्मयास्या हृदये न्यस्तं तया शोणाङ्गुलित्रयम् ।
 इति श्रुत्वा पुनर्ध्यायन्त तामायतलोचनाम् ॥ ११५ ॥
 सहस्रयामतां यातमनयद्यामिनीत्रयम् ।
 ततो बृद्धा चतुर्थेऽहि गत्वा पुनरुपागता ॥ ११६ ॥
 तावुवाचाद्य याताहं तथा संपूजिता भृशम् ।
 तत्कालं स्फोटितालाने निर्गते मत्तकुञ्जरे ॥ ११७ ॥
 हर्म्येण रज्जुमालम्ब्य सा भीता विससर्ज माम् ।
 इति बृद्धागिरं श्रुत्वा विसृष्टो मग्निसूनुना ॥ ११८ ॥
 तेनैव रज्जुपात्रेण स प्रापान्तःपुरं निशि ।
 चेदिकामिः समुत्क्षिप्तः प्रासादेन प्रविश्य सः ॥ ११९ ॥
 न्यस्तस्फटिकपर्यन्तं विवेश मणिमन्दिरम् ।
 दीपरत्नांशुकपिशो सुप्तकञ्चुकिमण्डले ॥ १२० ॥
 पाताल इव तत्रासी तां भुजङ्गी व्यलोकयत् ।
 प्रसुप्तां हिमा नम्रां तां राजतनयोऽवदत् ॥ १२१ ॥
 सोत्कम्पकुंचविन्यस्तहस्तमत्रस्तविग्रमाम् ।
 अयि मानसदुग्धाब्धिचन्द्रिके लज्जया नवाम् ॥ १२२ ॥
 उत्तानय दशं सन्तु दिशः कुवल्याकुलाः ।
 इत्युक्त्वा रत्नपात्रेण मालतीसितमुन्दरी ॥ १२३ ॥
 अपाययत्तां माघ्यीकं पपौ च घनसौरभम् ।
 दृष्टात्कण्ठग्रहानन्दमीलितार्धविलोचनाम् ॥ १२४ ॥
 मदारुणकपोलां तां चुचुम्ब सरसं ततः ।
 सा तेन कुञ्जरेणैव समाक्रान्ता सरोजिनी ॥ १२५ ॥
 चर्कोदो निष्कण्ठत्वाञ्जीकलहंसकुलावली ।
 अकृत्रिमविलासाश्चमद्विशितकलाक्रमम् ॥ १२६ ॥
 अविभागाद्भुमगं बभूव मुरतं तयोः ।
 एवं प्रतिनिधं श्यामा गूढं तेन समागता ॥ १२७ ॥

अमूदुद्भिन्नसंमोगकुसुमसेरमञ्जरी ।

ततः कदाचित्सस्सार राजपुत्रो बहिः स्थितम् ॥ १२८ ॥

मग्निपुत्रोऽपि देशेऽसिन्कथमेकश्चरेदिति ।

ज्ञात्वान्यमनसं कान्तं पृष्ट्वा चैश्रुततत्कथा ॥ १२९ ॥

उवाच किं त्वया नासौ मुहन्मे प्रकटीकृतः ।

पूज्यः स धीमतां धुर्योऽज्ञासीत्तन्मदिङ्गितम् ॥ १३० ॥

तत्कृते प्राहिणोम्यद्य विचित्रं त्विष्टमोजनम् ।

उक्त्वेति विससर्जाशु राजपुत्री तदन्तिकम् ॥ १३१ ॥

विचित्रमाल्यताम्बूलं मोजनं च स्वयं कृतम् ।

मग्निपुत्रस्तदादाय राजपुत्रममापत ॥ १३२ ॥

अहो त्वया कृतं जाड्यं यदहं प्रकटीकृतः ।

(विषेदिग्धमिदं सर्वं तथा मे ग्रहितं सखे) ॥ १३३ ॥

न सहन्ते हि रागिण्यो भर्तुः प्रेमपदं जनम् ।

इत्युक्त्वा तच्छ्रुने प्रादात्सोऽपि तेनामवद्वसुः ॥ १३४ ॥

ततस्तौ कोपकलुषौ तदालोक्य बभूवतुः ।

कर्णोत्पलस्य नृपतेरसिन्नवसरे प्रिये ॥ १३५ ॥

पुत्रे दैवाद्दिवं याते राजपुत्रं सखावदत् ।

अद्य तस्यास्त्वया गत्वा मैत्राया भूषणावलीम् ॥ १३६ ॥

समादाय नखैः कार्यं त्रिशिखं लक्ष्म विग्रहे ।

इति तद्वचसा सर्वं कृत्वा राजसुतो निशि ॥ १३७ ॥

गृहीताभरणः क्षिप्रं ततः प्राप्तस्तदन्तिकम् ।

भतिवेषोऽष्टवीं गत्वा मग्निपुत्रस्तमर्चवीत् ॥ १३८ ॥

अर्धुना मौक्तिकलतां नयैतां विक्रयावनिम् ।

प्रदर्शनीया सर्वत्र दातव्या न तु कस्यचित् ॥ १३९ ॥

१. 'दि' क. २. 'तं' क. ३. 'मि' क. ४. एतच्छ्रोत्रान्तर्गतः पाठः क-पुस्तके
दुष्टः. ५. 'हृता' क. ६. 'न्यपात्' क. ७. 'नर्प्या' क.

कस्येयमिति पृष्टेन निर्देश्योऽहं त्वया सखे ।
 इति तेन विसृष्टोऽसौ विपणे समदर्शयत् ॥ १४० ॥
 राजपुत्रोऽपि तत्कारुं छन्नवेपादलक्षितः ।
 तां दृष्ट्वा राजपुरुषैः पृष्टः कस्येयमित्यथ ॥ १४१ ॥
 तं कूटव्रतमभ्येत्य गुरोरसेत्युवाच तान् ।
 सोऽपि पृष्टोऽबदद्राजा स्वयमेत्य शृणोतु मे ॥ १४२ ॥
 इति तद्वचसा तूर्णं नृपं प्राप्तमुवाच सः ।
 राजंस्तव पुरे छन्ना दन्तघाटकपुत्रिका ॥ १४३ ॥
 डाकिनी ग्राम्यति सदा रजनीषु दिगम्बरा ।
 इहाकृष्य विसृष्टोऽसावेकदा त्वत्सुतोऽनया ॥ १४४ ॥
 तत्कोपाच्च त्रिशूलेन मया गात्रे समाहता ।
 इदं चाभरणं तस्या मया सुवहुमौक्तिकम् ॥ १४५ ॥
 (प्राप्तं भीता पलाय्यासौ पितुर्वेश्म पुनर्गता) ।
 निर्वासितां पुरात्मापा सा स्त्री न वधमर्हति ॥ १४६ ॥
 इति कर्णोत्पलो राजा श्रुत्वा कोपानलाकुलः ।
 स्त्रीभिर्विज्ञाय तद्गात्रे प्रत्यग्रां त्रिशिखाहतिम् ॥ १४७ ॥
 पद्मावतीं स्वनगरान्निःसार्योद्भ्रान्तमानसाम् ।
 विवासितां च तां पश्चात्तौ स्ववेधौ प्रजग्मतुः ॥ १४८ ॥
 सप्रलापा प्रतीपौघैः कुर्वाणा क्रन्दितैर्दिशः ।
 आधराजस्य पुत्रस्तां सहितो मन्त्रिसूनुना ॥ १४९ ॥
 ततो वाराणसीं गत्वा विललास तया चिरम् ।
 संग्रामवर्धनोऽप्यस्याः पिता तदुःखवैदिना ॥ १५० ॥
 स्फुटितात्मा व्यसुरमूढयितानुगतः क्षणात् ।
 कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ वसुधाधिपम् ॥ १५१ ॥
 मुताशोकविपन्नौ तौ कस्य पापाय मूषते ।
 ज्ञात्वाप्यनुव्रतौ मूर्खा शतधा ते मविष्यति ॥ १५२ ॥

इति तेन नृपः पृष्टो वमापे गतसंभ्रमः ।

राजपुत्रः प्रिया चास्य न वाच्यौ मन्मथाकुलौ ॥ १५३ ॥

प्रभुभक्तिव्रतो घीमान्मन्त्रिपुत्रोऽप्यकल्मषः ।

कर्णोत्पलस्य नृपतेः पातकं तत्प्रमादिनः ॥ १५४ ॥

यो न पश्यति चारेण राजवृत्तान्तमन्धवत् ।

इति मौने परित्यक्ते राज्ञा तूर्णमलक्षितः ।

स वेतालस्तरोरग्रे तथैवोलम्बितः स्थितः ॥ १५५ ॥

इति प्रथमो वेतालः ॥ १ ॥

मूयो वृक्षमथारुह्य तमादाय ययौ नृपः ।

स च स्कन्धगतः प्राह नरेन्द्र श्रूयतामिति ॥ १५६ ॥

ब्रह्मसेनाग्रहारेऽमृत्कालिन्दीकूलसंश्रये ।

अग्निस्वामीति विप्रेन्द्रो दाता श्रुतिविदां वरः ॥ १५७ ॥

तस्य मन्दारवत्याख्या पुत्री दिव्योचितामवत् ।

कान्ता मन्दारमालेव नेत्रपद्मदहारिणी ॥ १५८ ॥

रूपेण विश्रुतां दिक्षु तामोयतविलोचनाम् ।

अयाचन्त द्विजवरा बहवः सत्कुलोचिताः ॥ १५९ ॥

ततः कदाचित्तरुणाः कान्तिमन्तो द्विजास्त्रयः ।

मिथो दर्पेण संक्रान्ता इव तुल्याकृतिश्रियः ॥ १६० ॥

कन्याजनकमभ्येत्य मुन्दरीं तां ययाचिरे ।

ममैवासौ ममैवासाविति स्पर्शानुबन्धिनः ॥ १६१ ॥

एकसौ चेद्दासेनां द्वौ मृतावेव विद्धि नौ ।

इति तेषां समाकर्ण्य पिता तां न ददौ भयात् ॥ १६२ ॥

तेऽपि तां नयनानन्दसौन्दर्यामृतवाहिनीम् ।

सदा विलोक्य प्रययुस्तत्रैव विहिताश्रयाः ॥ १६३ ॥

ततः कालेन सा घातुर्नैर्घृण्यात्पेशलाकृतिः ।

जगाम पयतां बाला लोचनाल्लोत्सवैः सह ॥ १६४ ॥

९. शशाङ्कवत्याम्-वेतालपञ्चविंशतिका ।] बृहत्कथामञ्जरी । ३०१

चित्तसंदर्धनं यच्च यच्च नेत्ररसायनम् ।
 विराय निरनुक्रोशः सहते तद्विधिः कथम् ॥ १६५ ॥
 निर्यातजीवितां बालां पतितां कदलीमिव ।
 तत्कान्तिचन्द्रिकाचन्द्रचकोरा शुशुचुर्द्विजाः ॥ १६६ ॥
 एकस्ततो ययौ दुःखी जटामसविलेपनः ।
 अन्यस्तदस्त्रीन्यादाय तीर्थाय प्रययौ कृती ॥ १६७ ॥
 श्मशाने चापरस्तस्यौ तद्भस्मशयनाश्रयः ।
 रागिणां किमकार्यं हि स्त्रिया संहतचेतसाम् ॥ १६८ ॥
 प्रथमः पृथिवीं भ्रान्त्वा भस्मसेरशरीरकः ।
 रुद्रशर्माभिधानस्य गृहं प्राप्तो द्विजन्मनः ॥ १६९ ॥
 तत्रोपमग्नितप्तेन प्रस्तुतो मोक्षुमैक्षत ।
 क्षिप्तं तज्जायया बहौ पुत्रं रोदनकोपतः ॥ १७० ॥
 तस्मिन्निःशेषनिर्दग्धे भोजनाद्विरतो व्रती ।
 उवाच चण्डालगृहं प्राप्तोऽहमशनाशया ॥ १७१ ॥
 इत्याकर्ण्य गृहस्योऽपि जग्राह निजपुस्तकम् ।
 सिद्धमग्नं समुद्धृत्य ततः पुत्रमजीवयत् ॥ १७२ ॥
 दृष्ट्वेति विसितः क्षिप्तं घ्यात्वा रात्रौ जटाधरः ।
 तं मग्नमनयत्कान्ताजीवनायाशु पुस्तकात् ॥ १७३ ॥
 सोऽयं संप्राप्य तरसा तत्स्मशानमभोजनः ।
 ददर्श तीर्थादायातमेकं तत्र निवासिनम् ॥ १७४ ॥
 तावपास्य प्रियामसकूटोपान्तात्स मग्नवित् ।
 रजश्चिक्षेप येनासौ समुत्तस्यौ द्विजात्मजा ॥ १७५ ॥
 लावण्यललिताकारां मन्मथानलदीपिकाम् ।
 पीयूषकालकूटाक्षां दुग्धाब्जिलहरीमिव ॥ १७६ ॥
 यदनप्रतिमा चन्द्रो रणरूपुरमेतलाम् ।
 नलिनीमिव कामस्य विलोदनयनोत्पलाम् ॥ १७७ ॥

ते दृष्ट्वा विसायानन्दसंघर्षशालिनः ।
 ममैवेयं ममैवेयमित्यूचुस्ते ससंग्रमाः ॥ १७८ ॥
 मन्मन्त्रेणोत्थिता तन्वी मयाप्ता तीर्थसेवया ।
 मयास्या रक्षितं मस्य तेषामित्यभवत्कलिः ॥ १७९ ॥
 कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ पृथिवीपतिम् ।
 राजन्धर्मेण सा कस्य दयिता सत्यमुच्यताम् ॥ १८० ॥
 इति पृष्टो नृपस्तेन धर्मापे शापकम्पितः ।
 तस्यास्तं जनकं मन्ये यस्तां ममैरजीवयत् ॥ १८१ ॥
 पुत्रकार्येण परेणास्याः शङ्के तीर्थेषु गच्छतम् ।
 वेताल तस्य धर्मेण तद्गुणशयनः पतिः ॥ १८२ ॥
 श्रुत्वेत्यलक्षितो गत्वा क्षिप्रं स्कन्धान्महीपतेः ।
 स शिशिपातरूपान्ते तथैवोलम्बितः स्थितः ॥ १८३ ॥
 इति द्वितीयो वेतालः ॥ २ ॥

राजा पुनस्तमादाय ययौ तूर्णं महाजवः ।
 स च स्कन्धस्थितः ग्राह नृपते श्रूयतामिति ॥ १८४ ॥
 श्रीमान्याटलिपुत्रेऽभून्नृपो विक्रमकेसरी ।
 तस्योचितोऽभवत्पुत्रः श्रीपराक्रमकेसरी ॥ १८५ ॥
 प्रियः क्रीडाशुकस्तस्य बभूव भुवि विश्रुतः ।
 सर्वशस्त्रेषु कुशलः कलासु च विचक्षणः ॥ १८६ ॥
 कान्ताप्रसादनोपायप्रगल्भो नर्मकोविदः ।
 अतीतानागतज्ञानपरिनिष्ठितमानसः ॥ १८७ ॥
 तं राजपुत्रः पप्रच्छ भार्या मे का भविष्यति ।
 इति पृष्टः शुकः ग्राह निजपक्षाङ्गिभिर्गुहः ॥ १८८ ॥
 कुर्वन्मरकतावद्धमिव काञ्चनपञ्जरम् ।
 राजश्चन्द्रावलोकस्य मगधाधिपतेः सुता ॥ १८९ ॥
 चन्द्रप्रभा नाम विभो भाविनी ते वधूरिति ।
 वधूत्वा राजतनयो वक्षगोऽभून्मनोभुवः ॥ १९० ॥

कामः संकल्पवसतिरिति सत्या जनस्थितिः ।

तस्या मगधपुत्र्याश्च सोमिका नाम सारिका ॥ १९१ ॥

वभूव विभ्रमसखी शुक्रस्य सदृशी गुणैः ।

तयापि तस्याः कथितो राजपुत्रः कथान्तरे ॥ १९२ ॥

श्रुत्वैव राजतनया येनाभूत्सारतापिता ।

कालेन मगधाधीशो आचितस्त्रां सुतां ददौ ॥ १९३ ॥

तस्मै नरेन्द्रपुत्राय महार्हविहितोत्सवः ।

स तया संगतः श्रीमान्रोहिण्येव निशाकरः ॥ १९४ ॥

विजहार मनोहारिकेसरोचानमूमिषु ।

अथैकपञ्जरासक्तः शुक्रः सारिकया सह ॥ १९५ ॥

तामुवाच प्रिये प्रेमभाजनं भज मामिति ।

सारिका प्राह पुरुषाः कृतघ्नाः क्रूरकारिणः ॥ १९६ ॥

न मद्यं रोचते तस्मात्त्वया प्रणयसंगमः ।

श्रुत्येति सारिकावाचं शुक्रः प्रोवाच सर्वथा ॥ १९७ ॥

पापस्यायतनं नायौ विपरीतं प्रभाषसे ।

इत्युत्पन्नविवादे ते समभ्येत्य नृपात्मजम् ॥ १९८ ॥

पप्रच्छतुः पणं वात्से कृतस्त्रीपुरुषान्तरम् ।

ताभ्यां पृष्टः सितमुखो राजपुत्रोऽभ्यभाषत ॥ १९९ ॥

श्रुत्वा स्त्रीपुंसयोर्दोषांस्ततो न्यायं प्रचक्ष्महे ।

इति तद्वचसा पूर्वं श्यामाङ्गी सारिकाब्रवीत् ॥ २०० ॥

चम्पकस्येव कलिकां विभ्राणां चञ्चुकन्दलीम् ।

अवन्तीवासिनः स्रुतार्थदत्तस्य संमतः ॥ २०१ ॥

वभूव धनदत्तारूपो वणिजो धनदक्षिणः ।

कालेन याते पितरि त्रिदिवं दयितासखे ॥ २०२ ॥

सोऽभवदुर्जनासक्तः किञ्चिदुन्मत्तशैशवः ।

स तैर्नित्यमकार्योऽपि साधु साध्विति वादिभिः ॥ २०३ ॥

मित्रैर्निःशेषविभवः कृतः स्त्रीधूतपानकैः ।
 एक एव ततः प्रायाद्विचहीनो दिगन्तरम् ॥ २०४ ॥
 जडास्त्यजन्ति पर्यन्ते घूर्ता भोगाक्षपट्पदाः ।
 स प्राप चन्दनपुरं आन्त्वा पृथ्वीं निराश्रयः ॥ २०५ ॥
 संतापार्त इव व्यालः शीतं चन्दनकाननम् ।
 तत्र तस्यै परिज्ञाय पुत्रीं रत्नवतीं ददौ ॥ २०६ ॥
 हिरण्यगुप्तो निष्पुत्रः प्रवरो धनिनां वणिक् ।
 सुखं स पूजितस्तेन स्थित्वा तत्र तया चिरम् ॥ २०७ ॥
 श्वशुरं प्राह गच्छामि स्वदेशं मातुरन्तिकम् ।
 इति श्रुत्वा मृशं तेन वारितोऽपि बधूसखः ॥ २०८ ॥
 अचिरात्पुनरेष्यामीत्युक्त्वा प्राप्तधनो ययौ ।
 स गच्छन्नार्यया सार्धं दास्या चानुगतः शनैः ॥ २०९ ॥
 निर्जनार्मटवीं प्राप्य श्वभ्रोपान्ते व्यचिन्तयत् ।
 करण्डिकविनिक्षिप्तमादायास्या विभूषणम् ॥ २१० ॥
 कुहरे प्रक्षिपाम्येनां बध्वा रज्ज्वा किमेतया ।
 ध्यात्वेति हृत्वालंकारं सदासीकां निपात्य ताम् ॥ २११ ॥
 ययौ कुतः कृतज्ञानां हृदये करुणाकराः ।
 सापि बाला लताजालधृता नैव व्यपद्यत ॥ २१२ ॥
 पञ्चतां त्वगमद्वासी भिन्नकर्मा हि संवृतिः ।
 ततः समुद्धृताभ्येत्य पान्थैः करुणकूजिनी ॥ २१३ ॥
 नीता पौरैः परिज्ञाता पितुरेव निवेशनम् ।
 सत्रासकम्पतरला पृष्टा पित्रा जगाद सा ॥ २१४ ॥
 द्रुतो मे भूषणैः सार्धं मर्ता दस्युज्जैरिति ।
 श्रुत्वेत्याधासिता तेन दत्त्वान्यां मूषणावलीम् ॥ २१५ ॥
 तस्यै तमेव ध्यायन्ती खिग्धमुग्धाशया पतिम् ।
 सोऽपि कालेन तत्सर्वं भक्षयित्वा विभूषणम् ॥ २१६ ॥

कितवः पुनरम्यायानिःशङ्कः श्वशुरालयम् ।

मृतासौ नैव विज्ञाता दुहिता भवतो ध्रुवम् ॥ २१७ ॥

याचे धनं तत्कृतेऽहं स ध्यात्वेति समाविशत् ।

प्रविश्य दृष्ट्वा तां तत्र स्वमार्यां मयकम्पितः ॥ २१८ ॥

हा हतोऽस्मीति संचिन्त्य शिलाहत इवामवत् ।

सापि व्यालोक्य दुहिता सहसैवोपसृज्य तम् ॥ २१९ ॥

कर्णेऽवदत्त तातेन तज्ज्ञातं यत्त्वया कृतम् ।

विश्रब्धो भव मा भैषीस्त्रयेत्याश्वासितो रहः ॥ २२० ॥

उवाच पूजितो हृष्टः श्वशुरावसथे चिरम् ।

ततः कदाचित्स धूतव्यसनादर्थलोलुपः ॥ २२१ ॥

विश्वासमगमत्सापि दृष्ट्वेपान्यमुन्दरीम् ।

तां हत्वा तदलंकारमादाय प्रययौ निशि ॥ २२२ ॥

इत्येवं पापचरिताः पुरुषा निर्घृणाशयाः ।

को नु दुष्टभुजज्ञानां तद्विधानां हि विश्वसेत् ॥ २२३ ॥

इति पुरुषदुष्टस्यायिका ॥ ३ ॥

श्रुत्वेति सारिकावाक्यं राजपुत्रः सत्रिस्रयः ।

ब्रूडामणिं विदग्धानामपृच्छत्संसितः शुक्रम् ॥ २२४ ॥

पृष्टः शोणमणिच्छायचक्षुर्मरकतप्रभः ।

रत्नाद्रिकुञ्जसिञ्जान इव क्रीडाशुकोऽवदत् ॥ २२५ ॥

हर्षवत्यभिधानायां धर्मस्य नृपतेः पुरि ।

धर्मूव धनदत्ताख्यः कुबेरसदृशो वणिक् ॥ २२६ ॥

मुतां वसुमतीं नाम स ददौ वसुमन्मयम् ।

कान्तां समुद्रदत्ताय तारुण्यतरुमञ्जरीम् ॥ २२७ ॥

दत्त्वा पुत्रीं प्रियां तस्यै ताम्रलितनिवासिने ।

अपुत्रो नात्यजद्रेहात्पुत्रत्वे परिकल्पिताम् ॥ २२८ ॥

कदाचित्सा शशिमुखी तुङ्गवातायनस्थिता ।
 ददर्श पथि सुस्नातं युवानं द्विजपुत्रकम् ॥ २२९ ॥
 तं दृष्ट्वा कामवातेन नदीवाकुलतां गता ।
 कुलकूलनिपाताय कृतारम्भावदत्सखीम् ॥ २३० ॥
 सखि पूर्णेन्दुवदनो द्विजोऽयं प्रतिभाति मे ।
 मुजङ्गो येन जातेयं विषव्याप्तेव मे तनुः ॥ २३१ ॥
 वृथा मे यौवनमिदं याति नेयं स्तनस्थली ।
 यदैतद्वक्षसि क्षिप्रं गाढालिङ्गनखर्वताम् ॥ २३२ ॥
 उक्त्वेति मन्मथहता तया चानाय्य तं रहः ।
 भेजे रतिं को हि शक्नो घर्तुं रागवतीमनः ॥ २३३ ॥
 सुचिरं रममाणायां तस्यां तेन विलासिना ।
 कौमारस्तपतिस्तूष्णमाययौ सोत्सुकश्चिरात् ॥ २३४ ॥
 पूजितः श्वशुरेणासौ निशि शय्यानिकेतनम् ।
 विवेश माल्यधवलं मधुपानारुणेश्चक्षुः ॥ २३५ ॥
 साप्यन्यसक्ता तं प्राप्य शीतार्तेवार्तिपीडिता ।
 मुजोरुस्तस्मिन्कान्तकुचश्रोणीतटास्रपत् ॥ २३६ ॥
 अवाप्नुस्वी निःश्वसन्ती स्पर्शसंकुचिता मुहुः ।
 स तां प्रसादयामास मुग्धो मौनावलम्बिनीम् ॥ २३७ ॥
 अन्यत्र बद्धसौहार्दाः सावलेपाः सदा ऋधः ।
 अधिकं क्लीबमूर्खाणां यान्ति बल्लभतां स्त्रियः ॥ २३८ ॥
 इति दुःखाकुला तन्वी पत्युः पार्श्वे ध्रुव सा ।
 कटुकौपधतुल्यं तं वेपमाना पितुर्भयात् ॥ २३९ ॥
 (सिंहेवे कम्पयन्ती सं शिरः कथमपि क्रुपां) ।
 अत्रान्तरे स्वसकेतं शून्योद्याने विधाय सा ।

रागिणी तं द्विजसुतं प्रसुप्ता मर्तुरन्तिके ॥ २४० ॥
 मधुमत्तं समालोक्य सुप्तं काष्ठमिवाचलम् ।
 उत्थाय लघुसंचारा गन्तुमुद्यानमुद्यता ॥ २४१ ॥
 अथ प्रविष्टस्त्रद्वेश्म चौरः खैरं ददर्श ताम् ।
 निर्यान्तीमन्तिकात्पत्युः सर्वाभरणभूषिताम् ॥ २४२ ॥
 छन्नेनानुगता तेन शून्योद्यानमवाप सा ।
 तं चौरशक्तिः कैश्चिद्दर्शोलम्बितं द्विजम् ॥ २४३ ॥
 तं दृष्ट्वा संविरुण्णेव पतिता विललाप सा ।
 हा प्रिय श्रमपीयूष प्रणयामृतदीधिते ॥ २४४ ॥
 कासि मे प्रियसर्वस्वं देहि कर्णामृतं वचः ।
 इत्युक्त्वा पाशमुन्मुच्य कण्ठे जग्राह तं शवम् ॥ २४५ ॥
 कृत्वा सकुसुमोत्तंसं तन्मुखं प्रचुचुम्ब च ।
 ताम्बूलगर्भमादाय वेपमानकाशधरा ॥ २४६ ॥
 ततः सपदि वेतालः कृतावेशः सुनासिकाम् ।
 तस्याश्चिच्छेद दशनैः सतीशिक्षां दिशन्निव ॥ २४७ ॥
 छिन्ननासाथ शनकैः शय्यां भर्तुरुपेत्य सा ।
 चुकोश हा हता तेन पापेनास्मीति सव्यया ॥ २४८ ॥
 प्रतिबुद्धः स सहसा किमेतदिति संभ्रमात् ।
 ब्रुवाणः श्वशुरेणेत्य श्रुत्वा च परिमर्त्सितः ॥ २४९ ॥
 नासिकां दुहितुश्छिन्नां दृष्ट्वा कोपात्स भूपतेः ।
 प्रातर्नीत्वा तमास्थानं तनयां तामदर्शयत् ॥ २५० ॥
 न मयास्याः कृतं किञ्चिदिति वादिनमेव तम् ।
 अहो घाट्यमिति प्राहुः सम्याः कोपपराङ्मुखाः ॥ २५१ ॥
 ततो राजाज्ञया तूर्णं प्रस्तुते तस्य निग्रहे ।
 स चौरोऽभ्येत्य तत्सर्वं नरनार्थं व्यजिज्ञपत् ॥ २५२ ॥
 राजा दद्यामयो रानिवृत्तान्तं विनिवेच सः ।

शवदन्तस्त्रितां नासां प्रत्ययार्थमदर्शयत् ॥ २५३ ॥

तामेव क्षिप्रमाधाय छिन्नकर्णं ततो नृपः ।

दण्डपालं स^१ नगरे चौरं चक्रे सदोत्थितम् ॥ २५४ ॥

इति स्त्रियः किल्बिषस्य द्रोहस्य च निकेतनम् ।

कस्तासामपशुर्नाम प्रेमपाशवशं व्रजेत् ॥ २५५ ॥

इति स्त्रीदुष्टाख्यायिका ॥ ४ ॥

इत्युक्त्वा राजपुत्राग्रे जातिं स्मृत्वाभवच्छुकः^२ ।

गन्धर्वश्चित्रसेनाख्यः सारिका च तिलोत्तमा ॥ २५६ ॥

कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ क्षमापतिं पुनः ।

पापस्यायतनं नार्यः पुमांसो वेति कथ्यताम् ॥ २५७ ॥

श्रुत्वेत्यभापत नृपः पापिनो विरला नराः ।

नार्यस्तु वेधसा यत्नात्किल्बिषैरेव निर्मिताः ॥ २५८ ॥

इत्याकर्ण्यैव वेतालः सहसादर्शनं गतः ।

राज्ञा चित्तोल्लुकेनाथ पुनर्दण्डस्तरुस्थितः ॥ २५९ ॥

इति तृतीयो वेतालः ॥ ५ ॥

मुक्तादृहासमादाय ततस्त्वं गतसंभ्रमः ।

ययौ जवेन नृपतिस्कन्धस्थः सोऽप्यभापत ॥ २६० ॥

मोहः पृथ्वीपते कोऽयं तवामि हृदि जृम्भते ।

दुष्टश्रमणसंपर्काद्यत्माप्तोऽसि महीमिमाम् ॥ २६१ ॥

दूरेऽध्वनि विनोदाय शृणु राजन्कथामिमाम् ।

अनार्योऽसं हि पाशेवं येधेष्टं कथनं पथि ॥ २६२ ॥

अस्ति शोभावती नाम नगरी संपदां निधिः ।

शुभो मृणमालेव मूरिल्लाविराजिनी^३ ॥ २६३ ॥

यमूय दृढकस्तसां यशस्वी पृथिवीपतिः ।

भार्गवादिकयाः कान्त्यै यद्वीरचरितैर्युः ॥ २६४ ॥

१. 'एतन्' क. २. 'दापि कम्' क. ३. 'सोल्लुकेना' क. ४. 'रादितया' क.

५. 'कन्धेस्तस्थ' क. ६. 'ता' क. ७. 'य दृढ' क. ८. 'यंताः' क.

नेत्राम्बु शत्रुनारीणां पातयन्ती निरन्तरम् ।
 धूमावली प्रतापाग्नेर्वमौ यस्यासिवल्लरी ॥ २६५ ॥
 यत्सोरुरत्नबलये दोष्णि कर्पूरपाण्डुरे ।
 निपसादेव पृथिवी निःशेषाशेषसंख्यया ॥ २६६ ॥
 चतुर्गुणगुणोपेतपृथुसत्त्वसखं मनः ।
 यस्य संमागिवैधर्म्यमद्वितीयस्तु त्रिक्रमः ॥ २६७ ॥
 तस्य सोमप्रभा नाम लावण्यामृतशालिनी ।
 यमूय यल्लभा चित्तकैरवस्यलशालिनी ॥ २६८ ॥
 तं कदाचिन्महास्थाने स्वितां शक्रमिवापरम् ।
 व्यजिज्ञपत्प्रतीहारो मौलिपल्लविताञ्जलिः ॥ २६९ ॥
 मालवीयो महासत्त्वः करवालसखो द्विजः ।
 देव वीरवरो नाम सेवार्थं द्रष्टुमिच्छति ॥ २७० ॥
 इत्युक्त्वा प्राप स नृपश्रुसमुल्लासशासनम् ।
 अवेशयद्वीरवरं राजसिंहगुहां समाप् ॥ २७१ ॥
 स प्रविश्य महीपालं ददर्श घबलांशुकम् ।
 लम्पदुग्याब्धिकल्लोलं विश्रान्तमिव मन्दरम् ॥ २७२ ॥
 विभ्राणं घबलोष्णीपमदृहासं जयश्रियः ।
 आयतनानं व्योम्नीव हेलकुटिलितं यशः ॥ २७३ ॥
 मौलिनीलमणिच्छायावल्यैर्दूरसर्पिभिः ।
 (दिशन्तं दिक्षु मूपानां मुखेषु दयामिकाभिव ॥ २७४ ॥
 विलोलकुन्तलोद्योतैर्विराजद्गण्डमण्डलम्) ।
 रणलीलासमुद्भूतैः पुलकैरिव नोज्झितम् ॥ २७५ ॥
 हेमसिंहासनासीनं तारहारविराजितम् ।
 मार्तण्डमिव मेख्यं दर्शवष्टेन्दुमण्डलम् ॥ २७६ ॥

इन्द्रनीलमहानीलशिलान्यस्ताद्विपङ्कजम् ।

करालकालीयशिरोन्यस्तपादमिवाच्युतम् ॥ २७७ ॥

तं वीक्ष्य सूचिताभिरुच्यैः स प्रणम्यावदद्विभो ।

खड्गद्वितीयः सेवान्ते करोमीत्युन्नताशयः ॥ २७८ ॥

सदा पञ्च प्रदीयन्तां रूपकानां शतानि मे ।

पुत्रः कुमारी भार्या चेत्येतावान्मत्परिग्रहः ॥ २७९ ॥

इति तद्विरमाकर्ण्य तद्वितीयं नरेश्वरः ।

इयता किं करोतीति चारैः शुश्राव तत्कथाम् ॥ २८० ॥

शतद्वयेन संपूज्य स्नातौ हरिमहेश्वरौ ।

शतद्वयं ब्राह्मणेभ्यो दीनेभ्यश्च प्रदोय सः ॥ २८१ ॥

गृहे विधत्ते निःशेषं शतेनैकेन तु व्ययम् ।

कृत्वैतदास्ते त्वद्वारि दिवारात्रिमतन्द्रितः ॥ २८२ ॥

श्रुत्वेति कथितं चारैः प्रदध्यौ विसितो नृपः ।

सत्यं यत्पृथिवीमूल्यमेकस्यापि मणेरिति ॥ २८३ ॥

ततः कदाचिद्गुह्यं रघुनमस्र इवाखिले ।

करालकालमहिपश्यामले दुर्विनागमे ॥ २८४ ॥

बलाकामण्डलसोरकपालशकलाकुले ।

विद्युच्चितानलालोले^१ श्मशान इव भीषणे ॥ २८५ ॥

मिथो मेघपिशाचानां विनिष्पेषैः सगर्जितैः ।

पतन्तीष्वम्बुधारासु दन्तमालाखिवानिशम् ॥ २८६ ॥

नीहारजालच्छिन्नासु दिक्षु संपट्टिताखिव ।

निवृत्तजैनसंचारे कल्पापाय इवागते ॥ २८७ ॥

निपण्णो निशि मृषालो घबलाशैयरोसरे ।

सिंहद्वारे स्थितः कोसावित्युच्चैरम्यमापतः ॥ २८८ ॥

१. 'पीठ' क. २. 'शः' क. ३. 'लोह' क. ४. 'यच्छति' क. ५. 'भयं
बहने' क. ६. 'य सयम्' क. ७. 'महिषाधारस्या' क. ८. 'लाघर' क. ९. 'ह'
क. १०. 'पुन' क. ११. 'ल' क.

देव स्थितोऽहं किं कार्यमिति वीरवरोऽब्रवीत् ।
 अर्धरात्रे पुनः पृष्टस्तदेव ग्राह निर्व्ययः ॥ २८९ ॥
 ततः शुश्राव नृपतिस्तारमाक्रन्दितं मुहुः ।
 रजन्या इव पर्जन्यराक्षसात्ते क्षपाकरे ॥ २९० ॥
 हा नाथ कमलाकेलिकमलायतलोचन ।
 हा हा प्रचण्डदोर्दण्डखण्डितारातिमण्डल ॥ २९१ ॥
 हा हा दिकामिनीकर्णेकर्पूरापूरसद्यशः ।
 इत्याकर्ण्याब्रवीत्कोऽत्र स्थित इत्यवनीश्वरः ॥ २९२ ॥
 ततो वीरवरं दूरात्स्थितोऽहमिति वादिनम् ।
 कः क्रन्दतीति कृपयादिदेश वसुधाधिपः ॥ २९३ ॥
 तस्मिन्मते तदन्वेष्टुं वारिधारावृताम्बरे ।
 नृपोऽप्यलक्षितः पश्चात्स्वयं स्वङ्गसखो ययौ ॥ २९४ ॥
 तस्याः स्फारानिलावर्तननितासीत्करावली ।
 मुखं चुचुम्ब नक्षत्रमालेव शशिशङ्कया ॥ २९५ ॥
 कण्ठे हारानुकारामिधाराभिर्धरणीमृतः ।
 खड्गेऽपि लेभे भिन्नेमसक्तमुक्तावलीश्रियम् ॥ २९६ ॥
 आक्रन्दितानुसारेण गत्वा वीरवरः स्त्रियम् ।
 मत्वा तां मधुरालापां शुचः पप्रच्छ कारणम् ॥ २९७ ॥
 कमलाकरमप्यस्मा सा ग्राह तमलक्षिता ।
 शिक्षयन्तीव माधुर्यं कलहंसकुलं गिरा ॥ २९८ ॥
 अहं देवी महीमर्तुः शूद्रकस्याग्रवलमा ।
 स च देवस्तृतीयेऽहि पूर्णायुर्दिवमेप्यति ॥ २९९ ॥
 तेन रोदिमि न त्वेषा प्राप्ताहं तद्गुणे चिरम् ।
 वराहर्दस्यापर्यङ्का विलासमुभगां स्थितिम् ॥ ३०० ॥

इति वीरवरः श्रुत्वा तामपृच्छत्कृताञ्जलिः ।

अप्यस्त्युपायः क्षमापालरक्षणे देवि कथ्यताम् ॥ ३०१ ॥

पृष्टेति पृथ्वी प्राहैनमस्त्येव यदि शक्यते ।

पुत्रं शक्तिवरं बालं चण्डिकायै ददासि चेत् ॥ ३०२ ॥

स्वयमुत्कृत्य स्वप्नेन ततो जीवति पार्थिवः ।

इति श्रुत्वा निजं गेहं ययौ वीरवरो निशि ॥ ३०३ ॥

अलक्षितेनानुयातो राज्ञा विसयशालिना ।

गृहे विबोध्य दयितां शिशुं शक्तिवरं वरम् ॥ ३०४ ॥

पृथिवीभाषितं सर्वमुवाचाविचलाशयः ।

तच्छ्रुत्वा चालकः प्राह घन्योऽहं प्रमुरक्षणात् ॥ ३०५ ॥

उत्सवो निधनं नाम भर्तृपिण्डोपजीविनाम् ।

मृत्यैरेव स्वयं मूल्ये क्रियते कायविक्रयः ॥ ३०६ ॥

इति वादिनमाधाय स्कन्धे शक्तिवरं सुतम् ।

स्वपुत्र्या भार्यया सार्धं स ययौ चण्डिकालयम् ॥ ३०७ ॥

तत्र दीपांशुकपिशसंचरद्योगिनीगणम् ।

राज्ञः श्रेयोऽस्त्विति प्राह छित्वा पुत्रस्य मस्तकम् ॥ ३०८ ॥

अयोधचार चतुरं चण्डिका वचनं दिवि ।

तुष्टा च भूभुजा प्राप्तमायुर्वर्षशतं पुनः ॥ ३०९ ॥

इति भूमिपतिश्छन्नो निशम्याचिन्तयत्सयात् ।

अहो धैर्यममर्यादमहो सत्त्वं द्विजन्मनः ॥ ३१० ॥

इति ध्यायति भूपाले आतरं वीक्ष्य कन्यका ।

दत्तं वीरवती नाम पद्मतां प्रययौ क्षणात् ॥ ३११ ॥

भार्या वीरवरस्यापि तेनैव रचितेऽनले ।

शोकासहा धर्मवती प्रियं तत्याज जीवितम् ॥ ३१२ ॥

श्रुतार्थोऽस्मीति संचिन्त्य हृष्टो वीरवरस्वर्तः ।

आत्मोपहारं दुर्गायै दातुमभ्युद्यतोऽबदत् ॥ ३१३ ॥

जय देवि जगज्जन्मजरामरणकारिणि ।
जय संरब्धदैत्येन्द्रहृदयाम्भोजदारिणि ॥ ३१४ ॥
जय पातालकुहराकारविस्फारितानने ।
उरुरावस्फुरत्तण्डव्रक्षाण्डभैरवीक्षिते ॥ ३१५ ॥
जय ताण्डवितोद्गण्डचण्डवातहताचले ।
रुडत्कङ्कालमालोग्रव्यावर्त्तगद्यालकुण्डले ॥ ३१६ ॥
जय दानवहृत्यन्नमालासृक्पद्मवशालिके ।
अकाण्डसंघ्यासंमत्तमूतवेतालमालिके ॥ ३१७ ॥
जय व्याकोशस्वप्नांशुश्यामीकृतदिगन्तरे ।
महिषासुरनिष्कृष्टवर्मणैवावृताखिले ॥ ३१८ ॥
इति स्तुत्वा मगवतीं शिरश्छित्त्वासिना निजम् ।
देव्यै निषेध सत्त्वाब्धिः स पपात महीतले ॥ ३१९ ॥
गणयित्वा क्षितिपतिस्त्रयस्तत्सर्वमूर्जितम् ।
बभूव विस्रयोत्साहैः स्पष्टरोमाश्चकधुकः ॥ ३२० ॥
एवंविधं विना मृत्युं किं श्रिया जीवितेन वा ।
(ध्यात्वेति निजमूर्धानं सोऽपि च्छेतुं समुद्यौ) ॥ ३२१ ॥
जीवितेन मदीयेन जीवत्वेपः सपुत्रकः ।
देवि वीरवरो वीरः श्रोवाचेत्यथ शूद्रकः ॥ ३२२ ॥
सहसा स्वर्गधाराग्रसंगते तस्य मस्तके ।
देवी साक्षादुवाचेदं मा कृथाः पुत्र साहसम् ॥ ३२३ ॥
सत्त्वेनानेन ते राजंस्तूर्णं वीरवरो द्विजः ।
सपुत्रपुत्रीदयितः समुच्छिद्यतु मद्वरात् ॥ ३२४ ॥
इति चण्डीगिरा तस्मिन्सानुगे सहस्रोत्थिते ।
अलक्षितः क्षणात्प्रायान्निजमन्तःपरं नृपः ॥ ३२५ ॥

ततो वीरवरो गत्वा विसयाकुलितो गृहे ।
 धृत्वा सदारिकां भार्यां राजद्वारं समाययौ ॥ ३२६ ॥
 राजा महिष्यै हर्षाय वृत्तान्तं विनिवेद्य तम् ।
 पुनः पप्रच्छ कोऽप्यत्र स्थित इत्यनभिज्ञवत् ॥ ३२७ ॥
 अहं वीरवरो देव स्थितः सा स्त्री भयेक्षिता ।
 न दृष्टा राक्षसी नूनं रुरोद निशि मायया ॥ ३२८ ॥
 इति वीरवरेणोक्तमाकर्ण्य जगतीपतिः ।
 प्रशशंसास्य तद्वैर्यमविकथनतां च ताम् ॥ ३२९ ॥
 ततः प्रभाते भूपालः समास्थानमुपागतः ।
 निवेद्य रात्रिवृत्तान्तं मन्त्रिभ्यो निश्चलस्ततः ॥ ३३० ॥
 ददौ वीरवरायाशु लाटराज्यं ससागरम् ।
 नर्मदाकूलसहितं सैगौडं दक्षिणापथम् ॥ ३३१ ॥
 तं च शक्तिवरं दत्वा राजानं दक्षिणापथे ।
 मेने तदुपकारस्य शतांशस्य प्रतिक्रियाम् ॥ ३३२ ॥
 कथयित्वेति वेतालो भूपालं पृष्टवान्पुनः ।
 शंस कोऽभ्यधिकस्तेभ्यो राजन्सत्त्ववतां वर ॥ ३३३ ॥
 (श्रुत्वेत्याह महीपालः सर्वे वीराः किमुच्यते) ।
 किं तु वीरव्रतस्यैषा धैर्यलक्ष्मीः कुलव्रतम् ।
 भृत्योऽसौ तत्किमाश्चर्यं सेवा हि प्राणविक्रयः ॥ ३३४ ॥
 तस्य पुत्रस्य तपुस्यो यदि तत्किमिवाद्भुतम् ।
 नहि सौवर्णशैलामात्काचखण्डः प्रजायते ॥ ३३५ ॥
 किं चित्रं यदि सत्त्वाद्या भार्या तस्य कुलोचिता ।
 नहि श्रिता कल्पतरुं बह्वी फाचिदकाशनी ॥ ३३६ ॥
 अत्र सत्त्ववतां धुर्यः श्रीमानेको नरेश्वरः ।
 विक्रीतजीविते भृत्ये यस्य प्राणैः प्रतिक्रिया ॥ ३३७ ॥

श्रुत्वेत्यदर्शनं यातो वेतालः शिशिपातरौ ।

अधोमुखो निरुच्छासस्तथैवालम्बितः स्थितः ॥ ३३८ ॥

इति चतुर्थो वेतालः ॥ ६ ॥

ततस्तमादाय नृपः प्रययौ विपुलाशयः ।

स च स्कन्धस्थितः प्राह शृणु चित्रं महीपते ॥ ३३९ ॥

द्विजोऽनूदङ्गविषये विष्णुत्तामी महाधनः ।

बभूवुस्तस्य तनयास्तरुणाः सुखशालिनः ॥ ३४० ॥

कदान्विद्याजिना तेन ते विस्तृष्टा महोदधिम् ।

यज्ञाय कूर्ममाहर्तुं ययुरादेशकारिणः ॥ ३४१ ॥

ते समुद्रं समासाद्य प्राप्य कूर्मं महाकृतिम् ।

दुरामोदं न जगृहुः पिच्छिलाङ्गं जुगुप्सवा ॥ ३४२ ॥

संप्राप्तेऽप्यगृहीतेऽस्मिन्कच्छपे घेयधारणात् ।

ध्रुवं नो याति जनको दीक्षामङ्गादयोगतिम् ॥ ३४३ ॥

गृहाण त्वं न शक्तोऽहं क्षमस्त्वं न त्वहं विमो ।

इति तेषाममृतत्र जल्पश्चिरमनल्पकः ॥ ३४४ ॥

नारीचक्रोऽहमुचितो वीमत्सेऽसिन्नकर्मणि ।

प्रातर्मोजनचक्रोऽहं शम्पाचक्रोऽधिकोऽप्यहम् ॥ ३४५ ॥

इति ते जातकलहा विटङ्कनगरेश्वरम् ।

प्रसेनजितमभ्येत्य पप्रच्छुर्निजगौरवम् ॥ ३४६ ॥

इति निधम्यतामघ मातर्दातासि चोत्तरम् ।

इति राशे सभादिष्टास्तस्युक्तत्रैव ते द्विजाः ॥ ३४७ ॥

अथैकः प्रस्तुतो मोकुं नवकर्पूरसौरभम् ।

शालिमौजनमम्लानं नाम्बनन्दद्विकृणितः ॥ ३४८ ॥

ततस्तन्दुलमजासीदुष्टमन्विष्य मूपतिः ।

श्मशाननिकटक्षेत्रजातधान्यसमुद्भवम् ॥ ३४९ ॥

सत्यं भोजनचक्रोऽयमित्युक्त्वा विस्मितो नृपः ।
 दिदेश नारीचक्राय दासीं कुवलयेक्षणाम् ॥ ३५० ॥
 समालयसौरमाहूतभृङ्गव्याकुलमालिनीम् ।
 तस्य शय्यान्तिकं प्राप्य तस्यौ हासविलासिनी ॥ ३५१ ॥
 नारीचक्रोऽप्यथोत्थाय करस्थगितनासिकः ।
 घृवनव्याकुलस्तत्र निर्ययौ सहसा वहिः ॥ ३५२ ॥
 हतश्छागलगन्धेन वताहं दुष्टयोपिता ।
 इति क्रन्दन्तमाकर्ण्य तं ददर्श महीपतिः ॥ ३५३ ॥
 अजादुग्धैरियं बाला मात्रा हीना विवर्णिता ।
 इति पृष्टा नृपेणाहं दासी लज्जानतानना ॥ ३५४ ॥
 स्त्रीचक्रोऽयं भवत्येव निगद्येति नरेश्वरः ।
 सप्ततूलीकृतां शय्यां शय्याचक्राय दत्तवान् ॥ ३५५ ॥
 सप्ततूलीजुपस्तस्य पर्यङ्गतलवर्तिना ।
 बालेन बलयाकारं गात्रेऽमूलक्ष्म लोहितम् ॥ ३५६ ॥
 सव्ययं निःश्वसन्तं तं दृष्ट्वा बालं च भूपतिः ।
 सत्यं शयनचक्रोऽयमित्युवाच सविस्मयः ॥ ३५७ ॥
 ततस्तेषां नृपतिना दत्तैर्द्रविणसंचयैः ।
 संभोगसक्तास्तत्रैव तस्थुस्ते द्विजपुत्रकाः ॥ ३५८ ॥
 तत्पिता क्रतुभङ्गाच्च विधायानशनव्रतम् ।
 समार्यः प्रययौ स्वर्गं जपयज्ञपवित्रितः ॥ ३५९ ॥
 इत्यभ्युदीर्य वेतालो मोहयन्निव मायया ।
 मातापित्रोस्तेषु हत्या पतिता कस्य मूपते ॥ ३६० ॥
 एतेभ्यः कोऽधिकश्च ह्येत्यष्टच्छन्महीपतिम् ।
 पृष्टो नरेश्वरः प्राह द्वावप्रत्ययवीक्षकौ ॥ ३६१ ॥
 शय्याचक्रोऽधिकस्तेभ्यो यो बालेनादितस्तनौ ।
 तद्व्यूनयोः पातकं तत्पितृप्रलयसंभवम् ॥ ३६२ ॥

इति मौनपरित्यागात्स राज्ञः सहसा गतः ।

पुनः पुनर्दृष्टनष्टस्यैवोल्लम्बितः स्थितः ॥ ३६३ ॥

इति पञ्चमो वेतालः ॥ ७ ॥

(ऐनस्तमादाय ययावस्त्रिजो वसुधाविपः ।

स च स्कन्धस्थितः प्राह शृणु राजन्कयामिमाम् ॥ ३६४ ॥

अस्ति धर्मस्य वसुधा लक्ष्म्याः क्षेत्रं स्थितिः स्थितेः ।

संपदां सदनं स्वर्गं जयत्युज्जयिनी पुरी ॥ ३६५ ॥

पुण्यसेनामिधानस्य तस्यामासीन्महीपतेः ।

ब्राह्मणः सेवको धीमान्हरिस्त्वामीति विश्रुतः ॥ ३६६ ॥

देवत्वामी सुतस्तस्य वभूव श्रुतिपारगः ।

सौमप्रभा च तनया मूर्तेव श्रीर्मनोमुवः ॥ ३६७ ॥

विज्ञानिने ज्ञानिने वा देया शूराय वा त्वया ।

अहमित्याप्तनियमा पितरं सा व्यजिज्ञपत् ॥ ३६८ ॥

अत्रान्तरे दाक्षिणात्ये नृपे जेतुं समागते ।

पुण्यसेनो नरपतिः सहामात्यैरचिन्तयत् ॥ ३६९ ॥

सर्वथा सामसाध्योऽसौ रक्तामात्यो महाधनः ।

शूरश्च राजा तेनास्मै दूतो धीमान्विसृज्यताम् ॥ ३७० ॥

इति मन्त्रिगिरा राजा वर्चस्वी गुणवान्द्विजः ।

हरत्वामी विसृष्टस्तत्कटकं सहसाम्यधात् ॥ ३७१ ॥

तत्र राज्ञा समाधाय संधिं तस्मिन्स्थिते क्षणम् ।

विप्रः कश्चित्तमम्पेत्य ययाचे रुचिरः सुताम् ॥ ३७२ ॥

सोऽब्रवीज्ज्ञानिविज्ञानिशूरेभ्यो नापरः सखे ।

योग्यः पुत्री मयोदोदुमिति नः समयो दृढः ॥ ३७३ ॥

तत्सुता ब्राह्मणयुवा विज्ञानं समदर्शयत् ।

क्षणेन दृष्टवान्येन हरिस्त्वामी जगन्नयम् ॥ ३७४ ॥

दृष्टस्ततः स्वतनयां विस्मितो वचसा ददौ ।
 शुभे दिने सप्तमेऽस्तु विवाह इति संविदा ॥ ३७५ ॥
 अत्रान्तरेऽपरो विप्रः शूरो धीमान्कृतश्रमः ।
 देवस्वामिनमभ्येत्य तत्त्वसारमयाचत ॥ ३७६ ॥
 ज्ञानिविज्ञानिशूराणां मध्यादेको लभेत ताम् ।
 इत्यसौ तद्वचः श्रुत्वा धनुर्विद्यामदर्शयत् ॥ ३७७ ॥
 अनेकमल्लसंचार्य दृष्ट्वा तस्यानंतं धनुः ।
 देवस्वामी ददौ तस्मै विस्मितो मगिनीं गिरा ॥ ३७८ ॥
 मात्रापि द्विजपुत्राय कस्मैचिज्ज्ञानशालिने ।
 पुत्री वाक्येन दत्तासौ तत्प्रभावोदितस्मयात् ॥ ३७९ ॥
 सप्तमेऽहि वृत्तस्तेषां लभे प्राप्ते गृहाविपः ।
 हरस्वामी स्वतनयां ददर्शोज्ज्वलभूषणाम् ॥ ३८० ॥
 ज्ञानिविज्ञानिशूरेषु तुल्यं प्राप्तेष्वथोत्सवे ।
 अन्विष्टापि प्रयत्नेन कन्या नैव व्यद्विश्यते ॥ ३८१ ॥
 ततस्तज्जनकः प्राह दुःखितः साश्रुलोचनः ।
 ज्ञानिन्वद क यातासौ निकपेयं तवागता ॥ ३८२ ॥
 इति शृष्टः स चोवाच घृष्णाक्षेणाद्य रक्षसा ।
 सा नीता रूपलब्धेन घोरां विन्ध्याटवीमितः ॥ ३८३ ॥
 विज्ञानिना कल्पितेऽथ समारुह्य रथोत्तमे ।
 शूरस्तं राक्षसं हत्वा कन्यकामातिनाथ ताम् ॥ ३८४ ॥
 ततो लग्नक्षणे प्राप्ते तत्पिता श्रान्तमानसः ।
 सर्वे कृतोपकाराश्च तुल्याश्चेति व्यचिन्तयत् ॥ ३८५ ॥
 कथयित्सेति वेतालः पप्रच्छ धरणीपतिम् ।
 कचेम्यः कन्यकालामयोग्य इत्युच्यतां विभो ॥ ३८६ ॥
 शृष्टोऽज्ज्वीजरपतिः स पात्रं येन निर्जिता ।
 सा कन्यान्यौ तु विधिना दिष्टौ तौ सिद्धिकारणम् ॥ ३८७ ॥

इति श्रुत्वेति वेतालो गत्वा क्षिप्रमलक्षितः ।

तस्मिन्विटपिपर्यन्ते तथैवोलम्बितः स्थितः ॥ ३८८ ॥

इति षष्ठो वेतालः ॥ ८ ॥

राजा पुनस्तमादाय प्रययौ वीतसंग्रमः ।

स च स्कन्धस्थितः प्राह वेतालः शृणु भूपते ॥ ३८९ ॥

शोभावत्यां पुरि श्रीमान्यज्ञकेतुः क्षितीधरः ।

गौर्या भक्तिपरश्वके तीर्थयात्रामहोत्सवम् ॥ ३९० ॥

ज्ञातुं स्निग्धा समायाते जने गौरीसरस्वदा ।

चेरुः सरोजनयना नूपुराहृतसारसा ॥ ३९१ ॥

तां नीतां धक्रपद्मैश्च दोर्मृणालीवनैस्तथा ।

तासां भ्रूवीचिजालैश्च पुनरुक्तमनूत्सरः ॥ ३९२ ॥

वराङ्गनानां कुचयोः ससंश्रुतनखत्रणा ।

स्वच्छपेलावली चौरैः प्रीत्येवावन्धि वारिणा ॥ ३९३ ॥

ज्ञानपौठाङ्गनसिता तासां दृष्टिर्षरोचत ।

निष्कृष्टफालकूटाशा चटुलैवामृतच्छटा ॥ ३९४ ॥

स्नातोत्थिता वारिधाराहारिभिस्ताः स्ननैर्बभुः ।

दृष्टाप्रविससूत्रासैश्चक्रवाकैरिवाङ्किताः ॥ ३९५ ॥

धवलो नाम तत्राय रजकः स्नातुमागतः ।

युवा ददर्श रजकीं कन्यां मदनमुन्दरीम् ॥ ३९६ ॥

स्नात्वा बाहुलताक्षेपतैरलोत्क्षेपितैर्मुहुः ।

यस्या लावण्यसलिलैः प्रक्षालितमिवाम्बरम् ॥ ३९७ ॥

कटाक्षद्यफरोत्काला या विभ्रमतरङ्गिता ।

रजकानामिव गृहे जाता मूर्तिमती नदी ॥ ३९८ ॥

मुहुर्लीलाभितस्मेरच्छायाव्याजैर्दिदेश या ।

यात्रोत्सवे जनसेव धौतर्पातपेदावली ॥ ३९९ ॥

तां चन्द्रबिम्बवदनां विलोक्य स्तवकस्तनीम् ।
 स्वगृहं रजको गत्वा वमूव सरतापितः ॥ ४०० ॥
 पिता विदितवृत्तान्तस्तस्य दृष्ट्वा स्मरन्वथाम् ।
 कन्यां ययाचे रजकं गत्वा शुद्धपटाभिधम् ॥ ४०१ ॥
 आदरेण ततः पित्रा दत्तां मदनसुन्दरीम् ।
 अवाप्य धवलो लेभे जीवितं विततोत्सवः ॥ ४०२ ॥
 दत्तां कदाचित्तां पुत्रीं मर्तुगेहे विरक्षिताम् ।
 आनेतुं ग्राहिणोत्पुत्रं स्वीयं शुद्धपटस्ततः ॥ ४०३ ॥
 आत्रा निमज्जिता साथ भर्त्रा सह समागता ।
 पथि गौर्याश्रमं प्राप्य निषण्णा तत्सरस्तटे ॥ ४०४ ॥
 द्रष्टुं ततो भगवतीं प्रविष्टो धवलः स्वयम् ।
 उपहारं निजशिरः प्रददौ दैवनोदितः ॥ ४०५ ॥
 भगिनीपतिमन्वेष्टुं प्रविष्टो वीक्ष्य तं पुरैः ।
 तथैव निजमूर्धानं चिच्छेदाकुलिताश्रयः ॥ ४०६ ॥
 अथैका तावपश्यन्ती देवीं रजकसुन्दरी ।
 द्रष्टुं प्रविष्टा तौ दृष्ट्वा पतितौ मर्तुमुद्यता ॥ ४०७ ॥
 अशोकशाखिनः प्रान्ते पाशं सज्जीचकार सा ।
 ज्वलितार्क्षस्य तद्दुःखबहिना कुसुमश्रियः ॥ ४०८ ॥
 मुहुः स्तनाग्रविन्यस्तसाक्षनाशुकणावली ।
 लतेव स्तोककासकमृद्गाली सार्क्षवीत्सतीम् ॥ ४०९ ॥
 श्रीकण्ठकण्ठनीलाब्जनवपट्टमालिका ।
 दृष्टिर्जयति ते देवि दैत्यसंहारयाँमिनी ॥ ४१० ॥
 त्रिलोचनमनःसिन्धुहर्षवीचिर्विलीसिनी ।
 कान्तिर्जयति ते गौरि शुम्भकैरवकौमुदी ॥ ४११ ॥

१. 'गोल्क' क. २. 'दि' क. ३. 'न.' क. ४. 'तस्येव दुःखस्य य' क.
 ५. 'मरुकाश' क. ६. 'ददायती' क. ७. 'दायिनी' क. ८. 'दा' क.

व्याजृम्भि बाह्यादूलदंष्ट्रांशुविश्रमण्डलम् ।
 अम्बिके जयति श्वेरं पादाम्बुजयुगे तप ॥ ४१२ ॥
 श्रुत्येति पार्वती तुष्टा शिरःसंघट्टने तयोः ।
 द्रौग्वीवितुं व्यादिदेश मक्तिः कल्पलतेव यत् ॥ ४१३ ॥
 मर्तुर्भ्रातुश्च सा शीर्षयोजने संभ्रमाकुला ।
 देवादिनिमयं चक्रे मुखे तत्र शरीरयोः ॥ ४१४ ॥
 आक्षरं मर्तुवदनं मर्तारं चाप्रज्ञाननम् ।
 ततस्तावुत्थितौ दृष्ट्वा सा संदेहाकुलामवत् ॥ ४१५ ॥
 कथयित्वेति चेतालः पृष्टवानुंघेरापतिम् ।
 मर्तारं सेव्यतां घाला कं ताम्यां सा मुलोचना ॥ ४१६ ॥
 श्रुत्येति राजा प्रोवाच यस्या मर्तुमुखः पतिः ।
 शिरः सर्वेन्द्रियाधारं सकलं हि कलेवरम् ॥ ४१७ ॥
 इति मौनपरित्यागाद्राजः क्षणमलक्षितः ।
 चेतालो वृक्षमम्येत्य तथैवोद्गम्यितः स्थितः ॥ ४१८ ॥
 इति सप्तमो चेतालः ॥ ९ ॥
 ततः पुनस्तमादाय जगाम जगतीपतिः ।
 तत्कन्धस्रोऽपि चेतालः प्राह तं श्रूयतामिति ॥ ४१९ ॥
 यमूव चन्द्रसिंहाख्यन्ताम्रलिख्यविपो नृपः ।
 दिक्षु यद्विक्रमोत्साहस्तथा धीरकथामवत् ॥ ४२० ॥
 तस्य सेवाग्रतः सत्वर्यालस्यो राजवंशजः ।
 आसीत्कार्पटिको द्वारि शीतातपसहधिरम् ॥ ४२१ ॥
 ततः कदाचिन्मृगयारसाकृष्टः स मूपतिः ।
 पार्थिवसंस्पर्शरोपेण हृतोऽधेनातियायिना ॥ ४२२ ॥
 निर्मानुषं वनं प्राप्य स दूराच्चश्रमानुरः ।
 नापदयदनुगं कंचिदेकं कार्पटिकं विना ॥ ४२३ ॥

तत्र संदृश्य पानीयं वितीर्यामलकद्वयम् । . .
 नृपं साश्वं समाश्रास्य मार्गं कार्पटिकोऽदिशत् ॥ ४२४ ॥
 पुनः स्वनगरं प्राप्तो मन्निभिर्विहितोत्सवः ।
 तुष्टः कार्पटिकं श्रीमांश्चकारात्मसमं नृपः ॥ ४२५ ॥
 ततः कदाचिद्वर्षेण स सिंहलपतेः सुताम् ।
 मृगाङ्गलेखामुचितां विमृष्टो याचितुं ययौ ॥ ४२६ ॥
 स प्रापाम्मोनिधिं तुङ्गतरङ्गालिङ्गिताम्बरम् ।
 कैलासमिव चार्वर्कशिखरोल्लिखिताखिलम् ॥ ४२७ ॥
 तत्रारुढ्य प्रवहणप्रस्थिते सिंहलोन्मुखे ।
 तस्मिन्महिषसंकाशः समुत्तस्थौ महाधनः ॥ ४२८ ॥
 तदुद्भूतमहावात्या चण्डताण्डवितेऽम्बुधौ ।
 प्रलयावर्तवित्रस्ताः क्वापीव ककुभो ययुः ॥ ४२९ ॥
 ततः प्रवहणारूढा धनिजो ब्राह्मणास्तथा ।
 चन्द्रसिंहमहीपालं चुक्रुशुर्भयकातराः ॥ ४३० ॥
 तं स्वामिशरणाक्रन्दं श्रुत्वा कार्पटिकोऽम्बुधौ ।
 अमृष्यमाणः सहसा ममज्जाकोशस्वप्नभृत् ॥ ४३१ ॥
 ततो भग्ने प्रवहणे सर्वे ते जलचारिभिः ।
 भक्षिताः सत्वशीलस्तु निजोत्साहेन रक्षितः ॥ ४३२ ॥
 ध्वजयष्टिं जले दृष्ट्वा तत्पार्श्वेन प्रविश्य सः ।
 अपश्यत्काञ्चनपुरं पाताले रत्नतोरणम् ॥ ४३३ ॥
 मणिप्रासादमध्यस्थां तत्र तुष्टाव पार्वतीम् ।
 मुजग्नदैत्यकन्याभिः कृतपूर्जामहोत्सवाम् ॥ ४३४ ॥
 जय गौरि गैलद्रवंगीर्वाणगणवन्दिते ।
 जय कालर्लघुमासद्देलालुङ्कृतिशालिनि ॥ ४३५ ॥
 जय सोत्सुकचण्डीशनेत्रपट्टदपद्मिनि ।
 जय दैत्येन्द्रहृत्पद्मसंकोचपनकौमुदि ॥ ४३६ ॥

जय मायागुणप्रोतजगद्यन्त्रविनोदिनि ।
यज स्फोटसमुन्मेषज्यास्रचिध्वंसरस्वसि ॥ ४३७ ॥
इति स्तुत्वा भववधूं तत्पुराग्रे ददर्श सः ।
दासीसहस्रानुगतां कन्यां दिव्यविमूषणाम् ॥ ४३८ ॥
हरिणीहारिनयनां मत्तमातङ्गगामिनीम् ।
विलासलीललसितां सरोपवनमञ्जरीम् ॥ ४३९ ॥
लावण्यवारिपरिस्तां मेखलायन्नमालिकाम् ।
रुद्धनेत्रानलच्चक्षुस्सररक्षापुरीमिव ॥ ४४० ॥
तां दृष्ट्वा स स्वलद्वीर्यो मुद्रितः पुष्पधन्वना ।
चित्रन्यस्त इव क्षिप्रमग्द्विसयनिश्चलः ॥ ४४१ ॥
सं पूजयित्वा शर्वाणीं प्रविष्टां मणिमन्दिरे ।
अनुप्रविश्य तत्कान्तिं पपौ नयनचन्द्रिकाम् ॥ ४४२ ॥
तस्यां स्फाटिकपर्यङ्कनिषण्णायां स सादरम् ।
नीतः कार्पटिकः स्नातुं दासीभिर्विमलं सरः ॥ ४४३ ॥
ज्ञानार्थं नोदितस्तत्र ताव्रलीप्तान्तरस्थितात् ।
उत्तस्यौ भूमिपोद्यानक्रीडाकमलिनीतटात् ॥ ४४४ ॥
ततो नवमधुक्षीव इवानन्दितमानसः ।
कन्दर्पसर्पदण्डोऽभूत्स तत्रात्यन्तमूर्च्छितः ॥ ४४५ ॥
क्षिप्रमुद्यानपालेन विज्ञप्तोऽहं तदागमम् ।
चण्डसेननृपोऽभ्येत्य तं ददर्श तथास्वितम् ॥ ४४६ ॥
स कथंचित्परिज्ञाय नृपमुन्मील्य लोचने ।
मन्दमन्देन वचसा निजवृत्तान्तमभ्यधात् ॥ ४४७ ॥
तच्छ्रुत्वा विस्मितो राजा तमुवाच सरातुरम् ।
समाश्वसिहि पातालं गच्छावः पुनरब्जिना ॥ ४४८ ॥

इत्युक्त्वा सचिवन्यस्तराज्यः प्रणयिवत्सलः ।
 सह कार्पटिकेनैव चण्डसेनोऽम्बुधिं ययौ ॥ ४४९ ॥
 तत्र प्रवहणारूढः सलिले तत्प्रदर्शिते ।
 निमज्ज्य तेन सहितः क्षिप्रं पातालमाप्तवान् ॥ ४५० ॥
 ततो गौर्याश्रमे कन्यां तामपश्यत्सुलोचनाम् ।
 नवां सरमयूरस्य निवासकदलीमिव ॥ ४५१ ॥
 सैहिकेयपरित्रासालक्ष्मी हरिणलक्ष्मणः ।
 चक्रिचक्रसमाक्रान्तामिव पातालमाश्रिताम् ॥ ४५२ ॥
 तां दृष्ट्वा भूमिपालोऽभूद्भाढप्रमदविस्मयः ।
 अहो स्थानेऽनुरक्तोऽयमिति लोलितशेखरः ॥ ४५३ ॥
 सापि संपूज्य वरदां प्राप्तोद्वाहवरा सती ।
 दृष्ट्वा राजानमवदन्निजदासीं सविस्मया ॥ ४५४ ॥
 ब्रूहि सत्त्वोचिताकारं गत्वेनं पुरुषोत्तमम् ।
 देव पूजां गृहाणेति तमादिष्टेत्यभाषत ॥ ४५५ ॥
 इह स्थितेनैव मया गृहीता मुमु सत्कृतिः ।
 इति भूमिभुजाप्युक्ता कन्यकामेत्य सावदत् ॥ ४५६ ॥
 निर्विकारेण सत्त्वेन तस्यावष्टम्भशालिना ।
 सा भुजङ्गी ततः कृष्टा मन्त्रेणेवान्तिकं ययौ ॥ ४५७ ॥
 सुवर्णवल्लरीरम्ये रत्नपादपकानने ।
 सर्वर्तुफलपुष्पाढ्ये विश्रान्तं सा तमब्रवीत् ॥ ४५८ ॥
 पूजा देव गृहायातो गृहाण मम सादरम् ।
 इत्यर्थितस्तस्या राजा जगाद सहितोऽमुना ॥ ४५९ ॥
 श्रुत्वा गौरीमहं पाशस्तत्त्वं श्रुत्वा स्वार्थितस्तत्सलम् ।
 इति श्रुत्वा परित्राय तं कार्पटिकमानतम् ॥ ४६० ॥
 मुहूर्तं लज्जया तस्यै स्मृत्या तां तस्य वधनाम् ।
 ततोऽब्रवीत्सा राजेन्द्र मुतादममुरममोः ॥ ४६१ ॥

कालनेमेः पुरयुगं ममेदं भोगमोक्षदम् ।
 सर्वसिद्धिप्रदं दीप्तं रत्नहाटकनिर्मितम् ॥ ४६२ ॥
 जन्ममृत्युजरान्याधिवर्जितं दिव्यसौरभम् ।
 अहं पुरद्वयोपेता त्वदधीना नरेश्वर ॥ ४६३ ॥
 इत्याकर्ण्य नृपः प्राह स्पृशन्कार्पटिकं दृशा ।
 प्रेमविश्रम्भमूरेको मम मानसदर्पणः ॥ ४६४ ॥
 सुहृत्पिता सुतो बन्धुः स्वामी सर्वमयं मम ।
 कुलोन्नतः सत्त्वशीलस्तदसौ त्वं मयार्पिता ॥ ४६५ ॥
 (पुत्रीव सुश्रु गुणिने मन्यस्ते प्रणयो यदि ।
 निशम्य तां नरपतेर्गिरमौचित्यमन्यराम् ॥ ४६६ ॥
 तथेति लज्जिता प्राह सा त्स्निहन्ती दृशा भुवम् ।
 कन्यामसुरराज्यं च दत्त्वा तस्मै नृपोऽब्रवीत् ॥ ४६७ ॥
 एकस्यामलकसैतत्फलमन्यद्रुणं मम ।
 ताथाष्टच्छतस्रस्मिन्स निमज्ज्य सरोवरे ॥ ४६८ ॥
 उन्ममज्ज निजोद्यानलीलापुष्करिणीतटात् ।
 कथां रात्रौ निधेयेति वेतालः पुनरभ्यधात् ॥ ४६९ ॥
 यद कः सत्त्ववान्न नृपः कार्पटिको नु वा ।
 इति पृष्टोऽब्रवीद्राजा किं चित्रं यदि भूपतिः ॥ ४७० ॥
 कृते प्रतिक्रियां कर्तुं निमग्नो दृष्टवर्मना ।
 श्लाघ्यः कार्पटिको येन मीताकन्दासहिष्णुना ॥ ४७१ ॥
 अदेशिके निरालम्बे निमग्नो मकरालये ।
 श्रुत्वेत्यलक्षितो यातो वेतालो विपुलच्छलैः ।
 शिशिपाम्रान्तमागत्य पुनरुलम्बितः स्थितः ॥ ४७२ ॥
 इत्यष्टमो वेतालः ॥ १० ॥

राजा ततस्तमादाय निरुद्वेगो ययौ जवात् ।
 स च तत्कन्धगः प्राह धिक्ते निर्वेद्यमीदृशम् ॥ ४७३ ॥
 क राज्यं क सुधागर्भपूर्णेन्दुवदनाश्च ताः ।
 क चेदं मत्तवेतालं सशानमतिभीषणम् ॥ ४७४ ॥
 क्षान्तिशीलेन पापेन जगच्चूडामणिर्मवान् ।
 पातितः संशये घोरे शृणु तावत्कथमिमाम् ॥ ४७५ ॥
 वीरदेवोऽभवच्छ्रीमानुज्जयिन्यां महीपतिः ।
 तस्य पैद्यरतिर्नाम भार्याभूच्चित्तचन्द्रिका ॥ ४७६ ॥
 तपसा देवमासाद्य भवानीवल्लभं विभुम् ।
 लेभे सभार्यस्तनयं कन्यां चायतलोचनाम् ॥ ४७७ ॥
 शूरदेवामिधे तस्मिन्दोरके मुक्तशैशवे ।
 अनङ्गरतिनाम्नी सा कन्यापि प्राप यौवनम् ॥ ४७८ ॥
 तस्या बभूव संकल्पो यः शूरो विपुलाकृतिः ।
 लोके विस्तीर्णविद्यश्च स मे प्रणयभूरिति ॥ ४७९ ॥
 नानादिगन्तभूपाला याचमाना नृपात्मजाम् ।
 प्रत्याख्याता ययुर्लोके कुतः सर्वगुणो जनः ॥ ४८० ॥
 ततः कदाचिदाजमुश्चत्वारः सदृशा नराः ।
 विक्रान्ता विपुलाकारा विद्यासु च विचक्षणाः ॥ ४८१ ॥
 ते समन्येत्य राजानमयाचन्त प्रियां सुताम् ।
 प्रतीहारेण पृष्टाश्च निजाभिजनमूचिरे ॥ ४८२ ॥
 एकोऽवदच्चित्रवस्त्रनिर्माणकुशलो धनी ।
 शूरोऽहं शौर्यसंपन्नो वपुः प्रत्यक्षमीक्ष्यताम् ॥ ४८३ ॥
 द्वितीयः प्राह वैश्योऽहं मापाज्ञः सर्वदेहिनाम् ।
 तृतीयः प्राह राजन्यः सद्ग्री नान्योऽस्ति मत्समः ॥ ४८४ ॥
 चतुर्थश्चात्रवीद्विभो जानेऽहं मृतजीर्वेनम् ।
 शौर्यरूपगुणैर्विद्धि तुल्यानसान्महीपते ॥ ४८५ ॥

इति श्रुत्वा वीरदेवः संदेहाकुलितोऽभवत् ।
 मग्निभिः सहितो दृष्ट्वा मिथो विम्बागतानिव ॥ ४८६ ॥
 उक्त्वेति पप्रच्छ नृपं वेतालो विपुलाशयः ।
 कस्मै नरपते ब्रूहि सा कन्या दीयतामिति ॥ ४८७ ॥
 राजावदद्वैश्यशूद्रौ नार्हावत्र न संशयः ।
 अन्यवृत्तिर्द्विजः पापः क्षत्रियः क्षत्रियापतिः ॥ ४८८ ॥
 इति श्रुत्वाय वेतालो गत्वा पुनरलम्बत ।
 नृपो भूयस्तमादाय ययौ स्कन्धाच्च सोऽब्रवीत् ॥ ४८९ ॥
 इति नयमो वेतालः ॥ ११ ॥

वीरबाहोर्नरपतेर्नगरं पुरमण्डले ।
 निदर्शनं धनवतामर्थदत्तोऽभवद्वणिक् ॥ ४९० ॥
 धनदत्ताभिषस्तस्य पुत्रो भूतेलनन्दनः ।
 सुता मदनसेना च मदनस्येव देवता ॥ ४९१ ॥
 धनदत्तवयस्योऽथ धर्मदत्तो युवा वणिक् ।
 तस्यानुजां कदाचित्तामपश्यत्तद्ब्रूहागतः ॥ ४९२ ॥
 दृष्टिर्युवनिरानन्दस्मयगुर्वी तरङ्गिते ।
 यत्कान्तिसलिले मग्नान्समुद्धर्तुं न पार्यते ॥ ४९३ ॥
 भ्रूलास्यवीचित्रले हारहंससितोर्मणि ।
 लावण्यमानसे यस्याः कटाक्षैः शफरायितम् ॥ ४९४ ॥
 उशिद्रचन्द्रवदनां तां विलोक्य निजालम्बम् ।
 गतो न लेभे स धृतिं सार्धमष्ट इवाध्वगः ॥ ४९५ ॥
 स वै निःश्वाससंतापग्लपिताधरपल्लवः ।
 अशान्तसर्वशिक्षिना कामेनेवान्तराश्रितः ॥ ४९६ ॥
 अत्रान्तरे जलनिधिं संच्यारक्ते दिवाकरे ।
 तापादिव क्लान्ततनौ प्रविष्टे पद्मिनीप्रिये ॥ ४९७ ॥

दिक्षु कालागरुस्यन्दनीलैस्त्रिमिरसंचयैः ।
 अभिसारोचितं वेपमाश्रितास्त्रिव तत्क्षणात् ॥ ४९८ ॥
 उदिते पूर्वदिक्कान्तासीमन्तमणिमौक्तिके ।
 शशाङ्के शंकरकृष्णकामसंजीवनौषधम् ॥ ४९९ ॥
 ज्योत्स्नाविलासविलसत्प्रभाशुभ्रे नमस्तले ।
 दुग्धान्विशायिनः शौरेः सुघालिष्ठ इवोरसि ॥ ५०० ॥
 वणिक्पुत्रः सराकान्तः सुहृदाश्वासितो मुहुः ।
 क्षणार्धनिद्रितोऽपश्यत्स्वप्ने तामेव कामिनीम् ॥ ५०१ ॥
 ततः प्रभाते विजने स्थितां तामेव कन्यकाम् ।
 ययाचे संगमं तस्या लज्जा रागेण सद्यते ॥ ५०२ ॥
 तेन प्रणयिमृत्नेन चल्लीवाकुलीकृता ।
 स्तनाग्रलम्बवदना बभापे सा नता ह्रिया ॥ ५०३ ॥
 अहमद्यैव तातेन वचसा प्रतिपादिता ।
 सखे समुद्रदत्ताय वणिजे गुणशालिने ॥ ५०४ ॥
 पूर्वमेव त्वयाम्येत्य पिता मे किं न याचितः ।
 अधुनाहं परवधूरगम्या विदुषस्तव ॥ ५०५ ॥
 इति श्रुत्वा बलवता मन्मथेन समाहतः ।
 सोऽयदद्वीक्ष्यमाणस्तां हठात्कण्ठग्रहोत्सुकः ॥ ५०६ ॥
 मम प्राणैः पणः सुभ्रु त्वां विना समुपस्थितः ।
 कार्याकार्यविचारो हि कस्य जीवितसंशये ॥ ५०७ ॥
 त्यजते प्राप्तममृतं यदेतद्बुद्धिलाघवम् ।
 को जानीते परे लोके कस्य किं नु भविष्यति ॥ ५०८ ॥
 भज मामनवद्यान्नि न चेत्त्वद्भदनामृतम् ।
 स्वयं पिनामि किं प्राप्ते विधौ नक्षत्रचिन्तया ॥ ५०९ ॥
 श्रुत्येति चकिता तन्वी श्रोवाचानन्तवीक्षितैः ।
 रज्जयेव पितन्वाना उत्तो मायूरकञ्चुकम् ॥ ५१० ॥

अष्टायां मयि तातस्य विनष्टे कन्यकाफले ।
 कुलं पतति नः सर्वं तत्र मा कारणं भव ॥ ५११ ॥
 प्राग्जन्मविहितः कोऽपि निबन्धो यदि मे प्रभो ।
 तत्पित्रे स्वफलं दत्त्वा कृतोद्वाहासि ते वशे ॥ ५१२ ॥
 वणिग्युवा निशम्येति प्राह सर्वं न मे वरम् ।
 नवां मालां परित्यज्य निर्माल्ये रमते नु कः ॥ ५१३ ॥
 अनन्यस्त्राष्टमुचितं त्यक्तुं नेशोऽसि ते वपुः ।
 को हि हस्तात्परित्यज्य कुर्यादन्वेपणग्रमम् ॥ ५१४ ॥
 इत्याग्रहेण तेनोक्ता निर्जने मयत्रिहला ।
 अवला बलिना लब्ध्वा निःश्वसन्ती जगाद सा ॥ ५१५ ॥
 सत्यं वृत्तविवाहाहं त्वदन्तिकमदूषिता ।
 समेप्यामि क्षणमेकामिति ते मुकृतैः शपे ॥ ५१६ ॥
 श्रुत्वेति स ययौ तुष्टः प्रीतये हि मृगीदृशाम् ।
 प्रणयादस्त्युपगमो यथा नैव तथा दृष्टात् ॥ ५१७ ॥
 अथ लम्बदिने प्राप्ते प्रवृत्ते विपुलेत्सवे ।
 समुद्रदत्तस्तरुणीं परिणीय निनाय ताम् ॥ ५१८ ॥
 ततो मुक्तोत्तरं स्नेरकुमुमोत्तंसमन्दिरे ।
 मेजाते दम्पती शय्यां तनुस्त्रच्छोत्तरच्छदाम् ॥ ५१९ ॥
 लज्जानतमुखी तेन चाटुकारेण कामिना ।
 करेण रुद्धां नो नीवीं याचितापि मुमोच सा ॥ ५२० ॥
 ततः सा तस्य वणिजः स्मृत्वा प्राग्विहितं वचः ।
 यत्नाद्विहाय सहजां लज्जां मर्तारमब्रवीत् ॥ ५२१ ॥
 प्रौढा समुचितं बाला वैदग्ध्यं सहते कथम् ।
 अफुल्लं चूतकलिकां नहि चुम्बति पट्पदः ॥ ५२२ ॥
 इति नीवीहठाकृष्टप्रगल्भं विनिर्मय्य तम् ।
 सा प्राह पूर्ववरणद्रोहकात्रीकृतेप्सितम् ॥ ५२३ ॥

वणिजो धर्मदत्तस्य हठसङ्गमयान्मया ।
 अग्रग्राहं समेप्यामि त्वामिति प्राक्प्रतिश्रुतम् ॥ ५२४ ॥
 असत्यं नोत्सहे कर्तुं तदनुज्ञातुमर्हसि ।
 इत्याकर्ण्य स तत्प्राज तामाशां च तदागमे ॥ ५२५ ॥
 ततः सा तेन विजने संत्यक्ता प्रययौ निशि ।
 तारहारांशुघवला कमलेनेव कौमुदी ॥ ५२६ ॥
 प्रयान्ती धर्मदत्तस्य भाण्डशालां सुलोचनाम् ।
 सर्वस्वहारी चौरस्तां ददर्शोज्ज्वलमूषणाम् ॥ ५२७ ॥
 विस्तीर्णवक्षःप्राकारो मेघश्यामो महाभुजः ।
 तमःशबरसंघातसेनापतिरिवाग्रतः ॥ ५२८ ॥
 स्कन्धावलम्बिभिर्मृङ्गनीलैः कुटिलकुन्तलैः ।
 सदा संचरणप्रीत्या रात्रिचक्रैरिवाश्रितः ॥ ५२९ ॥
 उद्भिन्नश्मश्रुलेखाग्रकेशमण्डलमण्डितः ।
 दिग्दन्तिमुक्ताचौर्येषु मदाम्बुभिरिवाश्रितः ॥ ५३० ॥
 विकोशासिप्रभाजालैर्दीपैरालम्बिताम्बरः ।
 तारा रत्नप्रहारार्थमिवारोहणरज्जुभिः ॥ ५३१ ॥
 स दृष्ट्वा तां सुवदनां कूजद्भूषणमौक्तिकाम् ।
 दिवः सचन्द्रनक्षत्रां श्रियं संचारिणीमिव ॥ ५३२ ॥
 नेत्रयोः कज्जलेनेव नीलाब्जेनेव कर्णयोः ।
 तनौ कृष्णांशुकेनेव तमसापि विभूषिताम् ॥ ५३३ ॥
 करेणुं कुञ्जराकारस्तां राजकदलीमिव ।
 समालम्ब्यावदद्गन्धः कोऽसौ यो मृग्यते त्वया ॥ ५३४ ॥
 सर्वस्वहारी चौरोऽहं नु गच्छसि निर्भया ।
 (अथवा मण्डलोद्दण्डकोदण्डस्ते सारोऽनुगः ॥ ५३५ ॥
 इत्युक्ता तेन सा प्राह चौरोऽसि यदि गृह्यताम्) ।
 रत्नमूषणमामुक्तमौक्तिकं किं तु मुञ्च माम् ॥ ५३६ ॥

श्रुत्वेत्याह विहस्यैनां नाहं ग्राम्यः शुचिसिते ।
 यस्त्वां सरालंकरणां त्यक्त्वा यास्याम्यचेतनः ॥ ५३७ ॥
 इत्युक्ता तेन संरुद्धा सा जगौ बल्युवादिनी ।
 वचसा येन निर्वद्धा तस्मादेप्स्यामि ते वशे ॥ ५३८ ॥
 स श्रुत्वेत्याह चित्रं ते सरलः कोऽप्ययं कमः ।
 क्षिप्त्वा दिक्षु क्षिपेत्को नु कण्ठस्थां रत्नमालिकाम् ॥ ५३९ ॥
 गच्छामि पुनरेप्स्यामीत्येवं धूर्तो न वञ्च्यते ।
 योषितां च नदीनां च पुनरागमनं कुतः ॥ ५४० ॥
 यस्तु हस्तगतं रत्नं मोहात्त्वज्जति चालवत् ।
 स मन्दपुण्यः सुभगे पुनस्तस्य न भाजनम् ॥ ५४१ ॥
 इति वादिनमत्युग्रसाहसं तं चकार सा ।
 निवेद्य निजवृत्तान्तं किञ्चिद्धि कलितग्रहम् ॥ ५४२ ॥
 सोऽब्रवीद्धर्मदत्तस्य यथा तथ्यं वचः कृतम् ।
 तथैव मे त्वया कार्यं गत्वा सत्यवती ह्यसि ॥ ५४३ ॥
 इति चौराणां मुक्तासौ भाण्डशालान्तरस्थितम् ।
 धर्मदत्तमवाप्याहं प्राप्तास्मीति सविस्मयम् ॥ ५४४ ॥
 सोऽब्रवीत्परमार्या मे न गम्या त्वं सुलोचने ।
 शमितोऽनङ्गदावामिषूमात्रमलिनः क्षणः ॥ ५४५ ॥
 प्रतिमुक्तापि सा तेन चोरमेत्य तदाम्यधात् ।
 सत्यं त्वात्सोऽपि तच्छ्रुत्वा तां तत्याज समूषणम् ॥ ५४६ ॥
 ततः समुद्रदत्तं सा पुनरम्येत्य बल्लभम् ।
 यया वृत्तं निवेद्यासौ भेजे तेन सरोत्सवम् ॥ ५४७ ॥
 नृपमुक्त्वेति पप्रच्छ वेतालो वञ्चनोन्मुखः ।
 ब्रूहि कोऽत्र महासत्त्वः श्रुत्वेत्याह च भूपतिः ॥ ५४८ ॥
 तत्याज धर्मदत्ततां बहुर्कर्मगतं प्रियाम् ।
 राजमीत्या मुखे नित्यं धनिनो हि पराङ्मुखाः ॥ ५४९ ॥

धत्तां समुद्रदत्तोऽपि कथं तामन्यमानसाम् ।
 किं न कुर्युर्गृहे रुद्धा विरक्तहृदयाः स्त्रियः ॥ ५५० ॥
 सत्त्ववानेक एवात्र चैरोऽसौ तां मुमोच यः ।
 प्राणान्हि पणमाधाय घने घावन्ति दस्यवः ॥ ५५१ ॥
 इति श्रुत्वैव वेतालस्तरौ पुनरलम्बत ।
 मृत्योऽप्यादाय तं राजा ययौ मारुतरंहसा ॥ ५५२ ॥
 इति दशमो वेतालः ॥ १२ ।
 ततः स्कन्धस्थितः प्राह वेतालः प्रहसन्मुहुः ।
 अहो राजन्निरुद्धेगो व्यवसायस्तवायतः ॥ ५५३ ॥
 राजा धर्मध्वजो नाम बभूवोज्जयिनीपतिः ।
 तिस्रस्तस्याभवन्भार्यास्तरुण्यः कान्तिभूषणाः ॥ ५५४ ॥
 इन्दुलेखाभिधानैका कान्ता तारावली परा ।
 अन्या मृगाङ्गवत्याख्या चेत्युन्नतकुचोद्धताः ॥ ५५५ ॥
 कदाचिद्वक्षिणमरुत्तरङ्गितलतावने ।
 वसन्ते संततोत्फुल्लचूतचम्पककेसरे ॥ ५५६ ॥
 काले केसरिणि स्मेरसिन्दुवारसैटोद्भटे ।
 मानिनीमानमातङ्गदारणे कलिकानखे ॥ ५५७ ॥
 शर्वरीकवरीपाशत्विपि पद्मदमण्डले ।
 दिक्षु कालागरुस्यन्दपत्रभङ्गतुलासिते ॥ ५५८ ॥
 सेव्यतां ललनाभोगः पीयतां पातलं मधु ।
 न क्षनन्तो वसन्तोऽयं वदतीवेति कोकिले ॥ ५५९ ॥
 राजा धूतरजःपुञ्जपिञ्जरे चल्लमासखः ।
 विजहार निजोद्याने विराजितमधूत्सवः ॥ ५६० ॥
 (अथ तत्रेन्दुलेखायाः केलिलोलदिशा दिशः ।
 इन्दोवरदलोदारा बभूवुर्नन्दनोत्सवे) ॥ ५६१ ॥

१. 'पुष्प' क. २. 'शुद्धीता सारुलोचिता' क. ३. 'मदोदरः' क. ४. एतत्-
 एतन्मदराटः क-पुष्पके मुद्रितः.

अत्रान्तरे मृगदृशस्तस्या अमणविभ्रमात् ।
 कर्णेत्पलेन पतता क्षिप्रमूरुरमज्यत ॥ ५६२ ॥
 निजमन्तःपुरं नीत्वा दासीभिः कथमप्यसौ ।
 तस्यौ स्फटिकपर्यङ्के मूर्च्छामोहनिमीलिता ॥ ५६३ ॥
 ततस्त्रिमिरमायूरतालवृन्तसमाहृते ।
 जगद्गृहे गृहपतौ गते दीप इवासिले ॥ ५६४ ॥
 सीत्काराचार्यतां याते निशीथे हरिणीदृशाम् ।
 संकुचत्पद्मकोशम्रचद्रमृङ्गरैवैरिव ॥ ५६५ ॥
 उदिते व्योमनलिनीराजहंसे सितत्विपि ।
 कान्तास्मितामृतासक्त इवालोके विलासिनि ॥ ५६६ ॥
 रजनीराजतनयाकन्दुकेनेन्दुना मुहुः ।
 यामिनीकामिनीहारैः करैरापूरितेऽम्बरे ॥ ५६७ ॥
 उत्सवेन विलासस्य विभ्रमेण मदश्रियः ।
 जीवितेन मनोजस्य शशिना मृषिते मधौ ॥ ५६८ ॥
 आरुण्डलद्विपासण्डदन्तदण्डोरुडम्बैः ।
 रश्मिखण्डैः शशाङ्कस्य मण्डिते क्षितिमण्डले ॥ ५६९ ॥
 तारावलीसखो राजा सौधे लीलारतालसः ।
 कर्पूरशुभ्रः सुप्वाप द्वितीय इव चन्द्रमाः ॥ ५७० ॥
 मधुमत्ता रतिक्रान्ततनुवल्ली श्रमाम्बुभिः ।
 रांमृष्टतिल्का क्षिप्रं देवी निद्रां समापयौ ॥ ५७१ ॥
 तस्याः शीताभिलाषिण्यास्तत्र गात्रे निरम्बरे ।
 पतितैश्चन्द्रकिरणैरुचस्थौ स्फोटकावली ॥ ५७२ ॥
 ततो मुजगदष्टेव कुण्डेव शिखिनोत्थिता ।
 ययावाश्वासिता राज्ञा कदलीशयनं शनैः ॥ ५७३ ॥

मृगाद्वत्यथाहता रतये मूसुजा निशि ।

समाययौ विभ्रममूः कणनूपुरमेखल ॥ ५७४ ॥

निःशब्दजनसंचारे कुतोऽपि मुसलध्वनिम् ।

श्रुत्वा तदा जातकिणौ धुन्वाना करपल्लवौ ॥ ५७५ ॥

दष्टा ईवैत्य मधुपैस्तुफुल्लकमलशया ।

हा हतासीति चुक्रेश तारसीत्कारशालिनी ॥ ५७६ ॥

श्रीखण्डरससंस्तिकरामाशु स मूपतिः ।

परिसौन्दर्य क्षपां क्षिप्रं क्षीणां वीक्ष्य समुत्थितः ॥ ५७७ ॥

कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ वसुधाधिपम् ।

सुकुमारतरा राजन्का वासां कथ्यतामिति ॥ ५७८ ॥

नृपोऽवदन्मृदुतनुः सुकुमारतरैव सा ।

यस्या मुसलशब्देन जातौ माणी किणाद्वितौ ॥ ५७९ ॥

इति श्रुत्वैव वेतालः सहसादर्शनं गतः ।

वृक्षाभात्पुनरादाय ययौ राजा महाजवः ॥ ५८० ॥

इत्येकादशौ वेतालः ॥ ११ ॥

सोऽयं स्कन्धगतः प्राह कथां शृणु विशांपते ।

अशेषसंशयच्छेत्ता देवदेवो मतोऽसि मे ॥ ५८१ ॥

नृपोऽमृदङ्गविषये यद्यःकेतुरिति श्रुतः ।

यद्यशःपुण्डरीकस्य मृणालं फणिनायकः ॥ ५८२ ॥

पृथुवेपथुसिञ्जनैर्यति संघाय भूषणैः ।

यस्य किन्नरकान्ताभिर्गोथिते चरितावली ॥ ५८३ ॥

यत्पराक्रममाकर्ण्य लङ्कालोडनसाक्षिणः ।

स्मरन्ति रामचरितं ते जीर्णा रजनीचराः ॥ ५८४ ॥

अमात्यो दीर्घदर्शीति तस्याभूद्विताभिषः ।

यन्मग्नैः शशुसर्पाणां नामवन्कचिदुद्रयाः ॥ ५८५ ॥

१. 'तत्र पञ्चात' क. २. 'विजित' क. ३. 'क्षील' क. ४. 'एता पुनः' क.
द्वितीय प्रकरणेऽनुलक्षितः क.

तस्मिन्विन्यस्य पृथिवीमारं स वसुधाधिपः ।
 सिधेवे चन्द्रवदनां श्यामां श्यामामिवोद्धपः ॥ ५८६ ॥
 तस्मिन्सररसासक्ते स श्रीमान्मन्त्रिपुंगवः ।
 कोशदुर्गबलाधानव्यग्रोऽमृतसततोत्थितः ॥ ५८७ ॥
 दीर्घदर्शी श्रियं भुङ्क्ते नाममात्रं नृपो नृपः ।
 जनप्रवादं श्रुत्वेति सोऽभूच्चिन्ताकुलस्ततः ॥ ५८८ ॥
 मेघाविन्याथ संचिन्त्य भार्यया सह तां कथाम् ।
 तीर्थयात्रापदेशेन ययावेको निशामुखे ॥ ५८९ ॥
 (व्रजन्क्रमेण संप्राप्य तीरोपान्तं महोदधेः ।
 निषिद्धाभिधानेन सार्थवाहेन संगतः ॥ ५९० ॥
 तेन संजातसौहार्दः सौवर्णद्वीपगामिना) ।
 आरुह्य तत्प्रवहणं मध्यं प्राप महोदधेः ॥ ५९१ ॥
 ततस्तत्र निवातेऽपि ददर्श सहस्रोत्थितम् ।
 स्फटिकाचलमृङ्गामं सलिलस्तम्भमुज्ज्वलम् ॥ ५९२ ॥
 पृथुं ददर्श तन्मध्ये कान्तं कनकपादपम् ।
 पारिजातमिवोत्सृष्टं मन्थमीत्याब्धिना पुनः ॥ ५९३ ॥
 विह्वलस्तम्भसुभगे चित्ररत्नलतोज्ज्वले ।
 (तैस्मिन्माणिक्यपर्यङ्के स्थितां कन्यां ददर्श सः) ॥ ५९४ ॥
 पद्मरागाधरां नीललोलालकविभूषिताम् ।
 मूर्तां रत्नाकरस्त्रेव देवतां मौक्तिकसिताम् ॥ ५९५ ॥
 तां दृष्ट्वा विस्मयोत्फुल्लस्तस्या गीतमथाशृणोत् ।
 तन्मुखाम्भोजलुब्धानां मृङ्गाणामिव गुञ्जितम् ॥ ५९६ ॥
 येन यदा यद्विहितं प्राप्तुमसौ ततदा स्वयं याति ।
 आक्रम्य नीयते वा कर्मगुणैरायतैस्तत्र ॥ ५९७ ॥
 देहमृतां किल सततं सर्वत्र शुभाशुभं याति ।
 आमोदः कुसुमानां कीटमणीनामिवा लोकः ॥ ५९८ ॥

असिन्कर्मक्षेत्रे येन यदुप्तं स एव तद्भुङ्क्ते ।
 लभते नान्धेन धृतं चक्षुष्मानप्युपायेन ॥ ५९९ ॥
 इति वीणास्वनजुषा गीतेन श्रवणामृतम् ।
 विकीर्यै तैरुपर्यङ्कसहिता सा तिरोदधे ॥ ६०० ॥
 ततस्तद्दर्शनाश्चर्यनिश्चलं दीर्घदर्शिनम् ।
 कर्णधारो विहस्याह सहेलं वर्चराभिधः ॥ ६०१ ॥
 किं विसितोऽसि कन्यैषा सदैवात्र प्रदृश्यते ।
 ज्ञायते नाम शीलं वा कुलं वास्या न केनचित् ॥ ६०२ ॥
 इति ब्रुवाणे शनैः कर्णधारे महान्भुतम् ।
 पवनस्यानुकूल्येन द्वीपं प्राप स सार्थपः ॥ ६०३ ॥
 कृतकृत्ये गृहं प्राप्ते तस्मिन्लवति क्षणात् ।
 तद्वेश्मनि चिरं स्थित्वा मग्नौ स्वनगरं ययौ ॥ ६०४ ॥
 अत्रान्तरे यशःकेतुस्तद्वियोगामितापितः ।
 आगतो दीर्घदर्शीति विज्ञप्तो द्वाररक्षिणा ॥ ६०५ ॥
 ततो नरपतिः क्षिप्रं हृष्टस्तेन समागतः ।
 मेने वराकं त्रैलोक्यराज्यं विस्तारिलोचनः ॥ ६०६ ॥
 तमष्टच्छतैरिष्वज्य परित्यज्य गतोऽसि किम् ।
 गृहं बन्धुजनं भार्या श्रियं मां च निरादरः ॥ ६०७ ॥
 इति राजवचः श्रुत्वा पुण्यतीर्थार्थितां वदन् ।
 समुद्रदृष्टमाश्चर्यं दिव्यकन्यामवर्णयत् ॥ ६०८ ॥
 तां निशम्य नवोत्कण्ठानिर्भरोऽमून्महीपतिः ।
 श्रुतो देव विशत्यन्तः प्राग्जन्मदयितो जनः ॥ ६०९ ॥
 स दीर्घदर्शिने राज्यं न्यासाकृत्य सारातुरः ।
 मष्टं शशाङ्कवदनां भिक्षुवेपोऽम्बुधिं ययौ ॥ ६१० ॥
 सरित्पुराकर्तारण्यग्रामशैलान्समुत्तरन् ।
 ममाच्छ्रीपर्वतं प्राप्य नत्वा देवीं हरिमियाम् ॥ ६११ ॥

कुशनामेन मुनिना दयितार्ता प्राप्स्यसीत्यय ।

कृताश्वासस्तदादिष्टं सार्धंवाहं समम्ययात् ॥ ६१२ ॥

लक्ष्मीदत्ताभिधानस्य तूर्णं प्रवहणं ततः ।

स समारुह्य जलधर्मघ्यं प्राप्य प्रियाशया ॥ ६१३ ॥

तत्र वैदूर्यशिखराकारकल्लोलमालिते ।

समुत्थिते जलस्तम्भे ददर्श मणिपादपम् ॥ ६१४ ॥

घात्रा वैचित्र्यनिर्माणरम्योपकरणश्रियम् ।

निधानमिव रक्षायै हस्ते न्यस्तं महोदधेः ॥ ६१५ ॥

तस्य कल्पतरोः स्कन्धे गायन्ती-दिव्यकन्यकाम् ।

निपण्णां रत्नपर्यङ्के ददर्शनङ्गमङ्गलाम् ॥ ६१६ ॥

लावण्यपुण्यनिर्मज्जद्वात्रलेखां महोदधेः ।

सुधाकल्लोलकलितां पुनर्लक्ष्मीमिवोद्भूताम् ॥ ६१७ ॥

वीक्ष्य तां सोऽम्बवद्भूरिकम्पप्रमदविसायः ।

अहो रूपमहो कान्तिरित्यालोलितकन्वरः ॥ ६१८ ॥

लयं तालानुगं चित्रपदमालासितस्वरम् ।

संगीयतां निमज्जन्तीं सबुद्धां वीक्ष्य सोऽब्रवीत् ॥ ६१९ ॥

जय भगवन्शशिःकौस्तुभकमलार्पण्यूपवारुणीसूते ।

रत्नाकर मम कान्तां लोचनपात्रामृतं वितर ॥ ६२० ॥

उक्त्वेति विश्लेष नृपः सहसा सलिले तनुम् ।

(स्मरदावाग्निनिर्वाणधियेवाहितसाहसः ॥ ६२१ ॥

सार्धंवाहोऽपि तं वीक्ष्य निमग्नं मकराकरे ।

ममज्ज दुःखसलिले तद्वियोगोरुसागरे ॥ ६२२ ॥

पूर्वमार्यां समन्वेष्टुं यशःकेतुरसौ नृपः ।

प्रविष्टोऽब्धिमिति क्षिप्रमुच्चचार वचस्ततः ॥ ६२३ ॥

तदाकर्ण्य समाश्वास्य कृतकार्यो वणिक्पतिः ।

प्रययावानुकूल्येन मरुतां स्वपुरं शनैः ॥ ६२४ ॥

नृपोऽप्यम्भोधिमाविश्य काञ्चनोदारमन्दिरे ।
 (दैदर्शं निर्जनं रत्नप्राकारप्रवरं पुरम्) ॥ ६२५ ॥
 शून्यामन्वेप्य यत्नेन माणिक्यमवनावलीम् ।
 हेमवेश्मन्यपश्यत्तां मणिपर्यङ्कशायिनीम् ॥ ६२६ ॥
 ददर्शांशुकमुद्धाव्य ततोऽस्याः संमुखाम्बुजम् ।
 नलिन्या इव नीहारं विनिवार्य दिवाकरः ॥ ६२७ ॥
 सा प्रबुद्धा नरपतिं वीक्ष्य विस्मितमानसा ।
 प्रदध्यौ छन्नवेपोऽयं चक्रवर्तिपदोचितः ॥ ६२८ ॥
 ध्रुवं राजा यशःकेतुः श्रीमान्कमललोचनः ।
 विचिन्त्येत्यमवत्कम्पतरला स्मरवल्लरी ॥ ६२९ ॥
 संभारं समुद्धूतसंभूतपुलकाङ्कुरा ।
 अङ्गैरनङ्गसुमगैः कदम्बमुकुलश्रियम् ॥ ६३० ॥
 ततो विदितैस्तत्कारस्तया लज्जाविलोभया ।
 पृष्टो निजकथामुक्त्वा पर्यङ्के निपसाद सः ॥ ६३१ ॥
 नामाभिजनमाकर्ण्य यशःकेतुरिति स्फुटम् ।
 सखेदकम्पा लोलाम्बुबिम्बितेव विधोः कला ॥ ६३२ ॥
 तेनाथ राजभृङ्गेण तैस्तैः किमपि वर्णनैः ।
 बालिका कलिकेवासौ कृता हर्षविकासिनी ॥ ६३३ ॥
 ततस्त्रयोरमूत्सर्ष्टं संभोगाभिमुखं मनः ।
 यूनोः प्रथमसङ्गेऽपि लज्जां न क्षमते स्मरः ॥ ६३४ ॥
 अहं नाथ त्वदायता विना कृष्णचतुर्दशीम् ।
 अष्टमीं चेति विदधे सा तेन सह संविदम् ॥ ६३५ ॥
 पेशला सह तेनैषा प्रौढा समुचितं रतम् ।
 इतीवाराविणो राजा चकपे रशनां ततः ॥ ६३६ ॥
 हते तेन स्मरसात्सहसा जघनांशुके ।
 जालोकनमयात्तस्य सा गाढालिङ्गनं व्यधात् ॥ ६३७ ॥

अविभागममर्यादमपास्तविनयकमम् ।
 तत्तस्योः किमप्यासीद्विकल्पविरतं रतम् ॥ ६३८ ॥
 विह्वस्तमाल्यधम्मिष्ठं सेदमज्जद्विशेषकम् ।
 व्यामीलितार्धनयनं तस्याः कान्तममृद्वपुः ॥ ६३९ ॥
 एवं प्रतिनिधं तेन रममाणा सुमध्यमा ।
 ज्ञात्वा चतुर्दशीं प्राप्तां प्रययौ तदनुज्ञया ॥ ६४० ॥
 नलिनीमण्डपे नासिन्प्रवेष्टव्यं त्वया विमो ।
 उक्त्वेति तस्यां यातायामन्वगात्सोऽप्यलक्षितः ॥ ६४१ ॥
 गत्वाय स्वप्नी दूरसो ददर्श जलदत्तिपा ।
 राक्षसेन निर्गीर्णां तां राहुणेव विधोः कलाम् ॥ ६४२ ॥
 दृष्ट्वा वृत्तान्तसंज्ञासन्नाप्तातीतेन रक्षसा ।
 प्रस्तां दुःखाच्च कोपाच्च स्वप्नेनाय जघान तम् ॥ ६४३ ॥
 तत्कृपाणाप्रनिहृतं शिरस्तस्यापतद्भुवि ।
 शृङ्गं नीलाचलस्येव पिङ्गकेशदवानलम् ॥ ६४४ ॥
 तत्तत्स्योदरदरीदेहगर्वाद्विनिर्गता ।
 क्षीणश्लाघा निजकथां स्मृत्वा कान्तमुवाच सा ॥ ६४५ ॥
 अहं मृगाङ्कवत्यास्या विधाधरमहीपतेः ।
 ज्येष्ठा मृगाङ्कसेनस्य पुत्री पुत्रसहस्रिणः ॥ ६४६ ॥
 न मुक्ते मां विना नित्यं स दिव्यरसमोजनम् ।
 अप्यात्मसदृशैः पुत्रैर्वहुभिः परिवारितः ॥ ६४७ ॥
 गौरीव्रते कदाचित्तु चतुर्दश्यामुपोषिता ।
 अहं तेनाभवत्तातो दिनमेकममोजनः ॥ ६४८ ॥
 तत्कोपान्मां शशापासौ चतुर्दश्यां निशाचरः ।
 अष्टम्यां च सदैव त्वां मुक्त्वा त्यक्ष्यत्यवीक्षिताम् ॥ ६४९ ॥
 शून्ये च स्यात्ससि चिरं अष्टविधा रसातले ।
 अङ्गराजेन गर्वां ते हतो यावन्न राक्षसः ॥ ६५० ॥

इत्यहं गुरुणा शप्ता तच्च रक्षस्त्वया हतम् ।
 नष्टशापा सविद्या च स्वस्ति गच्छाम्यहं विमो ॥ ६५१ ॥
 इति श्रुत्वाङ्गनृपतिर्वियोगचकितोऽवदत् ।
 गमिष्यसि मया सुश्रु विहृत्य दिनसप्तकम् ॥ ६५२ ॥
 इति तेनार्थिता मुग्धा प्रेम्णा सा हरिणेषणा ।
 सिपेवे रुचिरोद्याने तं हेमकदलीवने ॥ ६५३ ॥
 ततस्तया सह नृपस्तस्मिन्पुष्करिणीजले ।
 निमज्ज्य केलिरमसादुन्ममज्ज निजात्पुरात् ॥ ६५४ ॥
 दीर्घदर्शिनमासाद्य निवेद्यासौ निर्जा कथाम् ।
 भेजे राज्यं प्रियाप्राप्तिविस्तारितमहोत्सवः ॥ ६५५ ॥
 अत्रान्तरे नभो गन्तुमुद्यता दिनसप्तके ।
 प्रयाते सा न सस्मार विद्यां मानुपसंगमात् ॥ ६५६ ॥
 विद्याविहीनां तां ज्ञात्वा ननर्त जगतीपतिः ।
 तां सेवमानः सुचिरं विललास सुलोचनाम् ॥ ६५७ ॥
 तस्मिन्नेवोत्सवदिने दीर्घदर्शी व्यपद्यत ।
 अज्ञातकारणः सर्वैर्निर्दीक्ष्य स्फुटिताशयः ॥ ६५८ ॥
 कथयित्वेति वेतालः पृष्टवान्पृथिवीश्वरम् ।
 मघ्निणः प्रलये तस्य हेतुं ब्रूहि महीपते ॥ ६५९ ॥
 किं वा दृष्ट्वा नृपतिना तामानीतां मृगेषणाम् ।
 प्राप्ता मयैव किं नेयमित्यमृतस्य चेतसि ॥ ६६० ॥
 उत प्राप्तं मया राज्यं राजा तस्मिन्महार्णवे ।
 मग्गोऽपि नष्टः किमिति किं ॥ दुःखार्दितोऽभवत् ॥ ६६१ ॥
 राजन्कथय मे तत्त्वमिति पृष्टोऽब्रवीन्नृपः ।
 स मग्नी प्रलयं यातो येन तच्छ्रूयतां सखे ॥ ६६२ ॥
 स्वभाषरागिणा प्राप्ता राज्ञा दिव्येयमग्नना ।
 षष्ट्युत्पन्नकार्योऽयमित्यमृतस्य ददतम् ॥ ६६३ ॥

इति श्रुत्वेति वेतालं क्षिप्रमन्तर्हितं पुनः ।

आदाय वृक्षशाखाग्राज्जगाम जगतीमतिः ॥ ६६४ ॥

इति द्वादशो वेतालः ॥ १४ ॥

ततोऽब्रुदत्स्कन्धगतो धरेण भीषणाकृतिः ।

शृणु राजन्कथामेकां यस्यां ते कोऽपि संशयः ॥ ६६५ ॥

बाराणस्यां शिवस्वामी द्विजन्मामृन्महाजनः ।

पेश्वर्यलालितस्तस्य हरिस्वामी सुतोऽभवत् ॥ ६६६ ॥

तस्य लाघण्यवत्याख्या मनस्ताप्यगालिनी ।

प्रिया बभूव त्रैलोक्यललामललिताकृतिः ॥ ६६७ ॥

स कदाचित्तया कान्तिसरिता सौघशेखरे ।

मुष्वाप केलिशयने समोगसुमगोत्सवे ॥ ६६८ ॥

अत्रान्तरे रतश्रान्तां तां ददर्श नमश्चरः ।

सुप्तां मदनवेगाख्यः प्रियां जायां द्विजन्मनः ॥ ६६९ ॥

तस्या विवसनं दृष्ट्वा करिणीदन्तनिर्मलम् ।

स्तनोरुजघनामोगं बभूव स मनोमुवः ॥ ६७० ॥

अलक्षितो जहाराशु तैस्तस्मात्प्रयतेक्षणाम् ।

अदृष्टपूर्वसरम्भकम्पमानां मनोजवः ॥ ६७१ ॥

प्राप्तः प्रबुद्धो दयितामपश्यन्नथ दुःखितः ।

अभवद्भ्राक्षणयुवा वियोगविषमूर्च्छितः ॥ ६७२ ॥

हा सुन्दरि सुधात्यन्दमन्दिरं कृचि सुलितम् ।

पुनरिन्दुमिवानन्दबन्धु द्रक्ष्यामि ते सुखम् ॥ ६७३ ॥

इति प्रलापमुखरः सुहृत्स्वजनशोकदः ।

उन्मत्त इव वभ्राम तत्र तत्र सरातुरः ॥ ६७४ ॥

सप्राप्य कृष्णपक्षेन्दुतानवैकोपमागताम् ।

त्यक्त्वा स्वनगरं प्रायाद्देहं देहीश्वरो यथा ॥ ६७५ ॥

भोगो रोगो विषं वेश्म सर्पबन्धश्च बान्धवाः ।
 दग्धारण्यं जगच्चेदं वियोगव्यासचेतसाम् ॥ ६७६ ॥
 स सूर्यकिरणाश्रुष्टः कृष्यमाण इवानिशम् ।
 भ्रान्त्वा सर्वाणि तीर्थानि क्षुत्क्षामः पांसुधूसरः ॥ ६७७ ॥
 श्रीमत्तः पद्मनाभस्य सत्रशालां द्विजन्मनः ।
 प्रविश्य दत्तं पद्या वै परमान्नमवाप सः ॥ ६७८ ॥
 प्रस्तुते नलिनीतीरे न्यग्रोधस्य तरोरधः ।
 भोक्तुं तत्र दिवानक्तं न दिशोऽप्यैक्षत क्षुधा ॥ ६७९ ॥
 अत्रान्तरे श्येनहृतः पन्नगोऽगादमूर्च्छितः ।
 विपौघश्यामलां लालां तस्य तत्याज भोजने ॥ ६८० ॥
 तदनालोकितं भुक्त्वा पञ्चतां स ययौ द्विजः ।
 विधौ हि वामतां याते सर्वमेति विपर्ययम् ॥ ६८१ ॥
 तं त्यक्तजीवितं ज्ञात्वा सत्रदोऽन्नाधिपो निजाम् ।
 सार्ध्वां विवासयामास बधूं तद्भोजनक्रुधा ॥ ६८२ ॥
 कथयित्वेति चेतालः पप्रच्छ नृपतिं पुनः ।
 ब्रह्महत्या नरपते कस्य सा कथ्यतामिति ॥ ६८३ ॥
 राजा जगाद सर्पोऽसौ श्येनेनात्यन्तपीडितः ।
 परतन्त्रो विपोत्सर्गे कथं नामापराध्यति ॥ ६८४ ॥
 श्येनोऽपि दैवनिर्दिष्टं भोक्तुमामिषमुद्यतः ।
 बुभुक्षितो निर्विवेकी केन पापीति कथ्यते ॥ ६८५ ॥
 अन्नदानपतिः सत्यं समार्यः सोऽप्यकिल्बिषः ।
 किं च जानन्वदेद्यः स सत्यं तत्पापमाजनम् ॥ ६८६ ॥
 इति तावदहं मन्ये कथं चेताल मन्यसे ।
 क्षुत्वेत्यन्तर्हितः सोऽथ तैरौ पुनरलम्बत ॥ ६८७ ॥
 इति त्रयोदशो चेतालः ॥ १५ ॥

१. 'यजेतालाम्' ख. २. 'क.' ख. ३. 'यत्र' ख. ४. 'इति सजानन्वदेदेतद्यः ॥
 सजानन्वदेदेतद्यः' ख. ५. 'तत.' ख.

ततस्तमादाय ययौ तथैव वसुधाधिपः ।
 (सं च स्कन्धस्थितः ग्राह कथां भूमिपते शृणु) ॥ ६८८ ॥
 वीरकेतुरमृच्छ्रीमानयोध्यायां महीपतिः ।
 यत्प्रतापानलः कोऽपि राज्ञां जज्वाल मानसे ॥ ६८९ ॥
 बभूव यस्य नगरे रत्नदत्ताभिधो वणिक् ।
 तस्य रत्नवती नाम तनयामृन्मनोरमा ॥ ६९० ॥
 रूपलावण्यललिता नवयौवनशालिनी ।
 प्रत्याख्यातविवाहा सा बभूव द्वेपिणी नृपु ॥ ६९१ ॥
 अत्रान्तरे नरपतिश्चौरविप्रकृते जने ।
 धीरो वै निर्ययौ रात्रौ द्रष्टुं नगरचेष्टितम् ॥ ६९२ ॥
 ततस्तमपि सोऽपरयाचौरं तालमिवोन्नतम् ।
 निःशब्दजैनसंचारं कचित्पार्श्वविलोकिनम् ॥ ६९३ ॥
 कचिन्निभृतनिःश्वासं कचिद्वक्त्रकृताकृतिम् ।
 यक्षमाणमिव वृष्णाढ्यं दौर्वाग्रिमिव दुःसहम् ॥ ६९४ ॥
 वियोगमिव सोच्छ्वासं कल्पान्तमिव दौहितम् ।
 सर्वस्वापहरं घोरं कल्पान्तमिव विभ्रुतम् ॥ ६९५ ॥
 संचिच्छेदेषु कुशलं प्रच्छन्नमिव दुर्जनम् ।
 विलोक्य तं नृपोऽर्वादीत्स्वैरं विश्वासघातकम् ॥ ६९६ ॥
 कस्त्वमस्मिन्निरालोके सखे चरसि निःसखः ।
 श्रुत्वेत्युवाच स व्याजाद्देवीपुत्रोऽहमीदृशः ॥ ६९७ ॥
 कस्त्वमित्यपि तेनोक्तस्तदेव क्षितिपोऽभ्यधात् ।
 एहि तुभ्यं प्रयच्छामि द्रविणं गर्तसंचितम् ॥ ६९८ ॥
 इत्युक्त्वा स्वगृहं चौरस्तं निनाय बधोद्यतः ।
 बहिर्निधाय तं वेश्म प्रविष्टे घनहारेणि ॥ ६९९ ॥

अभ्येत्य वत्सला प्राह नृपं तद्वृहचेटिका ।
 केन त्वं मृत्युवदने प्रेषितो मद्र गम्यताम् ॥ ७०० ॥
 विश्वासघातकश्चौरस्त्वामयं हन्तुमुद्यतः ।
 इति श्रुत्वा ययौ राजा राजधानीमलक्षितः ॥ ७०१ ॥
 प्रभाते तूर्णमुत्थाय सज्जीकृतचलाधिपः ।
 चौरं सुदुर्जयं युद्धे स्वयं जग्राह तं नृपः ॥ ७०२ ॥
 ततोऽपरक्तसंसिक्तो नीतो राजाज्ञया क्षणात् ।
 निग्रहाय तया पृष्ठो वणिकपुङ्गवा ससंग्रमम् ॥ ७०३ ॥
 तद्वृद्धा सहसा जातरागा जनकमभ्यघात् ।
 अयं घृतो मया तात वीरो मान्योऽधिको मम ॥ ७०४ ॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा सनिर्वन्धं पुनः पुनः ।
 कथं वित्तं नृपं गत्वा तन्मोक्षयावदद्वनम् ॥ ७०५ ॥
 ततो राजा विहस्याह यश्चौरस्यास्य रक्षिता ।
 सोऽपि बध्यो मम व्यक्तं पापी पापसमाश्रयात् ॥ ७०६ ॥
 इति क्षमापतिना तस्मिन्निषिद्धे तत्सुता ययौ ।
 चौरमेवानुमरणे निर्वन्धे निहितेक्षणा ॥ ७०७ ॥
 सा सशानमथासाध घृतं शूले ददर्श तम् ।
 ऊर्ध्वाननाक्षमचिरादाप्तैश्वर्यमिवाधनम् ॥ ७०८ ॥
 स किंचिच्छ्लेषजीवोऽथ तां दृष्ट्वा श्रुततरुणः ।
 मुक्ताश्रुविन्दुनिकरो विहस्यात्मानमत्यजत् ॥ ७०९ ॥
 ततस्तेन समारूढां चितां तां वीक्ष्य शंकरः ।
 फेलिमियो वरं तस्यै सशाननिलये ददौ ॥ ७१० ॥
 शंभोर्वेरात्युन्नतं पित्रे योग्यमयाचत ।
 अजीवयश्च मर्तारं श्रिया धर्मेण चावृतम् ॥ ७११ ॥
 ततः स सहसावाप्तजीवितः प्राप्य तां प्रियाम् ।
 सेनापतिः घृतो राजा ननन्द मुमटाग्रणीः ॥ ७१२ ॥

कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ छलसंमुखः ।

राजनरुद किमसौ जहास च ततोऽनु किम् ॥ ७१३ ॥

इति पृष्टो नृपः प्राह श्रुत्वा वणिजमुद्यतम् ।

प्रत्याख्यातुं विधिवशाद्राजोऽकारणवान्वयम् ॥ ७१४ ॥

सर्वथा देवलित्तिं प्रमार्ष्टुं कस्य कः क्षमः ।

इति ध्यात्वा रुरोद्रासौ तस्त्रीवृत्तं जहास च ॥ ७१५ ॥

इत्याकर्ण्यैव वेतालो गत्वा पुनरलम्बत ।

राजापि तं समालम्ब्य प्रययावचलाशयः ॥ ७१६ ॥

इति चतुर्दशो वेतालः ॥ १६ ॥

सोऽथ स्कन्धस्थितः प्राह शृणु विश्वभराप्रभो ।

त्वां विना संशयानेतान्को हि नश्चेत्तुमीश्वरः ॥ ७१७ ॥

नेपालविषये श्रीमान्यग्रःकेतुरभून्नृपः ।

पुत्री शशिप्रभा नाम तस्याभूद्रूपणं रैतेः ॥ ७१८ ॥

तां वसन्तोत्सवे कान्तां कदाचिद्विजपुत्रकः ।

कुसुमावचयेऽपश्यन्मनःस्वामी सुलोचनाम् ॥ ७१९ ॥

यस्या लावण्यसलिलैरुद्धमान इवानिशम् ।

आलम्बते रोमलतां त्रिवलीकूलजां सरः ॥ ७२० ॥

तां वीक्ष्य कान्तिसर्धस्त्रकोशं कुसुमधन्वनः ।

विन्वाधरहचिस्फारसिन्दूरेणैव मुद्रिताम् ॥ ७२१ ॥

सोऽभवन्मनमथाक्रान्तः संक्रान्तः खेदैवारिणि ।

संक्रान्तो मोहगहने विश्रान्तः पुलकोत्तरे ॥ ७२२ ॥

अत्रान्तरे भदक्रोधानिहताघोरणो गजः ।

आययौ मण्डलाकारकरकृष्टमहादुयः ॥ ७२३ ॥

भेर्यमाणः स पवनैरिव प्रलयवारिदः ।

जैगर्जोऽग्रं गलगुहागर्ममग्मीरविभ्रमम् ॥ ७२४ ॥

१. 'लसरी पुनरलम्ब' ख. २. 'स्त्रीवृत्तिर' ख. ३. 'विः' ख. ४. 'लावण्य' ख.

५. 'विशधर' ख. ६. 'खे' ख. ७. 'अनार्याणां ग' ख.

ततस्तद्भयवित्रैस्तां कम्पासिञ्जानमेखलाम् ।
 दैवेन दत्तावसरः स युवा तामसादयत् ॥ ७२५ ॥
 रक्षिता द्विजपुत्रेण तत्र सा तरलेक्षणा ।
 स्थित्वा क्षणं विभ्रमभूर्जगामान्तःपुरं निजम् ॥ ७२६ ॥
 सोऽपि स्मरशरासारपक्षौग्रपवनैरिव ।
 कम्पमानः प्रचलितं वभार विरहानलम् ॥ ७२७ ॥
 क्षीणेन्दुरिव विभ्राणः शरकाण्डविपाण्डुरम् ।
 सर्कान्ति प्रययौ मिश्रसदनं जीविताशयः ॥ ७२८ ॥
 अवाप्य मूलदेवाख्यं शशिना सह संस्थितम् ।
 वैदुर्ध्वतशतावासं प्रणनाम स निःश्वसन् ॥ ७२९ ॥
 विभ्रष्टैवदनच्छायं मूलदेवोऽपि वीक्ष्य तम् ।
 हसन्कंदर्पसर्पेण दष्टोऽसीति तमब्रवीत् ॥ ७३० ॥
 तद्वृत्तान्तमथाकर्ण्य स योगैघटिकां ददौ ।
 स्त्रीरूपकारिणीं तस्मै स्वयं वृद्धो बभूव ह ॥ ७३१ ॥
 तं कान्तकन्यकारूपं समादाय द्विजात्मजम् ।
 वृद्धर्षिरूपः प्रययौ मूलदेवो महीपतिम् ॥ ७३२ ॥
 यथोचितासत्कारो यैशःकेतुमुवाच सः ।
 राजर्न्सपुत्रकायेयमानीता कन्यका मया ॥ ७३३ ॥
 तरुणः कापि यातोऽसौ तमन्वेष्टुं प्रजाम्यहम् ।
 न्यासमूतामिमां कन्यां जगद्रक्षाक्षम प्रभो ।
 रक्षेत्युक्त्वा क्षणं दम्भादमवन्मीलितेक्षणः ॥ ७३४ ॥
 शशिप्रमामथाह्वय नरनाथो निजात्मजाम् ।
 आदिदेश द्विजसुता रक्षयेयमिति संभ्रमात् ॥ ७३५ ॥
 मुनिवेपे प्रयातेऽथ तस्मिन्नन्तःपुरे स्थितः ।

१. 'विभ्रस्तां' ख. २. 'नलयर' ख. ३. 'घा' ख. ४. 'धूर्त धू' ख. ५. 'ष्टं वदनं
 एमं' ख. ६. 'गाहटिकां' ख. ७. 'वीरकान्ति(वीति)द्वाराव घः' ख. ८. 'न्यपुत्र-
 कायेय' ख.

स कूटकन्यकारूपो मनःस्वामी व्यचिन्तयत् ॥ ७३६ ॥
 अहो नु धूर्तधुर्येण किमप्युपकृतं मम ।
 यन्मयेयं सुवदना दृष्टा तैरेव लोचनैः ॥ ७३७ ॥
 इति ध्यात्वा सविस्मयं तां कदाचिदुवाच सः ।
 सखि त्वं सततोच्छ्वासा किमुद्विमेव लक्ष्यसे ॥ ७३८ ॥
 ब्रूहीति कन्यारूपेण पृष्टा तेन सुमध्यमा ।
 ग्राह स्तनतटे हारं कुर्वाणा बाष्पनिर्झरैः ॥ ७३९ ॥
 सखि दृष्टो मयोद्याने कुञ्जरव्रतया युवा ।
 यदाकृतिसमुल्लेखे संकल्पोऽपि न पण्डितः ॥ ७४० ॥
 तस्य लोचनसंचारचतुरेण किमप्यहम् ।
 विप्रेणेव भुजङ्गस्य मूर्च्छिता न लभे धृतिम् ॥ ७४१ ॥
 स्वमेऽद्य तेन विहितो निर्वाच्यो मे रतोत्सवः ।
 सखि सखेदपुलकैर्योऽङ्गैः किमपि सूच्यते ॥ ७४२ ॥
 इत्याकर्ण्य मनःस्वामी धन्योऽस्मीति व्यचिन्तयत् ।
 अपास्य योगगुटिकां बभूव पुरुषाकृतिः ॥ ७४३ ॥
 प्रत्यभिज्ञाय तं सद्यः सुधासिक्तेव लज्जिता ।
 तदालिङ्गनसंजातकम्पा साभूदनङ्गम् ॥ ७४४ ॥
 मनोरथैर्यदभ्यस्तं हृदयेन यदार्थितम् ।
 मन्मथेन यदादिष्टं तयोस्तदभवद्रतम् ॥ ७४५ ॥
 तद्गाढमुरताश्लेषलपिताप्यथ सात्यजत् ।
 संतापशान्तिं सहसा निर्वहन् हि मनःसुधाम् ॥ ७४६ ॥
 सततं सेवमानस्तां स दिवा कन्यकाभवत् ।
 राजपुत्री च कालेन गर्भमाधत्त पुंप्पिता ॥ ७४७ ॥
 अत्रान्तरे मातुलेयी सैसा तस्याः सुमध्यमा ।
 पित्रा मृगाङ्कवत्याख्या वितीर्णा मन्त्रिसूने ॥ ७४८ ॥

ततस्तद्वयवित्रस्तां कम्पासिज्ज्ञानमेखलाम् ।
 दैवेन दत्तावसरः स युवा तामसादैयत् ॥ ७२५ ॥
 रक्षिता द्विजपुत्रेण तत्र सा तरलेक्षणा ।
 स्थित्वा क्षणं विभ्रमभूर्जगामान्तःपुरं निजम् ॥ ७२६ ॥
 सोऽपि सरशरासारपक्षौघप्रपवनैरिव ।
 कम्पमानः प्रचलितं वभार विरहानलम् ॥ ७२७ ॥
 क्षीणेन्दुरिव विभ्राणः शरकाण्डविपाण्डुरम् ।
 सर्कान्ति प्रययौ मित्रसदनं जीविताशयः ॥ ७२८ ॥
 अवाप्य मूलदेवाख्यं शशिना सह संस्थितम् ।
 बहूधूर्तशतावासं प्रणनाम स निःश्वसन् ॥ ७२९ ॥
 विभ्रष्टैयदनच्छायं मूलदेवोऽपि वीक्ष्य तम् ।
 हसन्कदर्पसर्पेण दष्टोऽसीति तमब्रवीत् ॥ ७३० ॥
 तद्वृत्तान्तमथाकर्ण्य स योगैघटिकां ददौ ।
 स्त्रीरूपकारिणीं तस्मै स्वयं वृद्धो वभूव ह ॥ ७३१ ॥
 तं कान्तकन्यकारूपं समादाय द्विजात्मजम् ।
 वृद्धर्पिरूपः प्रययौ मूलदेवो महीपतिम् ॥ ७३२ ॥
 यथोचिताप्तसत्कारो यैशःकेतुमुवाच सः ।
 राजर्न्सपुत्रकायेयमानीता कन्यका मया ॥ ७३३ ॥
 तरुणः कापि यातोऽसौ तमन्येष्टुं प्रजाम्यहम् ।
 न्यासभूतामिमां कन्यां जगद्रक्षाक्षम प्रभो ।
 रक्षेत्युपत्वा क्षणं दम्भादभवन्मीलितेक्षणः ॥ ७३४ ॥
 शशिप्रभामयाहूय नरनाथो निजात्मजाम् ।
 आदिदेश द्विजमुता रक्षयेयमिति संभ्रमात् ॥ ७३५ ॥
 मुनियेपे प्रयातेऽथ तस्मिन्नन्तःपुरे स्थितः ।

१. 'विभ्रस्तां' ख. २. 'न्तयत्' ख. ३. 'दा' ख. ४. 'धूर्त धू' ख. ५. 'हं वदनं
 ए'मे' ख. ६. 'ग'हटिकां' ख. ७. 'वीरकान्ति(वीर्ति)स्वाच सः' ख. ८. 'न्यपुत्र-
 प'देव' ख.

स कूटकन्यकारूपो मनःस्वामी व्यचिन्तयत् ॥ ७३६ ॥
 अहो नु धूर्तधुर्येण किमप्युपकृतं मम ।
 यन्मयेयं सुवदना दृष्टा तैरेव लोचनैः ॥ ७३७ ॥
 इति ध्यात्वा सविस्मयं तां कदाचिदुवाच सः ।
 सखि त्वं सततोच्छ्वासा किमुद्विमेव लक्ष्यसे ॥ ७३८ ॥
 ब्रूहीति कन्यारूपेण पृष्टा तेन सुमध्यमा ।
 प्राह स्तनतटे हारं कुर्वाणा वाष्पनिर्झरैः ॥ ७३९ ॥
 सखि दृष्टो मयोद्याने कुञ्जरत्रस्तया युवा ।
 यदाकृतिसमुल्लेखे संकल्पोऽपि न पण्डितः ॥ ७४० ॥
 तस्य लोचनसंचारचतुरेण किमप्यहम् ।
 विषेणेव मुजङ्गस्य मूर्च्छिता न लभे धृतिम् ॥ ७४१ ॥
 स्वप्नेऽद्य तेन निहितो निर्वाच्यो मे रतोत्सवः ।
 सखि सखेदपुलकैर्योऽङ्गैः किमपि सूच्यते ॥ ७४२ ॥
 इत्याकर्ण्य मनःस्वामी घन्योऽस्मीति व्यचिन्तयत् ।
 अपास्य योगगुटिकां बभूव पुरुषाकृतिः ॥ ७४३ ॥
 प्रत्यभिज्ञाय तं सद्यः सुधासिक्तेव लज्जिता ।
 तदालिङ्गनसंजातकम्पा सामूदनङ्गभूः ॥ ७४४ ॥
 मनोरथैर्यदभ्यस्तं हृदयेन यदार्थितम् ।
 मन्मथेन यदादिष्टं तयोस्तदमवद्रतम् ॥ ७४५ ॥
 तद्गाढसुरताश्लेषमलपिताप्यथ सात्यजत् ।
 संतापशान्तिं सहसा निर्वहन् हि मनःसुधाम् ॥ ७४६ ॥
 सततं सेवमानस्तां स दिवा कन्यकाभवत् ।
 राजपुत्री च कालेन गर्भमाधत्त पुंप्पिता ॥ ७४७ ॥
 अत्रान्तरे मातुलेयी स्वसा तस्याः सुमध्यमा ।
 पित्रा मृगाङ्कवत्यास्या वितीर्णा मन्त्रिसूनवे ॥ ७४८ ॥

तदुत्सवे मातुलेन राजपुत्री निमग्निता ।
 कूटसख्या तया सार्धं प्रययौ जनकाज्ञया ॥ ७४९ ॥
 तत्र मन्त्रिसुतो दृष्ट्वा कान्तां तां कूटकन्यकाम् ।
 वभूव मन्मथोन्मादविधुरो नष्टचेतनः ॥ ७५० ॥
 तं तु मूर्खनृपो ज्ञात्वा बल्लभं मन्त्रिणः सुतम् ।
 विप्रनिःक्षेपितां कन्यां तस्मै सम्यगिरा ददौ ॥ ७५१ ॥
 वितीर्थमाणा सा प्राह क्रमः कोऽयं महीपते ।
 न्यासीकृताहं विप्रेण यदन्यस्मै समर्पिता ॥ ७५२ ॥
 अथवा बलिनो राज्ञः स्वाधीनैवासि किं त्वयम् ।
 तीर्थयात्रां मन्त्रिसुतः कृत्वा स्पृशतु मामिति ॥ ७५३ ॥
 ततस्तां प्राप्य तीर्थानि ययौ मन्त्रिसुतः क्षणात् ।
 स्त्रीरूपः स तु तद्गृहे तस्यौ तद्भार्यया सह ॥ ७५४ ॥
 तयापि जातविश्वासो दर्शयित्वा निजाकृतिम् ।
 लेभे तत्सुरतं हृष्टो मनःस्वामी दिवानिशम् ॥ ७५५ ॥
 मूलदेवोऽथ राजानं ययाचे निजकन्यकाम् ।
 शापभीतस्ततो राजा कम्पमानो निरुत्तरः ।
 विविच्य मन्त्रिमिस्तस्मै पुत्रार्थं स्वसुतां ददौ ॥ ७५६ ॥
 ततः कपटपुत्राय शशिने तां नृपात्मजाम् ।
 दापयित्वा प्रतिययौ मूलदेवो महामतिः ॥ ७५७ ॥
 स व्रजव्यशशिना सार्धं राजपुत्र्या च वर्त्मनि ।
 मनःस्वामिनमासाद्य तद्वृत्तान्तमथाशृणोत् ॥ ७५८ ॥
 मनःस्वामी ततः प्राह धूर्तेश त्वदनुग्रहात् ।
 अमीष्टं मम संपन्नं दीयतां मे नृपात्मजा ॥ ७५९ ॥

१. 'रामायनतरङ्गितम् ॥ ततः कदाचित्तं काला मन्त्रिपुत्रं समागतम् । ययौ पृथीला
 तस्यां निरीधे सामलभत ॥ अत्रान्तरे मूलदेवः शशिना सहितो नृपम् । मुनिस्त्वद्रूपम-
 १५३ ययाचे निजकन्यकाम् ॥ दापयित्वा ततो' इति. २. 'संपन्नं' इति.

गान्धर्वेण विवाहेन प्राप्तैषा सुन्दरी मया ।
 अन्तर्वह्नी च संजाता भव एव नुमध्यमा ॥ ७६० ॥
 इति श्रुत्वा शशी प्राह सेयं राज्ञा ममापिता ।
 कन्यका जनकाधीना इति किं न श्रुतं मेया ॥ ७६१ ॥
 इत्थं तयोस्तद्विवादे मूलदेवोऽपि संग्रयन् ।
 अवाप्य निर्णयस्थाने नो चेत्किंचिदयोमुखः ॥ ७६२ ॥
 कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ वमुघाषिपम् ।
 सा भार्या कस्य घर्मेण संशयो वार्यतां मम ॥ ७६३ ॥
 इति पृष्टो नृपः प्राह शशी घर्मेण तत्पतिः ।
 छन्नकर्मो मनःस्वामी पित्रा तस्यै न सार्पिता ॥ ७६४ ॥
 श्रुत्वेत्यन्तर्हितः सोऽयं तरौ पुनरलम्बत ।
 सोऽपि स्कन्धस्थितः प्राह कथां शृणु नदीपते ॥ ७६५ ॥
 इति पञ्चदशो वेतालः ॥ १७ ॥
 अस्ति श्रीकाञ्चनपुरी मूर्ध्नि गौरीगुरोर्गिरिः ।
 रत्नप्राकारकिरणैरश्रान्तोल्लिखिताम्बरा ॥ ७६६ ॥
 जाम्बूतकेतुस्तस्यामूर्द्धिद्याधरपतिः पतिः ।
 यस्यामूर्च्छेपयक्षसः प्रख्याता काप्यनन्तता ॥ ७६७ ॥
 त्रिद्याधरेन्द्रदुहिता भार्यामूर्त्तस्य संमता ।
 कान्ता कनकवत्याख्या ख्यातिक्षेत्रं मनोमुखाः ॥ ७६८ ॥
 तेनाजनि मुतस्तस्यां कल्पवृक्षवराद्वरः ।
 जीमूतवाहनो नाम समूहो गुणसंपदाम् ॥ ७६९ ॥
 सोऽकण्ठं काञ्चनलताकुञ्जेऽप्यमरमूर्त्तः ।
 यस्मिन् स्थानमुभयं बन्धुत्वात्तन्मते यदाः ॥ ७७० ॥
 तं सर्वगुणसंपन्नमपि पिच्यतात्मजं पित्रा ।
 कल्पवृक्षं ददावस्यै नानासिद्धिमुघाफलम् ॥ ७७१ ॥

कान्ताकटाक्षचपलं चपलं यौवनं घनम् ।
 जीवितं चेति स ध्यात्वा तमर्थिम्यस्तरुं ददौ ॥ ७७२ ॥
 तेन दारिद्र्यनाशाय जगति प्रतिपादितः ।
 हेम्ना संपूर्य निखिलं क्षणात्सोऽन्तर्दधे द्रुमः ॥ ७७३ ॥
 कुलक्रमागते तस्मिन्करुणवृक्षे व्ययीकृते ।
 अपूर्वत्यागिना तेन त्रिलोकी विस्मयं ययौ ॥ ७७४ ॥
 (ज्ञात्वा तं प्रतिसामन्ता रहितं सुरशाखिना ।
 तद्राज्यहरणोद्योगे बभूवुः संहता मिथः ॥ ७७५ ॥
 जीमूतबाहनो ज्ञात्वा विद्यया तद्विचेष्टितम् ।
 तद्वेधाकूणितमना राज्यं तत्याज निस्पृहः ॥ ७७६ ॥
 स पित्रा सह मात्रा च तपसे सिद्धसेवितम् ।
 मलयं खेचरबधूविलासनिलयं ययौ ॥ ७७७ ॥
 खेच्छद्भुजङ्गकटकं सिद्धमण्डलसेवितम् ।
 चण्डीपतिमिवोत्सर्पत्रीलकण्ठप्रभावनम् ॥ ७७८ ॥
 संचरत्सिद्धललनाचरणाम्भोजकान्तिभिः ।
 विभ्राणामिव पर्यङ्कसक्ताब्धेर्विद्रुमावलीम् ॥ ७७९ ॥
 निर्मरस्मेरहाराङ्गमकरन्दोज्ज्वलाङ्गुलम् ।
 स त्वाद्यं भूमृतां धुर्यं चन्दनागरुभूषितम् ॥ ७८० ॥
 सै प्राप्य सर्वसिद्धीनामाश्रयं विषयं त्रियः ।
 पित्रोः सपर्यागिरतस्तस्यौ जीमूतबाहनः ॥ ७८१ ॥
 कदाचिदथ विश्रम्भसारिणा मुहुरा सह ।
 सैरं मधुकरारुयेन चचारोपवनेषु सः ॥ ७८२ ॥
 स तत्र कान्तं कुसुमकरन्दं नाम काननम् ।
 प्रविश्यापदयदुच्छ्वासिसीरमाः पुष्पवल्लरीः ॥ ७८३ ॥
 यत्र खेचरनारीणां तारानूपुरराविभिः ।
 अशोकशरणापातैरुल्ला भान्ति रागिणः ॥ ७८४ ॥

यत्र विद्याधरवधूमधुगण्डूपनिर्मरैः ।
 जृम्भेवारम्भि वकुलैः पुष्पाननविकाशिमिः ॥ ७८५ ॥
 यत्र दिव्याङ्गनातुङ्गस्तनोत्सन्नतरङ्गिणः ।
 मन्दारमकरन्दाढ्याः सुन्दरा वान्ति वायवः ॥ ७८६ ॥
 यत्रोद्भूतालिपटलं विलोक्य घनविभ्रमम् ।
 नृत्यन्ति हेमकदलीकुञ्जेषु शिखियोपितः ॥ ७८७ ॥
 उत्कण्ठाकोमलं यत्र गीतं किन्नरयोपितः ।
 शृण्वन्ति निश्चलाः साश्रुनयना हरिणाङ्गनाः ॥ ७८८ ॥
 ददर्श तत्र कैलासशिखरस्फारविभ्रमम् ।
 गङ्गाश्रितपताकाङ्कं गौर्याः प्रासादमुन्नतम् ॥ ७८९ ॥
 स्वयमेव सितच्छायास्पष्टीकृतदिगन्तरम् ।
 (स्थितं दुहितृवात्सल्यादिषु तत्र हिमाचलम्) ॥ ७९० ॥
 देवीगर्भगृहे तस्मिन्गीतं वीणास्वनाश्रितम् ।
 शुश्राव श्रोत्रपीयूषं हृदयानन्दनिर्झरम् ॥ ७९१ ॥
 तच्छ्रुत्वा कौतुकाकृष्टः प्रविश्य गिरिजालयम् ।
 कन्यामपश्यत्संसारसारं सरसिजेष्वनाम ॥ ७९२ ॥
 प्रवालपल्लवच्छायापादाम्बुजयुगं बभौ ।
 रागसागरसंचारादिव लम्भारुणद्रवम् ॥ ७९३ ॥
 लावण्यनलिनीवालमृणालयुगलोपमे ।
 लङ्काकाण्डद्वये तस्याः कान्तिहंसी व्यरोचत ॥ ७९४ ॥
 विलासवार्हिकदलीदण्डावूरु वभार सा ।
 पुष्पायुधपुरीकान्तदन्ततोरणविभ्रमे ॥ ७९५ ॥
 पुलिने कान्तिसरितः पर्यङ्कशयने रतेः ।
 मेखलापरिखं यस्या जघनं मान्मथं पुरम् ॥ ७९६ ॥

मग्नो नामीहृदावर्ते हरकोपानलाकुलः ।
 कामोऽनुमीयते यस्या रोमालीघृम्ललेखया ॥ ७९७ ॥
 तारहारांशुमुकुलैर्जातौ यस्याः पयोधरौ ।
 चक्रवाकाविव मुस्तासक्तवालविसाङ्कुरौ ॥ ७९८ ॥
 यस्या बलयकेयूरनीलरत्नांशुमोगिमिः ।
 तारुण्यचन्दनलताललिते वमतुर्भुजे ॥ ७९९ ॥
 सरबालवसन्तेन कृतेवाधरकान्तिभिः ।
 श्यामा बभौ वनस्याया यस्याः किशल्यावलिः ॥ ८०० ॥
 सुस्पष्टनासावंशोच्चललाटच्छत्रमाश्रिताः ।
 यत्कटाक्षच्छटाः प्रापुरुत्पलोद्दामदायताम् ॥ ८०१ ॥
 वदनाम्भोजमृङ्गालीं या वभारालकावलीम् ।
 प्रशस्तिमिव कामेन न्यस्तां सौभाग्यमूपतेः ॥ ८०२ ॥
 तां दृष्ट्वा विसयोत्कुललोचनस्तन्मयोऽभवत् ।
 क्षिप्रं नवावतारेण सरेण तरलीकृतः ॥ ८०३ ॥
 विस्तीर्णं मुकृतिप्राप्यं तारुण्यस्तेनपादपम् ।
 प्रशान्तविग्रहं कथं न्यस्तचापमिव सरम् ॥ ८०४ ॥
 लक्ष्मीविलासमवनं भुजस्तम्भविभूषितम् ।
 सापि लावण्यनलिनी राजहंसं विलोक्य तम् ॥ ८०५ ॥
 लज्जामज्जतनुलता कम्पसंपत्तरङ्गिता ।
 असूत्रमौक्तिकलता बभूव खेदविन्दुभिः ॥ ८०६ ॥
 क्षिप्रं पुलकिता तस्या विरराज कुचस्वली ।
 विशद्विरिव पुष्पेपुञ्जरैराकीर्णकेसरा ॥ ८०७ ॥
 ततः सहेलं तामेत्य प्राह जीमूतवाहनः ।
 प्रागुपायनकर्पूरमिव दन्तांशुमिर्दिशन् ॥ ८०८ ॥
 आचाररुचिरः कोऽयं क्रमस्तव सुलोचने ।
 मंगाप्य तेन यत्पूर्वसागतं प्रणयी जनः ॥ ८०९ ॥

उक्त्वेति तन्मुखाभोऽन्यस्तलोचनपदपदः ।
 अपृच्छत्तत्सर्वां लोलकुण्डलोद्गोतिताननः ॥ ८१० ॥
 रसाधारे गुणाधारः कुरुते कस्य नो मनः ।
 कौतुकोत्कलिकालोलत्तमावमुमगो वनः ॥ ८११ ॥
 जिघेस्वधिनिर्माणत्रैलोक्यनयनोत्सवः ।
 कुशलंकरणं कन्या कत्येवं ललिताकृतिः ॥ ८१२ ॥
 इत्युक्त्वा तेन सा ग्राह सखी प्रणयमन्थरम् ।
 गन्मीरोदारमधुरं कलयन्ती तदाश्रयम् ॥ ८१३ ॥
 सत्यमुन्नतसत्त्वानां दर्शनेन मवादृशाम् ।
 मनो नृत्यति किं त्वस्याः क्षणं वाद्म प्रवर्तते ॥ ८१४ ॥
 लज्जानिकेतनं कन्या कथं नाथ तवाग्रतः ।
 संभाषणे मुप्रतिभा ललनेव प्रगल्भते ॥ ८१५ ॥
 विश्वावसोः सिद्धपतेर्वधमुक्तालया मुता ।
 इयं मलयवत्यामृया नित्यं गौरीमुतिव्रता ॥ ८१६ ॥
 निवेद्येति सखी क्षिप्रं तद्वयस्यादयाशृणोत् ।
 जीमूतवाहनकथां प्राज्याभिनयशालिनीम् ॥ ८१७ ॥
 ततो नवसमुन्मेषकुमुभेपुतरङ्गिताम् ।
 कान्तां पिवन्निव दद्या ग्राह जीमूतवाहनः ॥ ८१८ ॥
 सहजेनामिलापेण गुणैः कान्त्या च मृषिता ।
 द्यमालोक्यते क्षिप्रं यदेतज्जन्मनः फलम् ॥ ८१९ ॥
 आनन्दमधुरा दृष्टिर्मनः प्रीतिररङ्गितम् ।
 सतामेतावदौचित्यं बाह्यस्वाचारदम्बरः ॥ ८२० ॥
 सनागमं मुधावृष्टिं दृष्टिपातमनुग्रहम् ।
 एवंविधस्य वपुषः को हि नाम न मन्यते ॥ ८२१ ॥
 इति ब्रुवाणे सानन्दं तस्मिन्विद्याधराविषे ।
 आहूता सा प्रतीहार्या प्रतप्से मानुरन्तिकम् ॥ ८२२ ॥

न्यस्तं मयि मनः पाल्यमेतदत्यन्तपेशलम् ।
 इतीव कान्तं सा प्राह व्रजन्ती नूपुरारवैः ॥ ८२३ ॥
 ददौ त्रिकपरावृत्तिलक्षितैकस्वनी मुहुः ।
 तस्यै दृशं सा घम्भिलमधुपासारणच्छलात् ॥ ८२४ ॥
 वेपथुस्तम्भसंरुद्धा तन्वी कृच्छ्रेण सा ययौ ।
 मुकुमारेण मनसा सा बहन्ती महाभुजम् ॥ ८२५ ॥
 निजमन्तःपुरं प्राप्य निःश्वसन्ती श्लथांशुका ।
 पपात शयनोत्सङ्गे दष्टां मकरकेतुना ॥ ८२६ ॥
 तस्याः प्रववृधे क्षिप्रं स कोऽपि विरहानलः ।
 यः सिध्यमानो वाप्याम्बुपूरैरुज्जृम्भतेऽधिकम् ॥ ८२७ ॥
 अत्रान्तरे जलनिधिं प्रविष्टे वासरेश्वरे ।
 वमूव रागिणी संध्या नलिनीवनशालिनी ॥ ८२८ ॥
 पद्मसंकोचचकिता वन्नमुर्ध्वमरा मुवि ।
 संध्यया तपदि व्युत्तास्तमोर्वाकजणा इव ॥ ८२९ ॥
 तिमिरैरज्जनश्यामैः श्यामावदनकुन्तलैः ।
 चक्रवाकीवियोगाग्निधूमामैरुत्थितं ततः ॥ ८३० ॥
 नीलाम्बुजैरिवोत्सृष्टं अमरैरिव मूर्च्छितम् ।
 नीलकण्ठैरिवोद्गीर्णं चचार मुचिरं तमः ॥ ८३१ ॥
 अथादृश्यत चण्डीशजटामण्डलमण्डनम् ।
 श्यामाकर्षूरतिलको रोहिणीरमणः शशी ॥ ८३२ ॥
 दिक्कान्ताकेलिमुकुले निशामौक्तिककुण्डले ।
 सारराजसितच्छत्रे शशिनि सौरजृम्भिते ॥ ८३३ ॥
 उत्सृष्टकुसुमामोदनन्दितेन्दीवरा मुहुः ।
 पद्मिनीविरहोच्छ्वासा इव बालानिला ववुः ॥ ८३४ ॥
 योषितां हृदयाकाण्डमग्नयधोपले विधौ ।
 भीतिं प्रयाते पद्मेषुवदिकुण्डमहोत्सुके ॥ ८३५ ॥

श्रीलण्डरससंसिक्कदलीदलशायिनी ।
 वमूव गाढसंतापकान्ता सिद्धपतेः सुता ॥ ८३६ ॥
 न जलार्द्रैर्न वसनैर्न हारैर्न सरोरुहैः ।
 तस्या न चन्द्रकान्तैश्च शशाम मदनानलः ॥ ८३७ ॥
 सा लज्जातरला ग्राह तां सर्षा पार्श्ववर्तिनीम् ।
 जयि स्वमेव मे तत्र कान्तदर्शनसाक्षिणी ॥ ८३८ ॥
 किं करोमि क्व गच्छामि कस्यैतत्कथयामि वा ।
 अयं कन्याविरुद्धो मे क्रमः कामेन निर्मितः ॥ ८३९ ॥
 (प्रेत्यादिशान्ति संदेशं प्रयान्ति स्वयमेव वा ।
 प्रियं प्रणयशालिन्यो निर्लज्जा वत योषितः) ॥ ८४० ॥
 किं वा संदिश्यते तस्मै लीलया हृतचेतसे ।
 सुवासौ भाग्यसंपन्नो वाचः कस्य शृणोति वा ॥ ८४१ ॥
 विज्ञप्तोऽसीति कार्पण्यं वदतीति प्रगल्भता ।
 एहीत्याज्ञावलेपोऽयं प्रियोऽसीति चिलज्जता ॥ ८४२ ॥
 न जीवामीत्यसदृशं त्वद्रियासीत्यलक्षितम् ।
 आगच्छामीत्यनुचितं सारार्तासीति चापलम् ॥ ८४३ ॥
 न जाने सखि किं वाच्यो देवादासादितोऽपि सः ।
 सर्वथा नष्टसार्थेऽस्मिन्मरणं शरणं मम ॥ ८४४ ॥
 वयस्यामगिधायेत्यं सा निनायाशु निर्झरेः ।
 संतापशोककटिर्न कुलचन्दनमार्द्रताम् ॥ ८४५ ॥
 जीमूतवाहनोऽप्यस्मिन्नन्तरे विरहाकुलः ।
 तस्मिन्गौरीवरोवाने चचारेन्दुमुखी सारन् ॥ ८४६ ॥
 स काममुजगाक्रान्तः कौमुदीविषमूर्च्छितः ।
 संतापविह्वलो भेजे वातूलतरलां स्थितिम् ॥ ८४७ ॥
 तं ध्यानमूकमभ्येत्य क्षामं मधुकरः सखा ।
 उवाच विष्टवः कोऽयं तवापि मनसः सखे ॥ ८४८ ॥

भजन्ति सततं सन्तो विद्यार्जनपरिश्रमम् ।
 येन न व्यसनापाते मुह्यन्ति मतिविप्लवैः ॥ ८४९ ॥
 इति श्रुत्वा विनिःश्वस्य तप्तो जीमूतवाहनः ।
 क्षणं विलोक्य वसुधां सख्योऽस्मीति तमभ्यधात् ॥ ८५० ॥
 प्रत्यग्रचन्दनदलैः कल्पिते सुहृदा ततः ।
 निषण्णः शयने प्राप न स संतापतानवम् ॥ ८५१ ॥
 अत्रान्तरे मलयवत्यभ्येत्य विरहासहा ।
 गौर्याश्रमे तरुलताप्रान्ते पाशमकल्पयत् ॥ ८५२ ॥
 ततः प्रणम्य गिरिजां हा हतेति विलप्य सा ।
 विधाय साश्रुनयनास्तत्र बाला मृगाङ्गनाः ॥ ८५३ ॥
 जीमूतवाहनो भूयादन्यस्मिन्मे स जन्मनि ।
 विमुरित्यभिधायाभूत्सा पाशमिमुखी क्षणात् ॥ ८५४ ॥
 तच्छ्रुत्वा सुहृदाहृतस्तूर्णं जीमूतवाहनः ।
 छन्नतरुलताजालैः शुश्राव च ददर्श च ॥ ८५५ ॥
 ततो भगवती प्राह पुत्रि मा साहसं कृथाः ।
 भविता चक्रवर्ती ते मर्ता जीमूतवाहनः ॥ ८५६ ॥
 इति देवीवरं प्राप्य सा ददर्श पुरःस्थितम् ।
 जीमूतवाहनं हर्षलज्जामुकुलितेक्षणा ॥ ८५७ ॥
 अत्रान्तरे समभ्येत्य चेटिका तां व्यजिज्ञपत् ।
 दिष्टा विवर्धसे देवि कल्पितस्ते महोत्सवः ॥ ८५८ ॥
 त्यङ्ग्रात्रा जनकादेशादद्य विद्याधरात्मजः ।
 जीमूतकेतुपुत्राय दातुं त्वां सादरोत्थितः ॥ ८५९ ॥
 तदेहि कल्पितोऽद्यैव विवाहो जनकेन ते ।
 इति श्रुत्वैव मा तूर्णं प्रययौ चारुहासिनी ॥ ८६० ॥
 जीमूतवाहनोऽप्यागु समेत्य पितुरन्तिकम् ।
 उपाह गङ्गलोदारविवाहोचितमूषणम् ॥ ८६१ ॥

ततो महोत्सवानन्दिविद्याधरशतानुगः ।
 परिणीय प्रियतमां सोऽमृतसंमोगतत्परः ॥ ८६२ ॥
 प्रेयस्याः सोऽग्रजं तुल्यरूपं मित्रावसुं व्यधात् ।
 विलासकेलिलीलासु प्रसूतप्रेममाजनम् ॥ ८६३ ॥
 कदाचिदथ विश्रम्भात्स मित्रावसुना सह ।
 चचार जलधेर्वेलंबनान्तमवलोकयत् ॥ ८६४ ॥
 ददर्श तत्र शिखराकारं नागास्त्रिसंचयम् ।
 युगक्षये महामृतं करकैरिव पूरितम् ॥ ८६५ ॥
 किनेतदिति तेनाशु पृष्टो मित्रावसुस्ततः ।
 उवाच गरुडेनात्र भक्षिता भुजगोत्तमाः ॥ ८६६ ॥
 सर्वक्षयमयाचार्यस्ततो वासुकिनार्थितः ।
 विसृष्टं तेन वारेण सदैकं नाममत्त्यसौ ॥ ८६७ ॥
 अयमस्त्रिचयस्तेषामद्रिकूटसमुच्छ्रयः ।
 उद्भवेति जनकाहृतस्तूर्णं मित्रावसुर्ययौ ॥ ८६८ ॥
 जीमूतवाहनोऽप्येकः सर्पेषु करुणाकुलः ।
 चचार सत्र निःसारं संसारं कलयन्धिया ॥ ८६९ ॥
 ततो ददर्श करुणाक्रन्दशुष्काघराननाम् ।
 बृद्धाङ्गनां कुमारेण सान्त्वमानां मुहुर्मुहुः ॥ ८७० ॥
 पूर्णेन्दुसुन्दरमुखं कान्तिर्धूतदिगन्तरम् ।
 स्फुरत्स्फीतफणारत्नपुञ्जपिञ्जरितान्तरम् ॥ ८७१ ॥
 आनन्दमिव कासारं संतोषमिव बङ्गमम् ।
 तं धीक्ष्य तनयं बृद्धा (विललापाश्रुगद्गदम् ॥ ८७२ ॥
 हा पुत्र नयनानन्द सौन्दर्यामृतदीपिते ।
 शङ्खपालमहावंशव्यक्तमुक्तामणीयिते ॥ ८७३ ॥
 हा शङ्खबूड लावण्यनिषानमिदमेव ते ।
 वपुर्गुरुडचञ्चलप्रवज्रपातासहं कथम् ॥ ८७४ ॥

भीतेन नागराजेन प्रेषितोऽसि गरुत्मते ।
 मुकुमारशरीरेऽस्मिन्कस्ते त्राणं भविष्यति ॥ ८७५ ॥
 इति पुत्रमुस्ताम्भोजमाधाय विललाप सा ।
 जीमूतवाहनोऽभ्येत्य तामुवाच कृपाकुलः ॥ ८७६ ॥
 मातः स्थितोऽसि ते पुत्रपरित्राणकृतक्षणः ।
 परोपकारः ससारे नि.सारे प्राप्यते कुतः ॥ ८७७ ॥
 अयमेव सदापाये काये सारसमुच्चयः ।
 यत्प्रयाति परायासत्राणसत्पुण्यपात्रताम् ॥ ८७८ ॥
 इत्यारुर्ष्य परित्रस्ता सुपर्णाशङ्किनी ततः ।
 पुत्रमासाद्य साकम्पा सा पुरः प्रणनाम तम् ॥ ८७९ ॥
 नाहं भुजङ्गाधिपतिर्वितीर्य निजविग्रहम् ।
 विद्याधरो रक्षिताहं त्वत्पुत्रस्येति सोऽभ्यधात् ॥ ८८० ॥
 वृद्धावदत्तं त्वमथ (शङ्खचूडाधिको मम ।
 बहुकल्पशतं धन्यां रक्ष सौम्यामिमां तनुम् ॥ ८८१ ॥
 इति तस्यां ब्रुवाणायां शङ्खचूडोऽतिविस्मितः ।
 तमभ्यधात्स्मितमुखो ललाटरचिताञ्जलिः) ॥ ८८२ ॥
 अभिनन्दितमेतत्ते दर्शनं सत्त्वशैलिनः ।
 पूर्णन्दुरमृतोद्गारिकिरणः कस्य न प्रियः ॥ ८८३ ॥
 अतो नु त्वं निजान्प्राणान्मदर्थं दातुमुद्यतः ।
 सैतामहे कथं नाम तृणार्थे रत्नविक्रयम् ॥ ८८४ ॥
 कियन्तो न भवाम्भोधौ जाता याताश्च मद्विधाः ।
 धौम्नुमस्येव भवतः क दृष्टः पुनरद्भवः ॥ ८८५ ॥
 सत्त्वोज्ज्वलं तैर्वेतेन्मुखेन्दौ शोभते वचः ।
 अन्यकायस्य जगतामनाम्नाने तु पातितम् ॥ ८८६ ॥

१. एतच्छोभन्तवन्नादाः स पुनश्च श्रुतिः. २. 'सागर.' श्र. ३. 'योऽहं गदे
 म. ४. 'अथवा' एव जगतामनु...नेतयाचितम्' श्र.

मद्वियोगाग्निविधुरा समाश्वास्या विमो त्वया ।
 मैता मे स्या अद्यष्टोऽपि साधुः सुचिरवान्धवः ॥ ८८७ ॥
 इति नागकुमारस्य वचः श्रुत्वा कुलोचितम् ।
 जीमूतवाहनः प्राह बत चित्रं प्रमापसे ॥ ८८८ ॥
 वृद्धेयं त्वां विना पुत्रं कुललंकरणं सखे ।
 कथं जीवति दुःखं हि जननीनां सुदुःसहम् ॥ ८८९ ॥
 एतां प्रातुं निजात्मानं रक्ष त्वज्जीविता बसौ ।
 अस्याः प्राणपरित्यागे विद्वन्मा कारणं भवः ॥ ८९० ॥
 शरीरेण मदीयेन द्वयं पाहि महामते ।
 इत्युक्त्वा शङ्खचूडस्य पादयोर्निपपात सः ॥ ८९१ ॥
 फणिसूनुस्तमवदन्निर्वन्धाकुलितस्ततः ।
 श्रुत्वा विवेचितं नैव मादृशामीदृशं वचः ॥ ८९२ ॥
 न नाम शङ्खधवलं शङ्खपालं महाकुलम् ।
 मैयापि शङ्खचूडेन सत्त्वभङ्गात्कलङ्क्यते ॥ ८९३ ॥
 जासन्नो गारुडः कालः स्वस्ति गच्छाम्यहं विमो ।
 बंधशैले प्रणम्याशु गोकर्णं शशिशेखरम् ॥ ८९४ ॥
 उक्त्वेति मात्रानुमते याते तस्मिन्क्षणादभूत् ।
 उचण्डाकाण्डकल्पान्तवातन्याकुलितं जगत् ॥ ८९५ ॥
 कैालदोर्दण्डसङ्ग्रामाश्छटाघटितदिक्कटाः ।
 उतस्थुर्मकरौस्फारकरालाः सागरोर्मयः ॥ ८९६ ॥
 ततश्चण्डांशुतप्तस्य सुमेरोरिव रश्मिभिः ।
 अमूदौर्वानिलेनेव पूरितं पिञ्जरं नमः ॥ ८९७ ॥
 आगतं गरुडं ज्ञात्वा सूचितं पक्षमारुतैः ।
 आसुरोह मदावद्भः शिलां जीमूतवाहनः ॥ ८९८ ॥

१. एतत्कोशान्तर्गतपाठः स्व-पुस्तके द्रुतितः. २. 'न मया' एव. ३. 'विन्ध्यशै' एव.
 ४. 'कालांदोर्दण्डसङ्ग्रामाः स्वया घटितदिक्कटाः' एव. ५. 'शेकुडाः क' स्व.

रत्नांशुकेन संछन्नः स्थितस्तत्र व्यचिन्तयत् ।
 सत्त्वोपकाराय पुनर्जन्म मूयान्ममेति सः ॥ ८९९ ॥
 ततोऽदृश्यत दिग्दाहदारुणच्छविरम्बरे ।
 प्रलयामिशिरालोलपक्षाक्षेपः स्वगेश्वरः ॥ ९०० ॥
 तस्योरुवेगसघट्टस्फूर्जद्वनघनारवैः ।
 चुक्रोशाकालकल्पान्तसंत्रस्तेव जगन्नयी ॥ ९०१ ॥
 ततः स तस्य धैर्याब्धिविद्याधरशिरोमणेः ।
 जहार शिरसश्चूडं चूडारत्नेन मण्डितम् ॥ ९०२ ॥
 ततः शरीरमादाय तस्य तुण्डेन खेचरः ।
 गगने बलयाकारं चकार गतिविभ्रमम् ॥ ९०३ ॥
 तच्चक्षुकचक्रमष्टं रक्तधारापुरःसरम् ।
 अङ्गे मलयवत्यास्तु चूडारत्नमथापतत् ॥ ९०४ ॥
 तद्वृष्ट्वा वज्रसंरम्भा शिरीषलतिकेव सा ।
 जीमूतकेतवे तन्वी परित्रस्ता न्यवेदयत् ॥ ९०५ ॥
 स्वविद्यया परिज्ञाय स्वसूनोर्जीवितव्ययम् ।
 भार्याभ्याभ्यां सहितः सौपर्णीं तां शिलां ययौ ॥ ९०६ ॥
 अनान्तरे शङ्खचूडन्तूर्णं तं देशमागतः ।
 गोकर्णमणवतटे प्रणिपत्य मनोजवः ॥ ९०७ ॥
 तत्रापश्यन्नसमुत्थोत्थातस्सलितशेखरम् ।
 विद्याधरेन्द्रमादाय तार्क्ष्यमुत्पतितं दिवि ॥ ९०८ ॥
 तं वीक्ष्य साञ्चुनयनो निनाषातं निदारितः ।
 आत्मानं तद्वधे मत्वा कारणं विललाप सः ॥ ९०९ ॥
 हा सत्त्वविपुलौदार्यधैर्यगाम्भीर्यसागर ।
 हा पूर्णकरणाकोशं हा निष्कारणवान्धव ॥ ९१० ॥
 इति शोचन्त विपदमनुसर्तुं गरत्मतः ।
 जगाम जीविनत्यागदृढीकृतविनिश्चयः ॥ ९११ ॥

आत्माद्यात्माद्य ताक्ष्योऽपि ज्योत्ति जीमूतवाहनम् ।
 क्षिप्रं स्थगितसंरम्भं प्रदध्यौ विस्मयाकुलः ॥ ९१२ ॥
 अहो नु सत्त्ववानेष कोऽपि धैर्यमहोदधिः ।
 मध्यमाणस्य यद्भास्ये जायन्ते पुलकाङ्कुराः ॥ ९१३ ॥
 प्रसन्नवदनः क्षिप्रं जीवशेषोऽपि वर्तते ।
 चिन्तयित्वेत्यपृच्छत्त्वं कोऽस्मीति विनतात्मजः ॥ ९१४ ॥
 स तं प्राह किमेतेन तव भक्षय मामिति ।
 अस्मिन्नवसरे शङ्खचूडोऽभ्येत्य तमवतीत् ॥ ९१५ ॥
 हा हा मा मा कृथास्ताक्ष्यं साहसं किं न पश्यसि ।
 अस्य विद्याधरेन्द्रस्य स्वस्तिकाङ्कमुरस्तटम् ॥ ९१६ ॥
 अहं स नागस्ते भक्ष्यं पश्य जिह्वालताद्वयम् ।
 विस्फूर्जद्विपद्भूतकारं रत्नस्फीताः फणाश्च मे ॥ ९१७ ॥
 इदानीमपि मे देहे मांसशोणितमस्ति भोः ।
 न च पश्यामि ते तृप्तिं स त्वं दूरे स्थितः कुतः ॥ ९१८ ॥
 इत्युक्त्वा विपुलं वक्षः प्रसार्योत्तानविग्रहः ।
 तूर्णं मां भक्षयेत्याह स सुपर्ण पुनः पुनः ॥ ९१९ ॥
 ततोऽस्विशेषं तं त्यक्त्वा विषण्णे पन्नयेधरे ।
 जीमूतवाहनवधर्गुरुभ्यामामयौ सह ॥ ९२० ॥
 दृष्ट्वा मलयवत्यग्रे प्राणनाथं तथागतम् ।
 मुमोहापूर्वशोकाग्निधूमेनेवान्वकारिता ॥ ९२१ ॥
 जीमूतपेतुस्तनयं विलोभ्य सह जायया ।
 पपात मूलनिर्लेज इव चन्दनपादपः ॥ ९२२ ॥
 ताक्ष्येणाभास्यमानेषु तेषु जीमूतवाहनम् ।
 संस्पृश्य पाणिना माता शुशोच करुणस्वनम् ॥ ९२३ ॥
 मुहूर्ताच्छेषजीवोऽपि सोऽज्रवीज्वननीं शनैः ।
 मातर्बिन्धुरस्यास्य किं शरीरस्य शोच्यते ॥ ९२४ ॥

भवेऽस्मिन्पवनोद्भ्रान्तवीचिविभ्रममङ्गुरे ।
 जायते पुण्ययोगेन परार्थे जीवितव्ययः ॥ ९२५ ॥
 उक्त्वेति विसृजन्प्राणानविच्छायमुखच्छविः ।
 स्फारेण शोकतमसा जगत्संपूरयन्निव ॥ ९२६ ॥
 ततो मलयवत्यासीन्मरणे कृतनिश्चया ।
 शोकस्तम्भेन संरुद्धा न चचाल पपात वा ॥ ९२७ ॥
 अथ साक्षाद्भगवती गौरी तां भक्तवत्सला ।
 समाश्वास सुधासारैस्तद्भर्तारमजीवयत् ॥ ९२८ ॥
 चक्रवर्तिश्रियं चासौ दत्त्वा क्षिप्रं तिरोदधे ।
 ततो देवाः सगन्धर्वास्तस्य सत्त्वमपूजयन् ॥ ९२९ ॥
 गरुडोऽप्यथ हृष्टात्मा वरदस्त्रेण याचितः ।
 प्रददौ सर्वनागानां पुण्यामभयदक्षिणाम् ।
 जीमूतवाहनो हृष्टः प्रययौ दयिताससः ॥ ९३० ॥
 कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ वसुधाधिपः ।
 सत्त्ववान्शङ्खचूडोऽत्र किं वा जीमूतवाहनः ॥ ९३१ ॥
 इति पृष्टो नृपः प्राह शङ्खचूडोऽत्र सत्त्वभूः ।
 यो बालोऽपि निजौचित्यात्त चचाल महाशयः ॥ ९३२ ॥
 जीमूतवाहनस्यैतदात्मदानं किमद्भुतम् ।
 बोधिसत्त्वः स हि पुरा दत्त्वान्बहुशस्तनुम् ॥ ९३३ ॥
 तपस्तीव्रं यशः शुभ्रं श्लाघ्या श्रीः सत्त्वमद्भुतम् ।
 निर्व्याजदानं च नृणां पूर्वाम्यस्तं हि जायते ॥ ९३४ ॥
 ध्रुत्वेत्यलक्षितो गत्वा वेतालः शिंशपातरौ ।
 तेनैव कण्ठपाशेन तथैवोलम्बितः स्थितः ॥ ९३५ ॥
 इति षोडशो वेतालः ॥ १८ ॥

१. एतदुत्तरं ग-मुम्बके. 'अजीवयन्चास्थितोपान् दृष्टान् प्राक्पन्नगेश्वरान् । चक्रव-
 र्तिश्रियं नेजे ततो जीमूतवाहनः ॥ स प्राप्य काश्चनपुरं हिमाद्रिशिखरे स्थितम् ।
 पित्रोः समास्थितो राज्ये रराज दयिताससः ॥' एवंविधः पाठ उपलभ्यते.

पुनस्तमादाय ययौ जवेन जगतीपतिः ।
 स्कन्धस्थितः स च ग्राह कथेयं श्रूयतामिति ॥ ९३६ ॥
 रूढकाख्ये पुरे राजा श्रीमानासीद्यशोधनः ।
 मांघातुरामनहुषा यत्कीर्त्या विस्मृता इव ॥ ९३७ ॥
 स कदाचित्समम्येत्य विज्ञप्तो वणिजा मयात् ।
 ममास्ति कन्यकारणं देव तस्यास्ति माजनम् ॥ ९३८ ॥
 इति श्रुत्वा नरपतिर्द्रष्टुं तां ग्राहिणोद्विजान् ।
 ते हृष्टोन्मादिनीं नाम्ना तामुन्मादं समाययुः ॥ ९३९ ॥
 इमां भूमिपतिः प्राप्य प्रजाकार्यपराङ्मुखः ।
 द्रुपं नह्यति रागेण द्विजास्तत्रेति चिन्तयन् ॥ ९४० ॥
 ते नरेश्वरमम्येत्य कन्यां दुर्लक्षणां जयुः ।
 अनादृतां ततो राज्ञा सेनान्ये तां पिता ददौ ॥ ९४१ ॥
 कदाचिदथ मत्तालिमालावलयिते मधौ ।
 उत्फुल्लफुल्लघवले कोकिलालापमालिनि ॥ ९४२ ॥
 मकरन्दपिशङ्गासु दिक्षु वक्षिणमारुतैः ।
 कौडुमेनाङ्गरागेण विलिखन्निव कामिभिः ॥ ९४३ ॥
 राजा गजेन्द्रशैलस्रश्चम्पकापीडशेखरः ।
 अशोकमालसच्छायो मधुमास इषापरः ॥ ९४४ ॥
 पुरे चैत्रोत्सवं द्रष्टुं चचार कमलेश्वरः ।
 विलोक्यमानः कान्ताभिः कुसुमायुधशङ्कया ॥ ९४५ ॥
 दुर्लक्षणेत्यनेनाहं प्रत्यास्यातेति मानिनी ।
 उन्मादिनी ततो राज्ञः सौपाचनुमदर्शयत् ॥ ९४६ ॥
 नेत्रांशुभिः कन्दलिता पाणिभ्यां जातपल्लवा ।
 बभौ मूर्तेन चैत्रथीः सा मुग्धस्मितपुष्पिता ॥ ९४७ ॥
 तारहारकरस्फूर्तिरफेनाद्वे कान्तिसागरे ।
 तस्याः कटाक्षैरभवद्यमुनाग्रान्तिविग्रमः ॥ ९४८ ॥

बिम्बाधरारुणदलं लोललोचनपद्मदम् ।
 सा वमार मुखाम्भोजं सुगन्धिसितशेखरम् ॥ ९४९ ॥
 तां वीक्ष्य चन्द्रवदनां मदनोद्यानकौमुदीम् ।
 अहो नु वञ्चितोऽसीति प्रदध्यौ वसुधाधिपः ॥ ९५० ॥
 राजधानीं प्रविश्याथ सरज्वरनिपीडितः ।
 नोद्यानेषु न चापीषु न सौधेष्वाययौ घृतिम् ॥ ९५१ ॥
 दुर्लक्षणेति यैरुक्ता दुर्नयैर्नयबुद्धिभिः ।
 उन्मादिनी ब्राह्मणास्ते निर्गच्छन्तु पुरान्मम ॥ ९५२ ॥
 इत्यादिश्य नृपस्तस्यै दक्षमान इवानिशम् ।
 कदलीदलशय्यासु श्रीखण्डसलिलोच्छ्रितः ॥ ९५३ ॥
 भिषग्भिः सेव्यमानोऽपि स्वास्थ्यं न प्राप भेषजैः ।
 सरज्वरचिकित्सा हि दयितालिङ्गनामृतैः ॥ ९५४ ॥
 विश्रम्भसाक्षिणैकेन सा तस्य विरहव्यथा ।
 विराजनाम्ना विज्ञाता राजन्येन कथान्तरे ॥ ९५५ ॥
 पृष्ठोऽब्रवीन्नृपस्तेन सखे तां सुन्दरीं विना ।
 सेनापतिवधूं प्राणाः कापि गन्तुं ममोद्यताः ॥ ९५६ ॥
 यौवनोदयशीतांशुं तन्मुखं सुन्दरं दृशोः ।
 धन्याः पश्यन्ति लावण्यरसायनतरङ्गितम् ॥ ९५७ ॥
 मूपतेः परदारेषु संगमो मे न शोभते ।
 प्रेमादानृपमूढानां मरणं हि प्रमेयता ॥ ९५८ ॥
 (ईत्युक्त्वा दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य क्षामविग्रहः ।
 आनीयतां सेति वचो वयस्याह न चक्ष्महे) ॥ ९५९ ॥
 अन्येद्युर्जातवृत्तान्तः सेनापतिरुपेत्य तम् ।
 सौरं बलघरो नाम सप्रणामं व्यजिज्ञपत् ॥ ९६० ॥

भाजनं सर्वरत्नानामेकस्त्वं देवतापरः ।
 गृहाणोन्मादिर्नीं कान्तां ललनारत्नमुत्तमम् ॥ ९६१ ॥
 इति श्रुत्वा विहस्यैनमुवाच वसुधाधिपः ।
 अहो भक्तोऽपि मे भृत्योऽहितं नैव प्रमापते ॥ ९६२ ॥
 अयं लोको निरालोकः कलिकर्दमसंकुलः ।
 नृपाणां साधुशीलानां चरितैर्हि प्रकाश्यते ॥ ९६३ ॥
 सदहं पृथिवीपालो दण्डधारपदे स्थितः ।
 र्जनीतिगहनावृत्तं व्यसनाधिं कथं भजे ॥ ९६४ ॥
 कुले जन्मगुणाः सन्ति धर्मे यशसि चादरः ।
 मतिश्च परदारेषु सत्यं न सदृशं मम ॥ ९६५ ॥
 इति ब्रुवाणं राजानं सेनापतिरमापत ।
 उन्मादिर्नीं करोम्येनां नर्तकां सुरमन्दिरे ॥ ९६६ ॥
 भजस्येतां देवदासीं देव दोषो न विद्यते ।
 इति तेनार्यमानोऽपि तं निनिन्द स्था नृपः ॥ ९६७ ॥
 ततः सेनापतौ याते तामेवोन्मादिर्नीं सरन् ।
 यशःशरीरभ्रमलं विवेश अष्टजीवितः ॥ ९६८ ॥
 तसिभ्रुपरते रात्रि सेनानीः शोकविह्वलः ।
 धर्हि विवेश सद्भक्तिः पर्यन्ते हि प्रदृश्यते ॥ ९६९ ॥
 अभिषायेति चेतालः क्षमापालं पृष्टवान्पुनः ।
 सेनानीभूमिपालाम्यां कोऽधिकः सत्त्ववानिति ॥ ९७० ॥
 राजावदत्स्वामिमक्तिर्भृत्यानां किमिवाद्भुतम् ।
 श्लाघ्यो नरेन्द्र एवैको प्राणांस्तत्याज न स्थितिम् ॥ ९७१ ॥
 उद्दाममदसंरुद्धा लीलामीलितदृष्टयः ।
 न शृण्वन्ति न पश्यन्ति राजानः बुद्धरा इव ॥ ९७२ ॥
 नारीणामिव सद्भावो दीर्जन्यं महतामिव ।
 विवेको भूमिपालानां कदा केनोपगम्यते ॥ ९७३ ॥

इति श्रुत्वैव वेतालं प्रयातं शिशिपातरुम् ।

पुनरादाय भूपालः प्रययौ पवनोपमः ॥ ९७४ ॥

इति सप्तदशो वेतालः ॥ १९ ॥

ततः स्कन्धस्थितो भूयः स वमापे भुको विभुम् ।

शृणु राजन्कथामेकां कोऽन्यः कृन्तति संशयान् ॥ ९७५ ॥

चन्द्रप्रभाभिधानस्य नृपस्योज्जयिनीपतेः ।

द्विजो बभूव नगरे देवस्वामी महाधनः ॥ ९७६ ॥

चन्द्रस्वामीति तस्याभूत्तनयः श्रुतिसागरः ।

धूतव्यसनसंसक्तो निष्कलङ्काः क वा गुणाः ॥ ९७७ ॥

स वृद्धकितवैर्धूर्तैर्व्याजाद्बहुधनं जितः ।

बद्धा लताभिरनिशं ताडितो मौनमास्थितः ॥ ९७८ ॥

मृतोऽयमिति कालेन त्यक्तस्तैर्निर्धनः कृशः ।

प्रययौ निशि निःशेषकोशक्लेशसमाश्रयः ॥ ९७९ ॥

स शून्यं देवनिलयं कथंचित्प्राप्य निःसहः ।

अपश्यत्तुङ्गखट्वाङ्गप्रतिनं मस्रभूषितम् ॥ ९८० ॥

दीनं तपस्विना तेन क्षुत्क्षामोऽथ निमग्नितः ।

तद्विद्यानिर्मितं भेजे स विप्रः काञ्चनं पुरम् ॥ ९८१ ॥

तत्र बालमृगाक्षीभिः शशाङ्कशतकान्तिभिः ।

कृतराजोपचारेण स लेभे स्नानभोजनम् ॥ ९८२ ॥

विलोलमेखलादाम विराययति सुन्दरम् ।

सुरतं सुरसुन्दर्यास्तत्र चित्रमवाप्तवान् ॥ ९८३ ॥

इति तद्विधया दिष्टमनुम्य स मुत्थितः ।

प्रभाते तद्विरहितः पृथुश्लोकाकुलोऽभूत् ॥ ९८४ ॥

तत्तत्स्वरूपया चक्रे प्रत्यहं तन्महाव्रती ।

निशि यदृश्यते सर्वं वासरेषु न किञ्चन ॥ ९८५ ॥

ततः कदाचिदाराध्य स विप्रस्तममापत ।

भगवन्देहि मे विद्यामिमागीप्सितसिद्धिदाम् ॥ ९८६ ॥

इति तेचार्यमानोऽसौ प्रोवाच वितताद्ययः ।
 विद्येयं तीव्रनियमैरिच्छन्नरागादिवन्धनैः ॥ ९८७ ॥
 प्राप्यतेऽन्तर्जलजपादामुखं विघ्नकारिणीम् ।
 सलिलान्तः प्रविष्टत्वं स्वप्नं द्रक्ष्यसि तत्क्षणात् ॥ ९८८ ॥
 पुनः संजातमात्मानं बन्धुपुत्रकलत्रिणम् ।
 तदस्थितेन च मया स्मारितो यदि विद्यया ॥ ९८९ ॥
 वह्निं प्रवेक्ष्यसि तदा विद्यामेनामुपेक्ष्यसि ।
 इत्युक्त्वा स ददौ तस्यै निजविद्यां नदीतटे ॥ ९९० ॥
 द्विजोऽपि प्राप्य तां जप्तुं विवेश सलिलान्तरम् ।
 तत्रापश्यत्स विस्मृत्य सर्वमात्मानमात्मना ॥ ९९१ ॥
 हिरण्यपुर्यां संजातं शंकरस्य पुरोवसः ।
 कालेन वर्धमानोऽसौ सह विद्याकलागुणैः ॥ ९९२ ॥
 भार्या शशिप्रभां नाम लेभे विश्रम्भसाक्षिणीम् ।
 भुवा वसन्तसंतोषविश्रान्तिसदने बने ॥ ९९३ ॥
 निजहार तया हारिवपुषा हरिणीदृशा ।
 दासीशतवृतां तत्र रममाणां ददर्श सः ॥ ९९४ ॥
 तां दैवयोगादयितां सर्पेण निहतां भुवि ।
 तां वीक्ष्य विललापासौ कन्दर्पविषमैस्यतिः ॥ ९९५ ॥
 हा प्रिये हा मनःसिन्धुचन्द्रिके हा सुलोचने ।
 लक्ष्मीरिवाविनीतस्य क मे यातासि सुन्दरि ॥ ९९६ ॥
 इत्यधुगद्गदगिरा विलपन्तं चिराय तम् ।
 आयुषोऽर्धं प्रयच्छास्यै देवदूतोऽभ्यषादिति ॥ ९९७ ॥
 तच्छ्रुत्या स ददौ तस्यै निजस्यार्धमयायुषः ।
 अवाप्तजीवितां तेन तामालिङ्ग्य ननन्द सः ॥ ९९८ ॥
 ततः कालेन तनयं लेभे कमललोचनम् ।
 रोहस्य मन्दिरं कान्तं प्रतिविम्बमिवात्मनः ॥ ९९९ ॥

इति मायाविकल्पोत्थं स तन्मायां व्यलोकयत् ।
 अत्रान्तरे तदा तेन व्रतिना स विबोधितः ॥ १००० ॥
 स्मृत्वा वह्निप्रवेशाय सहसैव समुद्यतः ।
 बन्धूनां करुणाक्रन्दराविणामशृणोद्भिरः ॥ १००१ ॥
 तनयोत्सङ्गया परया तथा सार्धं मृगीदृशा ।
 प्रार्थ्यमानोऽपि यत्नेन वह्निमेव समाविशत् ॥ १००२ ॥
 स्वस्यानुमरणोद्युक्ता दृष्ट्वा भार्याः समातरः ।
 हा पापोऽस्मीति संचिन्त्य मुहूर्तं जडतां ययौ ॥ १००३ ॥
 अनिर्दग्धतनुस्तेन पावकेन हिमत्विषा ।
 उदतिप्लवदीतीरादन्तर्जलजपास्थितः ॥ १००४ ॥
 एतदहश्चतुर्भागे दृष्ट्वा सर्वं सविस्मयः ।
 न्यवेदयद्यथावृत्तं व्रतिने लम्बित्वाञ्जलिः ॥ १००५ ॥
 दुःखाकुलस्ततः प्राह व्रती हा धिग्विकल्पितः ।
 त्वया विम्रंशिता सिद्धिस्ता विद्या विस्मृता इति ॥ १००६ ॥
 सौऽवदन्निर्विकल्पेन त्वदादिष्टं कृतं मया ।
 न जाने केन विज्ञेन न दग्धोऽहं कृशानुना ॥ १००७ ॥
 इत्युक्त्वा शपथं चक्रे स विप्रो व्रतिनः पुरः ।
 तपस्वी अष्टविधोऽथ तत्कारणमचिन्तयत् ॥ १००८ ॥
 कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ पृथिवीपतिम् ।
 राजन्कृते विधानेऽपि सा विद्या किं न दृश्यते ॥ १००९ ॥
 इति पृष्ठो नृपः प्राह कृतं तेन यथोदितम् ।
 किंतु भावोऽस्य तत्कालं बान्धवेष्वाद्वर्ततां ययौ ॥ १०१० ॥
 तेन प्रणष्टा तत्कोपाद्गुरोरपि चिरस्थिता ।
 विद्यासौ भावदुष्टानां विनश्यन्त्येव सिद्धयः ॥ १०११ ॥
 इत्याकर्ण्यैव वेतालः प्रययौ शिशिपातरुम् ।
 आनिनाय च तं गृयो निरुद्वेगो महीपतिः ॥ १०१२ ॥
 इत्यष्टादशो वेतालः ॥ २० ॥

सोऽय स्तब्धस्थितः प्राह राजानं वेगगामिनम् ।
 शृणु नाथ कथामेकां निशा यावत्तं शीर्यते ॥ १०१३ ॥
 वैद्वोलके लवपुरे सार्वभौमः क्षमापतिः ।
 सूर्यप्रभामिधानोऽभूच्चक्षुःकुमुदकाननम् ॥ १०१४ ॥
 आल्यातविक्रमे तस्मिन्निस्तिर्लां रक्षति क्षितिम् ।
 वणिजस्ताम्रलिप्ताया घनदत्तस्य पुत्रिका ॥ १०१५ ॥
 विद्यापरी शापवलान्मानुषं भोगमाक्षिता ।
 हिरण्यवत्यां जाययामजायत सुलोचना ॥ १०१६ ॥
 यत्कान्तिमधुना मत्तः प्रबलो विजयी स्मरः ।
 सा यौवनं शनैः प्राप नासा घनवती तनुः ॥ १०१७ ॥
 कालेन त्रिदिवं याते तस्याः पितरि गोत्रजैः ।
 हर्तुं द्रविणमाक्षिता तद्भार्या राजसंश्रितैः ॥ १०१८ ॥
 सा दुःखिता च भीता च गृहीत्वामरणं निजम् ।
 अलक्षिता निशि प्रायाहुहित्रा सह विह्वला ॥ १०१९ ॥
 यान्ती तूर्णं निरालोके शोकैरिव समोदरीः ।
 विभ्रष्टदृष्टिः शूलसं जघानांसेन सा नरम् ॥ १०२० ॥
 ॥ चौरः स्तब्धनिर्पातसंज्ञावविपुलव्ययः ।
 चुक्रोह ह्य हतोऽस्मीति पर्यन्तश्चासगद्गदम् ॥ १०२१ ॥
 वणिवपस्या स दृष्टोऽयं प्राह चौरोऽस्मि पापकृत् ।
 इयं तृतीया मे रात्रिः शूलसास्यैव वर्तते ॥ १०२२ ॥
 तीव्रश्रयोऽपि जीवामि पातकैः पूर्वसंचितैः ।
 अकृच्छ्रेण कथं यान्ति प्राणाः कन्दुषकर्मणः ॥ १०२३ ॥
 इत्युक्त्वा तेन पृष्टासौ निजदुःखममापत ।
 ततः प्रणयशोकार्ता येन स्वपुरमत्यजत् ॥ १०२४ ॥
 अत्रान्तरे शशी नित्यशयशोकादिवापिकम् ।
 उचयौ पाण्डुरः स्थूलः कपाञ्जलकञ्जलविः ॥ १०२५ ॥

गतेऽहि मित्रदयिते शान्ते संध्याचित्तानले ।
 तारास्थिसंचयं कर्तुमिवेन्दुरुत्सृजन्करान् ॥ १०२६ ॥
 दिशः सितांशुकच्छन्ना ज्योत्स्नापूरैः प्रचकिरे ।
 शोकादिवोद्धसलिलक्रियां कुमुदपाण्डुराः ॥ १०२७ ॥
 ततश्चौरोऽवदद्दृष्ट्वा प्रकाशे तत्सुतां पुरः ।
 कन्यैषा दीयतां मह्यं सुवर्णं वितरामि ते ॥ १०२८ ॥
 मुमूर्षुर्विलसत्येप मा वदेति पृथुसिता ।
 त्वया मात्रा चित्तीर्णैयमवाप्स्यति मदाज्ञया ॥ १०२९ ॥
 केनापि सह संगम्य पुत्रं त्राणं परत्र मे ।
 अस्ति काञ्चनलक्षं मे तेनेमां देहि कन्यकाम् ॥ १०३० ॥
 इति श्रुत्वा सुतां तस्यै सा प्रादाद्वारिपूर्वकम् ।
 ददौ तरुतलन्यस्तं तस्यै सोऽप्याखिलं धनम् ।
 पुत्रार्थं तामनुज्ञाय कन्यां चौरौ व्यपद्यत ॥ १०३१ ॥
 ततो भर्तुर्वेयस्यस्य गृहं प्राप्य सुपुत्रिका ।
 सती कुमारदत्तस्य युक्त्या चौरं वदाह सा ॥ १०३२ ॥
 अथ कालेन सा गत्वा निःशेषधनवर्जिते ।
 सूर्यप्रभस्य नगरे तस्यौ हेमचयैः सुखम् ॥ १०३३ ॥
 तत्रस्था यौवनवती कदाचित्सौघमास्थिता ।
 ऋतौ ददर्श पञ्चेपुसुमगं द्विजपुत्रकम् ॥ १०३४ ॥
 सोमस्वामीति विख्यातः सुवेषां सुरतप्रियः ।
 यस्यां विलासरसिकः स विप्रो यौवनोन्मदः ॥ १०३५ ॥
 तस्या हारावललिता नर्तकी लोकविश्रुता ।
 हृदये तां समाधत्त विना मूरिधनव्ययम् ॥ १०३६ ॥
 तयामृतं व्यसनिनं सा दृष्ट्वा तं द्विजात्मजम् ।
 यणिकपुत्री साराश्रान्ता बभूव ध्याननिश्चला ॥ १०३७ ॥
 ततो विहाय सा रुग्णां मात्रे सर्वं न्यवेदयत् ।

चौरस्याज्ञां च तां स्मृत्वा तदाह्वानेऽदिशत्सखीम् ॥ १०३८ ॥
 स च द्विजो मृषा मातः पुत्रार्थं तामभाषत ।
 शतानि पञ्च रूप्याणां दीयतां व्ययिनो मम ॥ १०३९ ॥
 इति श्रुत्वा सखी तस्मै दत्त्वा तच्छतकद्वयम् ।
 एकक्षपाभ्युपगमादानिनाय द्विजं रहः ॥ १०४० ॥
 तं दृष्ट्वा कान्तमानीतं निशि शय्यागृहस्थिता ।
 हर्षोत्तिक्ता वणिक्पुत्री नवं मेजे रतोत्सवम् ॥ १०४१ ॥
 अदृष्टपूर्वसंमोगा वेद्याशतविलासिना ।
 नीता प्रौढेन सा तेन रतौ कामपि निर्वृतिम् ॥ १०४२ ॥
 तस्मिन्प्रयाते प्रच्छन्नं निशान्ते सामवलक्षणात् ।
 सस्ताङ्गी क्लान्तवदना कृशा मुकुलितेक्षणा ॥ १०४३ ॥
 ततः कालेन सा पुनमसूत रनिवर्चसम् ।
 कुन्तीव वर्णसंपूर्णराजलक्षणलक्षितम् ॥ १०४४ ॥
 तस्मिन्जाते वणिक्पुत्रीं स्वमे तज्जननी तथा ।
 आदिदेश शिवः साक्षात्पुत्रोऽयं द्वारि मूपतेः ॥ १०४५ ॥
 हेमः सहस्रमाघाय मञ्चके त्यज्यतां रहः ।
 इति तद्वचसा सर्वं चक्राते ते यथाश्रुतम् ॥ १०४६ ॥
 राजापि शंभुना स्वमे निर्दिष्टं प्राप्य तं शिशुम् ।
 कौशेयवस्त्रसंछन्नं दिव्यरूपं सकाञ्चनम् ॥ १०४७ ॥
 सूर्यप्रमस्य तनयः सोऽपि चन्द्रप्रमाभिधः ।
 कालेन यौवनं प्राप कलाविद्याविशारदः ॥ १०४८ ॥
 तं सूर्यपुणसंघर्षे दृष्ट्वा दुःखं स पार्थिवः ।
 चक्रवर्तिश्रियं तस्मै दत्त्वा वाराणसीं ययौ ॥ १०४९ ॥
 तपसा तत्र मूपाले प्रयाते शाश्वतं पदम् ।
 चन्द्रप्रमः शोकतप्तो ज्ञात्वा चक्रे जलक्रियाः ॥ १०५० ॥
 ततः स राज्यं मग्निभ्यो विन्यस्य पितृवत्सलः ।

गयाश्राद्धे कृतोत्साहो ब्राह्मणैः सहितो ययौ ॥ १०५१ ॥
 सौहार्दस्योपकारस्य गुरुमक्तेः कुलस्य च ।
 महतां हि वियोगेषु गयाश्राद्धे प्रतिक्रिया ॥ १०५२ ॥
 स चाजिकुञ्जरानीकैः संछादितदिगन्तरः ।
 व्रजन्मन्दाकिर्ना प्राप्य पितुश्चक्रे यथोचितम् ॥ १०५३ ॥
 ततः सर्वेषु तीर्थेषु दत्त्वा बहुधनो धनम् ।
 गयामवाप कालेन पुण्यां कुलविभूषणः ॥ १०५४ ॥
 ततः शास्त्रोदितं कृत्वा धर्मारण्येऽवसन्नयम् ।
 राजकूपं समासाद्य पिण्डं क्षेमं समुद्ययौ ॥ १०५५ ॥
 सूर्यममस्य नृपतेः स्वगोत्रे नाभ्युदीरिते ।
 पुरोहितामृतस्तत्र त्रयो हस्ताः समुत्थिताः ॥ १०५६ ॥
 तद्वीक्ष्य विसर्वाविष्टो मुहूर्तं स्मगितक्रियः ।
 किमेतदिति पप्रच्छ राजा वृद्धगुरुन्दिजान् ॥ १०५७ ॥
 ते प्राहुः शिवमालोक्य श्रुतिस्मृतिविचक्षणाः ।
 एकश्चौरस्य हस्तोऽयं लान्छितः शस्त्रशङ्कुना ॥ १०५८ ॥
 पवित्रकालंकरणः पाणिरन्यो द्विजन्मनः ।
 अयं पद्मनिभो राज्ञः करः कङ्कणभूषितः ॥ १०५९ ॥
 निश्चयं नाविगच्छामः कस्मै पिण्डोऽर्प्यतामिति ।
 राजा विप्रवचः श्रुत्वा सदेहाकुलितोऽभवत् ॥ १०६० ॥
 वर्णयित्वेति वेतालः पप्रच्छ क्षमापतिं पुनः ।
 राजन्कस्मै स धर्मेण पिण्डस्तेन प्रदीयताम् ॥ १०६१ ॥
 इति पृष्टो नृपः प्राह स विप्रस्तस्य नो पिता ।
 यो मूल्येन क्षपामेकां तन्मात्रा सगमं व्यधात् ॥ १०६२ ॥
 राजापि तस्य सस्कारकर्ता सभासकाञ्चनः ।
 न पिता कर्मसंन्याद्राज्यमागी त केवलम् ॥ १०६३ ॥
 चौर एव पिता तस्य यो दत्त्वा हेमसंचयम् ।

कन्यां तज्जननीं प्राप पिण्डस्यार्हति वापनेम् ॥ १०६४ ॥

श्रुत्वेत्यलक्षितः स्कन्वाद्वेतालः प्रययौ जवात् ।

वृक्षावलम्बिनं तूर्णमानिनाय च तं नृपः ॥ १०६५ ॥

इत्येकोनविंशो वेतालः ॥ २१ ॥

स शीघ्रगामिनं प्राह नृपं स्कन्वगतः पुनः ।

निःशब्देऽस्मिन्निरालोके दीर्घाध्वनि कथां शृणु ॥ १०६६ ॥

चन्द्रावलोक इत्यासीच्चित्रकूटपुरे नृपः ।

जहार मूरिरसौषः सदा रक्ताकरश्रियम् ॥ १०६७ ॥

स भृगव्यरसाकृष्टः कदाचिद्वातरंहसा ।

तुरगेण हतः प्राप वनं रुचिरपादपम् ॥ १०६८ ॥

तत्र फुल्लताजालकलितालिकुलोत्सवे ।

विशालतालहिन्तालुतमालदयामलावली ॥ १०६९ ॥

ददर्श दर्पणस्वच्छं सरो नीरजराजितम् ।

स्नातसिद्धवपुष्वुन्दकुचकुङ्कुमपिञ्जरम् ॥ १०७० ॥

समाश्वास कृताहारस्तत्र पालविसाङ्गुरैः ।

ददर्श कन्यां त्रैलोक्यसारं सारङ्गगामिनीम् ॥ १०७१ ॥

कटाक्षमयुषां हासपुष्पां किसलवाघराम् ।

स्तनस्तवकिनीं मूर्तां काननस्येव देवताम् ॥ १०७२ ॥

तां वीक्ष्य मन्मथशरव्याकुलीकृतचेतनः ।

दत्तशप इवानेकसायकामिहतैर्मृगैः ॥ १०७३ ॥

मुनेः कण्वस्य तां ज्ञात्वा तत्सस्यामिहितां सुताम् ।

इन्दीवरप्रभां नाम सुभगां मेनकात्मजाम् ॥ १०७४ ॥

गत्वा ययाचे प्रणतः स्मितं निजतपोवने ।

मुनीन्द्रं चन्द्रवदनां स चालौ तां ददौ मुदा ॥ १०७५ ॥

ततः प्रतिनिवृत्तस्त्रामादाय तर्हणीं नृपः ।

ग्रजन्प्राप सरस्तीरं संप्रयालिङ्गितेऽहनि ॥ १०७६ ॥

अस्तं च तिग्मकिरणे याते भुवनमूषणे ।
 अमृतां रोदसी भूरितिमिरौघताम्वरे ॥ १०७७ ॥
 ततो हरकिरीटेन भाद्यन्मदनबन्धुना ।
 शर्वरी शर्वरीशङ्खबलमेनेन्दुनोदितम् ॥ १०७८ ॥
 केतकीदलतां कर्णे तनौ कर्पूरपूरताम् ।
 हारतां च ययौ ज्योत्स्ना कुचयोर्हरिणीदृशाम् ॥ १०७९ ॥
 अथाश्वत्थतरोर्मूले बालपल्लवसंस्तरे ।
 एलाबल्लीलताकुञ्जे राजा मेजे नवां वधूम् ॥ १०८० ॥
 सद्भावभोगसुभगं मन्दलज्जामरं शनैः ।
 सिपेये चारुसुरतं सविदग्धोऽस्तिमुग्धया ॥ १०८१ ॥
 ततः प्रभाते विकटाकारदंष्ट्रोत्कटाननः ।
 ज्वालामुखाभिघोऽभ्येत्य ग्राह तं ब्रह्मराक्षसः ॥ १०८२ ॥
 अस्मिन्ममाश्रमे पाप कन्यया दुर्विनीतया ।
 अहो निज हृद्योद्याने रमसे विगतत्रपः ॥ १०८३ ॥
 व्यात्ताननगताटालविकटैर्दन्तसंपुटैः ।
 पिष्टो विभ्रष्टपुण्यस्त्वं राजन्न भवसि क्षणात् ॥ १०८४ ॥
 चन्द्रावलोकः श्रुत्वेति तमेव शरणं ययौ ।
 देशकालावनालोक्य प्रभवन्ति न पण्डिताः ॥ १०८५ ॥
 नृपतौ प्रश्रयजुषि प्रयातः किञ्चिदार्द्रताम् ।
 ज्वालामुखोऽवदद्वाजन्त्युज्ज्वलेनाभिरक्ष्यसे ॥ १०८६ ॥
 सत्त्ववर्षः स्वयं पित्रा जनन्या च घृतो हृदम् ।
 पादाम्ब्यां च कराम्ब्यां च त्वयैवोद्धृतमस्तकः ॥ १०८७ ॥
 शिशुर्मोषपहराय कृताभ्युपगमः स्वयम् ।
 पिशस्यतां फाननेऽत्र प्राक्षणः सप्तमेऽहनि ॥ १०८८ ॥
 नान्यथा तव मोक्षोऽस्ति सानुगस्येति तद्विरा ।
 मादमुक्त्वा नरपतिः समार्यो दुःस्मितो ययौ ॥ १०८९ ॥

अवाप्य श्वखुरोद्धेन समार्यः स्वपुरं ययौ ।
 प्रदध्यौ मन्त्रिचक्रेण राक्षसाय प्रतिश्रुतम् ॥ १०९० ॥
 मुख्यामात्यस्ततो धीमान्सुमतिर्नाम धीमतः ।
 हेमं पुरुषमादाय महार्हं मणिभूषितम् ॥ १०९१ ॥
 चचाराल्मानमेतेन को ददातीति घोषयन् ।
 निशम्य ब्राह्मणः कश्चिद्दालोऽप्यङ्गीचकार तम् ॥ १०९२ ॥
 सुवर्णपुरुषं पित्रे दापयित्वा महाशयः ।
 उवाच मातरं दीनां निर्धनं पितरं च सः ॥ १०९३ ॥
 राज्ञः सपौरभृत्यस्य श्रेयसे वितराम्यहम् ।
 आत्मानं राक्षसायाद्य मूल्येनानेन भूरिणा ॥ १०९४ ॥
 शुष्मदारिद्र्यनाशाय कुशलं प्रस्तुतं मया ।
 पवनाकम्पिदीपाग्रशिखालोलैर्निजासुभिः ॥ १०९५ ॥
 इदं मेदोस्त्रिमांसाष्टाङ्गीभूतं क्षणिकं वपुः ।
 सत्यं परोपकारेण यात्येव स्पृहणीयताम् ॥ १०९६ ॥
 इत्यादि कुत्सयन्कायं जनकं शनैः शिशुः ।
 चकार धीरं संनद्धो भूमिपालसमीहिते ॥ १०९७ ॥
 ततः स मन्त्री राजानं कृत्वा विदिततत्कथम् ।
 निनाय पित्रा मात्रा च सहाश्वत्थतलं द्विजम् ॥ १०९८ ॥
 स्वयमेव नृपस्तत्र मण्डलं ब्रह्मरक्षसे ।
 पुरोधसा विधायाशु तं बालं हन्तुमुद्ययौ ॥ १०९९ ॥
 स च स्तब्धकरो मात्रा प्रत्यक्षं वीक्ष्य राक्षसम् ।
 पित्रा निरुद्धचरणः प्रदध्यौ हृदये शिशुः ॥ ११०० ॥
 उद्दामकरवालेन राज्ञाय निहतस्य मे ।
 भूयात्परोपकारैकप्रवणं जन्म सर्वदा ॥ ११०१ ॥
 विचिन्त्येति हि सस्मेरं जहास द्विजदारकः ।
 ते नृपप्रमुक्ता येन नगवुर्विस्मयाकुलः ॥ ११०२ ॥

तं कृताञ्जलयः सर्वं निवृत्ता वधसाहसात् ।
 किमेतदिति साद्यङ्गाः प्रशशंसुः सराक्षसाः ॥ ११०३ ॥
 कथयित्वेति वेतालो भूपालं बहलच्छलः ।
 पप्रच्छ ब्राह्मणशिशोरकाण्डस्मितकारणम् ॥ ११०४ ॥
 राजा जगाद यः कश्चिदबलः परिभूयते ।
 केनापि याति शरणं मातरं पितरं च सः ॥ ११०५ ॥
 तदसंरक्षितस्त्राणं राजानमधिगच्छति ।
 ततोऽप्यप्राप्य निर्वाणं देवं सरति पूजितम् ॥ ११०६ ॥
 ते सर्वे एव तत्रास्य निघनाय समुद्यताः ।
 तान्वीक्ष्याचिन्तयद्बालः स सत्त्वविपुलाश्रयः ॥ ११०७ ॥
 अहोऽतिदुःखसारस्य शरीरस्यास्य भङ्गिनः ।
 कृते कुकर्मप्रारम्भो मतेरिति जहास सः ॥ ११०८ ॥
 इति श्रुत्वेति वेतालः प्रययौ शिंशिपां पुनः ।
 आनिनाय च तं भूयो लम्बमानं नरेश्वरः ॥ ११०९ ॥
 इति विंशो वेतालः ॥ २२ ॥
 ततः स्कन्धस्थितः प्राह वेतालः शृणु भूपते ।
 गतागतपरिश्रान्तः कथामेकां विनोदिनीम् ॥ १११० ॥
 अमृतपुरि विशालायामर्थदत्ताभिधो वणिक् ।
 अनङ्गमङ्गरी नाम पुत्री तस्यामवत्प्रिया ॥ ११११ ॥
 स तां ददौ रूपवतीं ताम्रलिप्तानिवासिने ।
 धनाभिजनतुल्याय वणिजे मणिकर्मणे ॥ १११२ ॥
 शक्तः क्षणमपि स्यातुं न यदा रहितस्तया ।
 तदा न तत्याज पिता स तां निजगृहात्सदा ॥ १११३ ॥
 कदाचित्त्वपुरीं याते सा पत्यौ मणिकर्मणि ।
 सहर्षं कृष्णसर्पेण निर्मुक्तेव निरर्गला ॥ १११४ ॥
 राज्यमेतत्सुधा चैषा चन्द्रोऽयमयमुत्सवः ।
 यत्क्षणं नयनेनेष्टो जनः पुण्येन दृश्यते ॥ १११५ ॥

ततः सा यौवनोन्मत्ता ग्रीष्मे चन्दनचर्चिता ।
 उत्कुलमल्लिकादामधम्मिल्लहृतपद्पदा ॥ १११६ ॥
 ददर्श हर्म्यमारुह्य सौन्दर्यकुसुमायुधम् ।
 कमलाकरनामानं युवानं द्विजपुत्रकम् ॥ १११७ ॥
 तं वीक्ष्य नयनानन्दवान्धवं सामवत्क्षणात् ।
 नलिनीव विलीनेव दष्टेव मुषितेव च ॥ १११८ ॥
 तदालोकनसंजातप्रयुवेषयुमोहिता ।
 नेदं युक्तमितीवोक्ता सिद्धान्तमणिमूषणैः ॥ १११९ ॥
 चन्द्रराममुखीं पद्मरागरक्तफरोज्ज्वलाम् ।
 सोऽपि तां चिरमालोक्य लावण्यमणिपुत्रिकाम् ॥ ११२० ॥
 ययौ विलोलयन्मौलिं रूपातिशयविस्रितः ।
 प्रविष्टामिव तद्वक्त्रे कर्पन्निव शनैर्दृशम् ॥ ११२१ ॥
 ततः सा प्रौढतापेन ग्लपिता मदनाग्निना ।
 दाहोपकरणं मेने मृणालकदलीवनम् ॥ ११२२ ॥
 तुषारकिरणस्ररां शर्वरीं मदनोज्ज्वलाम् ।
 दावानलैर्वलयितामिव धोराममंस्त सा ॥ ११२३ ॥
 स्तौति स पार्वतीमेत्य सा निजोद्यानवर्तिनी ।
 तेन पुष्पशरेणेव संगमो मे भवत्विति ॥ ११२४ ॥
 कृष्णपक्षेन्दुलेखेव शरन्निर्झरिणीव वा ।
 कान्तिमात्रावशेषामूत्केयूराहतकङ्कणा ॥ ११२५ ॥
 तां पाण्डुरमुखीं क्षामां सरज्ज्वरमयातुराम् ।
 सखी मालतिका नाम दृष्ट्वा शोकाकुलामवत् ॥ ११२६ ॥
 साय गत्वा तदादिष्टा कमलाकरमन्दिरम् ।
 तं ददर्श निजोद्याने प्रच्छन्ना विरहानुरम् ॥ ११२७ ॥
 तामेव विलपन्तं तु मुह्यद्वाधासितं मुहुः ।
 तं समभ्येत्य सा प्राह सख्यास्तां मन्मथव्यथाम् ॥ ११२८ ॥

ध्यायति ग्लपते क्षिप्रं शेते मुह्यति वेपते ।
 व्यावर्तते च सुमगा त्वां विना सा मुलोचना ॥ ११२९ ॥
 चन्दनानीन्धनं यस्मिन्निन्दवो विषविन्दवः ।
 हारो वह्निविकारश्च तेन तापेन सार्दिता ॥ ११३० ॥
 इति तद्वचसा सद्यः सुधासारैरिवोत्थितः ।
 निशि प्रायात्तदुद्यानं स तथा चारसूचितः ॥ ११३१ ॥
 सरूपा गिरा तमायातं विज्ञायानङ्गमञ्जरी ।
 उन्मिमील प्रदीपध्रीरिव स्नेहेन पूरिता ॥ ११३२ ॥
 सतस्तमागतं दृष्ट्वा व्याकोशनयनोत्पला ।
 लज्जां विहाय सोत्कण्ठं कण्ठे जग्राह सुन्दरी ॥ ११३३ ॥
 अयं लब्धोऽसि सुमग क्व गमिष्यसि मे पुरः ।
 अभिधायेति सासं तं तन्वी तत्याज जीवितम् ॥ ११३४ ॥
 सहसा विगतप्राणां दृष्ट्वा तां कमलाकरः ।
 विलप्य सुचिरं गाढं परिष्वज्याभवद्वसुः ॥ ११३५ ॥
 ततः प्रभाते तद्बुःखमिलिते बन्धुमण्डले ।
 अर्धदत्ते सुतां कोपलज्जाशोकैश्च निन्दति ॥ ११३६ ॥
 तस्याः स मणिकर्णारव्यः कौमारः पतिराययौ ।
 उत्कण्ठानिर्भरः पश्यन्प्रेयस्यां कुशलं जनम् ॥ ११३७ ॥
 उद्यानमथ संप्राप्य तामन्यनरसंगताम् ।
 दृष्ट्वैव जीवितत्यक्तां रागी प्रायात्स पञ्चताम् ॥ ११३८ ॥
 सान्यरागेण निर्दग्धा विषन्नः स च तां विना ।
 अहो नु कोऽप्यरं कामो विदग्धोऽप्याहितग्रमः ॥ ११३९ ॥
 ततो भगवती गौरी वणिजां कुलदेवता ।
 गुणैरभ्यर्थिता सर्वान्कृपया तानजीवयत् ॥ ११४० ॥
 अभिधायेति वेतालः प्रपच्छ पृथिवीपतिम् ।
 रागः फल्साधिको राजन्नेतेभ्यः कथ्यतामिति ॥ ११४१ ॥

नृपः प्राह वज्रिन्पुत्री विप्रश्च ज्ञपकेतुना ।
 अवस्थां दशमीं नीतौ अमेण न तदद्भुतम् ॥ ११४२ ॥
 गाढरागोऽत्र कौमारः पत्निरस्या मुमोच यः ।
 सहसा दयितान्प्राणान्वज्रेणैव विदारितः ॥ ११४३ ॥
 इति श्रुत्वेति वेतालो गत्वा पुनरलम्बत ।
 स चानिनाय तं यत्नादस्त्रिजो मेदिनीपतिः ॥ ११४४ ॥
 इत्येकविंशो वेतालः ॥ २३ ॥
 अथ स्कन्धगतः प्राह वेतालः शृणु भूपते ।
 ब्रह्मस्यलाभहारेऽर्धद्विष्णुस्वामी द्विजोत्तमः ॥ ११४५ ॥
 चत्वारस्तस्य तनया बभूवुः श्रुतिशालिनः ।
 मृते पितरि ते जग्मुर्मातुलानां निवेशनम् ॥ ११४६ ॥
 सावित्रीमीक्षमाणास्तौर्निर्धनास्तत्र ते स्थिताः ।
 अचिन्तयन्नहो दुःखं दारिद्र्यं मरणाधिकम् ॥ ११४७ ॥
 गृध्राः प्रयान्ति च शवं नित्यं मांसोपजीविनः ।
 निष्पन्नमपि दग्धं च नित्यमागारिकास्तरुम् ।
 न तु दारिद्र्यसंस्पृष्टं कश्चित्स्पृशति पूरुषम् ॥ ११४८ ॥
 शीतलैर्दार्धनिद्रैश्च निरुच्छ्वासमुखैः शवैः ।
 दरिद्रस्तापनिर्निद्रः सोच्छ्वासः स्पर्धते कथम् ॥ ११४९ ॥
 एकः प्राह गतोऽप्याहं स्वशानं भूतमीषणम् ।
 दौर्गत्यदुःखादात्मानं परित्यक्तुं समुद्यतः ॥ ११५० ॥
 ततः केनापि कारुण्याद्बुधेनेवासि रक्षितः ।
 अभुक्त्वा स्वकृतं कर्म गरणं प्राप्यते कुतः ॥ ११५१ ॥
 इति प्यात्वा ययुः सैरं सर्वे देशान्तरं पृथक् ।
 पुनः संगमसंकेतस्नानमादिश्य ते ततः ॥ ११५२ ॥
 ततः कालेन ते भ्रान्ता पृथिवीं बहुकौतुकाम् ।
 अवाप्तविद्या मिलिताः परस्परमयोचिरे ॥ ११५३ ॥

अस्थिसंपादिनीं विद्यां जानामीत्यग्रजोऽभ्यधात् ।
 तन्मांसयोजनज्ञोऽहमित्युवाच ततः परः ॥ ११५४ ॥
 त्वभ्रोमन्यासकुटालस्तत्रासीत्यपरोऽब्रवीत् ।
 जीवितार्पणविज्ञाने दक्षोऽसीत्येव तत्परः ॥ ११५५ ॥
 विद्याप्रभावं ते द्रष्टुं मिथस्तत्र सकौतुकाः ।
 दैवादवापुः सिंहस्य कीर्णजीर्णोस्थिसंचयम् ॥ ११५६ ॥
 तं समग्रं समांसं च कृत्वा त्वग्रोमसंकुलम् ।
 क्रमैश्चतुर्यो विद्यानां पञ्चाननमजीवयत् ॥ ११५७ ॥
 दंष्ट्राविटङ्कवदनः क्षुत्क्षामः समजायत ।
 जघान तीक्ष्णं करजैः पुरस्ताद्विजपुत्रकान् ॥ ११५८ ॥
 कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ धरणीपतिम् ।
 ब्रूहि राजन्द्रिजवयोद्धूतं तत्कस्य पातकम् ॥ ११५९ ॥
 इति दृष्टोऽब्रवीद्राजा यो मृगेन्द्रमजीवयत् ।
 तस्य तत्पातकं घोरमन्येषां नास्त्यसंशयम् ॥ ११६० ॥
 इति श्रुत्वेति वेतालो गत्वा पुनरलम्बत ।
 नृपोऽपि तं गृहीत्वा तु प्रायादतुलविक्रमः ॥ ११६१ ॥
 इति द्वाविंशो वेतालः ॥ २४ ॥
 भूयः स्कन्धगतः ग्राह वेतालो बत भूपते ।
 नास्मादद्यापि निर्बन्धाद्विरतोऽसि कथां शृणु ॥ ११६२ ॥
 यज्ञस्थलाग्रहारेऽमृतकलिकविषये द्विजः ।
 यज्ञसोमाभिघः सोमपानपूतः कुलोद्भूतः ॥ ११६३ ॥
 भार्यायां सोमदत्तायां तेनाजनि गुणी सुतः ।
 शशाङ्कविशदाकारो बाल्येऽपि विपुलश्रुतः ॥ ११६४ ॥
 कालेन यौवनं प्राप देवस्वामी स तत्सुतः ।
 पिद्याविनयसौभाग्यलवण्यामृतपूरितः ॥ ११६५ ॥
 स कृतान्तस्य नैर्घृण्यात्कालस्य कालशासनात् ।
 श्वेकमोर्मिवैचित्र्यात्मययौ पश्यतां युवा ॥ ११६६ ॥

नयनोत्सवलावप्याङ्कुलचारुणाधिकान् ।
 सहते नैव त्रिवुधान्कालः कलिरिवाकुलः ॥ ११६७ ॥
 पितरौ तस्य शोकात्तौ दृष्ट्वा तारप्रलापिनौ ।
 चक्रन्दुरिव सोद्वेगाः प्रति सत्कारवैर्दिशः ॥ ११६८ ॥
 ततस्तं बान्धवाः सर्वे समग्रगुणवान्धवाः ।
 तिन्युः स्मशानवाचालतमालबलयाकुलम् ॥ ११६९ ॥
 संस्काराय समानीतं द्विजसूनुं महाव्रती ।
 इमं शानमठिकावासी ददर्श सुमगाकृतिम् ॥ ११७० ॥
 बृद्धो नाम शिवो नाम कुर्वे क्लेशास्पदं मनः ।
 ध्यानयोगसमाधाने तत्त्वे वादी विलोक्य सः ॥ ११७१ ॥
 स्ववत्वेदं मुक्तसंयोगं निर्जं जीर्णं कलेवरम् ।
 प्रत्यग्रब्राह्मणतनुं प्रविशामीत्यचिन्तयत् ॥ ११७२ ॥
 ततः प्रविश्य मठिकामेक एव कपालघृक् ।
 ध्यात्वा स सार्द्रवाष्पौषगलगद्गदनिःस्वनम् ॥ ११७३ ॥
 क्रन्दित्वा मसमधवलो ननर्तं व्यालवद्भुजः ।
 ह्रैलालज्जटापीडो द्वितीय इव धूर्जटिः ॥ ११७४ ॥
 मुञ्चत इमं निर्मोकेदोषं त्यक्त्वा स विग्रहम् ।
 शरीरं द्विजपुत्रस्य शून्यागारमिवाविशत् ॥ ११७५ ॥
 मुसोत्थित इव प्राप्तमृतो जीवं द्विजात्मजः ।
 बभूव हर्षविस्फारजनकोटाहलधिरम् ॥ ११७६ ॥
 प्रार्थ्यमानोऽप्यसौ दानैर्वन्धुमिर्जनकेन च ।
 तत्कालजातवैराग्यः स महाव्रतमग्रहीत् ॥ ११७७ ॥
 अभिधायेति वेतालः पप्रच्छ नृपशेखरम् ।
 स किं महानती राजन्सोद च ननर्त च ॥ ११७८ ॥
 इति पृष्टोऽज्जवीन्द्रपः श्रूयतामत्र कारणम् ।
 शरीरमिदमत्यन्तलालितं चिरसंगतम् ॥ ११७९ ॥

वाल्ये विवर्धितं मात्रा यौवने सेवितं सुखैः ।
 जीर्णमद्य त्यजामीति स स्त्रोदातिदुःखितः ॥ ११८० ॥
 पुनः प्रविश्य सिद्धिर्मे जाता सद्गतशालिनः ।
 इति प्रहर्षाद्दर्पाच्च ननर्तावर्तितोत्सवः ॥ ११८१ ॥
 इति श्रुत्वेति वेतालो ललम्बे शिशिपातरुम् ।
 नृपोऽपि गत्वा तं तूर्णमानिनाय महाशयः ॥ ११८२ ॥
 इति त्रयोविंशो वेतालः ॥ २५ ॥
 पुनः स्कन्धस्थितः प्राह निर्वन्धोऽयं महामते ।
 भोक्तुं गच्छ श्रियं राजन्न चेदेकां कथां शृणु ॥ ११८३ ॥
 दाक्षिणात्यो नरपतिर्धामान्नाम महाबलः ।
 शत्रुभिर्विजितः पत्न्या पुत्र्या च सहितो ययौ ॥ ११८४ ॥
 तद्भार्या चन्द्रवत्यास्या कन्या लावण्यवत्यपि ।
 दूराध्यखेदिते चन्द्रविलासे खेदितः जनैः ॥ ११८५ ॥
 ताम्यां सहैव मृपालः समुत्तीर्य महादवीम् ।
 भिल्लपल्लीवनं प्राप छादितं द्वीपिचर्मभिः ॥ ११८६ ॥
 मयूरपत्रवसनैर्गुञ्जासगदामशेखरैः ।
 शबरैराचितं संध्यारक्तशृङ्गैरिवारिभिः ॥ ११८७ ॥
 तत्र तैः स महीपालो रत्नभूषणलोलुपैः ।
 निहतानेकशबरः पतितः संमुखो रणे ॥ ११८८ ॥
 तस्मिन्हते मयात्यायाहुहित्रा सह तद्वधूः ।
 शार्दूलपातवित्रस्ता हरिणीव मुलोचना ॥ ११८९ ॥
 सा गत्वा दूरमुत्कम्पिकुचयोणीभरालसा ।
 पुत्र्या प्रासबलज्ञेयनीलोत्पलरुचा सह ॥ ११९० ॥
 यनं प्रविश्य लवलीलवर्णैरालताकुलम् ।
 निषसाद सरस्मीरे कमलामोदमन्दिरे ॥ ११९१ ॥

अत्रान्तरे मृगकुलक्रीडारसकुतूहली ।

क्षत्रियश्चण्डसिंहास्यः सपुत्रः प्राप तद्वनम् ॥ ११९२ ॥

नारीचरणमुद्रां तौ तत्र पांसुचयत्रियाम् ।

विसस्यं जम्भतुर्वीक्ष्य रम्यलेखाविमूषिताम् ॥ ११९३ ॥

लघुपादाम्बुजामेकां मत्वा दीर्घाङ्गुलिं पराम् ।

चण्डसिंहः सुतं ग्राह्य हर्षात्सिंहपराक्रमम् ॥ ११९४ ॥

कान्तायुगलमेतन्नो यदि दृक्पथमेप्यति ।

तदेया दीर्घचरणा योग्या मे तव चापरा ॥ ११९५ ॥

इत्युक्त्वा नर्मवचने कृत्वा तौ सत्यसंविदौ ।

प्राप्तुर्वीक्ष्य यत्नेन पूर्णेन्दुवदनायुगम् ॥ ११९६ ॥

तौ प्राप्य छलिते नार्या स्मृत्वा तां निजसंविदम् ।

लेभाते स्मगृहं गत्वा ताभ्यां स्मरमहोत्सवम् ॥ ११९७ ॥

कन्यां विशालचरणां चण्डसिंहोऽभजत्सवम् ।

चण्डसिंहसुतः प्राप तां कन्याजननीमपि ॥ ११९८ ॥

इति तौ सत्यवचसा बद्धौ विनिमयेन च ।

लब्ध्वा नार्या सुताः काले प्रापतुस्तनयास्तथा ॥ ११९९ ॥

वर्णयित्वेति वेतालः पप्रच्छ पृथिवीपतिम् ।

ते तयोर्वैद्यसंभूताः कै मवन्ति परस्परम् ॥ १२०० ॥

इति पृष्ठो नृपः प्रायादजानन्मशनिर्णयम् ।

तेनाथ तुष्टो वेतालः प्रशंसंस्त्रममापत ॥ १२०१ ॥

अनेन राजन्यैर्येण तव प्रज्ञायलेन च ।

रोमाश्चर्कशः कायः कस्य नाम न जायते ॥ १२०२ ॥

पापोऽयौ क्षान्तिशीलस्ते प्रस्तुतो विपुले छले ।

प्रपद्यनीयो यत्नेन क्षिप्रं बुद्धिमता त्वया ॥ १२०३ ॥

घोरे महाभेतयागे ग त्वां वदयति दुर्मतिः ।

अष्टाङ्गरुतमूस्पर्शः प्रणामः क्रियतामिति ॥ १२०४ ॥

ततो वाच्यो मृदुगिरा स दुष्टः श्रमणः स्वयम् ।

अहं समस्तसामन्तमौलिनीताङ्घ्रिपङ्कजः ।

अशिक्षितप्रणामोऽहं तं त्वमेव प्रदर्शय ॥ १२०५ ॥

इति त्वयोक्तः स यदा प्रणामं दर्शयिष्यति ।

तदा स्वप्नेन हन्तव्यो हन्ति त्वामन्यथा तु सः ॥ १२०६ ॥

स चक्रवर्तितां प्राप्तुं विवाधरधरामुजाम् ।

समीहिते पशुं कृत्वा त्वां त्रैलोक्यविमूषणम् ॥ १२०७ ॥

इति सर्वं तवाख्यानं स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ।

प्रायादुक्त्वेति चेतालो निर्गत्य प्रेतविग्रहात् ॥ १२०८ ॥

राजापि शबमाश्रय क्षान्तिशीलान्तिकं ययौ ।

मामिन्यां मागशेषायामुत्साहविपुलेक्षणः ॥ १२०९ ॥

इति चतुर्विंशो वेतालः ॥ २६ ॥

तमागतमथालोक्य क्षान्तिशीलः प्रणष्टधीः ।

अनायो धर्ममर्यादां तस्योच्चैः प्रशशंस सः ॥ १२१० ॥

ततश्चितारजःशुभ्रमण्डले बहुलान्छने ।

नृरक्तपूर्णफलशे महातेजोरुदीपके ॥ १२११ ॥

उच्चारिते शब्दे तेन दक्षिणाभिमुखो भ्रंती ।

नररक्तवृत्तार्धेण नेत्रधूपेन मग्नवित् ॥ १२१२ ॥

अथाह्वय स वेतालं बलिं पुष्पैर्निरन्तरैः ।

उवाच श्रेयसे राजन्प्रणामः क्रियतामिति ॥ १२१३ ॥

नृपोऽब्रवीन्नास्म्यभिज्ञः प्रमाणं दर्शय स्वयम् ।

श्रुत्वेत्यदर्शयत्तोऽसौ प्रणतिं दैवमोहितः ॥ १२१४ ॥

तमष्टाद्रप्रणामस्वं निजघानासिना नृपः ।

छित्त्वाय शीघ्रं तत्पूर्णमुदृत्यार्धार्धार्थिषु व्ययात् ॥ १२१५ ॥

पुष्पवर्षं निपतिते वेतालः प्रददौ वरम् ।

राजः कथेयं त्रैलोक्यपूजनीया मवत्विति ॥ १२१६ ॥

ततः साक्षात्समन्वयेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।

प्रशशंसुर्नरपतिं वरैश्च समपूजयन् ॥ १२१७ ॥

तं प्राह मगवान्विष्णुस्त्वं ममांशो महीपते ।

जातोऽसि विक्रमादित्य पुरा न्लेच्छशशाङ्कतः ॥ १२१८ ॥

त्वं त्रिविक्रमसेनोऽथ राजवंशविमूषणम् ।

भोगापवर्गसुभगां मुक्त्वा विद्याधरश्रियम् ॥ १२१९ ॥

• त्रिपुरारिवरात्प्राप्य विद्यामृच्चक्रवर्तिताम् ।

निजं प्रविश्य नगरं प्रभाते स बभौ श्रिया ॥ १२२० ॥

इत्युर्वीवलये तुषारनिकरस्पष्टाट्टहासच्छविः

पाताले फणिनायकस्फुटफणाविस्फाररत्नोज्ज्वला ।

ज्योम्नि ब्रह्मविमानहंसविकसत्कान्तिप्रकाशद्युति-

स्तस्याकल्पमनल्पपुण्यपदवी गङ्गेव कीर्तिर्वभौ ॥ १२२१ ॥

इति पञ्चविंशो वेतालः ॥ २७ ॥

इति विप्रः समाधास्य ददौ मे मन्त्रमुत्तमम् ।

येन सिद्धेन वेतालः स मया बाहनीकृतः ॥ १२२२ ॥

तत्प्रभावान्मया दृष्टस्त्वमिहस्यः समागतः ।

इत्युक्त्वा हर्ममत्तुलं लेभे विक्रमकेसरी ॥ १२२३ ॥

मृगाङ्गदत्तच्छृत्वा तां शशाङ्कवतीं सरन् ।

अननुजयिनीं प्राप सोऽष्टवी निर्जलदुमाम् ॥ १२२४ ॥

श्रीज्योत्स्नाश्लेषविपमं वर्त्मोत्तीर्य क्रमेण ते ।

तृष्णासंतापविधुरा ददृशुर्विशदं सरः ॥ १२२५ ॥

च्यातं यिकाशिभिः पद्मैः सरसैर्गुणशालिभिः ।

श्रुत्वा मृगाङ्गनानीतं हर्षोत्कण्ठकितैरिव ॥ १२२६ ॥

ललनालोचनौषम्यपत्रैरुत्पलसंस्तरैः ।

कृष्णवक्षःस्वलप्रीतिं विदधानमिव धियः ॥ १२२७ ॥

हंसांसपटितस्फारफेनोर्गिवल्योज्ज्वलम् ।

इन्दुगर्भाग्नितोत्तुङ्गतरङ्गमिव सागरम् ॥ १२२८ ॥

प्राघृपेण्यघनश्यामैर्वराहैः सेवितान्तरम् ।
 चक्रवाकवियोगाग्निधूमपुञ्जैरिवामृतम् ॥ १२२९ ॥
 लोलम्बुजदलग्नान्तैर्भुक्तामैर्जलविन्दुभिः ।
 दर्शयन्तमिवाश्चर्यं संसारे तरलां स्थितिम् ॥ १२३० ॥
 मुहुः करिकुलाकृष्टविसदण्डविपाण्डुरम् ।
 कुमुदाकान्तचन्द्रांशुसहसैरिव पूरितम् ॥ १२३१ ॥
 तद्विलोक्य जहुः क्लान्तिं ते हर्षविकचेक्षणाः ।
 दृष्टमात्रा दिशन्त्येव संतोषं विपुलाशयाः ॥ १२३२ ॥
 पश्चिमे तस्य विस्तीर्णं तीरे शाखासहस्रिणम् ।
 विशालं फलपुष्पाढ्यं ददर्श वरपादपम् ॥ १२३३ ॥
 ऐश्वर्यमिव सच्छायमभिमानमिवोज्ज्वलम् ।
 सौहार्दमिव संश्लिष्टं संतोषमिव सौख्यदम् ॥ १२३४ ॥
 तं वीक्ष्य संपदां पात्रं सेव्यसंतापवारणम् ।
 सर्वाशापूरणे शक्तमभिजातमिवेश्वरम् ॥ १२३५ ॥
 मृगाङ्कदत्तसचिवाः सहसा श्रुतर्षिं विना ।
 हर्षदारुहर्षुर्भूरिफलं भोजनवान्छया ॥ १२३६ ॥
 शाखान्तरालं संप्राप्ताः क्षिप्रमन्तर्हितास्ततः ।
 मृगाङ्कदत्तो विक्रोशन्नापश्यत्सुहृदोऽथ तान् ॥ १२३७ ॥
 स तद्विरहविधुरो मुमोह पतितः क्षितौ ।
 वीज्यमानः श्रुतधिना पल्लवैर्धृतिमासवान् ॥ १२३८ ॥
 ततः शरीरमुत्सृष्टुं राजपुत्रं समुद्यतम् ।
 दुःस्वार्तस्य सरिचीरे वागुवाचाशरीरिणी ॥ १२३९ ॥
 देवो गणाभिन्नाशोऽयं स्नेच्छातत्पराकृतिः ।
 एतदुल्लङ्घनात्तस्य शाखाः सुफलतां गताः ॥ १२४० ॥
 तपसाराध्य हेरम्भं तत्सङ्गं समुपेप्यसि ।
 अन्यथा दुर्लभा मुक्तिस्तेषां वर्षशतैरपि ॥ १२४१ ॥

इति दिव्यवचः श्रुत्वा धृतिं प्राप नृपात्मजः ।
 पूजयित्वा नृपवरं तुष्टाव प्रथमप्रभुम् ॥ १२४२ ॥ .
 गजेन्द्र जयति स्फुरत्पृथुलकान्तिसदैर्घ्यमृ-
 च्छद्गीव विशदो रदस्तव मुखोदयाद्रेस्तटे ।
 विलासरसफूत्कृताकुलकपोलभृङ्गावली
 निशाप्रणयिसौकरप्रकरहारतारागणः ॥ १२४३ ॥
 गणेश्वरमिति स्तुत्वा द्वादशाहमुपोषितः ।
 स्वप्ने तद्वरमासाद्य बाञ्छितं प्राप्स्यसीत्यथ ॥ १२४४ ॥
 प्रीतः प्रबुद्धः सच्चिवान्ददर्श प्रणतान्दश ।
 तान्दृष्ट्वा विस्मयानिष्टो हृष्टः प्राह मुदान्वितान् ॥ १२४५ ॥
 जहो नु विपुलो लाभः कोऽप्यरण्ये ममोदितः ।
 यदहं सुहृदो लब्ध्वा प्रीतः शेषैः सह्यमैः ॥ १२४६ ॥
 दृढमृष्टे मेघबलस्थूलबाहो सुदुःसहः ।
 व्याघ्रसेन क युष्माभिर्मद्वियोगोऽतिबाहिवः ॥ १२४७ ॥ .
 सप्तभिः सहितेनेति चतुर्षु नृपसूनुना ।
 पृष्टेषु तेषु मतिमान्व्याघ्रसेनोऽभ्यभाषत ॥ १२४८ ॥
 स्वस्ति देव वयं तत्र तेन नागेन शापिताः ।
 क्षिप्ताः पारापताक्षेण दिक्षु मोहविमूर्च्छिताः ॥ १२४९ ॥
 ततोऽहं निशि नीरन्ध्रे नीलशैलशिलाघने ।
 तिमिरे शोकतिमिरैरमवं नष्टचेतनः ॥ १२५० ॥
 सहस्रयामेव विरात्रियागा यमकाक्षिणा ।
 अटव्यां सा मया नीता दुर्नीतिनेव दुःखदा ॥ १२५१ ॥
 ततः प्रभाते संप्राप्य सरो विक्रवपङ्कजम् ।
 निषण्णोऽहं कृतस्नानस्तीरे चिन्तानलाकुलः ॥ १२५२ ॥
 तत्रापश्यमयायातान्कन्दितोच्छृनलोचनान् ।
 दृढमुष्टिं मेघनलं स्थूलबाहुं च संगतान् ॥ १२५३ ॥

ततो दुःखात्तनुत्यागसंभृता मुनिसन्नुना ।
 वयं नीताः समाध्यास्य शुभच्छायं तपोवनम् ॥ १२५४ ॥
 तत्र कण्वमुनिः साक्षात्कृशानुरिव तेजसा ।
 ब्रह्मलोक इवानेकैः सेव्यमानो मुनीश्वरैः ॥ १२५५ ॥
 अरौद्ररूपः सततं जितकालमनोभवः ।
 अकृष्णचरितः पुण्यसमाधानपदाञ्जयुतः ॥ १२५६ ॥
 कृष्णाजिनोत्तरासङ्गस्तेजसा पिङ्गलच्छविः ।
 अङ्गासन इवाङ्गोत्थमङ्गमालारजःश्रितः ॥ १२५७ ॥
 दृष्टोऽस्माभिः कुलगृहं शमसंतोषसंपदाम् ।
 स हस्ततलविन्यस्तमुक्तायितजगन्नयः ॥ १२५८ ॥
 सोऽस्मान्विलोक्य शोकार्तानाकर्ण्यस्मान्कथां च ताम् ।
 उवाच करुणासिन्धुः पीयूषं विकिरन्निव ॥ १२५९ ॥
 तेन दन्तांशुनिवहैः पूरिता विबभुर्दिशः ।
 सोमपानसमुद्गीर्णैरिव शीतांशुसंचयैः ॥ १२६० ॥
 विचित्रकर्मनिर्माणैर्भवन्त्येव भवे नृणाम् ।
 संयोगैश्च वियोगैश्च सुखदुःखे विपर्ययाः ॥ १२६१ ॥
 मा निमज्जत निष्पारे विस्फारे शोकसागरे ।
 तूर्णं मृगाङ्गदत्तेन भविता वः समागमः ॥ १२६२ ॥
 पुरा सुन्दरसेनस्य राजसूनोरमूच्चिरात् ।
 भार्यया च सुहृद्भिश्च हारितैरिह संगमः ॥ १२६३ ॥
 श्रुत्वेति पृष्टः सोऽस्माभिर्मुनिभिश्च सकौतुकैः ।
 तत्कथां प्राह भगवान्कृत्वा निखिलमादिकम् ॥ १२६४ ॥
 अलका नाम नगरी निषधेष्वस्ति विश्रुता ।
 यस्यां पौरवधूवक्रैर्जायते दिनकौमुदी ॥ १२६५ ॥
 यस्याः सुरगृहस्थेतपताकापद्भिर्गुह्यः ।
 बहुधा विप्रकीर्णैव दृश्यते व्योम्नि जाह्नवी ॥ १२६६ ॥

शक्तिमानमवतत्सां महासेनामिधो नृपः ।
 शक्रशङ्खास्पदोत्साहो महासेन इवापरः ॥ १२६७ ॥
 पाणिनाधारणान्तेषु कपोलेष्वरियोषिताम् ।
 नेत्रेषु चाश्रुताम्रेषु यत्पतापोऽभजत्स्वितिम् ॥ १२६८ ॥
 का निशा नेन्दुतिलका को नु गौरीगुहर्मिरिः ।
 यद्यशोभिरभूच्छुभ्रैः को वा देवो न भूर्जटिः ॥ १२६९ ॥
 लक्ष्मीरक्षामणिसत्त्व गुणपालित इत्यमृत ।
 मन्त्री सर्वोपधाशुद्धः पाङ्गुपयनयभूषणः ॥ १२७० ॥
 राज्ञः शशिप्रभा तस्य पैलोमीव द्युतक्रतोः ।
 भार्या धमूव सौभाग्यवसन्तोपवनसली ॥ १२७१ ॥
 स तस्यासदृशं लेभे सशरीरमिव स्वरम् ।
 पुत्रं सुन्दरसेनास्यं विलाससदृशं द्युतेः ॥ १२७२ ॥
 धमूवुः सचिवालस्य श्रीपरिष्वग्नसाक्षिणः ।
 जत्वारभ्यारुहकका सुरारेरिव बाहवः ॥ १२७३ ॥
 बण्डममादिभिर्मित्रैः स तैः सह नृपात्मजः ।
 कदाचित्पुरयात्रायां निर्ययौ द्रष्टुमुत्सवम् ॥ १२७४ ॥
 पूजयित्वा द्विजवरान्मणिकाञ्चनमौक्तिकैः ।
 सुहृदुत्साहितो दाता विचचार पुरोत्सवे ॥ १२७५ ॥
 स तत्र विवर्धौ मत्तकुञ्जरेन्द्रघटा इव ।
 संपूर्ण इव शीतांशुर्मेषमालाविनिर्गतः ॥ १२७६ ॥
 गौरोचनापधमत्रैस्तुस्तोरुगुणं बभौ ।
 हरेरिव चिरोत्पिष्टकैटभासकट्टाक्षितम् ॥ १२७७ ॥
 रराज तारदारेण लक्ष्मीलीलान्जितेन सः ।
 निश्क्षेपेव गात्रेण स्फटिकाचलदोस्तरः ॥ १२७८ ॥
 शौर्मद्विपाञ्चननिर्मौ जयत्रोरणविभ्रमौ ।
 प्रतापमन्दिरस्तम्भौ भुजौ तस्य विरेजतुः ॥ १२७९ ॥

स लोलकुण्डलासक्तलसन्मरकतांशुभिः ।
 बभौ विमूषितो भोगिभोगैरिव महेश्वरः ॥ १२८० ॥
 व्यूढोरस्कं हरिस्कन्धं प्रांशुं कमललोचनम् ।
 तं वीक्ष्य पौरललना बभूवुर्मन्मथाकुलाः ॥ १२८१ ॥
 मोट्टायितैः कुट्टमितैर्जृम्भितैः किलकिञ्चितैः ।
 तासां तद्दर्शनोद्धूतैरयं किल सखीजनः ॥ १२८२ ॥
 महोत्सवं समालोक्य कामिनीनयनोत्सवः ।
 अपरेषुर्मृगरणक्रीडायै सानुगो ययौ ॥ १२८३ ॥
 तं व्रजन्तं ददर्शय यदृच्छासंगता पथि ।
 प्रौढा कात्यायनी नाम तापसी कौतुकाकुला ॥ १२८४ ॥
 आश्चर्यशालिनीं पृथ्वीं भ्रान्त्वा सा वीक्ष्य तं पुरः ।
 विस्रयस्तब्धनयना लिखितेवामवक्षणात् ॥ १२८५ ॥
 अभिनन्द्य तमाशीर्भिः प्रहृष्टा गन्तुमुद्यता ।
 अनेकसेवकासक्तदृष्टा तेन न वीक्षिता ॥ १२८६ ॥
 सदर्पमिव तं मत्वा किञ्चिदुच्चैरुवाच सा ।
 अहो नु रूपसंमत्तो राजपुत्रो मदाकुलः ॥ १२८७ ॥
 हंसद्वीपपतेः पुत्रीं कान्तां दारवतीं यदि ।
 प्राप्नोति तन्न जानीमः कीदृशोऽयं भविष्यति ॥ १२८८ ॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा सेवका गर्वमन्थरम् ।
 न्यवेदयन्समभ्येत्य राजपुत्राय विसिताः ॥ १२८९ ॥
 ॥ तामानाय्य पप्रच्छ प्रणम्य विनयानतः ।
 यथोक्तमवदत्सा च पृष्टा तेन पुनः पुनः ॥ १२९० ॥
 स्नानभोजनसन्मानैः पूजनीयेयमित्यथ ।
 आदिदय मग्निं प्रायान्मृगयायै नृपात्मजः ॥ १२९१ ॥
 ततः परिनिवृत्त्याशु राजधानीमुपेत्य ताम् ।
 पप्रच्छ पुनरेकान्ते सचिवैः सह निर्वृतः ॥ १२९२ ॥

सा प्राह राजपुत्रास्त्रि हंसद्वीपनराधिपः ।

श्रीमान्मन्दारदेवारूयो राजसागरमन्दरः ॥ १२९३ ॥

तस्य मन्दारवत्याख्या तनयास्त्रि सुलोचना ।

यां विधाय विधेर्मन्ये चिरादुच्छसितं मनः ॥ १२९४ ॥

मासि मासि समन्यस्य विधिः शङ्के शक्तिक्रियाम् ।

तन्मुसारापसादृश्येनैवाद्यापि प्रगल्भते ॥ १२९५ ॥

चन्द्रस्यैव लज्जायै दूरे जलजसंकथा ।

तन्मुखस्योपमापात्रं स्वविम्बं यदि दर्पणे ॥ १२९६ ॥

सौन्दर्यवसनं लोके सा च संवननं दृशः ।

तथा च पश्य चित्रस्य तदाकारं ददान्यहम् ॥ १२९७ ॥

मयेयं लिखिता तत्र तत्सौन्दर्यानुसूचया ।

एवंविधा सुधामूर्तिर्नेत्राभ्यां लभ्यते कुतः ॥ १२९८ ॥

इत्युक्त्वा कौतुकज्ञाय राजपुत्राय तां ददौ ।

चित्रस्यां वीक्ष्य तां सोऽपि चित्रन्यस्त इवामवत् ॥ १२९९ ॥

साक्षादिव सितां दृष्ट्वा किञ्चिद्वक्तुमिबोधतः ।

स तां प्रदध्यादाक्रान्तौ विसयेन स्मयेन च ॥ १३०० ॥

यस्याः कान्तितरङ्गिणी स्वनतटे हारांशुकेनोज्ज्वले

भ्रूवीर्चीचटुले विलाससुमगे वक्त्रे रुचिस्तन्दिनि ।

लायण्माभृतविभ्रमे कृतमहावर्ते च नार्माहदे

मज्जन्तीव मयार्पिता स्मरमरादानन्दगुर्व्या दृशः ॥ १३०१ ॥

इत्युक्त्वा सर्ववृत्तीनां निर्दिशत्येव नेत्रताम् ।

योगीव तन्मयः क्षिप्रं निर्विकल्पो बभूव सः ॥ १३०२ ॥

तं वीक्ष्य पुलकापूर्णं सेदविन्दुविराजितम् ।

ध्यात्वा तत्सचिवाः प्राहुस्त्रापतीं विसयाकुलाः ॥ १३०३ ॥

आर्ये तत्सदृशी कन्या चित्रस्या कैः प्रतीयते ।

लिख्यतां राजपुत्रोऽयं सादृश्ये कुमलासि चेत् ॥ १३०४ ॥

इत्युक्ता तैर्लिखेत्तापसी भूमिपात्मजम् ।
 अविसंवादिलावण्यं संक्रान्तमिव दर्पणे ॥ १३०५ ॥
 ते दृष्ट्वा लिखितं चित्रे तुल्यं राजसुतं तथा ।
 साधु साध्वित्यभापन्त ग्रहणोत्फुल्ललोचनाः ॥ १३०६ ॥
 तापस्यां प्रतियातायां राजपुत्रस्ततोऽभवत् ।
 अरतिसरतापानां करात्करमिवागतः ॥ १३०७ ॥
 श्वासताम्राधरदलो ध्यानस्तिमितलोचनः ।
 आपाण्डुगण्डः कदलीदलशय्यां ततोऽमजत् ॥ १३०८ ॥
 विशाय तत्सुहृद्वाक्यात्पुत्रं कामज्वरातुरम् ।
 तापसीकथितं कन्यावृत्तान्तं च निशम्य तत् ॥ १३०९ ॥
 महासेनोऽथ दूतेन हंसद्वीपाधिपं सुताम् ।
 योग्यां सुन्दरसेनाय ययाचे दिक्षु विश्रुताम् ॥ १३१० ॥
 लिखितं चित्रफलके राजपुत्रमदर्शयत् ।
 महासेनविस्मृतोऽसौ दूतस्तत्र महीभुजे ॥ १३११ ॥
 हंसद्वीपाधिपः पुत्र्यै चित्रस्थं भूमिपात्मजम् ।
 प्रदिश्य तत्प्रयाणाय प्रति दूतं समादिशत् ॥ १३१२ ॥
 मन्दारवत्यथालोक्य तं कान्तं प्रतिमापदम् ।
 बभूवाभिनवोद्भिन्नमनोभवविभूषिता ॥ १३१३ ॥
 ततस्तच्चिन्तनैकाम्रा तत्सौन्दर्यकथादरा ।
 भेजे प्रलापिनी तापं हृदयान्ते मुखश्रिया ॥ १३१४ ॥
 कान्तां विज्ञाय तां तुल्यवरव्यासक्तमानसाम् ।
 आपादसहमानां च कालं परिणयोत्सवे ॥ १३१५ ॥
 विससर्ज प्रवहणैर्महासेनपुरीं स्वयम् ।
 पुरीं मन्दरदेवोऽथ हृष्टो दासीशतैर्वृताम् ॥ १३१६ ॥
 रत्नपूर्णं प्रवहणं सा समारब्ध सोत्सुका ।
 अवाप जलधेर्मध्यं तरङ्गावर्तगीपणम् ॥ १३१७ ॥

अथोदतिप्रद्वालोलविद्युत्तिङ्गललोचनः ।
 तमालञ्जालमालिनो गर्जललदराक्षसः ॥ १३१८ ॥
 तदुद्धृतमहावातवल्यावर्तनार्तितः ।
 कैलासशिखराकारतरङ्गः सागरोऽभवत् ॥ १३१९ ॥
 तेन कल्पान्तसंरम्भगम्भीरेण नभस्वता ।
 अभज्यत प्रवहर्णं राजपुङ्गवाः कृतश्रमम् ॥ १३२० ॥
 किमेतदिति निस्पन्दचेतनामोहविष्टवैः ।
 वीचिहस्तैस्ततो न्यस्ता भवितव्यतयैव सा ॥ १३२१ ॥
 तत्र संज्ञां समासाद्य चिरात्तरललोचना ।
 ष्टकाकिनी त्रासशोकशङ्कातङ्काकुलामवत् ॥ १३२२ ॥
 तालतालीयनश्यामे निर्जने जलधेस्तटे ।
 वप्राम चक्रवाकीव बाला सारप्रलापिनी ॥ १३२३ ॥
 स्तनस्तवकिनी तस्याः साञ्जनैर्वाप्यबिन्दुभिः ।
 आलीनभृङ्गमालेव बभूव तनुवल्लरी ॥ १३२४ ॥
 वीक्ष्य शून्या दश दिशो निश्चलोत्पललोचना ।
 त्रस्तेव बालहरिणी क्षिप्रमुत्कन्धराभवत् ॥ १३२५ ॥
 हा तात हा मियतम क नु व्यमोऽसि पश्य माम् ।
 इति चक्रन्द सा तन्वी दैपदामपि दारणम् ॥ १३२६ ॥
 अत्रान्तरे महाम्मोषिवेलाविरचिताश्रमः ।
 तं देशमागतः स्नातुं गतः शो मुनिपुंगवः ॥ १३२७ ॥
 यमुनाभिधया पुङ्गवा सहितस्त्वां ददर्श सः ।
 विलापक्षामवदनां निःश्वासग्लपिताधराम् ॥ १३२८ ॥
 तां वीक्ष्य करुणासिन्धुः सान्त्वयन्मुनिरववीत् ।
 समाश्रयसिहि मा भैषीः पुत्रि मा विकृष्याम्य ।
 अस्यां तनौ न विपदश्चिरं तिष्ठन्ति सुन्दरि ॥ १३२९ ॥
 इत्युक्त्वा तेन सा पृष्टा कारुण्याहुःस्वकारणम् ।

उवाच तत्समाश्वासमुधया लब्धजीविता ॥ १३३० ॥
 हंसद्वीपपतेः पुत्री हताशा भगवन्नहम् ।
 पित्रा सुन्दरसेनाय विसृष्टाम्मोषिवर्त्मना ॥ १३३१ ॥
 अचिरप्रस्तुतोद्वाहा भग्ने प्रवहणे विभो ।
 तर्तरेऽस्मिन्सलिलैः क्षिप्ता जीवामि कठिनाशया ॥ १३३२ ॥
 निपधाधिपतेः पुत्रः प्राप्तो नाघन्यया मया ।
 श्रीमान्सुन्दरसेनोऽसौ वरो दिव्यवरोचितः ॥ १३३३ ॥
 इत्युदश्रुदशस्तस्या निशम्य वचनं मुनिः ।
 निनाय पुत्र्या सहितस्तामाश्वास्य निजाश्रमम् ॥ १३३४ ॥
 भविष्यत्यचिरादेव तवेप्सितसमागमः ।
 इति तत्र तदादिष्टा कंचित्कालमुवास सा ॥ १३३५ ॥
 अस्मिन्नवसरे तीव्रमन्मथानलतापितः ।
 व्रूतैः सुन्दरसेनोऽपि ज्ञात्वा पुत्रीं प्रतिश्रुताम् ॥ १३३६ ॥
 राज्ञा मन्दरदेवेन कृतार्थोऽस्मीति वादिना ।
 अक्षमः कालसहने सामात्यः पितुराशया ॥ १३३७ ॥
 प्रतस्थे विपुलानीकैर्विवाहोचितया श्रिया ।
 हंसद्वीपं हरिबुरोदृक्किताबनिमण्डलः ॥ १३३८ ॥
 स शशाङ्कपुरं प्राप्य क्रमेण जलधेस्तटे ।
 राज्ञा महेन्द्रादित्येन पूजितः सादरं गृहम् ॥ १३३९ ॥
 तमेवाग्रे समाधाय सोत्साहं सचिवैः सह ।
 आरुरोह प्रवहणं तूर्णं परिणयोत्सुकः ॥ १३४० ॥
 ततः संहारपिशुनैरकाण्डोच्चण्डमारुतैः ।
 समुद्रतैर्महाम्मोषावमज्यत सचेटकः ॥ १३४१ ॥
 बाहुभ्यां तरणोद्युक्ताः पवनप्रेरितैर्जलैः ।
 पृथक्वर्तरेषु विन्यस्ताः सर्वे प्रवहणाश्रयाः ॥ १३४२ ॥
 एकेन सुहृदा सार्धं तीरं प्राप्य नृपात्मजः ।
 अचिन्तयद्विलसितं मुजङ्गकुटिलं विधेः ॥ १३४३ ॥

हा मुन्दरि न लब्धासि यत्नैरेवंविधैरपि ।
 कुतो वा हीनपुण्यानां संकल्पाः फलयोगिनः ॥ १३४४ ॥
 तैः सुहृद्भिर्वियुक्तस्य निष्फलोद्योगदुःखिनः ।
 ममास्मिन्व्यसनापाते निधानान्नापरं सुखम् ॥ १३४५ ॥
 इति प्रलापमुत्तरः सुहृदाश्वासितो मुहुः ।
 तापसाभ्यां समादिष्टं शनैः प्राप तपोवनम् ॥ १३४६ ॥
 अत्रान्तरे महासेनो विज्ञाय निषधेश्वरः ।
 रहितं राजपुत्रेण प्रतीपं सैन्यमागतम् ॥ १३४७ ॥
 श्रुत्वा समुद्रवृत्तान्तं घोरं कुलिशदारुणम् ।
 हा पुत्रेति विलप्योच्चैर्निपपात महीतले ॥ १३४८ ॥
 मृपतौ शोकपतिते रुरोदेव वसुंधरा ।
 अन्तःपुरवधूच्छिन्नद्वारमुक्ताश्रुविन्दुभिः ॥ १३४९ ॥
 देवी दक्षिमणा तत्र पुत्रशोकमलापिनी ।
 चक्रे केलिकुरङ्गीणां मुहुः साश्रुलया दृष्टाः ॥ १३५० ॥
 अस्मिन्नवसरे ज्ञात्वा हंसद्वीपाधिपः मुताम् ।
 निमग्नां सागरावर्ते सोऽभ्ययादलकां स्वयम् ॥ १३५१ ॥
 तूर्णं समुद्रमुत्तीर्य संवन्धिनि नराधिपे ।
 पुत्रीविभोगविधुरे संप्राप्ते बलमासस्ये ॥ १३५२ ॥
 महासेनपुरं तारं चचाराक्रोशनाश्रवः ।
 समानदुःखसन्नेन माप्स्यमन्विहिं भिक्षते ॥ १३५३ ॥
 शनैराश्वासितास्तेऽथ वृद्धामात्यपुरःसरैः ।
 बहवः सागरे तीर्णा दृष्टा इति निदर्शनेः ॥ १३५४ ॥
 ततस्त्री गूणती तत्र सभार्यौ शोककश्चितौ ।
 अगूतां नियताहारौ शिवार्चनपरायणौ ॥ १३५५ ॥
 अत्रान्तरे राजपुत्रः सुहृदा सह दुःखितः ।
 प्राप्तः मुन्दरसेनस्तं मतङ्गाग्रमकाननम् ॥ १३५६ ॥

प्रसन्नसुमगच्छायमञ्जुगुञ्जद्विहङ्गमे ।
 मृदुलानिललोलाग्रफुल्लवल्लीमनोहरे ॥ १३५७ ॥
 तत्राश्रमोपान्तनदीतीरे तरललोचनाः ।
 जलकेलिकलालोला ददर्श मुनिकन्यकाः ॥ १३५८ ॥
 तासां मध्ये ततोऽपश्यचाराणामिव रोहिणीम् ।
 शोककञ्चुकसंवीतां कन्यां कुवलयेक्षणाम् ॥ १३५९ ॥
 निर्दोषेणातिकान्तेन शतपत्रविकाशिना ।
 अभिभूतेन्दुबिम्बेन वदनेन विराजिताम् ॥ १३६० ॥
 निषिद्धमावयोरैक्यं श्रोत्राभ्यां नासया तथा ।
 रोपादतीव रक्तान्तं बिभ्राणां लोचनद्वयम् ॥ १३६१ ॥
 नागवल्लीकिशलयैर्भूषितामघरांशुभिः ।
 लक्ष्मीमिवाब्धिसंक्रान्तबालविद्रुमपल्लवाम् ॥ १३६२ ॥
 अत्युच्चकुचसरुद्धं न पश्याम्येतदाननम् ।
 इतीय चिन्तया मध्यं दधती क्षामतां गतम् ॥ १३६३ ॥
 फुल्लोत्पलवरामोदां कुन्ददन्तां हिमसिताम् ।
 अशोकपल्लवकरां मल्लीमुकुलकोमलाम् ॥ १३६४ ॥
 केतकीकलिकाकोटितीक्ष्णान्तनयनच्छटाम् ।
 स तां विलोक्य साकारामिव सर्वर्तुदेवताम् ॥ १३६५ ॥
 वगूव विसयोत्तालनयनः सुहृदा सह ।
 अग्राम्यमधुरं तस्याः प्रशंसन्नेव विभ्रमम् ॥ १३६६ ॥
 साथ तत्र जलक्रीडाव्यग्रा ग्राहेण हारिणी ।
 गृहीता मोहमगमत्रासकम्पिषयोधरा ॥ १३६७ ॥
 तां विलोक्य तदाकान्तां मुनिकन्याः प्रचुक्रुधुः ।
 हा हा मन्दारवत्येषा सरसी ग्राहेण कृप्यते ॥ १३६८ ॥
 इति प्रियतमानामश्रवणोत्फुल्लकाननः ।
 शिषं गुन्दरसेनस्य हत्वा ग्राहं ररक्ष ताम् ॥ १३६९ ॥

सखीभिर्वीज्यमानाथ सा बाला-कदलीदलैः ।

लब्धसंज्ञा नृपसुतं पुरो दृष्ट्वा व्यचिन्तयत् ॥ १३७० ॥

अहो वत स एवार्य यश्चित्रस्त्रो मया पुरा ।

दृष्टः सैवेयमम्लाना रेखा सौन्दर्यशालिनी ॥ १३७१ ॥

इति लज्जाकुले तस्याः कान्तिदर्शनसंक्षये ।

लेभे मनोभवः क्षिप्तं दोलारोहणविभ्रमम् ॥ १३७२ ॥

ततः सुन्दरसेनस्तां पप्रच्छ मुनिकन्यकाम् ।

लावण्यललिताकारा कस्येयमिति सादरम् ॥ १३७३ ॥

इयं मन्दरदेवस्य हंसद्वीपपतेः सुता ।

ख्याता मन्दारवत्यास्या प्रस्थिता पितुराज्ञया ॥ १३७४ ॥

वरं सुन्दरसेनाख्यं निषधाधीशितुः सुतम् ।

तरीतुं जलयात्रेण ततार जलधिं ततः ॥ १३७५ ॥

भग्ने प्रवहणे वातैर्देवाच्छटमविश्रिता ।

न्यसेयं वीचिहस्तेन भग्ने प्रवहणेऽब्धिना ॥ १३७६ ॥

प्राप्ता मतङ्गमुनिना कन्येव प्रतिपालिता ।

इति स श्रुतवृत्तान्तस्तस्यावानन्दसंप्लुतः ॥ १३७७ ॥

पृष्ठो मन्दारवत्याथ तत्सस्ता ग्राह तत्कथाम् ।

यथावृत्तं तदाकर्ण्य प्रपेदे निर्वृतिं पराम् ॥ १३७८ ॥

इति श्रुत्या परिज्ञाय मिथो वृत्तान्तविस्तरम् ।

दयितौ जग्मतुर्मूर्च्छां तौ बाष्पपिहितेश्मणौ ॥ १३७९ ॥

स्तयं ततः समम्येत्य भगवान्ज्ञाततत्कथः ।

मतङ्गमुनिरानन्दाद्दौ तां नृपसूनेव ॥ १३८० ॥

अथ संप्राप्तदयितो राजपुत्रो मुनीश्वरम् ।

यमुनां च समामदय प्रतप्ते मुहदा सह ॥ १३८१ ॥

किञ्चिन्मार्गं समुहह्वय ततः स जलधेश्वरे ।

आद्रलोके प्रवहणं वणिजो बलमासतः ॥ १३८२ ॥

वणिक्सोऽपि विलोक्यैव दूरात्तां हंसगामिनीम् ।
 आरुह्यतां प्रवहणं प्रोवाचेति नृपात्मजः ॥ १३८३ ॥
 तदाकर्ण्य प्रियां पूर्वमारोप्य स समीहते ।
 यावत्स्वयं समारोढुं वणिकतावज्जहार ताम् ॥ १३८४ ॥
 क्रोशन्तीं तां समादाय याते तस्मिन्नदृश्यताम् ।
 मूर्च्छान्धकारितः क्षिप्रं निपपात नृपात्मजः ॥ १३८५ ॥
 हा प्रिये क नु यातासि वद दृष्टासि पश्य माम् ।
 इत्युन्मत्त इवानेकं विललाप मुहुर्मुहुः ॥ १३८६ ॥
 भृङ्गावलीषु कवरीमुत्पलेषु विलोकितम् ।
 लीलां च बालवल्लीषु स शुशोच मृगीदृशः ॥ १३८७ ॥
 तन्या संभाषितोऽसीति स वदन्बालवल्लीम् ।
 मञ्जुसिञ्जानमधुपामालिलिङ्गानिलाकुलम् ॥ १३८८ ॥
 कान्ताकटाक्षमालेयमिति बर्हिशिखावलीम् ।
 मोहाद्बाल इवाधावद्बालेन्दुफलकाम्यया ॥ १३८९ ॥
 तस्मिन्मियावियोगामिदृशमाने दिनेश्वरः ।
 चित्रमस्ताद्रिमारुह्य ममज्ज जलधेर्जले ॥ १३९० ॥
 अथामृतांघ्र्यरागेण मञ्जिष्ठपटशोभिना ।
 चक्राद्दशोकशिशिना मूर्तेर्नेवावृतं जगत् ॥ १३९१ ॥
 ततः सुन्दरसेनोऽप्रदुःखानिलसमुच्छ्रितैः ।
 सान्द्रधूमैरिव ध्वान्तैर्मूव पिहिता दिशः ॥ १३९२ ॥
 ततश्चन्द्रोदयारम्भपाण्डुरा रजनी बभौ ।
 वियोगिनीं ससिक्ता कर्पूरहरिचन्दनैः ॥ १३९३ ॥
 अथादृश्यत त्रीतांशुर्नूतनोदयलोहितः ।
 दृष्टमानः स संतापः प्रोषितावीक्षितैरिव ॥ १३९४ ॥
 व्योमलक्ष्मीः दक्षिणैः करिणीदन्तपाण्डुरैः ।
 मग्नैव शरतक्षेप मण्डिना विषमण्डलैः ॥ १३९५ ॥

तत्र सुन्दरसेनोऽमृतकौमुदीववल्गुलिपि ।
 कटाह इव विन्यस्तः शोचन्दरिणलोचनाम् ॥ १३९६ ॥
 ज्योत्स्नादृशासधवल्ये वेताल इव चन्द्रमाः ।
 प्राणान्समुद्यतो हन्तुं ममेत्युक्त्वा पपात सः ॥ १३९७ ॥
 सं मूर्च्छितं निपतितं दृष्ट्वा साश्रुविलोचनः ।
 विललापातिकरुणं तद्वयस्योऽपि विद्वलः ॥ १३९८ ॥
 ततः ममाते धनकैः संजामासाद्य दुःसितः ।
 राजपुत्रोऽविशद्यो रामदर्वी विस्त्रलहृतिः ॥ १३९९ ॥
 वदर्थं तत्र चमरीवालैराच्छादितां पुरः ।
 पुलिन्दपत्नीं शार्दूलकृत्तिपालम्बिर्भीषणाम् ॥ १४०० ॥
 गजेन्द्रमांसकूटेषु काकरक्षाविराविमिः ।
 विहृतैर्दृष्टद्यवैः पिशाचैरिव सेविताम् ॥ १४०१ ॥
 लम्बमानोरुत्तूणीरां संसक्तमृगवागुराम् ।
 सारमेयकृतारावां तां पश्यन्मययौ ह्रुतम् ॥ १४०२ ॥
 तत्र दुर्गोपहाराम शर्वैश्चापपाणिभिः ।
 निहतानेकश्वरो बद्धो राजपुत्रस्ततः ॥ १४०३ ॥
 ययस्वसहितो नीतः स तैः कारागृहोदरम् ।
 प्रविश्य सुचिरं वृद्धान्सचिवान्स्नान्ददर्श च ॥ १४०४ ॥
 त्रांश्चण्डप्रमुखान्दृष्ट्वा निषद्धाग्निगर्दभैः ।
 उवाच संगता दिष्टा वयमस्मिन्वधशुणे ॥ १४०५ ॥
 इति वृषाणं श्वरा निन्मुसं चण्डिकादयम् ।
 सदापरीक्षैः सचिवैः सायकगणर्पादितम् ॥ १४०६ ॥
 तत्र कात्यायिनीं दृष्ट्वा स प्रणम्य निराकृतः ।
 तुष्टाव विरहात्क्षामः पदैरस्तलिताश्वैः ॥ १४०७ ॥
 जय देवि नमश्चन्द्रचूडाचूडातशिविषा ।
 संपूर्णमाणपादानुप्रवृद्धनसचन्द्रिके ॥ १४०८ ॥

इत्यादि पार्वतीं स्तुत्वा स्थिते तस्मिन्नसंग्रमे ।
 हन्तुं पुलिन्दराजस्तान्विन्ध्यकेतुः समाययौ ॥ १४०९ ॥
 निर्विकारं तमालक्ष्य स तत्र निधनक्षणे ।
 हा धिक् नः स्वामितनुभूरयमित्याह संग्रमात् ॥ १४१० ॥
 अहमाटविको राजा महासेनेन भूभुजा ।
 कृतः सुन्दरसेनोऽयं पुत्रस्तस्योर्मिताश्रयः ॥ १४११ ॥
 इत्युक्त्वा पादयोः सार्धं राजसूनोर्निपत्य सः ।
 तैः सुहृद्भिः परिवृतं तं निनाय निजालयम् ॥ १४१२ ॥
 तत्र विज्ञातवृत्तेन तेन प्रणयशालिना ।
 पूज्यमानः स्मरन्कान्तां कंचित्कालमुवास सः ॥ १४१३ ॥
 ततः कदाचिदासीनं शबरेन्द्रं तदन्तिके ।
 व्यजिज्ञपत्समभ्येत्य सेनानीर्विहिताञ्जलिः ॥ १४१४ ॥
 देवादेशान्निरुद्धोऽसौ सार्यो बहुधनो वने ।
 संयम्य समरे जित्वा समानीतश्च तत्पतिः ॥ १४१५ ॥
 पश्चात्स्थिता तस्य कन्या हरिणीहारिलोचना ।
 शङ्के शशाङ्को यत्कान्त्या क्षीणः क्षीणोऽपि पूर्यते ॥ १४१६ ॥
 श्रुत्वेति भिल्लराजेन राजपुत्रमतेन सः ।
 दर्शयेति समादिष्टः सेनानीरानिनाय तम् ॥ १४१७ ॥
 तस्मानुर्गां ततो दृष्ट्वा तां सौन्दर्यसुषानदीम् ।
 राजपुत्रः परिश्राय मुमोह विरहातुरः ॥ १४१८ ॥
 मन्दारवत्यपि पुरो विलोक्य हृदयप्रियम् ।
 सदृसा शोकहर्षाभ्यां निष्पन्देवामवत्क्षणात् ॥ १४१९ ॥
 ततः पुलिन्दराजेन स पृष्टो दुष्टचेष्टितः ।
 वणिजमोवाच पापेन पर्याप्तं सदृशं फलम् ॥ १४२० ॥
 वधितो राजपुत्रोऽयं हृतेयं राजकन्यका ।
 स्ववेदमनि विधास्यामि विवाहं विमनोचितम् ॥ १४२१ ॥

इति निश्चितसंकल्पो बद्धोऽहं भवता वने ।
 प्रामुवन्ति कथं नाम परद्रोहरताः सुखम् ॥ १४२२ ॥
 पुलिन्दराजः श्रुत्वेति हन्यतामेष दुर्मतिः ।
 इत्यादिदेश सेनान्यं मृकुटीमीमविक्रमः ॥ १४२३ ॥
 राजपुत्रस्ततः ग्राह धनमेवास्य गृह्यताम् ।
 घणिजां द्रविणं प्राणः शरीरं तृणमेव यत् ॥ १४२४ ॥
 इति सुन्दरसेनेन रक्षितः करुणाञ्जिना ।
 निरन्धरो घणिकप्रायात्कृतकोलाहलः श्वभिः ॥ १४२५ ॥
 ततो दिदेश संदेशं विन्ध्यकेतुर्महीमुजे ।
 महासेनाय तनयप्राप्तिपीयूषनिर्भरम् ॥ १४२६ ॥
 शयराधिपलेह्येन निषधाधिपतिस्ततः ।
 विज्ञाय सुतवृत्तान्तं तदग्रे सानुगो ययौ ॥ १४२७ ॥
 हंसद्वीपाधिनाथेन सहामात्यमुतैस्तथा ।
 स चक्रे कुलरानीकैर्मनन्मुवि घनागमम् ॥ १४२८ ॥
 ततः सुन्दरसेनोऽपि सानुगो दयितासखः ।
 समेत्य दृष्ट्वा पितरं ववन्दे साश्रुलोचनः ॥ १४२९ ॥
 ततः प्रविश्य ते सर्वे पुरीं कोलाहलाकुलाम् ।
 अलकां हर्षसंपूर्णामिव चक्षुर्महोत्सवम् ॥ १४३० ॥
 अयोचिता विवाहश्रीर्मुहूर्ते शुभलक्षणे ।
 मन्दारवत्या राजेन्द्रसूनोः क्षिप्रमवर्तत ॥ १४३१ ॥
 चिरं महोत्सवे तस्मिन्नानन्दामृतनिर्भरः ।
 हंसद्वीपपतिः पुत्रीं परिष्वज्य पुनः पुनः ।
 स्वपुरीं प्रययौ हृष्टः सानुगो वल्लभासखः ॥ १४३२ ॥
 इति सुन्दरसेनेन प्राप्तास्ते सुहृदश्चिरात् ।
 प्रिया च सा सुवदना नेत्रामृततरङ्गिणी ॥ १४३३ ॥

इत्येवमद्भुता घातुर्विलासकुटिला गतिः ।

युष्माकमपि संकल्पः फलिष्यति न संशयः ॥ १४३४ ॥

इति कण्वेन मुनिना कृपयैवोपवर्णिताम् ।

कैयामेतां समाकर्ण्य धैर्यं वयमुपागताः ॥ १४३५ ॥

इति मन्दारवत्याख्यायिका ॥ २८ ॥

तृतीयो गुच्छः ।

ततो मुनीन्द्रमामङ्ग्य विलङ्घ्य विकटाटवीम् ।

बह्वपाससंतप्ताः प्राप्ता वयमिमां भुवम् ॥ १ ॥

इहाप्यस्य तरोर्भुक्त्वा फलानि फलतां गताः ।

मुक्तास्त्वदर्शनात्सर्वे पश्यामस्त्वामनामयम् ॥ २ ॥

व्याघ्रसेनेन कथितां कथां श्रुत्वेति विसितः ।

मृगाङ्गदत्तः प्रययौ नत्वा हेरम्बपादपम् ॥ ३ ॥

विन्ध्याटवीमतिक्रम्य श्रुतधिप्रमुखैः सह ।

विन्ध्यशैलं परित्यज्य तथा गन्धवतीं नदीम् ॥ ४ ॥

करवीरं समासाद्य भूतवेतालसंकुलम् ।

महाकालं प्रणम्याशु ददशोज्जयिनीं निधि ॥ ५ ॥

पूर्णेन्दुविहितालोकैस्तां पुरीं वीक्ष्य दुर्गमाम् ।

दुर्गयन्नायुधोपेतां सुमदैः परिपालिताम् ॥ ६ ॥

संकल्पैरप्यनाघृष्यामलङ्घ्यां मास्तैरपि ।

अचिन्तयत्स सचिवैस्तां शशाङ्कवतीं सरन् ॥ ७ ॥

राजा कन्दर्पसेनोऽयं रक्तामात्यो महाधनः ।

इयं पुरी च दुर्मेघा नात्रोपायः प्रगल्भते ॥ ८ ॥

अयं मे विपुलः क्लेशः प्रायो निष्फलतां गतः ।

अपन्यैः प्राप्यते नाम सा शशाङ्कवती कथम् ॥ ९ ॥

'इति ध्यात्वा नृपसुतेः सरसोकाकुलोऽभवत् ।
 ततः ससार वेतालं तत्र विक्रमकेसरी ॥ १० ॥
 [उपस्थितः स वै ध्यातः किं करोमीत्यभाषत ।
 कथयामास च पुनः कथमाश्चर्यशालिनीम् ॥ ११ ॥
 सखे कन्दर्पनामाहं विप्रो रत्नपु..... ।
 प्रावृषेण्यघनश्यामे काले यातो महाटचीम् ॥ १२ ॥
 तत्राद्य मत्तिचक्रेण केलिसङ्केतमानिना ।
 स प्रासादं विलोक्यैव नीतोऽहं व्योमगामिना ॥ १३ ॥
 कचिद्विजालयोपान्ते मां विधाय गतास्तथा ।
 देवीषु द्विजकन्यायास्तत्रोद्गाह्यहोत्सवे ॥ १४ ॥
 लभे पूर्वांशके प्राप्ते बरे दैवाङ्गनागते ।
 सद्यो विभूषणजुषे मद्यं कन्यां ददुर्द्विजाः ॥ १५ ॥
 एवं स मानसां नाम तामवापं मनोमुवः ।
 दूरनेत्रामिदग्नस्य निर्वाणनदीमिव ॥ १६ ॥
 तया प्रणयशालिन्या यावत्प्राप्तोऽसि निर्वृतिम् ।
 समेत्य मत्तिचक्रेण नीतस्तावद्विहायसा ॥ १७ ॥
 द्वितीये देवताचक्रे व्योमप्राप्तेऽथ तत्पुनः ।
 संभवचे च तद्युद्धे पतितोऽहं त्वदन्तिकात् ॥ १८ ॥
 न जाने चन्द्रवदना सा कास्ते का च भूरियम् ।
 अत्युक्त्वा बाष्पसंपूर्णलोचनस्तं मुहुर्मुहुः ।
 समाधास ययौ प्रातसेनैव सहितः शनैः ॥ १९ ॥
 ततो दूरतरं गत्वा भीनान्ददृशतुर्जनैः ।
 भिनिवृत्तान्महाकायार्जितान्तौ वराङ्गनाम् ॥ २० ॥
 संत्रासविह्वलां बालां तां दृष्ट्वा हरिणेषणाम् ।
 प्रत्यभिज्ञाय कन्दर्पः पपच्छाशु सुमानसाम् ॥ २१ ॥
 किमिदं चन्द्रवदने समतुल्यं विचेष्टितम् ।

इति पृष्ठावदद्वाला कन्दर्प सा विलज्जिता ॥ २२ ॥
 अयि त्वयि हृते नाथ तदा तैः खेचरैर्गणैः ।
 इयं विरहदुःस्वार्ता निमग्ना बाहिनीजले ॥ २३ ॥
 निगीर्णा तेन मत्स्येन ततः केनाद्य मोचिता ।
 कथं वेत्ति न जानेऽहं प्रमाणमधुना भवान् ॥ २४ ॥
 इति श्रुत्वेव सोत्कण्ठां कण्ठे जग्राह तां प्रियाम् ।
 कन्दर्प इव कन्दर्पो विललास रतिं..... ॥ २५ ॥
 सुमानसायास्तद्देशनिवासी मातुलो द्विजः ।
 यज्ञस्वामी निनायाशु हृष्टां स्वगृहं ततः ॥ २६ ॥
 दयितासंगतं दृष्ट्वा कन्दर्पं तत्र केसरः ।
 विश्वस्य तां रूपवतीं सस्मार विरहातुरः ॥ २७ ॥
 यज्ञस्वामी तमालोक्य वियोगं त्वङ्गतापितम् ।
 उवाच मा कृथाः शोकमचिरात्प्राप्स्यसि प्रियाम् ॥ २८ ॥
 अभूच्चण्डपुरे विप्रः सोमस्वामीति विश्रुतम् ।
 वभूव तनया तस्य दक्षा कमललोचना ॥ २९ ॥
 दृष्ट्विद्वानुरागैव सा सौन्दर्यविशेषकम् ।
 कुसुमायुधनामानं द्विजपुत्रमचिन्तयत् ॥ ३० ॥
 सा तं सरसीमुखेनाह मामद्यैव निशामुखे ।
 तयान्यथाह तातेन वितीर्णा.....तद्वशा ॥ ३१ ॥
 इत्यर्थितस्तया दृष्टो मित्रमश्वतथीमुतम् ।
 स विस्मय्य जहाराशु गूढां कमललोचनाम् ॥ ३२ ॥
 अविनीताभिधानोऽथ नीत्वा तां स्तवकस्तनीम् ।
 मित्रद्रोहोद्यतः प्राह तां मन्मथशराहताम् ॥ ३३ ॥
 भज मामनवप्राप्तिं विह्वीचं कुसुमायुधम् ।
 भट्टाहुबलमाश्रित्य स सर्वत्र प्रगल्भते ॥ ३४ ॥
 इति सा सहस्रैवोक्ता तेन..... ।
 मच्छाप प्राह को दोषस्त्वं ममाम्यधिकः प्रियः ॥ ३५ ॥

किंतूचितविधानेन त्वयोद्वाहमहं मेजे ।

आनयोत्सवसामग्रीं त्वं विक्रीयाङ्गुलीयकम् ॥ ३६ ॥

इति श्रुत्वा गते तस्मिन्नुतः कमललोचना ।

विवेदा त्रासात्स्वाधिया मालाकारनिवेशनम् ॥ ३७ ॥

सोऽपि प्रतिनिवृत्तोऽयं तामदृष्ट्वा विषण्णधीः ।

कुसुमायुधमभ्येत्य सानायातेत्यभाषत ॥ ३८ ॥

ततो विरहसंतप्तो दुःखितः कुसुमायुधः ।

चम्राय विपुलोच्छ्वासो विवशेनेव चञ्चितः(१) ॥ ३९ ॥

ततः कदाचिदुद्याने मालाकारगृहान्तिके ।

तां कान्तां प्रत्यभिज्ञाय कुंतोद्वाहो मुदं ययौ ॥ ४० ॥

स तां रतिमिव प्राप्य प्रहृष्टः कुसुमायुधः ।

नवसंमोगसाम्राज्यं मेजे लीजवतीसखः ॥ ४१ ॥

इति कुसुमायुधाख्यायिका ॥ २९ ॥

त्वमप्येवं रूपवतीमवाप्स्यसि सखीप्रियाम् ।

यक्षस्वामी निगद्येति सान्त्वयामास केसटम् ॥ ४२ ॥

ततः सुमानसा तौ च दैवात्कन्दर्पकेसटौ ।

स्वपुरं प्रस्थिता गन्तुं गजेन्द्रं ददृशुः पयि ॥ ४३ ॥

तद्गयाद्विप्रयोगोऽगृन्मिथस्तेषां तदा वने ।

अत्यन्तमुत्तलेशो हि बहुदुःखो भवाम्बुधिः ॥ ४४ ॥

केसटोऽप्यथ संप्राप्य शोचन्वाराणसीं नैनैः ।

कन्दर्पं प्राप्य कालेन विरहसामविग्रहम् ॥ ४५ ॥

सुमानसामिर्देवीभिः कन्दर्पः रूपया वनान् ।

नन्दरत्नपुरे तस्मिन्मर्तुः कुलगृहे सतीम् ॥ ४६ ॥

रत्नाङ्गनगरीं नाम ज्येष्ठां कन्दर्पवद्धमाम् ।

तद्वियोगानलकान्तां वह्निशते समुद्यताम् ॥ ४७ ॥

सुमानसा नित्रकयां कथयित्वा प्रियो मतः ।

भुवं समेन्यतीत्युक्त्वा तां सपत्नीमवारयत् ॥ ४८ ॥

जत्रान्तरे रूपवती तदा वृद्धद्विजालये ।
 कुरुपं वीक्ष्य तत्पुत्रं पितुरेवाययौ गृहम् ॥ ४९ ॥
 कालेन तत्र विरहक्षामौ दैवादयंगतौ ।
 कन्दर्पकेसटौ दृष्ट्वा सुघात्रेवामवज्ज्ञपात् ॥ ५० ॥
 प्रत्यभिज्ञाय तां कान्तां केसटः प्राप्य सुन्दरीम् ।
 तस्यावाश्रासयंस्तत्र कन्दर्पं विरहातुरम् ॥ ५१ ॥
 रूपवत्या स ते सख्याः परिणीयैव केसटः ।
 लेखहारकसंदेशाज्ज्ञात्वा रत्नपुरे स्थिताम् ॥ ५२ ॥
 सुमानसां विरहिणीं तां कन्दर्पपितुर्गृहे ।
 तूर्णं तत्सहितः प्रायात्केमटो बलभासखः ॥ ५३ ॥
 कन्दर्पः स्वगृहं प्राप्य समासाद्य सुमानसाम् ।
 तां चानङ्गवतीं कान्तां विललास सुहृद्भर(?) ॥ ५४ ॥
 मियाविरहितो गत्वा ताम्रलिप्तां च केसटः ।
 विजहार स्वभवने संसरन्विरहानलम् ॥ ५५ ॥

इति केसटाख्यायिका ॥ ३० ॥

इति केसटकन्दर्पौ प्रापतुर्वल्लभौ पुरा ।
 वणिक्पुत्र त्वमप्येवं ध्रुवं जायामवाप्स्यसि ॥ ५६ ॥
 मयापि स्वधूः पूर्वं प्रयाता पञ्चतामपि ।
 कपोलिकेन मायेन हिंसिता मग्नशक्तिवः ॥ ५७ ॥
 हत्वा काम्पिलकं दूरात्सजीवा सा पुराहता ।
 जीवतां संगमो नाम मन्येऽहं किल जायते ॥ ५८ ॥
 इत्यम्यागतविप्रेण सुचिरं परिसान्त्वितः ।
 आन्त्रा मही महीपाल त्वामहं शरणं गतः ॥ ५९ ॥
 राजा विपमशीलस्तन्निशम्य वणिजो वचः ।
 गजेन दत्तां तां कान्तामदात्तसे मुतामिव ॥ ६० ॥
 तस्मिन्मया समादाय याते वणिजि भूपतिः ।
 कलिप्रसेनासंप्राप्त्यै कलिप्रेक्षं समभ्ययात् ॥ ६१ ॥

ततो विजित्य समरे कलिङ्गनृपतिं विभुः ।

राजा श्रीविक्रमादित्यः स्त्रीं.....प्राप.....श्रियम् ॥ ६२ ॥

इति कलिङ्गसेनालामवर्णनम् ॥ ३१ ॥

इत्थं देवी प्रणयिना लब्ध्वा त्वं जगतीमुजा ।

तं पूर्वसाधितं प्राह स्वैरं विक्रमकेसरी ॥ ६३ ॥

कन्दर्पसेनतनयां गुप्तान्त पुरसुन्दरीम् ।

सखे मृगाङ्गदत्ताय खेचर क्षिप्रमानय ॥ ६४ ॥

श्रुत्वेत्युवाच वेतालो महाकालमिपालिते ।

देशे न प्रभवामोऽस्मिन्वयं तद्वरदुर्जये ॥ ६५ ॥

इति वादिनि वेताले तद्विष्टे तिरोहिते ।

मृगाङ्गदत्तः सचिवैः प्राप्तकालमचिन्तयत् ॥ ६६ ॥

सयं ततो महामात्यो गत्वा विन्ध्यनिवासिनः ।

दूरं दुर्गपिशाचस्य मातङ्गापिपतेः पुरम् ॥ ६७ ॥

संगम्य मायाषट्पदा विधाय बलसग्रहम् ।

ततः किरातमानाप्य सुहृदं शक्तिरक्षितम् ॥ ६८ ॥

दशयोजनविस्तारकटकं बन्धुबन्धुरः ।

पूर्वं ययाचे दूतेन सुतामुञ्जयिनीपतिम् ॥ ६९ ॥

तं सामविमुखं ज्ञात्वा द्रुतं समरसमुत्सवम् ।

जेतुं राजसुतः सैन्यैः प्रतप्से सागरोपमैः ॥ ७० ॥

अवाप्स्यावन्तिविषयं विष्टभ्योजयिनीं ततः ।

मृगाङ्गदत्तः शुशुभे लङ्कामिव रघूद्वहः ॥ ७१ ॥

कोपात्कन्दर्पसेनेऽथ निर्गते युद्धदुर्मदे ।

ररास भूमिपालानां समरारम्भदुन्दुभिः ॥ ७२ ॥

करालकरवालोर्मिभीषणे रणसागरे ।

सावेगं शूरमकरा बाहिन्यां विविशुर्मियः ॥ ७३ ॥

ततो धीरशिरःपद्मैराकीर्णभृद्भुधरा ।

सरसीबाह्वक्त्रलो गजक्रीडानिपातिता ॥ ७४ ॥

स संप्रहारस्तुमुलो बभूव सुमदैः कृतः ।
 लीलामहोत्सवो मृत्योरच्छिन्नो दिनपञ्चकम् ॥ ७५ ॥
 ततः श्रुतधिरभ्येत्य गूढं वीक्ष्य रिपोः पुरीम् ।
 मृगाङ्कदत्तमवर्द्धन्नयोपायविचक्षणः ॥ ७६ ॥
 अस्मिन्प्रवीरसंहारे जयो युद्धे ससंशयः ।
 तस्माद्युक्तिमुपाश्रित्य यत्नः सिद्धौ विधीयताम् ॥ ७७ ॥
 मया प्रच्छन्नवेपेण विचितेयं रिपोः पुरी ।
 दृष्ट्वा च प्रमदोद्याने तां शशाङ्कवर्ती खयम् ।
 ह्रत्वा तामेव गच्छामस्तुरङ्गैः शीघ्रगामिभिः ॥ ७८ ॥
 मृगाङ्कदत्तः श्रुत्वेति तथेति प्राह सादरः ।
 धीमानेकः सहायोऽस्ति बहूनामुदयश्रिये ॥ ७९ ॥
 अत्रान्तरे सखीवाक्यात्स्मररूपं नृपात्मजम् ।
 श्रुत्वा तं राजतनया बभूव मदनातुरा ॥ ८० ॥
 सा मन्मथव्यथाक्रान्ता गत्वा गौरीवनं निजम् ।
 निशि चन्द्रोदये चक्रे रमणाभिमुखं मनः ॥ ८१ ॥
 स्वैरं मृगाङ्कदत्तोऽथ सचिवैः सह तां भुवम् ।
 समेत्यालोकयामास सोत्कण्ठस्तां मृगीदृशम् ॥ ८२ ॥
 वक्रौपम्येन शशिनः सौन्दर्येण मनोभुवः ।
 कान्त्या पुरसुधायाश्च सृजन्तीमिव जीवितम् ॥ ८३ ॥
 कटाक्षशैफलापातवशीकृतजगद्ययम् ।
 आनाय्यासितचापस्य कामिन्येव जयधियम् ॥ ८४ ॥
 बालां प्रवाललावण्यसोदरैरधरांशुभिः ।
 रागदीक्षाभिव नवां दिशन्तीमनिशं दिशाम् ॥ ८५ ॥
 तन्वीं स्तनस्तवकिनीमारक्तकरपल्लवाम् ।
 द्यामां यौवनदर्पेण वसन्तेनेव भूषिताम् ॥ ८६ ॥

विलोकितैः कृष्णसारैः समृद्धैरिव केतुकैः ।
 सलीलरत्नहारैर्वा पूजयन्तीं दिगन्तरम् ॥ ८७ ॥
 बहन्तीं त्रिवलीकूपे श्यामलां रोमवल्लरीम् ।
 निजवक्त्रशशाङ्कस्य लक्ष्मरेखामिव च्युताम् ॥ ८८ ॥
 रतिपर्यङ्गपेदेन स्मरसिंहासनेन च ।
 मदशैलनितम्बेन नितम्बेन विराजिताम् ॥ ८९ ॥
 तामथ स्मरसंतापात्पाशं बद्धुं समुद्यताम् ।
 जट्टश्या पार्यती प्राह पुत्रि मा साहसं कृयाः ॥ ९० ॥
 आसन्न एव ते मर्ता धन्यः प्राग्जन्मवल्लभः ।
 इति गौर्या कृताश्वासां राजपुत्रो जगाद ताम् ॥ ९१ ॥
 अपि धाले कुरन्नासि मदनोद्यानचन्द्रिके ।
 दृशा विकिर पीयूषं यातु चन्द्रो विलज्जताम् ॥ ९२ ॥
 श्रुत्वेति लैज्जिता तन्वी चरणेन लिलेख सा ।
 महीं साचीकृतापाङ्गी वीक्ष्यमाणा नृपात्मजम् ॥ ९३ ॥
 वशे तवैव मत्माणा वदन्तीमिव सुन्दरीम् ।
 तां जहार ततः सोऽध्वैः संकल्पैरिव शीघ्रगैः ॥ ९४ ॥
 मायात्रटुपुरं प्राप्य सुहृद्भिः सहितोऽथ सः ।
 पुलिन्दसुन्दरीवृन्दैर्दर्शनालोकितोऽविशत् ॥ ९५ ॥
 कन्दर्पसेनस्तेनाथ विज्ञाय तनयां हताम् ।
 निष्कारणरण्यायासं चारयामास मन्दधीः ॥ ९६ ॥
 ततः प्रतिनिवृत्तास्ते किञ्चातेन्द्रमुखा नृपाः ।
 मृगाश्च दत्तमासाथ ननन्दुर्जयशालिनः ॥ ९७ ॥
 ध्यायोऽध्याधिनायाय पित्रे यमपराक्रमम् ।
 स प्राहिणोत्कथयितुं निजवृत्तान्तमादरात् ॥ ९८ ॥
 यदैव मन्निवचसा तेन निर्वासितः पुरात् ।
 ततस्तदैव सोऽज्ञासीन्मिथ्यादूषितमेव तम् ॥ ९९ ॥

स निगृह्य महामात्यं त्यक्त्वा राज्यसुखश्रियम् ।
 नन्दिग्रामे स्थितिं चक्रे पुत्रसंदर्शनाशया ॥ १०० ॥
 सोऽथ कालेन विज्ञाय सूनोः सुहृदमागतम् ।
 पप्रच्छ हृष्टस्तद्वृत्तं सर्वं भीमपराक्रमम् ॥ १०१ ॥
 धीमानमरदत्तेन राज्ञा पृष्टो जगाद सः ।
 मृगाङ्गदत्तचरितं संसारे विपुलान्नृतम् ॥ १०२ ॥
 तदाकर्ण्य सहामात्यः स पुनः प्राप्य जीवितम् ।
 राजा द्रष्टुं ययौ पुत्रं गजवाजिरयाकुलः ॥ १०३ ॥
 मायाबटुपुरं प्राप्य संप्राप्तविजयं सुतम् ।
 शशाङ्कवत्या सहितं दृष्ट्वाश्चर्यमयोऽभवत् ॥ १०४ ॥
 मृगाङ्गदत्तो जनकं प्रणम्य सह राजभिः ।
 स्थित्वा तत्रोत्सवव्यग्रः कंचित्कालं प्रियासखः ॥ १०५ ॥
 अयोध्यां प्रययौ हृष्टो विजयी सचिवैः सह ।
 पुरा कपीन्द्रसहितः सीतां प्राप्येव राघवः ॥ १०६ ॥
 राजधानीं प्रविश्याथ पूजयन्निखिलानृपान् ।
 प्रणम्य मान्यान्विदुषो भेजे स विपुलोत्सवम् ॥ १०७ ॥
 तैरेकादशभिर्मित्रैः श्रुतधिप्रमुखैर्बभौ ।
 दिवाकर इव श्रीमान्द्वादशात्मा नृपात्मजः ॥ १०८ ॥
 ततः कन्दर्पसेनेन विषष्टस्तनयः स्वयम् ।
 मुखेणाम्ब्याययौ कर्तुं स्वसुः परिणयोत्सवम् ॥ १०९ ॥
 सुवर्णरत्नयुक्तैर्गजेन्द्ररथवाजिभिः ।
 स राजपुत्रो विदधे विपुलारम्ममुत्सवम् ॥ ११० ॥
 निर्वर्जितविवाहेऽस्य गौर्येव शशिशंखरः ।
 शशाङ्कवत्या विहितो मृगाङ्गः पूर्णमन्त्रलः ॥ १११ ॥
 यतो महोत्सवोत्साहसुमगां सोऽमञ्जस्तिथिम् ।
 यत्तमानवसंभोगसंभावितमनोगवः ॥ ११२ ॥

तमामध्य प्रयातेषु पूजितेषु नृपेष्वथ ।

श्रीमानमरदत्तोऽपि संक्रामय्यात्मजे श्रियम् ॥ ११३ ॥

देव्या सह ययौ शंभोः प्रियां वाराणसीं पुरीम् ।

वैराग्यलक्ष्मीपर्यन्ते महतामेव जायते ॥ ११४ ॥

मृगाङ्गदत्तो निखिलां धीरो जित्वा धसुंधराम् ।

प्रियादिलासरसिकः सार्वभौमोऽभवन्नृपः ॥ ११५ ॥

सा शशाङ्कवती श्यामा स्फुरत्तरलतारका ।

तस्य राजचकोरस्य बभूवानन्दनिर्भरा ॥ ११६ ॥

एवं मृगाङ्गदत्तेन प्राप्ता त्रैलोक्यसुन्दरी ।

त्यमपि प्राप्स्यसि क्षिप्रं रम्यां भदनमञ्जुकाम् ॥ ११७ ॥

इति निशम्य पिशङ्गजटोदितां विपुलकौतुकहर्षमयीं कथाम् ।

प्रियतमापरिरम्भमनोरधे हृदि ययन्ध धृतिं नरवाहनः ॥ ११८ ॥

इति शशाङ्कवतीविवाहः ॥ ३१ ॥

इति श्रीक्षेत्रेन्द्रविरचितायां बृहत्कथायां शशाङ्कवतीकथनो नाम नवमः सर्गाक्षः ।

विपमशीललम्बकः ।

प्रथमो गुरुः ।

गौर्या धृतजिता नीता कर्णे केतकिप्रताम् ।

शामयी बः शशिकला भूयादानन्दसंपदे ॥ १ ॥

सतः श्रिया वियोगाभिसंतापिततनुर्वने ।

आम्यन्कण्वमुनेः प्रायादाश्रमं नरवाहनः ॥ २ ॥

मनःप्रसादजनने प्रशान्ताशेषविष्टवे ।

विवेक इव संतोषफले तस्मिन्नापोवने ॥ ३ ॥

प्रणम्य तेजसां राशिं सहस्रांशुभिवापरम् ।

कण्ठं दिव्यदृष्ट्या तेन तस्य चोपासितः क्षणम् ॥ ४ ॥

तं मुनीन्द्रस्ततः प्राह दुहिणस्पर्धया पुनः ।

कुर्वन्निर्मानं हंसालीमिव दन्तांशुसंनयेः ॥ ५ ॥

राजसूनु अय धृतिं वल्लभां तामवाप्स्यसि ।

संयोगान्ता भवन्त्येव वियोगाः पुण्यकर्मणाम् ॥ ६ ॥

११५-५०-५०

विधातुरानुकूल्येन प्राप्यन्ते हारिता अपि ।
 वने घनमुह्यन्धुदयिताराजसंपदः ॥ ७ ॥
 पुरा कैलासशिखरासीनः शीतांशुशेखरः ।
 समम्येत्य जितैर्देवैः शतक्रतुपुरोगमैः ॥ ८ ॥
 पुरारिनिहितैर्देवदृष्टैर्दितिजदस्युभिः ।
 अवतीर्णैर्महाम्लेच्छैः स्वस्था देवास्तृणीकृताः ॥ ९ ॥
 प्रमाणमत्र मगवानिति देवगिरा हरः ।
 भूमारशान्त्यै प्रथमं माल्यवन्तं समादिशत् ॥ १० ॥
 सोऽथ त्रिनयनादिष्टः पार्वतीवचसा क्षितौ ।
 उज्जयिन्या नरपतेः श्रीमतः प्राप पुत्रताम् ॥ ११ ॥
 राज्ञो महेन्द्रादित्यस्य स्वप्ने शर्वेण सूचितः ।
 सोऽभवद्विक्रमादित्यस्तनयो यशसां निधिः ॥ १२ ॥
 नाम्ना विषमशीलोऽसौ द्वितीयेनापि विश्रुतः ।
 सर्वशास्त्रास्त्रविद्यानां लेभे भाजनतां विभुः ॥ १३ ॥
 तस्मै महीपतिर्दत्त्वा श्रियं भूपतिविश्रुताम् ।
 ययौ वाराणसीं घीमान्कृतकृत्यः स्त्रिया सह ॥ १४ ॥
 राजा विषमशीलोऽथ जनके प्रथमं श्रिते ।
 शशास वसुधां धन्यो म्लेच्छोच्छादनदीक्षितः ॥ १५ ॥
 कुलक्रमागतस्तस्य वभूव विपुलाश्रयः ।
 रुद्रायुधः प्रतीहारः सचिवश्च महामतिः ॥ १६ ॥
 स कदाचिद्गजपटामौलिलालितशासनः ।
 समानीतः समम्येत्य विजस्रो मग्निष्ठा पुरः ॥ १७ ॥
 योऽसावनम्रदेवास्त्र्यो विमृष्टो दक्षिणापथम् ।
 देवेन सोऽयमायातः स्वामिनं द्रष्टुमिच्छति ॥ १८ ॥
 इत्युक्त्वा नृपतेराज्ञां प्राप्य रूपमवेशयत् ।
 स द्वितीयं ततो दूतं दर्शयिस्कारिलोचनम् ॥ १९ ॥

स प्रणम्य महीपालं हेमसिंहासनस्थितम् ।

सुमेरुबूढामणितां प्रयातमिव भास्वरम् ॥ २० ॥

विजिज्ञपदीक्षमाणः कौतुकाद्वसुधापिषम् ।

क्लिमयं वक्ष्यतीत्यन्तरुत्कण्ठाद्भुरिताशयः ॥ २१ ॥

देव दक्षिणदिग्भूपैर्द्युम्नच्छासनमालिका ।

किरीटकोटौ विहिंसा रुक्मीरक्षामहौपधिः ॥ २२ ॥

२ क्रमेणाम्बुचिनुचीर्य यातोऽहं सिंहलेखरम् ।

वीरसेनं भवद्भक्तिशीलं कुलगृहं श्रियः ॥ २३ ॥

स मां त्वच्छासनं मूर्ध्नि निषापोत्फुल्ललोचनः ।

प्राहासि मम सर्वस्वं कन्यारत्नमनुत्तमम् ॥ २४ ॥

विक्रमादित्यदेवश्च रत्नानां भाजनं विभुः ।

समर्पितेयं वचसा मया तस्मै सुमध्यमा ॥ २५ ॥

इत्युक्त्वा स सुतां राजा हरिणाक्षीमदर्शयत् ।

कान्तां विनयवत्याख्यानुपाख्यानं रतिश्रियः ॥ २६ ॥

कन्या नवमुधाभूतलावण्यवमुधां ततः ।

तामहं त्वत्समुचितां दृष्ट्वा जातोऽतिविलितः ॥ २७ ॥

तद्विवाहाहितोयोगः सिंहलाषिपतिस्ततः ।

भवते प्राहिणोद्भूतं मयि न्यस्तं महामतिः ॥ २८ ॥

द्यूतेन सहितः क्षिप्रमहमारुह्य वारिषौ ।

बाहनं तीरानिकटे प्रागपश्यं द्विषागतम् ॥ २९ ॥

दोर्म्या वैचात्समुचीर्य सागरं च तटस्थितः ।

अपश्यं रत्ननां देव धनुर्षीं निघञ्जन्मनः ॥ ३० ॥

हेमरत्नविचित्राहः साररुस्तत्पुरो मया ।

दृष्टश्चिरादविज्ञातो नारीचहरिणः पुनः ॥ ३१ ॥

ताम्यां कृतकरालम्बो नीतः कामप्यहं भुवम् ।

द्यूतेन सहितत्वेन दिव्योद्याने विभूषिता ॥ ३२ ॥

तत्र दिव्यसरस्तीरे हरार्चनरता मया ।
 दृष्टा चरवधूः कामा कन्या तरुणमञ्जरी ॥ ३३ ॥
 सागरासलिलोद्भूतं पूजयित्वा महेश्वरम् ।
 दासीसहस्रानुगता सुन्दरी गन्तुमुद्ययौ ॥ ३४ ॥
 तस्यां गतायां तद्दास्यः केयमित्यतिकौतुकात् ।
 मया यौवनदर्पान्धाः पृष्टा नो किञ्चिदूचिरे ॥ ३५ ॥
 अभीष्टदेवताद्रोहे मुहुस्ताः शापिता अपि ।
 अवधीर्येव सावज्ञाद्विशालाः प्रययुः शनैः ॥ ३६ ॥
 ततः श्रीविक्रमादित्यपादाब्जादथ शापिताः ।
 झटित्येषासकम्पास्ता निवृत्ता गतिविभ्रमात् ॥ ३७ ॥
 अथ प्रह्लाः समभ्येत्य कीर्तितं त्वां प्रणम्य सा ।
 दृष्टा बराङ्गना प्राह मां स्तनाग्रकृताञ्जलिः ॥ ३८ ॥
 सत्यं श्रीविक्रमादित्यो जयति त्रिजगज्जयी ।
 यत्प्रसादादहं मुक्ता तस्मादपि महाभयात् ॥ ३९ ॥
 श्रुत्वेत्यहं तामपृच्छं कौतुकाविष्टमानसः ।
 कथं मत्स्वामिना भद्रे रक्षितासीति सादरम् ॥ ४० ॥
 सावदच्छृणु सर्वांशा योषा त्रिदशशाखिनाम् ।
 यथा विपमशीलेन रक्षितासीति सादरम् ॥ ४१ ॥
 अस्ति वैश्रवणभ्राता माणिभद्र इति श्रुतः ।
 तस्याहं वल्लभा भार्या यक्षी मदनमञ्जरी ॥ ४२ ॥
 तेनाहं सह कान्तेन कदाचित्केलिलालिता ।
 रममाणा महीं भ्रान्त्या विविधोद्यानमालिनी ॥ ४३ ॥
 अयोज्ययिन्त्र्यां पुःपुः(?) किलासोपवने वने ।
 मियेणालिङ्गिता गाढं मुसाहं मदविह्वला ॥ ४४ ॥
 अदूरवर्तिना स्वीरं तत्सन्धाननिवासिना ।
 सण्डकापाशिकाभ्येन दृष्टा कङ्कणमालिता ॥ ४५ ॥

मां दृष्ट्वा मघसिद्धोऽपि स निश्चेष्ट इवामवत् ।
 वृद्धोऽप्यत्यन्तवृद्धेन मन्मथेन विनिर्जितः ॥ ४६ ॥
 तथा विषविपाकेषु विषयेष्वय चेतसः ।
 अपत्येष्वानुरस्येव नाभिलाषः प्रशाम्यति ॥ ४७ ॥
 ततो मयि प्रयातायां भर्त्रा सह निजां पुरीम् ।
 खण्डकापालिकश्चके मदर्थं मघसाधनम् ॥ ४८ ॥
 तस्याप्रतिहतैर्मघैरहं सत्रासकम्पिता ।
 कुप्यमाणा भुजङ्गीव भर्तारं शरणं गता ॥ ४९ ॥
 सोऽप्यशक्तः परित्रातुं मां त्रिपुण्यमुखाम्बुजाम् ।
 न्यवेदयत्कुबेराय कापालिकविचेष्टितम् ॥ ५० ॥
 ततोऽब्रवीद्वैश्वणो नाहं तद्धारणे क्षमः ।
 किमसाध्यं स्फुरद्भानां मघाणां वीर्यशालिनाम् ॥ ५१ ॥
 धनदेनापि संत्यक्तो मद्भर्ता शरणं ययौ ।
 जहाणं सोऽपि तं ग्राह दुर्जयोऽयं महाब्रवीत् ॥ ५२ ॥
 किं तु धीविक्रमादित्यः समर्थस्तद्विनाशने ।
 मयकाले भवद्भार्या तमाकन्दतु भूमिपम् ॥ ५३ ॥
 इति प्रजापतिवचः श्रुत्वा प्राप्ते स्वमन्दिरम् ।
 माणिमद्रे ततस्तेन कृष्टाहं मतिना निशि ॥ ५४ ॥
 मघशक्तिसमाहृता श्मशानं प्राप्य मीपणम् ।
 खण्डकापालिकं घोरमपश्यं कृतमण्डलम् ॥ ५५ ॥
 भ्रेतचक्रमहाकुण्डे क्षिपन्तं सर्पपाहुतीः ।
 तं दृष्ट्वा ककुभः सर्वा ज्वालालोला व्यलोकयन् ॥ ५६ ॥
 शङ्करी जालवदेव तत्राहं तद्गयाकुला ।
 अमवं नान्यवत्यक्ता कम्पातद्गतरङ्गिता ॥ ५७ ॥
 देव धीविक्रमादित्य राजन्विषमशील माम् ।
 शायस्वाशरणां बालमिति भारं ततोऽभ्यषाम् ॥ ५८ ॥

अस्मिन्नवसरे सोऽपि वीरचर्याविनिर्गतः ।
 विलोलकुण्डलः खड्गी राजा राजीवलोचनः ॥ ५९ ॥
 उत्साह इव साकारः प्रत्यक्ष इव विक्रमः ।
 गर्भारमधुरोदारदृशा निर्वापयन्निव ॥ ६० ॥
 मां समाश्रयस्व दलयंस्तमो दन्तांशुसंचयैः ।
 आदिदेशाशु पुरतो वेतालं तद्विनिग्रहे ॥ ६१ ॥
 स तेनाग्निशिखारूपेण वेतालेनाशु घट्टितः ।
 खण्डकापालिकः प्राणांस्तत्याज व्याजबाधकः ॥ ६२ ॥
 राजधानीं गते राज्ञि मृतवेतालमण्डली ।
 खण्डकापालिकं मोक्तुमाययौ हठनिर्भया ॥ ६३ ॥
 ततो यमशिखो नाम वेतालो नेतुमुद्ययौ ।
 तत्सर्वं तत्पकोपाच्च तारमग्निशिखोऽवदत् ॥ ६४ ॥
 मा मा त्वमेक एवैनं नय दुर्नयभाजनम् ।
 विक्रमादित्यपादाब्जैः शापितोऽसि मया सखे ॥ ६५ ॥
 श्रुत्वेति स्वगितः सोऽथ प्रभावं पृथिवीपतेः ।
 पप्रच्छाग्निशिखं तस्य कौतुकाकुलिताश्रयः ॥ ६६ ॥
 सोऽवदद्वाकिनीकाख्यो निशीथे घृतकृत्पुत्रा ।
 विक्रीणानो महामांसं श्मशानमिममागतः ॥ ६७ ॥
 तन्मद्यमर्थानसो(?)थ ददौ निष्कम्पमानसः ।
 रूपं बलं च सप्ताहं गृहीत्वा मम संविदा ॥ ६८ ॥
 तत्कारणं मया पृष्टः सोऽवदत्किन्तवाग्रणीः ।
 अस्म्यहं विजितो धूर्तधूर्तसाराज्ञो दिगम्बरः ॥ ६९ ॥
 देहीति चादिनां मध्ये वेपो घृतकृतामहम् ।
 शिलीमूतः म्वितो मूको योगीवानिमिपेक्षणः ॥ ७० ॥
 उदृष्टितद्मधुकेनसैलैस्तामिः समाहृतः ।
 स्थपेनाम्बुना सिक्तैर्मित्रैः पूर्वमेवितैः ॥ ७१ ॥

बहूपवासनिःस्पन्दः श्लिष्टः कूपे बलादहम् ।
 नरकायासदुःखानामिव संजातमन्दिरे ॥ ७२ ॥
 तत्र दृष्टौ मया धोरविग्रहौ ब्रह्मराक्षसौ ।
 तावच्चतुर्गामालोक्य मद्वृत्तान्तं निश्चयम् च ॥ ७३ ॥
 आवाभ्यां वणिजः पूर्वं स्वमग्नेन प्रिये मुते ।
 तुल्यं गृहीते निर्मुग्धमग्नौपविवलक्रमे ॥ ७४ ॥
 ततो विषमशीलस्य दृष्टौ प्रयिवीपतेः ।
 पतिताबन्धकूपेऽस्मिन्नावां संत्यक्तकन्यकौ ॥ ७५ ॥
 संवत्सरोऽबधितेन निर्दिष्टो नौ गतश्च सः ।
 सप्ताहशेषस्तस्मात्त्वमसद्भोजनमानय ।
 दत्ते सप्ताहमावाभ्यां भोजने मोक्ष्यसे मयात् ॥ ७६ ॥
 श्रुत्वेति प्रतिपन्नं मां क्षुद्रिनाशो मुदान्वितम् ।
 तस्मादुज्ज्वलः कूपात्ततोऽहं त्वामुपसितः ॥ ७७ ॥
 त्वद्रूपत्वद्वलेनैव ताभ्यां भोजनमीप्सितम् ।
 दत्त्वाभ्येत्य प्रदास्यामि बलं रूपं च ते निजम् ॥ ७८ ॥
 इत्युक्त्वा भद्रलाकारो गत्वा राक्षसयोर्ददौ ।
 स्वयूष्यानेव स्निग्धान्सप्ताहं तूष्णंभोजनम् ॥ ७९ ॥
 तद्वत्ता स समभ्येत्य प्रादाद्भयं बलं च मे ।
 पुनश्च याचितस्ताभ्यां भोजनं वर्जनकमैः ।
 प्रत्ययं मां फौतुकिनं नीत्वा कूपे ततोऽक्षिपत् ॥ ८० ॥
 राक्षसाभ्यामहं तत्र गृहीतो मुजपञ्जरे ।
 अकारं मुचिरं युद्धं कम्पिताखिलमूललम् ॥ ८१ ॥
 ततोऽहं तौ ददौ युद्धशमाद्विद्वान्तविग्रहः ।
 कथयित्वा निजं वृत्तं स्मितो लज्जानतः क्षणम् ॥ ८२ ॥
 अथानवीत्सितमुल्लसत्त्रैको ब्रह्मराक्षसः ।
 अहो नु घृतकारेण भावया वञ्चिता वयम् ॥ ८३ ॥

एवंविधा भवन्त्येव कित्वाः साहसप्रताः ।
 टेण्टाकरालवृत्तान्तमत्रैव कथयाम्यहम् ॥ ८४ ॥
 अमृष्टेण्टाकरालाख्यो घृतकृद्वचनावधिः ।
 सदा महाकालगृहे रजन्यां स खयं किल ॥ ८५ ॥
 तत्र दीपघृताभ्यक्तैरूपैः कृतभोजनः ।
 महाकालानुगान्प्राह प्रतिमादीपसंस्थितान् ॥ ८६ ॥
 अस्यां दीर्घत्रियामायां घृतक्रीडा स्वमायया ।
 इत्युक्त्वा पञ्च चिक्षेप पुनश्चित्रा वराटिकाः ॥ ८७ ॥
 ताभिः स्वकल्पनावगमिर्जितो यक्ष इति क्षणात् ।
 प्राह हेमसहस्रं च निर्वन्धात्तमयाचत ॥ ८८ ॥
 निरुत्तरं समालोक्य कूपे त्वां प्रक्षिपाम्यहम् ।
 इत्युक्त्वा भयसंत्रस्तः सुवर्णं तमदापयत् ॥ ८९ ॥
 ततः क्रमेण तेनैव त्रासयन्सततं गिरः ।
 प्रतिमागणवेतालमजयत्काञ्चनप्रदान् ॥ ९० ॥
 ततः कदाचिद्भगवान्महाकालस्तयब्रवीत् ।
 पुत्र तुष्टोऽसि ते वीर व्रतेनानेन धीमताम् ॥ ९१ ॥
 गच्छैतत्सस्त्रीर्धमत्र त्रिदशयोपितः ।
 क्रीडन्ति शत्रुमायातास्ताभ्यः कन्यामवामुहि ॥ ९२ ॥
 इति शर्वाङ्गया गत्वा दृष्टास्तास्त्रिदशरुणाः ।
 जहार तासां वासांसि तास्तस्यै तां मुतां ददुः ॥ ९३ ॥
 कन्यां कलावतीं नाम प्राप्य तां स्वर्गसुन्दरीम् ।
 सनन्दं यत्करोत्यस्यः सः श्रेयसात्परोर्धितः ॥ ९४ ॥
 पुरा पुरंदरास्थाने सा चक्रे मानुषस्थितिम् ।
 तेनामवच्छक्रशपात्सुन्दरी मर्त्यसङ्गिनी ॥ ९५ ॥
 कदाचिदय सा स्वर्गनृचे कौतुकिनं प्रियम् ।
 तं निनाय सनिर्वन्धं कृत्वा कर्णोत्पलायिताम् ॥ ९६ ॥

स तत्र रम्भां नृत्यन्तीं ददर्शयतलोर्चनाम् ।
 गन्धर्वगीतानुगतां कलातालपोजिताम् ॥ ९५ ॥
 ततो हास्याय नृत्यन्तं छागं मुरपतेः पुरः ।
 अपश्यद्विपुलाकारमीश्वरा हि स्मितप्रियाः ॥ ९८ ॥
 गन्धर्वं मुनिशापेन तं दृष्ट्वा छागविग्रहम् ।
 अयं स मर्त्यश्चरतीत्यमवतस्य चेतसि ॥ ९९ ॥
 बहुकौतुकमालोक्य स्वर्गाद्भोगभुवं गतम् ।
 टेण्टाकरालो दयितां शक्तो मेने ततोऽधिकम् ॥ १०० ॥
 ततस्तमेव रोमन्धदलकूर्चमजं पुनः ।
 आपणामि मुखासीनमुज्जयिन्यां ददर्श सः ॥ १०१ ॥
 टेण्टाकरालस्तं दृष्ट्वा प्राह दर्शय मां सखे ।
 पुनर्नृत्यं मुरपुरे दृष्टत्वं हास्यरुन्मया ॥ १०२ ॥
 इत्युक्त्वा सायलेयं तं प्रत्याख्यानरुणा ततः ।
 जपान लघुडेनाजं येन सोऽभूत्तद्योणितः ॥ १०३ ॥
 अथ शक्रपुरं गत्वा सुरेन्द्राय न्यवेदयत् ।
 घूतकारिनिकारं तं छागलः कोपकम्पितः ॥ १०४ ॥
 शापान्तमुक्त्वा मुक्तेऽथ छागे गन्धर्वतां गते ।
 इन्द्रः कलावतीं प्राह धिक्त्वा दुर्नयकारिणीम् ॥ १०५ ॥
 आनीतो दुर्विनीतोऽसौ त्रिदिवं मानुषस्त्वया ।
 तस्मादनन्त्यकं कालं शोषा दारुणयी भव ॥ १०६ ॥
 नरसिंहामिषानेन राज्ञा नागपुरे कृते ।
 मुरालये तत्र मितौ पुरिका स्वं मविष्यसि ॥ १०७ ॥
 तस्मिन्कालेन निःशेषं गते देवगृहे क्षयम् ।
 शापस्यान्तं समासाद्य पुनः स्वप्नमेप्स्यसि ॥ १०८ ॥
 इति शक्ता नतमुत्ती दुःखिता शतमन्युना ।
 टेण्टाकरालमभ्येत्य सा निजं शापमभ्यधात् ॥ १०९ ॥

शपवृत्तान्तमावेद्य तस्यां वृत्तं स्वकर्मणा ।
 श्रितां तां देवनिलयस्तम्भान्ते पुत्रिकाकृतिम् ॥ ११० ॥
 छागदुःखानलाक्रान्तं स निन्दन्निजसाहसम् ।
 आदाय रत्ननिचयं ययौ नागपुरं जवात् ॥ १११ ॥
 कलशान्नलसंपूर्णान्मृमिगर्ते निधाय सः ।
 तस्यौ दम्भव्रतैस्तत्र प्रसिद्धिं परमां गतः ॥ ११२ ॥
 अशेषप्राणिभाषाञ्च इति राज्ञा स पूजितः ।
 अवर्षयद्रत्नपूर्णं तस्यै कलशपञ्चकम् ॥ ११३ ॥
 तत्प्रत्ययात्स भूपालो मेने सर्वज्ञमेव तम् ।
 महेश्वरमिवाभ्येत्य सततं प्रणनाम च ॥ ११४ ॥
 कदाचिद्भूमुजा सार्धं देवायतनमेत्य सः ।
 दर्शनात्साधुनयनां दृष्ट्वा तां दारुपुत्रिकाम् ॥ ११५ ॥
 उवाच धूर्तो भूपालं शान्तं शान्तममङ्गलम् ।
 इमं सुरगृहं तूर्णं कणशः क्रियतामिति ॥ ११६ ॥
 तदाकर्ण्य महीपालः सामात्यस्तं ससंभ्रमः ।
 पप्रच्छ भगवन्ब्रूहि किमनिष्टं त्वयेक्षितम् ॥ ११७ ॥
 सोऽब्रवीद्देव नो वाच्यमेतच्छृणु तथापि ते ।
 आयुषा क्षितिरासन्ना क्षितेऽसिंसे सुरालये ॥ ११८ ॥
 समुन्मूल्य क्षणेनैतद्विपुलं सुरमन्दिरम् ।
 अपरं क्रियतां राजन्नित्युक्त्वा विरराम सः ॥ ११९ ॥
 ततस्तद्वचनात्तूर्णं तमुत्पाद्य सुरालयम् ।
 अन्यं महीपतिश्चक्रे हेमरत्नाधिकघुतिम् ॥ १२० ॥
 अचिराच्छापमुक्ताय स्वर्गं प्राप्य कलावती ।
 विमिताय महेन्द्राय स्ववृत्तान्तं न्यवेदयत् ॥ १२१ ॥
 पिया टेण्टाकराटे च शपाचामाशु मोचिताम् ।
 ह्रत्वा नृपसुमानाप्य शक्रसम्मौ ददौ श्रियम् ॥ १२२ ॥

टेण्टाकरालचरितं प्रशंसामुत्तराननः ।

बृहस्पतिलतः प्राह विहस्य मरुतां पतिम् ॥ १२३ ॥

एवंविधा भवन्त्येव घूतकाराः पदं धियः ।

कुट्टिनीकपटो नाम बभूव घूतकृत्सुरा ॥ १२४ ॥

समस्तपापकोशस्य नरकक्षितिरक्षया ।

मत्तासोमस्य गणिका कालेन यमसन्निधि ॥ १२५ ॥

सुरार्चनादिनं चैकं विदधाति च शक्रताम् ।

नेजे पृष्टोऽयं तां पूर्वं दिनमेकं सुरेन्द्रताम् ॥ १२६ ॥

तत्र बुद्ध्या विनिश्चित्य दाता सर्वार्चनश्रुतः ।

ज्ञात्वा सर्वेषु तीर्थेषु चिरनासां सुरेश्वरः ॥ १२७ ॥

इति घूर्ता भवन्त्येव घूतकारमहाश्रयाः ।

एतद्गुरोर्वचः श्रुत्वा विलितोऽमृत्युरन्दरः ॥ १२८ ॥

इति टेण्टाकरालख्यायिका ॥ १ ॥

घूतकारकथामेतामाकर्ण्य ब्रह्मराक्षसात् ।

प्रयाते डाकिनीकेन चञ्चितः स्वर्णभाभ्रनम् ॥ १२९ ॥

कदाचिदयं कालेन क्षुत्क्षामेन मया द्विजः ।

गृहीतो निधिं बुक्रोश विक्रमादित्यमीधरम् ॥ १३० ॥

तच्छ्रुत्वा स नृपोऽभ्येत्य स्वप्नेनाशु वधानं तम् ।

तत्क्षणं शरणायातं ररक्ष च कृपानिधिः ।

ततः प्रमृतिं दासोऽहं तस्य भूमिपतेर्विमोः ॥ १३१ ॥

इत्यग्निशिखपृष्ठान्तं श्रुत्वा यमश्चित्तः स्वयात् ।

मनसा विक्रमादित्यं प्रणनाम कृताञ्जलिः ॥ १३२ ॥

इति स्रण्डकापालिकवचः ॥ २ ॥

इत्यहं तेन भूषालमौलिलीलाङ्घ्रिणा स्वयम् ।

रक्षिता बल्लभं प्राप्य परां निर्दृष्टिमागता ॥ १३३ ॥

।हं कीर्तिपत्रकेव राज्ञन्तस्य यशोनिधेः ।

त्रैलोक्यचारिणी नित्यमस्मिन्मण्डपे सिता ॥ १३४ ॥

सिंहलेन्द्रेण तनयां वितीर्णां शौर्यशालिनीम् ।
 ज्ञात्वा विषमशीलाय सर्वे म्लेच्छशकामिघाः ॥ १३५ ॥
 हर्तुमभ्युद्यताः पापा विधेयं तत्र यत्क्षमम् ।
 इत्यस्मिन्मक्तिचिन्तैषा स च तानिहनिष्यति ॥ १३६ ॥
 यक्षाङ्गनायामुक्त्वेति विगतायामदृश्यताम् ।
 तद्विव्यकान्तायुगलं स च हेमकुरङ्गकः ॥ १३७ ॥
 तद्वृत्तान्तं मया पृष्टा सा यक्षी प्राह मां पुनः ।
 पुरा घण्टनिघण्टाख्यौ दानवेन्द्रौ बभूवतुः ॥ १३८ ॥
 त्रैलोक्यकण्टकौ मत्वा दुर्जयौ तौ प्रजापतिः ।
 अलज्जत्कान्तिसर्वस्वमिमे त्रिदशकन्यके ॥ १३९ ॥
 एतद्दर्शनसंजातगाढमन्मयपावकौ ।
 ममैवेति ममैवेति भेदादिति गतौ क्षयम् ॥ १४० ॥
 त्यक्तं वैश्रवणायैते कान्ते कमलयोनिना ।
 उचिताय प्रदातव्ये विधायेत्यथ संविदम् ॥ १४१ ॥
 माणिमद्रगृहे न्यस्ते कुबेरेण ततः स्वयम् ।
 पालयाम्यहमेवैते गुणैः को न वशीकृतः ॥ १४२ ॥
 एतयोर्विक्रमादित्यो देव एवोचितः पतिः ।
 अयं च हेमहरिणो योग्यस्तस्यैव हर्षदः ॥ १४३ ॥
 नक्षत्रं मृगशीर्षं तु कर्पन्तं केलिकौतुकात् ।
 दृष्ट्वा जयन्तं तनयं शक्रश्चिन्तापरोऽभवत् ॥ १४४ ॥
 स ध्यात्वा तद्विनोदाय काञ्चनं विश्वकर्मणा ।
 अकारयन्मणिमृगं पीयूषावाप्तजीवितम् ॥ १४५ ॥
 सोऽयं पुरा दशास्येन विजित्य त्रिदशालयम् ।
 सार्धमिन्द्रजिता नीतो लङ्कां रत्नाङ्गतोरणाम् ॥ १४६ ॥
 कालेन निहते तस्मिन्रणे रामेण रावणे ।
 दण्डो विभीषणेनायं मद्यमुत्सवसंगमे ॥ १४७ ॥

१ तमिमं रत्नसारङ्गं कन्ये चेमे सुलोचने ।
विक्रमादित्यदेवाय नयेत्युक्तैव सा ददौ ॥ १४८ ॥
ततस्तामहमामघ्न्य प्राप्तो वैदर्भभूपतिम् ।
त्वच्छासनवतं वीरं सर्वं चासौ न्यवेदयम् ॥ १४९ ॥
इति यक्षीसमागमकथा ॥ ३ ॥

अत्रान्तरे संहतास्ते पापा म्लेच्छशकाधिपाः ।
ज्ञात्वा तदर्थमायान्तीं सिंहलाधिपतेः सुताम् ।
पथि तस्युः सुसंरब्धाः सेनाच्छादितदिवतटाः ॥ १५० ॥
ततो विदर्भराजेन तेषां विक्रमशक्तिना ।
यम्बु सुचिरं युद्धं विस्मयाद्वीक्षितं सूरैः ॥ १५१ ॥
ततः सा यक्षतनया सह गुह्यकसेनया ।
सेनां विदर्भाधिपतेरविशद्विजयश्रिये ॥ १५२ ॥
अथ तेषु निरस्तेषु रणे भग्नेषु यजुषु ।
आगताः पृथिवीपालाः सर्वे तद्वशवर्तिनः ॥ १५३ ॥
सिंहलेश्वरपुत्री च ते च त्रिदशकन्यके ।
आयातास्त्वद्वियाहाय सहिता सर्वराजभिः ॥ १५४ ॥
इतः स कटकावर्तो वर्तते योजनत्रये ।
प्रत्युद्गमनसत्कारस्तत्र देव विधीयताम् ॥ १५५ ॥
धृत्येत्यनघ्रदेवेन कथितं पृथिवीपतिः ।
आदिदेश महोत्साहो यात्रासंरम्भदुन्दुभिः ॥ १५६ ॥
ततो गर्जद्रजानीकसंख्यादितदिगन्तरान् ।
नातिदूरं निजपुराद्वत्पापश्यन्नेश्वरान् ॥ १५७ ॥
नामानि देशभूपालैः सूचितैर्बन्दिभिः पुरा ।
प्रणम्यमानः सुमुखीं वरयित्रीं ददर्श सः ॥ १५८ ॥
तां सिंहलेश्वरसुतां वीक्ष्य सारङ्गलोचनाम् ।
विमलवर्णं सरं मेने रतिसौभाग्यगर्वितम् ॥ १५९ ॥

परिणीयेन्दुचदनां ततस्तां पृथिवीपतिः ।
 हेममौक्तिकरत्नानां कूटानप्यचलोपमान् ॥ १६० ॥
 दिव्येनोद्वाहविधिना प्रयाते दिव्यकन्यके ।
 कुलाधिदेवते कान्तं सरसौमाग्ययोरिव ॥ १६१ ॥
 तं दिव्यहरिणं हारिरत्नकान्तिविचित्रितम् ।
 लब्ध्वा विवेश स्वपुरं सानुगो वल्लभासखः ॥ १६२ ॥
 अतः संमोगसुमगः.....तां यदृच्छया ।
 केनापि द्विजपुत्रेण ददर्शलेख्यपुत्रिकाम् ॥ १६३ ॥
 तां दृष्ट्वा चित्रफलके त्रैलोक्योन्मादनौषधिम् ।
 स्वप्ने तामेव चापश्यत्स्वेत्यङ्क (?) इव लम्बिनीम् ॥ १६४ ॥
 नमस्कृपणकां ज्ञात्वा तां चित्रलिखितां प्रियाम् ।
 राज्ञो मलयासिंहस्य पुत्रीं मलयवासिनः ॥ १६५ ॥
 कान्तां मलयवत्यास्यां विलासतिलकं रतेः ।
 स्वयं गत्वा सहामात्यो लेभे हरिणलोचनाम् ॥ १६६ ॥
 इति कन्याचतुष्टयप्राप्तिः ॥ ४ ॥
 ततः कान्तां समादाय प्रत्यायाते निजां पुरीम् ।
 राज्ञि श्रीविक्रमादित्ये बभूव जगदुत्सवः ॥ १६७ ॥
 देवी कलिङ्गसेनाय तस्याग्रमहिषी रुषा ।
 ईर्ष्याकलुषिता चक्रे गणानां दयितागसाम् ॥ १६८ ॥
 सा प्राह देवसेनाख्यं पत्युर्विभ्रमभाजनम् ।
 वीरं कार्पटिकं आतः स्वामी ते बहुवल्लभः ॥ १६९ ॥
 दृष्ट्वा मत्सदृशीं पूर्वमुत्कीर्णां सालमञ्जिकाम् ।
 कलिङ्गराजं निर्जित्य जितकासी जहार माम् ॥ १७० ॥
 आघायां गृपतिसुताः कान्तो नवनवो युवा ।
 सेवते यत सौभाग्यं सन्तः कस्य वशे प्रियः ॥ १७१ ॥
 इति देवीवचः श्रुत्वा प्राह कार्पटिकमन्त्रिणा ।
 देवि स्वयं समायाति देवं दिव्याग्रनाजनः ॥ १७२ ॥

उच्चैःश्रवःकुले जातं पुरा राजा तुरङ्गयम् ।
 ऊह्य श्रीत्रिक्रमादित्यो मृगयारसिको ययौ ॥ १७३ ॥
 हृतः पवनवेगेन तेनाश्वेन वने नृपः ।
 अनुयातोऽहमेवैको योजनानां शतत्रयम् ॥ १७४ ॥
 पादलेपे ददौ यक्षः प्राण्णं मग्नतोषितः ।
 तेन मे क्षणलङ्घ्यामूत्सुदूरापि वसुंधरा ॥ १७५ ॥
 ततोऽल्लशित्वं याते दिनेशे ग्राह मां नृपः ।
 अस्मि बहिषिस्त्राल्यो मे चेतालश्चिरसेवकः ॥ १७६ ॥
 गृहं तेन विप्रस्य स्वानुमाकन्दिनं पुरा ।
 मोचयित्वा निष्ठाचर्या निर्गतोऽहं प्रसङ्गतः ॥ १७७ ॥
 समरक्षं सुविपुलद्वैतालं नयनामयात् ।
 ततः प्रभृति दास्ये मे सर्वत्राशपरोऽभवत् ॥ १७८ ॥
 इत्युक्त्वा भूमजा घ्यातं समपश्यमहं पुरः ।
 बैतालं प्रचलज्वालाकरालानलमूर्ध्वजम् ॥ १७९ ॥
 जत्रान्तरे फलाहारान्महाजगरतां गतः ।
 अहं स्वभावशक्तिर्हि द्रव्याणां केन लक्ष्यते ॥ १८० ॥
 ततः पक्षीपतिं शीघ्रं शबरविपतिं नृपः ।
 तत्र तं प्रार्थयामास प्रणतं सिद्धिमुक्तये ॥ १८१ ॥
 यस्य वानरदत्तेन फलेनापूर्वशक्तिना ।
 यातो सप्तदशशती बत्तराणां किलायुषः ॥ १८२ ॥
 सोऽप्यपश्यत्पुरा मार्गं उद्यानं वानरं पुनः ।
 दीनापलोलिनं दुःखात्सन्तं पादयोर्मुहुः ॥ १८३ ॥
 विविन्तयजिज्जितञ्जः स ततः पूर्वमाश्रयम् ।
 दिशो विलोक्य तज्ज्यामपश्यच्चद्विलम्बिनीम् ॥ १८४ ॥
 तरुश्लाघानिरुद्धां तां वेष्टयन्तीं स वानरीम् ।
 यमोचयत्कविः प्रीतो ननर्त च ततो मुदा ॥ १८५ ॥

तस्यै कृतोपकाराय सोऽथ शाखामृगः फलम् ।
 शबराय ददौ येन सोऽगवच्चिरजीवितः ॥ १८६ ॥
 एवंविधः स शबराधीशो नृपतिनार्थितः ।
 दिव्यौषधेन केनापि चक्रे मां स्वस्वविग्रहम् ॥ १८७ ॥
 घोराजगरभावान्मां मोचयित्वा स भूभुजे ।
 स्मरमुक्तावलीं कन्यां शबराधिपतिर्ददौ ॥ १८८ ॥
 इति शबरराजपुत्रीलामः ॥ ५ ॥

अत्रान्तरे गजक्रोडौ तत्र दर्पादभिद्रुतौ ।
 राजा जघान तौ चाशु मुक्तशपौ बभूवतुः ॥ १८९ ॥
 इयं चातायने सुप्ता वणिक्पुत्रस्य वल्लभा ।
 मयाकृप्य कराम्रेण पुरानीता मुलोचना ॥ १९० ॥
 इत्युदीर्य तयोरेको गजरूपो महाभुजः ।
 तां विन्यस्य ययौ व्योम्ना परेण सहितः क्षणात् ॥ १९१ ॥
 तयोः प्रयातयोर्मुक्तशपयोः सा वणिग्वधूः ।
 पुत्रीवाश्वासिता राज्ञा तत्याज विपुलं भयम् ॥ १९२ ॥
 इति गजबराहशपमुक्तिः ॥ ६ ॥

अत्रान्तरे दिनारम्भे कन्यायुगमदृश्यत ।
 रूपयौवनलायण्यविलासकुलमन्दिरम् ॥ १९३ ॥
 ततस्तदनुगाः दृष्ट्वा मया कौतुकशालिना ।
 ऊबुः कृत्वाहृद्दीपेशमुतेयं कमलेक्षणा ॥ १९४ ॥
 सप्तद्वीपपतेर्भार्या भाविनी भुवि विश्रुता ।
 अस्याश्च मातुलमुता द्वितीयेयं मृगेक्षणा ॥ १९५ ॥
 गुरुभ्यां प्रहिते चैते विक्रमादित्यमूभुजे ।
 अथैव भग्नो प्रवहणे निगीर्णे जलचारिणा ॥ १९६ ॥
 विधातुरानुवृत्त्याश्च मुक्ते धीवरदारितात् ।
 मत्स्यादयं स देवः श्रीविक्रमादित्य एव किम् ॥ १९७ ॥

इत्युक्तस्तत्परिजनैरहं तानवदत्तदा ।

अयमेव स भूपालः श्रीमान्कमललोचनः ।

यत्कृते यूयमायाता राजकन्यायुगानुगाः ॥ १९८ ॥

इति मद्रचनं श्रुत्वा ते प्रणम्य महीमुखे ।

ददुर्विषमशीलाय हृष्ट्य राजसुताद्वयम् ॥ १९९ ॥

इति राजपुत्रीद्वयलामः ॥ ७ ॥

ते कन्यके ततः प्राप्य विश्वकर्मसुरालयम् ।

प्रविश्यापश्यदत्यन्तकान्तामुत्कीर्णपुत्रिकाम् ॥ २०० ॥

तां हृष्ट्य नयनानन्दसुधां मेजे सविस्मयः ।

देवो विषमशीलोऽपि मदनानलवक्रिते ॥ २०१ ॥

तेन पृष्टः स वेतालः केयमित्यतिकौतुकात् ।

उवाच शिल्पिना देव कृतेयं सालभञ्जिका ॥ २०२ ॥

कलिह्वराजतनयामालोक्य सदृशाकृतिम् ।

सेयं कलिह्वसेनाख्या रूपकारेण निर्मिता ॥ २०३ ॥

श्रुत्येति वेतालवचस्तत्प्राप्तिन्यस्तमानसः ।

अभूत्कलिप्रयात्रायां प्रक्षानामिमुखो नृपः ॥ २०४ ॥

अग्रान्तरे समम्येत्य वणिक्पुत्रो व्यजिज्ञपत् ।

तं देव गम नागेन हर्म्यस्या दयिता हता ॥ २०५ ॥

तां विलासवतीं नाम नीतामालोक्य बल्लभाम् ।

कुञ्जरेन्द्रेण तेनाहं निखिलं व्याकुलोऽभवम् ॥ २०६ ॥

ततो मां दुःसप्ततप्तं कश्चिदभ्यागतो द्विजः ।

आधासयन्प्राह सखे मा विवृं....वृथा कृथाः ॥ २०७ ॥

भवन्त्यसिन्मवाग्योघौ भ्राम्यतां कर्ममारुतैः ।

संयोगाश्च वियोगाश्च स्थायिनो न हि देहिनाम् ॥ २०८ ॥

अभवत्ताम्रलिप्तायां देसटस्थ द्विजन्मनः ।

सनयः केसटो नाम कन्दर्प इव मूर्तिमान् ॥ २०९ ॥

कदाचितीर्थयात्रायां यातः पथि ददर्श सः ।
 यन्यात्र(!) प्रस्थितान्विप्रान्विशेषोचितमूपितान् ॥ २१० ॥
 तन्मध्यादवदद्बुद्धः केसटं सुन्दराकृतिम् ।
 भद्रं वृद्धस्य कार्येऽस्मिन्सहायो मे सखे भव ॥ २११ ॥
 अस्ति मे तनयो वक्रनासिको विकटाननः ।
 लम्बोदरो दीर्घग्रीवो दन्तुरः खलतिः कृशः ॥ २१२ ॥
 तदर्थं धनलुब्धेन मया विप्रो महाधनः ।
 सुतां रूपवर्ती नाम याचितो धनशालिनीम् ॥ २१३ ॥
 विवाहः प्रस्तुतोऽद्यैव निशि तत्र ममात्मजम् ।
 दृष्ट्वा कुरूपसाकां ना(१)न जाने किं करिष्यति ॥ २१४ ॥
 अतस्त्वं मन्मथाकारः साहाय्यं कर्तुमर्हसि ।
 मत्पुत्रार्थं परिणये प्रामुखाद्येन कन्यकाम् ॥ २१५ ॥
 तच्छ्रुत्वा घाढमित्याह केसटः स्वच्छचेतसाम् ।
 कथं परोपकारेषु निषेधे वाक्प्रवर्तते ॥ २१६ ॥
 ततः सौपर्णीपकुमुमार्पाङ्कल्पितशेखरः ।
 कुमुमायुषसच्छायो नीतस्त्रेण द्विजालयम् ॥ २१७ ॥
 विवाहवमुघां प्राप्य स ददर्श द्विजात्मजाम् ।
 रूपयौवनलावण्यैः पुनरुक्तविमूषणाम् ॥ २१८ ॥
 सखीनां सह कन्याभ्यां कटाक्षकिरणैर्दृशः ।
 कुलेन्दीवरमालाङ्गं विदधानामिवोत्सवे ॥ २१९ ॥
 तां दृष्ट्वा केसटस्यामून्मनसि स्मयशालिनः ।
 अहो मे दर्शनादस्या धन्यता नेत्रयोरमूत् ॥ २२० ॥
 ततः केसटमालोक्य शृङ्गारमिव रूपिणम् ।
 आजानुचाहुर्दीर्घाक्षं परिष्वक्तमिव त्विषा ॥ २२१ ॥
 कर्णोपान्तमुपेत्यास्य तत्प्रख्यायूचतुः श्रुतैः ।
 मञ्जानुरागयत्यास्या परा शृङ्गारवत्यपि ॥ २२२ ॥

धन्य रूपवती यस्यास्त्वं कान्तप्रवरो वरः ।
 आवधोरपि कर्तव्यस्त्वया पाणिग्रहोत्वसः ॥ २२३ ॥
 इति त्वेरे समाकर्ण्य निःश्वस्याचिन्तयन्मुहुः ।
 भवतीभिर्ममान्यसिन्मन्ये जन्मानि संगमः ॥ २२४ ॥
 घ्यात्वा त्वेवं समासन्ने लम्बे निग्रि नदीतटे ।
 स्पष्टमम्भोविनिर्यातं सोऽपश्यत्पिङ्गितामनम् ॥ २२५ ॥
 तं ॥ क्षामं तथालोक्य किं करोतीति कौतुकात् ।
 अभक्षिता रूपवती तमेवानुययौ शनैः ॥ २२६ ॥
 सापि प्राप्य नदीतीरे राक्षसं तममापत् ।
 तद्वाक्यविस्मितं रक्षः प्राह रूपवती ततः ॥ २२७ ॥
 संत्रासात्तद्दुःस्नानां हस्ते न्यस्तेष्वेव वेधसा ।
 मामस्मि राक्षसपते कान्तोऽयं मुच्यतां विभो ॥ २२८ ॥
 एतद्वियोगाघस्तत्वं जीवितं निघनं मम ।
 तच्छ्रुत्वा राक्षसः प्राह की न वध्या ममाबले ॥ २२९ ॥
 सावदद्रुर्द्विहीनायाः का मे वृत्तिर्निश्चाचर ।
 सोऽब्रवीत्सस्मितं मुमु सदा वर्तस्व मिक्षया ॥ २३० ॥
 सापि को मे ददतीति मोवाच रजनीवरम् ।
 सोऽब्रवीच्छतपा यातु तत्तुभ्यं न ददाति यः ॥ २३१ ॥
 ततो रूपवती प्राह भर्तृमिक्षां त्वमेव मे ।
 देहीति तन्निषेधात्तु तद्रक्षः शतपा मयौ ॥ २३२ ॥
 मोचयित्वेति भर्तारं गत्वा तत्सहिता गृहम् ।
 निशां निनाय तद्भक्तविन्यस्तानिमिषेक्षणा ॥ २३३ ॥
 प्रातर्जन्यावली यात्रारम्भे वृद्धद्विजन्मनः ।
 अवाप्य परिणीतां तां नावा गन्तुं समुपयौ ॥ २३४ ॥
 मत्पुत्रोऽस्माः कुरूषोऽसौ केसटं वीक्ष्य न प्रियः ।
 भविष्यतीति सै घ्यात्वा छलाज्जचां तमक्षिपत् ॥ २३५ ॥

आम्यमाणस्तरङ्गाद्यैः सोऽयं प्राप्य दिनैस्त्रिभिः ।
 तीरं वियोगसलिले ममज्जापारदुस्तरे ॥ २३६ ॥
 तां शशाङ्कवतीं ध्यात्वा यतो यन्नासशोषितः ।
 निषिन्ना दृष्टनष्टेन विप्रलब्ध इवामवत् ॥ २३७ ॥
 ततोऽस्तशिसुरं याते पद्मिनीजीवितेश्वरे ।
 संदेहं दिक्षु यातास्तु शोकैरिव तमश्चयैः ॥ २३८ ॥
 आजिष्णुरन्नाभरणं सोऽपश्यत्पतितं दिवः ।
 पुरुषं यौवनोदारं विश्राममिव नेत्रयोः ॥ २३९ ॥
 तं केसरोऽथ पप्रच्छ कोऽसीति प्रणयोदितम् ।
 निवेद्य निजवृत्तान्तं कान्ताविरहपीडितः ॥ २४० ॥
 संप्रष्टः प्राह निःश्वस्य धैर्यमालम्ब्य विक्रियाम् ।
 त्यजैतां शृणु मे तुल्यां कै..... ॥ २४१ ॥
 ।
 ॥ २४२ ॥
 ।
 ॥ २४३ ॥
 ।
 ॥ २४४ ॥
 ।
 ॥ २४५ ॥
 ।
 ॥ २४६ ॥
 ।
 ॥ २४७ ॥
 ।
 ॥ २४८ ॥

..... ।
 ॥ २४९ ॥
 ।
 ॥ २५० ॥
 ।
 ॥ २५१ ॥
 ।
 ॥ २५२ ॥
 ।
स सततं नासौ त्वयि निरादरः ॥ २५३ ॥
 कलिभ्रसेना क्षुत्वेति दृष्ट्वा कार्पटिकोदितम् ।
 सौभाग्यगर्वसैथिल्यं तत्याज मृगलोचना ॥ २५४ ॥
 ततः श्रीविक्रमादित्यः पालयन्निखिलां महीम् ।
कर्पूरधवलाधकार यशसा दिभः ॥ २५५ ॥
 अत्रान्तरे शशुजितः कश्चिदेत्य नृपात्मजः ।
 चक्रे विपमशीलस्य सेवां द्वादशवार्षिकीम् ॥ २५६ ॥
 चिरस्थितं राजपुत्रं सोऽयं कार्पटिकव्रतम् ।
 तं खण्डकपटाभिमुख्ये व्यधादेत्य पुरे नृपम् ॥ २५७ ॥
 सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं मणिकाञ्चनमन्दिरम् ।
 स सर्वकामदं प्राप्य तत्पुरं विस्मितोऽभवत् ॥ २५८ ॥
 ततः प्रतिनिवृत्ताय पुनश्चासौ ददौ स्वयम् ।
 चतुरम्भोधिपर्यन्तं चतुर्मासं भुवो विभुः ॥ २५९ ॥
 अत्रान्तरे समम्पेत्य पुनः कश्चिद्यजिज्ञप्त् ।
 देवं श्रीविक्रमादित्यं रोमाञ्चोद्भूतविग्रहम् ॥ २६० ॥
 कृष्णशक्तिरिति स्मृतो वाहं...द्विजपुत्रकः ।
 आगतः श्वशुरावासाद्धार्याभादाय तत्स्थिताम् ॥ २६१ ॥

तुरङ्गीमधिरुद्धायमस्या याने सुहृदृते ।
 अभक्षयन्नरं साशु मद्भार्या गूढशाकिनी ॥ २६२ ॥
 तां रक्ताक्तमहावक्रां दृष्ट्वाहं भयविह्वलः ।
 देव त्वां शरणं प्राप्तः प्रमाणमधुना प्रभुः ॥ २६३ ॥
 तच्छ्रुत्वा ससिते रात्रि ध्वस्तायां च तदाज्ञया ।
 शाकिन्यां तत्कथामध्ये प्राह मन्त्री नरेश्वरम् ॥ २६४ ॥
 आलयः सर्वपापानां देव क्रूरतराः स्त्रियः ।
 अग्निगर्भाभिषस्यासीत्प्रिया भार्या द्विजन्मनः ॥ २६५ ॥
 सा चौररागिणी शूले चौरमुलम्बिनं पुरा ।
 स्नेहदुःखसरावेशादालिलिङ्ग चुचुम्ब च ॥ २६६ ॥
 तदा प्रविष्टो वेतालस्तस्याश्चिच्छेद नासिकाम् ।
 छिन्ननासा च सा गत्वा पर्युर्वस्त्रान्तमग्रहीत् ॥ २६७ ॥
 अनेन निगृहीताहमपापेत्यार्तराविणी ।
 पित्रा मात्रा च सा सार्धं गत्वा राज्ञे न्यवेदयत् ॥ २६८ ॥
 राजादिष्टेऽयं तद्गर्तुर्निग्रहे रभसं स्थितः ।
 तद्गर्तं दिव्यपुरुषः कथयित्वा ररक्ष तम् ।
 इति पापाः स्त्रियो देव भवन्ति कलुषाशयाः ॥ २६९ ॥
 इत्युक्ते तेन भूपालं मूलदेवोऽप्यभाषत ।
 पापा नैकान्ततो देव सन्ति साध्योऽपि योषितः ॥ २७० ॥
 मत्प्रसिद्धिं समाकर्ण्य धूर्तैर्लभ्यासि नो बलात् ।
 इत्युद्गादविधौ बद्धनियमां शङ्कितां सदा ॥ २७१ ॥
 पुरा धूर्तः प्रसिद्धोऽहं युक्त्या धूर्तरनिर्जिताम् ।
 अवापं विप्रतनयां विवाहे छत्रवेषभृत् ॥ २७२ ॥
 तत्रस्थां विहितोद्गाढागवदं प्राज्ञमानिनीम् ।
 दा वधितासि गच्छामि स्वतिते(?) विजितं मया ॥ २७३ ॥
 इति श्रुवाणं मां प्राह प्रसितं सा सितप्रता ।

गच्छ मत्सूनुना बद्धो न विरात्त्वं भविष्यसि ॥ २७४ ॥

इति प्रतिज्ञां श्रुत्वाहं तस्या यातो निजां पुरीम् ।

याति काले कदाचित्सा छत्रा तामाययौ पुरीम् ॥ २७५ ॥

तस्यौ च तत्र गणिकामिषेणालक्षिता क्षितौ ।

कामुकान्साय संप्राप्तान्विषैव विमुक्तान्व्यधात् ॥ २७६ ॥

पूर्वं यामे स्नानविधिं द्वितीये भोजनक्रमम् ।

तृतीये मण्डनारम्भं चतुर्थे तु कथान्तरम् ॥ २७७ ॥

निजैः परिजनैः कृत्वा कामिनामिति वञ्चनाम् ।

शीलसंरक्षणपरा तस्यौ मत्संगमाश्रया ॥ २७८ ॥

नवां वाराङ्गनां प्राप्तां श्रुत्वाहं तामशङ्कितः ।

प्रविष्टः कामुको मृत्वा तद्गृहं सरमोहितः ॥ २७९ ॥

सा मां प्रौढं परिज्ञाय संगमं विदधे मया ।

मत्तश्च गर्भं संप्राप्य प्रच्छन्ना स्वपुरं गयौ ॥ २८० ॥

सासूताय सुतं काले संप्रशुद्धिं कलानिधिम् ।

मातुर्गृहात्समन्व्येत्य मां धृतैः सोऽजयच्छ्रुती ॥ २८१ ॥

स हारितानेकधनं यध्वा मां मातुरन्तिकम् ।

निनाय सा च मां प्राह सा निजानां स्वसंगमम् ॥ २८२ ॥

तीर्णां मया प्रतिज्ञासौ प्रमाणमधुना भवान् ।

इति ब्रुवाणां तां कान्ताममजं सत्यवादिनीम् ॥ २८३ ॥

इत्येवं सत्यशालिन्यो देव सन्ति पतिव्रताः ।

मूलदेवो निगद्येति प्रणम्य प्रययौ नृपम् ॥ २८४ ॥

अथ श्रीविक्रमादित्यो हेलया निर्जितास्त्रिः ।

म्लेच्छान्काम्बोजयवनाजीवान्दूणान्सर्व्वरात् ॥ २८५ ॥

तुपारान्मारसीकांश्च त्यक्त्वाचाराविवृद्धयान् ।

हत्वा भूमन्नमात्रेण भुवो भारमवाश्रयत् ॥ २८६ ॥

इत्येवं सत्यसंपन्नाः प्राप्नुवन्ति समीहितम् ।

नरवाहन कान्तां तामवाप्स्यसि धृतिं श्रियः ॥ २८७ ॥
 इति निशम्य कथां स मुनेर्वचः प्रियतमाविरहानलतापितः ।
 वनमहीषु चचार निजां पुरीमनुसरन्शनैर्नरवाहनः ॥ २८८ ॥
 इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बृहत्कथायां विषमशीलनामा दशमो लम्बकः समाप्तः ।

मदिरावतीलम्बकः ।

अनङ्गेनावलासङ्गाज्जिता येन जगन्नयी ।
 स चित्रचरितः कामः सर्वकामप्रदोऽस्तु वः ॥ १ ॥
 अनेकसौरभोद्गारव्याकुलीकृतपट्टदैः ।
 प्रक्षुब्धस्कोकिलकुले रसत्समदसारसे ॥ २ ॥
 चलत्समीरणोद्भूतधनकिञ्जल्कपिञ्जरे ।
 संजाताधिकसंतापस्तत्र वत्सेश्वरात्मजः ।
 निजदेशपरित्यागे धैर्यं कुरिसादरः ॥ ३ ॥
 स गत्वा विरहक्षामः पदैः श्लथविशृङ्खलैः ।
 कलहंसकुलालोलं प्राप भार्गीरथीतटम् ॥ ४ ॥
 तरुणौ तत्र विश्रम्भसम्भोगाविव रूपिणौ ।
 अग्राम्यवस्त्रामरणौ ददर्श द्विजपुत्रकौ ॥ ५ ॥
 रतिहीनमिवानङ्गं विलोक्य नरवाहनम् ।
 ॐ नमो मन्मथायेति ब्रुवाणौ तौ प्रणेतुः ॥ ६ ॥
 निजपृष्ठान्तभावेद्य पृष्ठौ राजमुतेन तौ ।
 चक्रतुः स्वकथाख्याने लज्जिताविव मानसम् ॥ ७ ॥
 तयोरेकोऽब्रवीद्देव श्रूयतां नौ विचेष्टितम् ।
 यत्तमे मेरयत्येषा ब्रह्मदर्शननिर्वृतिः ॥ ८ ॥
 अस्मि शोभावती नाम कलिङ्गविषये पुरी ।
 तस्यां यशस्करो नाम धर्मव ब्राह्मणोऽग्रणीः ॥ ९ ॥
 तस्य मेरालिकाख्यायां ब्राह्मण्यां तनयः प्रियः ।

जातः सद्भावनामाहं कुलार्थं विहितव्रतः ॥ १० ॥
 ततः कदाचिद्बुद्धिं त्यक्त्वा स्वनगरं वयम् ।
 संप्राप्ता कृच्छ्रवीवाख्यं पुरं सुरपुरोपमम् ॥ ११ ॥
 ततः कृतास्पदे तत्र सदा विद्यार्जने स्तः ।
 अहं गुरुकुले मित्रमवापं क्षत्रियं दिनेः ॥ १२ ॥
 सोमदत्ताभिधानस्य राजन्यस्य तमात्मजम् ।
 मित्रं विजयसेनाख्यं प्राप्याहं निर्द्वतोऽभवम् ॥ १३ ॥
 ततः कदाचिदुद्याने तरुससा मदिरावती ।
 दृष्ट्वा मया मनोजन्मसाम्राज्यविजयोत्सवः ॥ १४ ॥
 दधाना बाहुयुगलं विसकन्दमुकोमलम् ।
 वार्पाव मञ्जुसिञ्जानमैखलाहंसमालिका ॥ १५ ॥
 विभ्राणाभिनवोद्भिन्नकुचावन्धकचुचुकौ ।
 तारहारनदीजाताविव पद्मजकोरकौ ॥ १६ ॥
 तां विलोक्याहमानन्दमुधानिःस्पन्दवाहिनीम् ।
 कदम्बकुमुमाकारः संजातपुलकोऽभवम् ॥ १७ ॥
 सापि मामवलोक्यैव साचीकृतविलोचना ।
 स्फुटां गर्ति परित्यज्य भेजे विभ्रमवक्रताम् ॥ १८ ॥
 नवसरशराघातकल्पितास्य निर्जं गृहम् ।
 गत्वा बभूव क्षनकैर्व्यानोच्छ्वासपरायणः ॥ १९ ॥
 ततो विजयसेनेन नीतोऽहं निजमन्दिरम् ।
 तामपश्यं सरसुवं मय्येवार्पितलोचनाम् ॥ २० ॥
 तथा प्रणयशालिन्या गुम्फितां कुसुमस्रजम् ।
 कण्ठे न्यवेशयं हर्षातामिवामीलितेक्षणः ॥ २१ ॥
 रहस्यस्यास्ततो धात्री मामुवाचामृतोपमम् ।
 त्वमेव मदिरावत्या जीवितं किमतः परम् ॥ २२ ॥
 इत्थं तद्विरा दृष्टः प्राप्तो मन्मथतामिव ।

अकार्षं विपुलमाशां प्रियापरिणयोत्सवे ॥ २३ ॥
 ततः कदाचिदश्रौषं तां पित्रा प्रतिपादिताम् ।
 क्षत्रियायातिरूपाय वचसा गुणशालिनीम् ॥ २४ ॥
 तच्छ्रुत्वाहं झटित्युग्रवज्राहत इव क्षितौ ।
 पतितः प्रेमबन्धानामाशामङ्गोऽतिदुःसहः ॥ २५ ॥
 ततस्तस्याः सखी प्राह मामेत्य लघुचारिणी ।
 पित्रा कुबुद्धिनान्यस्यै कल्पिता मदिरावती ॥ २६ ॥
 अमन्तमभिधत्ते च सा त्वत्प्रीतिपरायणा ।
 त्वमेव मे प्राणनाथो मिथ्याभ्रान्तः पिता मम ॥ २७ ॥
 इति तद्वचसा सद्यः संप्राप्ता साचलत्क्षणा(?) ।
 समारूढ इवाकाशं सुधासिक्त इवामवम् ॥ २८ ॥
 अथ कालेन संप्राप्ते तस्या लग्नदिनोत्सवे ।
 श्रुतो मयानेकजन्यजनकोलाहलः पुरे ॥ २९ ॥
 अन्यत्र पथि यातस्य दर्शने चद्वकौतुकः ।
 परिणेतुस्ततो गत्वा मया दर्पगताः स्त्रियः ॥ ३० ॥
 विवाहं मदिरावत्या दृष्ट्वाहं समुपस्थितम् ।
 तत्संगमे जीवितेन तुल्यमाशां यदात्यजम् ॥ ३१ ॥
 ततोऽहं तरुमारूढ पाशवेष्टितकन्धरः ।
 ऊर्ध्वेक्षणं तमोघोरं प्रविष्टो नष्टचेतनः ॥ ३२ ॥
 केनापि मुक्तपाशोऽथ फेनोद्गारिमुखः क्षितौ ।
 पातितः सुचिरात्संज्ञां प्राप्यापदयं द्विजं पुरः ॥ ३३ ॥
 रूपयाश्वास्य मां तैस्तैरुपपत्तिकथाक्रमैः ।
 उवाच मत्कथां श्रुत्वा स निष्कारणवान्धवः ॥ ३४ ॥
 नद्यास निन्दितं विप्र साहसं कृतवानसि ।
 शरीरत्यागपापिष्ठं कर्मतन्मा कृत्वा पुनः ॥ ३५ ॥
 अपश्यमेव पुरुषः प्राप्नोत्यपि यथेष्टितम् ।

भवत्येवात्र संसारे दृष्टनष्टा मुहुर्मुहुः ।
 संयोगाश्च वियोगाश्च तथा च शृणु तत्कथाम् ॥ ३६ ॥
 अहं कुमारको नाम नेपालविषयाश्रयः ।
 द्विजन्मा निरसितां पृथ्वीं आन्तो विषयकौतुकात् ॥ ३७ ॥
 ततः शङ्खमुखं नाम हिमवत्कच्छसंश्रयम् ।
 अवापं विविधोद्यानं वसन्तस्येव मन्दिरम् ॥ ३८ ॥
 शङ्खपालहृदे तत्र यातयामे महोत्सवे ।
 स्नानपूजारसन्ध्यमसुन्दरीमन्दमण्डले ॥ ३९ ॥
 अपश्यं कन्यकां कान्तां नययौवनशालिनीम् ।
 वरशर्वासिव शर्वाणीमचन्द्रामिव रोहिणीम् ॥ ४० ॥
 विभ्रमाणां कुलगृहं क्षेत्रं कान्तेः पदं तरोः ।
 त्रिजगज्जयिनः शक्तिं मूर्तामिव मनोमुवः ॥ ४१ ॥
 तां चन्द्रवदनां दृष्ट्वा कुरङ्गनयनामहम् ।
 रम्भोरं रम्भया तुल्यां गत्वैव गजगामिनीम् ॥ ४२ ॥
 पुराहं राजपुत्रस्य याता क्रीडामयूरताम् ।
 तस्यां मदानलन्यस्तलोचनायां महागजः ॥ ४३ ॥
 प्रतिद्वीपरूपान्याया(?)जनकोलाहलाकुलः ।
 भ्रमद्भ्रमरसंभारमदाम्भोराजिराजितः ॥ ४४ ॥
 मन्दराद्रिरिवोच्चञ्चत्कालकूटघटाकुलः ।
 सरोविलोढनक्रीडाडम्बरे कवलीकृताः ॥ ४५ ॥
 लद्विरत्रिव दन्तांगुच्छयना विषमण्डलीः ।
 विलोलकर्णतालम्रग्यालम्बिसितचाभरः ॥ ४६ ॥
 कालमेघ इवोत्सर्पह्लाकावलयाङ्कितः ।
 यस्य गर्भ्योरसंरम्भगुरुर्मिर्गलगर्जितैः ॥ ४७ ॥
 तां त्रासस्त्वलितामेत्य दोर्म्यामहमघारयम् ।

जग्राह निविडं कण्ठे मां सा तद्भयविह्वला ।
 स्पर्शहर्षामृतासिक्तकम्पितोच्चकुचखलीम् ॥ ४८ ॥
 मूयात्ते करिणीं सज्जौ मदलेशविलासन ।
 कृतोपकारं तं नागमित्यहं मनसाम्यधाम् ॥ ४९ ॥
 ततः पृथुलशृत्कारशीकराबद्धदुर्दिनः ।
 आवर्तितः करोत्कारः क्षणात्प्राप्तो मदन्तिकम् ॥ ५० ॥
 तद्भयाद्विमुक्ते दूरं जनसंघे सहस्रधा ।
 नापश्यं पद्मवदनां कचितां तरलेक्षणाम् ॥ ५१ ॥
 सतोऽहं तद्वियोगार्तो यातेऽस्त्वं नलिनीप्रिये ।
 चक्राह इव यामिन्यां विलापमुखरोऽभवम् ॥ ५२ ॥
 अथ चन्द्रकरस्मेरकुमुदामोदशालिभिः ।
 विषवैगैरिवासिक्तो रजनीपवनैरहम् ॥ ५३ ॥
 एवं प्रतिनिशं कान्तावियोगविधुराक्षयः ।
 आन्तोऽपि निखिलां पृथ्वीं तां न पश्यामि सुन्दरीम् ॥ ५४ ॥
 बद्धस्पृहोऽपि निधने धारयाम्येव जीवितम् ।
 प्रियलभा भवन्त्येव सत्सु प्राणेषु देहिनाम् ॥ ५५ ॥
 अथ त्वमपि दुःस्वार्तो रक्षितो मरणान्मर्या ।
 अनुभूतव्यथः सर्वो जानाति परवेदनाम् ॥ ५६ ॥
 धीरो भव भवे देवात्कदाचिन्मदिरावतीम् ।
 अयाप्यसीति तद्वाक्यं श्रुत्वाहं धृतिमाश्रितः ॥ ५७ ॥
 ततस्तेनैव सहितः पूज्यस्मरनिकेतनम् ।
 यातः परिणये रन्तुं यत्रायान्ति पुराङ्गनाः ॥ ५८ ॥
 तत्र गर्भगृहे गूढं स्मिते मयि तद्वाञ्छया ।
 विवाहे स्मरपूजायामौययौ मदिरावती ॥ ५९ ॥
 उत्साहवाचनिर्घोषशुभिते जनसागरे ।
 विराजमाना लावण्यपीयूषैः धीरिवोदिता ॥ ६० ॥

निषिद्धान्वप्रवेशाय सा प्रविश्य सरालयम् ।
 प्रणम्य ग्राह सा वाक्यमुद्गाहोऽयं विषाय मे ॥ ६१ ॥
 दृष्टः पुरा मया विप्रो यः स मे हृदयप्रभुः ।
 ॥ मे जन्मान्तरे मृयात्पतिः प्राणास्त्यजाम्यहम् ।
 इत्युक्त्वा विदधे पाशं कण्ठे हारविमूषिते ॥ ६२ ॥
 ततोऽहं सुन्दरीं दृष्ट्वा तां रागान्मर्तुमुद्यताम् ।
 प्रहृष्टो दयितामानी पाशं तस्या न्यवारयम् ॥ ६३ ॥
 साथ मां प्रत्यभिज्ञाय विहितालिङ्गनोत्सवम् ।
 सकम्पा कामपि ययौ क्षीवतां मदिरावती ॥ ६४ ॥
 निर्जनामदर्वी त्यक्त्वा पुरं प्राप्तोऽचलाभिघम् ।
 ततो गृहपतेर्गेहि तत्रत्यस्य च कस्यचित् ॥ ६५ ॥
 विधिना विहितोद्गाहः संभोगसुभगोऽभवत् ।
 तया प्रणयशालिन्या रममाणो मृगीदृशा ॥ ६६ ॥
 तत्राङ्गनामुखं प्राप्तं समपश्यं सुहृद्वरम् ।
 दैवाद्यदृच्छया यातः स पृष्टः प्रणयान्मया ॥ ६७ ॥
 ग्राहाप्यहं बधूवेपो यातः शिविकया गृहम् ।
 सत्रोद्गाहोत्सवे व्यग्रजनकलोलसंकुले ।
 दीर्घावगुण्ठनां ग्राह सखी मां पाटलाभिघा ॥ ६८ ॥
 मदिरावति कोऽयं ते विषादविषविभ्रमः ।
 अस्मिन्नप्युत्सवे येन विकृतेवोपलक्ष्यते ॥ ६९ ॥
 जानेऽहं त्वां सदा वद्वपीति तस्मिन्द्विजात्मजे ।
 धात्रा न लिखितः किं त्रु तव तेन समागमः ॥ ७० ॥
 प्राप्तां भज विघेराज्ञां को हि नामातिवर्तते ।
 ममाप्येवंविधा चिन्ता सततं सखि वर्तते ।
 शृणु यन्मे पुरा वृत्तं नागयात्रामहोत्सवे ॥ ७१ ॥
 शङ्खपालहृदे स्नातुं याता बहुजनागमे ।

अपश्यं कुञ्जरत्रस्ता पुरुषं मन्मथोपमम् ॥ ७२ ॥
 तेन पद्मदलाक्षेण यूनाहं भयविह्वला ।
 गाढमालिङ्गिता येन मामद्यापि स्मरज्वरः ॥ ७३ ॥
 तं मदं मदनस्यापि यौवनस्यापि यौवनम् ।
 तं विस्मरति मे मन्ये मनो जन्मान्तरेष्वपि ॥ ७४ ॥
 ततोऽहं कुञ्जरमयाचद्वियुक्तो निजं गृहम् ।
 कण्ठे गृहीत्वा सोत्कण्ठं लब्धजीव इवामवम् ॥ ७५ ॥
 सापि मां मन्मथाविष्टा दृष्ट्वाभ्यस्तं मनोरथैः ।
 श्लाघितेवामृतस्यन्दैरमवरस्मेरचन्द्रिका ॥ ७६ ॥
 ततस्तयाहं गूढेन द्वारेणालक्षितो निशि ।
 निर्गतो लघुसंचारो मधुमचजनाद्गृहात् ॥ ७७ ॥
 दूरं गत्वा वनं प्राप्तः..... ।
 सौजन्याद्विहितातिथ्यः कृतोऽहं मृगयाज्ञया ॥ ७८ ॥
 दैवादिष्टमिमं मार्गं विचिन्त्य दयितासखः ।
 इह त्वया संगतोऽहमानन्देनेव रूपिणा ॥ ७९ ॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा दृष्टोऽहं जाह्नवीतटे ।
 स्थितोऽद्य यावत्तावत्त्वं मया दृष्टो नृपात्मजः ॥ ८० ॥
 अयं मम सखा बन्धुः सहजः स्वर्गमेव च ।
 राजसूनो मनःसिन्धुचन्द्रः प्राणा बहिश्चराः ॥ ८१ ॥
 इति द्विजमुतेनोक्तं निशम्य नरबाहनः ।
 शनैर्बन्धु सानन्दो दयितासंगमे घृतिम् ॥ ८२ ॥
 अथ ॥ निजमुद्विद्धिः संगतो गोमुखाद्यैः
 प्रणयविनतभौलिसौ समानम्य विप्रैः ।
 विरहविधुरर्षेयः संसारन्वहभायाः
 प्रविशिशिष्टमयासीत्सां पुरीं राजपुत्रः ॥ ८३ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां गृहलक्षणायां मन्दिरावली नाम एकादशोऽध्यायः समाप्तः ।

पद्मावतीलम्बकः ।

जाह्नवीधूर्जटिजराकुन्दमाला पुनातु वः ।
 राजहंसप्रियं घृते यद्वारि वलये अशी ॥ १ ॥
 ततो विरहसंतप्तं प्रियां मदनमञ्जुकाम् ।
 विलपन्तं मुह्यन्प्राह गोमुखो नरवाहनम् ॥ २ ॥
 धैर्यसागर कोऽयं ते मन्मथानलविष्ठवः ।
 एष दासंवृतः सत्यं महतामपि दुःखदः ॥ ३ ॥
 ब्रह्मदत्त इति ख्यातो चाराणस्याममूलूपः ।
 कीर्तिरासागरं यस्य गता गङ्गेव भूमृतः ॥ ४ ॥
 तस्य सोमप्रभा नाम सार्धां सोमप्रभामवत् ।
 मन्त्री च धीमतां धुर्यः शिवमूर्तिरिति श्रुतः ॥ ५ ॥
 रा कदाचिन्नृपश्चन्द्रकान्तिधौते नभस्त्रले ।
 सौधोत्तमगतोऽपश्यन्निर्गोधे हंसमालिकाम् ॥ ६ ॥
 तन्मध्ये काञ्चनमयं प्रवालचरणोज्ज्वलम् ।
 ददर्श हंसमिथुनं शुक्ला रुचिरलोचनम् ॥ ७ ॥
 पृष्टी राज्ञा प्रोचतुष्ठी पूर्ववृत्तमथात्मनः ।
 पुष्पशेखर इत्यासीदुर्विनीतो गणः पुरा ॥ ८ ॥
 जयया कन्यया सार्धं संस्थितो दुर्विनीतया ।
 दृष्ट्वा गणौ जहसनुर्मृगेश्वरगुहेश्वरौ ॥ ९ ॥
 धकाण्डे प्रणयं तेषां विलोक्य ध्यम्बकप्रिया ।
 कोपाग्निधूमलतिकां नमार मृकुटीं मुखे ॥ १० ॥
 सावदुर्विनीतोऽयं कन्ययैव सहानया ।
 भर्त्यतां यातु निर्लज्जो विलासी पुष्पशेखरः ॥ ११ ॥
 दासर्शालवपि पुरावेतौ चापलसूचकौ ।
 बहुद्वयः कुत्सितां जार्तिं प्राप्य बोधः शुपास्यतः ॥ १२ ॥
 इति श्लेषे पार्वत्या तेष्वेकः प्रगथोऽब्रवीत् ।
 कृपया धूर्जटी नाम देवि दासेषु मा कुप ॥ १३ ॥

तच्छ्रुत्वा गिरिजा प्राह पत त्वमपि भूतले ।
 ईश्वरा गाढनिर्वन्धं यान्ति धार्ष्ट्यनिवारिताः ॥ १४ ॥
 सुताखेहात्ततः प्राप्य जया गौरीं व्यजिज्ञपत् ।
 देवीसेवाजुषां तेषां शापस्यान्तो विधीयताम् ॥ १५ ॥
 इत्यर्थिता सा तपसा तया प्रोवाच पार्वती ।
 एकत्र संगता जातिं स्मृत्यैष्यन्ति निजं पदम् ॥ १६ ॥
 इत्युक्ते शंकरस्तूर्णं सतीसंदर्शनोत्सुकः ।
 व्योम्ना मनोरथेनेव समम्यायात्ककुब्जता ॥ १७ ॥
 सिप्राप हर्षर्पायूपवर्षिणीं हिमवत्सुताम् ।
 अशृणोदन्धकाक्षं तं निकामं तु परम्परा ॥ १८ ॥
 ततस्तं विदधे क्रद्धो भगवानक्षिपद्भरम् ।
 मुस्ताङ्गः सोऽपि तपसा भृङ्गिरित्यभवद्गणः ॥ १९ ॥
 अत्रान्तरे यौ गिरिजाशसौ पिङ्गगुहेश्वरौ ।
 द्विजस्य पुत्रतां यातौ यज्ञस्वलनिवासिनः ॥ २० ॥
 ततस्तावतिदारिद्र्यान्मातामहगृहे स्थितौ ।
 मातुलेन पशुप्रायौ नियुक्तौ पशुरक्षणे ॥ २१ ॥
 अथैकं भक्षितं दृष्ट्वा ताम्यामृक्षविदारितम् ।
 छागलं मातुलः शार्पं ददौ रक्षस्तनुपदम् ॥ २२ ॥
 ततस्तौ राक्षसौ धोरौ कदाचिद्वन्तुमुद्यतौ ।
 पतिताचस्य शापाच्च बने यातौ पिशाचताम् ॥ २३ ॥
 फालेन दुर्दिने होमघेनुरक्षाकुमारकम् ।
 भोजुं मुनेरुद्यतौ च शापाच्चाण्डालतां गतौ ॥ २४ ॥
 कर्णेनासाविरहितौ श्वरैर्धौर्यकोपतः ।
 शृतौ गत्वा शिवगृहं धेनुं हन्तुं समुद्यतौ ॥ २५ ॥
 अन्धीभूतौ भगवता दृष्टौ पीरजनैस्ततः ।
 निराहारौ वायसतां किञ्चित्कर्मशयाद्गतौ ॥ २६ ॥

मासतां च ततः प्राप्नोः क्रमेण च मयूरताम् ।
 शिवार्चनरतौ काले जातिं स्मृत्वा च हंसताम् ॥ २७ ॥
 प्राप्नोः ततोऽपि वैचित्र्यं हेमरत्नमयाकृती ।
 तावावां पार्यतीश्रुतौ मृगेश्वरगुह्येश्वरी ॥ २८ ॥
 स पुष्पशेखरस्त्वं च त्वत्पिबेयं जयात्मजा ।
 महापात्यश्च ते राजन्धूर्जटोऽयं गणाग्रणीः ॥ २९ ॥
 तदेहि तूष्णं गच्छामः सिद्धिश्रेष्ठं महागिरिम् ।
 प्राप्नुक्तेकेतुना यत्र मुक्ता लक्ष्मीस्ततः श्रिया ॥ ३० ॥
 इति हंसवधः श्रुत्वा ब्रह्मदण्डः प्रियामस्रः ।
 मन्त्रिणा सह साम्यां च ज्योत्ना जातिस्मरन्तु सः ॥ ३१ ॥
 व्याघ्रस्थानं समासाद्य ते विज्ञानमयाः क्षणात् ।
 धामयं वदमम्येत्य संगता भोजिरे निजाम् ॥ ३२ ॥
 इति ब्रह्मदण्डाख्यायिका ॥ १ ॥

गोमुखेनेति कथितं निग्रम्य नरबाह्वनः ।
 मुक्तकेतुकथाजातमष्टच्छत्कौतुकाकुलः ॥ ३३ ॥
 स शृष्टः प्रादु मुह्यदं मन्मथार्थं विनोदयन् ।
 मुक्तकेतोः शृणु कथां देव विद्यापरममोः ॥ ३४ ॥
 अमूर्द्धिशुक्रमो नाम दैत्यानामभिषो बली ।
 विशुद्धजः सुतन्त्रस्य तन्त्रिण्य तपसाभवत् ॥ ३५ ॥
 सोऽपि भौरेण तपसा प्रजापतिवराकृती ।
 विना पाशुपतं ग्राप दिव्याण्यस्त्राण्युदारवीः ॥ ३६ ॥
 स पित्रा सहितो गत्वा सेच्यमानो महासुरैः ।
 स्वयं व्रतक्रतुमस्त वज्रनिर्दारितासुरः ।
 चचार समरे वीरो मरुद्विरमित्रो वृत्रः ॥ ३७ ॥
 ततो विशुद्धजोऽहोर्ध्वैर्ब्रह्माक्षप्रमुखैर्युधि ।
 महासैरभवन्देवा दावव्यासा द्वात्रयः ॥ ३८ ॥

जम्भारिरथ संग्रासं संस्मृत्य त्रिपुरान्तकम् ।
चक्रे पाशुपतास्त्रेण संहारं त्रिदशद्विषाम् ॥ ३९ ॥
विद्युद्भजस्य जनको महद्भिर्दानवोत्तमैः ।
तेनास्त्रवहिना दग्धः प्रययौ शश्वतं पदम् ॥ ४० ॥
लब्धलक्ष्येषु देवेषु विध्वस्ते दैत्यमण्डले ।
लज्जाविभुम्भवदनो वनं विद्युद्भजो ययौ ॥ ४१ ॥
तत्र वर्षायुतं कृत्वा तपः संतापितामरम् ।
देवैरप्यमवधुद्धे वरं प्राप स शूलिनः ॥ ४२ ॥
[गत्वाथ त्रिदिवं व्योम्ना संग्रामे वज्रिणं जयी ।
विद्राव्य सुरगन्धर्वकिन्नरानकरोद्वशे ॥ ४३ ॥
परित्यज्य प्रयातेषु स्वपुराण्यथ तद्गयात् ।
क्वापि देवनिकायेषु मत्सेषु दितिसूनुषु ॥ ४४ ॥
अमृत्यमाणस्तां मानम्लानिं विद्याधराधिपः ।]
वज्रकेतुस्तपस्तप्त्वा पुत्रं प्राप्तासुरान्तकम् ॥ ४५ ॥
स मुक्तकेतुनामामृतस्येश्वरवरात्सुतः ।
देवा यस्य बलाघाने बभूवुः सततोद्यताः ॥ ४६ ॥
भाविनीं बल्लमां तस्य गन्धर्वाधिपतिः सुताम् ।
प्राप पद्मावतीं शर्वप्रसादात्पद्मशेखरः ॥ ४७ ॥
अत्रान्तरे दैत्यजिता मधुहन्तारमच्युतम् ।
श्वेतद्वीपं समम्येत्य त्रिदशाः शरणं ययुः ॥ ४८ ॥
तेनादिष्टाः स्मरहरं प्रयातास्त्रिपुरान्तकम् ।
गीर्वाणाः शुश्रुयुस्तस्मान्मुक्तकेतुं परायणम् ॥ ४९ ॥
सिद्धश्रेते ततश्चक्रे मुक्तकेतुर्भद्रतपः ।
येनास्य सिद्धयः सर्वा बभूवुरभिसारिकाः ॥ ५० ॥
दर्पाद्विद्युद्भजेनाथ त्रैलोक्ये व्याकुलीकृते ।
सन्त्यारण्यतुले नीतं नन्दने छिन्नचन्दने ॥ ५१ ॥

वन्दिग्रहगृहीतासु सुरनारीषु दानवैः ।
 उच्छ्वासैर्दीपयन्तीषु तत्पतापानलं मुहुः ॥ ५२ ॥
 अर्धितः सुरसजेन मुक्तकेतुः शिवाश्रया ।
 प्रतप्ते त्रिदिवं तूर्णं महादैत्यरणोत्सुकः ॥ ५३ ॥
 स व्रजव्रजभासा तूर्णं विद्याधरनृपात्मजः ।
 ददर्श पार्यतीपूजान्वयां गन्धर्वपुत्रिकाम् ॥ ५४ ॥
 कान्तामभिनवोद्याने स तं पद्मावतीं युवा ।
 निर्वर्णयन्क्षणमभूत्कौतुकोत्कलिकाकुलः ॥ ५५ ॥
 राजधानीमनञ्जस्य वज्रनाम्बुधुनीं रतेः ।
 विभ्रमाणां कुलगृहं, लीलोद्यानं मदश्रियः ॥ ५६ ॥
 स तामालोक्य शीतांशुसौन्दर्यसेव देवताम् ।
 यमार मानसं हर्षात्तुङ्गवीचितरङ्गितम् ॥ ५७ ॥
 अत्रान्तरे समुत्थाय राक्षसीपुगलेन सा ।
 याताव्यङ्गमिकोपेन गृहीता कम्पिताकृतिः ॥ ५८ ॥
 संत्रासविह्वलां बालां तां लोलनयनां ततः ।
 ररक्ष गन्धर्वमुतां मुक्तकेतुर्निहत्य ताम् ॥ ५९ ॥
 साथ तद्भयनिस्तीर्णां तं विलोक्य सरोपमम् ।
 पुलकालंकृततनुः कम्पसंपद्युताभवत् ॥ ६० ॥
 ततो वन्दिगिराकर्ण्य तौ नामाभिजनौ मिथः ।
 ननन्दतुः संगमाशां विधाय विपुलां हृदि ॥ ६१ ॥
 अथ नाकिगणाहृतो दैत्येन्द्रसगरावनिम् ।
 प्रययौ गानसं तस्यां विन्यस्य सरस्तापितः ॥ ६२ ॥
 तत्र विद्युद्भजमुखैरसुरैः संपहारिभिः ।
 प्रावर्तत महद्युद्धं मुक्तकेतो सुरश्रिये ॥ ६३ ॥
 देवदानवसंग्रामे तस्मिन्नतिग्रयंकरे ।
 क्षुब्धतप्ताब्धिकलोलमालिका निचवार भूः ॥ ६४ ॥

..... ।
 ॥ ६५ ॥
 ।
 ॥ ६६ ॥
 ।
 ॥ ६७ ॥
 ।
 पततां तत्र नागानां हयानां स्फुटतामपि ।
 निर्योपैः कम्पिताशेषलोकैर्जगदपूर्यत ॥ ६८ ॥
 वीरावीरशिरोभिस्त्वं प्रकराश्चक्रिरे पुरः ।
 कमला.....विकोशकमलाकरान् ॥ ६९ ॥
 भिन्नेममुक्तानिचयास्तेषामग्रे चकासिरे ।
 शौर्यलक्ष्मीपरिणये लाजानामिव मुष्टयः ॥ ७० ॥
 केशसेवालजटिला रुधिरावर्तदुस्तरा ।
 ससर्प रक्ततटिनी मृतवेतालमालिका ॥ ७१ ॥
 अपूर्वैः प्राप तां रक्तवाहिनीं चाहिनीपतिः ।
 ननर्तेव चलतुङ्गतरङ्गमुजमण्डली ॥ ७२ ॥
 अथ विद्युद्भजः प्रौढदोर्दण्डारूढकार्मुकः ।
 मुक्तयेतुं स्फुरच्चापद्वारक्रेद्भारमभ्ययात् ॥ ७३ ॥
 तयोर्लघु विचित्रं तु तत्पुरो युद्धमुद्धतम् ।
 निश्चलाः सुमटाः सर्वे ददृशुः प्रेक्षका इव ॥ ७४ ॥
 ततः सङ्गेन तपसा प्रोन्ममाय प्रमाथिनः ।
 शिरो विमुद्धवस्त्रास्तु मुक्तयेतुरसंग्रमः ॥ ७५ ॥
 तथा च धैर्येण समं प्रौढकर्णोत्पलं शिरः ।
 पपात दानवेन्द्रस्य रणध्रीकैलिकन्दुकः ॥ ७६ ॥

ततः शक्रमुखा देवाः संप्राप्तविजयोत्सवाः ।

विविशुश्चिरसद्युष्टनन्दनाममरावतीम् ॥ ७७ ॥

इति विद्युद्धवधः ॥ २ ॥

संपूजितोऽथ शक्रेण स्तूयमानो नगधरैः ।

पितृश्वन्द्रावलपुरं मुक्तकेतुर्ययौ बली ॥ ७८ ॥

तत्र पद्मावती ध्यायन्विरहानलदुःसहाम् ।

बभूव पाण्डुरच्छायः शशीव दिनमूषरः ॥ ७९ ॥

पद्मावती च हिमवत्तटोपान्तवनस्थलीम् ।

समैत्य तस्थौ विरहव्ययया सुविसंस्थुल ॥ ८० ॥

सा समाश्वासमानेव बह्वीभिर्मृङ्गकूजितैः ।

मुहुर्मूर्च्छां न तत्याज मुक्तकेतुप्रलापिनी ॥ ८१ ॥

दीर्घं निःश्वस्य बाष्पाम्बुपूरप्लावितलोचना ।

पट्टं लिलेख दयितां तदाकारानुगमिणीम् ॥ ८२ ॥

ततो मनोहरा नाम सखी तां द्रष्टुमाययौ ।

विनित्योपवनोपान्तं क्षण्णितां विजने स्विताम् ॥ ८३ ॥

तया लिखितमालोक्य सा रुतान्तरिता मियम् ।

मुक्तकेतुं परिज्ञाय सैरं साध्वित्यभाषत ॥ ८४ ॥

ततः सखी स्मितमुखी रहः प्राह मनोहरा ।

रुज्जानताननाम्भोजां मीलितार्धविलोचनाम् ॥ ८५ ॥

अभिलाषोऽयमुचितो न ते रुज्जाकरः सखि ।

मनो विधत्ते कमला नान्यत्र पुरुषोत्तमात् ॥ ८६ ॥

समाश्वसिहि गच्छामि व्योम्ना ब्रह्मं तव प्रियम् ।

मन्ये त्वद्विरहायासात्सोऽपि न स्वस्थविग्रहः ॥ ८७ ॥

इत्युक्त्वा सा विमानेन गत्वा चन्द्रावलं पुरम् ।

मुक्तकेतुं निजोद्याने ददर्श मदनातुरम् ॥ ८८ ॥

सुहृदा संयतास्त्र्येन तुषारकणवर्षिणा ।
 आधास्यमानं प्रत्यग्ररम्भापलवश्चायिनम् ॥ ८९ ॥
 मुहुः पद्मावर्तभिरेव विलपन्तमुपेत्य तम् ।
 सस्ती विरहवृत्तान्तं सा तस्मै तव्यवेदयत् ॥ ९० ॥
 सहसामृतवर्षेण श्लाघ्यमान इषाथ सः ।
 तथा तदुपदिष्टेन प्रययौ हिमवत्तटीम् ॥ ९१ ॥
 तत्रोपवनपर्यन्ते सिद्धार्पिगणसेविते ।
 गौरीमिवेश्वरप्राप्त्यै बद्धध्यानां ददर्श ताम् ॥ ९२ ॥
 प्राप्य पद्मावर्तीं कान्तां स तां मन्मथतापिताम् ।
 सरहर्षरसाकृष्टसायनमुपाविशत् ॥ ९३ ॥
 समुल्लङ्घ्याश्रमद्वारं प्रयातं बलमान्तिकम् ।
 मुनिर्दृढमृतो दृष्ट्वा मुवं गच्छेत्पथाक्षपत् ॥ ९४ ॥
 देवादमृतमासाद्य भग्नं मत्वेव भाजनम् ।
 स आपदुःखात्प्रययौ क्षरणं तद्गुरुं मुनिम् ॥ ९५ ॥
 स तं कुरुपतिः प्राह वत्स मा दुःखितो भव ।
 अवश्यमाविनो भावा न मृत्वा यान्ति संक्षयम् ॥ ९६ ॥
 पुरा देवासुररणे मोहनास्त्रे त्वयेरिते ।
 अभूतां दानवपुरे वियुक्तौ किल दम्पती ॥ ९७ ॥
 कान्तावियोगस्तच्छापादयं ते समुपस्थितः ।
 जयं तु मुनिशापस्त्रे प्रयातः पुनरुक्किताम् ॥ ९८ ॥
 अस्मावल्पापराधेऽपि पृथुकोपो दुराश्रयः ।
 दृढमतस्ते मर्त्यस्य यातु बाहनपक्षिताम् ॥ ९९ ॥
 इति श्रुत्वा मुनिवचो मुक्तकेतुरगाद्गतम् ।
 चन्द्रचूटसमादिष्टं गणं प्राप्वानुगं क्षणात् ॥ १०० ॥
 इति मुक्तकेतुशापः ॥ १०१ ॥
 उत्तो देवसभामिह्ये पुरे सुरपुरोपमे ।
 मेरुप्यजस्य नृपतेः ॥ श्रीमान्प्राप्य पुत्रताम् ॥ १०१ ॥

मुक्तध्वज इति ख्यातः सोऽमृद्विक्रमभूषणः ।
गणपध्वज इत्यासीद्गणस्तस्यैव चानुजः ॥ १०२ ॥
मुक्तध्वजोऽथ कालेन तं स्वर्गं प्राप्य वाहनम् ।
मुनीन्द्रयज्ञरक्षायै ययौ धन्वी पितुर्गृहात् ॥ १०३ ॥
सानुगोऽसौ मुनिमखे घटे दानवमण्डलम् ।
जघान घननिर्घोषैरखैरखविदां वरः ॥ १०४ ॥
दध्वा पाशुपतास्त्रेण निखिलं वैत्यकाननम् ।
सानुजो राजतनयो जेतुं पातालमाविशत् ॥ १०५ ॥
विलोक्य मालिनां तत्र जित्वा पातालवासिनम् ।
प्रददौ तत्पुतां कान्तां तस्यै मुक्तध्वजस्ततः ॥ १०६ ॥
अथ प्रणम्य श्रीकण्ठं प्रहृष्टो हाटकेश्वरम् ।
पूर्वाभ्याससमादिष्टां प्रययौ हिमवत्तटीम् ॥ १०७ ॥
तत्र जार्तिं निजां स्मृत्वा मुक्तकेतुतनुं ततः ।
प्रियां पद्मावतीं प्राप्य स्वप्ने शर्वेण सूचिताम् ॥ १०८ ॥
सापि स्वप्ने समादिष्टं पार्वतीपतिना वरम् ।
पार्वती विरहक्षामा सिक्तेवासीत्सुधारसैः ॥ १०९ ॥
गणे जाते तु कालेन शार्करं तत्पदं निजम् ।
मुक्तकेतुरभूत्कान्तासंभोगासक्तमानसः ॥ ११० ॥
संभोगाविधवां राजस्तामादाय सुलोचनाम् ।
ययौ व्योम्ना विमानेन स सुरैरमिनन्दितः ॥ १११ ॥
चन्द्रावलपुरं गत्वा चन्द्रकेतुं प्रणम्य सः ।
जनकं विजये मेजे विद्यामृच्चक्रवर्तिताम् ॥ ११२ ॥
इति विद्याधरेन्द्रेण सा गन्धर्वेनृपात्मजा ।
वियोगार्त्वि सशुचीर्यं प्राप्ता पद्मावती प्रिया ॥ ११३ ॥
अचिरात्त्वमपि प्राप्य प्रियां मदनमञ्जुकाम् ।
विधत्तुरानुकूल्येन देव निर्द्वेतिमाप्स्यसि ॥ ११४ ॥

इत्याकर्ण्य सुहृद्भ्यः प्रियतमासंप्राप्तिचिन्तापरः

केयूरार्पितकङ्कणः शिखिसखैर्निःश्वासवातैर्मुहुः ।

म्लानिं हारलतां नयन्दिनशशिव्यापाण्डुगण्डखल-

स्तस्यौ बालमृणालपल्लवमये श्रीवत्सराजात्मजः ॥ ११५ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचिताया बृहत्कथायां पञ्चावली नाम द्वादशो लम्बकः ।

पञ्चलम्बकः ।

बलात्कालीकटाक्षावलिकलित इव स्फारहाराहिराज-

स्पर्जद्वेष्टाग्रघूमग्रममलिन इव ज्यम्बकस्याशु कण्ठः ।

मूत्रै वः क्षिप्तकर्णं प्रणयिकरघुतः केकिपिच्छामिरामै-

गौरी लीलाकिराती भवति पुनरिव प्रेषिभिर्यन्मयूतैः ॥ १ ॥

अत्रान्तरे कापि यातं पुनः प्राप्तमयात्मजम् ।

दृष्ट्वा लेभे रतिं वीरो वत्सराजः प्रियासखः ॥ २ ॥

तं वल्लभावियोगार्तं ज्ञात्वा वत्सनरेश्वरः ।

बभूव सह देवीभ्यां शोकपावकमुर्च्छितः ॥ ३ ॥

तदा रुमण्वानवदत्कुपितः पृतनापतिम् ।

युष्माभिर्बान्धवैः किं मे रक्षितं नृपतेरिति ॥ ४ ॥

सोऽन्नवीदेव सर्वत्र नास्माभिरनधिष्ठितम् ।

प्राकारगोपुरादालं कृतमन्यग्रमानसैः ॥ ५ ॥

वयं कस्य वराकस्य लोके परिमवास्पदम् ।

भवत्प्रतापसिन्दूररक्षातिलकमुद्रिताः ॥ ६ ॥

किं तु न प्रभवामोऽत्र देव व्योमविहारिणाम् ।

विद्याधराणां तैर्मन्ये कृतः कार्येषु विस्तृतः ॥ ७ ॥

अथ वा राजपुत्रेण गोत्रस्सलनकोपिता ।

सिता मानवती वापि छत्रा मदनमश्रुता ॥ ८ ॥

अष्टावक्त्रस्य तनयां सावित्रीमङ्गिराः पुरा ।
 धर्मपत्नीमवाप्यासीद्ब्रह्माश्रममुत्तस्त्रितिः ॥ ९ ॥
 ध्यानस्थितं कदाचित्तं सा दृष्ट्वा दयितं प्रिया ।
 अन्यां चिन्तयसीत्सुक्त्वा ययौ क्रोधपराधुखी ॥ १० ॥
 सा गत्वा काननोपान्तं पाशं कण्ठे निवेशयत् ।
 प्राणास्तृणं हि नारीणां प्रियप्रणयतानत्रे ॥ ११ ॥
 सविज्ञा सा ततोऽभ्येत्य देव्या दिव्यशरीरया ।
 सावित्री रक्षिता पाशादितीर्प्याकञ्जपाः स्मियः ॥ १२ ॥

इति सावित्र्याख्यायिका ॥ १ ॥

इति सेनापतिवचः श्रुत्वा वत्सनरेश्वरः ।
 यौगंधरायणसखो यमूव ध्याननिश्चलः ॥ १३ ॥
 नरबाहनवृत्तोऽपि प्रियाविरहमोहितः ।
 नोदानेषु न वार्पापु न हर्म्येष्वाययौ रतिम् ॥ १४ ॥
 दोढासु चित्रदालासु बासवेदमसु कानने ।
 न वक्त्व्य वृत्तिं वीरः कः स्वस्यो विप्रिये त्रिवौ ॥ १५ ॥
 गुरुलज्जाङ्कुशस्त्वेवं मित्रेणाथासितत्स च ।
 पुटपाक इवासक्तस्तत्साम्बुच्छोकपावकः ॥ १६ ॥
 स प्रविश्य पुरोद्धानं विमाने सुरमिप्सपि ।
 शुशोच तत्कुचापीडफुल्लं कुलवक्रावलीम् ॥ १७ ॥
 दपितामबुगण्डूपचरणभागतपुष्पितौ ।
 अशोकवकुलौ दृष्ट्वा प्रियाकेलिशिसण्डिनम् ॥ १८ ॥
 बर्ही विगर्ति यस्तस्याः कयक्षपटलीमिव ।
 न हि तं फुल्लकमलं पूर्णचन्द्रां न वा निशाम् ।
 स सेहे चन्द्रवदनावदनध्यानतत्परः ॥ १९ ॥
 सरोजनयनां वार्पां रयाङ्गपुलकमनीम् ।
 ईंशालीरसनां वीक्ष्य शुशोच स्मृतवह्नयः ॥ २० ॥

गौमुखाङ्गनिपण्णाङ्गं प्रियाविरहमोहितम् ।
 उद्याननलिनीतीरमरुतस्तं सिपेविरे ॥ २१ ॥
 मरुभूतिरयाम्येत्य दन्तांशुनिबद्धैः सुधाम् ।
 विकिरन्निव तं प्राह हर्षव्याकोशलोचनः ॥ २२ ॥
 दिष्ट्या चिवर्धसे देव दृष्टा मदनमञ्जुका ।
 इयमास्ते सुवदना रक्ताशोकतरोरुषः ॥ २३ ॥
 श्रुत्येति सहस्रोत्थाय प्रहृष्टो नरबाहनः ।
 न सत्यं दर्शय कासावित्याहोत्कण्ठिताशयः ॥ २४ ॥
 मन्यमानस्ततः स्वप्नं गत्वा तद्दिष्टवर्त्मना ।
 स ददर्श प्रियां स्फारनेत्रपात्रं पिवन्निव ॥ २५ ॥
 किमेतदिति सानन्दं पृष्टा तेन सुमध्यमा ।
 सात्रवीजबलावण्यैः पूरयन्ती दिगन्तरम् ॥ २६ ॥
 पुरा त्वत्संगमोपाये यक्षः संतोषितो मया ।
 पूजाघलिप्रदानेन पार्श्वे तस्यैव नार्पितम् ॥ २७ ॥
 तस्मादयं वियोगोऽमृदावयोः क्षपितश्च सः ।
 इत्याह कृतकाकारस्तुल्या मदनमञ्जुका ॥ २८ ॥
 स तु प्रियस्रुपां ज्ञात्वा लब्धां वत्सनरेश्वरः ।
 कौशाम्बीमुत्सवसेरसिन्दूरारुणितां व्यधात् ॥ २९ ॥
 पुनर्विघ्नविनाशाय कल्पितोद्वाहमङ्गलम् ।
 कूटविद्याधरी तस्यैव नरबाहनकामिनी ॥ ३० ॥
 तत्तत्तद्ददनामोदमुगन्धमधुनिर्वृतः ।
 ययौ वत्सेश्वरमुतः सेव्यमानः सुहृज्जनैः ।
 यत्नात्स दयितां मेने स्पर्शे मदनमञ्जुकाम् ॥ ३१ ॥
 निद्रानिमीलितदृशो वदनं मम बल्लभ ।
 न द्रष्टव्यं त्वयेत्याह सा न हारादिव प्रियम् ॥ ३२ ॥
 ततः सुरतसंमर्दे गाढनिद्रां सकौतुकः ।
 ददर्शोत्कमुद्रात् तं विनिद्रो नृपात्मजः ॥ ३३ ॥

निर्मितामिव लावण्यैः कम्पितामिव यौवनैः ।
 निष्पन्नामिव पापपूषैर्वीक्ष्यैतां निश्चलोऽभवत् ॥ ३४ ॥
 अमानुषोचितस्फारं प्रमायरितमाननम् ।
 स तस्या हेमकमलच्छायं दृष्ट्वा सख्यं ययौ ॥ ३५ ॥
 अहो दिव्यवयूः कान्ता केयमानन्दकौमुदी ।
 विमर्ति मलिनारूपमिति सैरं विचिन्तयत् ॥ ३६ ॥
 क सा प्रियेति दुःस्वार्तो निर्विशेषेऽतिविस्मितः ।
 दिव्येति घन्यतामानी सोऽमृद्गोलाच्छाशयः ॥ ३७ ॥
 तत्कान्तिपानदृष्टोऽपि विना मदनमञ्जुकाप् ।
 सघलत्पाज स धृतिं प्रेमवन्धो हि रम्यता ॥ ३८ ॥
 सदृसा पतिबुद्धाय पादसंवाहनोद्यतम् ।
 समालोक्य तु सा माह हृष्टा विनयसालिनी ॥ ३९ ॥
 अस्ति विद्यापराधीशो यशस्वी वेगवानिति ।
 यस्यापाङ्गपुरे रम्या राजधानी मनोजवा ॥ ४० ॥
 तस्या मानसवेगास्तयः पुत्रो बलवतां वरः ।
 मुता वेगवती चाहं त्वन्मुखेन्दुचकोरिका ॥ ४१ ॥
 स कदाचिन्निजयशःशुभ्रं पलितमात्मनः ।
 दृष्ट्वाभिपिच्य तनयं विरक्तोऽमृद्गने मुनिः ॥ ४२ ॥
 याचितोऽपि मया ज्ञाता शूलविद्यापदसितिम् ।
 मात्सर्यान्न ददौ लुब्धो न हि स्वजनवत्सलः ॥ ४३ ॥
 सततपोवनस्वस्य गत्वाहं पितुराश्रमम् ।
 स्मिता सपर्यासतोषप्रसादितमुनीश्वरी ॥ ४४ ॥
 तत्र केलिकललोला कदाचिन्मत्तवर्हिणम् ।
 अङ्गहारमिवं बाला करतालेनर्तयन् ॥ ४५ ॥
 नृत्यतप्तस्य विवभौ कलापो विविचच्छविः ।
 ज्योमयानादिव गतः शक्रचापः सदृशधा ॥ ४६ ॥

बहुरूपं विधायाशु मणिमान्नाम राक्षसः ।
 जहार मां ततस्तस्मै चुकोप मुनिमण्डलः ॥ ४७ ॥
 स मां विमुच्य प्रोवाच मुनिक्रोधावधिर्मम ।
 कौवेरोऽयं गतः शापो निगद्येति दिवं ययौ ॥ ४८ ॥
 ततोऽहमपि कालेन तुष्टस्य पितुराज्ञया ।
 अवापमखिला विद्यास्तत्प्रभावाधिकप्रभाः ॥ ४९ ॥
 अत्रान्तरे सरोन्मत्तो विप्रलोक्य विशृङ्खलः ।
 जहार तव मद्भ्राता प्रियां मदनमञ्चुकाम् ॥ ५० ॥
 अलक्षितस्तामादाय निर्मर्यादः पतिव्रताम् ।
 अयाचत रतिं पापः क्षप्तः स्वर्गाङ्गनामिव ॥ ५१ ॥
 दशास्यस्येव शापोऽस्ति तस्याप्यन्यवधूरते ।
 पावयैनामिति खैरं मामलज्जस्ततोऽवदत् ॥ ५२ ॥
 तूर्णं मानसवेगेन प्रेरिताहं तव प्रियाम् ।
 अवदं मानुषी किं त्वं शक्रतुल्ये निरादरा ॥ ५३ ॥
 श्रीमान्मानसवेगोऽयं कस्या न नयनप्रियः ।
 का हि दैवविपर्यस्ता मधुरं वेत्ति नामृतम् ॥ ५४ ॥
 इति मद्बचनं श्रुत्वा साध्वी मदनमञ्चुका ।
 निःश्वस्य साश्रुनयना मत्पुरस्त्वद्यशोऽभ्यधात् ॥ ५५ ॥
 श्रुत्वाैव त्वद्गतमतिस्ततोऽहममवं विमो ।
 मनोभवमुज्जग्रो हि यत्सत्यं श्रुतिलोचनः ॥ ५६ ॥
 गौरीवरो ममामूद्य यस्य नास्ति श्रुतिं गते ।
 वशमेप्यसि कामस्य स ते मर्ता भविष्यति ॥ ५७ ॥
 ततस्तां खैरमामप्य वद्वेणीं पतिव्रताम् ।
 त्वामागतामि तद्व्रणा भ्रातुं परिणयप्रियम् ॥ ५८ ॥
 पूर्णं मम संकल्पः प्रमाणमधुना भवान् ।

..... १.

..... एवं द्रष्टुं मदनमञ्जुकाम् ॥ ५९ ॥

इति वेगवतीप्राप्तिः ॥ २ ॥

इति तद्वचसा व्योमयानारूढो नृपात्मजः ।

ददर्श कुलशैलेन्द्रान्वलाकानिव भूतले ॥ ६० ॥

अलपात्रमिवाम्भोधिं नदीं शतपदीमिव ।

पश्यन्समीरणपथा स ययौ दयिताङ्गः ॥ ६१ ॥

क्षणं वेगवतीवक्रशशाङ्कोद्भासितं नमः ।

वभूवामृतकण्डोलसाल्यमानमिवाभितः ॥ ६२ ॥

कुरिलवर्तविधुरं राजसूतोः सितांशुकम् ।

कर्पूरकर्णपूरत्वमगमद्गगनत्रियः ॥ ६३ ॥

तस्य सूर्यकरोच्चण्डकुण्डलाताण्डवैवभौ ।

आसण्डलघनुर्दण्डमण्डितेवाभ्रमण्डली ॥ ६४ ॥

वेगाद्गतिविकोलेन तस्या हारेण हारिणा ।

रराजौदण्डाडिण्डीरपाण्डुराब्धिनिभं नमः ॥ ६५ ॥

अत्रान्तरे नरपतेः सहसान्तःपुरोदरे ।

उदतिष्ठद्गते तस्मिन्करुणो रोदनध्वनिः ॥ ६६ ॥

प्रियासलः क्व यातो मे पुत्रको नरबाहनः ।

सा गत्वा तं समुद्रस्य तीरे कनकपर्वते ॥ ६७ ॥

नीत्वास्याप्य पुरं याता द्रष्टुं मदनमञ्जुकाम् ।

तत्र विधाधरपतिं सा तमन्मगृहेऽक्षिपत् ॥ ६८ ॥

दीणादत्तामिधानोऽथ श्रीमान्दिव्यकुमारकः ।

तमुज्जहार सस्येन कुलं सुकृतवानिव ॥ ६९ ॥

कथितान्वयनामानं नरबाहनमाह सः ।

इह सागमदचार्यो गन्धर्वाविपतेः पतिः ॥ ७० ॥

गन्धर्वदत्ता तस्यासि पुत्री तस्या मृगीदृष्टः ।

विष्णुर्गीतिवृत्तज्ञाय देयाहमिति निश्चयम् ॥ ७१ ॥

वयं तच्च न विज्ञेह गीताभ्यासपरायणाः ।
 निःशब्दजनसंचारे वल्लकीपाणयः स्थितः ॥ ७२ ॥
 श्रुत्वेति गीतिकाभिज्ञं सत्यमस्मीतिवादिनम् ।
 वीणादत्तो निनायाशु तत्पुरं नरवाहनम् ॥ ७३ ॥
 तत्र गन्धर्वराजस्य समायामभिपूजितः ।
 शुश्राव वीणां तत्पुञ्ज्याः सारमञ्जुलमूर्च्छनाम् ॥ ७४ ॥
 केशांशमिश्रया तद्व्या श्रुत्यंशो विस्तरीकृतः ।
 इत्युक्त्वा राजपुत्रस्तां स्वयं जग्राह वल्लकीम् ॥ ७५ ॥
 बाललेशं विचार्यासौ गायन्वैष्णवगीतकम् ।
 वीणास्वनस्य वाद्येन गन्धर्वा विस्मयं ययुः ॥ ७६ ॥
 प्रतिज्ञापाठमुच्चार्य वरपुत्रीं वरे स्थिताम् ।
 ततो गन्धर्वदत्तां स ददर्श वरवर्णिनीम् ॥ ७७ ॥
 दृशा कुवल्याकीर्णां त्विषा शशिसमाकुलाम् ।
 श्रुत्वा सरधनुर्व्याप्तं विदधानामिवाखिलाम् ॥ ७८ ॥
 पित्रार्पितां तां लावण्यनलिनीं नरवाहनः ।
 प्राप्य फुल्लोत्पलदृशं विजहार सराकृतिः ॥ ७९ ॥
 इति गन्धर्वदत्ताप्राप्तिः ॥ ३ ॥
 ततः कदाचिद्गन्धर्ववरोधानस्थितं दिवः ।
 विद्याधरी समभ्येत्य प्राह तं कन्यकानुगा ॥ ८० ॥
 पुत्री ममेयं विद्यानां धाम नाम्नाजिनावती ।
 विद्याधरपतेश्चण्डसिंहस्य कुलभूषणम् ॥ ८१ ॥
 असंख्यं त्वया भाव्यं विद्याभृच्चक्रवर्तिना ।
 तदेया सुन्दरी तुभ्यमेतामर्हति नापरः ॥ ८२ ॥
 इदं स्थितिर्न युक्ता ते मायिनो गुलिकापराः ।
 अवन्तिनगरीमेहीत्युक्त्वा तमनयत्क्षणात् ॥ ८३ ॥
 राजा प्रसेनजितश्च तं वरोधानचारिणम् ।
 दृष्ट्वा ज्ञातान्वयायासौ हृष्टः स्वतनयां ददौ ॥ ८४ ॥

भगीरथयक्षां नाम तां प्राप्य नरवाहनः ।

न पूर्वपरिणीतानां सस्मार सुहृदो न वा ॥ ८५ ॥

विद्याललोचनदलं सुगन्धिसारकेसरम् ।

पियतस्तन्मुराराम्भोजं मृदता तस्य काप्यमृत् ॥ ८६ ॥

इति भगीरथयक्षःप्राप्तिकथा ॥ ४ ॥

याते संध्यासखे कापि कदाचिदय मात्करे ।

निमीलति जगत्पद्मे विद्याला...छलासिनी ॥ ८७ ॥

संकुचक्षलिनीखण्डसमुद्वैरलिमण्डलैः ।

मण्डितेष्वय लोकेषु तिमिरच्छन्ना निशि ॥ ८८ ॥

ज्योत्स्नाधृतं नदीपौतज्योम्नि कान्तितरङ्गिणीम् ।

माध्वजन्यांशुविश्रदे मुरारेरिव वक्षसि ॥ ८९ ॥

कान्तास्मिदैरिव ज्ञातैर्यशोमिरिव मार्जितैः ।

ज्ञानन्दैरिव संसिकैर्जातैर्जगति सर्वतः ॥ ९० ॥

सौधे भगीरथयक्षागाढालिङ्गननिर्वृतः ।

मुप्याप पृथुभाषिण्यपर्यङ्के नरवाहनः ॥ ९१ ॥

ततः प्रभावती नाम तं विद्याधरमुन्दरी ।

हा दुःखं दुःखमित्युक्त्वा ससंभ्रममबोधयत् ॥ ९२ ॥

प्रतिबुद्धोऽय ललनावदनं मदनोपमः ।

शरीररहितं ज्ञात्वा गवाक्षेण ददर्श सः ॥ ९३ ॥

तं दृष्ट्वा विसितोऽत्यन्तं राजपुत्रो व्यचिन्तयत् ।

अहो लोचलकमिदं पतितं ललनाननम् ॥ ९४ ॥

अथ विसमयापन्नोऽचिन्तयत्प्रयतः पुरा ।

नातापिदानवपतिश्चचारैको वनान्तरे ॥ ९५ ॥

अलक्तकारुणं पादं स ददर्श सनूपुरम् ।

शेषाङ्गहरितं तं च दृष्ट्वागद्विसयाव्यसुः ॥ ९६ ॥

दृपंशोकाद्भुतस्तस्मात्सहसान्तः समुत्थिताः ।

सर्वेन्द्रियनिरोधेन संत्यजन्त्येव जीवितम् ॥ ९७ ॥

चिन्तयित्वेति वत्सेशतनयस्तां निरीक्षितुम् ।
 निर्ययौ सा च सहसा बभूवाकारसंयुता ॥ ९८ ॥
 सा दुःखकारणं पृष्ट्वा राजपुत्रेण सुन्दरी ।
 प्राह गान्धारनाम्नोऽहं विद्याधरपतेः सुता ॥ ९९ ॥
 गङ्गाधरे जनपदे तत्पुरी पुष्करावती ।
 साहं प्रभावती क्षुभ्यं धात्रा दिष्टा त्वयि प्रिया ॥ १०० ॥
 पूर्वमार्या परित्यज्य कान्तां मदनमञ्जुकाम् ।
 तां च वेगवतीं बालां त्वमन्यललनारतः ॥ १०१ ॥
 दुःखकारणमेतन्मे श्रुत्वेति नरवाहनः ।
 प्रियां स्मृत्वा शुभं लज्जामुत्कण्ठां च समं ययौ ॥ १०२ ॥
 दीपप्रदक्षिणव्याजात्तेनोद्वाहं विधाय सा ।
 तं निनाय बधूं द्रष्टुं रुद्धां मदनमञ्जुकाम् ॥ १०३ ॥
 गच्छन्नागनमार्गेण दृष्ट्वा दिव्यनदीतटम् ।
 प्रौढां नितम्बविपुलां प्राह तां नरवाहनः ॥ १०४ ॥
 प्रभावति प्रियतमे हेमवल्लीनिकुञ्जके ।
 असिन्वरसरस्तीरे रन्तुं त्वामीहते मनः ॥ १०५ ॥
 प्रभावती निशम्येति बल्लभं प्राह ससिता ।
 न संप्रति रतक्रीडां मजे लज्जावती त्वया ॥ १०६ ॥
 स्मृतं मयाव्रवीधन्मां सखी मदनमञ्जुका ।
 मदर्थं राजपुत्रं चेदानेतुं यासि सुन्दरि ।
 न सत्कार्यं सरवशाद्वेगवत्या यथा कृतम् ॥ १०७ ॥
 इति सख्यं शृणुष्व ऋषिः कृतवत्यसि चापलम् ।
 गुप्तं तदधुना सेव्यं जानीते न यथा सखी ॥ १०८ ॥
 श्रुत्वा न्यकान्तासक्तं त्वां कदाचिज्जीवितं सती ।
 जटति विषमः स्त्रीणां गीर्षाविप्लवतो ज्वरः ॥ १०९ ॥
 पुरान्यनरसंसत्ता चण्डी मच्छन्नकामिनी ।
 निर्गताम्येत्य सततं ददौ पुत्राय मोदकम् ॥ ११० ॥

कदाचिदथ सा गत्वा रिक्तहस्तागता गृहम् ।
 पुत्रेण याचिता प्राह सदा मे मोदकः कुतः ॥ १११ ॥
 इदानीमत्र भुक्तोऽसि नासन्नो मोदकः कुतः ।
 श्रुत्वेति बालस्तत्याज जीवितं त्रुटिताशयः ॥ ११२ ॥
 सहसा प्रियविच्छेदं वज्रपातं सहेतु कः ।
 त्वत्सङ्गात्कुप्यति व्यक्तं मह्यं मदनमञ्जुका ॥ ११३ ॥
 इति प्रभावतीवाक्यं श्रुत्वा वत्सेश्वरात्मजः ।
 अवापदापादपुरे गूढां मदनमञ्जुकाम् ॥ ११४ ॥
 विशालविरहक्षामां पाण्डुगण्डां श्यालुकाम् ।
 तां लक्षवेणीमालोक्य ज्ञानकीमिय राघवः ॥ ११५ ॥
 भेजे त्वरां च हर्षं च संभ्रमं च व्यथां तथा ।
 दैन्यं क्रोधं च शोकं च लज्जां च नरवाहनः ॥ ११६ ॥
 प्रभावत्याः प्रभावेण तद्रूपच्छन्नविग्रहः ।
 विजहार ततः कान्तारतिसंभोगलालसः ॥ ११७ ॥
 कण्ठावलम्बितं दृष्ट्वा चिरात्प्रियतमं सती ।
 सद्यः सिक्तेन पीयूषैरभ्युन्नमदनमञ्जुका ॥ ११८ ॥
 ततो मासद्वये जाते विज्ञायान्तःपुराश्रयैः ।
 क्रुद्धो मानसवेगस्तमाययौ युद्धदुर्मदः ॥ ११९ ॥
 राजपुत्रोऽपि तं लब्धानालम्बुं मुलिकाधरान् ।
 इत्या तत्त्वङ्गमादाय तस्यै समरसंमुखः ॥ १२० ॥
 याणासुरमिव क्रुद्धं ज्ञात्वा विद्याधरेश्वरम् ।
 माता तं प्राह रक्ष्योऽयं प्राद्युम्निरिव धैर्यमूः ॥ १२१ ॥
 वेगवत्याः पतिरसौ समुखव नृपात्मज ।
 जामाता तव धर्मेण रक्षणीयः प्रयत्नतः ॥ १२२ ॥
 त्वत्समायां विचारोऽयं कियतां साधुसंसदि ।
 वधो न शस्यते राज्ञपर्वालोचितागसः ॥ १२३ ॥

मातुः पृथिव्याः श्रुत्वेति तथेत्युक्त्वा समाययौ ।
 वद्धा राजसुतं यत्नान्निनाय स्वसमाखलम् ॥ १२४ ॥
 तत्र वायुपथाभिस्थः कुलवृद्धः समापतिः ।
 त्राये मानसवेगं तं तां च पप्रच्छ धर्मवित् ॥ १२५ ॥
 भगिनी दूषितानेन ममेत्याह स मानसः ।
 विक्रीत इव मौनं स चक्रे वत्सेश्वरात्मजः ॥ १२६ ॥
 चदैर्न मूकतां प्राप्तं प्राह धीमान्सभापतिः ।
 अहो विपादमौनं ते ह्यपराजयसिद्धये ॥ १२७ ॥
 मौनं चादे क्षमां क्षत्तौ वाच्यां लुब्धे मदं गुरौः ।
 लज्जां च व्यवहारेषु न शंसन्ति विपश्चितः ॥ १२८ ॥
 श्रुत्वेति राजतनयः प्रोवाच गतसंभ्रमः ।
 सतां सुखे च दुःखे च समानो धैर्यविक्रमः ॥ १२९ ॥
 विभान्ति ये सदा न्यायैः समा भाति च सज्जनैः ।
 ते धर्मेण प्रकाशन्ते न सोऽस्तीह किमुच्यते ॥ १३० ॥
 मया मानसवेगस्य विवादोऽयमुपस्थितः ।
 आसनस्यो ममाग्रे च संयतो माययान्वहम् ॥ १३१ ॥
 अर्थिनोः समता यत्र तत्र न्यायो विवेच्यते ।
 प्राप्ता विवादपदवीं समौ सामान्यभूमिपौ ॥ १३२ ॥
 उपपन्नमिति श्रुत्वा तथेत्याह समापतिः ।
 इति राजसुतस्योक्त्या जितो विद्याधरात्मजः ।
 स तैर्निर्वार्यमाणोऽपि हन्तुमैच्छन्नृपात्मजम् ॥ १३३ ॥
 ततः समापतिः क्रुद्धो विद्याभिरवधूय तान् ।
 निजसेनां समाहूय ररक्ष नरवाहनम् ॥ १३४ ॥
 विद्याभृतां कुले देवो मामवाधः कपालभृत् ।
 सद्रूपेण प्रमावत्या रक्षितः सोऽभवत्सुखी ॥ १३५ ॥

ततः क्षणात्प्रभावत्या रक्षायै सानुरागया ।
 ऋष्यमूकगिरेः सानौ न्यस्तः सिद्धतपोवने ॥ १३६ ॥
 तत्र बाहुलताजालश्यामले काननस्वले ।
 विजहार तथा सैरं लीलामुरतलालसः ॥ १३७ ॥
 ततः पम्पाभिर्धं प्राप्य सरो रामेण यत्र ताः ।
 निःश्वासग्लपिताब्जेन क्षपिता विरहक्षपाः ॥ १३८ ॥
 साधुचित्तमिव स्वच्छं परार्थमिव क्षीतलम् ।
 उन्मत्तमिव सावेगं शृङ्गारिणमियोज्ज्वलम् ॥ १३९ ॥
 चन्द्रस्येव निजावातं स्फटिकाद्रेरेवाश्रयम् ।
 सुधाम्बुधरेवापत्यं गगनस्येव दर्पणम् ॥ १४० ॥
 अप्सरःकेशकुसुमैः किन्नरीकुचकुङ्कुमैः ।
 नागतिलकर्णपूरैः सूचितस्नानविभ्रमम् ॥ १४१ ॥
 भिन्नाञ्जनकणदयामैर्भ्रमरैर्वदमण्डलम् ।
 चक्रवाककुलोत्सृष्टरामश्यापाक्षरैरिव ॥ १४२ ॥
 कृतावगाहमाकुम्भं विन्ध्यकुञ्जरयूयैः ।
 आश्रितं सागरधिया वज्रमार्तैरिवाद्रिमिः ॥ १४३ ॥
 तीरोपान्तलतालस्यगुरुभिः कमलानिलैः ।
 अपि दिग्गजगण्डेभ्यः सुहृत्सेवकपदपदम् ॥ १४४ ॥
 रतिमानिव पुष्पेषुः स तद्वीक्ष्य प्रियासस्तः ।
 बहर्षं गुणसङ्गेन को हि नाम न तुष्यति ॥ १४५ ॥
 ततः प्रभावती प्राह निर्वर्णं सरसः श्रियम् ।
 ऋष्यमूकतटोपान्ते कान्तसंतोषिताशया ॥ १४६ ॥
 इह वानरराजेन हत्वा दुन्दुभिदानवम् ।
 सुग्रीवो बालिनो आता चिरं तस्यै विवासितः ॥ १४७ ॥
 एते सप्त महाबाला विद्या रामेण यन्निष्ठा ।
 यैर्नितं यद्यश्नः सप्तलोककर्णावतंसताम् ॥ १४८ ॥

इत्यादि रामसंबद्धं कथयित्वा प्रभावती ।

ललास सह कान्तेन विलासरतिललासा ॥ १४९ ॥

इति प्रभावतीप्राप्तिकथा ॥ ५ ॥

अथादृश्यत वक्रेन्दुकान्तिक्षालितदिङ्मुखा ।

धनवत्या समं मात्रा चारुनेत्राजिनावती ॥ १५० ॥

तत्संभोगसुखासक्तं राजपुत्रमभापत ।

तन्माता नेह ते युक्तं स्यातुं बहुरिपोरिति ॥ १५१ ॥

ततस्तद्विधया तूर्णं कौशाम्बीं नरवाहनः ।

विद्याधरीभ्यां सहितः प्राप धीमानिव प्रियम् ॥ १५२ ॥

वयस्यैः संगतस्तत्र प्रहृष्टैर्गोमुखादिभिः ।

निवाहे सहसा यातां लेभे वेगवतीमपि ॥ १५३ ॥

विद्याधरीघृतं पुत्रं प्राप्तं वत्सनरेश्वरः ।

ज्ञात्वा ननन्द देवीभ्यां सामात्यो विहितोत्सवः ॥ १५४ ॥

इत्यजिनावतीप्राप्तिकथा ॥ ६ ॥

अथाजम्मुश्चमूचन्द्रप्रभामण्डलमण्डिताः ।

विद्याधराधिषा व्योम्नि वेगताण्डविकुण्डलाः ॥ १५५ ॥

श्वशुरास्तद्वयस्याध्व द्रष्टुं वत्सनरेश्वरम् ।

दृष्टाः समामाविविशुः पूजिता जगतीशुजा ॥ १५६ ॥

रत्नासनेषूपविष्टा विवर्णास्ते प्रमाजुषः ।

सुमेरुशिखरारूढास्त्रिदशा इव सगताः ॥ १५७ ॥

वीरोऽमितगतिः श्रीमान्सदा वायुपथाभिषः ।

तथा पिङ्गलगान्धारश्चण्डासिंहनासहस्त्रिणः(?) ॥ १५८ ॥

ते वत्सराजमामाप्य कुक्षलं नूतमौलयः ।

प्रादुर्गुरोर्वितन्वाना बहु सोमप्रभां समाम् ॥ १५९ ॥

अयं सय युतः धीमान्विजय्या नरवाहनः ।

दरेण नः समादिष्टश्चक्रवर्ती भविष्यति ॥ १६० ॥

जगत्रयवृत्तास्सामिस्स, शासनमुद्रिता ।
कृते मानसवेगाच्च गौरीमुण्डाच्च दुर्भगात् ॥ १६१ ॥
वीरो विद्याविरतस्तुविद्वं(१) नरबाहनः ।
नादृति त्रिपुरारातिवरदृष्टा हि जेसराः ॥ १६२ ॥
सदास्सामिरितो मत्वा सिद्धक्षेत्रं यतप्रतः ।
सिद्धविद्यः पुरा जित्वा पुनरेष्यति ते सुतः ॥ १६३ ॥
इति सद्भवसा राज्ञा विसृष्टो नरबाहनः ।
सह तैस्तद्विमानेन सिद्धक्षेत्रं क्षणाद्ययौ ॥ १६४ ॥
मरुमूर्तिमुलैः सार्पं सिद्धक्षेत्रमवाप्य सः ।
ससौ मुनिरिवाक्षोभ्यो निस्तरङ्गोऽम्बुधिप्रभः ॥ १६५ ॥
ततश्चचाल वसुधा ववुर्वाताः शिलामुचः ।
पेतुरल्काः सनिर्घ्वानाश्चतुर्मुर्मकराकराः ॥ १६६ ॥
अथ चामूहिया क्षोमाद्गुहाविवरदारुणः ।
स्फुटतामिव वेणूनां घोरश्चटचटारवः ॥ १६७ ॥
ततश्चकार कल्पान्तजलदध्वानदुःसहः ।
प्रचण्डो गौरीमुण्डस्य समरारावडिण्डिमः ॥ १६८ ॥
'अदृश्यत सितच्छत्रशुभ्रीकृतनमस्तलः ।
सह मानसवेगेन गौरीमुण्डो गजाप्रगः ॥ १६९ ॥
तस्य व्योम्नि विकोशासिद्ध्यामांशुपटलीमवेत् ।
मालानीलो व्यलदलैर्विहते वरणाश्रयः ॥ १७० ॥
तत्र विद्याधरेन्द्राणां मालारत्नाशुभिष्विते ।
तूचौ सहस्रसूर्येव वभूव नमस्तस्यटी ॥ १७१ ॥
तेषां गम्भीरसरम्भं समान्य गतविभ्रमा ।
प्रत्यर्धं गृह्यसेनाश्चण्डसिंहादयः स्वयम् ॥ १७२ ॥
ततस्तरणिसपातस्तुद्रक्षकिरीटकाः ।
'ः'चां निघे' सामन्ताश्चकुर्वाज्जटोक्तदाम् ॥ १७३ ॥

गन्धर्वाणां सहस्रौषैर्विद्याभिर्गुलिकामृताम् ।
 अमृतपकटसस्फोटसंचट्टचिच्छटं नमः ॥ १७४ ॥
 गौरीमुण्डस्मृता देवी गौरी हुंकारमोहितान् ।
 चकार चण्डसिंहाद्यान्संप्राप्तविजयानपि ॥ १७५ ॥
 संकुम्भोऽथ समभ्येत्य गौरीमुण्डो महाजवः ।
 जग्राह बाहुसंग्रामसंमुखं नरवाहनम् ॥ १७६ ॥
 मायायोषी(?) तमादाय संविधूय गिरेस्तटे ।
 चिक्षेप दूरसंतापमूर्च्छाविस्मृतसंभवम् ॥ १७७ ॥
 वेगान्मानसवेगोऽपि तद्वयस्यान्दिगन्तरे ।
 तस्याज गोमुखमुखा..... ॥ १७८ ॥
 विधया धनवत्या ते रक्षिता न ययुः क्षयम् ।
 ततस्थन्मकनिर्दिष्टो ररक्ष नरवाहनम् ॥ १७९ ॥
 वीरोऽमृतप्रभो नाम वह्निशैलान्नभश्चरः ।
 नरवाहनदत्तोऽथ तपस्त्रेपे हराचले ॥ १८० ॥
 पूर्वमाराध्य हेरम्बं तद्वराच्च महेश्वरम् ।
 गौरीं च तत्प्रसादेन विद्यां प्राप नृपात्मजः ॥ १८१ ॥
 स्वयं विनिर्मितं यत्नाद्विमानं षड्रयोनिना ।
 सहस्रपद्मं बचसा शंकरस्यारुरोह सः ॥ १८२ ॥
 ततो वक्रपुरे गत्वा प्राणामितगतः सुताम् ।
 मुलोचनानामत.....स्तसारङ्गलोचनाम् ॥ १८३ ॥
 रममाणस्तथा तत्र लेभे विद्याधरेश्वरः ।
 प्रतीहारं स्वयं प्राप्तं सनन्दिनमिवेश्वरम् ॥ १८४ ॥
 चण्डसिंहप्रमृतिभिर्दयितामिश्र संगतः ।
 यदस्वानजविद्यामिर्वयस्यानानिनाय सः ॥ १८५ ॥
 श्रुतप्रणामांस्तान्दृष्ट्वा न्यपृच्छन्नरवाहनः ।
 क युष्माभिरियाङ्कालः क्षपितः प्रेक्षितै रतिः ॥ १८६ ॥

उवाच गोमुखः पूर्वं देव तस्मिन्महारेणे ।
 क्षितौ मानसवेगेन प्राप्तोऽहं किं वटाटवीम् ॥ १८७ ॥
 तत्राहं शोकविधुरो यत्नान्मर्तुं समुद्यतः ।
 आश्वासितो ब्राह्मणेन स्वामिनं ब्रह्मसीत्यथ ॥ १८८ ॥
 नागस्वामी स मामाह पुराहं पाटलापुरे ।
 अवन्मूर्जङ्घनीर्नापि लिपिमात्रबुधोऽभवम् ॥ १८९ ॥
 तत्रोऽहं लजितो भिक्षाव्रतो भस्मकपालमृत् ।
 अवापं योपितादत्तं रक्ताक्षं सत्कृपावकः ॥ १९० ॥
 अपरा मम तद्दीक्ष्य हस्ते ग्राह सुराङ्गना ।
 कथा स्तोम्य...दत्त्वेदं क्षाकिन्या रक्तमम्बुजम् ॥ १९१ ॥
 श्रुत्येत्यहमपश्यं तं स्वकरे पौरुषं करम् ।
 ततोऽहं तद्विरा गत्वा सुरभिं शरणं गतः ॥ १९२ ॥
 रक्षितो रजनीमेकां तयाहं क्षाकिनीमथात् ।
 तद्विरा श्रुतिसोमाख्यमाचार्यं शरणं गतः ॥ १९३ ॥
 तेनापि रजनीमेकां रक्षितोऽस्मि परेऽहनि ।
 विप्रष्टः परिसंख्यायां प्राप्तोऽहं खेचरीगणैः ॥ १९४ ॥
 भगैवायं भगैवायमिति तासां हरारवे ।
 उक्तोऽस्मि पतितो दैवादायुःशेषेऽथ चापरम् ॥ १९५ ॥
 ततो निश्चि च यक्षिण्या संगतः श्यामशुक्लया ।
 श्रुतो निजप्रमावाचस्तेनाहं वेद्यनागतम् ॥ १९६ ॥
 प्रमुक्तवेश्वरवरान्प्राप्तवान्नरवाहनः ।
 न क्षराद्रक्षति च स गामुवाचेति सोऽग्रजः ॥ १९७ ॥
 उक्तोऽहं तदनुज्ञातो विद्यया दिव्यरूपया ।
 स्वत्यादमूलमानीतो धन्योऽस्मि सफलः क्षणः ॥ १९८ ॥
 इति गोमुखकथा ॥ ७ ॥

गोमुखेनेति कथितं मरुभूतिर्मभापत ।
 अस्म्यहं पातितस्त्रेण मूर्च्छितः शून्यकानने ॥ १९९ ॥
 सरितः शीतलाख्यायास्ततस्तीरं महामुनिम् ।
 अपश्यं तेन चास्म्युक्तः शुभं ते न चिरादिति ॥ २०० ॥
 ततस्तत्तटिनीस्त्राताः पीनोन्नतपयोधराः ।
 कान्ता दृष्ट्वा मया पृष्टः प्रोवाच क्षुभितो मुनिः ॥ २०१ ॥
 एकस्या वस्त्रममलं वीरोपान्तात्त्वमानय ।
 ततो ज्ञास्यसि वृत्तान्तमिति श्रुत्वा हृतं मया ॥ २०२ ॥
 यातास्यन्यासु चैवैका हेमकुम्भोपमस्तनी ।
 विस्तीर्णश्रोणिपुलिना नदीव प्राह रूपिणी ॥ २०३ ॥
 मम मुञ्चांशुकं क्षिप्रमहं विद्याधरी मया ।
 शंभोर्वराचक्रवर्ती द्रष्टव्यो नरवाहनः ॥ २०४ ॥
 इति श्रुत्वा प्रहृष्टोऽहं तथा सुरतसंगतम् ।
 तमपश्यं मुनिवरं दुर्निवारो हि मन्मथः ॥ २०५ ॥
 ततो विमुच्य सा गर्भं कदलीपल्लवाङ्गना ।
 मुनिं प्राह स्वयं जित्वा भुक्तेन सिद्धिमाप्स्यसि ॥ २०६ ॥
 इति श्रुत्वा तथा कृत्वा मुद्दवेदमिति सोऽवदत् ।
 प्रत्याख्यातं मया सर्वं भुक्त्वा स त्रिदिवं ययौ ॥ २०७ ॥
 तस्य सिद्धिं परां दृष्ट्वा पश्चात्तापमहं गतः ।
 तत्करग्रस्तसिद्धान्नकणयुग्मममक्षयम् ॥ २०८ ॥
 तेनाहं सततं तप्तकाञ्चनष्ठीवतां गतः ।
 पराङ्गनागृहं यातः कस्य नोन्मादनं धनम् ॥ २०९ ॥
 सुवर्णष्ठीविलं दृष्ट्वा सप्त मां वृद्धलुब्धिरी ।
 अस्तलोकार्थविमवा कालजिह्वेव मीषणा ॥ २१० ॥
 विधाय वमनद्रव्यं मम वान्तं ततोऽन्यथा ।
 तदन्नरत्नयुगलं निर्गीर्यालिङ्गितो ययौ ॥ २११ ॥

ततो नष्टदिरण्योऽहं निर्गतो वञ्चितस्त्वया ।
 श्वजिह्वामिरिव स्त्रीणां लीढः को नैति रिक्तताम् ॥ २१२ ॥
 आराध्य चण्डिकां देवीं तद्वरादहमागतः ।
 त्वत्पादमूलमानीतः सिद्धया तत्र विद्यया ॥ २१३ ॥
 इति मरुभूतिकथा ॥ ८ ॥

इत्युक्त्वा विरते तस्मिन्दृष्टो हरिशिखोऽब्रवीत् ।
 उज्जयिन्यामहं देव पातितस्त्रेन माषिना ॥ २१४ ॥
 दुःखाद्धोरे महाकालश्मयाने मर्तुमुद्यतः ।
 पुंसां प्रियवियोगमेवेहत्यागोऽस्ति शीतलः ॥ २१५ ॥
 बह्विप्रवेशकामं मां दृष्ट्वा मृताधिपोऽबदत् ।
 कौलसङ्घो न मर्तव्यं त्वया जीवति ते प्रभुः ॥ २१६ ॥
 महेश्वररात्सोऽऽस्ति सर्वविद्याधरेश्वरः ।
 वृतः समस्तविद्याभिः संपासश्चकवर्तिताम् ॥ २१७ ॥
 इति श्रुत्वा ब्रह्मोऽहमाहृतस्तविद्यया ।
 त्वत्पादमूलं संपातः सुकृतीव शुभां गतिम् ॥ २१८ ॥
 इति हरिसिलकथा ॥ ९ ॥

इति सित्वा निजकथाविनोदैनरवाहनः ।
 सज्जीकृत्यलम्भोधिर्निर्ययौ विजयोत्सुकः ॥ २१९ ॥
 तत्सोमदुन्दुभिध्वानपूरिताशामुखे दिवि ।
 अमवत्पुष्करोद्भ्रान्तपुष्करावर्तकप्रमः ॥ २२० ॥
 त्रिस्तीर्णत्रिधास्तेनैव बधस्या गोमुखादयः ।
 तद्विभानं महापद्मास्थासन्रणोत्सुकः ॥ २२१ ॥
 ततः समाययौ धीरो गौरिसुण्डः क्रुधा ज्वलन् ।
 शिरा मानसवेगेन सेनासत्रतिना वरः ॥ २२२ ॥
 तत्र युद्धममृद्धोरे चित्रासितपुरासुरम् ।
 चण्डैर्हिंसितसैर्वारैर्गौरीमुण्डानुयायिनाम् ॥ २२३ ॥

नरवाहनदत्तोऽथ हत्वा तमपि दुर्मदम् ।

घोरं मानसवेगाख्यं स्वङ्गाग्रच्छिन्नमस्तकम् ॥ २२४ ॥

गौरीमुण्डं वधप्राप्तं नावधीत्करुणामयः ।

जग्राह तद्वलं सर्वं संप्राप्य मधुरस्मितः ॥ २२५ ॥

गौरीमुण्डपुरं प्राप्य राजधानीं प्रविश्य सः ।

निरुद्धामानिनायाशु प्रियां मदनमञ्जुकाम् ॥ २२६ ॥

इति मानसवेगाधिवधः ॥ १० ॥

विद्याधरवरोद्याने दयिताभिः पिबन्मधु ।

विजहार ततः श्रीमान्वयस्यैर्नरवाहनः ॥ २२७ ॥

गौरीमुण्डस्य तनयां कान्तां मन्दिरिकाभिधाम् ।

परिणीयामितगतिप्रमुखैः सेवितो बभौ ॥ २२८ ॥

अत्रान्तरे विदित्वासौ चारैः समरसंमुखम् ।

जैतुं मन्दरदेवोऽख्यं चक्रे मनसि विक्रमम् ॥ २२९ ॥

स संनद्धबलाम्बोधिर्निर्गतो नरवाहनः ।

चक्रवर्ती परां प्राप्य स्वसारं तस्य सुन्दरीम् ॥ २३० ॥

तस्याः सख्यश्चतस्रो या विद्याधरनृपात्मजाः ।

समं विवाहः कर्तव्यः संविज्ञासामभूदिति ॥ २३१ ॥

एकैव परिणीताभूत्त्वां(?)वि.....विमुखाः क्षणम् ।

तद्वैमुस्या(?) विजहास दमितां नरवाहनः ॥ २३२ ॥

कालकूटाधिनाथस्य तनयां कालिकाभिधाम् ।

महादंष्ट्रस्य तु सुतां विद्युत्कुलां मृगीदृशम् ॥ २३३ ॥

मद्गरस्यात्मजामिन्दुवदनां चरमतङ्गिनीम् ।

चित्रकूटेश्वरस्यापि पुत्रीं पद्मप्रभामिति ॥ २३४ ॥

तद्वाक्यात्ताः सरसीस्तस्याः परिणीयामवत्पुत्री ।

तद्विलासरसावासनवयौवनमण्डितः ॥ २३५ ॥

अथ रिपुवधयात्रायातसेनासमुद्रः

प्रतिहतघनमेरीषोषसंपूरिताशः ।

त्रिनयनवरलक्ष्मीं प्राप्तसिद्धिप्रसिद्धः

पणिरिव तनु यायात्त्वां पुरीं राजपुत्रः ॥ २३६ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचितायां बृहत्कथामञ्जर्यां पञ्चलम्बको नाम त्रयोदशो लम्बकः ।

रत्नप्रमालम्बकः ।

नमोऽस्तु भावनामात्रनानावर्णविधायिने ।

व्यक्षचित्रकृते लक्ष्यत्रैलोक्याश्चर्यकारिणे ॥ १ ॥

नरबाहनदत्तोऽथ प्रौढयौवनमण्डितः ।

अमृद्विलासलतिकविकासकुसुमाकरः ॥ २ ॥

(सं हेमकदलीकुञ्जे पारिजातलतावने ।

मन्दारामोदसुमगे विजहार सुहृद्वृतः ॥ ३ ॥

ततः प्राह समम्येत्य हर्षपूर्णरूपन्तकः(?) ।

आश्चर्यदर्शनाकोशनयनो नयनोत्सुकः ॥ ४ ॥

सखे व्योमावती नाम दृष्टा विद्याधरी मया ।

मनोजकुञ्जरस्येव निमज्जनसरोजिनी ॥ ५ ॥

त्वां द्रष्टुमिच्छति क्षिप्रमेहीत्याकर्ण्य तद्वचः ।

तूर्णं तद्देशमन्यागात्कौतुकात्तरवाहनः ॥ ६ ॥

पतितं लान्छनमृगं स्वयमन्वेष्टुमागतम् ।

स ददर्श शशाङ्कस्य कान्तिं मूर्तिमतीमिव ॥ ७ ॥

त्रिवलीकुलसंसारिहारहंसा मनोयुवः ।

हरहुंकारहृतमुद्भिर्वापणनदीमिव ॥ ८ ॥

निमग्नमिव शृङ्गारे संक्रान्तामिव यौवने ।

त्रिन्वितामिव लवण्ये मिलितामिव विभ्रमे ॥ ९ ॥

तां विलोक्य मनोमीनविस्तीर्णगुणजालिकाम् ।
 वैलिकां मन्मथस्येव यात्रामङ्गलमालिकाम् ॥ १० ॥
 अर्च्यमान इवालोलकटाक्षोत्पलदामभिः ।
 तथा मनोभवधिया प्रोवाच नरवाहनः ॥ ११ ॥
 कस्यासि कान्तिकल्लोलमाला कमललोचने ।
 कैर्मागधेयैरसाकं दर्शितामृतवाहिनी ॥ १२ ॥
 श्रुत्वेति तद्वचो हृष्टा सावददृशनांशुभिः ।
 चन्द्रोपमा म्लानिमिव क्षालयन्ती कपोलयोः ॥ १३ ॥
 अस्ति युष्मद्यशःशुभ्रः श्रीमान्मलयमूधरः ।
 यस्य प्रमाणं माहात्म्ये गौरीगुरुरिति श्रुतिः ॥ १४ ॥
 नलिनासनहंसालीकलक्वाणमनोहरा ।
 स्वकीर्तिर्वैजयन्तीव भाति यस्य त्रिमार्गगा ॥ १५ ॥
 कान्तिपिञ्जरितव्योम्नि तस्य काञ्चनशेखरे ।
 अस्ति हेमप्रभो नाम विद्याधरधरापतिः ॥ १६ ॥
 अलङ्कारप्रभा नाम दयिता तस्य सुन्दरी ।
 दिशो विभाति यत्कान्तिभ्रान्तिर्सीमन्तिता इव ॥ १७ ॥
 सा कदाचित्प्रियं दृष्ट्वा चिन्तास्त्रिमितलोचनम् ।
 उवाच देव कोऽयं ते वीरस्य धृतिविहवः ॥ १८ ॥
 मयप्रदोऽसि शत्रुभ्यो द्विजेभ्यः कनकप्रदः ।
 प्रीतिप्रदोऽसि कान्ताभ्यो राजकुञ्जर गीयसे ॥ १९ ॥
 इति प्रियावचः श्रुत्वा ग्राह्य हेमप्रभो मुहुः ।
 चिन्तानलपरिस्पन्दमुच्छ्वासैर्दीपयन्निव ॥ २० ॥
 वंशमुक्तामणिः पुत्रो नास्त्यपन्यस्य मे शुभम् ।
 निष्पला चन्दनस्येव न ग्रीः प्रीणाति मे मनः ॥ २१ ॥
 नेत्रामृतं श्रुतिमुपाहृदयानन्दनिर्भरः ।
 पीयूषपेशलस्पर्शः किं किं नाम न पुत्रकः ॥ २२ ॥

अवाप्यते धनं धन्यैर्यज्ञश्च विशदाशयैः ।
 निरवचैस्तथा विद्यास्तनयस्तु सुदुर्लभः ॥ २३ ॥
 राजा ब्रह्मघनो नाम चित्रकूटाधिपोऽभवत् ।
 सेवकः सत्त्वशीलस्त्वस्त्यामृदुचिताशयः ॥ २४ ॥
 स सुवर्णस्ततं लेभे राज्ञः प्रत्यहवेतनम् ।
 निजमोक्षणपर्यन्तं तच्चार्यिम्यः सदा ददौ ॥ २५ ॥
 विवृत्तानि निधानानि तस्योदारमतेः पुरः ।
 आसंस्तद्विधैः सोऽर्थिसार्धसंख्यामपूरयत् ॥ २६ ॥
 सगोत्रैः क्षत्रुभिर्दाता स राज्ञे विनिवेदितः ।
 निधिपूर्ण इति क्षिपं नृपाहूतश्च सोऽवदत् ॥ २७ ॥
 देव प्राप्तनिधानोऽहमिहापि त्वत्पुरो लभे ।
 गृह्णाणेति समुद्धात्य निधानं भूभुजे ददौ ॥ २८ ॥
 एवं स सत्त्वसंप्राप्तविभवो नृषपूजितः ।
 अम्बकप्रतसंपन्नो दाता पुत्रमयाचत ॥ २९ ॥
 तमाह तुष्टो भगवान्वत्स सिद्धिमवाप्स्यसि ।
 न तु द्रक्ष्यसि पुत्रस्य जन्मन्यसिन्मुस्ताम्बुजम् ॥ ३० ॥
 इत्येवं सत्त्वशीलेन तुष्टेऽपि शशिशेखरे ।
 न प्राप्तस्तनयो देवि कुलश्रीमणिदर्पणः ॥ ३१ ॥

इति सत्त्वशीलख्यायिका ॥ १ ॥

अलंकारवती श्रुत्वा पत्युरित्युचितं धनः ।
 उवाच देव धन्यस्य किं नाम तव दुर्लभम् ॥ ३२ ॥
 अतिनां दानशीलानां भक्तानां पार्वतीपतौ ।
 अर्चीनाः सिद्धयः सर्वाः कियन्मार्गं तु पुत्रकाः ॥ ३३ ॥
 रावा विक्रमलुब्धोऽमृतपुरे पाटलिपुत्रके ।
 यत्सत्त्वकौमुदीषौठा विबभौ भुवनावली ॥ ३४ ॥

इन्दीवरप्रभा नाम तस्येन्दीवरलोचना ।
 वभूव भार्या मर्यादा धातुर्लावण्यकौशले ॥ ३५ ॥
 स कदाचिन्मृगक्रीडारणकेलिकुतूहली ।
 विवेश विपिनं धन्वी विचित्रदृढसौष्ठवः ॥ ३६ ॥
 तत्रापश्यन्मग्नसिद्धौ बिल्वहोमपरायणम् ।
 द्विजं ज्वलितसप्तार्चिःपिङ्गीकृतदिगन्तरम् ॥ ३७ ॥
 यदा काञ्चनतां याति श्रीफलं पावकान्तरे ।
 तदा मग्नस्य सिद्धस्य लक्षणं कथितं बुधैः ॥ ३८ ॥
 जुह्वतस्तस्य रुचिरं न फलं प्राप हेमताम् ।
 ततो राजा समभ्येत्य ददर्शाहुतितत्परम् ॥ ३९ ॥
 तं दृष्ट्वा ज्वलिते बहौ बिल्वमेकं स कौतुकात् ।
 चिक्षेप तत्कुधा विप्रो भुक्कुटीमीपणोऽभवत् ॥ ४० ॥
 अज्ञातस्त्वमनाचम्य सर्वस्पर्शो विशृङ्खलः ।
 बहौ जुहोपि पापात्मन्नित्याह स महीपतिम् ॥ ४१ ॥
 तत्फलं भूमुजा क्षिप्रं द्विजेन फलमण्डलम् ।
 हुतं राज्ञः काञ्चनतां यावन्नैव द्विजन्मनः ॥ ४२ ॥
 तद्विलोक्याद्भुतं विप्रो विस्मयस्थगिताकृतिः ।
 वभूव मग्नगणनाविच्छेदाद्विचलाधरः ॥ ४३ ॥
 ततः स्वयं जातवेदाः समुत्थाय महीभुजे ।
 ददौ फलं सहस्तेन तदपृच्छच्च सोऽग्रजः ॥ ४४ ॥
 मगवन्नियमस्थस्य न मेऽद्यापि प्रसीदसि ।
 विकीर्णाचारमनसः कथं तुष्टोऽसि भूपतेः ॥ ४५ ॥
 इत्युक्तः सोऽब्रवीद्वद्विः संकल्पोऽस्याभवद्दृढः ।
 शिरदिच्छत्वा जुहोमीति दर्शनेन विना मम ॥ ४६ ॥
 त्वं तु शुष्कक्रियातघ्नः केवलं मग्नसाधकः ।
 सिद्धिः सत्यवतामेव संकोचो ह्यतिसंयमः ॥ ४७ ॥

इत्युक्त्वा भगवानग्निः कृतकृत्यं नृपं व्यधात् ।
 तस्यैव वाक्याद्विप्रं तं विद्यायान्तरधीयत ॥ ४८ ॥
 ततः स्वनगरं गत्वा महासत्त्वो महीगतिः ।
 इन्दीवरप्रमासक्तश्चचारोद्यानभूमिषु ॥ ४९ ॥
 घातुवादी ततोऽभ्येत्य घातुशर्माभिधो वचः ।
 तमभ्यधादहं तान् प्रिदये देव फाञ्चनम् ॥ ५० ॥
 हेमकारं समाह्वय द्वाचिते शुक्लपिण्डके ।
 तैरं राज्ञा समादिष्टो बहु विशेषं चूर्णकम् ॥ ५१ ॥
 हृते यश्चकुमारेण तत्र चूर्णे मुहुर्मुहुः ।
 न तत्कनकतां श्रप विघ्नेनादृश्यभूर्तिना ॥ ५२ ॥
 नरेश्वरोऽयं चिदेष चूर्णं तत्कौतुकात्स्वयम् ।
 तच्चूर्णपातात्सर्वं तद्वययौ व्यतरूपताम् ॥ ५३ ॥
 इत्येवं शुद्धसत्त्वानामनपेक्षितसंयनाः ।
 भवन्ति सिद्धयो देय त्वं च सत्त्ववतां वरः ॥ ५४ ॥

इति महासत्त्वाख्यायिका ॥ २ ॥

इति कान्तावचः श्रुत्वा हृष्टो विद्याधरेश्वरः ।
 मनःप्रसादादासन्नं पुत्रलभममन्यत ॥ ५५ ॥
 ततः प्रयतवान्विचतः शुचिर्जयपराक्रमः ।
 दर्शनास्तीर्य तुष्टाव स समार्यो महेश्वरम् ॥ ५६ ॥
 धनमः सप्तसंकल्पपूर्णाकल्पशास्त्रिने ।
 कुमारशुरवे शुभ्रयोगमोक्षफलश्रिने ॥ ५७ ॥
 नमश्चिद्भगनामोगमासेने बोधमासुते ।
 अविभिन्नस्वभावस्य भवायामयदायिने ॥ ५८ ॥
 नमः प्रकाशं व्याक्रोशहृत्कुशेशयशालिने ।
 शिवाय शमिताशेषदोषायाविषयस्पृशे ॥ ५९ ॥

अमन्दानन्दनिस्पन्दमदिराम्बुधिबिन्दवे ।
 नमः कुन्दोदरस्पन्दस्वच्छन्दायेन्दुमौलिने ॥ ६० ॥
 नमः कालकलाजालहेलाकवलकेलये ।
 कालीकटाक्षवलनाकलिताय कपालिने ॥ ६१ ॥
 नमश्चर्माम्बरभृते घर्माधर्मगुणच्छिदे ।
 कुर्मो नर्मविनिर्माणसर्वसंसारकर्मणे ॥ ६२ ॥
 नमो दक्षमत्स्याक्षान्तिक्षणलक्ष्याक्षिवह्नये ।
 क्षुभ्यत्क्षयक्षपाक्षिप्रसंक्षेपाय त्रिचक्षुषे ॥ ६३ ॥
 नमः शिवाय मीमाय मङ्गलायास्त्रिधारिणे ।
 श्मशानस्याय जटिने वामार्घयोर्ध्वरेतसे ॥ ६४ ॥
 महेश्वराय नम्राय हराय वरदायिने ।
 अनीलनीलकण्ठाय विचित्राय त्रिशूलिने ॥ ६५ ॥
 निर्लेपनित्यनिरुपाधिनिरञ्जनाय
 संविद्विकाशकुसुमोत्सवनन्दनाय ।
 वैराग्यसिक्तशमपल्लवभक्तिवल्ली-
 नादायमानमधुपाय नमः शिवाय ॥ ६६ ॥
 इति विद्याधरेणाशु स्तुतः श्रीमानुमापतिः ।
 वरमस्मै सभार्याय पार्वतीशो ददौ तदा ॥ ६७ ॥
 अचिरेणाप्स्यसि सुतं हेमप्रभ कुलोचितम् ।
 कन्यां च नरबाहस्य भाविनीं बल्लभामिति ॥ ६८ ॥
 वरं हेमप्रभः प्राप्य सुहृद्यो दयितासखः ।
 द्विजेभ्यः प्रददौ भूरिमणिकाञ्चनमौक्तिकम् ॥ ६९ ॥
 ततः कालेन तनयं विद्येव विनयं सती ।
 अलंकारप्रभासूत माहात्म्यमिति संततिः ॥ ७० ॥
 स यज्ञप्रमनामामूत्कुमारो वंशमूषणः ।
 यः प्राप वृद्धिं सहसा कुमार इव शक्तिमान् ॥ ७१ ॥

जयासूत पुनर्देवी तनयामतनुवृत्तिम् ।
 सत्संगतिरिव प्रीतिं मत्तमुत्तेरिवाग्रयम् ॥ ७२ ॥
 रत्नप्रमाभिधानामृतकन्यकासौ मनोमुवः ।
 रत्नमालेव विहिता वेषसा विहितैर्गुणैः ॥ ७३ ॥
 वज्रमभोऽयं वृत्तिमान्नुवा क्षीरोदवासिनः ।
 पुत्रीममृतवर्णस्य प्राप्तामृतवर्ता वधूम् ॥ ७४ ॥
 विद्याधरेन्द्रतनयां स तामासाद्य मुन्दरीम् ।
 वभार कान्तिं कामस्य रतिसंभोगशालिनः ॥ ७५ ॥
 अथ हेमप्रभो हृष्टा पुत्रमात्मगुणाविकम् ।
 यौवराज्येऽभिपेक्ष्याद्यु परां प्रीतिमवासवान् ॥ ७६ ॥
 साहं रत्नप्रमा नाम कन्या हेमप्रमात्मजा ।
 अश्रौषं त्वद्यः शुभ्रं वर्णमानं पितुर्गृहे ॥ ७७ ॥
 ततो मां मृग्यसंतप्तममिलापवशीकृताम् ।
 उवाच पार्वती स्वमे पुत्रि या विदुषा भव ॥ ७८ ॥
 प्रातस्त्वं नरवाहेन मुहूर्ते शुभलक्षणे ।
 स्वयं गत्वा तदुद्देशं पाणिग्रहणमाप्स्यसि ॥ ७९ ॥
 इति स्वमे यमादिष्टं देव्या मात्रे न्यवेदयम् ।
 तद्विना त्वामिदं न प्राप्तुं विद्यया प्रभो ॥ ८० ॥
 लक्ष्मणेति लज्जाललितक्षामाक्षरविसंस्तुता ।
 गतानना महीं चक्रे दृष्ट्वा नीलोत्पलाकुलम् ॥ ८१ ॥
 मुस्तालसौरमाकृष्टगुजद्रुमरविभ्रमम् ।
 रत्नप्रमावचः श्रुत्वा लहर्षं नरवाहनः ॥ ८२ ॥
 ततः समाययौ व्योम्ना हेमा संपूरयन्निव ।
 दिशो महिम्ना वपुषः श्रीमान्हेमप्रमः स्तयम् ॥ ८३ ॥
 मौलिरत्नोज्ज्वललोको वत्सराजेन पूजितः ।
 मेले कुण्डलकेयूरकान्तिपिङ्गः स वत्सगाम् ॥ ८४ ॥

निजामिजनमावेद्य वृत्तान्तं वत्सभूमुजे ।
 तं ययाचे ततः पुत्रं पुत्रीपरिणयश्रिये ॥ ८५ ॥
 दत्तानुज्ञं स गुरुणा वयस्यैः सहितस्ततः ।
 यौगन्धरायणोपेतं निनाय नरवाहनम् ॥ ८६ ॥
 अथ विद्याधरपुरे महोत्सवविमूषिते ।
 भेजे विवाहवसुधां प्रहृष्टो नरवाहनः ॥ ८७ ॥
 ततो रत्नप्रभा देवी विवेश विशदद्युतिः ।
 क्षीरोदनिर्गतेव श्रीः सितचीनांशुकोज्ज्वला ॥ ८८ ॥
 निःश्वाससौरमाहूतैर्भ्रमरैराकुलीकृता ।
 रतिदीक्षां गृहाणेति स्मरस्याज्ञाक्षरैरिव ॥ ८९ ॥
 तारहारांशुपटलैस्तरङ्गितकुचस्थली ।
 चल्लभालोकनानन्दे मूर्तेरिव पुरस्थितैः ॥ ९० ॥
 वह्निप्रदक्षिणे तस्या मुखं धूमलताकुलम् ।
 क्षणं वभार लोलालिमालाङ्गकमलश्रियम् ॥ ९१ ॥
 प्रियपाणिग्रहे तस्या बभुर्दार्ढ्यनखांशवः ।
 वरपत्न्योः करे लग्नाः पुष्पचापशरा इव ॥ ९२ ॥
 अरुन्धती तनौ तस्या निर्गतं श्रवणोत्पलम् ।
 पत्युः कटाक्षमालायाः प्राप प्रथमदूतताम् ॥ ९३ ॥
 निर्वर्तितविवाहोऽथ रत्नपर्यङ्कमासितः ।
 प्रियाविन्यस्तनयनो जहर्ष नरवाहनः ॥ ९४ ॥
 कपोलफलके तस्याः स मुहुर्बिम्बितो वभौ ।
 त्यज लज्जामिति स्मैरं शशी वक्तुमिवागतः ॥ ९५ ॥
 मुक्तावलीरत्नमध्ये बिम्बितां ॥ दधद्वधूम् ।
 वभार विभ्रमं शौरेर्लक्ष्मीर्ललितवक्षसः ॥ ९६ ॥
 ततो हेमप्रभादिष्टं प्रविश्य मणिमन्दिरम् ।
 शान्ताविलासरसिको बभूव नरवाहनः ॥ ९७ ॥

वज्रममो बभूवास्य प्रीतये दयिताग्रजः ।

सर्वविभ्रमलीलासु हृदयसेव दर्पणः ॥ ९८ ॥

विद्याधरेन्द्रमामडय ततो रत्नप्रभासस्तुः ।

यौगन्धरायणगिरा कौशाम्बी सानुगो ययौ ॥ ९९ ॥

रत्नप्रभायुतं दृष्ट्वा बंशमुच्चार्य मुतम् ।

तत्र मूर्धितमात्मानं मेने वत्सनरेश्वरः ॥ १०० ॥

इति रत्नप्रमाख्यायिका ॥ ३ ॥

अन्तःपुरं प्रविश्याय मित्रादिष्टं नृपात्मजः ।

रत्नप्रमानुगो मेजे विलासरसनिर्घृतिम् ॥ १०१ ॥

ततो व्यजिज्ञपद्मरातमम्रेत्याशु कञ्चुकी ।

गोमुखप्रसुप्ताः सर्वे देव द्वारि स्थिता इति ॥ १०२ ॥

ततो रत्नप्रभा प्राह तूर्णमेव प्रवेशय ।

आर्यपुत्रस्य सचिवास्ते हि विश्रम्भसाक्षिणः ॥ १०३ ॥

इति तद्वचसा तेषु प्रविष्टेष्वधिलम्बितम् ।

उवाच हासकरुणासेराप्तो नरवाहनः ॥ १०४ ॥

प्रिये निर्गलक्रीडासच्छन्दालापविभ्रमे ।

विभ्रः कञ्चुक्रियर्गोऽयं कामिनां केन निर्मितः ॥ १०५ ॥

रत्नप्रभा निश्चम्येति प्रोवाच ललितसिता ।

देव कञ्चुक्रियर्गोऽयं राजलक्ष्मीविमूषणः ॥ १०६ ॥

अन्तःपुराणि रक्षन्ति न कुब्जाजडवामनाः ।

निजशीलं सुसत्त्वानां रक्षा हरिणचक्षुषाम् ॥ १०७ ॥

स्त्वत्पुष्पिणीपि संजातस्तत्त्वितोऽभवत् ।

वैस्माशीतिसहस्राणि कलत्रं तरलश्रुषाम् ॥ १०८ ॥

हरेरिवामवत्तस्य गजः श्वेतो नमश्चरः ।

यमाख्या जगद्भ्रान्त्वा लेभे मूर्धतिपुत्रिकाः ॥ १०९ ॥

ततः कदाचिदाकाशे ताडितो व्याडिना रुपा ।
 तुण्डेन पक्षिणा नागः सोऽपतद्भृशविह्वलः ॥ ११० ॥
 न शशाक महाकायः समुत्थातुं महीतलात् ।
 स जनैश्चाल्यमानोऽपि व्यसनादिव नष्टधीः ॥ १११ ॥
 ततः पञ्चसु यातेषु वासरेषु सुदुःखितः ।
 नृपः शोचन्निराहारः शिरश्छेतुं समुद्ययौ ॥ ११२ ॥
 तत्सत्त्वचकिताः प्राहुर्देवा गगनचारिणः ।
 राजन्साध्वीकरस्पर्शादुत्तिष्ठति तव द्विपः ॥ ११३ ॥
 इत्याकाशवचः श्रुत्वा हृष्टो रत्नाधिपो नृपः ।
 आनिनायामृतलतां स तां प्रथमवल्लभाम् ॥ ११४ ॥
 तैत्पाणिना कृतस्पर्शो नोदतिष्ठत्स कुञ्जरः ।
 कुर्वन्मदमपीपङ्कैरिव तां मलिनाननाम् ॥ ११५ ॥
 ततः क्रमेण नृपतेः समस्तैस्त्वैर्वपूजनैः ।
 स्पृश्यमानोऽपि वसुधां न तत्याज महागजः ॥ ११६ ॥
 यथा यथा प्रयान्ति स्म विमुखा राजयोषितः ।
 तथा तथा लज्जयेव नृपः पातालमाविशत् ॥ ११७ ॥
 मग्निपुत्रवधूष्णन्दे तथैव विफले गते ।
 आययौ हर्षगुप्ताख्यो वणिग्देशान्तरागतः ॥ ११८ ॥
 तस्य शीलवती भार्या कटके कैर्मचारिणी ।
 मनोवाक्कायनिष्ठाभिः साध्वी पस्पर्श तं गजम् ॥ ११९ ॥
 तथा स्पृष्टः स सहसा समुत्तस्यौ गजाधिपः ।
 सह लोकनिनादेन हिमवानिव जङ्गमः ॥ १२० ॥
 ततः शीलवती राजा वणिजं चार्थसंचयैः ।
 पूजयित्वा प्रियाः सर्वा मेने संकल्पदूषिताः ॥ १२१ ॥
 अध्यानुजां शीलवत्या राजदत्ताभिधां नृपः ।
 परिणीय चकारास्यै भन्दिरं सागरान्तरा ॥ १२२ ॥

असती हि विवाहे सा निर्दिष्टा गणकैर्यदा ।
 तदा निष्पुरुषे द्वीपे घरा तस्याः स्थितिं व्यधात् ॥ १२३ ॥
 सदा व्योम्ना गजेन्द्रेण तदन्तःपुरमेत्य सः ।
 विजहार स्मरस्मेरो निवर्तितनृपक्रियः ॥ १२४ ॥
 पौरकार्योन्मुखं गन्तुं प्रस्तुतं सा प्रभुं पतिम् ।
 न गन्तव्यमिति प्राह हेल्या हरिणेश्मणा ॥ १२५ ॥
 स्थित्वा क्षणं तद्विलासरसिको नृपतिः पुनः ।
 समेप्यामीति तामुक्त्वा जगामाकाशदन्तिना ॥ १२६ ॥
 ततः फलहकासक्तो मग्नप्रवहणो नरः ।
 तरन्समुद्रलहरीः क्षिप्तस्तं देशमाययौ ॥ १२७ ॥
 स राजदत्तानिलयं प्रविवेश सविस्मयः ।
 कौस्तुकाच्च तथा पृष्टो वभाषे जातसंभ्रमः ॥ १२८ ॥
 अहं पवनसेनाख्यः सुमगे माधुरो वणिक् ।
 रत्नहेमार्जने धात्रा कृतः सर्वत्र निष्फलः ॥ १२९ ॥
 ततो विच्छिन्नसर्वांशं मां बहिषतनोचतम् ।
 धेनिनाम्बुविमात्रायां जीवदत्ताभिधौ वणिक् ॥ १३० ॥
 तत्र प्रवहणे भग्ने विस्फूर्जत्स्फारमास्तैः ।
 अहं फलहकावात्स्या दैवात्प्राप्तो महीमिमाम् ॥ १३१ ॥
 राजदत्ता निशम्येति भूरिपानमदाकुला ।
 विश्रान्तमुपरिष्ठापं कण्ठे सोत्कण्ठमग्रहीत् ॥ १३२ ॥
 धनं कुलं परिचयं नर्माभ्यासं पथिस्मितम् ।
 अनिरीक्ष्य प्रवर्तन्ते रतौ मत्ता हि योषितः ॥ १३३ ॥
 अत्रान्तरे समम्येत्य राजा रत्नाधिपः प्रियाम् ।
 ददर्शागम्यदेशेऽपि तां केनापि समागताम् ॥ १३४ ॥
 तां दृष्ट्वा प्रौढकोणेऽपि मत्वा देवं सुदुर्जयम् ।
 न तं जघान निःसारसंसारपरिहारधीः ॥ १३५ ॥

वणिर्षवनसेनोऽपि गत्वा फलहंकाश्रयः ।
 अथ प्रवहणं प्राप वणिजः क्रोधवर्मणः ॥ १३६ ॥
 तेनोत्क्षिप्तः करुणया तस्यैवेर्ष्यावतो वधूम् ।
 दैवात्स भगिनीं यातो निहतस्त्रेन दुर्मतिः ॥ १३७ ॥
 रत्नाधिपोऽथ नृपतिर्नारायणपरायणः ।
 राज्यं ब्राह्मणसात्कृत्वा गजेन तपसे ययौ ॥ १३८ ॥
 ततो निपतितो व्योमः सहसा स महागजः ।
 पृष्ठो महीभुजा प्राह संप्राप्य निजमन्दिरम् ॥ १३९ ॥
 अहं श्वेतप्रभो नाम गन्धर्वो मलयालयः ।
 त्वं च देवप्रभो नाम नरनाथ ममाग्रजः ॥ १४० ॥
 ईर्ष्यावतस्तव पुरा दयितां रूपशालिनीम् ।
 महेश्वराग्रे गायन्तीं मुनिः कश्चिद्व्यलोकयत् ॥ १४१ ॥
 तद्विलोकनसंकुद्धः स मुनिस्त्वां ततोऽशपत् ।
 मर्त्यो भूत्वा प्रियतमां द्रष्टास्यन्यस्तामिति ॥ १४२ ॥
 शप्तं त्वामहमालोक्य गजेनापीडयन्मुनिम् ।
 तच्छ्लापादस्मि संप्राप्तो आतः कुञ्जरतामिमाम् ॥ १४३ ॥
 विष्णुप्रसादपर्यन्तः श्लापस्तेनायमावयोः ।
 दिष्टः स च परिक्षीणः संकल्पात्कैटभद्विषः ॥ १४४ ॥
 इत्युक्त्वा भूभुजा सार्धं प्राप्तो गन्धर्वतां द्विजः ।
 सगतः सिद्धगन्धर्वैः प्रययौ मलयाचलम् ॥ १४५ ॥
 शीलवत्यपि भूपालादाप्तैः कनकसंचयैः ।
 देवतायजनं चक्रे ब्राह्मणेभ्यश्च संचयम् ॥ १४६ ॥
 इति शीलवत्याख्यायिका ॥ ४ ॥
 इत्येवं निजजीलेन राजन्ते योषितः प्रभो ।
 ईर्ष्यावतां केवलं तु स्त्रीरक्षा मनसो मदः ॥ १४७ ॥

इति रत्नप्रभावाक्यं श्रुत्वा वत्सेश्वरात्मजः ।
 साधूक्तमिति संहृष्टो विस्रयादभ्यगात् ॥ १४८ ॥
 अथाह गोमुखस्तत्र कथाप्रस्तावकोविदः ।
 अस्मिन्निवान्तरे देव श्रूयतामिति कौतुकम् ॥ १४९ ॥
 अस्ति श्रीकण्ठदयिता सतीबोज्जयिनी पुरी ।
 मालतीस्फीतशान्तांशुमालाकलितकौमुदी ॥ १५० ॥
 अस्यां विभान्ति क्षीरोदधवलाः स्फटिकालयाः ।
 महाकालाट्टहासानां निहिता इव राशयः ॥ १५१ ॥
 कुशखली कृतयुगे त्रेतायां पद्मवत्यापि ।
 अम्बिका द्वापरे स्याता कलबुज्जयिनी च वा ॥ १५२ ॥
 इन्द्रवर्मा नृपस्तस्याममूदिन्द्र इवापरः ।
 असंख्यमत्स्यसहर्षादथ बान्धविकस्ततः ॥ १५३ ॥
 वणिद्धिश्चयदत्तास्यो द्यूतकारो महाव्ययः ।
 बभूव तत्पुरे सको मारुतान्मूलसौरमे ॥ १५४ ॥
 महाश्मशानं गत्वासौ शिलास्तम्बे विलेपनम् ।
 धृत्वा करतलगन्धमेकः पृष्ठं विलिम्पति ।
 नित्यसंघर्षणात्स्तम्बः क्षुण्णतां स समाययौ ॥ १५५ ॥
 कदाचिच्चित्रकारेण निहिता तत्र पार्वती ।
 रूपकारेण चोत्कीर्णा बभौ साक्षादिवागता ॥ १५६ ॥
 चतुःसमे तु लिम्पन्तं तत्र पृष्ठं समाकृति ।
 भक्त्या गौरीप्रणामाप्ता कापि विधाधराग्रना ॥ १५७ ॥
 कान्तिनिश्चयदत्तं तं ददर्श सरशालिनी ।
 पार्वतीमक्तिसंतोषान्मूर्तं फलमिवागतम् ॥ १५८ ॥
 अमिलापवती साय सुन्दरी तस्य विग्रहम् ।
 करेण कङ्कणवता पस्पर्शलक्षिताकृतिः ॥ १५९ ॥
 स तत्स्पर्शमृतासिक्तः परेऽहि प्राप्य तत्करम् ।
 अग्राह दर्शनाकाङ्क्षी ततः सा प्रकटामवत् ॥ १६० ॥

ततः समाययौ दीप्तः केशी नीलार्द्रमसच्छविः ।
 असिताद्रितटी दाववह्निव्यासेव जङ्गमा ॥ १७३ ॥
 कार्यच्छायेव तमसो मृत्योर्मुक्तेव वैणिका ।
 केशकन्धेव कालस्य ततो यक्षीं व्यदृश्यत ॥ १७४ ॥
 पारीव लम्बितोदागस्वानवाहितसौष्ठवम् ।
 नृत्यन्ती वादयन्तीव किन्नरं मण्डलान्तिके ॥ १७५ ॥
 कल्पान्तोद्भ्रान्तचण्डीशलढङ्गमहकस्तरा ।
 मन्त्रमालां पैपाठोच्चैर्घटयन्तीव दिक्छटान् ॥ १७६ ॥
 ततो ब्रतिनमेकं सा स्फारनेत्रा व्यलोकयत् ।
 दृष्टमात्रः स संजातमृद्भौ वह्नौ पपात च ॥ १७७ ॥
 तमर्षदग्धं भुक्त्वैव द्वितीयं सा व्यलोकयत् ।
 क्रमेणान्येषु भक्तेषु वर्णिग्भूतौ व्यचिन्तयत् ॥ १७८ ॥
 न मक्षितोऽनया यावदहमत्युग्रया मया ।
 तावद्युक्तिमुपाश्रित्य करिष्यामि यथोचितम् ॥ १७९ ॥
 शुद्धश्वास्या मया मन्त्रः स विचिन्तयत्य संभ्रमम् ।
 व्यग्रायां मांसमोगेऽस्यां तं जहाराशु किन्नरम् ॥ १८० ॥
 पपात च ततो मन्त्रं तेनोघच्छृण्वन्नन्दर्य ।
 पतिता सावदद्वीर त्वामस्मि शरणं गता ॥ १८१ ॥
 ततो निश्चयदत्तस्तां ररक्ष शरणं गताम् ।
 सौपकारेऽपि वीराणां न हि रीते पराक्रमः ॥ १८२ ॥
 स निवेद्यात्मवृत्तान्तं कृत्वा तामेव वाहनम् ।
 विद्याधरसुतां द्रष्टुं ययौ व्योम्ना हिमाचलम् ॥ १८३ ॥
 अधोद्ययौ सहस्रांशुर्वपाकुसुमपाटलः ।
 (चैकवाककुलोत्सृष्टं मूर्तं रागमिवोद्बहन् ॥ १८४ ॥

१. 'ध्र' ख. २. 'च' ख. ३. 'क्षे' ख. ४. 'शीलदत्त' ख. ५. 'जजापो' ख.
 ६. 'ह्रमाधैर्ममार च । त दृष्टिदग्धं मु' ख. ७. 'वपुर्गो' ख. ८. 'ए' ख.
 ९. 'सविका' ख. १०. एतत्त्रोदन्तर्गतपाठः ख-पुस्तके दृश्यते.
 ४३ वृ० मं०

ततो निश्चयदत्तं सा प्राह यक्षी कृताञ्जलिः ।
 नाहं शक्ता स्थिते मानौ गन्तुं लोकैकचक्षुषि ॥ १८५ ॥
 दिनं हि शर्वरीमूतं यक्षवेतालरक्षसाम् ।
 रात्रौ पुनः समेप्ये त्वामित्युक्त्वा सा ययौ क्षणात् ॥ १८६ ॥
 स तस्यां संप्रपातापां चचारैको वनान्तरे ।
 ततो ददर्श मग्नाङ्गं मर्कटं शुष्ककर्दमे ॥ १८७ ॥
 महौषविष्टवानीते रक्तलोचनसूचितम् ।
 मामुद्धरेति क्रन्दन्तं समुद्धृत्य स कौतुकी ।
 कोऽसीत्यपृच्छत्पृष्टस्तु कपिवक्त्रं प्रचक्रमे ॥ १८८ ॥
 वाराणस्याममृद्धिप्रश्नश्चन्द्रस्वामीति विश्रुतः ।
 सोमस्वामीति विख्यातस्तस्माहं तनयः प्रभो ॥ १८९ ॥
 श्रीगर्भनाम्नो वणिजो बन्धुदत्ताभिधा सुता ।
 भार्या वराहदत्तस्य सैरिणी मामसेवत ॥ १९० ॥
 गूढं तत्प्रेमविधग्मसंभोगमुभयसितेः ।
 सुमहानपि कालो मे सुखिनः क्षणवद्ययौ ॥ १९१ ॥
 ततः प्रति गृहान्नेतुं तां प्राप्ते निजमर्तरी ।
 सा दुःखिता मद्वियोगात्प्रदध्यौ साश्रुलोचना ॥ १९२ ॥
 वयस्या योगिनी दृष्ट्वा तस्या विरहवेदनाम् ।
 मां चक्रे मग्नसूत्रेण मर्कटं गमनक्षमम् ॥ १९३ ॥
 मग्नसूत्राङ्कितगलं सा समादाय मां कपिम् ।
 दृष्ट्वा मर्तुर्गूढं यातुं प्रतप्ते मन्मुखोन्मुखी ॥ १९४ ॥
 पुरुषस्य ततः स्कन्धे सितं मां वनमर्कटाः ।
 जहृस्तस्यां सफरणं क्रोशन्त्यां पथि दुर्मदाः ॥ १९५ ॥
 नाना(वेनसहसेषु आन्त्वा प्राप्तो महीमिमाम् ।
 भवता शृच्छ्रममोऽहं धर्मेणेन समुद्धृतः ॥ १९६ ॥

अ)नेन कण्ठसूत्रेण न विपन्नोऽस्ति संकटे ।
 अतीतानागतञ्च (आतल्लिर्यग्गतावपि ॥ १९७ ॥
 श्रुत्वेति जातसौहार्दे निजां तल्लै न्यवेदयत् ।
 कथां निश्चयदत्तोऽयं तां श्रुत्वा प्राह मर्कटः ॥ १९८ ॥
 सत्त्वे विद्याधरीं मा गा दूरे हि जुहिनामलः ।
 त्वया सह कृतासक्तिर्न च वक्ष्या शुचिसिता ॥ १९९ ॥
 लतानां च नदीनां च सीमां राज्ञां च जायते ।
 सत्त्वे कालेषु कालेषु सत्यं नवनवो रसः ॥ २०० ॥
 (नामिनन्दति चेत्सा त्वां प्राप्तां मकरलोचना ।
 तदीयान्विपुलः क्लेशः कलित्तु परिगम्यते) ॥ २०१ ॥
 हसन्त्यन्यैर्षदन्त्यन्यैस्तिष्ठन्त्यन्यैश्च निर्जने ।
 मुञ्जते रतिमन्यैश्च लक्ष्यन्ते न हि योषितः ॥ २०२ ॥
 निर्मोकवद्यास्त्यक्ष्यन्ति विलंबत्पलपन्ति याः ।
 को हि तामिर्मुञ्जन्मिः कण्ठग्रहणमिच्छति ॥ २०३ ॥
 विभ्रम्भसुमगो मोगः सीमिः कस्य न वल्लभः ।
 किं त्वसौ विरसः पश्चान्मायाबहुलचेष्टितैः ॥ २०४ ॥
 मवशर्मा द्विजः पूर्वं मुनदां नाम योषितम् ।
 जघान रौगकट्टयो मूर्ध्नि यस्या मृशाकुलः ॥ २०५ ॥
 तत्कोपान्मग्नसूत्रेण सा तं बन्धे महावृषम् ।
 विधौम्यं तं ददर्शान्या सानुगा कापि योगिनी ॥ २०६ ॥
 वार्यमाणार्जुनायिन्या तल्ल सा कण्ठसूत्रकम् ।
 र्व्यदारयत्तो दैवादाम्यौ मुमदा पुरः ॥ २०७ ॥
 सा दृष्ट्वा मुक्तसूत्रं तं कुद्धा तां प्राह योगिनी ।
 मया बद्धस्त्वया मुक्तः प्रावृत्ते मवेता सखः ॥ २०८ ॥

१. एतत्तच्छेदन्तर्गतगणः ख-मुत्तके त्रुष्टितः. २. एतत्तच्छेदन्तर्गतगणः ख-मुत्तके
 ऽपिष्ठः. ३. 'मिलन्त्यविशान्ति याः' ख. ४. 'नायकलहे' ख. ५. 'आन्त्यन्तं
 तं' ख. ६. 'न्ययोगिनी' ख. ७. 'नद्यत्' ख. ८. 'नद्यत्' ख.

उक्त्वेति तस्यां यातायां योगिनी प्राह तं द्विजम् ।
 सङ्गं गृहीत्वा संनद्धो भव धैर्यसमः सखे ॥ २०९ ॥
 त्वत्कृते सा महावैरात्सुमदा प्रातरेप्यति ।
 विधाय कृष्णतुरगीरूपं युद्धाय दुःसहम् ॥ २१० ॥
 अहं तु श्वेततुरगी भविष्यामि तथा सह ।
 संप्रस्तुते प्रहारे च हन्तव्या सासिना त्वया ॥ २११ ॥
 इति श्रुत्वा तथेत्याह खड्गमादाय स द्विजः ।
 ततः प्रातर्महायुद्धे तयोर्दन्तैः खुरैरपि ।
 प्रवृत्ते कृष्णचड्वां निजघान स खड्गवान् ॥ २१२ ॥
 मायामन्त्रादिचकितो हत्वा तामपरामपि ।
 स्वशिष्यां खड्गपट्टेन हत्वा स्वस्योऽविशद्बहुम् ॥ २१३ ॥
 इति मित्रेण कथितं पुरा मे भवशर्मणा ।
 ब्रह्मदत्तगृहे गूढकामिनीव्यसनस्थितेः ॥ २१४ ॥
 इत्थं स्त्रियः सुविपमा रक्ताकृष्टिपिशाचिकाः ।
 स्त्रीनाम्नीं छेतुमिच्छामि ग्रीवामपि सखे निजाम् ॥ २१५ ॥
 इति निश्चयदत्तस्तं भ्रुवाणमवदत्कपिम् ।
 अनुरक्तैव सा साध्वी मम विद्याधराङ्गना ॥ २१६ ॥
 रोचराणां गृहे तत्र कांचित्प्राप्स्यामि योगिनीम् ।
 मग्नसूत्रकृताद्वन्धात्त्वां हि या मोचयिष्यति ॥ २१७ ॥
 एवं कथयतोरेव तयोः कमलिनीप्रियः ।
 संध्यां त्यक्त्वा जगामाशु प्रशमं रक्तदीपितिः ॥ २१८ ॥
 संगता रविणा क्षिप्रं शशिनालिङ्गिता ततः ।
 मुहूर्तरागिणीं संध्या यमार कुलटाघतम् ॥ २१९ ॥
 अत्रान्तरे समायातां स समारुह्य यक्षिणीम् ।
 मत्सखे निश्चितं गन्तुं व्योम्ना विद्यापरीपुरीम् ॥ २२० ॥

तमाह मर्कटो दूराद्यज्ञः कार्यस्त्वया सखे ।
 अस्य मे मध्वसूत्रस्य दारणे प्रणयादिति ॥ २२१ ॥
 तथेत्युक्त्वा स संप्राप क्षणात्तुहिनमूषरम् ।
 मासि मासि श्रद्धाद्धानामाकल्पमिव संचयम् ॥ २२२ ॥
 अनुरागपरां मेले न च संगमनिर्वृतः ।
 गान्धर्वेण विवाहेन स तां तत्र मृगेक्ष्णाम् ॥ २२३ ॥
 तथा सरसरसलेरम्बसंमोगमुन्दरम् ।
 अवाप प्रेमसर्वेत्तमतीतां कथयन्कथाम् ॥ २२४ ॥
 प्रेयस्या दत्तविद्योऽयं सुहृदं मर्कटं ययौ ।
 द्रष्टुं कदाचित्सोत्कण्ठः कण्ठसूत्रं व्यबिन्दयत् ॥ २२५ ॥
 तस्मिन्नाते निर्जनस्थां तां चाल्प्यतरङ्गिणीम् ।
 कश्चिद्विधायरसुतो ददर्श स्वकस्तनीम् ॥ २२६ ॥
 करिणीदन्तकान्तेषु तस्या गात्रेषु विम्बितः ।
 स सुषालहरीमद्यः शशाङ्कश्रियमाययौ ॥ २२७ ॥
 भज मामिति तेनोक्ता सा लिलेख ह्रिया नता ।
 हेलया चरणप्रेण कटाक्षश्रवलां मुवम् ॥ २२८ ॥
 मौनाद्वाक्काशां स तामालिङ्ग्य ससाध्वसम् ।
 कण्ठे अग्राह सोत्कण्ठं नीवीविस्मंसनाकुलः ॥ २२९ ॥
 मा मा परवधूरसि त्वर्षोक्तिगलिताक्षरम् ।
 स चुचुम्ब सुखं तस्या लज्जामीलितलोचनम् ॥ २३० ॥
 क्षामाननाम्नपर्यस्तहारकेनप्रकम्पिनीम् ।
 स दूषयित्वा प्रययौ तां मातङ्ग इवालिनीम् ॥ २३१ ॥
 तस्मिन्मयाते सा तस्यावतृष्ठा तत्समागमे ।
 सेदार्द्रसलधम्मिष्ठच्छिन्नहाराद्वितस्तनी ॥ २३२ ॥
 अत्रान्तरे समामध्य कपिं कान्तानिकेतनम् ।
 तूर्णं निश्चयदत्तोऽपि प्रेमाकुण्ठः समन्ययात् ॥ २३३ ॥

तं दृष्ट्वा नोदतिष्ठत्सा पर्यङ्कार्धं न वात्यजत् ।
 चाटुकारे कृतोद्वेगा नमोक्तिषु निरादरा ॥ २३४ ॥
 चुम्बने कूणितमुखी सकोपा नीविमोक्षणे ।
 आलिङ्गने परावृत्ता ग्राह मिथ्याशिरोरुजम् ॥ २३५ ॥
 स च गाढानुरक्तस्तन्नाशासीत्तद्विचेष्टितम् ।
 स्त्रीमतिः स्वप्नमायेव नाप्रबुद्धैर्विचार्यते ॥ २३६ ॥
 ततः प्रातः समुत्थाय स ययौ मर्कटान्तिकम् ।
 सर्वज्ञः स च तं ग्राह सा विनष्टा बधूरिति ॥ २३७ ॥
 असत्यशङ्किने तस्मै मन्त्रयोगेन मर्कटः ।
 विद्याधरेणावभिन्नतनुं तां समदर्शयत् ॥ २३८ ॥
 स विद्याधरसंसक्तां प्रत्यक्षं वीक्ष्य बल्लभाम् ।
 रागनिद्रां परित्यज्य वैराग्यालोकमाप्तवान् ॥ २३९ ॥
 तूर्णं निश्चयदत्तोऽयं तपसे कृतनिश्चयः ।
 कपिना सह निर्द्वन्द्वं ययौ सिद्धतपोवनम् ॥ २४० ॥
 दयिताविप्रलब्धानामैश्वर्यसुखदुःखिनाम् ।
 नीचायमानदम्भानां नान्यन्नाणं वनं विना ॥ २४१ ॥
 ततः पुष्पोच्चयावाप्ता तद्वनं सिद्धयोगिनी ।
 कपेः स्वरूपसंप्राप्त्यै मद्यस्त्रमदारयत् ॥ २४२ ॥
 सौमस्वामी निजं रूपं संप्राप्य मुनिवचतः ।
 सह निश्चयदत्तेन क्षीणपापो दिवं ययौ ॥ २४३ ॥
 इति शीलं विना देव रक्ष्यन्ते केन योषितः ।
 गोमुखेनेति कथितं श्रुत्वा सर्वे मुदं ययुः ॥ २४४ ॥
 इति निश्चयदत्ताख्यायिका ॥ ५ ॥
 गोमुखाश्चर्यकथया प्रहृष्टं नरबाहनम् ।
 रत्नप्रभाससं दृष्ट्वा मरुगूतिरमापत ॥ २४५ ॥

अनेकतुरगोदारकुञ्जरानीकसंकुलः ।

विक्रमादित्यनामानृजुषः पाटलिपुत्रके ॥ २४६ ॥

प्रतिष्ठानाचिनायेन नरसिंहेन भूमजा ।

जितः प्रतिज्ञां विदधे स वीरश्रुतसुतये ॥ २४७ ॥

रुद्रप्रवेशं मे द्वारि सूच्यमानं पुरःसरैः ।

द्रक्ष्यन्ति सेवकाः सर्वे नरसिंहं न संशयः ॥ २४८ ॥

प्रतिज्ञायेति स ययौ तत्पुरं वेपथोपितः ।

गूढं कार्पटिको भूत्वा राजपुत्रशतैर्वृतः ॥ २४९ ॥

गूढं मदनमालायाः प्राप्य राज्ञामृतोपमः ।

रममाणस्तथा तस्यौ (तैत्तकाश्चनकृतव्ययः ॥ २५० ॥

अयं कोऽपि महासत्त्वः पृथिवीपालनोचितः ।

ध्रुवमित्यनिर्घं ध्यात्वा सा तस्यौ तत्प्रियवता ॥ २५१ ॥

प्रददौ नित्यमर्थिम्यः संसुवर्णशतयुतम् ।

विद्यासु गुरुणा नूनं नकारं न हि शिक्षितः ॥ २५२ ॥

ततो मदनमालायास्तां भर्त्ति गणयन्सुहृः ।

प्राह बुद्धिवरं नाम मन्त्रिणं वसुधाधिपः ॥ २५३ ॥

अकृत्रिममहो प्रेम धनत्यागो निरर्गलः ।

निर्विकारमहो सत्त्वमत्साक्षरलब्धनुषः ॥ २५४ ॥

शरीरविक्रयो यासां हेतुर्द्रविणसंचये ।

(मिया तदर्थीः क्षपिताः पश्य प्रेम्णो चित्रुम्भितम् ॥ २५५ ॥

प्रत्यहं दिव्यरत्नेन श्रमणेनासि सेवितः ।

मपञ्चबुद्धिमापूर्वं मग्नसाचिष्यसिद्धये ॥ २५६ ॥

तथेति प्रतिपन्नोऽहं मुक्तः स्वप्नेऽप्युत्तरिणा ।

यागे त्वामेष पशुतां श्रमणो नैतुमुद्यतः ॥ २५७ ॥

हन्तुं पापो वक्ष्यति त्वां प्रणतिः क्रियतामिति ।

त्वं दर्शयेति वाच्योऽसौ तया तद्वृषसिद्धये ॥ २५८ ॥

तस्मिन्हते व्योमगतिर्भवितासीति शासनम् ।
 स्वप्ने भगवतः प्राप्य तदकार्यं यथोदितम् ॥ २५९ ॥
 ततः प्रमृति मे जातः कुबेरो वैरदः सखा ।
 तद्धनैः पूरयाम्येनामघ वारविलासिनीम् ॥ २६० ॥
 इत्युक्त्वा घनदं घ्यात्वा सुवर्णपुरुषान्ददौ ।
 पञ्च तस्मै सदा येषां छिन्नमङ्गं प्रजायते ॥ २६१ ॥
 तान्दत्त्वा व्योमगो गूढं स निजं नगरं ययौ ।
 तद्वियोगामितसा च सा तस्यौ निधनोर्ध्वता ॥ २६२ ॥
 छित्त्वा तान्वहुशो दत्त्वा द्विजेभ्यः काञ्चनान्नरान् ।
 यण्मासानवर्धिं चक्रे प्राणत्यागे प्रियं विना ॥ २६३ ॥
 (वैत्रान्तरे तत्किनकपूर्णान्वात्वा द्विजन्मनः) ।
 भक्तिं मदनमालाया मूपतिः पुनराययौ ॥ २६४ ॥
 चिरं संगमसंतोषप्रत्युज्जीवितया तया ।
 रममाणश्चिरं तस्यौ स राजा गुप्तमन्दिरे ॥ २६५ ॥
 नरसिंहोऽपि नृपतिस्तां पूर्वपरिसेविताम् ।
 वाराङ्गनां समभ्यायात्ततः स्मृत्वा सरातुरः ॥ २६६ ॥
 द्वारपालेन विधृतो नाम्ना तेनैव सूचितः ।
 (विक्रमादित्यदेवोऽत्र तिष्ठति ब्रुवतेत्यतिः) ॥ २६७ ॥
 ततः प्रतिज्ञासाफल्यं मेनै राजान्तरं स्थितः ।
 मनोरथार्थमुवीर्य सौहार्दं तेन मृमुखा ॥ २६८ ॥
 विधाय विक्रमादित्यस्तां निनाय तिजां पुरीम् ।
 (इति देव मृगाक्षीणां सहजप्रेमशालिनी ।
 मुलेऽपि पण्यनारीणां भक्तिरव्यभिचारिणी) ॥ २६९ ॥
 इति मदनमालाख्यायिका ॥ ६ ॥

१. 'पनदा' ख. २. 'सुखा' ख. ३. 'नोतराव' ख. ४. एतत्कीदृशं नर-
 त्त-पुत्रं मुदितः. ५. एतत्पाने ख-पुत्रके 'ममां वळे व्यच्येति नामार्थं मान्येति'
 इति पाठः. ६. 'क्षत्रायां पुः स्थितः' ख. ७. 'दिव' ख. ८. एतत्कीदृशं नर-
 त्तः ख-पुत्रके मुदितः.

दति प्रत्यक्षमङ्गे च कथिते मरुमृतिना ।
 कथानुगं हरिशिखो राजपुत्रमभापत ॥ २७० ॥
 अमृद्भीरमुजो नाम वर्धमानपुरे नृपः ।
 जायाशतादमृतस्य प्रिया गुणवरामिधा ॥ २७१ ॥
 स पुत्रार्थी मिषम्बाक्यात्स्वयमादाय लुब्धकैः ।
 वनच्छागं महाकार्यं सूदेन विदधे रसम् ॥ २७२ ॥
 औपवीचूर्णसंयुक्तं वैद्योऽपि श्रुतवर्धनः ।
 सर्वाभ्यो राजकान्ताभ्यो ददौ गुणवरां विना ॥ २७३ ॥
 सा हि सर्वाधिने पत्युर्न्यामत्पुत्रकाङ्क्षिणी ।
 राजदारान्मुगुप्तास्तु वैद्यो जानाति तां कथाम् ॥ २७४ ॥
 ततो दुःसाकुलो राजा दयित्वां वीक्ष्य वञ्चिताम् ।
 लुकोप कुपितं दृष्ट्वा तं च प्राह मिषम्बरः ॥ २७५ ॥
 छागशृङ्गद्वयं शेषं कथितं सूपकारिणा ।
 तद्रसेन सुतं देवी चूर्णयोगादवाप्स्यति ॥ २७६ ॥
 इत्युक्त्वा शृङ्गपूषेण ददौ तस्यै स मेपजम् ।
 तेन गर्भवती सामूद्रोद्ददापाण्डुरच्छविः ॥ २७७ ॥
 अथ सर्वेषु जातेषु पुत्रेषु प्राप सा सुतम् ।
 कान्तं शृङ्गसुजं नाम गुणविक्रमशालिनम् ॥ २७८ ॥
 ततो गुणवरां दृष्ट्वा सपुत्रामधिकप्रियाम् ।
 राज्ञः सर्वत्रध्वस्तं चिन्ताव्याकुलतां ययौ ॥ २७९ ॥
 संमथ्य नृपं प्राहुः प्रायः प्रयग्मावाः कमान्तरे ।
 सक्ता गुणवती राजन्नन्तःपुरपतेरिति ॥ २८० ॥
 सर्वासामेकवाक्येन गाढं शङ्काकुलो नृपः ।
 तीर्थयात्रापदेशेन निरासान्तःपुराधिपम् ॥ २८१ ॥
 सर्वतीर्थमयं पुण्यं याते कादमीरमण्डलम् ।
 तस्मिन्देवीमपि क्रोधाद्गृहान्तर्न्यवेक्षयत् ॥ २८२ ॥

सत्यासत्यविभागेन मन्दशोकां महीपतिः ।
 तामाह मासानष्टौ त्वं सहस्त्रान्धगृहव्यथाम् ॥ २८३ ॥
 राज्ये ममायुषि च ते प्रतिकूलं समुत्थितम् ।
 दैवज्ञेनाथ कथितं त्वत्केशेन प्रणश्यति ॥ २८४ ॥
 इति राजवचः श्रुत्वा सा तथेत्याह दुःखिता ।
 भर्तुरभ्युदयैकाग्रसंकल्पा हि कुलाङ्गनाः ॥ २८५ ॥
 अत्रान्तरे महाकायो बहुरूपी निशाचरः ।
 आयादमिशिलो नाम तं देशं लोककण्टकः ॥ २८६ ॥
 दैवज्ञवचनाज्ज्ञात्वा खेलन्तो राजसूनवः ।
 चिक्षिपुस्तं समुद्दिश्य बाणांस्ते चाफला ययुः ॥ २८७ ॥
 ततः शृङ्गमुजो वीरः शृङ्गमादाय काञ्चनम् ।
 रक्षो जघान तद्दीक्ष्य परे लज्जानर्तितं ययुः ॥ २८८ ॥
 ईर्ष्याकण्डुपितस्त्रं मात्रा पूर्वं च बोधितः ।
 निर्वासमुजनामा तं सम्रमङ्गमभाषत ॥ २८९ ॥
 अयं तातस्य दयितो भ्रातः कनकसायकः ।
 क्षिप्तस्त्वया शरीराग्रमग्नौ नीतश्च रक्षसा ॥ २९० ॥
 एतन्न क्षमते तातः शरं हेमं प्रयच्छ तम् ।
 नो चेत्त्वदुपरि भ्रातर्वेयं मर्तुं सश्रवताः ॥ २९१ ॥
 इत्याकृष्टः स तैर्द्वेषात्सानुबन्धो निरुत्तरः ।
 ययौ शृङ्गमुजो रक्षोरक्तघारां समुत्तयन् ॥ २९२ ॥
 ततो धूमपुरं नाम नगरं तस्य रक्षसः ।
 प्रविश्य तत्सुतां कान्तां ददर्श हरिणीदृशम् ॥ २९३ ॥
 सापि तं वीक्ष्य सहसा यौवनस्येव यौवनम् ।
 अभिलाषवती मेने मन्मथस्यापि मन्मथम् ॥ २९४ ॥
 परस्परकथां ज्ञात्वा तौ संजातमनोभवौ ।
 मियो जीवितसर्वेभ्यस्ते विविशतुः क्षणात् ॥ २९५ ॥

ततो रूपशिक्षामिच्छ्या पितरं सा न्यजिज्ञप्त् ।
 दृष्टो मया समुचितो वरस्तस्मै प्रयच्छ माम् ॥ २९६ ॥
 इति पुत्रीवचः श्रुत्वा तं च दृष्ट्वा तवेति सः ।
 सुतामग्निशिल्पः ग्राह्यं तद्वञ्चनसमुद्यतः ॥ २९७ ॥
 राजपुत्रं समवदत्स्वैरं रूपशिक्षां ततः ।
 भगिन्यो मम पञ्चाशत्सन्ति तुभ्यं विधाय ताः ॥ २९८ ॥
 त्वां ततो वक्ष्यति ज्ञात्वा गृहाण दयितामिति ।
 मुक्तावल्गो गले सन्ति सर्वासामेव किं त्वहम् ॥ २९९ ॥
 कण्ठान्मूर्ध्नि विधास्यामि तत्क्षणान्मौक्तिकावलीम् ।
 तथा मां प्रत्यभिज्ञाय प्राप्स्यसि प्रौढकिरियः ॥ ३०० ॥
 न च त्वां वञ्चकलातः संशये पातयत्यसौ ।
 तिलसारीशतं क्षेत्रे शिखा क्षिप्रमिति प्रभो ॥ ३०१ ॥
 त्वं संक्षिपेति च पुनस्त्वां वक्ष्यति सुलोचनः ।
 प्रेरयिष्यति घोरस्य आतुर्भूमशिसस्य च ।
 गृहं निमग्नणाय त्वां मृषा वैवाहकोत्सवे ॥ ३०२ ॥
 इत्येतास्त्वद्विनाशाय मायास्तातेन कल्पिताः ।
 महिषारक्षिताः सर्वास्तव वैर्यमहोवचे ॥ ३०३ ॥
 इति प्रियावचः श्रुत्वा सर्वं शृङ्गमुजोऽभ्यधात् ।
 यमौकं रूपशिक्षया तेन रक्षः समं ययौ ॥ ३०४ ॥
 ततः प्रभाते तां पित्रा परिणीय समर्पिताम् ।
 तत्र तस्मै दिशङ्गीलविलासे मदनोत्सवम् ॥ ३०५ ॥
 हेमकाण्डं ततः प्राप निजवह्नमयार्पितम् ।
 आतुर्मिर्यत्कृते दूरं द्वेषाद्युक्त्वा विवासितः ॥ ३०६ ॥
 कदाचिदयं सोत्कण्ठः पितुर्मार्तुश्च दर्शने ।
 ययौ शृङ्गमुजः कान्तां समादाय तुरङ्गमैः ॥ ३०७ ॥

अलक्षितं गतं ज्ञात्वा सै समार्यं निशाचरेः ।
 प्रक्षोभितनमोवातः पश्चात्कोपाकुलो ययौ ॥ ३०८ ॥
 ततः प्रमाते तां पित्रा परिणीय समर्पिताम् ।
 तमागतमतिकुद्धं दृष्ट्वा रूपशिखावदत् ॥ ३०९ ॥
 अस्मानमिशिलः कोपादयमायाति मीयणः ।
 प्रेषितः पुष्करावर्तैः क्षतदूत इवावनिम् ॥ ३१० ॥
 तदेपा वञ्चयाम्येनं मायया मन्दचेतसम् ।
 पापकर्ममहोभ्योविनिमग्नमिव संसृतिः ॥ ३११ ॥
 इत्युक्त्वा निधया सामूत्सहसा काष्ठहारिकः ।
 जवाद्राक्षसमायान्तं पृच्छन्तं साम्यभाषत ॥ ३१२ ॥
 पञ्चतां राक्षसेन्द्रोऽथ दैवादमिशितो गतः ।
 तदर्थमिदमानीतं काष्ठं यत्नेन काननात् ॥ ३१३ ॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा मौल्यादमिशिखस्ततः ।
 अमन्यत मृतोऽस्मीति स्वभावजडमानसः ॥ ३१४ ॥
 ततो निजगृहं गत्वा स पप्रच्छ स्वयोपितः ।
 अपि सत्यं मृतोऽस्मीति श्रुत्वा नेत्युचिरे च ताः ॥ ३१५ ॥
 ततः पुनः समभ्याषादन्तुं जामातरं जवात् ।
 तं दृष्ट्वा लेखहारोऽभूत्क्षिप्रं रूपशिला पुनः ॥ ३१६ ॥
 अपि दृष्टौ त्वया मार्गे दम्पती तुरगस्थितौ ।
 इति पृच्छन्तमवदत्तमसौ लेखहारकः ॥ ३१७ ॥
 दर्पादमिशिलो युद्धे जीवशेषः कृतोऽरिभिः ।
 वार्तां तद्भ्रातुरानीता मया लेखेन सत्वरम् ॥ ३१८ ॥
 इति श्रुत्वा मूढमतिः स गत्वा स्वगृहं पुनः ।
 पप्रच्छ दासविवशाः स्वस्य वृत्तान्तमग्रनाः ॥ ३१९ ॥
 इत्यसौ वधितः पुत्र्या मूर्खः सुप्त इव द्विपः ।
 दासोपमानतां प्राप्तः प्रज्ञासु निरवग्रहः ॥ ३२० ॥

अल्लिन्नवसरे प्रापे निवं शृङ्गमुखः पुरम् ।
 आत्रे हेमशरं दत्त्वा द्रष्टुं जनकमम्ययात् ॥ ३२१ ॥
 राजा तु ज्ञातवृत्तान्तः पुरं दृष्ट्वा बधून्सखम् ।
 हृष्टो महोत्सवं चक्रे सिन्दूररुणितारुणम् ॥ ३२२ ॥
 याति काले नरपतिः प्रविश्यान्तःपुरं वचः । --
 शुश्राव मधुमताया चायायाः समविग्रमे ॥ ३२३ ॥
 युच्या शुण्वती तावन्मिया संहृषिता सती । --
 चिन्तनीयस्तु तत्पुत्रः शुत्वेति प्रययौ नृपः ॥ ३२४ ॥
 मृगहाचामयोद्धृत्य प्रसाद्य निजवत्तमाम् ।
 संजातप्रत्ययो राजा यौवराज्ये सुतं व्यधात् ॥ ३२५ ॥
 (अन्तःपुरेभ्यः कुपितं पुत्रेभ्यश्च न्यवारयत् ।
 यन्नाद्वुण्वरा देवी तत्पुत्रश्च नराधिपम् ॥ ३२६ ॥
 यत्रान्तरे समम्यायास्त त्रिपोऽन्तःपुराधिपः ।
 ज्ञात्वा पुण्येषु तीर्थेषु नानामतकृष्णकृतिः ॥ ३२७ ॥
 संपूज्य तं महीपालः पश्यन्पुत्रमुखं सुतम् ।
 विजिताशेषपातालं जहर्न दयितासलः) ॥ ३२८ ॥
 इत्येवं शीघ्रशालिन्धो देव भर्तृहिते स्ताः ।
 कुडालंकरणं क्रान्ताः सन्ति रूपशिला यथा ॥ ३२९ ॥
 इति रूपशिलाख्यायिका ॥ ७ ॥

श्रुत्वा हरिश्चित्रेनेति कथितं नरवाहनः ।
 रत्नप्रभासलः प्रायात्पितुरन्तःपुरं कृती ॥ ३३० ॥
 तत्र प्रणम्य वस्तेष्वं देव्यौ च स मधुत्सवम् ।
 भजे वयस्सहितो दयितानन्दनिर्भरः ॥ ३३१ ॥
 निजमन्तःपुरं गत्वा रत्नपर्यङ्कमास्थितः ।
 रत्नप्रभाद्विन्यस्तपूर्वदेहो रराज सः ॥ ३३२ ॥

मरुमूतिमथ क्षीवं विलोक्य स्वलिताक्षरम् ।
 गोमुखः प्राह राजेन्द्र गृहे किं न स संयतः ॥ ३३३ ॥
 संकुद्धश्चास्ति मद्वाक्ये नीतिबाह्य इवेक्षसे ।
 अथ वा दुर्महरताननुनेतुं क ईश्वरः ॥ ३३४ ॥
 प्रतिष्ठानपुरे पूर्वं तपोदत्ताभिधो द्विजः ।
 गङ्गाकूले तपस्तेपे विचार्यी शंसितव्रतः ॥ ३३५ ॥
 तस्य घोरेण तपसा सहस्राक्षो विषण्णधीः ।
 विप्ररूपः समम्यायात्तदाश्रमनदीतटम् ॥ ३३६ ॥
 तत्र दोभ्यां समादाय सिकताः स मुहुर्मुहुः ।
 वयन्ध सेतुं सावेगप्रवाहे बहिरन्तरे ॥ ३३७ ॥
 तं दृष्ट्वा स तपःस्योऽपि विस्मितः स्मितशुभ्रया ।
 गिरा तमाह किमयं मिथ्या तव परिश्रमः ॥ ३३८ ॥
 सैकतः सेतुबन्धोऽयं तव हासाय निष्फलम् ।
 औदायं निर्धनस्येव भूर्खस्येव नयक्रमः ॥ ३३९ ॥
 इति तस्य वचः श्रुत्वा स तं प्राह द्विजाकृतिः ।
 अहो परोपदेदेषु विद्वान्सर्वात्मना जनः ॥ ३४० ॥
 विसयस्ते द्विजश्रेष्ठ निष्फले मम कर्मणि ।
 कथमश्रुतपाण्डित्यमब्रुवंस्त्वं समीहसे ॥ ३४१ ॥
 इयं दाशविषाणेच्छा व्योम्नि वा चित्रकल्पना ।
 अनसरोऽपि विन्यासो यद्विद्याध्ययनं विना ॥ ३४२ ॥
 निशम्यैतत्तपोदत्तः साधूक्तमिति चेतसा ।
 निश्चित्य दुर्महात्तस्माद्विरराम महातपाः ॥ ३४३ ॥
 इत्येवमुपदेशेन निवर्तन्ते विपर्ययात् ।
 सायवो न तु मूर्खोऽयं मरुमूतिः शृणोति मे ॥ ३४४ ॥
 इति नमोऽपहासाय गोमुखेनोपर्यर्जिते ।
 दत्तन्दरितिसः प्राह मरुमूतिं व्यलोकयन् ॥ ३४५ ॥

ततो निर्गत्य तदुणो जनानां विलयप्रदः ।
 सान्तःपुरपुराणालं मुकुमारं चरं बहत् ॥ ३७१ ॥
 नेजे राज्यमहोत्साहः स युवा पूजयन्दिवान् ।
 अजरोऽयमिति प्राप प्रसिद्धिं विबुधोपनः ॥ ३७२ ॥
 ततो बहच्छयावाप्तौ वयसौ निजचंपदान् ।
 विलीणविभवौ चक्रे पद्मदर्शविचिन्तकौ ॥ ३७३ ॥
 कदाचिदथ तं प्राह स भिषग्विजने नृपन् ।
 तव राज्यं मया दत्तं नानैवाद्य न मन्यसे ॥ ३७४ ॥
 इति वैद्यवचः श्रुत्वा मूपतिः प्राह सलितम् ।
 स्वकर्ममुद्रितो लोकः कः कलै किं प्रयच्छति ॥ ३७५ ॥
 प्राग्जन्मविहितं नान तत्तु नान्यदवाप्यते ।
 प्राप्तनन्यैः सुदूरस्थं करस्थं हारितं परैः ॥ ३७६ ॥
 अहं जातिलरो वैद्य नक्तुषां शस्त्रसाति तन् ।
 मूमिपालः समामाप्य ययौ ज्ञातुं नदीतटम् ॥ ३७७ ॥
 राजपुत्रैर्वृतस्तत्र स ददर्श जलान्तरे ।
 पञ्च काञ्चनपद्मानि दृष्ट्वा वैद्यमुवाच च ॥ ३७८ ॥
 भिषग्वर कुतो नान हेनाब्जानामिहागमः ।
 गच्छ केदारकं क्षिप्रं जानीहि चतुरो घाति ॥ ३७९ ॥
 ततो राजानुया गत्वा नदीतीरेष सत्वरः ।
 दूरे तीर्थतटासकं सोऽपश्यच्छैवनालयम् ॥ ३८० ॥
 तत्र ज्ञातः स्तरारतिं प्रणम्य शशिशेखरम् ।
 विश्रान्तो वृक्षशालाग्रे नरासीनि व्यलोकयत् ॥ ३८१ ॥
 अत्रान्तरे जलधरैर्मुक्ते धाराकदम्बके ।
 शालासिवासिपतितं नद्यां तदपतज्जडम् ॥ ३८२ ॥
 तत्क्षणे तीर्थनासाद्य प्रयातं हेनपशतान् ।
 इति दृष्ट्वा तदाश्चर्यं तीर्थे शिखासितुं वयम् ॥ ३८३ ॥

त्वं च हेमप्रभकुले वैजयन्ती कुलोज्ज्वला ।
 धन्या धराशशी यस्याः प्रणयी नरवाहनः ॥ ३५८ ॥
 विलासशीलो मृपालः श्रीकण्ठविषये पुरा ।
 बभूव चारुचरितः स्वच्छप्रकृतिमानसः ॥ ३५९ ॥
 तस्य पद्मप्रभा नाम पद्मिनीव रवेः प्रिया ।
 बभूव कामवसतिर्लावण्यगुणशालिनी ॥ ३६० ॥
 स कदाचिज्जिजं हृष्टा जराधवलमाननम् ।
 सतुपारमिवाम्भोजमभूच्चिन्तामितापितः ॥ ३६१ ॥
 शृङ्गारसुभगामोगं शोभते तावदद्भुतम् ।
 यावद्धृङ्गाङ्गनाजालश्यामलः केशसंचयः ॥ ३६२ ॥
 मृत्युसिंहमहादंष्ट्राकालकोपसितच्छटाः ।
 जरा हि नाम रूपस्य शमलस्येव चन्द्रिका ॥ ३६३ ॥
 उग्रस्येव विलासेन गीतेनेव स्वरस्य च ।
 घृद्धस्य स्वरभोगेन हास्यं कस्य न जायते ॥ ३६४ ॥
 इति ध्यात्वा महीपालो यौवनार्थी रसायनम् ।
 वैद्यं तरुणचन्द्रारुषमपृच्छत्पुरतः स्थितम् ॥ ३६५ ॥
 कालहृत्सां जरां मूर्खो (बैलात्संत्यक्तुमिच्छति ।
 वैद्यः क्षणं विचिन्त्येति नराधिपमभाषत ॥ ३६६ ॥
 देव भूमिगृहे गुप्ते मासानष्टौ स्थिताय ते ।
 भेषज्यैर्यौवनं युक्त्वा विधास्यामि स्थिरो भव ॥ ३६७ ॥
 इत्युक्ते भूगृहे भूषं प्रविष्टं यौवनेच्छया ।
 हत्वा बलेन तरुणं सोऽन्यं नरमवेशयत् ॥ ३६८ ॥
 बहिः स्नानान्तरस्त्रस्य (प्रेतीहारेण कीर्तितान् ।
 अमात्यान्नामभिस्रस्य श्वनकैर्विदितान्व्यधात् ॥ ३६९ ॥
 द्वारि संभाषणव्यग्रमन्तःपुरकदम्बकम् ।
 तेनोपदिष्टमज्ञासीच्छ्रुत्वान्ध इव नामभिः ॥ ३७० ॥

ततो निर्गत्य तरुणो जनानां विसमयप्रदः ।
 सान्तःपुरपुरामार्त्यं मुकुमारं चरं महत् ॥ ३७१ ॥
 भेजे राज्यमहोत्साहः स युवा पूज्यन्दिजान् ।
 अजरोऽयमिति प्राप प्रसिद्धिं विबुधोपमः ॥ ३७२ ॥
 ततो यदृच्छयागस्तौ वयस्यौ निजसंपदाम् ।
 विस्तीर्णविभवौ चक्रे षड्दशविचिन्तकौ ॥ ३७३ ॥
 कदाचिदथ तं ग्राह ॥ भिषग्विजने नृपम् ।
 तथ राज्यं मया दत्तं भामेनाथ न मन्यसे ॥ ३७४ ॥
 इति वैद्यवचः श्रुत्वा नृपतिः ग्राह सन्निवृत्तम् ।
 स्वरुर्ममुद्रितो लोभः कः कस्यै किं प्रयच्छति ॥ ३७५ ॥
 प्राग्जन्मविहितं नाम तनु नान्यदवाप्यते ।
 प्राप्तमन्यैः सुदूरस्थं कलसं हारितं परैः ॥ ३७६ ॥
 अहं जातिस्रो वैद्य मत्कथां ज्ञास्यसीति तम् ।
 नृमिपालः समामाप्य ययौ स्नातुं नदीतटम् ॥ ३७७ ॥
 राजपुत्रैर्वृतस्तत्र स ददर्श जलन्तरे ।
 पद्म काञ्चनपद्मानि दृष्ट्वा वैद्यमुवाच च ॥ ३७८ ॥
 भिषग्वर कुतो नाम हेमाब्जानामिहागमः ।
 गच्छ केदारकं क्षिप्रं जानीहि चतुरो घसि ॥ ३७९ ॥
 ततो राजान्नया गत्वा नर्दार्तरेण सत्वरः ।
 दूरे तीर्थतटासक्तं सोऽपश्यच्छैवमालयम् ॥ ३८० ॥
 तत्र स्नातः स्मरारतिं प्रणम्य शशिशेखरम् ।
 विश्रान्तो वृद्धग्रास्तामे नरासीनि व्यलोकयत् ॥ ३८१ ॥
 अत्रान्तरे जलधरैर्मुक्ते धाराकदम्बके ।
 ज्ञात्वास्वितास्विपतितं नद्यां तदपतज्जलम् ॥ ३८२ ॥
 सत्क्षणे तीर्थमासाद्य प्रयातं हेमपद्मताम् ।
 इति दृष्ट्वा तदाश्चर्यं तीर्थे क्षिप्वास्विसुचयम् ॥ ३८३ ॥

न्यवेदयघयादृष्टं गत्वा भूमिभुजे भिषक् ।
 स्तोऽजवीनृपो वैद्यं विविक्ते मित्रयोः पुरः ॥ ३८४ ॥
 शरीरं शंभुनिलये त्यक्तं तस्मिन्मया पुरा ।
 त्वं चैतौ च वभूवुर्मे सुहृदस्तीर्थसेवनात् ॥ ३८५ ॥
 तान्यस्त्रीनि मदीयानि तीर्थे क्षिप्तान्यथो स्वया ।
 अधुना कृतकृत्योऽहमित्युक्त्वा निर्वृतिं ययौ ॥ ३८६ ॥
 इत्येवं पूर्णसंवन्धाद्भवन्ति प्रीतयो नृणाम् ।
 आशसेवितोऽयं धन्यानां भुवं भो नरवाहन ॥ ३८७ ॥
 इत्यजराख्यायिका ॥ ८ ॥

तपन्तकल्येति वचः श्रुत्वा मक्तिपुरःसरम् ।
 सर्वे साधूक्तमित्यूचुः प्रहर्षोत्फुल्ललोचनाः ॥ ३८८ ॥
 अधान्तःपुरपर्यन्ते श्रुत्वा निकोश्रतां स्वनम् ।
 निर्गत्य पृष्ट्वा तत्रस्वान्प्रविश्य प्राह गोमुखः ॥ ३८९ ॥
 देव कञ्चुकिनः पुत्रो यातो घर्मेगिरेर्दिवम् ।
 तं निशम्याप्तमोहोऽसौ नीतो निजजनैर्गृहम् ॥ ३९० ॥
 इति श्रुत्वा सकरुणं विषण्णे नरवाहने ।
 क्षणं रत्नप्रभायां च मरुभूतिरभाषत ॥ ३९१ ॥
 अथत्यपत्रतरलान्यायूंषि किल देहिनाम् ।
 किं तु नागार्जुनस्यासीत्स्वैर्यकरणे धमः ॥ ३९२ ॥
 चिरायुरिति भूपालश्चिरायुनगरेऽभवत् ।
 रससिद्धोऽभवत्तस्य मग्नी नागार्जुनाभिधः ॥ ३९३ ॥
 राजस्तदौषधजुषो याते वर्षशतादृके ।
 भार्यापुत्राश्च बहवः कालेन त्रिदिवं गताः ॥ ३९४ ॥
 ततो जीवद्दरं नाम यौवराज्ये स भूपतिः ।
 विद्महे तनयं सोऽपि मात्रे दृष्टो न्यवेदयत् ॥ ३९५ ॥
 सावदददहवः पुरा यौवराज्ये महीभुजा ।
 अभिषिक्ताः पुरा तेन दिवं याताः क्षतायुषः ॥ ३९६ ॥

न्यवेदयद्यथादृष्टं गत्वा भूमिमुजे भिषक् ।
 ततोऽब्रवीन्नृपो वैवं विविके मित्रयोः पुरः ॥ ३८४ ॥
 शरीरं शंसुनिलये त्यक्तं तस्मिन्मया पुरा ।
 त्वं चैतौ च बभूवुर्मे सुहृदस्तीर्थसेवनात् ॥ ३८५ ॥
 तान्यस्त्रीनि मदीयानि तीर्थे क्षिप्तान्यथो त्वया ।
 अधुना कृतकृत्योऽहमित्युक्त्वा निर्वृतिं ययौ ॥ ३८६ ॥
 इत्येवं पूर्वसंबन्धाद्भवन्ति प्रीतयो नृणाम् ।
 प्राक्सेवितोऽयं घन्यानां ध्रुवं भो नरवाहन ॥ ३८७ ॥
 इत्यजराख्यायिका ॥ ८१

सप्तन्तकस्येति वचः श्रुत्वा भक्तिपुरःसरम् ।
 सर्वे साधूक्तमित्यूजुः ग्रहणोत्फुल्ललोचनाः ॥ ३८८ ॥
 अथान्तःपुरपर्यन्ते श्रुत्वा विक्रोशतां स्वनम् ।
 निर्गत्य पृष्ठा तत्रस्थान्प्रविश्य प्राह गोमुखः ॥ ३८९ ॥
 देव कञ्चुकिनः पुत्रो यातो धर्मगिरेर्दिवम् ।
 तं निशम्यात्तमोहोऽसौ नीतो निजजनैर्गृहम् ॥ ३९० ॥
 इति श्रुत्वा सकरुणं विषण्णे नरवाहने ।
 क्षणं रत्नप्रभायां च मरुमूतिरभापत ॥ ३९१ ॥
 अधस्त्यपत्रतरलान्यायूंषि किल देहिनाम् ।
 किं तु नागार्जुनस्यासीत्सैर्यकरणे धमः ॥ ३९२ ॥
 चिरायुरिति भूपालधिरायुनगरेऽभवत् ।
 रससिद्धोऽभवत्तस्य मग्नी नागार्जुनाभिषः ॥ ३९३ ॥
 राज्ञश्चदौषधजुषो याते वर्षशताष्टके ।
 भार्यापुत्राश्च बहवः कालेन त्रिदिवं गताः ॥ ३९४ ॥
 ततो जीवहरं नाम यौवराज्ये स भूपतिः ।
 विदधे तनयं सोऽपि मात्रे दृष्टो न्यवेदयत् ॥ ३९५ ॥
 सावदहदहवः पुत्रा यौवराज्ये महीमुज्जा ।
 अभिषिक्ताः पुरा तेन दिवं याताः क्षतायुषः ॥ ३९६ ॥

चिरायुरेष नृपतिर्नागार्जुनकृतौपधैः ।
 द्विपष्टिर्वर्षतां प्राप्तो न कदाचिद्विनद्धयति ॥ ३९७ ॥
 राज्यकामोऽसि चेत्पुत्रं त्वं नागार्जुनमेव तम् ।
 गत्वा याचस्व मूर्धानं हते तस्मिन्नराधिपः ॥ ३९८ ॥
 दिवं प्रयास्यति क्षिप्रं त्वं तु राजा भविष्यसि ।
 अनियेधनतो नित्यं स च नागार्जुनोऽर्थिषु ॥ ३९९ ॥
 इति मातुर्पथः श्रुत्वा हृद्यो राजकुमारकः ।
 तथेत्युक्त्वा प्रतिययौ नागार्जुननिवेशनम् ॥ ४०० ॥
 अत्रान्तरे म्रिये पुत्रे वारु एव दिवं गते ।
 नागार्जुनो जगत्सर्वं सामृतं कर्तुमुद्ययौ ॥ ४०१ ॥
 ततो मीतः सहस्राक्षो निर्मृश्य सहस्राश्विनौ ।
 न्यवारयत सौहार्दादसायनविधानतः ॥ ४०२ ॥
 अत्रान्तरे राजसुतस्त्वं मूर्धानमयाचत ।
 छिन्धीति यादिनस्तस्य मीमां चिच्छेद सोऽसिना ॥ ४०३ ॥
 कण्ठे कुलिशसारस्य राजपुत्रेण पातिताः ।
 प्रययुः खण्डशः खन्ना विसकन्दाङ्कुरा इव ॥ ४०४ ॥
 स्वयं तेन वितीर्णे तु मस्तके राजसूनवे ।
 चिरायुस्तैश्छुचा राज्यं त्यक्त्वा मुनिरमृद्धाने ॥ ४०५ ॥
 तं च राजसुतं क्रूरं प्रेक्ष्य राजनयानुगाः ।
 हत्वा नागार्जुनसुता द्वितीयं चक्रिरे नृपम् ॥ ४०६ ॥
 इत्येष देवराजेन करुणाब्धिर्निवारितः ।
 मुंसाममरताधाने स गृहीतमतोऽमृतैः ॥ ४०७ ॥
 इति नागार्जुनाख्यायिका ॥ ९ ॥
 इति सत्त्ववचोवृत्तं कथितं मरुमूतिना ।
 वसन्तकः समन्येत्य नरवाहनमभ्यधात् ॥ ४०८ ॥

मृगयारसिको गन्तुं देवो वत्सनरेश्वरः ।

प्रस्तुतस्त्वं च सोत्कण्ठो वनिनं द्रष्टुमिच्छसि ॥ ४०९ ॥

इत्याकर्ण्य प्रियतमामामङ्ग्य विरहाकुलाम् ।

धनं गजरथानीकैः सह पित्रा ययौ क्षणात् ॥ ४१० ॥

(निमैन्कुञ्जरशार्दूलवराहहरिणान्वने ।

विजहार तुरङ्गेण कान्तां रत्नप्रभां सरन् ॥ ४११ ॥

ततः स च जवोत्कृष्टतुरङ्गो निश्चलासनः ।

ललास गुलिकाकेलितालटङ्कारसुन्दरः ॥ ४१२ ॥

तस्य कङ्कणशाङ्कारकरस्फाटिकनिर्मिता ।

गुलिका मूर्च्छिता यस्याः पपात विशदस्त्रिपः ॥ ४१३ ॥

साव्रवीद्व्रतसौभाग्यदर्पस्त्रे राजपुत्रक ।

कर्पूरमञ्जरीं कान्तां प्राप्य किं न करिष्यसि ॥ ४१४ ॥

नरवाहो निशम्येति प्रसाद्य मुनियोपितम् ।

कर्पूरमञ्जरीं कासाविति पप्रच्छ कौतुकात् ॥ ४१५ ॥

सावदज्जलधेः पारे कर्पूरद्वीपवासिनः ।

राज्ञः कर्पूरचन्द्रस्य सुता कर्पूरमञ्जरी ॥ ४१६ ॥

यस्याः कुवलयच्छायैर्लोचनांशुभिरङ्कितम् ।

शङ्के शशाङ्कं लावण्यशेषेण विदधे विधिः ॥ ४१७ ॥

गच्छ तां प्राप्स्यसि क्षिप्रमित्युक्त्वा सा तिरोदधे ।

प्रतस्थे गोमुखसखो नरवाहोऽपि तां दिशम् ॥ ४१८ ॥

चिरात्प्रतिनिवृत्तोऽथ वनाद्वत्सनरेश्वरः ।

(अपश्यन्दयितं पुत्रममूच्छोकानलाकुलः ॥ ४१९ ॥

रत्नप्रभा ततोऽभ्येत्य वत्सराजं व्यजिज्ञपत् ।

ज्ञातं मयार्यपुत्रस्य वृत्तं प्रज्ञप्तिविधया ॥ ४२० ॥

तापसीवचसा ज्ञात्वा कान्तां कर्पूरमञ्जरीम् ।

स यातो चारिषेर्द्वीपं तत्समागमलालसः ॥ ४२१ ॥

आर्यपुत्रस्य रक्षायै गयातिर्विषमेऽञ्चनि ।
 विद्या गायवती नाम प्रेषिता क्लेशमञ्जरी ॥ ४२२ ॥
 इति सुपावनः श्रुत्वा हृष्टो यत्सनरेश्वरः ।
 अमृतेनेव ससिक्तः सहसा धृतिमासर्वान् ॥ ४२३ ॥
 नरवाहनदत्तोऽपि तुरङ्गेण सगोमुखः ।
 ब्रजन्ब्रह्मप्रभां विधां विवेद श्रेयसे स्थिताम् ॥ ४२४ ॥
 तत्प्रभावेण दिव्यानि फलानि प्राप्य निर्हतः ।
 सरश्च क्षुत्परिश्रान्तिवृष्णाः स सहसालयजत् ॥ ४२५ ॥
 ततो दिनैः कतिपयैरवाप्य गहनं महत् ।
 दिवाकरकरङ्कान्तं तमभापत गोमुखः ॥ ४२६ ॥
 अश्रुदिरावती नाम त्रिदिवस्पर्धिनी पुरी ।
 त्यागसेनामियो राजा तस्यां शक्रप्रभोऽभवत् ॥ ४२७ ॥
 बभूवतुः प्रिये तस्य भार्ये रूपगुणोषिके ।
 काव्यालंकारनाम्नी च देवी चाधिकसगमा ॥ ४२८ ॥
 स पुत्रार्थं फलयुगं तपसा पार्वतीवरात् ।
 प्राप्य प्रत्ययमन्यायात्प्रियामधिकसगमाम् ॥ ४२९ ॥
 सा प्राप्य विधिना ह्यष्टा फलमेकं वरार्थिता ।
 द्वितीयमपि चौर्येण भुक्त्वास्तुत सुतद्वयम् ॥ ४३० ॥
 तमिन्दीवरसेनाख्यमनिच्छासेनमप्यसौ ।
 विलोक्य काव्यालंकारा बभूव भृशदुःखिता ॥ ४३१ ॥
 ततः प्रवृत्तौ तौ जेतुं पृथिवीं पितुराज्ञया ।
 सामात्यैर्विपुलानीकैर्जम्मतुः कुलशालिनौ ॥ ४३२ ॥
 विचिन्त्य काव्यालंकारा करलेखैर्दिदेश तान् ।
 अमात्यानृपतेर्नोभा मध्यौ राजसुताविति ॥ ४३३ ॥
 विचारयन्सुलेखार्थं करुणाद्वेषु मन्त्रिण्यु ।
 शङ्कितौ तौ प्रययतुर्नृपपुत्रौ महाटवीम् ॥ ४३४ ॥

विन्ध्याटव्यां परिश्रान्तौ तृष्णार्तौ पार्श्वतीस्मृते ।
 बभूवतुः क्षणात्स्वस्यौ सिच्यमानाविवामृतैः ॥ ४३५ ॥
 अवाप तत्र सहसा खड्गं दुर्गावरात्कृती ।
 येनेन्दीवरसेनोऽभूदुर्जयस्त्रिदशैरपि ॥ ४३६ ॥
 अत्रान्तरे त्यागसेनो ज्ञात्वा पुत्रौ विवासितौ ।
 काव्यालंकारया कूटं लेखैर्मग्निसमर्पितैः ॥ ४३७ ॥
 कारागृहे तां विन्यस्य निरस्यामात्यमण्डलम् ।
 शोचन्प्रदध्यौ तनयावधिनाविव रूपिणौ ॥ ४३८ ॥
 अथेन्दीवरसेनोऽपि खड्गी शैलपुराधिपम् ।
 राक्षसं शैलदंष्ट्राख्यं हत्वा मायाविनं रणे ॥ ४३९ ॥
 अवाप खड्गदंष्ट्राख्यां तनयां नवयौवनाम् ।
 तथा मदनदंष्ट्राख्यां पुष्पेपोर्जेत्रमायुधम् ॥ ४४० ॥
 तत्र लीलावतीकेलिसरसो विलसन्मुहुः ।
 निनाय सुबहून्मासान्सेव्यमानोऽनुजेन सः ॥ ४४१ ॥
 ततः खड्गप्रभावाप्तविद्यया धिष्यगामिनम् ।
 सोऽनुजं प्रेपयामास स्ववृत्ताख्यापने पितुः ॥ ४४२ ॥
 (तस्मिन्नाते खड्गदंष्ट्रां स्नात्वा तूर्णं समागता ।
 मियं मदनदंष्ट्रायाः कण्ठलम्बितमैक्षत ॥ ४४३ ॥
 ईर्ष्यावत्यथ तं खड्गं बहौ कोपाज्जुहाव सा ।
 सन्ने निष्प्रभतां याते राजपुत्रोऽभवद्यमुः ॥ ४४४ ॥
 अत्रान्तरे निजकथां जनकाय निवेद्य सः ।
 अनुजस्तं समभ्येत्य ददर्श शवमग्रजम् ॥ ४४५ ॥
 क्षताभ्यां आतृपत्नीभ्यां सह मर्तुं समुद्यतः ।
 शुधावाकाशवचनं मुषाम्रनिनदोपमम् ॥ ४४६ ॥
 रामे गौरीवरादस्मिन्पुनर्निर्मलतां गते ।
 जीवत्येष निजां जार्तिं स्मृत्वा क्षापक्षयादिति ॥ ४४७ ॥

राजपुत्रस्तत्र स्वहं दग्धं गौरीवरात्पुनः ।
 क्षिप्रं निर्मलमाधाय आतरं समजीवयत् ॥ ४४८ ॥
 अश्वेन्दीवरसेनस्रं प्राप्तजीवोऽभ्यभाषत ।
 हुपारद्यैलशिखरे मुक्तापुरनिवासिनः ॥ ४४९ ॥
 सुतोऽसि मुक्तसेनस्य त्वं च विद्याधरपत्नो ।
 पद्मसेनाभिधानोऽहं रूपसेनस्तथा भवान् ॥ ४५० ॥
 पद्मा चन्द्रावती चेमे ग्राममार्गे मे बभूवदुः ।
 परस्परेर्ष्याकलहैरेताभ्यां तापितः पुरा ॥ ४५१ ॥
 ज्वदं पितरं नित्यं वनं यागोति दुःस्वितः ।
 स मद्वियोगनिर्विण्णो मां शङ्कापाहितग्रहम् ॥ ४५२ ॥
 चेनाहं मर्त्यतां प्राप्तस्त्वं च मद्भक्तिसंश्रयात् ।
 मर्त्यत्वं पृथिवीं जित्वा यदा पित्रे प्रदास्यसि ॥ ४५३ ॥
 शापं तदा त्यक्ष्यसीति शान्तकोपोऽब्रवीत्स माम् ।
 ततः परस्परं शम्पात्यव्यौ मे मत्कृते रुषा ।
 अवामे रक्षसो भावमित्युक्त्वा विरराम सः ॥ ४५४ ॥
 ततो विद्याधरपुरं प्रापदुस्ते सुलोचने ।
 ते च जातिसराः सर्वे त्यागसेनपुरं ययुः ॥ ४५५ ॥
 प्रणम्य पितरं तत्र समार्यः सानुजोऽथ सः ।
 विजित्य पित्रे पृथिवीं ददौ खड्गबलोत्कटः ॥ ४५६ ॥
 अथ वैद्याधरीं जातिं निवेद्य जनकाय सः ।
 ल्योभा मुक्तापुरं गत्वा मेमे लक्ष्मीं सहानुज ॥ ४५७ ॥
 इत्येवं पृथुसत्त्वानां महतां क्लेशविष्टुषः ।
 भवन्ति भैरवयोगेन क्षिप्रमेव प्रयान्ति च ॥ ४५८ ॥
 इतीन्दीवरसेनाख्यायिका ॥ १० ॥
 गोमुखेनेति कथितं निशम्य नरवाहनः ।
 धीरः प्रतप्से सोत्कण्ठबलमाध्यासितां दिशम् ॥ ४५९ ॥

ततो ददर्श रुचिरं सुमेरुशिखरोपमम् ।
 संगमं नाम नगरं काञ्चनोत्तालतोरणम् ॥ ४६० ॥
 न तत्र पुरुषः कश्चिद्दृश्यते ललनापि वा ।
 केवलं यन्नरचिता भान्ति काष्ठमया नराः ॥ ४६१ ॥
 स प्राप्यान्तःपुरं हेमं ददर्श स्फटिकासने ।
 सजीवमेकं पुरुषं सेवितं यन्नचेटकैः ॥ ४६२ ॥
 नरवाहनदत्तं दृष्ट्वा विपुलविस्मयः ।
 पमच्छ पृष्टः सोऽप्याह वितीर्णकनकासनः ॥ ४६३ ॥
 राज्ञो महाबलस्यस्य पुरे काञ्चीति विश्रुते ।
 अहं वज्रधरो नाम तक्षककुशलः प्रभो ॥ ४६४ ॥
 यन्नमायाकृतौ यस्य मयसेव यज्ञो भुवि ।
 मम प्राणधरो नाम आता कुशलः ॥ ४६५ ॥
 चेद्याविलासरसिको दिवसैर्निर्धनोऽभवत् ।
 स यन्नी किल काहंसैः कोशाद्वानि भूपतेः ॥ ४६६ ॥
 जहार वार्यमाणोऽपि मया निग्रहभीरुणा ।
 परेऽहि तेषु बद्धेषु कोशपालेषु पक्षिषु ॥ ४६७ ॥
 स ययौ यन्नचक्रेण राजमीत्या दिगन्तरम् ।
 भीतोऽहमपि यन्नेण यत्र द्विगुणरंहसा ॥ ४६८ ॥
 प्राप्तः शिवप्रसादेन शून्यं हेममिदं पुरम् ।
 इह स्थितस्य मे देव वस्त्रालंकारमोजनम् ॥ ४६९ ॥
 चिन्तितं संभवत्येव विना मानुषसंगमम् ।
 निर्जनस्थितिसिन्नेन दिव्यमोगेऽपि तिष्ठता ।
 निर्मिता यन्नपुरुषा मया चेतोविनोदिना ॥ ४७० ॥
 इति यस्य वचः श्रुत्वा विसितो नरवाहनः ।
 विषादवृत्तिश्चिन्तेति ध्यात्वा स्वं वृत्तमभ्यधात् ॥ ४७१ ॥
 इति वज्रधराख्यायिका ॥ ११ ॥

पूजितो ज्ञातवृत्तेन स्वादु मुक्त्वागृतोपमम् ।
 सुप्वाप रत्नपर्यङ्के नरवाहः सगोमुखः ॥ ४७२ ॥
 वीतनिद्रो निशि खैरं सरन्कर्पूरमञ्जरीम् ।
 विनोदिनीं वज्रघरकथां सोऽष्टच्छदुत्सुकः ॥ ४७३ ॥
 सोऽज्वरीदर्थलोभाख्यो मन्त्री भूमिपतेरभूत् ।
 धनी बाहुबलाख्यस्य यो लोभ इव जङ्गमः ॥ ४७४ ॥
 तस्य मातापरा नाम भार्यामृद्वरवर्णिनी ।
 लावण्यदर्पणे यस्याः संक्रान्त इव मन्मथः ॥ ४७५ ॥
 देशान्तरगतं ज्ञात्वा वणिजं ॥ तुरङ्गमान् ।
 धनेन तस्मादाहर्तुं निजबायां विसृष्टवान् ॥ ४७६ ॥
 कथं कुलाङ्गनावृत्ते परैः संमापणं क्षमम् ।
 इत्यनिच्छामसि सती मेपयामास मन्दरीः ॥ ४७७ ॥
 गत्वा सुखधनं प्राह तरुणं सा मिषम्बरम् ।
 धनेनाभ्याम्यच्छेति श्रुत्वा सोऽप्याह विस्मितम् ॥ ४७८ ॥
 किं धनेन विशालाक्षि निधानं त्वं मनोभुवः ।
 गृहाणाश्वसहस्रं (मे) रात्रिमेकां मजस्रं गाम् ॥ ४७९ ॥
 श्रुत्वेति लज्जिता तन्वी लतेव अमराकुला ।
 क्षणं नम्रानना साम्) त्रेत्रांशुशबलसूनी ॥ ४८० ॥
 सा भत्वा वणिजो वाक्यं सती (मे)त्रे न्यवेदयत् ।
 अर्थलोभोऽपि तां प्राह कौ दोषस्त्वं मज क्षणम् ॥ ४८१ ॥
 अथ सा वाजिलोभेन) भर्त्रा सप्रेषिता बलात् ।
 आदायाश्चाग्निशामेकां कान्तां मेजे वणिक्सुतः ॥ ४८२ ॥
 सोऽभवद्ब्रह्मसत्तस्या रत्नावृतनिर्क्षरः ।
 सद्यः प्ररुदविश्रम्भविलाससनिर्भरः ॥ ४८३ ॥
 हीनसत्त्वं ततो बाला सा तत्याज निजं प्रतिम् ।
 ऐक्ष्वर्यं सान्द्रमासाद्य को हि निम्बरसं पिबेत् ॥ ४८४ ॥

दिनमेकं वितीर्णां तां ज्ञात्वा तत्रैव सुन्दरीम् ।
 स्थितां क्रोधादर्थलोभो वणिजं योद्धुमाययौ ॥ ४८५ ॥
 प्रवराश्ववरानीकैर्निर्लज्जः सज्जितो जवात् ।
 वणिजा तेन राजानं जगाम शरणं निजम् ॥ ४८६ ॥
 राजापि स्वयमालोक्य तया न्यायं विचारधीः ।
 अर्थलोमस्य सर्वस्वं हृत्वा परमपूजयत् ॥ ४८७ ॥
 इति वज्रधरेणोक्तां कथां श्रुत्वा नृपात्मजः ।
 प्रातर्यन्त्रविमानेन तद्दत्तेनाम्बुधिं ययौ ॥ ४८८ ॥
 इत्यर्थलोभाख्यायिका ॥ ११ ॥

कर्पूरद्वीपमासाद्य नरबाहः सगोमुखः ।
 म्रजन्निवेश वृद्धायाः क्षमामेकां निवेशनम् ॥ ४८९ ॥
 कर्पूरमञ्जरीवृत्तं तेन पृष्टा च सावदत् ।
 राजहंसी बभूवैषा कन्यका पूर्वजन्मनि ॥ ४९० ॥
 राजहंसेन सहिता नीढे चन्दनशास्त्रिनः ।
 शावकानब्धिकल्लोलहतान्दष्टा शुशोच सा ॥ ४९१ ॥
 ततो जले तनुं त्यक्त्वा जाता जातिस्मरा सती ।
 स्मृत्वा हंस तमग्नेह विवाहविमुखी स्थिता ॥ ४९२ ॥
 इति वत्सेश्वरसुतः श्रुत्वा गोमुखसंमतः ।
 मिथ्याप्रलापमुखरो राजधानीं समभ्ययात् ॥ ४९३ ॥
 ह्य हंसीत्यसकृत्तत्र विक्रोशन्तं विलोक्य तम् ।
 पप्रच्छुर्गोमुखं राजकन्यकान्त-पुरस्त्रियः ॥ ४९४ ॥
 सोऽज्वीद्राजहंसोऽयमगूजलनिधेस्तटे ।
 पोतशोकात्प्रिया चास्य तत्याज सलिले तनुम् ॥ ४९५ ॥
 तद्वियोगादयमपि प्राशिषद्विपुरम्बुधौ ।
 जातिस्मरोऽप्य तामेव सरन्दर्सी प्रतर्पति ॥ ४९६ ॥
 इति तद्वचन दास्यो राजपुङ्गवे न्यवेदयन् ।
 यो पापमुत्तुर्विद्वेषं त्यक्तुं परिणयोत्सुका ॥ ४९७ ॥

ततो यथाचे तां कन्यां नृपमभ्येत्य गोमुक्तः ।
 नामामिजनमावेध नरबाहस्य विश्रुतम् ॥ ४९८ ॥
 दृष्ट्वा साराकृतिजुषां लक्षणैश्चक्रवर्तिनाम् ।
 ददौ नरपतिः पुत्रीं स तस्यै विपुलोत्पलः ॥ ४९९ ॥
 ततो विवाहवयुषां प्राप्तां कर्पूरमञ्जरीम् ।
 मञ्जरीं यौवनसरोर्ददर्श नरबाहनः ॥ ५०० ॥
 उत्सवं पुष्पधनुषो विभ्रमसोद्भवावनिम् ।
 संगीतशालां लीलाया निधानं रूपसंपदः ॥ ५०१ ॥
 परिणीय मनोजन्मत्रैलोक्यजयमालिकाम् ।
 रराज वत्सेशमुत्तः प्राप्य गौरीमिवेश्वरः ॥ ५०२ ॥
 इति कर्पूरमञ्जरीविवाहः ॥ १३ ॥

अत्रान्तरे प्राणधरः समभ्येत्य स तदाकृतः ।
 ददौ यज्ञविमानं तत्तस्यै वज्रधरानुजः ॥ ५०३ ॥
 तदाकर्ण्य नरेन्द्रेण पूजितो दयितासखः ।
 सगोमुखप्राणधरः प्रययौ नरबाहनः ॥ ५०४ ॥
 पुनस्त्वां प्राप्तविद्योऽहं समेप्यामीति सादरम् ।
 स वज्रधरमामाप्य कौशाम्बीं तूर्णमभ्ययात् ॥ ५०५ ॥
 तत्र प्रणम्य वत्सेयं प्रहर्षविहितोत्सवम् ।
 जनन्यौ च मियां प्राप्य विरहापाण्डुराननाम् ॥ ५०६ ॥
 रत्नप्रभां स्फुरत्काममौलिरत्नप्रभामिव ।
 कर्पूरमञ्जरीं मेजे मदनोद्यानमञ्जरीम् ॥ ५०७ ॥

अथ विलसदमन्दानन्दनिप्यन्दसिन्धुः

प्रणयमुत्रि दधानश्चारु कर्पूरवल्लीम् ।

सरविजयपताकां तां च रत्नप्रभास्या-

मुचितसचिवनर्मसेरवक्रौ रराज ॥ ५०८ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविजिताया बृहत्कथामञ्जरीं रत्नप्रभा नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।

अलंकारयतीलम्बकः ।

पायाद्वो दयिताकेलिकोपे शंभोः प्रणामिनः ।
 चन्द्रलेखानिपक्तेव तत्प्रसादसितच्छटा ॥ १ ॥
 ततः कदाचित्त्वपुरीपर्यन्तविपिनावनिम् ।
 मृगयारसिकः प्रायात्सानुगो नरवाहनः ॥ २ ॥
 (राजपुत्रसहस्राणि परित्यज्य सगोमुखः ।
 विलोलहारः प्रययौ वाजिना वातरंहसा ॥ ३ ॥
 स्फुटस्वरपदं दूराच्छ्रुत्वा कर्णरसायनम् ।
 गीतध्वनिं सयाक्रान्तो विवेश ज्यम्बकालयम् ॥ ४ ॥
 प्रणम्य तत्र श्रीकण्ठं दिव्यकन्यां ददर्श सः ।
 दासीसहस्रानुगतां गायन्तीं शंकरस्तुतिम् ॥ ५ ॥
 स्वप्रमाभरणारत्नमूषणानि बभार या ।
 कान्ता मुकविवाणीव पुनरुक्तं प्रमादजम् ॥ ६ ॥
 तद्गीतश्रवणाश्चर्यलोलमौलेः पिनाकिनः) ।
 या चूडा चन्द्रलेखेव तन्वी निपतिता पुरः ॥ ७ ॥
 विभ्रमारम्भवलितैर्विलासललितायतैः ।
 कुसुमोत्पलवनानीव कटाक्षैर्विततार या ॥ ८ ॥
 तां विलोक्य सुधापद्ममनोजन्मजयधियम् ।
 नरवाहनदत्तोऽमृदमन्दानन्दसुन्दरः ॥ ९ ॥
 सापि साग्नमिवानर्हं तं वीक्ष्य कमलेश्मणम् ।
 दर्पकम्पोत्तरङ्गामूत्सरसीवानिलाकुला ॥ १० ॥
 तयोरभिन्नयोर्द्विज्जमन्मथारम्भविभ्रमे ।
 अवतीर्णाम्बरादिव्ययोर्विदायात्तदन्तिकम् ॥ ११ ॥
 अनुद्रुतार्थवेपेण सूचितात्यन्तगौरवाम् ।
 जननीमिव सोमस्य स्फटिकस्वच्छविमदाम् ॥ १२ ॥

तां तेषां कन्यया तत्र हृष्टयाम्भेत्य संगताम् ।
 प्रणनामादराद्धोल्लुण्ठलो नरवाहनः ॥ १३ ॥
 सा कन्याजननी तेन पृष्टा विद्याधराज्ञना ।
 निजामिजनवृत्तान्तं प्रोवाच मृदुवादिनी ॥ १४ ॥
 सुन्दरालये पुरे तुङ्गशृङ्गे तुहिनमूमृतः ।
 अस्त्यलंकारशीलस्यो विद्याधरधराधिपः ॥ १५ ॥
 तस्याहमग्रमहिषी बह्वमा काञ्चनप्रभा ।
 मयि जातोऽस्य मतिमान्धर्मशीलमिषः सुतः ॥ १६ ॥
 कन्या चैवं शशिमुखी नयनामृतवाहिनी ।
 अलंकारवती नाम स्वप्रमालंकृताकृतिः ॥ १७ ॥
 स धर्मशीलो आतास्याः प्रेययौ तपसे युवा ।
 अस्माभिः प्रार्थ्यमानोऽपि विरक्तो भवविभ्रमे ॥ १८ ॥
 राजालंकारशीलोऽपि तमेवानु तपोवनम् ।
 प्रययौ मयि विन्यस्य राज्यं कन्यामिमां च सः ॥ १९ ॥
 नरवाहनदत्ताय भविष्यच्चकर्वर्तिने ।
 इयं विद्याधरेन्द्राय दातव्या मत्सुता त्वया ॥ २० ॥
 अलंकारवती शंभुनिर्दिष्टा श्रीस्तयाखिला ।
 इति मां पतिरामाप्य समुतः काननं ययौ ॥ २१ ॥
 ततोऽहं भर्तृरहिता निःशशाङ्केव शर्वरी ।
 शोकान्धतिमिराक्रान्ता स्थिता राज्ञे तवाज्ञया ॥ २२ ॥
 चिन्तयन्त्या तव शुभं पुत्रीपरिणयादया ।
 कृच्छ्रादन्दशतायामो नीतः संवत्सरो मया ॥ २३ ॥
 अदेयं मत्सुता पृथ्वीं आन्वा दृष्ट्वा मदाज्ञया ।
 स्वयंमूर्धमुनिलया प्रणम्य व्योमगामिनी ॥ २४ ॥
 प्रथमं त्रिपुरारतिं नत्वा कश्मीरमण्डले ।
 विजयं चामरेशं च तां च देवीं मैहेधरीम् ॥ २५ ॥

कौशाम्बीविपिनोपान्तशिवालयमिमं शनैः ।
 प्राप्ता दृष्ट्वा त्वया देवनिदिष्टेयं तव प्रिया ॥ २६ ॥
 त्वद्दिशागोचरायातां ज्ञात्वाहं विधया सुताम् ।
 पुत्र तूर्णमिहायाता द्रष्टुं त्वां चिरकाङ्क्षितम् ॥ २७ ॥
 मद्भर्त्रा पूर्वमादिष्टो भविता शुभलग्नतः ।
 अनया तव पुत्र्या मे प्रातः परिणयोत्सवः ॥ २८ ॥
 उक्त्वेति लज्जाविनतं पुत्रीवदनपङ्कजम् ।
 विलोकयन्ती संहृष्टा सा सती गन्तुमुद्ययौ ॥ २९ ॥
 प्रस्यिता सा समालोक्य सहसा विरहाकुलम् ।
 उत्कण्ठानिर्भरं प्राहं सैस्मिता नरवाहनम् ॥ ३० ॥
 राजपुत्र क्षपामेकां सहस्रैस्सुक्यविक्रियाम् ।
 समागमो मत्सुतायाः प्रातस्ते भवितानया ॥ ३१ ॥
 स्निग्धैर्विनोदय मनो दिनमेकं सुहृज्जनैः ।
 सेहै संवत्सरं रामो जानकीविरहं पुरा ॥ ३२ ॥
 राज्ञो दशरथस्यासीदयोध्याधिपतेः सुतः ।
 रामो गुणगणारामो विरामो वैरिसंपदाम् ॥ ३३ ॥
 प्रेयस्या सीतया सार्धं लक्ष्मणेनानुजेन च ।
 धनं विवेश सै बध्नेरितस्य पितुर्गिरा ॥ ३४ ॥
 मारीचहेमहरिणाकारवञ्चितचेतसः ।
 तत्र सीतां जहारास्य मिश्रुवेपो दशाननः ॥ ३५ ॥
 जानकीकरुणाक्रन्दक्रोधात्समरसंगुप्तम् ।
 जटायुषं गृध्रराजं हत्वा यातेऽय रावणे ॥ ३६ ॥
 विरहायासविधुरः प्रलापमुखराननः ।
 रामः कपीन्द्रं मुग्धं प्राप्य मित्रपदे व्यपात् ॥ ३७ ॥
 वैरिणं आतरं तस्य हत्वा बाणेन वालिनम् ।
 पिप्पिन्धाराज्यलक्ष्मीं च ददौ विरहनिःसहः ॥ ३८ ॥

सुग्रीवेण कृतज्ञेन रामं दृष्ट्वा सरातुरम् ।
 दिक्षु सीतां समन्वेष्टुं विद्यष्टे कपिमण्डले ॥ ३९ ॥
 हनूमान्मारुतसुतो विलङ्घ्य मकराकरम् ।
 सीतां सै तां समालोक्य दग्ध्वा लङ्कामनाकुलः ॥ ४० ॥
 न्यवेदयत्प्रियावृत्तं रामाय हतराक्षसः ।
 राघवोऽप्यम्बुधिं वद्ध्वा सेतुं प्राप्य रिपोः पुरीम् ॥ ४१ ॥
 सानुगं रावैण हत्वा मेजे जनकनन्दिनीम् ।
 अथायोध्यां समन्वेत्य प्राप्य राज्यं सहानुजः ॥ ४२ ॥
 मिथ्यापवादं सीतायाः शुश्राव रघुनन्दनः ।
 तदाज्ञया लक्ष्मणस्तां वने गर्भमरालसाम् ।
 तत्याज साश्रुनयनो वाल्मीकेराश्रमान्तिके ॥ ४३ ॥
 तां तत्र मुनयो दृष्ट्वा शोचन्तीं लक्ष्मणे गते ।
 रुचुर्दिव्यदृशो ज्ञात्वा शुद्धचारित्रमूषणाम् ॥ ४४ ॥
 टिड्ढिमोऽन्धितटे जायां दृष्ट्वान्येन समागताम् ।
 प्रतिश्रयार्थिना भर्तृधिया निर्व्याजमानसाम् ॥ ४५ ॥
 ईर्ष्याशङ्काकुलस्त्यक्तुमुच्यतर्त्तां नमस्तलात् ।
 श्रुत्वा साध्वीति वचनं शीलेऽस्याः प्रत्ययं ययौ ॥ ४६ ॥
 तिरश्चामपि चारित्रशुद्धया निर्मलतां मनः ।
 इति प्रयाति तत्कोपं रामस्याप्यात्मविह्वलः ॥ ४७ ॥
 इति ब्रुवाणे करुणाकुलिते मुनिमण्डले ।
 वाल्मीकेराश्रमं प्राप्य सीतासूत सुतद्वयम् ॥ ४८ ॥
 तौ तेन मुनिना तत्र कृतराजोचितप्रती ।
 सविद्यौ ययुर्वाजिमेधे रामं समासितम् ॥ ४९ ॥
 पुत्रौ कुशलवामिख्यावुकौ वाल्मीकिना स्वयम् ।
 तौ प्राप्य रामो दयितां विशुद्धानिनाय ताम् ॥ ५० ॥

इत्येवं राघवः कान्तावियोगं धैर्यसागरः ।

सेहे क्षणं त्वैर्मप्येवं सहस्र स्वप्रियागमे ॥ ५१ ॥

इति रामाख्यायिका ॥ १ ॥

उक्त्वेति तस्यां यातायां व्योम्नादाय निजां सुताम् ।

नरवाहनदत्तोऽभूद्विरहध्याननिश्चलः ॥ ५२ ॥

तं च श्लथमतिं दृष्ट्वा निःश्वसन्तं स्मरातुरम् ।

गोमुखः प्राह धैर्याब्धेः कोऽयं ते मतिविभ्रमः ॥ ५३ ॥

एकैव शर्वरी मध्ये स्थिता ते तत्समागमे ।

एवंविधां विक्रियां किं यातोऽस्यत्रैवं मे शृणु ॥ ५४ ॥

पृथिवीरूप इत्यासीत्प्रतिष्ठानपुरे नृपः ।

अनङ्गतां सरो मेजे मेने यत्कान्तिनिर्जितः ॥ ५५ ॥

स नानादेशसंचारचतुरैः सद्यमिमुमिः ।

शुभ्राव पर्णितां कान्तां मुक्ताद्वीपपतेः सुताम् ॥ ५६ ॥

राज्ञो रूपधराख्यस्य पुत्रीं रूपलतामिधाम् ।

श्रुत्वा ययाचे दूतेन सोऽथ दूरनिवासिनः ॥ ५७ ॥

मिथश्चित्रपटाकारदर्शनाज्जातमन्मथम् ।

नृपः पुत्रीं च विज्ञाय रम्यं रूपधरोऽबदत् ॥ ५८ ॥

दूतं मद्गच्छता गत्वा राजानं तूर्णमानय ।

पृथिवीरूपमस्या मे स पुञ्जाः सदृशः पतिः ॥ ५९ ॥

इति तेन संमादिष्टो दूतः संकल्पशीघ्रगः ।

समुत्तीर्याम्बुदिं प्राप्य प्रतिष्ठानपुरोत्तमम् ॥ ६० ॥

मुक्तापुराभिनाथेन दत्ता रूपलता मुता ।

स्वयमेहीति दूतस्त्वं क्षितिपालं व्यजिज्ञपत् ॥ ६१ ॥

ततः प्रतप्ते नृपतिर्गजवाजिरथाकुलः ।

अव्यभिचीं परिणयत्रिये श्रीपतिसंनिभः ॥ ६२ ॥

स प्रज्जटवीं प्राप्य शबरीरणकर्कशान् ।

षण्णान् थाण्णजाटेन निहतानेककुञ्जरान् ॥ ६३ ॥

समुद्रतटमासाद्य स पुत्रपुरम्भुजः ।
 उदारचरिताख्यस्य गृहे विश्रम्य पूजितः ॥ ६४ ॥
 समारब्धानुकूलेन प्रेरितं मातरिश्चना ।
 महत्प्रवहणं राजा राजकानुगतो ययौ ॥ ६५ ॥
 कालेन जलविद्वीपे प्राप्य मुक्तापुरं नृपः ।
 ददर्श मुक्तालोतां स राजधानीं मनोरमाम् ॥ ६६ ॥
 प्रसुप्ततेन विधिवत्सूज्यमानोऽप्य सादरम् ।
 राज्ञा रूपधरेणासौ विवाहवसुधां ययौ ॥ ६७ ॥
 ददर्श राजतनयां तत्र रूपलतां नृपः ।
 अङ्गव्यादनङ्गस्य शक्तिं मूर्तिमतीमिव ॥ ६८ ॥
 परिणीयेन्दुवदनां तामायतविलोचनाम् ।
 हृष्टः प्रवहणेनैव पुनरुत्थितं सागरम् ॥ ६९ ॥
 प्रतिष्ठानपुरं प्राप्य तामग्रमहिषीपदे ।
 अमिषिच्य मनोजन्मसंभोगमुभयोऽभवत् ॥ ७० ॥
 इति रूपलता राज्ञा तेन सत्त्वोदितेन सा ।
 प्रायाद्विधापरमुत्तां त्वमप्येवमवाप्ससि ॥ ७१ ॥
 इति रूपलताख्यायिका ॥ २ ॥

गोमुखेनेति कथितं निशम्य नरवाहनः ।
 बभूव दयितासङ्गसंकल्पध्याननिश्चलः ॥ ७२ ॥
 राजधानीमग्राम्येत्य निःसहो निःश्वसन्मुहुः ।
 नान्तःपुरे न हर्म्येषु नोद्यानेषु घृतिं ययौ ॥ ७३ ॥
 मुहुर्निः सहितो वीतनिद्रस्तत्कथया निधाम् ।
 दीर्घां निनाय कृच्छ्रेण रत्नद्वीपे निषक्तदृक् ॥ ७४ ॥
 ततः प्रमाते श्रीकण्ठं प्रणम्य पितरं तथा ।
 वरोद्यानस्वितोऽपश्यत्कान्तिमिज्जरितं नमः ॥ ७५ ॥

ततोऽदृश्यत लोलक्षी पित्रा सह नमस्तलात् ।
 अवतीर्णा सूर्य मात्रा आत्रा चाधिकर्मृषिताम् ॥ ७६ ॥
 तां चन्द्रवदनां दृष्ट्वा सानुगो नरवाहनः ।
 मेजे पीयूषसिक्तस्य छायाभरशाखिनः ॥ ७७ ॥
 वत्सराजेन संयम्य तां सुतां खेचरोत्तमः ।
 नरवाहनदत्ताय दिव्येन विधिना ददौ ॥ ७८ ॥
 विद्याधरेन्द्रतनयां तां प्राप्य हरिणेषणाम् ।
 तद्धाम सुन्दरपुरं प्रययौ पितुराज्ञया ॥ ७९ ॥
 मन्दारवल्लीललिते स तत्र दयितासखः ।
 सानुगः सुचिरं स्थित्वा कौशाम्बीं पुनराययौ ॥ ८० ॥
 ततोऽभिनवसंभोगामवाप्यानन्ददीक्षितः ।
 अलङ्कारवतीं कान्तां ललास नरवाहनः ॥ ८१ ॥
 कदाचिदय पौरुषी काचिन्मुखरभूषणा ।
 मीता समार्यं शरणं वत्सराजालम्बं ययौ ॥ ८२ ॥
 परिसान्त्व्य शनैः पृष्ट्वा तेन सा प्राह सुन्दरी ।
 स्वत्रासकारणं तन्वी कम्पमाना घनस्तनी ॥ ८३ ॥
 देवाहं बलसेनस्य तनया क्षत्रजन्मनः ।
 अशोकमालात्रैलोक्यरक्षोर्हं परिरक्ष माम् ॥ ८४ ॥
 हठशर्माभिधानेन पापमाश्रित्य पापिना ।
 अनिच्छन्ती वृता देव कुरूपेण द्विजन्मना ॥ ८५ ॥
 तेन निन्दितरूपेण परिणीता बलादहम् ।
 कान्तेन संगतान्येन रूपलुब्धा हि योषितः ॥ ८६ ॥
 ततो यदृच्छयायातां पथि दृष्ट्वाय मां स्था ।
 आकृष्टस्त्रैः सावेगमागतो मर्द्दधोयतः ॥ ८७ ॥
 वद्रीता शरणं देवीमलङ्कारवतीमहम् ।

१. 'वपिता' ख. २. 'श' ख. ३. 'पिताहं प्राणमा' ख. ४. 'लोभा हि' ख.
 ५. 'एव' ख. ६. 'दिधोयत' ख.

यातेत्याकर्ण्य तं विप्रमानिनाय नृपात्मजः ॥ ८८ ॥
 स पृष्टो ब्राह्मणः प्राह मर्तुमाहितनिश्चयः ।
 देवैनां हन्मि दुःशीलां स्त्रियं प्राणांस्त्यजामि वा ॥ ८९ ॥
 अथाशरीरिणीं वाणीं प्रोचचार नमललात् ।
 इयं विद्याधरी शापातित्रोर्मर्त्यत्वमागता ॥ ९० ॥
 ह्युपारशित्वरे रम्ये पञ्चकूटामिधे पुरे ।
 अस्त्यशोकवरो नाम विद्याधरमहीपतिः ॥ ९१ ॥
 अशोकमाला तत्स्येयं तनया ज्ञेहमाजनम् ।
 विद्याधरैर्याच्यमाना विवाहं नाम्यमन्यत ॥ ९२ ॥
 यदा तदा रुपा पित्रा शप्तेयं रूपमानिनी ।
 विरूपा मानुषी मृत्वा द्वेष्यं भर्तारमाप्स्यसि ॥ ९३ ॥
 इति शापादियं बाला प्राप्ता तच्छासनं भुवि ।
 शापोऽबुनात्याः प्रक्षीणो वागित्युक्त्वा शशाप सा ॥ ९४ ॥
 ततो मर्त्यशरीरं सा परित्यज्य स्वविधया ।
 अशोकमाला प्रययौ व्योम्ना विद्याधराङ्गना ॥ ९५ ॥
 हठशर्मापि संस्मृत्य जार्तिं स्मृत्वा विरूपताम् ।
 वैद्याधरं वपुः प्राप्य प्रोवाच नरवाहनम् ॥ ९६ ॥
 अहं लम्बमुजारुतल्य विद्याधरपतेः सुतः ।
 सुवा स्थूलमुजो नाम कन्यां प्राप्तां स्वयंवरे ॥ ९७ ॥
 कान्तां सुरमिदचारुयामनादल्य स्मरातुराम् ।
 गुरुशापाद्विरूपत्वं प्राप्तोऽहं मर्त्यतां गतः ॥ ९८ ॥
 इत्युक्त्वा क्षीणशापोऽसौ द्विजः प्रायाद्विहायसा ।
 प्रियं कलेवरं त्यक्त्वा जाह्नव्यां तुहिनाचले ॥ ९९ ॥
 तद्वीक्ष्य विलसितं प्राह गोमुखो नरवाहनम् ।
 शृणु स्त्रीचरिताध्वर्यमत्रैव कथयाम्यहम् ॥ १०० ॥

महावराह इत्यासीद्वीरः शूरपुरे नृपः ।

वराह इव विस्तीर्णो भुजेनोवाह यो भुवम् ॥ १०१ ॥

तस्यानङ्गवती नाम सुन्दरी तनयामवत् ।

तत्याज सायकान्मन्ये यत्कटाक्षार्धरः सारः ॥ १०२ ॥

शूरः स्वरूपो बलवान्मर्ता योग्यो ममेति सा ।

निजोद्वाहविधौ चक्रे प्रतिज्ञां दृढनिश्चया ॥ १०३ ॥

तद्याचकेषु विमुखं यातेष्वखिलराजसु ।

चत्वारो वीरपुरुषा दाक्षिणात्याः संमाययुः ॥ १०४ ॥

ते तमेत्य महीपालं कन्यकां तां ययाचिरे ।

क्रमेण कर्म जातिं च निवेद्य मदनेरिताः ॥ १०५ ॥

एकोऽप्रवीणुवा शूरो दानशूरो वराकृतिः ।

अहं पञ्चपुरो नाम मह्यं कन्या प्रदीयताम् ॥ १०६ ॥

अपरः प्राह वैश्योऽहं भाषाज्ञः सर्वपक्षिणाम् ।

उवाचान्यः क्षत्रियोऽहं वीरः खड्गधराभिधः ॥ १०७ ॥

चतुर्थोऽप्यवदद्विप्रो जीवदत्तोऽहमग्रजः ।

मृतसंजीवनाभिज्ञो दैवात्किं तु दुराकृतिः ॥ १०८ ॥

इति तैरर्थितां पुत्रीं प्रहृष्टः पृथिवीपतिः ।

ईप्सितः कस्तवेत्याह सा च पृष्टा तमब्रवीत् ॥ १०९ ॥

द्विजसन्नुर्विरूपोऽयं वैश्यश्चम्रौ च सेवकौ ।

अराजा क्षत्रियध्यायमित्युक्त्वा नाम्यमैन्यत ॥ ११० ॥

प्रतीहारगृहे राज्ञा ततस्ते विहिताश्रयाः ।

न्यवसन्पूजिताः किञ्चित्कालं परिणयाश्रया ॥ १११ ॥

ततः कदाचिन्मृगयासक्तस्य मसुधापतेः ।

अदर्शयन्वने तस्य दत्त्वा सिंहान्पराक्रमम् ॥ ११२ ॥

तेषां शौर्यं समालोक्य मुतां प्राह महीपतिः ।

भजैकं पुत्रि नैतेषां तुर्यं पश्यामि मूलले ॥ ११३ ॥

इत्युक्त्वा नृपतिः पुत्रीं पप्रच्छ गणकं ततः ।
 ब्रूयन्नद्रवतिः कस्य भाविनीयं वधूरिति ॥ ११४ ॥
 नृपेण पृष्टो दैवज्ञः सोऽवदद्विव्यलोचनः ।
 सुता विद्याधरीयं ते शापान्मर्त्यपदं स्थिता ॥ ११५ ॥
 याते मासत्रये श्वापं त्यजत्येषा सुलोचना ।
 गणकस्येति वचनं श्रुत्वाश्चर्यं महीपतिः ॥ ११६ ॥
 चतुर्भिः सहितो वीरः संदेहाकुलितोऽभवत् ।
 ततो मासत्रये याते सा परित्यज्य सुन्दरी ॥ ११७ ॥
 तनुं मर्त्योचितो बाला प्राप्य वैद्याधरं पदम् ।
 ततः सुतावियोगार्तस्तत्रासीनः पुरे नृपे ॥ ११८ ॥
 विस्मृते जीवदत्तस्य मन्त्रे च मृतजीवने ।
 (वीरेषु तत्र यातेषु तत्संगमनिरासताम् ।
 आश्वास्यमाने तेनैव दैवज्ञेन महीपतौ ॥ ११९ ॥
 जीवदत्तस्तनुत्यागे दृढनिश्चयमानसः) ।
 निजं खड्गेन दुःखार्तः शिरश्छेत्तुं समुद्ययौ ॥ १२० ॥
 अयोध्याचार वागव्योम्नो विप्र मा साहसं कृथाः ।
 प्रसादाद्विन्ध्यवासिन्यास्तां प्राप्स्यसि मृगेक्षणाम् ॥ १२१ ॥
 इति श्रुत्वा स तपसे गत्वा विन्ध्यं द्विजैस्ततः ।
 कात्यायनीं निराहारस्तुष्टां स्वप्ने व्यलोकयत् ॥ १२२ ॥
 प्रणताय वितीर्यासौ खड्गरत्नं महर्निजम् ।
 उवाच देवी तं पुत्र गच्छ प्राप्नुहि तां प्रियाम् ॥ १२३ ॥
 अस्ति वीरपुरे श्रीमांस्तुपारगिरिशेखरे ।
 विद्यामृत्समरो नाम सुता सा तस्य सुन्दरी ॥ १२४ ॥

१. 'दिहं' ख. २. 'इय' ख. ३. 'तीर्तरे' ख. ४. 'ताचारा' ख. ५. एतत्को-
 ष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके न दृश्यते. ६. 'दिवं वचो व्योम्नि' ख. ७. 'जातमञ्ज.'
 ख. ८. 'दिदम्' ख.

दर्पादमन्यतं तथा तुल्यरूपान्स्वयंवरे ।
 पितानङ्गप्रभां पुत्रीं शशाप क्रोधमूर्च्छितः ॥ १२५ ॥
 विरूपं मानुषी भूत्वा ब्राह्मणं पतिमाप्स्यसि ।
 (ततोऽनुपुरुषासङ्गं बहुशश्च समेप्यसि) ॥ १२६ ॥
 परदारापहारेण प्राग्जन्मनि स च द्विजः ।
 त्वद्वियोगाग्निसंतप्तो भविष्यति मुहुर्मुहुः ॥ १२७ ॥
 जनकेनेति शप्तासौ मुवि राजसुतामवत् ।
 प्राप्ताद्य स्वपुरं दिव्यं गच्छ मामुहि तां प्रियाम् ॥ १२८ ॥
 (इति श्रुत्वा प्रबुद्धोऽसौ स्वङ्गं वीक्ष्य स्वहस्तगम् ।
 तत्प्रभावोदितगतिर्ययौ व्योम्ना हिमाचलम् ॥ १२९ ॥
 तत्र विद्याधराजित्वा समरे तां तदात्मजाम् ।
 प्रापानङ्गप्रभां मूर्तां प्रमाविब मनोमुवः ॥ १३० ॥
 तत्र विद्याधरपुरे सित्वा संमोगतत्परः ।
 मनुष्यलोकं सोत्कण्ठो ययौ व्योम्ना तथा सह ॥ १३१ ॥
 ततः शिखरिपर्यन्तविपुले कटकस्थले ।
 फुल्लचूतलताहृतविलोलालिकुलाकुले ॥ १३२ ॥
 विजहार द्विजवरस्तथा राजीवनेत्रया ।
 तत्र लीलारतिश्रान्तः स निद्रामुद्रितेक्षणः ॥ १३३ ॥
 सुप्वाप तालपवनैर्व्यजनैरिव धीजितः ।
 अत्रान्तरे मृगरण्णीडायै तां वनस्वलीम् ॥ १३४ ॥
 राजा हरिवरो नाम दाक्षिणात्यः समाययौ ।
 स तां विद्याधरीं दृष्ट्वा जीवविद्यां मनोमुवः ॥ १३५ ॥
 कर्मन्तरङ्गतां भेजे ज्योत्स्नामिव सरित्पतिः ।
 (सापि तं वीक्ष्य राजानं रजनीराजमुन्दरम् ॥ १३६ ॥

१. 'मानासं' ख. २. '५' ख. ३-३. एतत्कोटान्तर्भवत्पाठः क-पुस्तके न दृश्यते.
 ४. 'सीतप' ख. ५. 'जीविता' ख. ६. '४' ख. ७. 'व्योम्ना' ख. ८. 'एत-
 त्कोटान्तर्भवत्पाठः ख-पुस्तके दृश्यते.

तद्व्यस्तमानसा प्राप कामपि सरविक्रियाम् ।
 क्षयं कृताभ्युपगमां ततस्तां स महीपतिः) ॥ १३७ ॥
 निनाय स्वपुरं हृष्टो धन्योऽस्मीति व्यचिन्तयत् ।
 तस्य तत्केलिसक्तस्य तद्विग्रमविकासिनः ॥ १३८ ॥
 कोऽप्यन्तःपुरसंकेपु बभूव प्रचुरोत्सवः ।
 जीवदत्तः प्रबुद्धोऽपि तामपश्यन्मनःप्रियाम् ॥ १३९ ॥
 बने शुशोच मुचिरं मृगीभिः साश्रुवीक्षितः ।
 ततो ग्रामं शनैर्दृष्ट्वा तस्या दुःखात्पतिव्रताम् ॥ १४० ॥
 प्रियादत्ताभिधां दिव्यचक्षुषा लोकितासिलाम् ।
 शुभ्राव दयितावृत्तं स तथैव निवेदितम् ॥ १४१ ॥
 राज्ञा हरिवराख्येन सा नीतेति सविस्मयः ।
 प्रणम्य दिव्यनेत्रां तां विरक्तः सोऽभवत्ततः ॥ १४२ ॥
 रागानलेन दग्धानां धैर्यं जायते कुतः ।
 स विन्ध्यवासिनीं गत्वा तावत्तेपे तपस्ततः ॥ १४३ ॥
 थावत्साक्षाद्भगवती तमुवाच कृताञ्जलिम् ।
 गणस्त्वं मे विरूपाक्ष्यः सहितोऽन्यैर्गणैस्त्रिभिः ॥ १४४ ॥
 कन्यामिलापी मुनिना शसो मर्त्यत्वमागतः ।
 अधुना क्षीणशापस्त्वं ते च प्राप्ताः पदं मम ॥ १४५ ॥
 इति देवीवचः श्रुत्वा गणतां प्राप स द्विजः ।
 साप्यनङ्गप्रमा तस्य राज्ञः प्रणयिनीपदम् ॥ १४६ ॥
 संप्राप्य रागिणी विधां विसस्मार मुलोचना ।
 ततो लब्धवरामिष्यो नाट्याचार्यो नरेश्वरम् ॥ १४७ ॥
 तत्पूजितं कलामित्रो द्रष्टुमभ्याययौ युवा ।
 संपूजितो भृशं राज्ञा चैनङ्गप्रमया रहः ॥ १४८ ॥

अशिक्षयन्नुपादेशान्नाथ्यं तां जातमन्मथाम् ।
 चित्रं करणशिक्षां ये देहीत्यभिहितस्तया ॥ १४९ ॥
 स तां स्वैरं शशिमुखीं मेजे सुरतकोविदः ।
 सा गाढरागिणी तेन सह प्रायादलक्षिता ॥ १५० ॥
 क वा तिष्ठन्ति सुचिरं निम्नगा इव योपितः ।
 नाध्याचार्यो निजं देशं तया सह समागमः ॥ १५१ ॥
 प्राप्य लेभे रतिसुखं तद्विलासरसोचितम् ।
 कदाचिदथ कालेन युवा घृतकृतादरः ॥ १५२ ॥
 सुहृत्सुदर्शनो नाम तं नाध्याचार्यमाययौ ।
 स तस्य केलिदूतेन धनं हत्वा सुदर्शनः ॥ १५३ ॥
 स्वयं कृताभ्युपगमां मेजेऽनङ्गप्रभां रहः ।
 नाध्याचार्यं परित्यज्य निर्धनं विगतद्युतिम् ॥ १५४ ॥
 घृतकारेण सहिता सा ललास धनस्तनी ।
 कालेन घृतकारोऽपि चौरैर्निर्द्रविणः कृतः ॥ १५५ ॥
 त्यक्त्वा हिरण्यगुप्ताख्यमासाद्य वणिजं तदा ।
 (वैभूव प्रेमसर्वस्वं तस्य सा रतिलालसा) ॥ १५६ ॥
 घृतकृतद्वियोगामिदग्धः स च धैराधिपः ।
 विरक्तौ संनिपातेन जग्मतुः परमं पदम् ॥ १५७ ॥
 वणिजः प्रेमसर्वस्वं कालेनाभ्योधिगामिनः ।
 वातभग्ने प्रवहणे संप्राप्ता धीवरेण सा ॥ १५८ ॥
 तेन सागरतीरेण चिरं दासेन कामिताम् ।
 युवा विजयधर्माख्यस्तां प्राप कुलपुत्रकः ॥ १५९ ॥
 यदृच्छया गतो दृष्ट्वा तां सागरपुत्राधिपः ।
 राजा सागरदत्ताख्यो रागिणीममजततः ॥ १६० ॥

१. 'संज्ञानमन्मथः' ख. २. 'महाधनः' ख. ३. 'तां वरः' ख. ४. 'एतच्छोभन्तः'
 गंतशतः ख-गुप्तके दुरितः. ५. 'नद्याधि' ख. ६. 'दाशप्रवीरेण सेनादामेन'
 कामिताम्' ख. ७. 'वर्माख्यो' ख.

कान्ता मूढिमुजा तेन विद्यासरसिकेन सा ।
 सेविता सुचिरं प्रेम्णा कालेनासूत पुत्रकम् ॥ १६१ ॥
 सुतः समुद्रदत्ताख्यस्तस्याः स शशिमुन्दरः ।
 विद्याकलाकलितधीः कालेन प्राप यौवनम् ॥ १६२ ॥
 कन्यां कमलिनीं नाम राज्ञः समरवर्मणः ।
 स प्राप विभ्रममहीं कान्तः परिणयोत्सवे ॥ १६३ ॥
 निर्जिताशेषवसुधं तं गुणोचितमात्मजम् ।
 अभिषिच्य ततः प्रायाद्राजानङ्गप्रभासस्रः ॥ १६४ ॥
 तौ प्रयागे निराहारौ दृष्ट्वा स्वप्ने महेश्वरम् ।
 स्त्रीणशायौ प्रययतुर्निजं वैद्याघरं पदम् ॥ १६५ ॥
 इत्यनङ्गप्रभास्यायिका ॥ ३ ॥

गोमुखेनेति कथितं श्रुत्वा वत्सेश्वरात्मजः ।
 जहास तस्या वृत्तान्तमलंकारवतीसखः ॥ १६६ ॥
 कदाचिदथ तं प्राह राजपुत्रं सुहृद्युतम् ।
 मरुमूतिः कृपाविष्टो दृष्ट्वा कार्पटिकं पुरः ॥ १६७ ॥
 शीतवातातपसहो सदैव स्वत्परायणः ।
 नाद्यापि परमां लक्ष्मीं प्राप्त इत्यद्भुतं महत् ॥ १६८ ॥
 प्राग्दत्तं मुञ्जते सर्वे कर्तुं वा कस्य कः क्षमः ।
 तद्यापि यत्कार्पटिकः पदं नाद्यापि संपदाम् ॥ १६९ ॥
 इत्युक्ते राजपुत्रस्य पुरतो मरुमूतिना ।
 गोमुखः प्राह सदृशं श्रूयतामेवमत्र च ॥ १७० ॥
 जमूल्लसपुरे श्रीमान्धैरुदत्ताभिधो नृपः ।
 लब्धदर्पाह्वयस्तस्य मत्तः कार्पटिकोऽभवत् ॥ १७१ ॥
 चिरसेवापरिक्रिष्टं तं विज्ञाय स पार्थिवः ।
 गूढं रत्नैः समापूर्य फलं तस्यै ददौ स्वयम् ॥ १७२ ॥

मातुलङ्गफलं प्राप्य सोऽपि राज्ञा समर्पितम् ।
 अभिदध्यौ तदद्यापि नाहं लक्ष्मीनिरीक्षितः ॥ १७३ ॥
 इति चिन्तापरो गत्वा यदृच्छोपगताय सः ।
 मक्तः कार्पटिकस्तस्य तत्फलं भिक्षवे ददौ ॥ १७४ ॥
 राजा नेन्दिरिति ख्यातः स भिक्षुस्तन्महीमुजे ।
 हस्तोपायनमास्थाने मातुलङ्गफलं ददौ ॥ १७५ ॥
 राजापि रत्नसंपूर्णं तत्परिज्ञाय सस्मितः ।
 (पुनः कार्पटिकायैव स तस्मै प्रददौ फलम् ॥ १७६ ॥
 राज्ञा दत्तं तदादाय दुःखितोऽसौ व्यचिन्तयत्) ।
 अहो रत्नाकरजुषा मया प्राप्तः कपर्दकः ॥ १७७ ॥
 इति ध्यात्वा मयाख्यस्य तद्ददौ राजसेविनः ।
 (वैष्णव्युमेन संतुष्टो मन्यमानोऽधिकं धनम् ॥ १७८ ॥
 अभयोऽपि फलं गत्वा भूमुजे तन्मयवेदयत् ।
 भूयः कार्पटिकायैव प्रादात्तच्च फलं नृपः ॥ १७९ ॥
 तद्विलासवती नाम फलमादाय नर्तकी ।
 मूर्खेन तस्मादनयद्रूपालोपायनास्पदम्) ॥ १८० ॥
 राजा पुनस्तदासाद्य सावेगं सितसुन्दरः ।
 तं कार्पटिकमुद्दिश्य चिक्षेप मणिमत्फलम् ॥ १८१ ॥
 वेगावपानस्फुटितफलोदरविनिर्गतैः ।
 रत्नैरिन्द्रायुधच्छायैस्तस्योत्सङ्गमपूर्यत ॥ १८२ ॥
 मक्षीणदुष्कृतो लक्ष्म्याः कटाक्षैरिव लक्षितः ।
 तेर्महारत्निकरैः सोऽभवत्संपदां निधिः ॥ १८३ ॥
 इत्यानिस्त्रीर्णदुष्कर्मसंकटैः श्रीर्न लभ्यते ।
 तवापि सेवको देव यन्नाद्यापि पदं ध्रियः ॥ १८४ ॥
 इति कार्पटिकाख्यायिका ॥ ४ ॥

निशम्य गोमुखेनेति कथितं नरवाहनः ।
 निजं कार्पटिकं चक्रे क्षणेन क्षितिपोषमम् ॥ १८५ ॥
 ततः कदाचिदभ्यायात्सेवितुं नरवाहनम् ।
 लम्बवाहुरिति स्यातो विप्रः शस्त्रमृतां वरः ॥ १८६ ॥
 वितीर्णे राजपुत्रेण तस्मै प्रत्यहवेतने ।
 जाम्बूनदशते प्राह गोमुखो हृष्टमानसः ॥ १८७ ॥
 एतद्विधाः प्रमुहितव्रतधीराः सुदुर्लभाः ।
 येषां पुरुषरत्नानां पृथ्वीमूल्यं विडम्बना ॥ १८८ ॥
 पुरा विक्रमतुङ्गाख्यो राजा विरजसा वरः ।
 द्विजं वीरवरं नाम सेवकं निदधे घनैः ॥ १८९ ॥
 श्रुत्वा निशि प्रलापिन्याः पृथ्वाः स पृथिवीपतेः ।
 पर्यन्तमानुषप्राप्तं यज्जाहत इवामवत् ॥ १९० ॥
 स तद्गिरा गिरः सूनोश्छित्त्वा सुश्रेयसे प्रभोः ।
 देवीमतोपयधेन शतायुरगवन्नृपः ॥ १९१ ॥
 ततो ररक्ष तं देवी स्वसिरश्छेत्तुमुद्यतम् ।
 जीवयित्वास्य (सुचिरं प्रसादामृतनिर्झरैः ॥ १९२ ॥
 इत्येवं स्वामिनां भृत्या भवन्त्यभ्युदयश्रिये ।
 अयं द्विजवरो देव वीरो भृत्यस्तबोचितः ॥ १९३ ॥

इति वीरवराख्यायिका ॥ ५ ॥

गोमुखेनेति कथितं श्रुत्वा वत्सेश्वरात्मजः ।
 नमन्द सचिवैः सार्धमलंकारवतीसखः ॥ १९४ ॥
 ततः कदाचिन्मृगयारसिको नरवाहनः ।
 पराक्रमं लम्बवाहोर्ददर्श हरियोषिनः ॥ १९५ ॥
 विपिने सरसस्तीरे स्वप्रगामरणैस्ततः ।
 चतुर्भिर्दिव्यपुरुषैर्धन्यः प्राप समागमम् ॥ १९६ ॥

नीतो नारायणं द्रष्टुं श्वेतद्वीपं विहायसा ।

तैस्तूर्णजातसौहार्दैः सोऽपश्यच्छेषशायिनम् ॥ १९७ ॥

श्रीपतिं पुण्डरीकाक्षं पद्मनाभमनामयम् ।

दृष्ट्वा प्रणम्य वरदं तुष्टाव नरवाहनः ॥ १९८ ॥

ॐ जय अजय अजित अव्यय अप्रमेय अनन्त अच्युत अपरिमित
अचल अचिन्त्य अप्रतिहत अमय महाविभव निरतिशय निरञ्जन निर्लेप
निष्पपञ्च निरुपम निर्विकार निर्गुण नित्योदित विश्वेश्वर विश्वरूप विश्वा-
श्रय विश्वसमुद्धरण शुद्ध सूक्ष्म ध्रुव शाश्वत शान्त सच्चित्स्वरूप परमान-
न्दमन्दिर स्वेच्छाशक्तिव्यक्तीकृतनिजप्रसर लक्ष्मीलतावसन्तातप मधुवभूग-
ण्डपाणिमपद असुरमहिषीभ्रमविराम अस्मिन्निदमसादमण्डिताखण्डल कौस्तु-
भप्रसारचितकमलाकुनकुङ्कुमपद्मभङ्ग अपरिपक्वसंगमाकुलीभूतसर्मांशुभामि-
नीलौकाब्जोन्दुफमलालम्बनलेखायितयसुधाभिराममहावराह हिरण्यकशिपु-
काननप्रलयानिल वामनलीलासंपदवामनीकृतसुरैश्वर्य चरणनखमयूखायित-
स्वर्वाहिनीमवाह क्षत्रक्षपाधरोदीपितकुठारानल दशवदनवदनकन्दुकविनोदा-
नन्दित कालियकुलकामिनीकुञ्जर रुक्मिणीकपोलदन्तपत्नीकृतपाञ्चजन्यप्रभा-
मयूर विद्रुमद्रुमायमाणकैटभरुधिरारुणोल्लसन्म ब्रह्मपद्माकतुरगमुलसलीन-
खणखणायमानसामवेदोद्विरा

इति स्तुत्या दृष्टीकेशं तदृत्ता दिव्ययोषितः ।

प्राप्य राजसुतः प्रायात्स दिव्यपुरुषालयम् ॥ १९९ ॥

रूपसिद्धिमुत्ताख्येऽथ समुद्रद्वीपवासिनः ।

अपूजयन्देवपुत्राः स्वगृहे नरवाहनम् ॥ २०० ॥

ततस्तद्विहितोदारगतिः प्राप्य निजां पुरीम् ।

अलंकारवतीं भेजे दृष्टो विरहनिःसहः ॥ २०१ ॥

इति नारायणदर्शनम् ॥ ६ ॥

ततः कदाचिदाकर्ण्य सूर्यश्चन्द्रं पुरान्तिके ।

किमेतदिति पप्रच्छ सन्निवाचनरवाहनः ॥ २०२ ॥

ततो हरिशिखः प्राह मद्रस्य वणिजो गृहे । २०३ ॥
 कौशाम्बीवासिनो देव वर्तते विपुलोत्सवः ॥ २०३ ॥
 लब्धो निजगृहोपान्ताग्निधिस्तेन महाघनः । २०४ ॥
 कृपया वत्सराजेन न चातस्तन्निवेदितः ॥ २०४ ॥
 तत्प्रसादाद्बृहं तस्य वणिजः प्रस्तुतोत्सवे । २०५ ॥
 सुतारस्तूर्यशब्दोऽयं रुणद्धि निखिलां पुरीम् ॥ २०५ ॥
 उक्ते हरिशिखेनेति गोमुखः प्राह ससितः । २०६ ॥
 अस्त्येवमेव धन्यानां विधाता वाञ्छितप्रदः ॥ २०६ ॥
 पुरा समुद्रशूरेण वणिजा द्वीपगामिना । २०७ ॥
 भग्ने प्रवहणे प्राप्तो जलोच्छूनः शवोऽम्बुधौ ॥ २०७ ॥
 तेनैवोत्तीर्य जलघेर्हमद्वीपमवाप्य सः । २०८ ॥
 शवबलाञ्जलसक्तां मणिमालामवाप्तवान् ॥ २०८ ॥
 तां कण्ठसूत्रिकां पूर्वं स चौरा राजमन्दिरात् । २०९ ॥
 हत्वा जलैषान्निःसृत्य ममञ्ज जलधौ मयात् ॥ २०९ ॥
 तां व्यसोस्तस्य चोरस्य स गृहीत्वा पुरान्तरम् । २१० ॥
 प्रविश्य पादपतले श्रान्तो निद्रां समाययौ ॥ २१० ॥
 मणिमालां परिज्ञाय स राजपुरुषैर्वलात् । २११ ॥
 नृपतेरन्तरं नीतस्तत्कोपाकुलिताकृतेः ॥ २११ ॥
 अत्रान्तरे रत्नमालां गृध्रस्तामहरच्छलात् । २१२ ॥
 (हृतेयमिति भूपालपुरः प्रतिष्ठता जनैः ॥ २१२ ॥
 आदिष्टे वणिजे राज्ञा वधे शब्दोऽभवद्विवि । २१३ ॥
 वणिक्समुद्रशूरोऽयं निर्दोष इति कर्मतः) ॥ २१३ ॥
 ततः सपूजितो राज्ञा शतैस्तद्वाक्यगौरवात् । २१४ ॥
 तीर्त्वा प्रवहणेनान्धि वेलातटमवाप्तवान् ॥ २१४ ॥
 तत्रास्य शवराः सर्वे जगृहूर्धनसचयम् । २१५ ॥
 स हतद्रविणो गत्वा निषसाद तरोरधः ॥ २१५ ॥

नीडे महाद्रुमस्याधस्तामेव मणिसूत्रिकाम् ।

लम्बमानां विलोक्याराद्रुमन्यस्तामवाप्तवान् ॥ २१६ ॥

पृथ्वीमूल्यानि रत्नानि तस्मादिव स्वगालयात् ।

स प्राप्य स्वगृहं प्रायाद्वणिगैश्चरणोपमः ॥ २१७ ॥

इति लाभक्षयाम्यासादन्यानामेव पुण्यतः ।

उदयान्ता भवन्त्येवमुक्तैव विरराम सः ॥ २१८ ॥

इति समुद्रशूराख्यायिका ॥ ७ ॥

अलंकारवतीवक्रपद्मबुम्बनपट्पदः ।

ततः सुहृद्भुतः कालं निनाय नरबाहनः ॥ २१९ ॥

अथ तं प्राह सेनानीस्तवासौ बालसेवकः ।

राजा विक्रमतुङ्गाख्यो देव प्राप्तो जयश्रियम् ॥ २२० ॥

तव भ्रूमङ्गमात्रेण हेलया तव सैनिकैः ।

समरे विजितास्तस्य रिपवः पञ्च पार्थिवाः ॥ २२१ ॥

ते च विक्रमतुङ्गेन स्वयं बद्धा महारणे ।

त्वत्पादमूलमानीता मानिनो बभूवुषाधिपाः ॥ २२२ ॥

क्षुत्वेति राजतनये ग्रह्ये प्राह गोमुखः ।

राजा विक्रमसेनस्ते सिद्धये देवसेवकः ॥ २२३ ॥

अत्रान्तरे वीरवृत्तं श्रूयतां कथयाम्यहम् ।

बभूव हास्तिनपुरे चमरो नाम भूपतिः ॥ २२४ ॥

स गोत्रशत्रुस्तस्यासीत्पतापो नाम पार्थिवः ।

सहान्यैर्वमुषाधीशैः स तं जेतुं समुद्ययौ ॥ २२५ ॥

विजयारम्भवार्तायां प्रतापेन महीभुजा ।

पृष्ट्वा प्राह देवज्ञो जयस्तव न दृश्यते ॥ २२६ ॥

न कालोऽयं तवोद्योगे मा प्रमादे मनः कृयाः ।

सुकाले प्रहितं सर्वमयत्नेनैव सिध्यति ॥ २२७ ॥

कौतुकाख्ये पुरवरे राजा बहुसुवर्णकः ।
 यमूव सर्वजनतासंकल्पमुखादपः ॥ २२८ ॥
 यशोधर्माभिधानस्तं कदाचिच्चिरसेवकः ।
 व्यजिज्ञपद्गुर्गतिर्मे क्षमापते वार्यतानिति ॥ २२९ ॥
 पुनः पुनः प्रार्थ्यमानस्तेन राजा निरुत्तरः ।
 दिवमालोक्य सुचिरादूचे सचिवसंसदि ॥ २३० ॥
 जानामि सेवकस्त्वं मे दीर्घकालमनन्यागः ।
 दातुमिच्छामि ते सर्वं किं तु सूर्यो ह्यग्नौ माय ॥ २३१ ॥
 इति राज्ञो वचः श्रुत्वा मौनमूके समातले ।
 यशोधर्मा विनिःश्वस्य विधिं मेने दिवाकरम् ॥ २३२ ॥
 ततः कदाचित्स नृपं राहुग्रस्तंऽशुमालिनि ।
 व्यजिज्ञपत्कुरुक्षेत्रे हेमरत्नान्ध्रप्रदम् ॥ २३३ ॥
 त्वत्प्रसादनिपेक्षा मे देवोऽयं मास्करो र्षिः ।
 राहुणा द्युत्रुणाक्रान्तो देहसिन्धो क्षणे धनम् ॥ २३४ ॥
 इति नर्मवता तेन विज्ञप्तः स महीपतिः ।
 प्रहस्य सानुगतस्मै तुष्टो मूरि धनं ददौ ॥ २३५ ॥
 महाव्ययौऽयं सुचिरान्न प्राप्य तद्रणस्रयम् ।
 विविग्रहदयः प्रायात्तपसे विन्यवासिनीम् ॥ २३६ ॥
 सा तुष्टा प्राह तं भोगान्धनं वासमवामुहि ।
 इति देव्या समुद्दिष्टो द्रष्टुं प्रायाद्गणिकसुतौ ॥ २३७ ॥
 एकं स संचयपरं ददर्श कृपणाश्रयम् ।
 भोग्यलेशापराधेन प्राप्तः प्राप्तिसूचिकाम् ॥ २३८ ॥
 धीरं निःसंचयं चान्यं सदा संभोगतत्परम् ।
 स तौ दृष्ट्वा गिरिसुतां ययाचे भोगसंपदम् ॥ २३९ ॥

देवीवरात्पार्ष्ण भोगान्स संपूर्णमनोरथः ।

इत्येवं कालविहितं सर्वं भवति सिद्धये ॥ २४० ॥

इत्यन्तराख्यायिका ॥ ८ ॥

नाथं जयस्य ते कालो गणकेनेति ते नृपाः ।

वारिता अपि युद्धाय राजानं चमरं ययुः ॥ २४१ ॥

चमरोऽपि सुसंनद्धो धीरं नाम च भूपतिम् ।

पुरस्कृत्य महानीको निर्ययौ समरोन्मुखः ॥ २४२ ॥

निहतानेकमुमटान्विदारितहयद्विपान् ।

स तान्नेरेन्द्रान्संग्रामे बबन्ध बलिताम्बरः ॥ २४३ ॥

विजयश्रियमासाद्य स्वपुरे विहितोत्सवः ।

तद्वधूपातिनो भूपान्स तांस्तत्याज सत्त्ववान् ॥ २४४ ॥

इत्युत्साहपरा धीराः समरे व्यवसायिनः ।

लभन्ते विजयं देव यान्ति वा त्रिदिवं हताः ॥ २४५ ॥

इति चामराख्यायिका ॥ ९ ॥

गोमुखेनेति कथिते सुहृद्भिर्नरवाहनः ।

निरर्गलकथासक्तो ननन्द दैयितासखः ॥ २४६ ॥

ततो नर्मकयाबन्धे हसन्हरिशिखोऽग्रचीत् ।

मरुमूतिरयं देव साक्षाद्योमः किमुच्यते ॥ २४७ ॥

शृचि सांवत्सरी योऽयं भृत्यानां मीलितेक्षणः ।

करोति पाठमौनानां मौनमश्ममयो यथा ॥ २४८ ॥

उक्ते हरिशिखेनेति गोमुखः प्राह ससितः ।

नर्मदासविलासो हि गोष्ठीष्वभृतनिर्जरः ॥ २४९ ॥

देव दुष्ण्या भवन्त्येव तथा च क्षितिपोऽगवत् ।

चिरदाता यथार्थेन नागैव कथिताशयः ॥ २५० ॥

प्रसन्नोऽर्थमुखश्चेति तस्मात्सन्सेवकास्त्रयः ।

तेषामवृत्तिस्तुष्णानां प्रययुः पञ्च वत्सराः ॥ २५१ ॥

दारिद्र्यदुःखाद्राजानं सदा याचितुमुद्यतौ^१ ।

प्रसन्नाख्येन कालोऽयं नेत्यन्यौ विनिवारितौ ॥ २५२ ॥

अत्रान्तरे नृपसुते बाले दैवादिवं गते ।

प्रसन्नोऽभ्येत्य शोकार्तं नरनाथं व्यजिज्ञपत् ॥ २५३ ॥

देव यातः सुविपुलः कालस्त्वत्पादसेवनम् ।

अस्माकं कर्मबन्धेन केनापि हतसंपदाम् ॥ २५४ ॥

नृपाद्वर्षशतेनापि नैवास्मादस्ति नः फलम् ।

पूतत्सुतो दास्यतीति बद्धोऽस्माग्भिर्मनोरथः ॥ २५५ ॥

सौऽय बालस्तव सुतो नीतोऽस्मद्भाग्यसंक्षयात् ।

दैवेन त्वदनुज्ञाता गच्छामः स्वस्ति ते प्रभो ॥ २५६ ॥

इति तद्वचनेनासौ वृद्धः शोकाकुलो नृपः ।

ददौ तेभ्यो बहुधनं पुत्रकीर्तनगोहितः ॥ २५७ ॥

इत्यादि गोमुखेनोक्तं मरुभूतिविडम्बनम् ।

श्रुत्वा जहास मुदितो राजपुत्रः प्रियासखः ॥ २५८ ॥

इति लुब्धाख्यायिका ॥ १० ॥

पृष्ठोऽलंकारवत्याख्या कथां चित्तविनोदिनीम् ।

गोमुखः सादरं प्राह तस्यां सचिवसंसदि ॥ २५९ ॥

हिरण्यवर्णं इत्यासीद्वसुधाधिपशेखरः ।

यशस्वी काञ्चनपुरे पञ्चबाण इवापरः ॥ २६० ॥

स तु चित्रपटाकारदर्शनाज्जातमन्मथाम् ।

विदर्भराजतनयां लेभे मदनमञ्जरीम् ॥ २६१ ॥

रममाणस्तया तत्र हरिणीहारिनेत्रया ।

मेने वराकं त्रैलोक्यजयिनं रतिवल्लभम् ॥ २६२ ॥

कदाचिदथ दुःस्वप्नं विलोक्याकुलितो नृपः ।
 कार्तिकेयवने देवं कुमारं समतोषयत् ॥ २६३ ॥
 विद्मदसम्भग्विहितां मूर्तिं तस्य षडाननः ।
 ज्ञात्वा प्रियवियोगस्ते मूयादिति शशाप तम् ॥ २६४ ॥
 नृपोऽपि शापदुःखं तद्विस्मृत्य शनैः प्रियाम् ।
 कण्ठावलम्बिनीं कृत्वा धन्योऽस्मीति मुदं ययौ ॥ २६५ ॥
 ततः कालेन सा गर्भदोहदा पाण्डुरच्छविः ।
 बभूवासन्नचन्द्रेव लहरी दुग्धवारिधेः ॥ २६६ ॥
 अथासूत सुतं कान्तं बालकं समवर्चसम् ।
 चक्रवर्तिपदोदारलाञ्छनाकलिताकृतिम् ॥ २६७ ॥
 दिनेषु पदसु यातेषु ततो धर्षितदिक्कटाः ।
 उद्यत्तरुजटालमा विकटा मरुतो बबुः ॥ २६८ ॥
 पांशुरूपान्धकारेण नद्धे भुवनमण्डले ।
 प्रविश्य सूतिकावेशम् काली पिङ्गललोचना ॥ २६९ ॥
 दंष्ट्राविकटवदना तडितरलकुण्डला ।
 भयंकरी कापि योपितं जहार शिशुं बलात् ॥ २७० ॥
 पुत्रक्षेहादनुययौ यातां तां च नृपप्रिया ।
 सलिलान्तरनिर्मग्रां तामेवानुममज्ज ह ॥ २७१ ॥
 राजापि तिमिरे शान्ते यातां कापि सपुत्रकाम् ।
 ज्ञात्वा प्रियतमां शोकाद्रेजे शतगुणं तमः ॥ २७२ ॥
 राजधानीं परित्यज्य हा प्रिये चित्तचन्द्रिके ।
 क यातासीति विलपन्बभ्राम विपुलां महीम् ॥ २७३ ॥
 स काननं समासाद्य कान्तं विद्याधरं पदम् ।
 ददर्श तं च पप्रच्छ संतप्तः शोकमेपजम् ॥ २७४ ॥
 स च विद्याधरः प्राह द्विजोऽहं तत्त्वैतिमही ।
 बन्धुदद्याभिषो राजस्त्वद्गृहे कृतमोजनः ॥ २७५ ॥

त्वयैव कृतसाहाय्यः पुरा वेतालसाधकः ।
 वैद्याघरीमहं प्राप्तः श्रियमेतां महीपते ॥ २७६ ॥
 इतो गत्वा गगवतीमाराध्य हरवल्लभाम् ।
 अचिरात्प्राप्स्यसि सर्तां तामेव सुचिरात्प्रियाम् ॥ २७७ ॥
 इत्युक्तस्तेन स शनैर्गत्वा विन्ध्यमहीधरम् ।
 अतोपयद्गगवतीं तपसा शंकरप्रियाम् ॥ २७८ ॥
 मयैव रक्षिता पत्नी तव सा ससुता प्रिया ।
 इत्युक्त्वा पार्वती तस्मै ददौ तां तनयं तदा ॥ २७९ ॥
 प्रहृष्टो दयितां प्राप्य प्राप पुत्रं च भूपतिः ।
 हिरण्यवर्णैः स्वपुरं गत्वा चक्रे महोत्सवम् ॥ २८० ॥
 इति हिरण्यवर्णस्यायिका ॥ ११ ॥
 गोमुखेनेति कथिते प्रहृष्टे नरवाहने ।
 तत्सर्पाबन्धसंरब्धो मरुमूतिरभाषत ॥ २८१ ॥
 चन्द्रस्वामीति विप्रोऽभून्नगरे कमलामिधे ।
 भार्या देवमती नाम तस्यामूढचित्तवता ॥ २८२ ॥
 महीपालमिधं तस्मां स प्राप तनयं प्रियम् ।
 अलंकारं निजकुले कन्यां चन्द्रवतीं तथा ॥ २८३ ॥
 कदाचिदथ दुर्भिक्षे भार्यामामङ्ग्य तां ययौ ।
 श्वशुरावसथे न्यस्तं तं पुत्रं कन्यकां च ताम् ॥ २८४ ॥
 पपि ग्रीष्मोपसंतप्तं संप्राप्तो जीवनं वनम् ।
 शुशोच दृष्ट्वा तृष्णावर्तो बालौ शुष्यन्मुस्ताम्बुजौ ॥ २८५ ॥
 निधाय तौ तथैकान्ते तदर्थं जलकाङ्क्षया ।
 स ब्रजन्शवराधीशमपश्यद्धारुणाकृतिम् ॥ २८६ ॥
 तेन दुर्गोपहाराय नीते तस्मिन्निजालयम् ।
 तौ बालकौ महाशोकवह्निस्तपमापतुः ॥ २८७ ॥

ततो यदृच्छयायातो वणिक्सार्थवैरामिधः ।
 निजं निनाय कृपया तौ गृहं श्रुततत्कथः ॥ २८८ ॥
 चन्द्रवत्या समं स्वस्ता महीपालोऽथ तद्गृहे ।
 श्रुतिस्मृतिक्रियासक्तश्चिरं तस्यौ द्विजाग्रणीः ॥ २८९ ॥
 ततस्तारावलोकस्य नृपतेः सचिवो द्विजः ।
 श्रीमाननन्तस्वामीति तं मित्रं प्राप सार्थपम् ॥ २९० ॥
 स तद्गृहे द्विजसुतं दृष्ट्वा कन्यां च विस्मितः ।
 दत्तः सार्थवैरैरेव प्रीतः पुत्रपदे व्यधात् ॥ २९१ ॥
 अनन्तस्वामिनानीतौ तारापुरनिवासिनौ ।
 तद्वधूभ्यां च यत्नेन सुताविति विवर्धितौ ॥ २९२ ॥
 अस्मिन्नवसरे चन्द्रस्वामी शबरमन्दिरे ।
 तुष्टाव भास्करं गाढनिगडाबन्धपीडितः ॥ २९३ ॥
 तत्तत्प्रतुष्टो भगवान्स्वप्ने शबरमंशुमान् ।
 आदिदेश कृपाविष्टो द्विजोऽयं त्यज्यतामिति ॥ २९४ ॥
 तदाज्ञया परित्यक्तस्तेन सोऽथ सुताशया ।
 चिन्तासंतप्तहृदयो बभ्राम निखिलां महीम् ॥ २९५ ॥
 स पृच्छन्मयिकान्सर्वाङ्गुश्राव जलधेस्तटे ।
 बालौ केनापि वणिजा प्राप्तावित्यस्फुटं पथि ॥ २९६ ॥
 समुद्रद्वीपविषयनगरग्रामगह्वरम् ।
 स विविच्य शनैः प्राप क्षपायां निर्जनं वनम् ॥ २९७ ॥
 ददर्श मातृकास्त्रज देवतायोगिनीगणैः ।
 सेविताः कलिसंसक्ता नृत्यगीतरसाकुलाः ॥ २९८ ॥
 तत्रैका योगिनी प्राह निजां दृष्ट्वानुयायिनीम् ।
 निरीक्ष्यमाणो विषे सा साभिलाषे सविभ्रमात् ॥ २९९ ॥
 अयि किं त्वमदृष्टेऽसि विप्रेऽस्मिन्नभिरापिणी ।
 पुरा नपुंसकं प्राप सुन्दरी राजकन्यका ॥ ३०० ॥

भर्तारं निशि शय्यायां तं दृष्ट्वा दुःखितामवत् ।
 सा पित्रे प्रेषयामास दूतं सोऽप्याययौ रुषा ॥ ३०१ ॥
 नपुंसकेन मत्कन्या दूषितेति रणोन्मुखः ।
 भयात्तस्याथ जामाता मन्त्रेणाराध्य गुह्यकम् ॥ ३०२ ॥
 अवाप्य पौरुषं लिङ्गं सिधेवे सुन्दरीं पुनः ।
 स्वमप्यज्ञातशीलेऽस्मिन्मा कृथाः सादरं मनः ॥ ३०३ ॥
 तामित्युक्त्वा समम्येत्य पप्रच्छ ब्राह्मणं ततः ।
 अप्यस्यां साभिलाषस्त्वं न वेति द्विज कथ्यताम् ॥ ३०४ ॥
 सोऽब्रवीद्देवि मनसः स्वभावो ह्यभिलाषिता ।
 किं त्वहं त्वनियेकेन रक्षाम्यनुचितादिति ॥ ३०५ ॥
 तच्छ्रुत्वा वरदा देवी तस्मै नीलोत्पलं ददौ ।
 सर्वार्थसिद्धिमेतेन प्राप्स्यसीत्यभिधाय सा ॥ ३०६ ॥
 तत्प्राप्य स ब्रजन्प्रातर्गत्वा तारापुरं शनैः ।
 हा कष्टमिति शुश्राव जनकोलाहल महत् ॥ ३०७ ॥
 किमेतदिति पृष्ट्वासौ पौरेभ्यः स्वामिनो महत् ।
 अनन्तस्वामिनः सूनुर्दत्तको नृपमन्त्रिणः ॥ ३०८ ॥
 सर्पेण दष्टः श्रुत्वेति तमपश्यद्व्यसुं ततः ।
 नीलोत्पलप्रभावेन जीवयित्वा स तं क्षणात् ॥ ३०९ ॥
 कण्ठे जग्राह सोत्कण्ठं परिज्ञाय निजात्मजम् ।
 ततो बन्धुमतीं नाम तनया गुणशालिनीम् ॥ ३१० ॥
 ददौ ताराबलोकोऽसौ राज्यार्थं च नरेश्वरः ।
 प्राप्त्यराज्यं महीपालं चन्द्रस्वामी ततः सुतम् ॥ ३११ ॥
 तं रहः प्राह जननीं द्रष्टुमेहि निजां पुरीम् ।
 सा हि दीर्घवियोगेन किं तु जीवति वा न वा ॥ ३१२ ॥
 तामादाय पुनः पुत्र समेष्यावः क्षणादिति ।
 तव संप्राप्त्यराज्यस्य गुरुभक्तिर्विगूढणम् ॥ ३१३ ॥

लक्ष्मीलताकुठारो हि गुरुशापः सुदुःसहः ।
 चक्रस्य वणिजः पूर्वं पितुरादेशखण्डनात् ॥ ३१४ ॥
 ज्वालाकुलं मूर्ध्नि चक्रं पपातात्यन्तदुःसहम् ।
 पितरौ सेवमानस्य धर्मव्याधस्य कोऽप्यमृतम् ॥ ३१५ ॥
 ज्ञानप्रकाशो येनास्य शिष्यतां मुनयो ययुः ।
 इति पित्रा समादिष्टः स ययौ मातुरन्तिकम् ॥ ३१६ ॥
 याते तस्मिन्वियोगार्ता बन्धुमत्यमवचतः ।
 सा दुःखिता मातृगिरा सन्नागारमकारयत् ॥ ३१७ ॥
 नानादेशगतामेकद्विजविश्रान्तिपादपम् ।
 ततः संगमदचाख्यो द्विजन्मा तीर्थशालिनीम् ॥ ३१८ ॥
 आन्त्वा वसुमतीं लेभे स तत्र स्नानभोजनम् ।
 बन्धुमत्या स पृष्टोऽथ वियोगे दुःखमेवजम् ॥ ३१९ ॥
 उवाच पुण्ययोगेन निजं भर्तारमाप्स्यसि ।
 स्वयमेव मयाध्वर्यं दृष्टं शृणु पतिव्रते ॥ ३२० ॥
 आन्त्वा निरिलतीर्थानि हिमशैलसरोवरे ।
 उत्थितं दिव्यपुरुषं दिव्यामरणमूषितम् ॥ ३२१ ॥
 जपदयं दिव्यनारीभिः सेव्यमानं सरोवरात् ।
 रममाणे ततस्तस्मिन्स्त्रा लीलावतीसखे ॥ ३२२ ॥
 केलिक्रान्ते क्षणं सुप्ते कोऽपि राजा समाययौ ।
 स समभ्येत्य निद्रालोः खड्गं तस्यान्तिके स्थितम् ॥ ३२३ ॥
 गृहीत्वा तत्प्रभावेण तं जघान यदा ततः ।
 जगित्तिरस्त्रे . त्तिरस्त्रे . त्तिरस्त्रे जगद् ॥ ३२४ ॥
 स राजा तद्वपुःशर्मं प्राप्य मामवदत्ततः ।
 एष पाशुपताचार्यो मया सह पुरा व्यधात् ॥ ३२५ ॥

पापः प्रयातो नमसा दिव्यस्त्रीसङ्गसिद्धिदम् ।
 अथ द्वादशमिलेयः सोऽयं सवत्सरैर्मया ॥ ३२७ ॥
 निधनाहोऽपि न हतः सिद्धयोऽपि हतास्तु ताः ।
 इत्युक्त्वा सरसो मन्ये दिव्यमाणिक्यमन्दिरम् ॥ ३२८ ॥
 सहेवामरकान्ताभ्यां स विवेश नरेश्वरः ।
 इति बन्धुमती श्रुत्वा चित्रमुक्तं द्विजन्मना ॥ ३२९ ॥
 यद्यन्य धैर्यं धर्मस्या सती दयितसगमे ।
 कदाचिदपरोऽभ्येत्य तां द्विजः सन्नशालिकाम् ॥ ३३० ॥
 मुक्त्वा निज्ञातवृत्तान्तः प्राह बन्धुमतीं कृशाम् ।
 निषधेषु नलो नाम नृपालो ललिताकृतिः ॥ ३३१ ॥
 जमद्वृणगणोद्यानविकाशकुमुमाकरः ।
 मृगयारसिकः सोऽयं कदाचित्कनकप्रभाम् ॥ ३३२ ॥
 यद्यन्य हंसांस्ते चाहुर्मुद्याम्मांस्त्वं महीपते ।
 जुता विदर्भराजस्य मीमंसासि मुमच्यमा ॥ ३३३ ॥
 दमयन्तीति विख्याता वयं तत्केलिसारसाः ।
 ते वयं भवता मुक्ताः करिष्यामः प्रियं तव ॥ ३३४ ॥
 मविष्यसि तृतीयेन तन्मुद्रांमोजपदपदः ।
 इति श्रुत्वा तस्याज हंसान्व्याप्तो मनोमुखा ॥ ३३५ ॥
 श्रुतेनोर्पाप्सितं वस्तु कस्य धैर्यं न कर्षति ।
 ते गत्वा दमयन्त्यै तं कथयन्तो न्यवेदयन् ॥ ३३६ ॥
 सौभाग्यमिव साकारं प्रत्यक्षमिव मन्मथम् ।
 शनैर्विदहन्मौ तौ गुणैकगणान्मियः ॥ ३३७ ॥
 दिनैर्वमूवतुः प्रौढशरताक्रण्डपाण्डुरौ ।
 अथ राजश्रुता ध्यात्वा नरसंगमवाञ्छया ॥ ३३८ ॥
 नृपेभ्यः प्राहिणोद्भूतान्पितुर्धाक्यात्स्वयंवरे ।
 समागतेषु मूषेषु लोकपालः समाययुः ॥ ३३९ ॥

शक्राद्या नारदगिरा कन्यावरणलोलुपाः ।
 साभिलाषां नले ज्ञात्वा दमयन्तीं दृढव्रताम् ॥ ३४० ॥
 तदप्य एव विविशुः स्वयंवरसभां सुराः ।
 निर्विशेषाजलान्दृष्ट्वा दमयन्तीं भुवि स्थिता ॥ ३४१ ॥
 छायाद्वितीयमवृणोत्परिज्ञाय नलं धिया ।
 ज्ञात्वा देवाः स्वमाकारं विधाय प्रददुर्वरान् ॥ ३४२ ॥
 नलरूपाय संतुष्टाः स्मरणाच्च स संनिधिम् ।
 दमयन्तीं समादाय स्वपुरं नैपथे गते ॥ ३४३ ॥
 द्वापरेण कलिः सार्धं कन्यालोमात्समाययौ ।
 घृतस्तया नलो राजा गच्छ वृत्तः स्वयंवरः ॥ ३४४ ॥
 श्रुत्वेति देववचनं वृद्धः प्रायात्कर्लिर्नलम् ।
 तदाविष्टः स नृपतिः सगोत्रेणाय शत्रुणा ॥ ३४५ ॥
 केनापि पुष्कराख्येन जित्वारण्यं विवासितः ।
 दमयन्त्यां स सहितः काननं प्राप्य निर्जनम् ॥ ३४६ ॥
 गृहीतुं वाससा हंसान्श्रुत्क्षामः क्षिप्रमुचयौ ।
 कलिद्वापरनिर्दिष्टास्ते हंसास्तूर्णमंशुकम् ॥ ३४७ ॥
 जहुस्तस्य ततः सोऽपि दमितार्धाम्बरं ध्रितः ।
 स्रावैकवसनादूर्ध्वं गत्वा प्राप्य वनान्तरम् ॥ ३४८ ॥
 निपण्णौ स्वण्डिले तृष्णाशुष्यद्वदनपद्मजौ ।
 दमयन्त्यां प्रसुप्तायो नलः कलिविमोहितः ॥ ३४९ ॥
 कृत्वा शस्त्रेण वस्त्रार्धं प्रययौ दैवविभ्रुतः ।
 ॥ गत्वा पुनरभ्यायात्पुनः प्रायात्स दुःस्थितः ॥ ३५० ॥
 दोलाविलोलहृदयो रागान्मोहाच्च मृपतिः ।
 श्रायसेति समाकर्ण्य शब्दं गत्वा वनान्तरम् ॥ ३५१ ॥
 दावानलादुज्जहार कर्कोटं पद्मगोचमम् ।
 घतद्यद्विषशृत्कारैर्यतः शिषं विवर्णताम् ॥ ३५२ ॥

हस्तोऽविटङ्गवदनः सोऽभवन्नृपशेखरः ।
 ऋतुपर्णस्य नगरीमयोध्यां प्राप्य दुःस्वितः ॥ ३५३ ॥
 प्राप्तनागांशुकस्तस्यै सूतसारथ्यकर्मणि ।
 दमयन्ती प्रबुद्धापि प्राणनाथविनाकृता ॥ ३५४ ॥
 विललापातिकर्णं हृषदामपि दारणम् ।
 कासि मे हृदयाधीश फुल्लपद्मदलेक्षण ॥ ३५५ ॥
 तां दुष्टाजगरेणाशु अस्तां वा ओशतीं मुहुः ।
 तामाकर्ण्यगतो व्यापो हत्वा दुष्टं मुनोच ताम् ॥ ३५६ ॥
 ततः कामातुरो मृतकोपाद्ग्लस्य चकार तम् ।
 इति कामाक्षरं बाल शोचन्ती सा ययौ शनैः ॥ ३५७ ॥
 कालेन वैदर्भपुरीं पितुः प्राप्य सुमध्यमा ।
 एकवेर्णाव्रता तस्यै नलसंगमबान्धवा ॥ ३५८ ॥
 सा ततः प्राहिणोद्विमान्विचेतुं निषधाविपम् ।
 प्रथिवीं ते च तद्गाथां गायन्तो बभ्रमुश्चिरम् ॥ ३५९ ॥
 ऋतुपर्णपुरे धीमानेको निषश्चरन्मुहुः ।
 जगौ विगुणयंस्तत्र नलस्याद्भुतचेष्टितम् ॥ ३६० ॥
 मनोरममपि छिडत्वा वाससोऽर्थं गतो ह्यसि ।
 प्राणेभ्यः प्रियां भार्यां क नु त्यक्त्वा विमोहिताम् ॥ ३६१ ॥
 द्विजस्येत्ययं सारथ्यच्छत्रस्तुरगमन्दिरम् ।
 श्रुत्वैव विकटाकारः सासोऽमृद्वाहुकामिषः ॥ ३६२ ॥
 सोऽत्रवीदैवदग्धानां दुष्कर्महतचेतसाम् ।
 निकारं करुणापूर्णाः सहन्ते सरलश्रयाः ॥ ३६३ ॥
 बाहुकस्येति वचनं श्रुत्वा साश्रुदृशो वचः ।
 अयोध्यां प्राक्षणो गत्वा दमयन्त्यै न्यवेदयत् ॥ ३६४ ॥
 सापि स्वयंवरन्यासाद्भुतपर्णं महीमुजम् ।
 एकेनैव निनायाद्वा लङ्घितानेकयोजनम् ॥ ३६५ ॥

स वाजिहृदयज्ञेन बाहुकेनाश्ववाहिना ।
 ध्यात्वायोध्याधिपं प्राप्तं नलं सूतमशङ्कत ॥ ३६६ ॥
 ऋतुपर्णप्रदिष्टं च प्राप्याश्चहृदयं नलः ।
 नागांशुकेन तत्याज बाहुकक्षां विरूपताम् ॥ ३६७ ॥
 कर्कोटविषदग्धोऽथ तच्छरीराद्विनिर्गतः ।
 कलिर्विभीतकतरुं विवेश मयविह्वलः ॥ ३६८ ॥
 ततः स्वरूपसुमगं नलं पद्मदलेक्षणम् ।
 दमयन्ती समासाद्य हृष्टा निर्वृतिमाययौ ॥ ३६९ ॥
 नलोऽपि स्वपुरं गत्वा सानुगो बल्लभासखः ।
 धूतेन पुष्करं जित्वा निजं राज्यमवाप्तवान् ॥ ३७० ॥
 इति वैदर्भतनया दयितं प्राप सुन्दरी ।
 त्वमप्येवं महीपालं द्विजेन्द्रं पतिमाप्स्यसि ॥ ३७१ ॥

इत्यन्तर्नलाख्यायिका ॥ १२ ॥

इति विप्रवचः श्रुत्वा मेजे बन्धुमती धृतिम् ।
 कालेन तत्पतिस्तस्य पितरौ च समाययुः ॥ ३७२ ॥
 प्रियां बन्धुमतीं प्राप्य राज्यं च स जनप्रियः ।
 वरादनन्तनागस्य सहस्रायुरभूद्विजः ॥ ३७३ ॥
 इति बन्धुमत्याख्यायिका ॥ १३ ॥

इति प्रियसखः श्रुत्वा कथितं मरुभूतिना ।
 सुहृत्केलिकलालोलस्तुतोप नरवाहनः ॥ ३७४ ॥
 अथ सचिवक्याभिः कामिनीकेलिसक्तो
 गुरुचरणसपर्याकस्त्रितोत्तंसशोभः ।
 रिपुकुलमवदिश्यन्द्रचूडाद्विसेवा-
 विकसदमलसत्त्वो राजपुत्रो बभूव ॥ ३७५ ॥

इति श्रीभोजेन्द्रविरचितायां बृहत्कथामञ्जर्यामलङ्कारवती नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।

शक्तियशोलम्बकः ।

अनङ्गीकृतकामाय नमो वामार्धधारिणे ।
 शिवायाश्चर्यरूपाय निष्कलाय कलामृते ॥ १ ॥
 ततः कदाचिदास्यानस्थितं वत्सनरेश्वरम् ।
 वणिग्व्यजिज्ञपत्प्रह्वः प्रतीहारेण सूचितः ॥ २ ॥
 देवामवदुर्गतो मे दासो वसुधराभिषः ।
 मयाद्य तस्य शिखरे कापि संपद्विलोकिता ॥ ३ ॥
 मया सकौतुकं पृष्टः प्राह मद्यमदाकुलः ।
 प्राप्तो मया नृपद्वारादनर्घ्यो रत्नकङ्कणः ॥ ४ ॥
 रत्नत्रयवतस्तस्मादुपाधैको भणिर्मया ।
 दत्तो रूपकलक्षेण वणिजा विजनस्थिते ॥ ५ ॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा मयान्विष्टो वणिक्स्वयम् ।
 हिरण्यगुप्तो धनवान्विपुलक्रयविक्रयः ॥ ६ ॥
 वणिजा रत्नदत्तेन श्रुत्येत्यावेदितं नृपः ।
 तं विस्मय्य प्रतीहारसंदिष्टावानिनाय तौ ॥ ७ ॥
 तान्भ्यां कङ्कणमासाद्य रत्नमुत्पादितं च तौ ।
 कृपया वत्समूपेन मूर्खाविति न दण्डितौ ॥ ८ ॥
 ततो नर्ममुद्वह्मप्राह हासशीलो वसन्तकः ।
 अहो नु पुण्यहीनेन हारितोऽनेन कङ्कणः ॥ ९ ॥
 दैवाद्वा कर्मयोगाद्वा लक्ष्मीः प्राप्तापि गोचरम् ।
 प्रमादादल्पबुद्धीनां सहसैव विनश्यति ॥ १० ॥
 वैराको विप्रलब्धोऽत्र कटकेन मुदुर्गतः ।
 स्वप्नवन्मन्दभाम्योऽसौ तत्रैव श्रूयतामिति ॥ ११ ॥
 मारिकः शुभदत्ताख्यः पुरे पाटलिपुत्रके ।
 काष्ठान्ग्राहर्तुमगमद्वनं विपुलपादपम् ॥ १२ ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरं तत्र यक्षचतुष्टयम् ।
 ददर्श विगतस्तत्र प्राहुस्ते तमयादरात् ॥ १३ ॥
 अरे चतुररूप त्वं मनुष्यः परिदृश्यसे ।
 निर्जनेऽसिन्वने भद्र परिचर्यां कुरुष्व नः ।
 (भोजनं तावदधुना देहि नानारसोचितम् ॥ १४ ॥
 अमुष्माद्भद्रघटकाद्यदिष्टं तदवाप्यते ।
 इति तद्वचसा तूर्णं घटकात्तत्प्रदर्शितात्) ॥ १५ ॥
 यथोदितं समुद्धृत्य तेभ्यो मोगान्वरान्ददौ ।
 तदाज्ञया स्वयं प्राप यथेच्छमशनं ततः ॥ १६ ॥
 दिव्यं विलेपनं मालां शयनं च घटोद्धृतम् ।
 तेभ्यो भुक्तोत्तरं दत्त्वा स परं विसर्गं ययौ ॥ १७ ॥
 इत्थं तत्सेवया नित्यं कंचित्कालं निनाय सः ।
 कालेन तुष्टास्ते यक्षास्तमेवासौ ददुर्घटम् ॥ १८ ॥
 नमोऽस्तु तस्य सेवार्यै सर्वसिद्धिमुवा यया ।
 यक्षा अपि वशं यान्ति दुर्लक्षा विपमाशया ॥ १९ ॥
 स भद्रघटमादाय भारिकः स्वगृहं ययौ ।
 चिन्तामणिप्रभातत्पराभृद्धिमवाप्तवान् ॥ २० ॥
 ततस्तदुद्धृतैर्मोगैः सुहृद्भन्धुजनैर्वृतः ।
 महोत्सवं स विदधे सदा मधुमदाकुलः ॥ २१ ॥
 विभूतिकारणं पृष्टः कौतुकात्स्वजनैरथ ।
 हर्षाद्भद्रघटं स्कन्धे कृत्वा क्षीयते ननर्त ॥ २२ ॥
 मददोषात्पपातासौ सशब्दं वमुपातले ।
 तसिन्निपतिते मत्ते ययौ शकलतां घटः ॥ २३ ॥
 भोगे मनोरथैः सार्धं घटे यक्षान्तिकं गते ।
 स्वप्नवद्विधितः प्राप दशां स्वामेव भारिकः ॥ २४ ॥

इत्येवं क्षीणमाग्यानामयोग्यानां प्रमादिनाम् ।

दृष्टं दृष्टं भवन्त्येव विद्युत्तुल्या विभूतयः ॥ २५ ॥

इति मद्रघटास्यायिका ॥ १ ॥

इति वत्सेधरः श्रुत्वा सामात्यो दयितासखः ।

क्षणं स्मितमुधावौतकपोलफलकोऽभवत् ॥ २६ ॥

ततो मध्यं समारूढे व्योम्नः कमलिनीप्रिये ।

वत्सराजो नृपगतैः सहोत्थाय समातलात् ॥ २७ ॥

क्लात्वार्ययित्वा श्रीकण्ठं मुक्त्वान्तःपुरमभ्यगात् ।

नरबाह्वनदत्तोऽपि निशि द्यव्यागृहं ययौ ॥ २८ ॥

वयस्यैः सहितस्तत्र नर्मकेलिकथान्तरे ।

बहिः स्मितानां शुश्राव गीतं हरिणचक्षुषाम् ॥ २९ ॥

वाराहानां गीतेन संजातपुलकं ततः ।

मरुमूर्तिं समालोक्य हसन्प्राह तपन्तकः ॥ ३० ॥

देव वेद्याह्नागीतध्वनिना पश्य ते सुहृत् ।

आकृष्यमाणहृदयः फुरङ्ग इव लक्ष्यते ॥ ३१ ॥

श्रुत्वेति तद्वचः प्राह मरुमूर्तिः स्मिताननः ।

मृषा तपन्तकेनोक्तं जानेऽहं वैशिकीं सितिम् ॥ ३२ ॥

क्रूराणां क्षणरक्तानामवसाने तमःस्पृशाम् ।

संघ्नानामिव वेद्यानां गुणिसङ्गकथैव का ॥ ३३ ॥

चपलाः क्षिप्ररुचयस्तूर्णं स्रक्षपयोधराः ।

निस्स्वरदशा यान्ति पर्यन्ते वारयोपितः ॥ ३४ ॥

दर्शनेष्वेव सुखदा वेद्या वेदोज्ज्वलश्रियः ।

भोगवैरस्यकारिण्यः काठिन्यकंदुकास्ततः ।

श्रूयतां गणिकावृत्तं विचित्रं कथयाम्यहम् ॥ ३५ ॥

नगरे चित्रकूटस्थे रत्नधर्माभवद्वणिक् ।

श्रीमानीशानधर्मास्तस्यामृत्तनयः प्रियः ॥ ३६ ॥

कलाकलापकुशलो विद्यासु च कृतश्रमः ।
 पित्रा महाघनेनासौ श्रीरक्षार्थं समर्पितः ॥ ३७ ॥
 कुट्टिन्यै यमजिह्वायै वेद्यावञ्चनशिक्षणे ।
 पुत्रप्रीत्या ददौ तस्यै शिक्षामूल्यं वणिग्वरः ॥ ३८ ॥
 अशिक्षितेऽस्मिन्निगुणं ग्रहीष्यामीति संविदा ।
 शिष्यतां प्रतिपन्नं तं सा गृहीत्वा वणिक्सुतम् ॥ ३९ ॥
 संवत्सरेण विदधे वेद्यावञ्चनकोविदम् ।
 ततः कदाचित्स युवा विसृष्टो द्रविणार्जने ॥ ४० ॥
 पित्रा जलनिधेस्तीरे स्थितं हेमपुरं ययौ ।
 पञ्चकोटीः समादाय रूप्याणां सचिवैर्वृतः ॥ ४१ ॥
 प्रविश्य तत्पुरं प्राप देवायतनमुत्तमम् ।
 ददर्श तत्र नृत्यन्तीं हरिणायतलोचनाम् ॥ ४२ ॥
 तरुणीं सुन्दरीं नाम गणिकां रतिजीविनीम् ।
 प्रदाय सुहृदा तस्यै ताम्बूलं मन्मथाकुलः ॥ ४३ ॥
 धन्याहमिति वादिन्या गृहं तस्या विवेश सः ।
 महार्हभूषणे तत्र कर्पूरागुरुधूपिते ॥ ४४ ॥
 पुष्पोपहासरुचिरे बद्धपट्टवितानके ।
 शय्यागृहे हिमस्वच्छन्यस्तचीनोत्तरच्छदे ॥ ४५ ॥
 उपविष्टः समायातां लतां वाताकुलामि(यं ।
 सोऽपश्यत्सुन्दरीं हृष्टामग्राम्यहितमण्डनाम् ॥ ४६ ॥
 तस्यां समुपविष्टायां प्रवृत्ते पानकोत्सवे) ।
 यथेष्टवादो मित्राणां निर्मर्यादमवर्तत ॥ ४७ ॥
 ततो मकरदंष्ट्राख्या सुन्दर्या जननी शनैः ।
 स्वयं गृहीतताम्बूला हर्षपूर्णां समाययौ ॥ ४८ ॥
 संशुष्कविकटाकारां जरतीपूतनामिव ।
 रक्तशयकरीं चौरां पित्रार्चीमिव यशकाम् ॥ ४९ ॥

प्रणनाम वणिक्पुत्रस्तां वलीनालिताङ्गिकाम् ।
 कामिसर्वस्वसंहारसंख्यारेखाङ्कितामिव ॥ ५० ॥
 तस्य त्यागप्रधानैः सा त्रिपुलैर्गुणसंस्तवैः ।
 जग्राह हृदयं तूर्णं सुहृदां च यथोचितैः ॥ ५१ ॥
 ततो नीते विजयतां तस्मिन्क्रीडनमण्डपे ।
 स लीलारसिको भेजे सुन्दर्याः मुरतोत्सवम् ॥ ५२ ॥
 वैदग्ध्यमौग्यसंदिग्धै रसारग्नैश्च विभ्रमैः ।
 सद्भावमावितैर्भावैः स विवेश तदाश्रयम् ॥ ५३ ॥
 ततः प्रभाते सानन्दौ गाढालिङ्गननिःसहौ ।
 चक्रतुस्तौ समुत्थाय शृङ्गारोचितमादिकम् ॥ ५४ ॥
 इत्थं प्रतिदिनं श्रीमान्स तयारावितः शनैः ।
 हेमरत्नाम्बराश्वादि तस्यै कोटिसमं ददौ ॥ ५५ ॥
 स किञ्चिच्छेषसर्वस्वः कालेन सुहृदो गिरा ।
 पित्रा लेखेन चाज्ञप्तो द्वीपं गन्तुं समुद्ययौ ॥ ५६ ॥
 ततः कृतकवाप्याम्बुप्लावितोच्चकुचस्यली ।
 आश्लिष्टानेन मूढेन सव्ययेन मुहुर्मुहुः ॥ ५७ ॥
 पाणिपङ्कजविन्यस्तकपोलकलिताकृतिः ।
 आश्वासयमाना बहुशो मात्राकृतकसंचयैः ॥ ५८ ॥
 सा प्रस्थितं तमवदच्छेषार्थहरणोद्यता ।
 त्वां विना नैव जीवामीत्युक्त्वामूढुम्फिताधरा ॥ ५९ ॥
 आकृष्टः प्रेमपाशेन तया भीत्या पितुश्च सः ।
 दोलाविलोलहृदयः प्रतप्से मृशदुःसितः ॥ ६० ॥
 ततः प्रविदधे कूपे कुट्टिनी रज्जुजालकम् ।
 निस्तृज्य गूढं पुरयान्मुतां तत्रैव चाक्षिपत् ॥ ६१ ॥
 हा हा त्वद्विरहायासनिःसहा सहसात्यजत् ।
 कूपे क्षिप्ता च सुन्दर्यां उक्रोशेत्यथ कुट्टिनी ॥ ६२ ॥

श्रुत्वा प्रतिनिवृत्तस्तां सुहृद्भिस्तूर्णमुद्धृताम् ।
 कण्ठे गृहीत्वा सोत्कण्ठं स सरोद वणिक्सुतः ॥ ६३ ॥
 ततस्तत्रैव तां कान्तां सेवमानः कृशोदरीम् ।
 जनल्पेनैव कालेन निःशेषविभवोऽभवत् ॥ ६४ ॥
 चिरात्प्रतिगृहं प्रायास्त्वबाहुस्रस्तिकांशुकः ।
 कृशो विच्छायवदनस्तदाहंतोऽतिलज्जितः ॥ ६५ ॥
 ततस्तज्जनकः कोषाद्यमजिह्वामुपेत्य ताम् ।
 उवाच यत मत्पुत्रस्त्वयासौ शिक्षितः कलाः ॥ ६६ ॥
 वञ्चितः काञ्चनपुरे कुट्टिन्या प्रीतमायया ।
 विनष्टाः पञ्च कोट्यो मे शिक्षामूल्यं प्रयच्छ मे ॥ ६७ ॥
 इति श्रुत्वा वणिक्वाक्यं पृष्ट्वा वृत्तं च तत्सुतम् ।
 यमजिह्वावदत्पुत्र पुनर्गच्छ धनाप्तये ॥ ६८ ॥
 एको जालप्रयोगोऽस्ति सत्यं मोहात्स विस्मृतः ।
 तत्प्रत्यक्षं गृहाणेदमित्युक्त्वास्मै ददौ कपिम् ॥ ६९ ॥
 जनेन तद्दशगुणं तथा भक्षितमाप्स्यसि ।
 धनमस्य प्रभावश्च प्रत्यक्षं परिदृश्यताम् ॥ ७० ॥
 इत्युक्त्वा रूप्यकशतं मर्कटायैव सा ददौ ।
 निर्गार्य स ततः प्रादाद्यावद्यो यः समीहते ॥ ७१ ॥
 आलं नाम तमादाय मर्कटं प्रत्ययाद्वणिक् ।
 बहुलद्रविष्णुपूर्णः पुनर्हेमपुरं ययौ ॥ ७२ ॥
 आसाद्य सुन्दरीं तत्र रागिणीं धनगौरवात् ।
 पुनर्महोत्सवं चक्रे तद्गृहे रतिलालसः ॥ ७३ ॥
 निर्गोणरूपकं तस्यै तं मर्कटमदर्शयत् ।
 उद्गीर्य वक्रादसकृत्पददौ रूपकानि यः ॥ ७४ ॥
 दृष्ट्वा तं सहिता माया सुन्दरी समचिन्तयत् ।
 अष्टौ निधानरूपोऽयं चिन्तामणिनिमः कपिः ।

बहूपायैरसंपूर्णैः किं धनैः क्लेशचिन्तितैः ॥ ७५ ॥
 इति संचिन्त्य सा मात्रा शनैः प्रियमयाचत ।
 मर्कटं तं च न ददौ निजोत्सङ्गगतं वणिक् ॥ ७६ ॥
 प्रीत्या विपुलनिर्वन्वात्सुन्दर्या प्रार्थितश्चिरम् ।
 ददौ कोटिशतेनासौ रूपकप्रीतिं कपिम् ॥ ७७ ॥
 तत्सर्वस्वं समादाय क्रयविक्रयसंचितम् ।
 वणिङ्निजपुरं प्रायात्ततो वैश्रवणोपमः ॥ ७८ ॥
 अथाज्ञया पितुः श्रीमान्परिणीय कुलोचितम् ।
 कैलां गुणवतीं नाम विललास कलानिधिः ॥ ७९ ॥
 कुट्टिन्या याच्यमानोऽपि स चिरात्क्षीणरूपकः ।
 मर्कटो न ददौ किञ्चिदसितं दीयते कुनः ॥ ८० ॥
 स सान्त्वितोऽपि बहुशः कशामिश्वाहतो मुहुः ।
 महाधनव्ययरूपा ताडितश्च महाश्मना ॥ ८१ ॥
 निर्जीवितः कृतस्ताभ्यामालो मर्कटपोतकः ।
 इत्यालजालैर्गणिका वञ्चयन्ते वञ्चयन्ति च ॥ ८२ ॥
 इति राजसुतः श्रुत्वा कथितं मरुभूतिना ।
 बभूव गणिकासङ्गसंकल्पशिथिलादरः ॥ ८३ ॥

इत्यालजालाख्यायिका ॥ २ ॥

अत्रैव गोमुखः प्राह प्रस्तावसदृशीं कथाम् ।
 राजा विक्रमसिंहाख्यः प्रतिष्ठानपुरेऽभवत् ॥ ८४ ॥
 बभूव शशिलेखाख्या प्रिया तस्य सुलोचना ।
 अनन्तगुणनामा च सचिवो धीमता वरः ॥ ८५ ॥
 स कदाचिन्महीपालो बलिभिः पञ्चमिर्नृपैः ।
 निरुद्धनगरो मानी स्वयं युद्धाय निर्ययौ ॥ ८६ ॥
 स तैः समरभङ्गाद्यैर्विजितो युधि शत्रुभिः ।
 सहानन्तगुणेनैव छन्नो देशान्तरं ययौ ॥ ८७ ॥

आसाद्य सुन्दरीं चैव रागिणीं धनगौरवात् ।
 शनैरुज्जयिनीं प्राप्य गणिकाया निवेशनम् ।
 रम्यं कुमुदिकाख्यायाः सोऽविशन्मन्त्रिणा सह ॥ ८८ ॥
 तं राजलक्षणोपेतं सिंहस्कन्धं महामुजम् ।
 सिपेवे सा महीपालं प्रेमबन्धैः सविभ्रमैः ॥ ८९ ॥
 स राजा द्रविणं तस्या गृहादादाय मूरिदः ।
 याचकेभ्यो ददौ नित्यं निजवद्विपुलाक्षयः ॥ ९० ॥
 अत्यन्तरागिणीं मत्वा नृपतिस्त्रां सविस्मयः ।
 मन्त्रिणं प्राह पश्येमां मदेकशरणामिति ॥ ९१ ॥
 (अमात्यः प्राह मा राजन्वेद्यासु प्रत्ययं कृथाः ।
 ह्यसंविभागमप्येता नैव कुर्यन्त्यकारणम् ॥ ९२ ॥
 इति) श्रुत्वा नृपश्चक्रे परीक्षायै मृगीदृशः ।
 मिथ्यैवातुरमात्मानं कृतकत्यक्तजीवितम् ॥ ९३ ॥
 सोऽथ कूटमृतस्तेन मन्त्रिणा कृतसंविदा ।
 नीतः श्मशानं हा राजन्निति तारप्रलापिना ॥ ९४ ॥
 ततः सा गणिका दुःखात्कल्पिते प्रवरेऽनले ।
 कण्ठे गृहीत्वा तं कान्तं त्यक्तुमात्मानमुद्ययौ ॥ ९५ ॥
 अत्रोत्तस्यी नरपतिः संजातप्रमदाकुलः ।
 तां गाढरागिणीं ज्ञात्वा तं निनिन्द च मन्त्रिणम् ॥ ९६ ॥
 संजाताधिकविश्रम्भं सेवमानं घटस्त्रयी ।
 कान्ता क्षमापालतिलकं बभाषे मन्त्रिपुंगवः ॥ ९७ ॥
 (दृष्टानुमरणात्तस्यास्त्वदेकशरणा मतिः ।
 तथापि देव जानेऽहं कूटमेतद्विचेष्टितम् ॥ ९८ ॥
 इति मन्त्रिवरो राजा श्रद्धे नैव सस्मितः) ।
 संजातप्रत्ययो रागः कस्य वाचा निवर्तते ॥ ९९ ॥
 अग्रान्तरे स मूपालः शुश्राव महिषीं निजाम् ।

तस्मिन्रणे मानभङ्गशोकासंत्यक्तजीविताम् ॥ १०० ॥
 ततो दुःखाकुलं दृष्ट्वा शिष्यं श्रुत्वा च तत्कथाम् ।
 प्रगल्भललना सैरं नृपं कुमुदिकावदत् ॥ १०१ ॥
 राज्ञो न शोमते शोकमृच दोदरपद्यालिनः ।
 पराक्रमो हि वीराणां मानमङ्गे प्रतिक्रिया ॥ १०२ ॥
 सन्त्येव मे सहस्राणि मत्तवारणवाजिनाम् ।
 हेतुर्धैरैः कृतोद्योगो जहि शत्रून्मनुर्वर ॥ १०३ ॥
 इति तद्वचसा राजा हविषेव हुताशनः ।
 स्कूर्जत्पतापः प्रययौ परांस्तु तुरगद्विपैः ॥ १०४ ॥
 यलिना मुह्यदा सार्धं राज्ञा धवलकीर्तिना ।
 गत्वा जघान तावद्वायून्सानुगानुग्रविक्रमः ॥ १०५ ॥
 श्रीमान्विक्रमसेनोऽथ राज्यं प्राप्य निजं पुनः ।
 वराङ्गनानां विदधे मधानान्तःपुरे स्त्रियम् ॥ १०६ ॥
 सतः सा प्राह भूषाळं कृतञ्च शृणु देव मे ।
 संकल्पकल्पविटपी सर्वदेव प्रवर्तसे ॥ १०७ ॥
 शत्रवो विजिताः सर्वे प्राप्ता श्रीर्यशसा सह ।
 त्वया धैर्यसहायेन प्रणयिप्रियकारिणा ॥ १०८ ॥
 अद्य चेत्करुणा चित्ते तवासिन्ध्रेमलेद्यके ।
 तन्मे वितर भूषाळ सतताभीप्सितं वरम् ॥ १०९ ॥
 दञ्जयिन्यां नरेन्द्रेण बद्धो मे हृदयप्रियः ।
 द्विजन्मा श्रीधरो नाम ॥ बलान्मुच्यतां त्वया ॥ ११० ॥
 तदर्थमेव राजेन्द्र सेवितोऽसि मया चिरम् ।
 इति श्रुत्वा महीपालश्चयेत्याह सविनयः ॥ १११ ॥
 ततः ॥ विपुलानीको विजित्योजयिनीपतिम् ।
 मोक्षयित्वा द्विजमुतं पुनः सपुरमाययौ ॥ ११२ ॥
 ग्रहणां संगतां तेन चिराद्भूना द्विजन्मना ।

दत्त्वा बहुगुणं हेम क्षमापतिर्विससर्ज ताम् ॥ ११३ ॥

अथानन्तगुणो मन्त्री विहस्य नृपमब्रवीत् ।

एतदर्थं पुरा देव सा भवन्तमसेवयत् ॥ ११४ ॥

दृशान्यत्र गिरान्यत्र चेतसान्यत्र कृत्रिमम् ।

प्रेम संदर्शयन्त्येव कुशला वेशयोषितः ॥ ११५ ॥

इति मन्त्रिवचः श्रुत्वा मृपालो विस्रयाकुलः ।

एवमेतदिति प्राह तन्मतिं प्रशशंस च ॥ ११६ ॥

गोमुखेनेति कथितं श्रुत्वा वत्सेश्वरात्मजः ।

कुटिलं गणयामास गणिकावृत्तमद्भुतम् ॥ ११७ ॥

इति वैश्याख्यायिका ॥ ३ ॥

तपन्तकस्ततः प्राह विचित्रं स्त्रीविचेष्टितम् ।

सोऽपि सर्वगतो धाता न परिच्छेत्तुमीश्वरः ॥ ११८ ॥

अद्यापि नैव विज्ञाताः कैश्चित्तत्त्वेन योषितः ।

आसेव्यमानाः सततं संसारगतयो यथा ॥ ११९ ॥

कौशाम्ब्यां बलवर्मास्त्यो वणिगासीन्महाधनः ।

चन्द्रश्रीर्नाम तस्यामृद्धार्या हरिणलोचना ॥ १२० ॥

कदाचिद्यौवनोन्मत्ता सा हर्म्यशिखरसिता ।

नरं क्षीलवरं नाम ददर्श रुचिरं तदा ॥ १२१ ॥

स्यैसख्या तं समानाढ्य दूत्या प्रच्छन्नकामिनी ।

सिषेवे चौर्यसुरतं प्रत्यहं सा मुमध्यमा ॥ १२२ ॥

सततं रममाणायः स्त्रैरं तेन विलासिना ।

एका निदोव सहसा तस्या मासत्रयी ययौ ॥ १२३ ॥

अत्रान्तरे जगामाशु कौमारश्च पतिर्जरात् ।

पञ्चर्ता बान्धववधूकृतकोलाहले गृहे ॥ १२४ ॥

सत्क्षणं सा रतिमुखं युवत्वोपपतिना सह ।

संगेत्य मनुर्जग्राह गृहस्य चरणं शुचा ॥ १२५ ॥

स्वजनैर्वार्यमाणापि तेनैव सहसा चिताम् ।

आरुह्य तूर्णं तत्याज प्रियान्प्राणानकम्पिता ॥ १२६ ॥

इत्येवं गहनं स्त्रीणां ज्ञायते केन चेष्टितम् ।

गण्यते केन सर्पाणां करेण रदनावली ॥ १२७ ॥

इति स्त्रीवृत्ताख्यायिका ॥ ३ ॥

उक्ते तपन्तकेनेति ततो हरिशिखोऽब्रवीत् ।

एवमेव स्त्रियः क्लृप्तास्तुपकेशत्रिपैरिव ॥ १२८ ॥

देवदासाभिधानस्य वाराणस्यां कुटुम्बिनः ।

बभूव तरुणी मार्या दुःशीला नाम रूपिणी ॥ १२९ ॥

कदान्चित्करदानाय पत्यौ रुद्धे नृपालये ।

सा गूढकामिना मेजे निःशङ्कं सुरतं निशि ॥ १३० ॥

प्रत्यहं तोषयन्ती तं नानाभोजनपानकैः ।

ना मूयाद्वन्धमोक्षो मे मर्तुरित्याशशंस सा ॥ १३१ ॥

ततः कालेन मुक्तोऽसौ राजा स्वगृहमागतः ।

दृष्टो दुःखितया सद्यः कृतकानन्दया तया ॥ १३२ ॥

गृहीत्वाशु तमुत्सङ्गे सा प्रणम्याब्रवीत्पतिम् ।

नाथ स्वमे मयाद्यैव सा प्रणम्याब्रवीत्पतिम् ॥ १३३ ॥

इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै भोजनं बहुलासवम् ।

सोऽपि मुक्त्वा बहुक्षीनो निद्रां मेजे रतिश्रमात् ॥ १३४ ॥

ऊर्ध्ववेश्मस्थितं सान्यं संज्ञयाह्वय बल्लभम् ।

मर्तारं घातयामास दारकस्यैव पश्यतः ॥ १३५ ॥

तस्मिन्प्रयाते चुक्रोश चौरैरभिहतो ह्यसौ ।

ततः ससम्प्रमाः सर्वे बान्धवास्तूर्णमाययुः ॥ १३६ ॥

देवदासं हतं दृष्ट्वा तद्भ्राता शोकविह्वलः ।

विललापाश्रुललितं चेष्टमानो महीतले ॥ १३७ ॥

स्वभार्यया हतं ज्ञाता बालकस्य गिरा ततः ।

तां च तत्कामुकं च द्राग्जम्बुरन्विप्य बान्धवाः ॥ १३८ ॥

इत्येवं पापशीलानां स्त्रीणां कैर्ज्ञायते गतिः ।

उक्ते हरिशिखेनेति गोमुखस्तमभापत ॥ १३९ ॥

इति देवदासाख्यायिका ॥ ५ ॥

अस्यामेवामवत्पुर्यां वत्सराजस्य सेवकः ।

विक्रान्तो वज्रसाराख्यस्तेजस्वी सुन्दराकृतिः ॥ १४० ॥

प्रिया नामामवत्तस्य भार्या हरिणलोचना ।

तया सह निनायासौ कालं संभोगलालसः ॥ १४१ ॥

मगधावासिना पित्रा सा कदाचिन्निमग्निता ।

तद्गृहे सुचिरं तस्यौ सैरिणी चपलाशया ॥ १४२ ॥

वज्रसारोऽथ कालेन शुश्राव सुचिराद्रहः ।

त्वद्भार्या संगतान्येन पुरुषेणेति दुःखितः ॥ १४३ ॥

स गत्वा श्वशुरावासं तामाहूय स्ववल्लभाम् ।

आगच्छन्स्वगृहं प्राप काननं पथि निर्जनम् ॥ १४४ ॥

तत्र तामीर्ष्याक्रान्तः पप्रच्छाकोपकम्पितः ।

जनार्थे किं त्वया पार्ष कृतं जनकसन्नि ॥ १४५ ॥

धृता मयान्यसक्ता त्वमित्याकर्ण्य चकार सा ।

मौनेनैवाभ्युपगमं स्त्रोकानतविलोचना ॥ १४६ ॥

वज्रसारमृतः क्रुद्धस्तां सङ्गेन समुद्यतः ।

हन्तुं तत्कालसंरम्भवेगाकृष्टतदंशुकः ॥ १४७ ॥

स्पर्णाब्जकलिकागौरं गात्रं तस्या निरम्बरम् ।

विलोक्य विपुलश्रोण्याः साभिलापो बभूव सः ॥ १४८ ॥

विनयव्रतशीलामु पुंसां साध्वीपु नो तथा ।

यथा निःसत्त्वमनसां दुःशीलास्वधिका रतिः ॥ १४९ ॥

स रन्तुमुद्यतो यावत्तावत्सा तमभापत ।

न हि स्पृशामि ते गात्रं मिथ्यैव क्रोधशालिनः ॥ १५० ॥

किं त्वयादं समाकृष्टा कृता कोपात्रिरम्बरा ।

अयं मे व्यथते बाहुस्त्वदाकृष्टः करोमि किम् ॥ १५१ ॥

इति तद्वचसा क्षिप्रं स ययौ भृशमार्द्रताम् ।

लभ्यन्ते स्त्रीपिशाचीभिरुच्छिष्टा इव राणिणः ॥ १५२ ॥

(सोऽवददयिते पापं तव मिथ्यापकारिणम्) ।

त्वं ताडय (लैताभिर्मां तेन कोपः प्रयातु ते ॥ १५३ ॥

इति सा तद्वचः श्रुत्वा क्षिप्रमेव तदाहूतैः) ।

तं ययन्ध लतापाशैः सान्तरासं चलाम्बरा ॥ १५४ ॥

गाढबद्धस्य तत्राशु छित्त्वा सा कर्णनासिकम् ।

तच्छस्त्रेणैव सहसा प्रययौ तस्य मानिनः ॥ १५५ ॥

यदृच्छयागतैः सोऽथ विमुक्तः काष्ठभारिकैः ।

लज्जितः स्वगृहं यातो जीवत्यद्यापि दुर्भगः ॥ १५६ ॥

इति वज्रसारकथा ॥ ६ ॥

इत्येवं योषितां देव ज्ञायते केन चेष्टितम् ।

गोमुलेनेति कथिते मरुमूतिरभायत ॥ १५७ ॥

राजा सिंहबलामिरुयो वीरोऽमूहक्षिणापथे ।

भार्या कल्याणवत्याख्या तस्य प्रियतमामभवत् ॥ १५८ ॥

स कदाचिज्जितो मूपैः समरे संप्रहारिभिः ।

गूढं सभार्यः प्रययौ स्वशुरावसथोन्मुखः ॥ १५९ ॥

स व्रजन्मालवपुरं वने त्रस्तां निजप्रियाम् ।

दृष्ट्वा जघान खड्गेन दस्युशार्दूलकुञ्जरान् ॥ १६० ॥

श्वशुरस्य गृहे प्राप्य तत्र विन्यस्य तां प्रियाम् ।

गजानीकामिधानस्य सुहृदः प्रययौ गृहान् ॥ १६१ ॥

तेन संपूजितो राजा जेतुं सिंहबलो रिपून् ।

जगामादाय तदृत्तां गजवाजिवरूथिनीम् ॥ १६२ ॥

पितुर्गृहेऽपि तद्वार्या दृष्ट्वा वातायनान्नरम् ।

आनिनाय रहो दूत्या मन्मथेनाकुलीकृता ॥ १६३ ॥

तमागतं निष्प्रतिभं मीमं नीचं निराश्रयम् ।
 निरुत्तरं विलोक्यैव लज्जिता शुचमाययौ ॥ १६४ ॥
 अहो नु योषितः पापा यदयं तादृशं पतिम् ।
 घोरं विस्मृत्य नीचेऽस्मिन्नमिलापमुपागता ॥ १६५ ॥
 इति संचिन्त्य सा युक्त्या तं निरस्य नराधमम् ।
 निनिन्द मुहुरात्मानं जहास नरकावरम् ॥ १६६ ॥
 अत्रान्तरे पराजित्वा राजा सिंहबलो-युधि ।
 राज्यमासाद्य दयितां निनाय स निजां पुरीम् ॥ १६७ ॥
 इत्येवमाशयः स्त्रीणां दुर्विज्ञेयः सुरैरपि ।
 इति श्रुत्वा क्षनैर्निद्रामवाप नरबाहनः ॥ १६८ ॥
 इति सिंहबलाख्यायिका ॥ ७ ॥

ततः प्रातः समुत्थाय राजपुत्रः सुहृद्भुवः ।
 कृताहिको वरोद्यानं प्रययौ फुल्लपादपम् ॥ १६९ ॥
 तत्र मत्तलिमालाङ्गकुमुदसेरविभ्रमे ।
 अवतीर्णो दिवः कान्तां ददर्श वरकन्यकाम् ॥ १७० ॥
 कन्याशतैरनुगतां सतारामिव रोहिणीम् ।
 नवलावण्यपीयूषप्लाविताखिलदिङ्मुक्ताम् ।
 मुग्धाश्चकोरवनिता यत्कान्तिनिबहं ययुः ॥ १७१ ॥
 तां वीक्ष्य कार्तिकीचन्द्रवदनां मदनावनिम् ।
 विसितो राजतनयो हर्षोत्केषोक्तमप्यभूत् ॥ १७२ ॥
 नेत्रपेयं वपुस्तस्याः पश्यन्ननिमिषेक्षणः ।
 पप्रच्छ मन्मथारान्तन्त्रां नामाभिजनश्रियम् ॥ १७३ ॥
 तेन कामाभिरामेण रामा हृदयहारिणी^१ ।
 सा शृष्टा प्राह सोत्कम्पकुचविन्यस्तलोचना ॥ १७४ ॥
 शिगरे कायनाशेले तुषारपरणीमृतः ।

स्फटिकाह्वयशः श्रीमानमि विद्याधरेश्वरः ॥ १७५ ॥
 (तस्य शक्तियशः नाम मुताहं पावेतीवरात् ।
 जाता हेमप्रमास्यायां देव्यां देवाधिपप्रिया ॥ १७६ ॥
 कालेन मम शर्वाण्या सदाराधनतुष्ट्या ।
 यौवनश्रियमालोक्य वितीर्णः प्रवरो वरः ॥ १७७ ॥
 वत्समूपालतनयो भावित्रिद्याधरेश्वरः) ।
 नरबाहनदत्तमे भविष्यत्यचिरात्पतिः ॥ १७८ ॥
 इति देव्या समादिष्टा प्रहृष्टा पितुराज्ञया ।
 विद्यामिन्द्रवरासामिस्त्वामहं द्रष्टुमागता ॥ १७९ ॥
 ब्रजामि तावदचिरात्संगमो नौ भविष्यति ।
 इत्युक्त्वा सानुगा ज्योक्ता प्रययौ मञ्जुमाषिणी ॥ १८० ॥
 सप्तदृष्टमिवाशेषं मन्यमानस्तदद्भुतम् ।
 नरबाहनदत्तोऽमुचिन्तालोचननिश्चलः ॥ १८१ ॥
 स शनैर्विरहाक्रान्तः स्मरसंतापनिःसहः ।
 विनोदिनीं कथां कांचित्कथयेत्याह गोमुखम् ॥ १८२ ॥
 स ग्राह काञ्चनपुरीपतिरासीत्सुमानसः ।
 राजा विराजमानानां श्रेयसां ययसां निविः ॥ १८३ ॥
 (तं कदाचित्समास्यानस्थितं शबरकन्यकां ।
 कान्ता मुक्तालता नाम प्रतीहारेण सूचिता ॥ १८४ ॥
 पञ्जरसं समादाय शुक्रं मरकतच्छविम् ।
 जन्तः प्रविष्टा प्रोवाच प्रणम्य जगतीपतिम् ॥ १८५ ॥
 शुक्रोऽयं देव योग्यो मे विज्ञानमधुरध्वनिः) ।
 इत्युक्त्वा भूमिपालस्य पञ्जरं निदधे पुरः ॥ १८६ ॥
 ततः कृताहिको राजा शुरुमाह्वय तं रहः ।
 पप्रच्छ सर्वशम्भुं विज्ञानावाप्तिकारणम् ॥ १८७ ॥
 राजा स पृष्टः प्रोवाच श्रूयतामद्भुतं विमो ।

(अस्ति हेमवती नाम संसारविपुलाटवी ॥ १८८ ॥
 तत्र रोहीतकतरौ शुक्ललक्षसमाश्रये) ।
 जनितोऽहं प्रवयसा शुकेनात्यन्तपेशलः ॥ १८९ ॥
 दैवान्मां जननीहीनमवर्धयत वत्सलः ।
 मत्पिता बन्धुहीनेषु याति खेहो ह्यनल्पताम् ॥ १९० ॥
 कदाचिन्मृगयासक्तैर्वने तस्मिन्विलोडिते ।
 हतेभक्रोडहरिणैः पुलिन्दैः पिशिताशिमिः ॥ १९१ ॥
 जरन्निपादेनैकेन तमारुह्य महीरुहम् ।
 ग्रीवामोटननिर्जावा नीतास्तेनाखिलाः शुकाः ॥ १९२ ॥
 ततः स्वकर्मणः शेषात्पतितः पर्णसंचये ।
 स्नातुं प्राप्तेन नीतोऽहं मुनिना करुणाब्धिना ॥ १९३ ॥
 मारीचनाम्ना तेनाहं स्थापितः कृपयाश्रमे ।
 दृष्टः पुलस्त्यमुनिना सहासं दिव्यचक्षुषा ॥ १९४ ॥
 आत्मनो दुर्नयस्येदं मुक्ते फलमयं शुभः ।
 इति ब्रुवाणं पप्रच्छुः पुलस्त्यं मत्कथां द्विजाः ॥ १९५ ॥
 सोऽभ्यधादभवच्छ्रीमाग्रलाकरपुरे नृपः ।
 ज्योतिःप्रभाख्यो भूपालमौलिलालितशासनः ॥ १९६ ॥
 सोमप्रभोऽभवत्तस्य चन्द्रांशः स्वमसूचितः ।
 पुत्रः फान्तिनिधिलोकलोचनानन्दनिर्जरः ॥ १९७ ॥
 यौवराज्ये धृतः पित्रा सोऽथ दिग्विजयोद्यतः ।
 निर्ययौ विपुलानीकैररातिविभवाशनिः ॥ १९८ ॥
 सह प्रियकराख्येन मन्त्रिपुत्रेण धीमता ।
 विजित्य पृथिवीं सर्वां विपुलं प्राप फाननम् ॥ १९९ ॥
 फान्तां वनश्रियं तत्र लीलयैव विलोकयन् ।
 ददर्श किन्नरं दिव्यरसाम्बरविगूषितम् ॥ २०० ॥
 तं फौगुकादनुसरन्स्फटिकम्वच्छविग्रहम् ।

ततः पवनवेगेन तुरगेण धुतांशुकः ॥ २०१ ॥
 अमानुषीं भुवं प्राप्य विश्रम्य सरसि क्षणात् ।
 कैलासशिखराकारमपश्यन्न्यम्बकालयम् ॥ २०२ ॥
 तत्रोपवीणयन्तीं च दिव्यकन्यां त्रिलोक्य सः ।
 पप्रच्छकालतपसः कारणं यौवनावनीम् ॥ २०३ ॥
 सा प्राह हिमशैलेन्द्रशिखरे काञ्चनाह्वये ।
 पद्मकूटमिधानोऽस्ति श्रीभान्विद्याधराधिपः ॥ २०४ ॥
 मनोरथप्रभा नाम सुताहं स्नेहशालिनः ।
 तस्य रत्नप्रभाख्यायां पद्म्यां जाता यद्भस्त्रिनः ॥ २०५ ॥
 कालेन यौवनवती कदाचित्छातुमागता ।
 सरस्तत्र सराकारमपश्यं मुनिपुत्रकम् ॥ २०६ ॥
 ततोऽहं तं विलोक्यैव पुण्यायुधवद्दीकृता ।
 अमवं कम्पकलिकालतेव पवनाकुला ॥ २०७ ॥
 अथ तत्सचिवः पृष्टो मत्सस्त्या पद्मस्तेस्तथा ।
 उवाच बुधदत्ताख्यस्तज्जन्मक्रमशः कथाम् ॥ २०८ ॥
 अस्मि दीपितिमात्राम मुनीन्द्रो विजितेन्द्रियः ।
 तं सरः ज्ञातुमायान्तं सरोलक्ष्मीर्व्यलोकयत् ॥ २०९ ॥
 तं दृष्ट्वैव सकामायां भानसस्तनयः क्षणात् ।
 जातोऽयं रश्मिमान्नाम तस्यां साक्षादिव सरः ॥ २१० ॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा सरसी नाम कुलं च मे ।
 तस्मै न्यवेदयज्ज्ञात्वा सरसंयोगमावयोः ॥ २११ ॥
 ततोऽहं पितुरादेशादाहूता शशिलेखया ।
 मुपितेवामतध्याना सशल्येवाहितन्यथा ।
 भूतमस्तेव सोन्मादा ततोऽहममवं क्षणात् ॥ २१२ ॥
 मां विना मुनिपुत्रोऽपि स मनोमवतापितः ।
 वभूव बालनलिनीवल्ल्यालंकृतस्थितिः ॥ २१३ ॥

(तैवः सखीं विसृज्यासौ ताम्यन्मानसमायया ।
 आनीतो निजमुद्यानं निशीथे संगमाशया ॥ २१४ ॥
 तत्र फुल्लताजालगुञ्जन्मधुकराकुले ।
 प्रौढचन्द्रकरसेरः स्मृत्वा मां जीवितं बहौ ॥ २१५ ॥
 ततोऽहं तूर्णमायाता तमपश्यं तयागतम् ।
 रूपद्वेपादिबाम्येत्य हतं मकरकेतुना ॥ २१६ ॥
 हा प्रियेति विलप्याहं यावन्न पतिता मुवि ।
 अवतीर्य दिवस्तावदनैपीत्कोऽपि तत्तनुः ॥ २१७ ॥
 ततः प्रवेष्टुकामां मामनले शोकसंस्थिताम् ।
 प्राप्स्यसीमं पुनरपि प्राह मां कौऽपि खैचरः ॥ २१८ ॥
 तदाशालम्बनघृतिस्ततः शीतांशुशेखरम् ।
 इति स्थिताहं वरदं घ्रायन्ती पार्वतीपतिम् ॥ २१९ ॥
 इति सोमप्रमः श्रुत्वा तत्र विद्याधरीवचः ।
 तां प्राह विसितः कासौ पद्मलेखा सखी तव ॥ २२० ॥
 इति सा राजपुत्रेण पृष्टा प्रोवाच सुन्दरी ।
 सिंहविक्रमनामास्ति श्रीमान्निद्याधराधिपः ॥ २२१ ॥
 अस्ति तस्येन्दुवदना तनया मकरन्दिका ।
 दग्धोऽपि हरकोपेन यत्कान्त्या जीवितः स्मरः ॥ २२२ ॥
 अपांशुलेखनात्सा मे सखी प्राणा वहिश्चराः ।
 तया मधुःखमाकर्ण्य विवाहे नियमः कृतः ॥ २२३ ॥
 तां बोधयितुमयैव पद्मलेखा सखी मया ।
 विसृष्टा तत्स्वितुर्वाक्यात्सुतानियमदुःखिनः ॥ २२४ ॥
 इत्युक्तवत्यां विद्याभूत्कन्यकायां समाययौ ।
 तस्मिन्नेव क्षणे क्षिप्रं तद्विसृष्टैव सा सखी ॥ २२५ ॥
 विद्याधरेणानुगता पद्मलेखा समेत्य ताम् ।
 उवाच सन्नि नोद्वाहं मन्यते मकरन्दिका ॥ २२६ ॥

अयं देवजयो नाम विद्याधरकुमारकः ।
 तथा विसृष्टत्वां वक्तुमिहैवागम्यतामिति ॥ २२७ ॥
 ततो देवजयेनापि तदेवोक्ता व्यचिन्तयत् ।
 मनोरथप्रमा किञ्चिद्भ्यानस्त्रिमितलोचना ॥ २२८ ॥
 सप्त्या परिणयेनैवं मद्भुःस्त्रात्रियमः कृतः ।
 रूपवाग्नाजपुत्रोऽयं तस्याः समुचितः पतिः ॥ २२९ ॥
 गृहीत्वैनं प्रयाम्येव तदन्तिकमहं यतः ।
 एतन्मुखेन्दुमालोक्य सा प्रतिज्ञां विमोक्षयति ॥ २३० ॥
 मत्वेति राजपुत्रेण सह देवजयेन सा ।
 मनोरथप्रमा प्रायात्पद्मलेखानुगा सखीन् ॥ २३१ ॥
 अन्तःपुरे तामासाद्य ततः सा मकरन्दिकाम् ।
 (परिष्वज्य मिथो भेजे सा मुग्धा स्फटिकासनम् ॥ २३२ ॥
 सोमप्रमं विलोक्यैव सुन्दरं मकरन्दिका) ।
 वमूवानन्दनिप्यन्दमकरीकृतमानसा ॥ २३३ ॥
 राजपुत्रोऽपि तां वीक्ष्य हरिणायतलोचनाम् ।
 लक्ष्यतां पद्मवाणस्य प्रययौ विलयाकुलः ॥ २३४ ॥
 तयोः परस्परस्नेहसरसरग्मनिर्भरः ।
 यूनोरमून्मदृत्सेदप्रकम्पपुलकोत्सवः ॥ २३५ ॥
 अत्रान्तरे राजसूनोर्मन्त्रिपुत्रः प्रियंकरः ।
 सुरङ्गसुरमुद्राङ्कां शनकैः प्राग पद्धतिम् ॥ २३६ ॥
 अस्मिन्नेवान्तरे शीघ्रसंचारो लेखहारकः ।
 ज्योतिःप्रमस्य संदेशाद्राजपुत्रं समाययौ ॥ २३७ ॥
 तूष्णमेदीति स पितुः श्रुत्वाज्ञां मन्त्रिसूनुना ।
 संगतो दयितामेव ध्यायन्मूढ इवामवत् ॥ २३८ ॥
 अविरात्त्वां समेप्यामीत्येवं हि कृतसंविदम् ।
 विद्याधरेन्द्रमुतया सानुगः स्वपुरं ययौ ॥ २३९ ॥

ततः सा विग्रहोन्मत्ता शनकैर्मकरन्दिका ।
 निजकर्मविपाकाच्च तत्पिताप्यमवच्छुक्रः ॥ २४० ॥
 सोऽयमेव शुकस्तस्याः पिता विद्याधरेश्वरः ।
 पुलस्त्येनेति भवतो श्रुत्वाहं जातिमस्मरम् ॥ २४१ ॥
 असौ निषादी मत्पुत्री दत्ता तुभ्यमियं तया ।
 सोमप्रभो राजपुत्रः शिवादिष्टः समेप्यति ॥ २४२ ॥
 अथैनां निजरूपं तदास्त्रितां मकरन्दिकाम् ।
 मनोरथप्रभापि त्वामद्यैव समुपैप्यति ।
 सरोजिन्या मुनिवरस्त्वं हि लक्ष्मीसुतः प्रभो ॥ २४३ ॥
 इत्युत्त्वा स शुकः प्राप निजं वैद्याधरं वपुः ।
 जातिस्मरो विधायैव तं राजानं सुमानसम् ॥ २४४ ॥
 अत्रान्तरे समात्रान्तश्चिन्तयन्मकरन्दिकाम् ।
 आदिष्टः शंभुना त्वमे तद्वृत्तान्तं निवेद्य तम् ॥ २४५ ॥
 तेनैवासौ समभ्यायादेशं सोमप्रभोऽथ तम् ।
 मुक्तां निषादभीषाचामयाप्य मकरन्दिकाम् ॥ २४६ ॥
 मनोरथप्रभा ज्ञात्वा विद्यया तद्विचेष्टितम् ।
 समेत्य भेजे राजानं तं यातं मुनिपुत्रताम् ॥ २४७ ॥
 ततो मिथो ननन्दुस्ते गत्वा तुहिनमूषसम् ।
 इत्येव खेचरासङ्गो नृणां भवति कर्मतः ॥ २४८ ॥
 त्वं च तां शक्तियशसं विद्याधरनृपात्मजाम् ।
 अचिरात्प्राप्स्यसि विभो गौर्यादिष्टं न संशयः ॥ २४९ ॥
 एवमुत्तमसत्त्वानां गाढं प्रणयरागिणाम् ।
 कुलाचारोपपन्नानां मन्त्र्येव सम्पन्नसः ॥ २५० ॥
 स तामसमनारीभिः कुलाचारविपर्ययात् ।
 संगमप्रान्तविरमः शीलध्वंसादिदुर्जयैः ॥ २५१ ॥
 इति सुमानसाख्यायिका ॥ ८ ॥

शूरवेर्माभिधानस्य कुलपुत्रस्य मानिनः ।
 जलशायिन्यमिरुयामृद्धार्या नीचकुलोद्भवा ॥ २५२ ॥
 ग्रामान्तरगते तस्मिन्सा तन्मित्रेण संगता ।
 मृगदत्ताभिधानेन सिपेचे सुरतोत्पन्नम् ॥ २५३ ॥
 शूरवेर्मा समभ्येत्य ज्ञात्वा तस्या विचेष्टितम् ।
 तत्पाज नो वधाहेति निकारे गतविक्रियः ॥ २५४ ॥
 उक्त्वेति राजतनयं पुनः प्रोवाच गोमुखः ।
 श्रूयतामधुना देव कथां चित्तविनोदिनीम् ॥ २५५ ॥
 दाक्षिणात्ये जनपदे विबुधव्रातसेवितम् ।
 मिहिलरोप्यनामास्ति पुरं सुरपुरोत्तमम् ॥ २५६ ॥
 वर्धमानकनामामृत्तत्रातिघनदो वणिक् ।
 प्रस्थितो द्वीपयात्रायां स विवेश महावनम् ॥ २५७ ॥
 तत्रास्य विषमप्रावन्निदीर्णपदयिक्लवः ।
 धुर्योऽवसन्नो वृषभो वृषाङ्गवृषसंमितः ॥ २५८ ॥
 याते वणिग्वरे त्यक्तस्तन्नियुक्तैः स रक्षिभिः ।
 नैवौषधिचयाहारः कालेन स्वास्थ्यमाययौ ॥ २५९ ॥
 पीनदर्पाकृतिजले तस्मिन्संजीवकाभिधे ।
 निर्झरोपान्तपारीषु खच्छन्दसुखवारिणि ॥ २६० ॥
 उदकार्थं समम्बायात्पिङ्गलाख्यो मृगाधिपः ।
 वनं यत्केसरैः स्फोरैः साट्टहासमिवामवत् ॥ २६१ ॥
 ॥ शुध्याय वृषस्त्र्योऽं शृङ्गापातं स्फुटं तटे ।
 टाङ्गारनादमुत्तरं हुंकारनिविडध्वनिम् ॥ २६२ ॥
 श्रुत्वा तदुग्रनिन्दं विषमं स्वगितक्रमः ।
 स तस्यौ फुल्लरोमाञ्चैः पीनलाङ्गुलपल्लवः ॥ २६३ ॥
 करटो दमनश्चैव सचिवौ तस्य जम्बुकौ ।
 दूरतश्चित्तसंशोभं विलोक्य सैरमृचतुः ॥ २६४ ॥

पूर्वसंस्कारयोगेन सत्त्वान्मुनिवरेण वा ।

संस्फुटोच्चरति प्रायः पशूनामपि भारती ॥ २६५ ॥

ततोऽब्रवीद्दमनकः सखे किमयमीश्वरः ।

अदृष्टशब्दमात्रेण क्षोमाकुल इवेक्ष्यते ॥ २६६ ॥

तच्छ्रुत्वा धीमतां धुर्यो हसन्करटकोऽब्रवीत् ।

निरर्थचिन्तायोगेन किं प्रयोजनमावयोः ॥ २६७ ॥

अप्रयोजनकर्ता यः सर्वथा दुःखमाजनम् ।

अकार्यदुर्ग्रहग्रस्तः कीर्त्तकर्मकवानरः ॥ २६८ ॥

श्रूयते नगराभ्यासे गृहनिर्माणकारिणः ।

अर्धस्फुटितकाष्ठाग्राः परं स्वपतयो ययुः ॥ २६९ ॥

गतेषु तेषु विपुलः कपिसार्थः समाययौ ।

वल्लीतानैकचिन्त्यस्तसैमाविभवनिर्मितः ॥ २७० ॥

तत्रैकश्चापलात्कीलं स्फाटिकस्तम्भमस्तकात् ।

स्पृशन्नुवाच केनायमस्त्वाने विनिवेशितः ॥ २७१ ॥

तस्मिन्नभ्युद्धृते यत्रकीलके मुष्कपीडनात् ।

स संघटितसर्वाङ्गः सहसा निघनं ययौ ॥ २७२ ॥

इति वानराख्यायिका ॥ ९ ॥

निशम्येति वचस्तस्य ययौ दमनकः प्रभोः ।

समीपं संशयस्थाने सेवकालो हि धीमताम् ॥ २७३ ॥

स विज्ञाय प्रमोक्षेतः शब्दमात्रविसंस्थुलम् ।

ग्राह प्रायो भवन्त्येव वादशब्दा घनादिषु ॥ २७४ ॥

मांसपूर्णेति विज्ञाय मेरीपध्वानमन्यरम् ।

क्रोष्टापद्यत्समुत्पाद्य पुरा काष्ठं च चर्म च ॥ २७५ ॥

इत्युक्त्वा स्वामिनं धीमान्ययौ शब्दानुगः शनैः ।

विलोक्य वृषमं तत्र साक्षेपमिदमब्रवीत् ॥ २७६ ॥

अहो मूढ न जानीषे स्वामिनं पिङ्गलं हरिम् ।
 तत्पादसेवाबाह्यस्य का नु रक्षा वने तव ॥ २७७ ॥
 तच्छ्रुत्वा कम्पितमनास्ततः संजीवकोऽभवत् ।
 दत्ताभयोऽथ तेनैव नीतः पिङ्गलकान्तिकम् ॥ २७८ ॥
 स प्रणम्य प्रसादार्द्रदृशा तेनावलोकितः ।
 कृतकृत्यमिवात्मानं मेने विगतसंभ्रमः ॥ २७९ ॥
 स कालेनान्तरङ्गोऽभून्मृगराजस्य सेवकः ।
 आसान्न एव प्रहेण नृपाः कान्ताश्च सादराः ॥ २८० ॥
 तयोर्विश्रम्भमालोक्य बाह्यत्वादतितापितौ ।
 कुत्सामौ पेततुर्दुःसैः सचिवौ जम्बुकौ हरेः ॥ २८१ ॥
 ततो दमनकः प्राह सचिवो मन्दबुद्धिना ।
 संजीवसिंहयोः प्रीतिर्विनाशयात्मनः कृता ॥ २८२ ॥
 उपायश्चिन्तनीयोऽत्र जाने तावद्विभेदने ।
 (उपायक्रमसाध्यं यद्वलसाध्यं न तद्ववेत् ॥ २८३ ॥
 श्रूयते कृष्णसर्पो हि धिया काकेन पातितः ।)
 वृक्षमूलश्रयः सर्पः पुरा वायसपोतकान् ।
 भक्षयामास तद्बुल्लक्ष्मभूद्वायसप्रिया ॥ २८४ ॥
 गोमायुकः सुहृत्पृष्ठस्तया तामाह दुःखिताम् ।
 समाश्वसिहि सर्पोऽयं विनङ्क्ष्यति वको यथा ॥ २८५ ॥
 कपटव्रतमास्थाय मत्स्यान्प्राह पुरा वकः ।
 प्रस्तुतो धीवरैर्युष्मद्भदे प्रातर्महाक्षयः ॥ २८६ ॥
 युष्मद्विनाशे नष्टोऽहं घूयं वृत्तिर्यतो मम ।
 इत्युक्तिचकितान्मत्स्यान्क्षार्थं नेतुमुद्यतः ॥ २८७ ॥
 वैकस्तान्भक्षयन्कालं स निनाय यथारुचि ।

अतिलौल्योद्धृतेनाथ कर्कटेन निपातितः ॥ २८८ ॥

उपायश्चिन्त्यतां सर्पवधे श्रुत्वेति बायसी ।

जहार राजनिलयात्सहसा हेमसूत्रिकाम् ॥ २८९ ॥

आदाय स्वकुलायाम्नम्रशाखावलम्बिनीम् ।

चकार ददृशुस्तां च नराः सर्पदुरासदाम् ॥ २९० ॥

विधाय दलशो बाणैर्व्याजमारोहणोद्यताः ।

हृष्टा विलोक्य तत्काकी स्वयं भूषणमत्यजत् ॥ २९१ ॥

इति कैकवकाख्यायिका ॥ १० ॥

अस्माभिरप्युपायांशः कर्तव्यो वृषभेदने ।

उपायेन हतः पूर्वं शशकेनापि केसरी ॥ २९२ ॥

अभूत्समस्तहरिणघातसंहारतत्परः ।

सिंहं समेत्य सारङ्गाः क्षयार्ता इदमब्रुवन् ॥ २९३ ॥

प्राणयात्राकृते स्वामिन्कोऽयं सर्वक्षयादरः ।

वारेण प्रेषयामस्ते मृगमेकं सदा क्षयम् ॥ २९४ ॥

एवमस्त्विति सिंहस्य विज्ञाय हरिणा मतम् ।

प्रेषयामासुरव्यग्रा एकैकं कृतसंविदः ॥ २९५ ॥

अथ कालेन शशको वारेण प्रेषितो हरेः ।

अचिन्त्यद्वयः कालं दंष्ट्रापातेऽप्यसंभ्रमः ॥ २९६ ॥

आहारकालेऽतिक्रान्ते क्षुत्क्षामे कुञ्जरद्विषि ।

गमिष्यामीति सोऽगच्छच्छशकः कुपितं हरिम् ॥ २९७ ॥

गर्जता तेन पृष्टोऽसौ वेलातिक्रान्तिकारणम् ।

अत्रवीदेव सिंहेन संनिरुद्धोऽस्मि वर्त्मनि ॥ २९८ ॥

श्रुत्वेति कोपादास्फाल्य लाङ्गुलं शूतकेसरः ।

सोऽवददर्शय कासौ किं मचोऽप्यधिको हरिः ॥ २९९ ॥

१. ए०२मे रा०-पुल्लके 'वकाख्यायिका' इत्युपलभ्यते. २. 'गर्गवकाख्यायिका' इति रा०-पुस्तकस्थः पाठः. ३. 'संभ्रममात्र' रा०.

अग्रेसरोऽथ शशको मूला करटिवैरिणः ।
 वैदूर्यस्फटिकखच्छं महाकूपमदर्शयत् ॥ ३०० ॥
 प्रतिविम्बावृत्तिं दृष्ट्वा त्वां तत्राकुलकेसरः ।
 स कूपमग्नः प्रययौ प्रलयं शशवञ्चितः ।
 भयन्त्येवमुपायेषु धीमतां कार्यसिद्धयः ॥ ३०१ ॥

इति शशकाख्यायिका ॥ ११ ॥

इत्युक्त्वा पिङ्गलं द्रष्टुं यातो दृष्ट्वा प्रणम्य च ।
 इदं दमनको वाक्यमेकान्ते विरतोऽब्रवीत् ॥ ३०२ ॥
 कुलक्रमागता भृत्या हितवाक्येषु मूकताम् ।
 यदयान्ति सदोत्सेकाः स्वामिनः सावलिस्तदा ॥ ३०३ ॥
 संजीवकोऽयं वृषभः स्वानिद्रोहे समुद्यतः ।
 यथा बक्रञ्चितग्रीवः संग्रामार्योऽव लक्ष्यते ॥ ३०४ ॥
 अयं चामेपजो दोषो यदेतत्कुटुम्बवः ।
 कृमयो नित्यसंग्रामव्रणेषु विपमाम्ब ॥ ३०५ ॥
 अविज्ञातस्वभावैर्हि संगतिर्विपदां पदम् ।
 हता मत्कुणदोषेण यूका मन्दविसर्पिणी ॥ ३०६ ॥
 दुग्धाग्निफेनघवलक्ष्मापशय्यातलाश्रया ।
 यूका ददर्श पवनानीतं टिट्ठिममत्कुणम् ॥ ३०७ ॥
 तं दृष्ट्वा सात्रवीद्देवो न ते तीक्ष्णमुग्धाश्रयः ।
 तच्छ्रुत्वा सोऽवदद्दीनमेकरात्रिं वसाम्यहम् ॥ ३०८ ॥
 दत्ताश्रयोऽथ कृपया तया स सहसा नृपम् ।
 अदशधेन तत्क्रोधाद्धता यूकैव सेवकैः ॥ ३०९ ॥

इति यूकाख्यायिका ॥ १२ ॥

कुलक्रमागतत्यागो लज्जापूर्वश्च संगतिः ।
 मौर्ख्याचण्डरवस्येव विनाशायैव भूपतेः ॥ ३१० ॥

नगरोपान्तनिलयः पुरा चण्डरवाभिधः ।

जम्बुको वृत्तिलोमेन प्रविवेश पुरान्तरम् ॥ ३११ ॥

स रात्रौ श्वगणाक्रान्तः पलायनकृतश्रमः ।

नीलीकरससंपाताद्विचित्रं वर्णमाययौ ॥ ३१२ ॥

शृगाला दुद्रुवुर्दृष्ट्वा तं स्वजातिविलक्षणम् ।

दर्पान्मोहात्समभ्येत्य व्याघ्रादिष्वधिकोऽभवत् ॥ ३१३ ॥

तदुपाहृतमांसाद्यैः पुष्टिविस्मृतदुर्गतिः ।

क्रोष्टुकानां विलोक्यैव कदाचिद्वाचमुद्धताम् ।

प्रतिजग्राह नादेन स्वजातिसदृशेन सः ॥ ३१४ ॥

तच्छ्रुत्वैव परिज्ञाय तं लज्जाकुटिलाननाः ।

वञ्चिताः स्म खलेनेति जम्बुस्तं व्याघ्रचित्रकाः ॥ ३१५ ॥

इति चण्डरवारुणायिका ॥ १३ ॥

उपपत्तिसहैर्वाक्यैर्विरक्तहृदयं नृपम् ।

विधायेति हरिं गत्वा चक्रे शङ्काकुलं वृषम् ॥ ३१६ ॥

सोऽग्रवीरूतमध्ये हि दुर्लभं जीवितं सखे ।

मुग्धसिंहाश्रयं जम्बुरुष्टं काकादयः पुरा ॥ ३१७ ॥

विकटाक्षं पुरा सिंहं संग्रामक्षतविग्रहम् ।

धुधार्ताः सचिवा ऊचुर्द्वीपिगोमायुवायसाः ॥ ३१८ ॥

अशक्ता विग्रहे स्वामिन्नवसन्ना वयं वने ।

निराहारा न चास्माकं स्वामित्यागः शुभावहः ॥ ३१९ ॥

एष सार्थपरिग्रहो य उष्ट्रस्त्वामुपागतः ।

महाकायः ॥ पर्याप्तमस्तसंधस्य भोजनम् ॥ ३२० ॥

तच्छ्रुत्वा भृशमुद्विग्नमाश्रितद्रोहकीर्तनात् ।

तमद्गीकारपदवीं धूर्ता निन्युः शनैर्हरिम् ॥ ३२१ ॥

अथोष्ट्रमंजिषी प्राह व्याजकल्पितसंविदा ।

पायमो मच्छररिण म्यामिन्वृत्तिः प्रकल्प्यताम् ॥ ३२२ ॥

नेत्युक्तवाक्ये शार्दूले तदेव प्राह जम्बुकः ।
 प्रतिपिद्धे पुनस्तस्मिन्दीपिन्यपि निराकृते ॥ ३२३ ॥
 अचिन्तयत्कर्मकः संरम्भस्पृष्टमानसः ।
 नैवेह भक्ष्यते कश्चिदौचित्यं दर्शयाम्यहम् ॥ ३२४ ॥
 स्वामिन्मसच्छरीरेण क्रियतां प्राणवर्तनम् ।
 इत्युक्तमात्रे जम्बुस्तं द्वीपिजम्बुकवायसाः ॥ ३२५ ॥

इत्युष्ट्रास्यायिका ॥ १४ ॥ -

इत्युक्तो वृषमस्तस्यौ सिंहापकृतिचिन्तकः ।
 तन्मतं तस्य विज्ञाय सैरं दमनकोऽब्रवीत् ॥ ३२६ ॥
 शक्तः सिंहप्रतीकारे न कश्चिदिति चिन्त्यताम् ।
 अचिन्तितान्यदर्पस्य लज्जाब्धेरपि टिडिभात् ॥ ३२७ ॥
 आसन्नप्रसवा पूर्वं टिडिमं दयितावदत् ।
 प्रसवस्थानमन्यन्मे कल्प्यतां निर्भयं विमो ॥ ३२८ ॥
 पूर्वस्थितिः समुद्रोर्मिभीषणा मे न रोचते ।
 इति तद्वाक्यमाकर्ण्य टिडिभः प्राह विस्मितः ॥ ३२९ ॥
 नैवापकर्तुं शक्तो मे समुत्तद्वोऽपि सागरः ।
 भर्तुरित्युद्धतं श्रुत्वा प्रौढा प्रोवाच टिडिमी ॥ ३३० ॥
 आसन्नाकुशला नूनं न शृण्वन्ति हितं वचः ।
 श्रूयते मित्रवचनानादरात्कच्छपो हतः ॥ ३३१ ॥
 हंसद्वयसखः पूर्वं कच्छपः स्थानदोषतः ।
 दन्तावष्टब्धकाष्ठाग्रो नीतस्ताभ्यां विहायसा ॥ ३३२ ॥
 हृदान्तराभिगमने तौ हंसौ कूर्ममूचतुः ।
 मौनावलम्बिना भाव्यं स्वयैव बहुशः पथि ॥ ३३३ ॥
 ततः पौरजना दृष्ट्वा विदितं शकटाकृतिम् ।
 अहो किमिदमित्यासन्महाकोलाहलाकुलाः ॥ ३३४ ॥
 किमेतदिति कूर्मोऽपि प्राह विस्मृतद्वचः ।
 दारुस्खलितदन्तत्वात्पतितो निहतो जनैः ॥ ३३५ ॥

अनागतमयामिज्ञो वियप्राप्तौ च बुद्धिमान् ।
 द्वावेतौ संपदां पात्रं विपदां देववादिनः ॥ ३३६ ॥
 अनागतविधिश्चैव प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा ।
 यद्भविष्यश्च मत्स्याः प्राक्शुश्रुवुर्ध्वरीं गिरम् ॥ ३३७ ॥
 जालं क्षिपामः प्रत्यूषे हृदेऽस्मिन्निति तद्भयात् ।
 अनागतविधिः प्रायान्त्यक्त्वान्यौ गन्तुमर्थितौ ॥ ३३८ ॥
 ततः प्रमाते जालौघकृष्टे मत्स्यकदम्बके ।
 प्रत्युत्पन्नमतिश्चक्रे कृतकं मृतवद्भुः ॥ ३३९ ॥
 निःशङ्कधीवरैर्यस्तः स शनैः प्रययौ जलम् ।
 यद्भविष्यस्तु लगुहैर्जराज्ञो व्यपद्यत ॥ ३४० ॥
 इत्युक्त्वा टिट्ठिमी मर्तुर्वाक्यात्तत्रैव शावकान् ।
 असूत तांस्तरङ्गौघैर्जहार च सरित्पतिः ॥ ३४१ ॥
 गृहिणीभर्त्सितश्चक्रे दुःखितः पक्षिसंगमम् ।
 टिट्ठिं तन्महानादं गरुत्मानशृणोत्ततः ॥ ३४२ ॥
 तप्तेरितेन हरिणा निरस्तो मकराकरः ।
 लज्जाविकुण्ठवदनटिट्ठिभ्यै शावकान्ददौ ॥ ३४३ ॥
 इति कच्छपमत्स्यटिट्ठिभाष्यायिका ॥ १५ ॥
 एवं शक्तविनोदेन महतामपि नोदयः ।
 किमुतैकान्तभक्षणामस्माकं मूढचेतसाम् ॥ ३४४ ॥
 शृत्वेति मेदनोपायं ययौ करटकान्तिकम् ।
 हसन्दमनकोऽभ्येत्य हृष्टोऽखिलमुवाच तम् ॥ ३४५ ॥
 पेशान्योऽसि ततस्तेन पुनः प्राह च जम्बुकः ।
 हृदये तैक्ष्ण्यमादायावदक्षामृतसंनिभः ॥ ३४६ ॥
 एकद्रव्यार्थिनें हन्यां किं मामग्न विगर्हसे ।
 मरामिषावाद्भ्राति चिन्मूर्तिं विनुषो जनः ॥ ३४७ ॥

अलक्ष्यप्रतिमाद्भेदो मांसं चतुरको यथा ।

करमः शङ्कुकर्णास्यः क्रोष्टा चतुरकंश्च सः ॥ ३४८ ॥

सावित्र्यं कुशलौ सिंहं वज्रदन्तमुपाश्रितौ ।

ततो युद्धान्तिततनौ कदाचिद्धारणद्विषि ॥ ३४९ ॥

वृत्तिच्छेदाच्चतुरकः शङ्कुकर्णममापत ।

सखे वक्रं कथा बुद्ध्या स्वामिने किं न दीयते ॥ ३५० ॥

शरीरेणातिपुष्टेन किमनेन प्रयोजनम् ।

एवमस्त्विति तेनोक्तः सिंहमभ्येत्य सोऽववत् ॥ ३५१ ॥

बृहत्पस्याङ्गमानेन शरीरं संप्रयच्छति ।

करमौ वः स्वया बुद्ध्या प्रसादः क्रियतां विमो ॥ ३५२ ॥

तद्वाक्यादथ शार्दूलः शङ्कुकर्णं विदार्य तम् ।

ययौ स्नानाय धृत्वास्य द्वितीयं परिचारकम् ॥ ३५३ ॥

तमाह क्रव्यवदनं जम्बुकं चतुरस्ततः ।

भक्षयावो बृहन्मांसमिति धृत्वात्रयीश्च सः ।

तच्छ्रुत्वा चतुरः प्राह तदा मे दृष्टिमर्पय ॥ ३५४ ॥

अथ संमक्षिते मासे संप्राप्ते च मृगाधिपे ।

आलुलोके भयाक्रान्तः स क्रोष्टा चतुराननम् ॥ ३५५ ॥

भक्षयित्वा किमद्यापि वदनं मम वीक्ष्यसे ।

चतुरः प्राह तच्छ्रुत्वा तं जघान मृगेश्वरः ॥ ३५६ ॥

अत्रान्तरे महासार्धम्रष्टं करमकं परम् ।

कैटाहवादिनं दृष्ट्वा चतुरः सिंहमब्रवीत् ॥ ३५७ ॥

बृहत्पस्यं समादाय सोऽयं करम आगतः ।

धिक्कष्टमन्धकर्णत्वं वनमन्यदितो ब्रज ॥ ३५८ ॥

तस्मिन्गते यथेष्टं स भक्षयन्वासयन्बहून् ।

प्रमोदमाप दुर्लक्ष्यः स्वार्धसिद्धयै सतां धियः ॥ ३५९ ॥

इति चतुरास्यायिका ॥ १६ ॥

श्रुत्वेति कर्कशं तस्य वक्त्रं बुद्धिविचेष्टितम् ।
 पैशुन्यमेदचकितो घर्म्यं करटकोऽब्रवीत् ॥ ३६० ॥
 लक्ष्मीः परोपतापेन कष्टानन्यघनक्षयैः ।
 भूतदाहेन चागारं गच्छन्ति बत दुर्जनाः ॥ ३६१ ॥
 सखे विरम पापात्त्वं शृणु मतोऽनुशासनम् ।
 अथ वा मूर्खशास्त्रारो हतः सूचीमुखो यथा ॥ ३६२ ॥
 हेमन्तकर्पिताः पूर्वं वानराः काष्ठसंचयम् ।
 आहत्य गत्वा खद्योतं मध्ये सर्वेष्वपात्रंजन् ॥ ३६३ ॥
 दृष्ट्वा सूचीमुखः पक्षी तत्तेषां मूर्खचेष्टितम् ।
 ग्राह्यं व्यर्थश्रमेणालं खद्योतोऽयं न पावकः ॥ ३६४ ॥
 इति शिक्षां ह्युवाणस्य कश्चिच्छुश्राव नो वचः ।
 यदा तदा स कर्णान्ते वानरानवदत्पुनः ॥ ३६५ ॥
 तत्रैको वचनं श्रुत्वा तस्य निर्बन्धभाषितम् ।
 गृहीत्वा तं जधानाशु शिलयां भर्त्सयन्कपिः ॥ ३६६ ॥
 एवं तवोपदेष्टारो न वयं कुशलस्पदम् ।
 येनेयं स्वामिनो लक्ष्मीः पैशुन्यात्संस्रये धृता ॥ ३६७ ॥
 इति सूचीमुखारुह्यायिका ॥ १७ ॥

अयुद्धियोगादधमाः सर्वदा विपदास्पदम् ।
 पिता धूमेन निहतः सुतेनाधर्मबुद्धिना ॥ ३६८ ॥
 धर्मबुद्धिस्वुद्धिश्च द्वावेव सुहृदौ पुरा ।
 वणिक्पुत्रावलमतां सहस्रपरमं धनम् ॥ ३६९ ॥
 ततो गृहीत्वा दशमं भूमौ मार्गं निधाय तम् ।
 जग्मतुस्तौ ततो गूढगबुद्धिः ब्रजहौ धनम् ॥ ३७० ॥
 रा एव हत्वा प्रोवाच हतं मे धर्मबुद्धिना ।
 साक्षी वदयति तत्रत्यो वृक्ष इत्यवपीत्यभाम् ॥ ३७१ ॥

तच्छ्रुत्वा विस्मिताः सर्वे धर्माधिकारिणो द्विजाः ।
 प्रातर्विचार इत्येवं चक्रुः प्रतिमुखा स्मितम् ॥ ३७२ ॥
 अबुद्धिरथ कृत्वा तं वृक्षस्य सुपिरान्तरे ।
 पितरं गूढवचनैस्तद्विचो न्यजयत्परम् ॥ ३७३ ॥
 धर्मबुद्धिर्जितस्तत्र विचिन्त्य क्षणमात्मना ।
 हृतं तन्निधिपालेन तं तु दासीत्यमापत ॥ ३७४ ॥
 ततो विधाय बहुलं त्रुषणतृणानलम् ।
 धूमेनापूरयामास चिवरं मार्गशाखिनः ॥ ३७५ ॥
 धूमातिकथितप्राणो दुर्बुद्धेर्जनकस्ततः ।
 निर्गत्य प्राह पुत्रेण हा हतोऽस्मीति विह्वलः ॥ ३७६ ॥
 धिगुपायानपायेकपर्यन्तान्मूर्खकल्पितान् ।
 पुरा स्वयं समानातेर्नकुलैर्भक्षिता वकाः ॥ ३७७ ॥
 बाध्यमाना भुज्जेन वकाः श्रुत्वा कुलीरकान् ।
 उपायं नकुलाह्वाने मत्स्यमांसं ददुः पथि ॥ ३७८ ॥
 आहुता नकुला जम्बुर्मत्स्यमांसानुसारिणः ।
 सर्पे तस्मिन्हते ज्ञात्वा मार्गे जम्बुर्वकानपि ॥ ३७९ ॥
 एवं कुतन्मयेनाहं निहतो दुष्टबुद्धिना ।
 वदन्निति जगामास्तं धूमस्फुटितलोचनः ॥ ३८० ॥
 ततो यथार्थं विज्ञाय दुष्टबुद्धिर्हतो द्विजैः ।
 एवं त्वमपि दौरात्म्यात्पैशुन्यान्नाशमेव्यसि ॥ ३८१ ॥
 इति वैणिक्पुत्रवकाख्यायिका ॥ १८ ॥
 अस्माकमपि नाश्वासस्त्वयि मिथ्यामुद्बुद्धिः ।
 यस्योपजीव्ये न प्रीतिः कुतस्तस्योपजीवके ॥ ३८२ ॥
 पुरा लोहसहस्राङ्गां न्यासीकृत्य तुलां वणिक् ।
 वणिगोहे चिरं ग्रान्त्वा दिगन्तात्पुनरापयौ ॥ ३८३ ॥

चित्रग्रीवोऽपि संप्राप्य सुहृदं बृद्धमृषकम् ।
 हिरण्याख्यं महापाशच्छेदने तमनोदयत् ॥ ३९५ ॥
 छिन्नपाशं हिरण्येन ततस्तं वीक्ष्य वायसः ।
 सख्यं यत्नेन विदधे तेन विसन्धमास्तुना ॥ ३९६ ॥
 प्रेरुदतां ययौ प्रेम प्रीतिमुक्तिपुरःसरम् ।
 याति काले रहः काकः कदाचिन्मित्रमब्रवीत् ॥ ३९७ ॥
 वृत्तियुक्तमपि स्थानमिदं मम न रोचते ।
 सखे जातारतिर्वेहे पुष्टिर्हि प्रथमा रतिः ॥ ३९८ ॥
 तदेहि मन्यरो नाम मित्रं मे कच्छपाभिधः ।
 जाह्नव्यामस्ति गच्छामो विहाराय तदन्तिकम् ॥ ३९९ ॥
 (.....कच्छपम् ।
 कुशलानामयं पृष्ट्वा चक्रतुर्विविधाः कथाः) ॥ ४०० ॥
 अपापः स्निग्धः प्राप्तोऽयमियुक्तो वायसेन सः ।
 पृष्टो हिरण्यः प्रोवाच निजागमनकारणम् ॥ ४०१ ॥
 परित्राद् गूढकर्णोऽस्ति प्रख्यातो नगरान्तिके ।
 तदाश्रमेऽहं सततं पूर्णं वृत्तिमकरूपयम् ॥ ४०२ ॥
 नागदन्ताग्रसंसक्तमिक्षामोजनसंस्थितेः ।
 (.....नारदपरिष्कारं स्निग्धाव(अ)मृदुभोजनैः ॥ ४०३ ॥
 याति काले ततस्तस्य परित्राडाययौ परः ।
 स मुक्त्वा निशि विश्रब्धं प्रोवाच विविधाः कथाः ॥ ४०४ ॥
 गूढकर्णस्तु मामेव चिन्तयत्तर्जरं मुहुः ।
 अवादयत्कथाविधे बृहत्स्फिक्पितोऽब्रवीत् ॥ ४०५ ॥
 अहो विद्यावयोबृद्धो निःसङ्गोऽपि भवान्सखा ।
 कथास्वनादरो दर्पान्मदान्ध इव लक्ष्यते ॥ ४०६ ॥

१. 'च्छेदाय' ख. २. 'ग्रह्णेऽयं तयोः प्रेम्णि' ख. ३. 'धिप.' स्यात्.
 ४. कोष्ठान्तर्गतपाठः क-पुस्तके त्रुटितः. ५. 'कथति वायसे' क. ६. क-पुस्तके
 त्रुटितः.

तच्छ्रुत्वा लज्जितः किञ्चिद्गूढकर्णोऽप्यभाषत ।
 न दर्पादन्यचित्तोऽहं श्रूयतामत्र कारणम् ॥ ४०७ ॥
 सततं मूषकः पापो भैक्ष्यपात्रादलक्षितः ।
 समश्नाति भिया तस्य जर्जरं वादयाम्यहम् ॥ ४०८ ॥
 बृहत्स्निग्धगूढकर्णस्य श्रुत्वेति प्राह सस्मितः ।
 यत्तत्तावद्विदितस्यापि भक्ष्यत्येष भोजनम् ॥ ४०९ ॥
 अवश्यं कारणेनात्र भवितव्यं तपोधन ।
 करोति शाण्डिलीमाता नाकस्मात्तिलविक्रयम् ॥ ४१० ॥
 पुरापश्यमहं पान्थः स्थितो ब्राह्मणवेशमनि ।
 ब्राह्मणी कुपिता पत्युः सर्वानन्ययकारणात् ॥ ४११ ॥
 लुब्धामवोचतां भर्ता भद्रे नाशोऽतिसंचये ।
 संचयेनातिलुब्धो हि निहतो जम्बुकः पुरा ॥ ४१२ ॥
 अरण्ये प्राप गोमायुः परस्परहतान्पुरा ।
 लुब्धककोटहरिणान्यत्रारूढं च कार्मुकम् ॥ ४१३ ॥
 जयलौपनतं प्राप्य हर्षपूर्णोऽथ जम्बुकः ।
 तान्सचर्य विधायैव कार्मुकं भोक्तुमुद्यतः ॥ ४१४ ॥
 चापचर्वणसक्तस्य तस्य यन्त्रेषुणा दृढम् ।
 दारितस्य ययुः प्राणास्तस्मान्नाशोऽतिसंचयः ॥ ४१५ ॥
 पत्युः श्रुत्वेति वचनं पर्वयागानुकारिणी ।
 शानाय तं विस्मज्याशु पारुसक्तामवक्षणात् ॥ ४१६ ॥
 तत्तिलान्कृशराहेतोः शिष्येण स्थापितान्पुरः ।
 अभ्येत्य स्था क्रियायोग्यांश्चक्रे जिह्वावलेहनैः ॥ ४१७ ॥
 तिलानां विक्रयं कर्तुमुद्यतामपरैस्तिलैः ।
 दृष्ट्वा परो गृहस्वामी विचिन्त्य क्षणमत्रवीत् ॥ ४१८ ॥

करोति ब्राह्मणवधूर्नाकसात्तिलविक्रयम् ।

तस्मादाधुस्तथैवैष न शक्तः कारणं विना ॥ ४१९ ॥

. इति जेम्बुकास्यायिका ॥ २१ ॥

इत्युक्त्वा मद्दिलद्वारं स विद्यार्यातिकोविदः ।

येनाहममवं द्रष्टा तत्सुवर्णं जहार मे ॥ ४२० ॥

ततो मे शक्तिहीनस्य क्षीणवृत्तेर्गतत्वियः ।

त्यक्तस्य मृत्युसज्जनैरिदमासीन्मनोगतम् ॥ ४२१ ॥

अहो नु धनहीनानां मरणं सुगतिः परा ।

गतासुः सेव्यते गृध्रैर्न तुं केनापि निर्धनः ॥ ४२२ ॥

इति चिन्तापरीतोऽहमनेन लघुपातिना ।

संगतो जाह्नवीकूले प्राप्तो भद्र त्वदन्तिकम् ॥ ४२३ ॥

तच्छ्रुत्वाश्वासयामास हिरण्यं कच्छपाधिपः ।

उद्योगशीलो विभवं प्राप्स्यसीति पुनः पुनः ॥ ४२४ ॥

एवं प्रब्रुवतां तेषां लुब्धकस्तत्र(?) (आययौ ।

चित्राङ्गो नाम सारङ्गं प्रदांसन्निव मित्रताम् ॥ ४२५ ॥

तेषां विश्रम्भसौहादे बर्धमाने परस्परम् ।

मृगः कदाचित्सकितवेलयां न व्यलम्बत ॥ ४२६ ॥

ततस्ते शङ्किता मित्रं बद्धं विज्ञाय वायसात् ।

अचोदयत्कुरङ्गस्य बन्धच्छेदाय मूपकम् ॥ ४२७ ॥

नीतोऽथ मूपकस्तत्र वायसेन विहायसा । -

दृष्ट्वा कुरङ्गं प्रोवाच देशकालान्नता क ते ॥ ४२८ ॥

इति श्रुत्वात्रवीदेनं प्राप्तोऽहं देवशासनात् ।

क्रीडार्थं राजपुत्राणां दृष्टवन्धोऽप्यहं पुरा ॥ ४२९ ॥

देशकालवल्लो हि दृष्टोपायोऽपि पण्डितः ।

सखे पराङ्मुखे देवे समर्थोऽपि करोति किम् ॥ ४३० ॥

एवं तयोः कथयतोर्मकरोऽपि सुहृत्प्रियः ।
 आययौ शनकैर्यत्र मृगमूपकवायसाः ॥ ४३१ ॥
 दृष्ट्वा कच्छपमायान्तं मृषकः कुपितोऽब्रवीत् ।
 धिवत्वामदेशकालञ्च यत्प्राप्तोऽसि छलैरिति ॥ ४३२ ॥
 ततः कुरङ्गपाशाग्रे कृत्ते सत्वरमाश्रुना ।
 लुब्धकः सहसा प्राप्य बबन्धाम्येत्य कच्छपम् ॥ ४३३ ॥
 ते च जम्मुर्मयात्तस्य गत्वा चाचिन्तयत्क्षणम् ।
 ततः संमध्य चक्रुस्ते व्याजेन पतितं मृगम् ।
 नेत्रे विपाटयन्तं तं तस्यैवोपरि वायसम् ॥ ४३४ ॥
 तं दृष्ट्वा लुब्धके^१ मुखे त्यक्त्वा कच्छपमञ्जसा ।
 अभिद्रुते कुरङ्गाय कूर्ममाश्रुमोचयत् ॥ ४३५ ॥
 स तस्मिन्मूपके याते सारङ्गोऽपि सवायसः ।
 जगाम तूर्णमि^२त्थिवं बुद्धिः सर्वार्थसाधिनी ॥ ४३६ ॥
 इति मूपककाककूर्मकच्छपाख्यायिका ॥ २२ ॥
 न्यग्रोधशास्त्रिनिलयो वायसाधिपतिः पुरा ।
 बभूव वर्णमेघाख्य)स्रमालइयामलच्छविः ॥ ४३७ ॥
 तस्योलकपतिर्वैरी रिपुमर्दः कुलक्षयम् ।
 चकार निशि सर्वो हि देशकालाश्रयाद्वली ॥ ४३८ ॥
 स सैन्यवृत्तशोकार्तः पञ्च षष्ठ्यच्छ वायसान् ।
 (प्रधानामात्यसंस्थासु नियुक्तान्मुनिकोविदान्) ॥ ४३९ ॥
 देशत्यागमुवाचैकः कालहारं तथापरः ।
 बलिना संधिमन्योऽयं तूर्णमन्यपराक्रमम् ॥ ४४० ॥
 पद्याङ्गं पद्यमो मद्यमपैरः शत्रुनाशनम् ।
 दुर्जया हि सदा धूकाः शत्रयो वाकृतेन नः ॥ ४४१ ॥

१. 'को सुगो' एत. २.-३. एतत्तद्विशन्तर्गतपाठः एतत्तुल्ये द्रुतितः. ४. 'वद-
 प्यु' एत. ५. 'द्ये' एत. ६. 'वायसे नमः' एत.

श्रुत्वेति वायसपतिर्मन्त्रिणं चिरजीविनम् ।
 पप्रच्छ कारणं पृष्टः सोऽप्याह श्रूयतामिति ॥ ४४२ ॥
 मित्राणि शत्रुतां यान्ति शत्रवो यान्ति मित्रताम् ।
 वाक्कृतेनेव वाग्दोषाच्छ्रूयते गर्दभो हतः ॥ ४४३ ॥
 द्वीपिचर्मावनद्धाङ्गो रज्ज्वेन पुरा स्तरः ।
 पोषाय परसस्येषु ग्रीष्मे त्यक्तः स दुर्बलः ॥ ४४४ ॥
 सत्यगोसाध तं दृष्ट्वा चकितो द्वीपिरूपिणम् ।
 दुद्राव छैनकोदण्डः कम्बलच्छन्नविग्रहः ॥ ४४५ ॥
 सत्यपुष्टशरीरोऽयं तं मत्वा गर्दभीं स्तरः ।
 उदण्डमेहनोऽघावदस्युत्तालखुरद्वयः ॥ ४४६ ॥
 मां द्वीपिनं ज्ञास्यतीति तं मनोहरया गिरा ।
 घट्टयन्निव संमत्तोऽवदत्सामोचितं स्तरः ॥ ४४७ ॥
 गर्दभं च गिरा ज्ञात्वा जघान स धनुर्धरः ।
 वाग्दोषेणेति निहतो गर्दभो बुद्धिलापवात् ॥ ४४८ ॥

इति रासमाख्याधिका ॥ २३ ॥

उल्लङ्घं पक्षिणं राज्ये विहङ्गान्कर्तुमुद्यतान् ।
 दृष्ट्वा वंशकरः काकः पुरा प्रोवाच दुःखितः ॥ ४४९ ॥
 अमङ्गलो दिनान्धश्च यत्रोल्लङ्घः क्षितीधरः ।
 का तत्र कुशलं वार्ता स्वस्ति गच्छाम्यहं दिशः ॥ ४५० ॥
 प्रसिद्धो हि महीनाथः कार्यः सर्वसुखावहः ।
 प्रसिद्धराशंसिनो नाम शशकाः सुखमाग्निनः ॥ ४५१ ॥
 अनावृष्टिहते काले पुरा द्वादशवार्षिके ।
 विज्ञप्तः क्षुत्कुर्यान्नागैश्चतुर्दन्ताधिपो द्विपः ॥ ४५२ ॥
 विनष्टा एव कालेऽसिन्धुसो चिरहाद्वयम् ।
 इत्युक्त्वा द्रष्टुमगमन्नुदकं निखिलं महीम् ॥ ४५३ ॥

तत्तश्चन्द्रसरो ज्ञात्वा जलपूर्णं तथा द्विपः ।
 संहृष्टो चातताराश्रुमृणालवल्याकुलम् ॥ ४५४ ॥
 तत्रोपकण्ठे शशकान्गजेन्द्रचरणैर्हतान् ।
 दृष्ट्वा शशपतिर्दूतं विलयं प्राहिणोद्गजे ॥ ४५५ ॥
 स कपोलतलालीनमत्तालिवलयं द्विपम् ।
 विसृष्टः शशिनासीति जगादाभ्येत्य निर्मयः ॥ ४५६ ॥
 यल्लाञ्छितः) शशाङ्कोऽहं पाल्यास्ते शशका मम ।
 तेषां क्षयमिमं कृत्वा मत्कोपात्त भविष्यसि ॥ ४५७ ॥
 इत्युक्तिचकितस्याथ द्विपस्यादर्शयज्जले ।
 प्रतिमाचन्द्रमयलं गजस्तं प्रणनाम च ॥ ४५८ ॥
 स च चन्द्रसरो दृष्ट्वा करस्पर्शचलज्जलम् ।
 शशवाक्याद्ययौ नागो ननन्दुः शशकास्ततः ॥ ४५९ ॥
 इति नागशशाख्यायिका ॥ २४ ॥

स्वामिनो व्यपदेशेन सुखमित्यश्रुते जनः ।
 अयं तु क्षुद्रनृपतिर्जिताजितविनाशनः ॥ ४६० ॥
 कपिजलदाशौ पूर्वं वैश्वदानविनोदिनौ ।
 मार्जारं दधिकर्णस्त्र्यं न्यायं पप्रच्छतुः पुरा ॥ ४६१ ॥
 मिथ्याविनीतः सद्धर्मादेष्टा शान्तिपरायणः ।
 जपस्य इव मुक्ताक्षः सोऽध्वीत्पेशलस्वनः ॥ ४६२ ॥
 अहिंसा परमो धर्मो मोक्षः परहितं नृणाम् ।
 प्राणिद्रोहप्रसक्तानामन्धे तमसि संस्थितिः ॥ ४६३ ॥
 श्रुत्वेत्याश्वासपद्वीं तदा तावामतौ ततः ।
 अमशयत्क्षुद्रनृपो दुष्टः सर्वविनाशकृत् ॥ ४६४ ॥

इति मार्जाराख्यायिका ॥ २५ ॥

तस्मादुल्लको नाहोऽयमिति तद्वचसा पुरा ।
 नष्टराज्योऽभवद्वैरी काकानामित्यमङ्गलः ॥ ४६५ ॥
 छलेन पातय रिपून्सर्वोपायपरिक्षये ।
 छलेन अंशितः स्थानाद्धूतैः शत्रुभिरभजः ॥ ४६६ ॥
 स्कन्धे छगलमादय ब्रजन्तं ब्राह्मणं पथि ।
 (वैश्वनायाम्बुवन्धूताः संघशः कृतसंविदः) ॥ ४६७ ॥
 अहो श्वा सुगहा नूनमयं कस्य द्विजर्षभ ।
 स्कन्धेन बोढो मार्गेषु नृपोपायनमेव वा ॥ ४६८ ॥
 एकसिन्नित्यपकान्ते दूरमन्यावधोचतुः ।
 अहो विचित्रं पश्यावः स्कन्धेन यदयं द्विजः ॥ ४६९ ॥
 श्वानं वहति किं नु स्यादयं व्याघ्रो द्विजाकृतिः ।
 तयोः श्रुत्वेति विप्रस्तं निघाय भुवि शङ्कितः ॥ ४७० ॥
 पस्पर्श पाणिना पुच्छविपाणवृषणादिषु ।
 उन्मत्ता विलपन्त्येते छागो नायमिति स्वयम् ॥ ४७१ ॥
 पुनः स्कन्धे समादाय तं ययौ चतुरो द्विजः ।
 ततः परे समभ्येत्य कक्षानियमिताम्बराः ।
 लज्जुर्द्विजोऽयमस्पृश्यः श्रपाक इव पापभाक् ॥ ४७२ ॥
 अहो महाजने नायं लज्जते कुलपांसनः ।
 श्वानं वहति यः स्कन्धे पथि याति च संस्पृशेत् ॥ ४७३ ॥
 इत्याकर्ण्य भृशोद्विग्नस्त्यक्त्वाजं दुःखितो द्विजः ।
 बहूनामेकवाक्येन संजातप्रत्ययोऽभवत् ॥ ४७४ ॥
 मायावी राक्षसो नूनमजोऽयं स्थान्न संशयः ।
 इति, यन्निन्त्य, नत्तगत्, नं, द्विजो, धूर्तव्यञ्जितः ॥ ४७५ ॥
 छागमादाय भुक्त्वा ते घूर्ता मुमुदिरे परम् ।
 इति व्याजेन शत्रूणां कुर्यात्सपदि वञ्चनाम् ॥ ४७६ ॥
 इति छागाख्यायिका ॥ २६ ॥

उक्त्वेति वायसामात्यश्चिरंजीवी निजं प्रभुम् ।
 विसृज्य कृतकच्छन्नपक्षस्तस्यो मृतोपमः ॥ ४७७ ॥
 अभ्येत्य वायसावासं चतुरः सानुगो निशि ।
 उल्लूकः पतितं काकं ददर्श चिरजीविनम् ॥ ४७८ ॥
 केचिदाहुरवध्योऽयं वध्योऽयमिति चापरे ।
 मन्निणो घूकराजस्य मुह्यामात्योऽब्रवीत्ततः ॥ ४७९ ॥
 कृपणः शरणं यातो रक्ष्योऽयं विपदि स्थितः ।
 ददौ सार्थपतिः पूर्वं चौरायापि स्वयं धनम् ॥ ४८० ॥
 वृद्धं पुरा सार्थबाहं भार्या हरिणलोचना ।
 बाला पिशाचसदृशं न सेहे द्रष्टुमुल्बणम् ॥ ४८१ ॥
 कदाचिदथ शर्वर्या चौरं वीक्ष्य स्वमन्दिरे ।
 चकिता सहसा वृद्धमालिलिङ्ग घनस्तनी ॥ ४८२ ॥
 सदा पराङ्मुखी दृष्ट्वा स्वयं कण्ठावलम्बिनीम् ।
 कान्तां वृद्धोऽयदचौरमकाण्डामृतनन्दितः ॥ ४८३ ॥
 नैर्ऋतेऽपान्नलोलाक्षी सेवमालिङ्गति स्वयम् ।
 हर चौर घनं सर्वं प्रियकृदयितोऽसि मे ॥ ४८४ ॥
 इति दैयिताख्यायिका ॥ २७ ॥
 इति चैरोऽपि वणिजा कारणेन सुहृत्कृतः ।
 अयं काकस्तु शत्रूणां सर्वं वक्ष्यति चेष्टितम् ॥ ४८५ ॥
 पुरा राक्षसचौरभ्यां श्रूयते रक्षितो द्विजः ।
 तुल्यं कालं द्विजगृहं जग्मतुश्चौरराक्षसौ ॥ ४८६ ॥
 शरीरघनहिसार्थमहं पूर्विकया तयोः ।
 विवादोऽमृजिनि मत्तानूचतुस्तौ द्विजं तनः ॥ ४८७ ॥
 अयं ते घनदत्ताप्तस्तव चायं शरीरकृत् ।
 विप्रमयोरिदं श्रुत्वा बलमग्रेर्जपान तौ ॥ ४८८ ॥
 इति चौरराक्षसाख्यायिका ॥ २८ ॥

अरिमदं तदाकर्ण्य काकानुकोद्यमालिनी ।
 तद्वचोविरतौ प्राहुरपरे घूकमग्निः ॥ ४८९ ॥
 अहो कुमग्निप्राप्तेन संगये स्वामिनो घृताः ।
 लक्ष्मीः शत्रुप्रयुक्तेऽस्मिन्काके कारुण्यचेतसा ॥ ४९० ॥
 बध्यते घूर्तवचनैः प्रभवः सरलाशयाः ।
 जायां सजारां शिरसा रथकारः पुरावहत् ॥ ४९१ ॥
 कृत्वा प्रयोजनमिधं निर्गत्य शिविराल्लघु ।
 मार्यां जारवतीं द्रष्टुं विवेश रथकृत्पुनः ॥ ४९२ ॥
 गूढे शयनपर्यङ्कतले तस्मिन्नधःसिते ।
 प्रियोपपतिना चक्रे मुरतं तेन तद्वधूः ॥ ४९३ ॥
 सा ज्ञात्वा पादसंस्पर्शान्निजं पतिमलक्षितम् ।
 उवाच धर्मपत्न्या मे तत्परो नास्ति वड्डमः ॥ ४९४ ॥
 तज्ज्ञात्वा मूढहृदयो रथकारो मुदान्वितः ।
 उवाह शिरसा मार्यां सजारां हासयन्पथि ॥ ४९५ ॥
 इति रथकाराख्यायिका ॥ २९ ॥

इत्थं विमूढहृदया बध्यन्ते प्रियवादिभिः ।
 चिरजीवी च काकोऽयं संघेयो नेति मे मतिः ॥ ४९६ ॥
 ततो मुखाद्वमदकः कृतकसप्तपक्षतिः ।
 स्रजश्रुद्धकनृपतिं चिरजीवी व्यजिज्ञपत् ॥ ४९७ ॥
 देव त्यजाम्यहं प्राणान्कृतमैर्वायसैर्हतः ।
 त्वत्कृते तद्वधायाहं जातिं बाण्ड्यामि कौशिकीम् ॥ ४९८ ॥
 काकत्येति वचः श्रुत्वा घूकामात्योऽबदद्गुह्यः ।
 उल्लङ्घयतिर्न प्राप्या त्वया वक्रण वायस ॥ ४९९ ॥
 त्यक्ताप्यहो रविमुखैः सयोनिं मूषिका ययौ ।
 गङ्गातीरे मुनिः कश्चिन्मूषिकां द्येनपातिताम् ॥ ५०० ॥

१. 'यमात्स(?)शौ तदाकर्ण्य वाचोऽनुकोद्यमालिनः' ख. २. 'तद्वधे विर'

ख. ३. 'ज्ञाना' ख.

कृपालुः कन्यकां चक्रे तपसा ववृधे च सा ।
 तां यौवनस्थामालोक्य मुनिर्दातुं समुद्यतः ॥ ५०१ ॥
 आजुहाव सहस्रांशुं कन्येयं गृह्यतां विभो ।
 प्रभावतो गरीयांस्त्वमित्युक्तो रविरब्रवीत् ॥ ५०२ ॥
 मत्प्रभावाधिका मेघा ये कृत्स्नं छादयन्ति माम् ।
 आहूतास्तेऽप्यथ प्राहुरसत्तोऽभ्यधिकोऽनिलः ॥ ५०३ ॥
 सोऽप्यब्रवीदथाहूतो गिरिर्मत्तो बलाधिकः ।
 आहूताः पर्वताः प्राहुर्मूपकैर्निर्जिता वयम् ॥ ५०४ ॥
 गृहाण कन्यामित्याखुर्निर्दिष्टो मुनिनावदत् ।
 कन्या विले मम कथं प्रविशेदिति सादरः ॥ ५०५ ॥
 ततः सा मूपिकैवामृद्धिल्योग्या मुनेर्गिरा ।
 इत्यात्मजातिमुत्सृज्य न यान्त्यभ्यधिकं स्वलाः ॥ ५०६ ॥
 सूर्यं भर्तारमुत्सृज्य पर्जन्यं मारुतं गिरिम् ।
 स्वयोनिं मूपिका प्राप्ता स्वजातिर्दुरतिक्रमा ॥ ५०७ ॥

इति मूपिकाख्यायिका ॥ ३० ॥

उक्त्वेति विरते तस्मिन्नमात्ये नीतिशंसिनि ।
 उल्लकः काकमादाय स्वमेव शिविरं ययौ ॥ ५०८ ॥
 तं शत्रुसंश्रयासन्ननाशं वीक्ष्य स्वयं प्रभुम् ।
 उल्लकमग्री प्रययावागामिमयशङ्कया ॥ ५०९ ॥
 चिरजीवी समाश्वास्य छिद्रं दुर्गं समीक्ष्य च ।
 आहूय वायसपतिं ददाहोल्लकमण्डलम् ॥ ५१० ॥
 दग्धोल्लकगुहां पूर्णामभिषिच्य निजं प्रभुम् ।
 चिरजीवी निजजनेः पूज्यमाप्तो मुदं ययौ ॥ ५११ ॥
 ततः पपच्छ सद्रूपं राज्यमासाद्य वायसः ।
 कथं शत्रुगृहे कालस्त्वया नीतोऽतिदुःसहः ॥ ५१२ ॥
 सोऽग्रनीद्विपुलं दुःरमवासं कालकाङ्क्षिणा ।
 शत्रुः स्वन्धेन धोढव्यः प्राज्ञैः सपदि सर्पवत् ॥ ५१३ ॥

सर्पस्तडागमासाद्य वृत्तिच्छेदकृशः पुरा ।

धूर्तः प्रोवाच मण्डूकान्पुरा दष्टो मया द्विजः ॥ ५१४ ॥

तच्छापादेव यातोऽसि सर्वमण्डूकवाहनम् ।

मण्डूकराजस्तच्छ्रुत्वा चक्रे तं वाहनं मुदा ॥ ५१५ ॥

स्कन्धे गृहीत्वा मण्डूकं स नानागतिकोविदः ।

ययाचे भोजनं मन्दं वपुः कृत्वा मृदुस्तरः ॥ ५१६ ॥

शनैः शनैस्तदादेशात्सर्वमण्डूकसंक्षयम् ।

चक्रे शत्रुगृहेष्वेवं तिष्ठेत्कार्यवशागतः ॥ ५१७ ॥

इति मण्डूकाख्यायिका ॥ ३१ ॥

वृद्धवाक्यं हितं राज्ञा श्रोतव्यं तत्त्वया सदा ।

श्रूयते हंसनिचयो वृद्धवाक्येन रक्षितः ॥ ५१८ ॥

हंसानामधिपः पूर्वं क्षीरोदो नाम शास्त्रमलौ ।

उवास तमुवाचार्यं स भृत्यो वृद्धसारसः ॥ ५१९ ॥

व्याधैरुप्तमिदं बीजं विनाशाय कुलस्य नः ।

निरस्यतां तदित्याह कश्चिच्छुश्राव नो वचः ॥ ५२० ॥

ततः कालेन वृद्धेषु हंसेषु खगजीविभिः ।

वृद्धहंसोऽब्रवीदत्र तिष्ठन्तु कृतकं मृताः ॥ ५२१ ॥

तथेति निश्चितैस्तु जालादुद्धृत्य धीवराः ।

राशीमृतान्खगांश्चक्रुर्द्वीपं प्रययुश्च ते ॥ ५२२ ॥

इति हंसाख्यायिका ॥ ३२ ॥

चिरजीवीवचः श्रुत्वा मेघवर्णः श्रिया युतः ।

ननन्द शत्रुनाशेन राज्येन सह बान्धवः ॥ ५२३ ॥

इति काकोलकाख्यायिका ॥ ३३ ॥

बानरः शिशुमारश्च पुरा मित्रे बभूवतुः ।

उदुम्बरफलाहारौ विसम्भृतीतिसेवनात् ॥ ५२४ ॥

मित्रैकसेविनो जाया शिशुमारस्य दुःखिता ।
 वभूवास्वस्थहृदया क्षयरोग(निर्पीडिता ॥ ५२५ ॥
 तां वीक्ष्य शिशुमारोऽपि दुःखितस्तत्सखीगिरा ।
 वानरस्यैव हृदयं विवेद व्याधिभेषजम् ॥ ५२६ ॥
 स गत्वा वानरं प्राह करे गाढं) निर्पीड्य तम् ।
 मित्र जाया ममास्वस्था हृदयं देहि भेषजम् ॥ ५२७ ॥
 श्रुत्वेत्यशनिसंकाशं विषण्णो वानरोऽब्रवीत् ।
 किं पूर्वमेव नोक्तं मे(..... ॥ ५२८ ॥
पश्चाद्दोषैः पलाण्डुवत् ।
 पलाण्डुदोषमादाय ग्राहुर्नगररक्षिणः ॥ ५२९ ॥
 रूपकाणां शतं देहि लघुडानां सहस्र वा ।
 पलाण्डोर्मक्षयेदं वा शतं कटुरसोत्कटम् ॥ ५३० ॥
 से तच्छ्रुत्वाददे मोक्तुं पलाण्डुं तेन तापितः ।
 सैहै प्रहारांस्तैर्व्यस्तो रूपकानां शतं ददौ ॥ ५३१ ॥
 इति चौराख्यायिका) ॥ ३४ ॥
 उदुम्बरं समारुह्य दास्यामि हृदयं तव ।
 दत्तुक्त्वा वृक्षमारुह्य मयं त्यक्त्वा तमब्रवीत् ॥ ५३२ ॥
 भ्रज दुष्टाशय सखे विज्ञातोऽसि चिरान्मेया ।
 नास्मि गर्दभवन्मूर्खो वञ्चनीयो भवद्विषेः ॥ ५३३ ॥
 व्याधिक्षामं पुरा सिंहं जम्बुकः सचिवोऽब्रवीत् ।
 केन नश्यति ते व्याधिरवसन्ना वयं प्रभो ॥ ५३४ ॥

१. 'दृष्टे' ख. २. 'क्षया' ख. ३. एतत्कोष्ठकान्तर्गतः पाठः ख-मुद्रादे शुद्धितः.
 ४. इयं कोष्ठकान्तर्गतचौराख्यायिका पुनरुद्धयलब्धापि खण्डितास्फुटार्था, कथात-
 रितागरे तु नोपलभ्यते. ५. 'दिव' ख. ६. 'पुंश्चौरमादय' ख. ७. 'नि
 सरापा' ख. ८. 'वैश्वेदं वा' ख. ९. 'तेन श्रुत्वा' ख. १०. 'सोऽं
 प्रदत्त' ख. ११. 'सि' ख.

सिंहोऽजवीचदि भवेत्कुतश्चित्सरंसोद्धृतम् ।
 गर्दभं कर्णहृदयं तेन शाम्यति मे गदः ॥ ५३५ ॥
 तच्छ्रुत्वा जम्बुको गत्वावदद्रजगर्दभम् ।
 भारपीडाकृशोऽत्र त्वं वनमेवैहि वृत्तिमत् ॥ ५३६ ॥
 तिष्ठन्ति तत्र गर्दभ्यस्तच्छ्रुत्वा स समाययौ ।
 तस्य पृष्ठे यैयाबुधः स सिंहस्त्रनदुःसहः ॥ ५३७ ॥
 मुक्तः कृच्छ्रेण दुद्राव ततः सपदि रासमः ।
 क्रोष्टा विलोक्य शार्दूलं निनिन्द मृदुर्वादिनम् ॥ ५३८ ॥
 गर्हयित्वा मृगपतिं प्रोवाचाम्येत्य गर्दभम् ।
 अपक्रान्तोऽसि किं मूर्ख गर्दभ्यो हारितास्त्वया ।
 प्रथमं सर्वसिद्धीनां सोढा विभ्रं सुखी भवेत् ॥ ५३९ ॥
 इति तस्य गिरायान्तं खरं हत्वा मृगेश्वरे ।
 खानाय याते तत्कर्णहृदयं जम्बुकोऽहरत् ॥ ५४० ॥
 क्व यातं तत्समभ्येत्य ब्रुवाणे वारणद्विपि ।
 क्रोष्टावदन्न जानीषे प्रकृतः सरलाशयः ॥ ५४१ ॥
 अकर्णहृदयो मूर्खो यदि न स्वादयं खरः ।
 गतोऽपि दृष्ट्वासोऽपि किं पुनर्न्यसनं विशेष् ॥ ५४२ ॥

इति खरास्यायिका ॥ ३५ ॥

गच्छाबुना न ते मित्रमहं कुटिलचेतसः ।
 शिशुमारो निशम्येति वानरं ग्राह दुस्वितः ॥ ५४३ ॥
 न ददाति प्रतिश्रुत्य यः सत्यपदविच्युतः ।
 निरालम्बी तमो याति स शिलाशतताडितः ॥ ५४४ ॥
 वानरस्तद्वचः श्रुत्वा प्रोवाच मतिरस्ति ते ।
 न पुण्यं सत्यमात्रेण सत्यान्नाशोऽस्ति केवलात् ॥ ५४५ ॥

१. 'ह' ख. २. 'बेहि' ख. ३. 'पपाताश' ख. ४. 'हस्तस्य दुःसहम्' ख.
 ५. 'तत्तच्छ्रेण स दुद्राव' ख. ६. 'पातिनम्' ख. ७. 'वे' ख.

पुरा स्वर्पराघाताङ्गललाटः पुरुषो नृपम् ।
 अवाप्य विपुलां वृत्तिं लेभे विक्रमलान्छितः ॥ ५४६ ॥
 कालेन पृष्टो राज्ञा च स प्रहारस्य कारणम् ।
 पूर्वैर्यद्वटप्रपातेन स्वर्पराघातमन्यधात् ॥ ५४७ ॥
 तज्ज्ञात्वा राजपुरुषैर्निरस्तः प्रच्युतः क्षणात् ।
 इति केवलसत्त्वेन न भवन्ति हितश्रियः ॥ ५४८ ॥
 इति सत्याख्यायिका ॥ ३६ ॥

इत्याकर्ण्य हरेर्वाक्यमनुतापहताशयः ।
 शिशुमारो ययौ मन्दं ननन्द च चिरं कपिः ॥ ५४९ ॥
 इति वानरशिशुमाराख्यायिका ॥ ३७ ॥

गौडेपु देवशर्माख्यो बभूव ब्राह्मणः पुरा ।
 स हृष्टो गर्भिणीं जायां निजामवददुस्तुकः ॥ ५५० ॥
 भविष्यत्येव पुत्रस्ते मम वंशविवर्धनः ।
 इति श्रुत्वाब्रवीज्जाया भाविषु प्रत्ययः कथम् ॥ ५५१ ॥
 आशां विधाय भावेषु यो हि भावेषु हृष्यति ।
 स सज्जेत सत्तुषटं भङ्क्त्वैव स्वयमग्रतः ॥ ५५२ ॥
 भिक्षार्जितं सत्तुषटं निधाय ब्राह्मणः पुरा ।
 अचिन्तयदनापृष्टां तस्य मूल्यं चतुर्गुणम् ॥ ५५३ ॥
 तन्मूल्ये छागिकाः कृत्वा तामिः प्राप्स्यामि गोधनम् ।
 शृपिं तेन समाधाय परिणेष्यामि कन्यकाम् ॥ ५५४ ॥
 महाधनस्य पुत्रो मे सोमशर्मा भविष्यति ।
 रोदिष्यति सुते तस्मिन्स्नानपानाय तत्क्षणम् ॥ ५५५ ॥
 तादयिष्यामि लघुडैर्गृहिणीमतिकोपनः ।
 इति अमेण लघुडोत्क्षेपैर्पटमताटयत् ॥ ५५६ ॥
 ममं सत्तुषटं दृष्ट्वा ततो लज्वां समापयौ ।

इत्याशां नैव कुर्वन्ति बुधा मावेपु माविषु ।

श्रुत्वेति ब्राह्मणीवाक्यं तूष्णीमासीद्विजः क्षणम् ॥ ५५७ ॥

इति घटास्यायिका ॥ ३८ ॥

जाते ततः सुते विप्रः कदाचिन्निर्गतो गृहात् ।

रक्षायै नकुलं धृत्वा पुत्रस्य गृहयोषितम् ॥ ५५८ ॥

अथ सपै महामोगं बालर्हिसार्यमुत्थितम् ।

नकुलः स्वण्डशः कृत्वा रक्ताक्तो निर्ययौ गृहात् ॥ ५५९ ॥

तमम्येत्य द्विजो दृष्ट्वा शिशुं मत्वा हतं सुतम् ।

अयोमुखेन कोपान्धो जवान नकुलं क्षणात् ॥ ५६० ॥

गेहं प्रविश्य निहतं वीक्ष्य सपै भयंकरम् ।

सितं च बालकं स्वस्रं शुश्रोचानुशयाकुलः ॥ ५६१ ॥

असम्यग्धीक्षितं द्रष्टुं पण्डितो नानुवर्तते ।

अनुकारात्परिमवं याति नापितबन्धरः ॥ ५६२ ॥

वणिक्क्षीणघनोऽपश्यत्त्वमे मिक्षुत्रयं पुरा ।

तैश्च स व्याहृतः सोऽस्मान्हत्वा द्रविणमाप्स्यसि ॥ ५६३ ॥

स प्रबुद्धो वणिकप्रातर्दृष्ट्वा मिक्षुत्रयं पुरः ।

अताट्यताहिताश्च बभूवुर्धनराशयः ॥ ५६४ ॥

तद्वृत्तं नापितो दृष्ट्वा वणिग्वेदमनि दुर्मतिः ।

घनार्थी स्वगृहं गत्वा जवान किल मिक्षुकान् ॥ ५६५ ॥

तं मिक्षुकवधाद्राजा शुनि जग्राह नापितम् ।

अत्यनालोच्यकार्येषु प्रवृत्तिर्दुःस्वकारणम् ॥ ५६६ ॥

इति नापितास्यायिका ॥ ३९ ॥

(इति जायावचः श्रुत्वा ब्राह्मणोऽमृदवाद्भुसः ।

ब्राह्मणार्थेन नकुलहतः स्वर्गोऽभवत्सुखी ॥ ५६७ ॥

इति नकुलस्यायिका) ॥ ४० ॥

एवं मतिमतामस्ति तिरश्चामपि कौशलम् ।
 हासंकारं त्वनुद्धीनां शृणु पुंसां विचेष्टितम् ॥ ५६८ ॥
 वणिङ्मुखः पुरा चक्रे द्वीपेष्वगरुविक्रयम् ।
 कपर्दकेन तत्सर्वं ददौ विक्रयमित्यसौ ॥ ५६९ ॥
 चतुः पञ्चाबुधः कश्चिद्दीर्घलोमनिवृत्तये ।
 बहौ चिक्षेप तेनास्य स निःशेषमदह्यत ॥ ५७० ॥
 भुक्त्वा भर्जितिलान्कापि पुरा मूर्खेण केनचित् ।
 अथा एव तिला उप्तास्तेनास्योज्ज्वलमुर्जनाः ॥ ५७१ ॥
 अबुधो भाण्डदारिद्र्यादेकस्मिन्निदधे घटे ।
 वह्निं जलं च कार्याथं येनैतौ हास्यतां ययौ ॥ ५७२ ॥
 हत्वा गुरोः सुसुप्तस्य कश्चित्सुस्पष्टनासिकाम् ।
 बकां नासां स्वमार्यायाश्छित्वा तां समरोपयत् ॥ ५७३ ॥
 अन्विष्टा त्वत्कृते कन्या दत्ता जातस्तवात्मजः ।
 मिथ्या गिरैर्वैत्यकृती धूर्तैर्निर्द्रविणः कृतः ॥ ५७४ ॥
 कश्चिद्वापाच्च जायाया लब्ध्वालंकरणं बहु ।
 रशनामबुधः कण्ठे हारं च जघनसले ॥ ५७५ ॥
 वह्निना शोधितं हेम कचिद्दृष्ट्वा स्वकर्पटम् ।
 मलिनं ज्वलने कश्चिदबुधः शुद्धये व्यधात् ॥ ५७६ ॥
 स्वर्जरीफलमाहर्तुं यातैः कैश्चिदबुद्धिभिः ।
 दुरारोहतया छिन्नाः सर्वे स्वर्जरपादपाः ॥ ५७७ ॥
 कस्यचिद्विव्यनेत्रस्य निधानशतदर्शिनः ।
 मा गच्छत्विति मूपालो नेत्रे मौल्यादपाटयत् ॥ ५७८ ॥
 दृष्ट्वा गोपालकः कश्चिद्दामेकां सिंहमक्षिताम् ।
 खण्डेन किं गोकुलेनेत्यन्यांधिक्षेप भूधरान् ॥ ५७९ ॥

१. 'राजकारि' ख. २. 'श्रयति' ख. ३. 'ते' ख. ४. 'दृष्टा' ख. ५. 'प्र' ख.
 ६. 'गुणे' ख. ७. 'अवितः' ख.

ग्रामीणो नगरे मुक्त्वा भोज्यं कश्चित्सुसंस्कृतम् ।
 प्रधानं लवणं कृत्वा तन्मुष्टिं सममक्षयत् ॥ ५८० ॥
 एकस्मिन्नेव गोक्षीरं ग्रहीष्यामि दिने बहु ।
 इति मासेन गां मूर्खो दुदोह न च सा दद्री ॥ ५८१ ॥
 कपित्थैस्तरुणैः कोऽपि सत्त्वाटो मुष्टिं ताडितः ।
 संहते स व्यथां मूर्खो माधुर्यरसगौरवात् ॥ ५८२ ॥

इत्यनेकमूर्त्तास्यायिका ॥ ४१ ॥

गोमुखेनेति कथिते कथां पृष्टो विनोदिनीम् ।
 नरबाहनदत्तेन सुहृद्वाह तपन्तकः ॥ ५८३ ॥
 नालवे विषये त्रिप्रः श्रीमानासीद्यशोधरः ।
 लक्ष्मीधरश्रीधराख्यौ तस्यामृतां प्रियौ मुतौ ॥ ५८४ ॥
 कदाचित्पितुरादेशात्तौ विद्यार्थितया गतौ ।
 देशान्तरं विनोद्योगं त्रिषा कथमवाप्यते ॥ ५८५ ॥
 अटवीं तौ समासाद्य दूराध्वश्रमर्षादितौ ।
 शृशुपादपमुच्छ्राये सरस्तीरे न्यपीदताम् ॥ ५८६ ॥
 ततः स्नात्वा फलाहारौ यातेऽस्तं तिम्रोविषि ।
 भिक्षाज्जनचयश्यामैस्त्रिमिरैः पूरितेऽम्बरे ॥ ५८७ ॥
 महातरुं समास्य तस्यतुर्व्यात्रशङ्कया ।
 तौ बालपल्लवैः कृत्वा शयनं विटपान्तरे ॥ ५८८ ॥
 ज्योदिते गजबधूनवदन्ताङ्गुरत्विषि ।
 शुट्यत्तन.कञ्जुकाग्रे शशाङ्के यामिनीस्तने ॥ ५८९ ॥
 सरोमध्यात्समुत्थाय क्रमेण परिचारिकाः ।
 संमार्ज्ये तां च वसुधामाकीर्य कुमुदोत्करैः ॥ ५९० ॥
 आन्त्रीर्यं हेमपर्यङ्के शय्यां स्वच्छोत्तरच्छदाम् ।
 निषाय रत्नपात्रेषु दिव्यमाल्यविलेपनम् ॥ ५९१ ॥

पानं च पृथुकर्पूरसहकाराधिवासितम् ।
 ममज्जुर्लघुसंचारास्तस्मिन्नेव सरस्वते ॥ ५९२ ॥
 ततो दिव्याम्बरधरः कान्तो रुचिरकुण्डलः ।
 मन्दारमालाधवलः कोऽप्युत्तमो महामुजः ॥ ५९३ ॥
 अथ पर्यङ्कशयने तत्र तस्य विलासिनः ।
 निपण्णस्य मुखाम्भोजान्निर्ययौ कापि कामिनी ॥ ५९४ ॥
 सुतारहारधवला रणन्मुखरमेखला ।
 मन्दविस्मलितकाणा कलहंसीव शारदी ॥ ५९५ ॥
 तस्यामभ्युदितौयां च द्वितीयाप्याययौ वधूः ।
 विभूषणाङ्गी ललिता लावण्येन विभूषिता ॥ ५९६ ॥
 ततः पूर्वोदितां कान्तां स दिव्याभरणोज्ज्वलाम् ।
 जग्राह कण्ठे सोत्कण्ठं संविलासं ससंभ्रमम् ॥ ५९७ ॥
 संमेल्य सुरतश्रान्ते तस्मिन्निद्रामुपागते ।
 पादसंवाहनं चक्रे सा परा तस्य सुन्दरी ॥ ५९८ ॥
 लक्ष्मीधरश्रीधरौ च तद्दृष्ट्वा कौतुकाकुलौ ।
 अवतीर्य तरुस्कन्धात्तदन्तिकमुपागतौ ॥ ५९९ ॥
 विनिद्रनयना साध कान्तकण्ठावलम्बिनी ।
 तौ दृष्ट्वा लघुसंचारा समुत्तमौ सराकुला ॥ ६०० ॥
 मर्तुः पिधाय वदनं निद्रालोर्वाससा शनैः ।
 सा श्रीधरमुपेत्याह निर्लज्जं भज मामिति ॥ ६०१ ॥
 सोऽब्रवीद्दिन्यरूपेण कान्तेनानेन सुन्दरि ।
 रंमस्य परदारेषु मातर्नो मादृशां गतिः ॥ ६०२ ॥

१. 'रष्टा संपूर्णं नरालङ्कारवाधिताम्' ख. २. 'कस्य ततस्तस्मादि-' ख.
 ३. 'आता' ख. ४. 'मिदसंभव' ख. ५. 'तियतायां च विरगादपरा वधूः' ख.
 ६. 'निर्भू' ख. ७. 'विलाससरविभ्रमाम्' ख. ८. 'शतेसत्यु' ख. ९. 'राख्यौ तां दृष्ट्वा',
 ख. १०. 'रम्ये' इति स्पष्ट.

इति तद्वचसा किञ्चिज्ज्ञानतविलोचना ।
 सावदत्तैरम्पसरम्मनिःश्वासस्खलिताक्षरा ॥ ६०३ ॥
 नाहं न गम्या ते कान्त प्रच्छन्नदत्तकामिता ।
 दृष्टपञ्चनरा गम्या किं न नाम श्रुतं त्वया ॥ ६०४ ॥
 इहैवासेविता नित्यं मया प्रच्छन्नकामुकाः ।
 येषां रागकेशाबन्धेष्व्याप्तं हस्तादिदं मया ॥ ६०५ ॥
 इत्युक्त्वांशुकपर्यन्तबद्धं सा समदर्शयत् ।
 रौगाङ्गुलीयकशतं नानाधातुविनिर्मितम् ॥ ६०६ ॥
 तद्दृष्ट्वा श्रीधरः कर्णो पिघायापसृतस्ततः ।
 सा विबोध्य पतिं प्राह कोपकैम्पतराक्रिता ॥ ६०७ ॥
 अनेन नाथ पान्थेन गाढं निद्रावृते त्वयि ।
 कृताहं नष्टचारित्रा मुक्तं विष्टभ्य पाणिना ॥ ६०८ ॥
 इति मियावचः श्रुत्वा खड्गमाकृष्य दुर्मदः ।
 सकोपः श्रीधरं हन्तुमुद्ययौ भ्रुकुटीमुखः ॥ ६०९ ॥
 अपरास्य सती भार्या सा निर्भूषणविग्रहा ।
 असतीव्रतभावेद्य कोपानलप्रवातयत् ॥ ६१० ॥
 सोऽप्यङ्गुलीयकशतं तस्या दृष्ट्वा पराञ्चले ।
 प्रसाद्य विभ्रं विदधे तां पापां कृत्तनासिकाम् ॥ ६११ ॥
 सतीव्रतप्रत्ययाय दृष्ट्वा दग्ध्वा महातरुम् ।
 तत्रापरापि तज्जाया दृष्टैव समजीवयत् ॥ ६१२ ॥
 ततः सोऽपि द्विजस्रुतौ प्राह प्रीतिरसाकुलः ।
 काश्मीरे भवशर्माख्यो द्विजोऽहममवं पुरा ॥ ६१३ ॥
 अहं कदाचित्सद्धर्मश्रमणादाहितव्रतः ।
 निवारितो ब्रह्मचर्यादनयैव बलान्निशि ॥ ६१४ ॥

बौद्धादरादहं जातो जलेऽस्मिन्सिद्धिभाजनम् ।
 प्रसन्नमङ्गात् तु प्राप्तो भन्तुं तत्परमं पदम् ॥ ६१५ ॥
 इति ब्रुवाणः स तया बद्ध्वा चारित्रशुभ्रया ।
 नीतः स्वतपसा क्षिप्रं विमानेन सुरावनीम् ॥ ६१६ ॥
 लक्ष्मीधरश्रीधरौ च स्थितौ तत्रैव विस्मितौ ।
 प्रातर्ददृशतुर्दिव्यरूपं यक्षकुमारकम् ॥ ६१७ ॥
 तदिष्टदिव्यसंभोगौ तस्माद्विद्यामवाप्य तौ ।
 जग्मतुस्तौ समामङ्ग्य निजगेहं महाशयौ ॥ ६१८ ॥

इति श्रीधराख्यायिका ॥ ४२ ॥

कथां तपन्तकेनेति कथितां नरवाहनम् ।
 श्रुत्वा प्रहृष्टं प्रोवाच गोमुखोऽपि विनोदिनीम् ॥ ६१९ ॥
 उत्पलाख्येन वणिजा लक्ष्मीदत्ताभिधः सुतः ।
 पुरा विवासितः प्रायान्मालिन्या सह भार्यया ॥ ६२० ॥
 निर्जलमटवीं प्राप्य प्रियां तृष्णानिपीडिताम् ।
 दृष्ट्वा स्वभुजमुत्पाद्य स तां रक्तमपाययत् ॥ ६२१ ॥
 दिनैर्बहुभिरासाद्य श्रान्तः शीतजलां नदीम् ।
 स्नात्वा चकार ततीरे प्राणशुचिं बभूवस्रः ॥ ६२२ ॥
 ददर्श तत्र निर्लज्जकर्पादं विनासिकम् ।
 ध्वन्तरूढं तरङ्गौघैर्नर्मस्तानशायिनम् ॥ ६२३ ॥
 तं कंचिज्जीवमालोक्य संजातकरुणोऽथ सः ।
 विगाढ तटिनीं क्षिप्रमानिनाय वणिक्सुतः ॥ ६२४ ॥
 प्रत्यग्रनिग्रही तस्य वस्त्रचरिण रुग्णिका ।
 बद्ध्वा तस्य चिरं चक्रे विपिने भेषजक्रियाम् ॥ ६२५ ॥

१. 'प्रातः योगतं परमं' ख. २. 'शुद्धचारित्रशुभ्रया' ख. ३. 'ता' ख. ४. 'एषा
 ययौ' ख. ५. एतच्छोचान्तर्गतपाठः ख-मुद्रके श्रुतः. ६. 'पादान्तनासिक' ख.
 ७. 'रक्तमानं' ख. ८. 'मुत्तुङ्गचायिनम्' ख.

पत्यौ प्रयाते स्नानाय मानिनी काममोहिता ।
 ततः कदाचित्संरुद्धच्छेदतुण्डं तमव्रवीत् ॥ ६२६ ॥
 भज मां चिरसंकल्पं मम पूरय निर्जने ।
 स्त्रीणां हि ललितं चेतो न शाम्यति स्तं विना ॥ ६२७ ॥
 इत्यर्थितस्तया रुग्णो मुजाम्भ्यां गाढपीडिताम् ।
 तां निर्दयपरोमर्दः सुचिरं समतोपयत् ॥ ६२८ ॥
 स्नात्वा प्रतिनिवृत्तोऽथ वणिक्पुत्रो ददर्श ताम् ।
 मिथ्यैव विहितव्याधिं तथा दीर्घं प्रलापिनीम् ॥ ६२९ ॥
 तटिनीप्रान्तसंजातां मद्यमेनां महौपवीम् ।
 समाहरेति स तथा प्रेरितो गन्तुमुद्ययौ ॥ ६३० ॥
 तत्करालम्विना बलीदाम्ना हासपदं गतः ।
 तथैव त्यक्तपाशोऽसौ नदीमध्ये पपात च ॥ ६३१ ॥
 स ततः सलिलोत्फालैर्गमनालिङ्गनक्षमैः ।
 अविभावितः(?) विक्रम्यैर्न्यस्तो हर्षपुरीतटे ॥ ६३२ ॥
 तस्मिन्नवसरे राज्ञि हर्षपुर्या दिवं गते ।
 अभिपेकगजेन्द्रेण स गृहीतो वणिग्वरः ॥ ६३३ ॥
 तत्राभिपेकपुण्याहे निर्गल्य द्विरदाधिपः ।
 यमारोपयति स्कन्धे स राजेति स्थितिः सदा ॥ ६३४ ॥
 स तेन कुञ्जरेन्द्रेण नीतो राज्यश्रिया युतः ।
 योपिस्तु न मतिं चक्रे स्मरन्मार्याविचेष्टितम् ॥ ६३५ ॥
 पृथ्वीराज्यं समासाद्य प्रजापालनतत्परः ।
 स तत्र कालमनयत्सर्वार्थिसुरपादपः ॥ ६३६ ॥
 सापि तं रुग्णमादाय स्कन्धे रागवशीकृता ।
 बभ्राम निस्त्रिंशं पृथ्वीं मिक्षावाहितमोजना ॥ ६३७ ॥
 अहो पतिव्रता कापि पश्येयं या पतिं निजम् ।
 स्कन्धे वहति कृताङ्गं जनास्तामित्यपूजयन् ॥ ६३८ ॥

कालेन सा हर्षपुरीं प्राप्तां तस्मै महीमुजे ।

प्रदर्शिता भञ्जिवरैस्तत्सतीव्रतविसितैः ॥ ६३९ ॥

सोऽपि तां प्रत्यभिज्ञाय तं च रुग्णं सभाकुलः ।

राजा स सर्वं वृत्तान्तं सचिवेभ्यो न्यवेदयत् ॥ ६४० ॥

तौ निरस्य विरक्तोऽथ लक्ष्मीसेनोऽभवन्मुदा ।

विपुले राज्यसारेऽपि ललनाविपुलाश्रयः ॥ ६४१ ॥

इति लक्ष्मीसेनाख्यायिका ॥ ४३ ॥

गोमुखेनेति कथितं श्रुत्वा वत्सेश्वरात्मजः ।

प्रभाते निजमुद्यानं ययौ विरहनिःसहः ॥ ६४२ ॥

ततो विद्याधराधीशः समेत्य प्रमदाकुलः ।

तां सुतां शक्तियशसं ददौ तस्मै सुलोचनाम् ॥ ६४३ ॥

अथ दिव्योचितोत्साहविपुलोत्सवशालिनीम् ।

तथा नरेन्द्रपुत्रस्य विवाहश्रीरवर्तत ॥ ६४४ ॥

परिणीयेन्दुवदनां प्रहृष्टः पितुराश्रया ।

विललास सरसेरो विलासोपवनेषु सः ॥ ६४५ ॥

विद्यार्थरीप्रणयिनं सुतमाकलय्य

वत्सेश्वरः किमपि हर्षमुषार्द्रचेताः ।

देवीसखस्त्रिनयनार्चनकल्पवृक्ष-

सूतेः फलस्य कुसुमोद्गतिमभ्यामंस्त ॥ ६४६ ॥

इति हेमेन्द्रविरचितायां शृङ्गारकथामध्यायां शक्तियशो नाम षोडशोऽध्यायः ।

महाभिषेकलम्बकः ।

नवकुचकाञ्चनकलशाः श्रोणीसिंहासनाः सितच्छत्राः ।

अभिषेकाय तरुण्यो यस्य स मकरध्वजो जयति ॥ १ ॥

अथ विद्याधरोऽभ्येत्य प्रतीदारेण सूचितः ।

प्यजिज्ञपत्प्रभासीनं प्रणम्य नरवादनम् ॥ २ ॥

अपि स्मरसि मे देव संप्राप्य विजयश्रियम् ।
 न दृश्यते स्वितः पश्चात्सर्दापैरिव पार्थिवैः ॥ ३ ॥
 यदा त्वं गौरीमुण्डेन पातितोऽग्निगिरेस्तटे ।
 पुरा मया तदा देव रक्षितोऽसि हराज्ञया ॥ ४ ॥
 दूरपातमहामूर्च्छामदसंस्कारसंविदा ।
 मन्ये मां नाभिजानासि चिरवृद्ध इवाग्रगम् ॥ ५ ॥
 पुरारुताबलम्योऽपि हृदि प्रत्यग्रसंग्रमे ।
 अपराध इवार्यस्य मन्येऽहं विस्मृतोऽद्य ते ॥ ६ ॥
 अमृतप्रभनामाहं प्रपन्नस्तव शासनम् ।
 वामदेवेन मुनिना प्रेषितो भवदन्तिकम् ॥ ७ ॥
 मुनिस्त्वामाह रत्नानि गृहाणाम्येत्य मद्विरा ।
 चक्रवर्तिश्रिये देव तूर्णमित्युत्तमप्रियः ॥ ८ ॥
 इति विद्याधरवचो निशम्य नरवाहनः ।
 तं परिज्ञाय नमसा वामदेवाश्रमं ययौ ॥ ९ ॥
 तं प्रणम्य मुनिं तत्र तदादिष्टो गुहान्तरात् ।
 सोऽद्य विघ्नघ्नोत्पातं राज्यप्रसवमूतये ॥ १० ॥
 ध्वजं छत्रं सुधाविम्बं खड्गांश्च रथकुञ्जरान् ।
 दण्डरत्नं च संप्राप्य स निजं कटकं ययौ ॥ ११ ॥
 अथ श्रीमान्प्रशस्तेऽहि विमानं सचिवैः सह ।
 प्रियामिश्च समारुह्य जययात्रां दिदेश सः ॥ १२ ॥
 ततो विद्याधरानीकसंछादितनमस्तलः ।
 जेतुं मन्दरदेवं स त्रिनेत्राद्रितटे ययौ ॥ १३ ॥
 तत्र सेना वभौ तस्य स्फटिकप्रतिविम्बिता ।
 पूरितेव निजानीकैः सेवायै गर्भमूमृता ॥ १४ ॥
 तत्र गीर्वाणतटिनीतीरविश्रान्तसैनिकः ।
 विजहार मृगाक्षीभिः पारिजातलतावने ॥ १५ ॥

पुष्पेपुर्हदितः कोऽयमस्य शस्त्रैः समुद्यमः ।
 इति ताः स्पृहया वीक्ष्य जगदुर्गुह्यकाङ्क्षनाः ॥ १६ ॥
 ततस्तं प्रस्थितं जेतुं वायुवेगः कृताञ्जलिः ।
 व्यजिज्ञपदितो देव न पन्थाश्चक्रवर्तिनाम् ॥ १७ ॥
 इहास्ते त्रिपुरारातिः सदैव संनिहितो हरः ।
 विभूतयः सुरेन्द्राणां यत्पसादात्सविभ्रुषः ॥ १८ ॥
 तमुलङ्घ्य विरूपाक्षं व्योम्नि यो याति मोहितः ।
 पतति अष्टविद्योऽसौ क्षीणपुण्य इव ग्रहः ॥ १९ ॥
 शंकरेणैव निहिता गुहेयं चक्रवर्तिना ।
 गिरिं विदार्य शूलेन स ते मार्गः शिवप्रदः ॥ २० ॥
 इति विद्याधरपतिः सच्चिवानां च भाषितम् ।
 श्रुत्वा प्रणम्य चण्डीशं गुहारन्ध्रेण निर्ययौ ॥ २१ ॥
 ज्यम्बकेन धृतां तत्र कालरात्रिं प्रणम्य सः ।
 पुरं मन्दरदेवस्य प्रतस्थे विजयोत्सुकः ॥ २२ ॥
 देवमायं महाकालं जित्वा विद्याधरेश्वरम् ।
 तन्महाबाहिनीपूर्णसेनाविधः प्रवमौ विभुः ॥ २३ ॥
 ततोऽष्टदयस्त संरब्धो विद्याधरबलाग्रजः ।
 प्रलयाम्बुधरध्वानधीरः सपदि मन्दरः ॥ २४ ॥
 अथ युद्धममृद्भोरं विद्याधरधराभुजाम् ।
 मौलिरत्नविनिष्पाति खड्गज्वालाजटोत्कटम् ॥ २५ ॥
 तद्रक्ततटिनीसिक्कफुल्लाशोकवनच्छविः ।
 पद्मरागाचलः क्षिप्रं बभूव स्फटिकाचलः ॥ २६ ॥
 ततो धनवतीविद्यामोहिते बाहिनीद्वये ।
 स्वयं मन्दरदेवस्य पुरोऽमृतरवाहनः ॥ २७ ॥
 चतुर्विद्याधरपतौ (सौयकास्तीक्ष्णपद्मणः ।
 नरपादननामाह्लाः कट्याक्षाः समरश्रियः ॥ २८ ॥

ततो मन्दरदेवस्य) विद्याभिरमिपूरितम् ।
 चमूव वक्रं कल्पान्तहुतमुष्मीमविभ्रमम् ॥ २९ ॥
 नरवाहनदत्तोऽथ केशपाशमिव श्रियः ।
 स्वङ्गभाकृष्य जग्राह तमुद्भ्रान्तशिरोरुहम् ॥ ३० ॥
 आतरं स्वङ्गसंपातमन्त्रान्तरितजीवितम् ।
 दृष्ट्वा मन्दरदेवीति नरवाहनमभ्यधात् ॥ ३१ ॥
 भो भो प्रतापचण्डांशो कीर्तिज्योत्स्नासुधाकर ।
 नरवाहनदत्त त्वं त्रातुमर्हसि मेऽग्रजम् ॥ ३२ ॥
 इति तस्या वशः श्रुत्वा तं तत्याज नृपालजः ।
 सन्तः प्रणयमङ्गेषु मीतानां नहि शिक्षिताः ॥ ३३ ॥
 स्वस्त्वा मन्दरदेवोऽथ मोचितो लज्जया नतः ।
 ययौ तपोवनं भानी मुनेः स्वपितुराश्रमम् ॥ ३४ ॥
 विपत्सु च कुलीनानां वियोगेषु च धीमताम् ।
 पराजये च शूराणां वृत्तिरेका तपोवनम् ॥ ३५ ॥
 ततो धनवतीध्यानादुत्पिते रक्षिते बले ।
 नरवाहनदत्तस्य जन्ममे जयडिण्डिमः ॥ ३६ ॥
 जम्मारिविजयोद्युक्तं तं समभ्येत्य नारदः ।
 त्रिदशैर्नास्ति वो वैरमित्युक्त्वा विमुखं व्यधात् ॥ ३७ ॥
 अमिषिच्यामितगतिं कैलासे गुलिकामृतम् ।
 क्रान्तां मन्दरदेवीं तां पित्रा दत्तामवाप्तवान् ॥ ३८ ॥
 यन्मुखेनेक्षणच्छायाशब्दलेनानवन्नमः ।
 नीलोत्पलदललोलहेमाब्जेनेव मृषितम् ॥ ३९ ॥
 दत्तामकम्पनासूयेन पित्रा तां प्राप्य सुन्दरीम् ।
 तद्वयस्याश्रितसोऽन्याः प्रापैकोद्वाहनिधियाः ॥ ४० ॥
 दत्तः प्रणम्य श्रीकण्ठं प्रयातो वीक्ष्य शूलिनम् ।
 ऋषमस्य गिरेः शृङ्गममिपेकश्रिये ययौ ॥ ४१ ॥

तत्र विद्याविकल्पोत्था दिव्याभिप्रायशालिनी ।
 राजधानी बभूवास्य रत्नप्राकारतोरणा ॥ ४२ ॥
 अथाययुः समुद्रेभ्यो रत्नकुम्भैः सुलोचनाः ।
 हेमकुम्भोपमकुचा गृहीत्वाप्सरसो जलम् ॥ ४३ ॥
 ततो वायुपथाहृतस्तं विद्याभिर्विहायसा ।
 सामात्यः सह देवीभ्यामाययौ वत्सभूपतिः ॥ ४४ ॥
 यत्नात्पित्राभ्यनुज्ञातः कथंचिद्विनताननः ।
 रत्नसिंहासनं मेजे भूपितो नरवाहनः ॥ ४५ ॥
 रोहणाद्रेरिचोत्सङ्गं नानारत्नविभूषितम् ।
 स बभार महामौलिं क्रीडाशैलमिव श्रियः ॥ ४६ ॥
 अथाभिपेकपुण्याहे विस्तीर्णे मङ्गलोदके ।
 आसन्नार्धं प्रगोर्भजे देवी मदनमञ्जुका ॥ ४७ ॥
 रतिरस्य स्मृतिमुबो दयितेयमयोनिजा ।
 कान्ताः क्षुत्वेति नमसो नावमानं ययुः पराः ॥ ४८ ॥
 ततः कुण्डलिनः दूरा मौलिपिञ्जरिताम्बराः ।
 तस्य विद्याधरावीशाः घणता विविशुः सभाम् ॥ ४९ ॥
 मणिकुट्टिमसंप्राप्तप्रांशुरग्निभृताम्बराः ।
 त्रैलोक्यमिव रुन्धानास्ते वसुगुलिकाधराः ॥ ५० ॥
 प्रपलश्रियमालोक्य सुतं वत्सनरेश्वरः ।
 ब्रह्माण्डं संफटं मेने हर्षसंपूर्णमानसः ॥ ५१ ॥
 देवी वासवदत्तापि शच्या पुत्रश्रिया पदम् ।
 प्राप्ता कुमारविजयानन्दिनीव सती बभौ ॥ ५२ ॥
 मङ्गलोदधिकङ्गोलध्रीलताकुसुमाकरः ।
 हर्षपीयूषजलदः कोऽप्यमृतस्य महोत्सवः ॥ ५३ ॥
 ततस्तनयमामाग्य वीरार्म्बी प्रमदाकुलः ।
 ययो व्योम्ना सहामात्यो यत्ताराजः प्रियासक्तः ॥ ५४ ॥

इति ॥ निखिलमूर्ध्निमौलिविश्रान्तकीर्ति-

संदकलमुरनारीगीयमानप्रतापः ।

अमिनवजयलक्ष्मीनम्रविद्याधरेन्द्र-

प्रकटमुकुटपीठस्पष्टपादो राज ॥ ५५ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचिताया बृहत्कयामञ्जरी महाभिषेचो नाम सप्तदशो लम्बकः ।

सुरतमञ्जरीलम्बकः ।

मुमगाविभ्रमोद्भ्रान्तभ्रुविलासचलाः श्रियः ।

आकल्पं स्थिरतां यान्ति यद्ग्रात्स शिवोऽस्तु वः ॥ १ ॥

स विद्याधरसामन्तमल्लकन्यस्तशासनः ।

मेजे समस्तकान्ताभिः सरलीलामहोत्सवम् ॥ २ ॥

प्रियाविलासरसिके सानन्दे नरवाहने ।

सेवाक्षुण्णिवासाद्य वसन्तः प्रत्यदृश्यत ॥ ३ ॥

पल्लवेषु च वल्लीनां मानसेषु च मुमुक्षुनाम् ।

कपोलेषु च मत्तानां (रंग कोऽपि व्यवर्तत ॥ ४ ॥

नमोऽस्तु स्थाणवे तस्मै हृष्टो येन मनोभवः ।

सहकारमदग्धेनमित्यूषु प्रोषितास्तदा ॥ ५ ॥

नवसंभोगसंगीततरङ्गमलसद्रवः ।

लुलोठ पिककण्ठेषु मान्मयो जयडिण्डिमः ॥ ६ ॥

सहसाङ्कुरितो लेभे मदनः कामपि श्रियम् ।

तटीषु वचनान्तानां) हृदयेषु च राणिणाम् ॥ ७ ॥

कूजन्मधुकरश्रेणीवितता चूतमञ्जरी ।

वभार तारकैरारसरकार्मुकनिभ्रमम् ॥ ८ ॥

स्रक्काः सिन्दुवारस्य तरलभ्रमराकुल्याः ।

ययुः सितासितरुचो मधुलक्ष्मीकट्याक्षनाम् ॥ ९ ॥

तरुणीचरणाघातफुल्लेनाशोकशासिना ।
 अमन्यत सरस्यैव प्रतापो विग्रमक्षतिः ॥ १० ॥
 कान्तागण्डूपविकसद्भकुलोद्भूतरेणुभिः ।
 यशोभिरिव पुष्पेयोः पाण्डुराः ककुमोऽभवन् ॥ ११ ॥
 तस्मिन्नानन्दमधुरे मालतीकलिकाकुले ।
 काले विलासिनीलीलानुकूले कलितानिले ॥ १२ ॥
 फुल्लवल्लीनिकुञ्जेषु लवङ्गामोदनिर्भरे ।
 पपौ मधु मृगाक्षीभिर्मित्रैश्च नरवाहनः ॥ १३ ॥
 मधौ मधुमदालोलाः प्रियाः सुहृदयाः सुहृत् ।
 फलं राज्यतरोरेतच्छेषमाङ्ग्वरं श्रियः ॥ १४ ॥
 पुष्पाकरश्रियं योक्ष्य दक्षिणानिलवीजिताम् ।
 परागौघेदुःखलाङ्गां गोमुखः प्राह भूषतिम् ॥ १५ ॥
 अमङ्गमरसं हौदमीमभ्रुकुटिविग्रमः ।
 अयं विरहिणां कालः कालो देव विजृम्भते ॥ १६ ॥
 असिम्बिकसिताशोकचूतचम्पककिंशुके ।
 कामकेलिकलकाले विद्युक्तः को नु जीवति ॥ १७ ॥
 राजपुत्रः पुरा शूरः शूरसेनाभिघो बधूम् ।
 सुपेणां स्वैरमामध्य राजसेवापरो ययौ ॥ १८ ॥
 गते तस्मिन्वनान्तेषु संततोत्फुल्लशौलिना ।
 संतोषितालिजालेन वसन्तेन विजृम्भितम् ॥ १९ ॥
 मधौ मधुरसंलापे कोकिलालिकुल्यकुले ।
 सुपेणा वल्लभं स्मृत्वा र्वमूव गतजीविता ॥ २० ॥
 शूरसेनोऽपि तामेत्य दृष्ट्वा निपतितां प्रियाम् ।
 शुभोद् को हि सहते सहसा दैयिताक्षयम् ॥ २१ ॥

१. 'जीविताम्' एत. २. 'मेरुदुःखलाङ्गा' एत. ३. 'यित' एत. ४. 'भार' एत.
 ५. 'धि' एत. ६. 'लुधिमा जीवितं विना' एत. ७. 'दयतां पतिः' एत.

१८. सुरतमञ्जर्याम्-वत्सेधरमृगुपतनकया ।] बृहत्कथामञ्जरी ।

६०१

परस्परानुरागामिदम्बौ वीक्ष्य च चण्डिका ।

कुलदेवी तयोर्जीवं दिदेशामृतसीकरैः ॥ २२ ॥

इति शूरसेनाख्यायिका ॥ १ ॥

श्रुत्वेति गोमुखवचो मधुलक्ष्मीं विलोकयन् ।

ललास दृष्टिचपकैः पिवन्मदनमञ्चुकाम् ॥ २३ ॥

ततो निशि निशाकान्तकान्तिसंताननिर्झरैः ।

पूरिते मुवनाभोगे स सुप्वाप प्रियासखः ॥ २४ ॥

स चन्द्रकान्तपर्यङ्के शशीव निजमण्डले ।

रतिश्रमौन्मिपन्निद्रः स्वप्नेऽनिष्टं व्यलोकयत् ॥ २५ ॥

विबुद्धः शङ्कमानोऽथ पितुर्द्वयपरामवम् ।

स लेभे न पुनर्निद्रां विरक्तमिव योषितम् ॥ २६ ॥

चिरं चिन्तयत्तत्तस्य शोकाग्निव्याप्तचेतसः ।

नवोदेवाविदम्बस्य घृतिर्दूरतरं ययौ ॥ २७ ॥

मेत्रीव साधुशीलानां स्त्रीणां परकयेव च ।

सा तस्य शर्वरी शोकात्प्रययौ दीर्घदीर्घताम् ॥ २८ ॥

प्रातर्विच्छिष्टा प्रव्रष्टिविद्या तेन तदीक्षितुम् ।

प्राह तत्सेश्वरोदन्तं तूर्णमेत्य नमश्चरी ॥ २९ ॥

याते चण्डमहासेने समार्ये कीर्तिशेषताम् ।

विधाय पालकं वीरं तत्पदे क्षितिपालकम् ॥ ३० ॥

गोपालकं निवेद्याशु भ्रूमङ्गेनात्मनः पदे ।

कार्लजरभृगूत्सङ्गे दिवं वत्सेश्वरो ययौ ॥ ३१ ॥

स दिव्यपुष्पादिष्टं गत्वा यौघिष्ठिरं पदम् ।

मेजे ययातिशर्यातिहरिश्चन्द्रेन्द्रतुल्यताम् ॥ ३२ ॥

भ्रूमङ्गेन विवासिता रिपुवधुभ्रूमङ्गलीलाश्रमा

दृष्टा श्रीः स्वयमर्पिता स्वसुहृदां मत्तेमकुम्भस्तनी ।

तरुणीचरणाघातफुलेनाशोकशशिना ।
 जमन्यत सरसैव प्रतापो विभ्रमक्षतिः ॥ १० ॥
 कान्तागण्डूषविकसद्भकुलोद्भूतरेणुभिः ।
 यशोभिरिव पुष्पेपोः पाण्डुराः ककुभोऽभवन् ॥ ११ ॥
 तसिन्नानन्दमधुरे मालतीकलिककुले ।
 काले विलासिनीलीलानुकूले कलितानिले ॥ १२ ॥
 फुल्लवल्लीनिकुञ्जेषु लवङ्गामोदनिर्भरे ।
 पथौ मधु मृगाक्षीभिर्मित्रैश्च नरवाहनः ॥ १३ ॥
 मधौ मधुमदालोलाः प्रियाः सुहृदयाः सुहृत् ।
 फलं राज्यतरोरेतच्छेषमाडम्बरं श्रियः ॥ १४ ॥
 पुण्याकरश्रियं वीक्ष्य दक्षिणानिलवीजिताम् ।
 परागोषैद्वकूलाङ्गां गोमुखः प्राह मूर्ध्नि ॥ १५ ॥
 जमद्भ्रमरसंज्ञादमीनश्रुकुटिविभ्रमः ।
 अयं विरहिणां कालः कालो देव विजृम्भते ॥ १६ ॥
 अस्मिन्विकसिताशोकधूतधम्पककिशुके ।
 कामकेलिकलाकाले वियुक्तः को नु जीवति ॥ १७ ॥
 राजपुत्रः पुरा शूरः शूरसेनाभिषो वधूम् ।
 सुपेणां स्वरमामक्य राजसेवापरो ययौ ॥ १८ ॥
 गते तस्मिन्वनान्तेषु संततोत्फुल्लशौलिना ।
 संतोपितालिजालेन वसन्तेन विजृम्भितम् ॥ १९ ॥
 मधौ मधुरसंलापे कोकिलालिकुलाकुले ।
 सुपेणा वल्लभं स्मृत्वा धैर्यं गतजीविता ॥ २० ॥
 शूरसेनोऽपि तामेत्य दृष्ट्वा निपतितं प्रियाम् ।
 मुमोह को हि सहते सहसा दयिताक्षयम् ॥ २१ ॥

१. 'जीविताम्' ख. २. 'निरजुद्गता' ख. ३. 'पित' ख. ४. 'भार' ख.
 ५. 'यि' ख. ६. 'सुखिना जीवितं विना' ख. ७. 'दयतां पतिः' ख.

देव्यो येन सतीव्रतेन च कृता दूराव्रतिः केवल्य
कालः केवल्योल्लुपः स निखिलं लोकावलीमश्रुते ॥ ४२ ॥

श्रीमत्तत्पृथुहारनिर्भरसुरः श्रार्यापरादेस्तु

तौ सम्प्रतिमं मुजावपि जगत्पाकाररसार्गले ।

कीर्तिः स्वर्गनदी सुवर्णकमलं वक्त्रं क तातस्य त-

दृष्ट्वाहं पुनरिन्दुर्हृन्दयश्चमो घिस्त्रे चिरं जीवितम् ॥ ४३ ॥

इत्युक्तवति शोकामिसंतप्ते नस्वाहने ।

रुदुर्गांसुखमुत्ता देव्यन्ता चाप्यलोचनाः ॥ ४४ ॥

तेषां करुणमाक्रन्दं श्रुत्वाद्युल्लितेक्षणाः ।

चमूनुर्मुवनोद्यानकेलियाल्लुरङ्गकाः ॥ ४५ ॥

ततो निमृत्तसंचारा विनयानतदृष्टयः ।

विविशुः शोकविषया विद्याचरघराघराः ॥ ४६ ॥

तेषां कुण्डलकेयूरपद्मरागाख्यांशुकैः ।

शोकामिना दहमाना मूर्तेर्नेवामवन्दिशः ॥ ४७ ॥

ततः कृतोदरुज्जानो वृतो विद्याधरेश्वरैः ।

मातरं साधुनयनः श्रुद्योच नस्वाहनः ॥ ४८ ॥

तं शोकवटवावहिकेय्यमानमिवाम्बुधिम् ।

वीक्ष्य पिङ्गल्यान्यारः प्राह वायुपञ्चमथा ॥ ४९ ॥

देव धैर्यव्ययः कोऽयं तवापि महतां कुले ।

नहि निःसारसंसारविकाराः प्रमविष्णवः ॥ ५० ॥

नहि शोकः प्रियभ्रंशे कर्तव्यो बृद्धसेविमिः ।

भवेऽप्यमावसद्भावे भावा मूमङ्गमङ्गुराः ॥ ५१ ॥

एकेऽद्य श्वम्नदपरे तत्परेऽहि तथापरे ।

यान्ति नि सीमि संसारे कः स्वाता योऽनुशोचति ॥ ५२ ॥

देव्यो येन सतीव्रतेन च कृता दूरान्तरिः केवल
 कालः केवललोलुपः स निखिलं लोकावलीमश्रुते ॥ ४२ ॥
 श्रीमत्तत्प्रयुद्धानिर्भरसुरः शौर्यापरादेस्तटं
 सौ सन्धप्रतिभं मुञ्जावपि जगत्पाकाररक्षणले ।
 कीर्तिः स्वर्गनदी सुवर्णकमलं वक्त्रं क तातस्य त-
 द्ब्रह्मं पुनरिन्दुवृन्दयशसौ धिष्णे चिरं जीवितम् ॥ ४३ ॥
 इत्युक्तवति शोकामिसंतप्ते नरबाहने ।
 रूढगोमुखमुखा देव्यन्ता बाष्पलोचनाः ॥ ४४ ॥
 तेषां करुणमाक्रन्दं मुत्पामुलितेभ्रणाः ।
 चमूचुर्मुवनोद्यानकेलिवालकुरङ्गकाः ॥ ४५ ॥
 ततो निमृत्तसंचारा विनयानतदृष्टयः ।
 विविशुः शोकविवशा विधाधरधराधराः ॥ ४६ ॥
 तेषां पुण्डलकेयूरपद्मरागारुणांशुकैः ।
 शोकामिना दक्षमाना भूतेनेवामवन्दिशः ॥ ४७ ॥
 ततः कृतोदकस्नानो वृत्तो विद्याधरेधरैः ।
 मातरं साधुनयनः शुशोच नरबाहनः ॥ ४८ ॥
 तं शोकवदबावदिकेभ्यमानमिवाम्बुधिम् ।
 वीक्ष्य पिङ्गलगान्धारः प्राह वायुपयस्तथा ॥ ४९ ॥
 देव धैर्यध्वजः कोऽयं तथापि महतां कुले ।
 नहि निःसारसंसारविकाराः प्रमविष्णवः ॥ ५० ॥
 नहि शोकः प्रियभ्रंशे कर्तव्यो वृद्धसेविभिः ।
 भवेऽप्यभावसद्भावे भावा भ्रमक्रमद्वयाः ॥ ५१ ॥
 एकेऽद्य श्वन्नदपरे तत्परेऽहि तथापरे ।
 यान्ति नि मीसि संसारे कः स्यात्ता योऽनुशोचति ॥ ५२ ॥

देवीभ्यां विहृतं हुतं द्विजमुखे नित्यं स्मृतः शंकरः

कर्तव्यं स्पृहणीयमन्यदुचितं शेषं किमस्त्यायुषः ॥ ३३ ॥

उक्त्वेति देवं कामरिं ध्यात्वा विगलितोग्रहः ।

धैर्येण सह पौराणां प्रययौ पौरवत्सैकः ॥ ३४ ॥

चन्द्रार्धमौलिविहितस्तुतिगीतिकाङ्का-

मङ्गे निधाय स तथाभिभतां विपञ्चीम् ।

देवः प्रियोग्रचरमित्रकृतानुयात्रः

सोऽस्ताचलादिव सहस्रकरः पपात ॥ ३५ ॥

तस्मिँल्लोकत्रयानेत्रशतपद्मावलिप्रिये ।

यातेऽस्तं जगतां मित्रे शोकान्वयममजन्मजाः ॥ ३६ ॥

इति वत्सेश्वरभृगुपतनकथा ॥ २ ॥

विद्याधेरीवचः श्रुत्वा मूर्च्छितो नरवाहनः ।

पपात मुह्यदामग्रे वज्राहत इवाचलः ॥ ३७ ॥

(विद्याधरीभिरमितः फदलीपल्लवानिलैः ।

वीज्यमानः शनैः संज्ञामवाप्य विललाप सः ॥ ३८ ॥

हा विलासरसावास हा गाम्भीर्यमद्बोधधे ।

हा सप्तमुवनोद्यानफुल्लकीर्तिलतावन ॥ ३९ ॥

हा दाक्षिण्यनिधे देव हा तात सुतवत्सल ।)

कासि मे वचनं देहि वत्सेत्यमृतनिर्भरम् ॥ ४० ॥

अतो नु निरनुक्रोशः सज्जनककचोऽन्तकः ।

कथाशेषः कृतो येन त्वमपि क्षमाविशेषकः ॥ ४१ ॥

स त्वं वत्समदीपतेरंगणितं रूपेण चन्द्ररूपः

पेटे न स्तुतिरक्षिता न रचितश्चित्रं गुणेष्वङ्गलिः ।

१. 'उडे' ख. २. 'ताट्ट' ख. ३. 'प्रम.' ख. ४. 'दाक्षिण्य' ख.

५. 'र' ख. ६. एतन्मोहान्तर्गतपाठः ख-मुद्रके मुद्रितः. ७. 'नं तनित.' ख.

८. 'अपेन' ख.

देव्यो येन सतीव्रतेन च कृता दूरान्निः केवल्य

कालः केवललोडपः स निखिलां लोकावलीमश्रुते ॥ ४२ ॥

श्रीमत्तत्पृथुहारनिर्मलसुरः शौर्यापराद्रेस्तटं

सौ स्तम्भप्रतिभं मुखावपि जगत्पाक्कररक्षार्गले ।

कीर्तिः स्वर्गनदी सुवर्णकमलं वक्त्रं क तातस्य त-

दृष्ट्वाहं पुनरिन्दुवृन्दयशसो धिक्चे चिरं जीवितम् ॥ ४३ ॥

इत्युक्तवति शोकाग्निसंतप्ते नरवाहने ।

रुद्रगोमुखमुखा देव्यस्ता वाण्यलोचनाः ॥ ४४ ॥

तेषां करुणमात्रन्दं श्रुत्वाकुलुलितेक्षणाः ।

बन्धुमुवनोद्यानकेलिवालकुरङ्गकाः ॥ ४५ ॥

ततो निमृत्तसंचारा त्रिनयानतटदृश्यः ।

विविधः शोकविवशा विधापरपराधराः ॥ ४६ ॥

तेषां कुण्डलकेयूरपद्मरामारुणांशुकैः ।

शोकाग्निना दक्षमाना मूर्तेनेवामवन्दिषः ॥ ४७ ॥

ततः कृतोदकस्नानो वृतो विधाधरेयोरैः ।

भातरं साश्रुनयनः शुशोच नरवाहनः ॥ ४८ ॥

तं शोकवडवावदिकं प्यमानमिवान्बुधिम् ।

चीद्वच पिङ्गलगान्धारः ग्राह वायुपयस्तथा ॥ ४९ ॥

देव धैर्यव्ययः कोऽयं तत्रापि महतां कुले ।

नहि निःसारसंसारविकाराः प्रमविष्णवः ॥ ५० ॥

नहि शोकः प्रियभ्रंशे कर्तव्यो वृद्धसेविमिः ।

अथेऽप्यमावसद्भावे भावा धूमद्रमहुराः ॥ ५१ ॥

एकेऽप्यश्वसदपरे तत्परेऽहि तत्रापरे ।

यान्ति निःसीमि संसारे कः स्यात्त योऽनुशोचति ॥ ५२ ॥

देवीभ्यां विहृतं हुतं द्विजमुखे नित्यं स्मृतः शंकरः -
 कर्तव्यं स्पृहणीयमन्यदुचितं शेषं किमस्त्यायुषः ॥ ३३ ॥
 उक्त्वेति देवं कामरिं घ्यात्वा विगलितोग्रहः ।
 धैर्येण सह पौराणां प्रययौ पौरवत्सलः ॥ ३४ ॥

चन्द्रार्धमोलिविहितस्तुतिगीतिकाङ्का-
 मङ्गे निघाय स तयामिमतां विपञ्चीम् ।
 देवः प्रियाग्रचरमित्रकृतानुयात्रः
 सोऽस्ताचलादिव सहस्रकरः पपात ॥ ३५ ॥

तस्मिँल्लोकत्रयानेत्रशतपञ्चावलिप्रिये ।
 यातेऽस्तं जगतां मित्रे शोकान्ध्यममजन्मजाः ॥ ३६ ॥
 इति वत्सेश्वरभृगुपतनकथा ॥ २ ॥

विद्याधरीवचः श्रुत्वा मूर्च्छितो नरवाहनः ।
 पपात सुहृदामग्रे यज्जाहत इवाचलः ॥ ३७ ॥
 (विद्याधरीभिरभितः फदलीपल्लवानिलैः ।
 वीज्यमानः शनैः संज्ञामवाप्य विललाप सः ॥ ३८ ॥
 हा विलासरसावास हा गाग्मीर्यमहोदधे ।
 हा सप्तमुवनोद्यानफुल्लकीर्तिलतावन ॥ ३९ ॥
 हा दाक्षिण्यनिधे देव हा तात सुतवत्सल ।)
 कासि मे वचनं देहि वत्सेत्यमृतनिर्भरम् ॥ ४० ॥
 अहो नु निरनुक्रोशः सज्जनककचोऽन्तकः ।
 कयादोषः कृतो येन त्वमपि क्षमाविशेषकः ॥ ४१ ॥
 स त्वं यत्समहीपतेरंगणितं रूपेण चन्द्रसयः
 पठे न स्तुतिरधिता न रचितश्चित्रं गुणेष्वञ्जलिः ।

१. 'पुले' ख. २. 'तपहः' ख. ३. 'द्रमः' ख. ४. 'यावद्विषमि' ख.
 ५. 'र' ख. ६. एतन्मोहान्तर्गतपञ्चः ख-मुसके शुद्धितः. ७. 'नं तमितः' ख.
 ८. 'सागेन' ख.

देव्यो येन सतीव्रतेन च कृता दुरावृत्तिः केचल

कालः केवललोद्विग्नः स निखिलां लोकप्रलीममुते ॥ ४२ ॥

श्रीमत्तत्पुद्गलनिर्गमुरः श्रौथीपरदिम्वरं

तौ सम्प्रतिभं मुखावपि जगत्पाकाररक्षणगते ।

कीर्तिः स्वर्गनदीं मुवर्णकमलं वक्रं क तात्तस्य त-

दृष्ट्वाहं पुनरिन्दुर्यन्दयशसो विष्णे विरं जीवितम् ॥ ४३ ॥

इत्युक्तवति शोकामिसंतप्ते नरवाहने ।

स्तुदुर्गोमुस्तमुता देव्यन्ता वाप्यलोचनाः ॥ ४४ ॥

तेषां करणमाकन्दं श्रुत्वाहं लुलितेजसाः ।

बभूवुर्मुवनोद्यानकेलिवालकुरङ्गकाः ॥ ४५ ॥

ततो निमृत्तसंचारा विनयानतद्विष्टयः ।

विविधः शोकविवशा विचाचरघरापराः ॥ ४६ ॥

तेषां पुण्डलकेयूरपद्मरागाणां शुक्लैः ।

शोकामिना दृष्टमाना मूर्तेर्नैवामवन्दिताः ॥ ४७ ॥

ततः कुत्रोदकालो वृत्तो विचाचरेश्वरैः ।

मातरं साश्रुनयनः शुश्रोच नरवाहनः ॥ ४८ ॥

तं शोकवदवावृद्धिकं व्यमानमिवानुचिम् ।

वीक्ष्य पिङ्गलग्नाम्बारः ग्राह वायुपथस्तथा ॥ ४९ ॥

देव धैर्यव्ययः कौड्यं तवापि महतां कुले ।

नहि निःसारसंसारविकाराः प्रमत्तिष्णवः ॥ ५० ॥

नहि शोकः प्रियम्रंशौ कर्तव्यो बृद्धसेविभिः ।

भवेऽप्यभावसद्भावे भावा भ्रमममङ्गुराः ॥ ५१ ॥

एकेऽथ श्वस्तदपरे तस्येऽहि तथापरे ।

यान्ति निःसीमि संसारे कः स्वात्ता योऽनुशोचति ॥ ५२ ॥

ध्रुवं न कुर्युर्मुनयस्तपांसि विजने वने ।
 यदि न स्युरमी भावाः पर्यन्तविशरारवः ॥ ५३ ॥
 लक्ष्मीरैम्भाकुठारस्य भोगाम्भोदनमखतः ।
 विलासवनदावाग्नेः को हि कालस्य विस्मृतः ॥ ५४ ॥
 न गुणा हीनविद्यानां श्रीमतां क्षीणसंपदाम् ।
 कृतान्तपथ्यशालायां समानः क्रयविक्रयः ॥ ५५ ॥
 (अन्यस्य दर्पणेनेव गीतेनेव हतश्रुतेः ।
 गतस्य कोऽर्थः शोकेन नेक्षते न शृणोति यः) ॥ ५६ ॥
 अकस्मात्संगतो नाम यद्यकस्माद्विनङ्गयति ।
 शोकः किं तत्र सर्वे हि यान्ति चायान्ति जन्तवः ॥ ५७ ॥
 अर्ध्रुतिर्विन्धुतां धत्ते कथं नष्टस्य नश्वरः ।
 स्कन्धेन पङ्कना पङ्कर्वत वर्त्मनि नीयते ॥ ५८ ॥
 जायते क्षणदृष्टेषु सेहो दुःखाय देहिनाम् ।
 ममायमिति मुग्धानां नासौ तेषां न तस्य ते ॥ ५९ ॥
 प्रयाति चपला लक्ष्मीः स्रवत्यायुरलक्षितम् ।
 इति वस्तुस्वभावेऽस्मिन्कोऽनुशोचति तत्त्वधीः ॥ ६० ॥
 गतान्शोचति को नाम यः प्रातः शोच्यते परैः ।
 छिन्नहस्तो विहस्तश्च कथं धत्ताति कङ्कणम् ॥ ६१ ॥
 रयते जीवतां पुंसां तेषां कालो भयंकरः ।
 निस्तीर्णकालमङ्गास्तु न शोच्या विगतासवः ॥ ६२ ॥
 न तज्जगति पश्यामो विचिन्त्य निखिलं धिया ।
 दुष्प्रापं यत्प्रयत्नेन न लीढं कालजिह्वया ॥ ६३ ॥
 नृगनाभागसगरा निर्गार्णा येन हेलया ।
 नृगममाणे महाकाले तस्मिन्को नाम मुच्यते ॥ ६४ ॥

१. 'एता' ख. २. 'वील' ख. ३. एतादृशान्तर्गतपाठः सप्तपुष्पके मुद्रितः.
 ४. 'मुगिर्विन्धुतां' ख.

विकोशायापल्यदोऽस्मिन्संसारमसरोरुहे ।
 कालमृद्गः पितृयेव जननिजल्लङ्घनञ्जसा ॥ ६५ ॥
 तेजो नाले गुणाः सा श्रीस्तत्सुखं ताम्र केलयः ।
 कालसंकल्पकल्या नीयन्ते स्मृतिशेषताम् ॥ ६६ ॥
 विकचत्कवलक्रीडा यस्य ब्रह्माण्डपिण्डकैः ।
 सर्वकषाय कालाय नमस्तस्मै महाशिने ॥ ६७ ॥
 इति तद्वचनन्यस्तशोकामिर्निरवाहनः ।
 भर्गमस्तविषस्याप दुग्धाब्धेरुपमां शनैः ॥ ६८ ॥
 गोपालचरितं ज्ञातुं विद्वष्टा पुनरागता ।
 विद्या विद्याधरेन्द्राय ततः सर्वं न्यवेदयत् ॥ ६९ ॥
 देव बत्सेश्वरादिष्टं दत्त्वा राज्यमुदारधीः ।
 मालकाय स्वयं आत्रे गोपालसप्तसे गतः ॥ ७० ॥
 प्रणयात्प्रार्थ्यमानोऽपि स परैरनुपायिभिः ।
 जटावल्ललभृत्याह न्यस्तसंसारवासनः ॥ ७१ ॥
 स्नेरचामरहासिन्यो बलभाः कस्य न श्रियः ।
 किंतु ताः पवनालोलफुदलीदलचञ्चलाः ॥ ७२ ॥
 मुक्तिनो जातनिर्वन्धकर्मबन्धौ हि वासना ।
 विशरारुः समाहारः सर्वाग्रहपरिग्रहः ॥ ७३ ॥
 वृष्णातन्तुरनाद्यन्तो त्रिसानामिव देहिनाम् ।
 सहजोऽन्तस्मितमस्य चिरान्नामूढमुद्धृतिः ॥ ७४ ॥
 आशादतावलयितं बद्धमूलमविद्यया ।
 को हि पातयितुं शक्तः सुखेन मवपादपम् ॥ ७५ ॥
 पनपुत्रकलत्रेषु स्वयमेवार्जितेष्वहो ।
 अवसन्ना विनश्यन्ति क्षुद्राः क्षौद्रस्तेष्विव ॥ ७६ ॥

अस्मिन्शरीरकुसुमे मृद्ववजीविते स्थिते ।
 चपलेषु न भावेषु ताटस्था गमतोचिताः ॥ ७७ ॥
 परिच्छिन्नाशिनः किं मे कोटिमिर्मूरिसंचयैः ।
 न पश्यामि गतः किञ्चित्कोऽयं सर्वग्रहो मम ॥ ७८ ॥
 अपर्याप्तसमस्तेच्छाः संका दारैर्धनैः सुतैः ।
 कालव्यालसमाक्रान्ता नीयन्ते हन्त जन्तवः ॥ ७९ ॥
 तरङ्गतरलैरर्थभोगैर्भ्रमङ्गभङ्गुरैः ।
 मुहूर्तशेषैस्तारुण्यैरविलम्बो रैराम कः ॥ ८० ॥
 आत्मयज्ञात्मपुण्यानामात्मतीर्थोपसेविनाम् ।
 त्यक्तापमानस्पर्शानां नैव शोचन्ति बान्धवाः ॥ ८१ ॥
 जरन्मृगः शृङ्गमिव त्वचं वृद्ध इयोरगः ।
 पक्षीषोन्मथितं शूलं बन्धमुज्झति तत्त्ववित् ॥ ८२ ॥
 भावाः स्वभावविशरारव एव ताव-
 त्संश्लेषलेखद्वराणि मनश्च तेषु ।
 तत्सर्वथा बंधुवियोगविपाकुलानां
 दान्त्यै मणिस्तनुभृतां विततौ विवेकः ॥ ८३ ॥
 इत्युक्त्वा पौरपुरतो बान्धवांस्तपसे गतः ।
 कश्यपस्याश्रमं श्रीमानसिताचलकन्दरम् ॥ ८४ ॥
 इति विद्यानिगदितं निशम्य नरबाहनः ।
 जगाम भानुलं द्रष्टुं मुहुरिः सह सानुगः ॥ ८५ ॥
 दयिताध्यासितपदं विमानं कमलासनम् ।
 आरुह्य च्योममार्गेण सोऽविशत्कश्यपाश्रमम् ॥ ८६ ॥
 प्रणम्य कश्यपं तत्र गोपालसचिवं ययौ ।
 तं विलोक्य जटापुञ्जव्यजितोरुनप.प्रभम् ॥ ८७ ॥

प्रसन्नतरुसच्छाये निर्वैरहरिकुञ्जरे ।

प्रणम्य साश्रुनयनः प्रोवाच नरवाहनः ॥ ८८ ॥

मातुलं सेहजलधिं जनकं जननीं च ताम् ।

कं पुनर्वत पश्येयमित्युक्त्वा कश्मलं ययौ ॥ ८९ ॥

तं शोकविवशं वीक्ष्य विद्याभृच्चक्रवर्तिनम् ।

गोपालः प्राह मा मैवं कृयास्त्वं धैर्यभूधरः ॥ ९० ॥

राजन्दलितकर्पूरपरामविशदं यशः ।

जगत्सु गीयते यस्य न शोच्यः स पिता तव ॥ ९१ ॥

सा च चारित्रसावित्री सौभाग्यगिरिपुत्रिका ।

याता वासवदत्ता ते धन्या कीर्तिसरस्वती ॥ ९२ ॥

मातुलस्येति वचसा मन्दशोकः सहानुगः ।

तत्रैव तस्यौ विद्याभिः कल्पितोदारमन्दिरः ॥ ९३ ॥

इति गोपालसंन्यासकथा ॥ ३

ततो विद्याधराधीशैर्मुनीन्द्रैश्च सह स्थितम् ।

व्यजिज्ञपत्समभ्येत्य प्रणतो बाहिनीपतिः ॥ ९४ ॥

कन्यां लब्ध्वाप्यपीयूषलहरीं हरिणेश्मणा ।

विक्रोशन्तीं हतासीति सोचिता सा मया विभो ॥ ९५ ॥

को हि देव भवद्दीर्यरक्षितो न्योममण्डले ।

कर्तुं लङ्घितमर्यादः सहसा विमुक्तं क्षमः ॥ ९६ ॥

स मया ललनाचौरः पृष्टः प्राह विहाय ताम् ।

सरम्भललितोत्तालमाल्यशेखरपद्मपदः ॥ ९७ ॥

जहं मदनवेगस्य पुत्रो विद्याधरप्रभोः ।

जातः कलिङ्गसेनायामितो नाम नमश्चरः ॥ ९८ ॥

इयं मतङ्गदेवेन पुत्री सुरतमञ्जरी ।

विद्याधरी पुरा मह्यं दत्ता वाचैव मुन्दरी ॥ ९९ ॥

कालेन पालकस्याय मुतायोज्जयिनीपतेः ।
 अबन्तिवर्धनाख्याय वितीर्णा तेन मानिना ॥ १०० ॥
 ततो मया माययेयं हता मानुषरागिणी ।
 स्त्रीकृते को हि सहते वीरो न्यक्कारमात्मनः ॥ १०१ ॥
 इत्युक्तवाक्यः स ययौ मौनतां परदारहृत् ।
 पालकस्य शुभा चासौ मुक्ता सुरतमञ्जरी ॥ १०२ ॥
 श्रुत्वा हरिशिख्येति वचनं बाहिनीपतेः ।
 गोपालानुमते प्राह नरबाहो नमश्चरान् ॥ १०३ ॥
 तदमात्यं च सुनयवतं भरतरोहकम् ।
 वृत्तं सुरतमञ्जरीस्ततो विज्ञायतेऽस्त्रिकम् ॥ १०४ ॥
 इति प्रमुगिरा गत्वा स समादाय खेचरः ।
 समायां न्यस्तवांस्तौ च नरनार्थं प्रणेमद्भुः ॥ १०५ ॥
 मातुलेयं परिष्वज्य सोऽपश्यत्तस्य मन्त्रिणम् ।
 स च पृष्टोऽवदत्कन्यावृत्तं भरतरोहकः ॥ १०६ ॥
 अस्ति वत्सेश्वरादिष्टः पालको लोकपालकः ।
 यौर प्रशास्ति वसुधां वसुधामशतप्रदः ॥ १०७ ॥
 ततः कदाचित्संप्राप्तपुर्यामुदकदान्तिके ।
 महोत्सवे पौरजनो वभूवावद्वकौतुकः ॥ १०८ ॥
 दत्त्वा चण्डमहासेनो दैत्यमह्नारकं पुरा ।
 प्रत्येब्दं तद्विरा चक्रे वारिदानोत्सवस्थितिम् ॥ १०९ ॥
 ततो महोत्सवारम्भो भूषिताशेषमण्डले ।
 यात्रातुलेषु लोकेषु प्रहृष्टो निर्ययौ गजः ॥ ११० ॥
 ॥ निर्गतो लम्बमानचरणालनशृङ्खलः ।
 भारपीडामयेनेव मौगीन्द्रानुगतो वमौ ॥ १११ ॥
 स लेभे लोलप्रतालियलयश्यामले रदेः ।
 मन्पोत्यकालकृष्टार्मुसि कमन्दरविमगम् ॥ ११२ ॥

तच्चण्डडिण्डिमध्वानपिण्डिते जनमण्डले ।
 अकालप्रलयआन्तिर्मीमः कोलहलोऽभवत् ॥ ११३ ॥
 ततः कुतूहलकृष्टा निर्ययुस्तरलेक्षणाः ।
 पुमङ्गपरिवस्ता ग्रहाणामिव देवताः ॥ ११४ ॥
 मुक्ताम्बुस्रुद्धारिण्यस्ता वैमुनयनोत्पलाः ।
 विलोढनमयात्प्राप्ता नलिन्य इव सेवितुम् ॥ ११५ ॥
 विदुतेष्वथ लोकेषु तत्र चण्डालद्वारिका ।
 तस्य तस्यावसाधान्यलावण्यतटिनी पुरः ॥ ११६ ॥
 श्रुत्वालासललितं स्तनस्तवकसुन्दरम् ।
 उद्यानमिव पुष्पेपोर्विआणामिव औवनम् ॥ ११७ ॥
 गुञ्जाहारानुकारीभिर्भूषितावकान्तिभिः ।
 गौरी लीलकिरातीव कटाक्षशिखिपिच्छिका ॥ ११८ ॥
 दीर्घवेणीलता मौर्वीतनुपथ्या मनोमुचः ।
 त्रिवली मुष्टिमुदेव क्रीडाकोदण्डचन्द्रिका ॥ ११९ ॥
 भयानभिज्ञा सा तत्र तस्यौ कौतुकनिश्चला ।
 बह्वरीव निवातस्या कुटिललक्ष्मद्वया ॥ १२० ॥
 तां जिघृक्षुः स सहसा कदलीमिव कुञ्जरः ।
 सप्तर्षोदण्डशृण्डालो राहुश्चन्द्रकलमिव ॥ १२१ ॥
 द्वियमाणां गजेन्द्रेण वीक्ष्य तां चकितेक्षणाम् ।
 भ्रन्तं रूपं गता कान्तिरिति पौराः प्रचुक्रुधुः ॥ १२२ ॥
 मातङ्गानामियं लक्ष्मीः कामिनीति मतद्वजः ।
 रन्तुं करेण पस्पथ सहसा त्यक्तविक्रियः ॥ १२३ ॥
 अतिचन्द्रामृतः कोऽपि परिरम्भो मृगोदृशाम् ।
 पशवोऽपि यमासाद्य भवन्ति मुखनिश्चलाः ॥ १२४ ॥
 (तैत्स्पर्शमीलिताक्षं तं विलोक्य करिणं जनाः ।
 अहो चित्रमहो चित्रमित्यूचुः कौतुकाकुलाः) ॥ १२५ ॥

अवन्तिवर्धनस्तत्र राजपुत्रोऽयमुत्सुकः ।

दृष्ट्वा चण्डालकन्यां तामभवत्सारतापितः ॥ १२६ ॥

ततस्तद्विरहायासपाण्डुरः प्रतिवासम् ।

कृष्णपक्षकृतालम्बः शशीव क्षामतां ययौ ॥ १२७ ॥

पालकोऽथ सुतं ज्ञात्वा सभार्यः पृथिवीपतिः ।

गाढाभिलापं मातङ्ग्यां चिन्ताशोकाकुलोऽभवत् ॥ १२८ ॥

राजानं दुःस्वसंतप्तं तनयस्नेहयन्निवृत्तम् ।

माहावन्तिवती देवी धिगेवं कुलपांसनम् ॥ १२९ ॥

राजा राजकुले जातो विद्याभिरभिसंस्कृतः ।

अतीव कोऽप्ययोग्येषु विधत्ते सामिलापताम् ॥ १३० ॥

पापः कोऽप्येव जठरे मया भारश्चिरं धृतः ।

अस्य शीलेन नः सर्वं संशये पतितं कुलम् ॥ १३१ ॥

शीलं राज्ञां दिशां चन्द्रस्तारुण्यं हरिणीदृशम् ।

लतानां मधुमासश्च विमूषणमकृत्रिमम् ॥ १३२ ॥

विदेशेषु धनं विद्या व्यसनेषु धनं मतिः ।

परलोके धनं धर्मः शीलं सर्वत्र वै धनम् ॥ १३३ ॥

तां राजपुत्रीं नागेन दृष्ट्वा विप्रहृदे जने ।
 रक्ष करिणं हत्वा क्रोऽपि चण्डालदारकः ॥ १३९ ॥
 ततः परस्परप्रेमविलोकनमहोत्सवे ।
 तयोर्वर्मो मनोप्रन्थिविदग्धो मकरध्वजः ॥ १४० ॥
 सेवाभिरौषधैर्मन्त्रैः प्रीतिः कालेन जायते ।
 दृष्ट्वात्रस्तु वयस्य अतीथ दयितो जनः ॥ १४१ ॥
 स चण्डालकुमारोऽथ गत्वा तद्विरहाकुलः ।
 श्मशाने बहिमादाय जीवितं त्यक्तुमुद्ययौ ॥ १४२ ॥
 तमुवाच ततस्तत्र भगवान्पावकः स्वयम् ।
 कार्त्तनस्त्वं मम सुतो न त्वं चण्डालदारकः ॥ १४३ ॥
 कपिलास्या ब्राह्मणस्य पुत्री कपिलशर्मणः ।
 मया समागता पूर्वं त्वामसूत रविप्रमम् ॥ १४४ ॥
 त्यक्तश्रया कन्ययैव कुन्त्या चकृतनिर्यया ।
 चण्डालेनासि संप्राप्य गोक्षीरेण विवर्धितः ॥ १४५ ॥
 गच्छ याचस्व तां कन्यां भूपालं ब्राह्मणो मय ।
 प्राक्कर्मजोऽयं संसर्गदोषः दुष्टो मयाच ते ॥ १४६ ॥
 क्षुत्वेति पावकवचो गत्वा सेनाजितं नृपम् ।
 कन्यामयाचत प्रौढश्चक्रोपासी ततो नृपः ॥ १४७ ॥
 ततस्तु जन्मवृत्तान्तं यथोक्तं स्वयमग्निना ।
 देवदूतो दिवः प्राह तच्चात्मन्यत भूपतिः ॥ १४८ ॥
 ततः कुरक्षीं संप्राप्य चिरं विरहतापिताम् ।
 पित्रार्पितामिति प्रायो देवा आन्यपि दुष्कुले ॥ १४९ ॥
 इति कुरक्षास्यायिका ॥ ४ ॥
 राजा मलयसिंहोऽमृतपुरे राजगृहामिधे ।
 तस्य मायावती नाम जन्याभूत्सितसिता ॥ १५० ॥

अवन्तिवर्धनस्तत्र राजपुत्रोऽयमुत्सुक ।

दृष्ट्वा चण्डालकन्या तामभवत्स्मरतापित ॥ १२६ ॥

ततस्तद्विरहायासपाण्डुर प्रतिवासरम् ।

कृष्णपक्षकृताल्म्ब शशीव क्षामता ययो ॥ १२७ ॥

पालकोऽथ सुत जात्वा सभार्य पृथिवीपति ।

गाढाभिलाप मातङ्ग्या चिन्ताशोकाकुलोऽभवत् ॥ १२८ ॥

राजान दु खसतस्त तनयस्नेहयन्निव ।

प्राहावन्तिवती देवी धिगेव कुलपासनम् ॥ १२९ ॥

राजा राजकुले जातो विद्याभिरभिसंस्कृत ।

अतीव कोऽप्ययोग्येषु विधत्ते सामिलापताम् ॥ १३० ॥

पाप कोऽप्येष जठरे मया भारश्चिर घृत ।

अस्य शीलेन न सर्वं सशये पतित कुलम् ॥ १३१ ॥

शील राज्ञा दिशा चन्द्रस्तारुण्य हरिणीदृशाम् ।

लताना मधुमासश्च विभूषणमकृत्रिमम् ॥ १३२ ॥

विदेशेषु धन विद्या व्यसनेषु धन मति ।

परलोके धन धर्म शील सर्वत्र वै धनम् ॥ १३३ ॥

इति जायावच श्रुत्वा प्राह पालः प्रभूति ।

देवि चण्डालकन्येपा दिव्यनातिरिवेक्ष्यते ॥ १३४ ॥

रूपमुत्तममङ्गलाना कान्ति सप्रतिभ वच ।

गणनीया गुणश्रीश्च सूचयन्ति न नीचनाम् ॥ १३५ ॥

घाता शापावतीर्णासौ अपि स्वर्गवधूर्ध्वम् ।

रज्यते जातिदोषेण मर्त्यसत्त्वशृङ्खलात् ॥ १३६ ॥

नगरे सुप्रतिष्ठाम्ये राज्ञ सेनाजित पुर ।

पुरी कुरङ्गिषा नाम विहृतुं वनमाययौ ॥ १३७ ॥

अत्रान्तरे मदगजसुदितालानशृङ्खल ।

पायजप्राह तामेत्य नीलाद्रिरिव जङ्गम ॥ १३८ ॥

तां राजपुत्रीं नागेन दृष्ट्वा विप्रहृदे जने ।
 रक्ष करिणं हत्वा कोऽपि चण्डालदारकः ॥ १३९ ॥
 ततः परस्परप्रेमविलोकनमहोत्सवे ।
 तयोर्वर्मौ मनोअन्यविदग्धो मकरध्वजः ॥ १४० ॥
 सेवाभिरौषधैर्मन्त्रैः प्रीतिः कालेन जायते ।
 दृष्ट्वा तस्मिन् वशद अतीव दयितो जनः ॥ १४१ ॥
 स चण्डालकुमारोऽयं गत्वा तद्विरहाकुलः ।
 श्मशाने बहिमादाय जीवितं त्यक्तुमुद्यमौ ॥ १४२ ॥
 तस्मिन्वाच ततस्तत्र भगवान्पावकः स्वयम् ।
 कानीनस्त्वं मम सुतो न त्वं चण्डालदारकः ॥ १४३ ॥
 कपिलाख्या ब्राह्मणस्य पुत्री कपिलक्षर्मणः ।
 मया समागता पूर्वं त्वामसूत रविप्रमम् ॥ १४४ ॥
 त्यक्तस्तया कन्ययैव कुन्त्या वैकर्तनिर्यथा ।
 चण्डालेनासि संप्राप्य गोकर्षिरेण विवर्धितः ॥ १४५ ॥
 गच्छ याचस्व तां कन्यां भूपालं ब्राह्मणो भव ।
 प्राक्षर्मजोऽयं संसर्गदोषः पुष्टो भवाद्य ते ॥ १४६ ॥
 श्रुत्वेति पावकवचो गत्वा सेनाजितं नृपम् ।
 कन्यामयाचत प्रौढश्रुकोपासी ततो नृपः ॥ १४७ ॥
 ततस्तु जन्मवृत्तान्तं ययोर्कं स्वयमग्निना ।
 देवदूतो दिवः प्राह तच्चा मन्यत भूपतिः ॥ १४८ ॥
 ततः कुरङ्गां संप्राप्य चिरं विरहतापिताम् ।
 पित्रार्पितमिति प्राप्यो देवा यान्त्वपि दुष्कुले ॥ १४९ ॥

इति कुरङ्गाख्यायिका ॥ ४ ॥

राजा मलयसिंहोऽमृतपुरे राजगृहाभिधे ।

तस्य मायावती नाम तनयामृत्तितस्मिता ॥ १५० ॥

५

वसन्ते संततामोदनन्दितेन्दीवराकुले ।

सा कदाचिद्वरोद्याने विजहार मनोहरे ॥ १५१ ॥

ततो यदृच्छया यातः सुप्रहाराभिधो युवा ।

ददर्श धीवरः कान्तां तां तारुण्यतरङ्गिणीम् ॥ १५२ ॥

दृष्ट्वैव तद्गुणक्षिसकंदर्पवडिशेन सः ।

तूर्णं हतमनोमीनः शून्यो हृदं इवामभवत् ॥ १५३ ॥

स तु ध्यानपरो गत्वा मुमूर्च्छास्वस्वविग्रहः ।

पृष्टो जनन्या स्वं वृत्तं शनैर्लज्जानतोऽवदत् ॥ १५४ ॥

धीवरी धीवरी साय ज्ञात्वा रक्षिभिकाभिधा ।

मत्स्योपायनहस्ता तां सेवितुं कन्यकां ययौ ॥ १५५ ॥

चिरेण सेवया तस्यास्तुतोय नृपपुत्रिका ।

प्रीतिजालैर्मनोमत्स्यः कस्य नाम न कृप्यते ॥ १५६ ॥

करवाणि प्रियं सत्यं तवेत्युक्तवतीं च ताम् ।

धीवरी प्राह पुत्रो मे त्वां विना याति पञ्चताम् ॥ १५७ ॥

राजपुत्री निशम्येति ध्यात्वोवाच तथेति ताम् ।

प्रतिश्रुतं हि महतां पश्चात्तापैर्न लुप्यते ॥ १५८ ॥

ततः स्नातसयाहृतो भूषितः सुरभीकृतः ।

न्यस्तः स धीवरयुवा शय्यायां गुप्तमन्दिरे ॥ १५९ ॥

सहिता गुह्यराजेन राजपुत्री ततोऽविशत् ।

निशि शय्यागृहं खिन्ना चन्द्रकान्तिरिवाम्बरम् ॥ १६० ॥

तमालिलिङ्ग सा तत्र हर्षपीयूषवर्षिणी ।

अदृष्टपूर्वसंस्पर्शकातरं भृशविह्वलम् ॥ १६१ ॥

चिरान्मनोरथप्राप्त्या प्रशान्तविरहानलः ।

स भोजे क्षीणवृत्तेत्वात्क्षणे मोक्षोपमां दशाम् ॥ १६२ ॥

अमासमुरतासन्नः स निद्रां शिप्रमाययौ ।

अधन्यः को हि दैवेन फलकाले न वञ्चितः ॥ १६३ ॥

निद्रानिश्चेष्टमालोक्य तं राजतनया ययौ ।

लघुसंचारनिभृता करस्यगितनूपुरा ॥ १६४ ॥

जहमम्रष्टकौमारा प्राप्तकामश्च धीवरः ।

उभयोः कुशलं दिष्ट्वा ध्यात्वेति प्रीतिमाप सा ॥ १६५ ॥

नष्टधीर्धीवरः कान्तां प्रबुद्धो वीक्ष्य निर्गताम् ।

उक्त्वा हा वञ्चितोऽस्मीति वमय सहसा ध्यसुः ॥ १६६ ॥

विज्ञाय तं तद्याभूतं राजपुत्री सुदुःखिता ।

तस्यानुशरणं बहिःप्रवेशे निश्चयं व्यधात् ॥ १६७ ॥

ततो विदितवृत्तान्तः शोकलज्जाकुलो नृपः ।

तनयावत्सलश्चक्रे संकराराधनव्रतम् ॥ १६८ ॥

तस्य सत्यव्रतस्याग्रे प्रोचचार वचो दिवः ।

नरेन्द्र सुप्रहारोऽयं पूर्वं विप्रो न धीवरः ॥ १६९ ॥

पुरा नागस्यलग्नमे द्विजन्मामूर्महीधरः ।

तस्यायं तनयो गङ्गातीरे तस्याज जीवितम् ॥ १७० ॥

प्राणप्रयाणसमये दृष्ट्वाग्रे मत्स्यजीविनम् ।

स स्पृहावासनातुल्यां जातिं प्राप्तोऽयं गर्हितम् ॥ १७१ ॥

तस्यानुपतिता बहिर् वद्वार्येयं मुता तव ।

आयुषोऽर्धेन पुण्यास्ते जीवत्येष द्विजावृत्तिः ॥ १७२ ॥

इत्याकर्ण्य नमोवाणीं स तया लम्बितायुषे ।

तस्मै ददौ तां तनयामिति प्राग्जन्मसूचिकम् ॥ १७३ ॥

इति धीवराख्यायिका ॥ ५ ॥

पुरायोच्याधिनायेन मूमुक्षा वीरबाहुना ।

वीरचर्याप्रसक्तेन प्राप्तश्चौरो महार्थहृत् ॥ १७४ ॥

एकचारी स निहतः शूलेन गरुडहृत् ।

दृष्टः पूर्वं वणिक्पुत्र्या रामदत्तास्यया पुरा ॥ १७५ ॥

सा निबद्धा दृढस्नेहा दृढबन्धानुरागिणी ।
 दुर्गोपहारमात्मानं तं विना कर्तुमुद्ययौ ॥ १७६ ॥
 प्रसन्नवत्सला देवी प्राह तामथ पार्वती ।
 मा कृथा साहसं पुत्रि स चौरौ गुलिकाधरः ॥ १७७ ॥
 विद्याधरी पूर्वभार्या तस्य त्वं हृदयप्रिया ।
 शापः क्षीणोऽद्य युंवयोर्मज विद्यां कुलोचिताम् ॥ १७८ ॥
 इति देवीवरात्प्राप्तविद्या गत्वा च सा निशि ।
 अजीवयत्स्थितं शूले चौरं प्रक्षीणकिल्बिषम् ॥ १७९ ॥
 ततो विद्याधरपदं प्राप्य तौ वमतुर्दिवि ।
 इति नीचदशां यान्ति खेचरा अपि कारणात् ॥ १८० ॥
 इति चौराख्यायिका ॥ ६ ॥

पालकः कथयित्वेति सुतस्नेहादयाचत ।
 दूतैरुत्पलदत्ताख्यं चण्डालं तां सुमध्यमाम् ॥ १८१ ॥
 याचितः प्राह मातङ्गो भुञ्जते यदि मे गृहे ।
 अष्टादशसहस्राणि द्विजानां राजशासनात् ॥ १८२ ॥
 तदियं दीयते कन्या राज्ञे सुरतमञ्जरी ।
 इति तत्प्रेरितो राजा भोक्तुं विप्रानचोदयत् ॥ १८३ ॥
 भीता नृपादधर्माच्च द्विजास्ते शरणं ययुः ।
 उज्जयिन्यां महाकालं चण्डालान्नविकूणिताः ॥ १८४ ॥
 ततः कृशांस्तानवदद्भयाघ्राणं त्रिलोचनः ।
 द्विजेन्द्रो न स चण्डालः शापाद्विद्याधरो हि सः ॥ १८५ ॥
 शुष्माभिर्दृष्टमात्रोऽसौ स्वां तनुं प्रतिपत्स्यते ।
 न दृप्य इति रुद्रस्य शासनाच्चे ययुर्द्विजाः ॥ १८६ ॥
 ततर्मन्त्रदर्शनादेव स विद्याधरतां गतः ।
 उवाच पालकं हृष्टः स तामाश्रय सुन्दरीम् ॥ १८७ ॥

अहं मतङ्गदेवाख्यो राजा विद्याधरेश्वरः ।
 नियुक्तो गौरिमुण्डेन नरवाहवधे पुरा ॥ १८८ ॥
 ततोऽहं तद्वधोद्युक्तः प्रच्छन्नः शूलपाणिना ।
 शशश्चण्डालतां यातो द्विजसंघागमावधि ॥ १८९ ॥
 सोऽहं विमुक्तशपोऽद्य पुत्री सुरतमञ्जरी ।
 दत्तेयं तव पुत्राय मया कर्पूरहासिनी ॥ १९० ॥
 इति तेनार्पितां प्राप्य तां दृष्ट्वावन्तिवर्धनः ।
 विललस सरावासमानसो रतिललसः ॥ १९१ ॥
 विद्याधरोऽपि तां दत्वा सुतां सुरतमञ्जरीम् ।
 नमो विगाढ प्रययौ लोलहारांगुमण्डलः ॥ १९२ ॥
 याति काले सरसेरा रत्नपर्यङ्कशायिनी ।
 केनापि मायिनाम्येत्य सा हृता नेत्रकौमुदी ॥ १९३ ॥
 ततस्तद्विरहायाससतप्तेऽवन्तिवर्धने ।
 पालकान्तःपुरे तारं चचारारोदनध्वनिः ॥ १९४ ॥
 अथ देव त्वदादेशादयं धूमशिखः क्षणात् ।
 अवन्तिवर्धनं मां च गृहीत्वास्तत्त्वदन्तिकम् ॥ १९५ ॥
 इति सुरतमञ्जरीकथा ॥ ७ ॥
 वचो भरतरोहस्य श्रुत्वेति नरवाहनः ।
 मोचितां राजपुत्राय ददौ सुरतमञ्जरीम् ॥ १९६ ॥
 तामादाय गते तस्मिन्विद्यया पालकात्मजे ।
 दूर्त मुमोच दुर्वृतं कृपया नरवाहनः ॥ १९७ ॥
 ततः कदाचिदास्थानसमासीनं तमभ्यधात् ।
 प्रियामुहन्मन्त्रितुं कश्यपः श्रेयसां निधिः ॥ १९८ ॥
 चक्रवर्तिपदं प्राप्य राजन्विद्याधरश्रियम् ।
 नयोपायगुणोद्योगैः कुर्वीथा नित्ययौवनम् ॥ १९९ ॥
 मदेन नष्टा बहवः शूरा ये चक्रवर्तिनः ।
 वह्निज्वाला जलेनेव श्रीर्मदेनोपशाम्यति ॥ २०० ॥
 ५३ ६० मं०

कौतुकेनेव कामिन्यो गीतेनेव मृगाङ्गनाः ।
 दर्पाङ्कुरेण नश्यन्ति पेशला नृपतिश्रियः ॥ २०१ ॥
 मन्त्रगुप्तिरविश्वासो विक्रान्तिमित्रसंग्रहः ।
 विनयश्चेति मूपानां लक्ष्मीरक्षासमुच्चयः ॥ २०२ ॥
 दानशीलाः क्षमावन्तः समानाः सुखदुःखयोः ।
 धैर्यद्वितीया राजानो वसुधानन्दनिर्झराः ॥ २०३ ॥
 आसीच्चन्द्रावलोकाख्यः शिर्वानामुर्वरापतिः ।
 तस्य सारावलोकोऽमूचनयो यशसां निधिः ॥ २०४ ॥
 यद्यत्पार्थयते यो यस्तत्तस्यै प्रददाम्यहम् ।
 इत्यसौ राजतनयो व्यधात्पटहघोषणम् ॥ २०५ ॥
 कुलक्रमागतस्तस्य वमूव जयकुञ्जरः ।
 यस्य दन्तार्गलयुगं रक्षा भुवनमण्डले ॥ २०६ ॥
 तच्छत्रुपेरिताः प्राप्य ब्राह्मणास्तं ययाचिरे ।
 गजं कुवल्यापीडं मानपीडाकरं द्विषाम् ॥ २०७ ॥
 तमकृत्रिममायूरच्छत्रं भ्रमरकुण्डलैः ।
 याचितः प्रददौ तेभ्यो राजपुत्रो जयद्विषम् ॥ २०८ ॥
 दत्ते तस्मिन्महानागे रक्षागेहे जयश्रियः ।
 पौराणां जातदुःखानां सोऽभवच्छोच्यतां नृपः ॥ २०९ ॥
 (ततो विवासितः सर्वैरमात्यैर्जनकेन च ।
 ययौ तपोवनं दाता स समर्थः सपुत्रकः ॥ २१० ॥
 अरण्ये याचितोऽभ्येत्य ब्राह्मणैः पुत्रकावपि ।
 रालमक्ष्मणनामानौ मार्द्रौ च दयितां ददौ ॥ २११ ॥
 ततस्तुष्टे मुरपतौ विस्मिते द्युसदां गणे ।
 श्वेतं कुञ्जरमादाय तमेत्य श्रीरयाचत ॥ २१२ ॥
 प्रति विद्यापरेन्द्राणां भज त्वं चक्रवर्तिताम् ।
 इति तच्छासनात्प्राप सानुगः ॥ महत्पदम् ॥ २१३ ॥

इत्येवं सत्त्वयुक्तानां नम्राणां सत्यवादिनाम् ।

क्षमाप्रसन्नमनसां स्वयमाया)न्ति संपदः ॥ २१४ ॥

इति तारावलोकाख्यायिका ॥ ८ ॥

इति मुनिवरवाक्यादाप्तस्तोषपोषो

गगनचरसहस्रैर्वेन्द्यमानः प्रसन्नः ।

शिखिगैरगरलालीश्यामलाम्मोदमाला-

कलितललितलोकाकामिनी(भिर्ललास) ॥ २१५ ॥

इति क्षेमेन्द्रपिरचितयां बृहत्कथामञ्जर्यां मुरतमञ्जरी नामाष्टादशो लम्पकः ।

उपसंहारः ।

चक्रवर्तिपदं प्राप्य विद्याधरपराभुजाम् ।

अधुना निजवृत्तान्तं ब्रूते स नरवाहनः ॥ १ ॥

परत्येनात्मचरितं ख्यापयंश्चन्द्रमौलिना ।

निबद्धकषितावक्राद्वत्सराजात्मजः स्वयम् ॥ २ ॥

कदयपत्याग्रमे श्रीमानसिताचलकन्दरे ।

मातुलस्य मुनीनां च भार्याणां चात्रवीत्पुरः ॥ ३ ॥

पुत्रोऽहं वत्सराजस्य हर्षेणाहं महत्पुरी ।

वर्धमानकयां श्रुत्वा शक्तिवेगेन वर्णिताम् ॥ ४ ॥

तां चतुर्दारिकासंज्ञां ततो वज्रप्रभोदितम् ।

सूर्यप्रमत्स्य विजयं श्रुत्वा विद्याधरप्रभोः ॥ ५ ॥

भाविनीं च निशम्याहमात्मनश्चक्रवर्तिताम् ।

विद्याधरीं रोचरेभ्यः सोत्साहचरितोऽभवम् ॥ ६ ॥

ततः कलिप्रसेनायाः मुतां मदनमञ्जुकाम् ।

अवापं मन्मथः सोऽहं रतिं जन्मान्तरं गताम् ॥ ७ ॥

लब्ध्वा जिनेन्द्रसेनाख्यां राजपुत्रीमहं ततः ।
 केनापि भूतेनाश्रौषं हृतां मदनमञ्चुकाम् ॥ ८ ॥
 अथ तद्विरहातोऽहं नीतो विद्याधरश्रिया ।
 पिशङ्गजटनामाथ भुनिराश्वासयन्मुहुः ॥ ९ ॥
 शशाङ्कवत्यामासक्तमनसो विपुलं कथाम् ।
 ऊचे मृगाङ्गदत्तस्य वियोगानङ्गशालिनी ॥ १० ॥
 ततः कण्वमुनिः प्राह मामन्यस्मिस्तपोवने ।
 राज्ञो विपमशीलस्य दिव्यं चरितमद्भुतम् ॥ ११ ॥
 ततो द्विजसुताभ्यां च कथितां वदकौतुकाम् ।
 अवाप्तिमिन्दिरावत्याः श्रुत्वाहं स्वपुरीं गतः ॥ १२ ॥
 तत्र प्रियावियोगार्तं गोमुखः प्राह मां सुहृत् ।
 मुक्ताकेतुः खेचरेन्द्रः प्राप पद्मावतीं यथा ॥ १३ ॥
 अत्रान्तरे वेगवती नाम विद्याधरात्मजा ।
 निनाय मत्प्रिया यत्र स्थिता मदनमञ्चुका ॥ १४ ॥
 हत्वा मानसवेगं तमाहस्तां प्रिया मम ।
 प्राप्य विद्याधरीं तां च प्रयातोऽहं निजां पुरीम् ॥ १५ ॥
 रत्नप्रभा ततः प्राप्ता मया विद्याधरप्रभोः ।
 सुता हेमप्रभाख्यस्य तुहिनाचलवासिनः ॥ १६ ॥
 ततोऽलंकारशीलस्य विद्याधरपतेः सुता ।
 लब्ध्वालंकारवत्याख्या मयालंकरणं रतेः ॥ १७ ॥
 ततश्च शक्तिशशं ततः स्फटिकपुत्रिकाम् ।
 अवापं त्यक्तचापस्य मन्मथस्यायुधं नवम् ॥ १८ ॥
 ततो मन्दरदेवाख्यं जित्वा विद्याधरापिपम् ।
 गौरीमुण्डं च विस्तीर्णाममजं चक्रवर्तिताम् ॥ १९ ॥
 वत्सराजं ततः श्रुत्वा यातं शक्रोपमं दिवम् ।
 संगतो मातुलेनास्मिन्कदयपस्य तपोवने ॥ २० ॥

अतीतमात्मचरितं प्रोवाचेत्यसिताचले ।

मुहुरां च मुनीनां च पुरतो नरवाहनः ॥ २१ ॥

इत्यनुक्रमणिका ॥ १ ॥

कथापीठे कथावक्रलम्बो लावानकस्ततः ।

नरवाहनजन्माख्यः स्याच्चतुर्द्वारिका ततः ॥ २२ ॥

सूर्यप्रमस्ततो ज्ञेयस्ततो मदनमञ्जुका ।

येलालम्बस्ततः प्रोक्तः स्याच्छशाङ्कवती ततः ॥ २३ ॥

लम्बो विषमशीलालम्बस्तथा नु मदिरावती ।

पद्मावती नाम लम्बस्ततः स्यात्पञ्चलम्बकाः ॥ २४ ॥

रत्नप्रभा च तदनु ततोऽलंकारवत्यपि ।

ततः शक्तिवशा नाम लम्बको बहुकौतुकः ॥ २५ ॥

महाराज्याभिषेकश्च पश्चात्सुरतमञ्जरी ।

इत्यष्टादशभिर्युक्तां लम्बैः शर्वोदितां कथाम् ।

फाणमूर्तिर्गुणाख्याय गणाच्छ्रुत्वा न्यवेदयत् ॥ २६ ॥

इति लम्बकसंग्रहः ॥ २ ॥

इत्येतां विपुलाश्चर्यां स राजा सातवाहनः ।

गुणाद्याच्छिष्यसहितः समासाद्य बृहत्कथाम् ॥ २७ ॥

परामृतरसक्षीयो घूर्णमान इवानिशम् ।

सत्तल्लक्षणि नामानीत्यभूत्तानुशयो मुहुः ॥ २८ ॥

सेयं हरमुखोद्गीर्णा कथानुग्रहकारिणी ।

पिशाचपाचि पतिता संजाता विप्रदायिनी ॥ २९ ॥

अतः सुरगनिषेव्यासौ कृता संमृत्नया गिरा ।

समां मुचमिवानीना गह्वा श्रम्यावलम्बिनी ॥ ३० ॥

कादगीरको गुणाचारप्रकण्डधाभिषीऽमवत् ।

नानार्पिजनसंरूपभूषणे कल्पपादपः ॥ ३१ ॥

यस्य मेरोरिवोदारकल्याणापूर्णसंपदः ।
 अगण्यममूढेहे यस्य भोज्यं द्विजन्मनाम् ॥ ३२ ॥
 सूर्यग्रहे त्रिभिर्लक्षैर्दत्त्वा कृष्णाजिनत्रयम् ।
 अल्पप्रदोऽसीत्यभवत्स लज्जानतकंधरः ॥ ३३ ॥
 स्वयंभूनिलये श्रीमान्यः प्रतिष्ठाप्य देवताः ।
 दत्त्वा कोटिचतुर्भागं देवद्विजमठादिषु ॥ ३४ ॥
 पूजयित्वा स्वयं शंभुं प्रसरद्वाप्पनिर्भरः ।
 गाढं दोभ्यां समालिङ्ग्य यस्तत्रैव व्यपद्यत ॥ ३५ ॥
 क्षेमेन्द्रनामा तनयस्तस्य विद्वत्सु विश्रुतः ।
 प्रयातः कविगोष्ठीषु नामग्रहणयोग्यताम् ॥ ३६ ॥
 श्रुत्वाभिनवगुप्ताख्यात्साहित्यं बोधवारिधेः ।
 आचार्यशेखरमणिर्विद्याविवृतिकारिणः ॥ ३७ ॥
 श्रीमद्भागवताचार्यसोमपादाब्जरेणुभिः ।
 धन्यतां यः परं यातो नारायणपरायणः ॥ ३८ ॥
 कदाचिदेव विप्रेण स द्वादश्यामुपोषितः ।
 मार्थितो रामयशसा सरसः स्वच्छचेतसा ॥ ३९ ॥
 कथामेतामनुध्यायन्दिनेषु विपुलेक्षणः ।
 निदधे विबुधानन्दमुधास्यन्दतरङ्गिणीम् ॥ ४० ॥
 स श्रीदेवधराख्यस्य द्विजराज्यपदस्थिते ।
 सर्वज्ञस्याज्ञया चक्रे कथामेतां विनोदिनीम् ॥ ४१ ॥

इति व्यासदासाधराख्यक्षेमेन्द्रविरचिता बृहत्कथा संपूर्णा ॥

उत्पलद्रोप—१२०, ७५; १२२, ९०;
१३२, २१३.

उत्पलारूप—५९२, ६२०.

उदयतुङ्ग—२५१, ४४६.

उदयन—३७, ५३; ४५, १४२; ४६,
१४; ४८, ३२; १८२, ३००.

उदयवती—२५३, ४६२.

उदारधारिण—५१५, ६५.

उन्मादिनी—७०, २४, २६; ७१, ३१;

३६३, ९३९, ९४६; ३६४, ९५२;

३६५, ९६६, ९६८; ३६६, ९७६.

उपकोशा—१२, ६९, ७०; १३, ७६;

१४, ८८, ९६; १५, १०४; १६,

११०; २४, २०९.

उपवर्ष—९, २४, २५, २६; १२, ६९;

१५, १०२; २४, २१०.

उपेन्द्रशक्ति—२७६, ७५०.

उषधी—७८, ११५, ११७, ११८,
१२०, १२१.

ऋतुपर्णे—५३९, ३५३, ३६०, ३६५;
५४०, ३६७.

एगच्छता—२२८, १५७.

कमुकस्थान—१३३, १३३.

कटाक्षदीप—६०, १८३.

कण्व—४११, ३, ४; ६१८, ११.

कदलीगर्भा—१९१, ४०७.

कनकपुरी—११६, २०, २२; ११७, २८;

१२२, ९३; १३१, २०६; १३७,

२५०, २५६; १३६, २५७.

कनकमञ्जरी—२४२, ३३४, ३३५;

२४३, ३४३, ३४५; २४४, ३५१;

२४७, ३६३; २४६, ३७७; २४७,

३८७.

कनकच्छेद—२१६, २६.

कनकलेखा—११, १९; १३०, ११६;
१३१, २०४; १३५, २५५.

कनकवती—३४९, ७६८.

कन्दर्प—४०३, १२, २१; ४०४, २३,

२५; ४०५, ४३; ४०५, ४५, ४६,

४७; ४०६, ५०, ५१, ५३, ५४; ५६.

कन्दर्पसेन—२२२, ८५; २२३, ९९;

४०२, ८; ४०७, ७२; ४०९, ९६;

४१०, १०९.

कपालनिष्फोट—१२७, १५३.

कपालस्फोट—१२४, ११९; १२७,
१५६.

कपिलधर्मा—६११, १४४.

कपिला—६११, १४४.

कपिलानगरी—७९, १२६.

कमलनगर—५३३, २८३.

कमललोचना—४०४, ३९, ३२; ४०५,
३७.

कमलाकर—२२८, १६३; २३८, २८३,

२८६; २४०, ३०६; २४२, ३१३;

२४३, ३३६, ३४२; २४४, ३४९;

२४५, ३६३; २४६, ३७७; २४७,

३८८; २४८, ४०५; ३७७, १११७,

११२७; ३७८, ११३५.

कमलाक्ष—२५१, ४४७.

करट—५६१, २६४.

करटक—५६२, २६७; ५६८, ३४५;

५७०, ३६०.

करम्म—८, २०.

कर्पूतिल—२९५, ९५; २९८, ११५;

२९९, १४७; ३००, १५४.

कर्पूरचन्द्र—५०२, ४१७.

कर्पूरदीप—५०८, ४८९.

कर्पूरमञ्जरी—५०२, ४१४, ४१५, ४१६,

४१७, ४२१; ५०७, ४०३; ५०८,
४१०; ५०२, ५००, ५०४.

कलहवारी—११३, ११४.

कलावती—१४८, १२३; २२२, ८६;
४१८, १४; ४२०, १२२.

कलिदत्त—१५८, ८; १६०, ३६;
१६५, ८९; १६७, १११; १७१,
१६८; १७७, २०२; १८१, २८५;
१८७, ३५८, २६१; १९७, ४०३.

कलिसेन—१८१, २८५; १९७, ४०४.

कलिसेना—१६९, १३७; १७३, १८५;
१७४, ११४; १८०, २६९; १८१,
२८१; १८६, १४८; १८७, १५६;
१८८, २६६, २४४; १८९, २०५;
२००, ५०५, ५०४, ५०८, ५१३,
५१५, ५३६; २०१, ५२०; २०२,
५३७; २०३, ५४४; २०४, ५५६,
५६४; २०५, ५६५, ५७१,
५७४; २०६, ५८५; २०८, ६०५,
६०६, ६०७; ४२३, १६८; ४२७,
२०३; ४३१, २५४; ६०७, ९८;
६१७, ७.

कलावती—५५३, १५८.

करवप—६०६, ८४, ८६, ८७; ६१५,
१९८; ६१७, ३; ६१८, २०.

कायनपुर—३२३, ४३२; ५३१, २६०.

कायनपुरी—१२०, ७१, १२८, १७३,
१७५, १३१, २०३; ३४९, ७६६;
५५५, १८३.

कायनमाता—५११, १६.

कायनमाता—५६, १३६.

कायी—५०६, ४४४.

कायगुप्ति—७, ४, १, १२; २५, २, ३.

२२१; २६, १८; २९, ५२; ३२,
८४, ३३, २; ६१९, २६.

वालायन—६, ७०; ७, ३, ८, ११;
२०, १६१; २३, २०५; २०६,
५८२.

वालायनी—३२०, १२८.

वालिमती—१३८, १५; १४५, १८१;
२१९, ४१, ५२; २२०, ५४.

वायकुम्भा—२१८, ३५.

वासवकुम्भा—१५६, २३८.

वायव्य—१२०, ४३, ७४.

वालक—१४३, ८१; २७९, ७८४.

वालकूट—४६८, २३३.

वालजिह्वा—२५२, ४५२, ४५४.

वालनेमि—३९, ७०, ७३.

वालरात्रि—९९, ३७१, ३७२, ३७५,
३७६, ३८३, ३९४.

वालस्य—४६७, २१६.

वालिका—४६८, २३३.

वालालेख—५०३, ४२८, ४३१,
४३३; ५०४, ४३७.

वासी—१२३, १०२.

वादीर—५९१, ६१३.

वायव्य—१३८, १२१.

वायव्य—३८, ५७.

वायव्य—१७६, २१९, २२०, २२४,
२३६; १७८, २४९, २५३; १७९,
२६०, २६३, २६४, २६५.

वायव्यकपट—४२३, १२४.

वायव्यकपट—१६२, ५५.

वायव्यक—४६७, २७.

वायव्यक—३७०, १०३२.

वायव्यक—१४८, १३४; ५४८, ८८;
५४९, २०१.

गूढकर्ण—५७३, ४०२, ४०५; ५७४,
४०७, ४०९.

गूढसेन—१६९, १४३.

गोपाल—४८, २८; ५७, १४०, १४१;
५८, १५६; ६७, २६९; ७३, ५५;
७४, ७१, ७४; ७६, ९१; ७७,
१०३; ८२, १६५; ६०५, ६९, ७०;
६०६, ८७; ६०७, ९०; ६०८,
१०३.

गोपालक—५९, १६४; ६६, २४९,
२५१; ७५, ८९; ७७, १०७; ९१,
२८०; ९३, ३०३; १९०, ४७३.

गोपालराणिणी—२१८, ४०.

गोमुख—११३, १३३; २०४, ५६२;
२०५, ५७४; २०६, ५७७, ५८५,
५८६, ५८८; २०७, ५९६; २१४,
७१; ४४०, ८३; ४४१, २; ४४३,
३३; ४५२, २१; ४६४, १७६;
४६५, १८७; ४६६, १९९; ४६७,
२२१; ४७७, १०२; ४८१, १४९;
४८८, २४४, २४५; ४९६, ३३३,
३४५; ५००, ३८९; ५०२, ४१८;
५०३, ४२४, ४२६; ५०५, ४५९;
५०७, ४७२; ५०८, ४८९, ४९३,
४९४; ५०२, ४९८, ५०४; ५१०,
३; ५१४, ५३; ५१५, ७२; ५१७,
१००; ५२३, १६६, १७०; ५२५,
१८५, १८७, १९४; ५२७, २०६;
५२८, २२३; ५३०, २४६, २४९;
५३१, २२८, २५९; ५३३, २८५;
५४७, ८४; ५५०, ११७, ५५२,
११९; ५५३, १५७; ५५७, १८२;
५६१, २५५; ५८९, ५०३; ५९२,

६१९; ५९४, ६४२; ६००, १५;
६०१, २३; ६०३, ४४; ६१८, १३.

गोविन्दकूटपुर—१२७, १६३.

गोविन्ददाता—३०, ५६, ५८.

गोविन्दस्वामी—१२२, १००; १२३,
११२.

गोष्ठदेश—५८३, ५५०.

गौरीमुण्ड—४६३, १६१, १६८, १७०;
४६४, १७५; ४६७, २२२, २२३;
४६८, २२६, २२८; ६१५, १८८;
६१८, १९.

चक्रधर—८५, २०२.

चण्डकेतु—२३६, २५०, २५२, २५६;
२३७, २६२, २६७.

चण्डपुर—४०४, २९.

चण्डप्रभ—३८९, १२७४.

चण्डमहासेन—४६, ४, ४७, २४, २५;
४८, ३१; ६६, २९९; ६०८, १०९.

चण्डरव—५६५, ३१०; ५६६, ३११.

चण्डशक्ति—२२१, ७७.

चण्डविह—३८३, ११९२, ११९४,
११९८; ४५६, ८१; ४६२, १५८;
४६३, १७२; ४६४, १७५, १८५;
४६७, २२३.

चण्डसेन—३२३, ४४६; ३२४, ४४९;
३९९, १४०५.

चण्डाल—६११, १४५; ६१४, १८४.

चण्डालकन्या—६१०, १२६, १३४.

चण्डालकुमार—६११, १४२.

चण्डालदारक—६११, १३९, १४३.

चण्डालदारिका—६०९, ११६.

चतुरक—५६९, ३४८, ३५०, ३५४,
३५६, ३५७.

चतुर्दशिका—६१७, ५.

चन्द्रगुप्त—२४, २१७.
 चन्द्रप्रभ—२०१, ४०३; ३३७, १३;
 ३३८, १८; ३४२, ६३, ६६, ६८;
 ३४३, ७५; ३४४, १०१; ३६८,
 १७६; ३७१, १०४८, १०५०.
 चन्द्रप्रभा—१२९, १८५; ३३५, २५६;
 ३०२, १९०.
 चन्द्रलेखा—१२९, १८५.
 चन्द्रवती—३८२, ११८५; ५३३, २८३;
 ५३४, २८९.
 चन्द्रधी—५५०, १२०.
 चन्द्रसार—२३३, २६; २३४, ६१.
 चन्द्रसिंह—३२१, ४२०; ३२२, ४३०.
 चन्द्रस्वामी—३६६, ९७७; ४८४, १८९;
 ५३३, २८२; ५३४, २९३; ५३५,
 ३११.
 चन्द्राक्षनामा—२२५, ११९.
 चन्द्रादित्य—२८४, ८४३.
 चन्द्रावती—५०५, ४५१.
 चन्द्रायलपुर—४४७, ७८.
 चन्द्रायलेश—३७३, १०६७; ३७४,
 १०८५.
 चन्द्रायलोपाख्य—६३६, २०४.
 चन्द्रिकावती—१३९, ३६.
 चमर—५२८, २२४; ५३०, २४१,
 २४३.
 चामर्य—२४, २१५, २१६, २१७.
 चामरि—२५७, ५१६.
 चिमर्य—२२३, ७७, २२५, ११८;
 २२९, १७१.
 चिमर्यनगर—५४३, ३६.
 चिमर्यपुर—३७३, १०६७.
 चिमर्यपाल—३६७, ११३.
 चिमरीय—५७२, ३९३; ५७३, ३९५.
 ५४५ मं०

चित्राक्षद—१०९, ७८; २०२, ५४०;
 ५४५, ४२५.
 चित्रापरम्य—४८२, १६२.
 चित्रावती—५७७, ४४२; ५८०, ४७७,
 ४७८; ५८१, ४९६, ४९७; ५८२,
 ५१०, ५११; ५८३, ५२३.
 चिरदामा—५३०, २५०.
 चिरायु—५००, ३९३; ५०१, १९७,
 ४०५.
 जटायु—५३२, ३६.
 जनमेजय—१३९, ३७; १४२, ६४.
 जयदत्त—१०४, १६.
 जयसेन—४७, २४.
 जानकी—५३२, ३६.
 जालपाद—१३४, २३४, २३८, २४४;
 ३३५, २४६, २४७.
 जिनेन्द्रसेना—२०९, ७; २१०, १४;
 २१४, ६३; २१८, ८.
 जिह्वा—१८५, १२७, ३२८, ३३०.
 जीमूतकेतु—१०७, ५१; ३४९, ७६७;
 ३६०, ९०५; ३६१, ११२.
 जीमूतनाहन—१०७, ५२, ५५, ६०,
 ६१; १०९, ८४; ११०, ८७, ९७;
 १११, १०३, १०८; ३४२, ७६९;
 ३४२, ८०८; ३४३, ८१७, ८१८;
 ३४८, ८५०, ८५४, ८५५, ८५६,
 ८५७, ८६१; ३४७, ८६९; ३४८,
 ८७६; ३४९, ८८८, ८९८; ३६१,
 ९१२, ९२०, ९२३; ३६२, ९३०,
 ९३१, ९३३.
 जीमूतदा—४७७, १३०; ५३८, १०८;
 ५३९, ११९, १२०; ५४१, १३९.
 जीवहर—५००, ३९५.
 ज्योतिषप्रभ—५६६, १९६; ५७९, २३७.

ज्वालामुख—३७४, १०८२, १०८६.

टिटिम—५१३, ४५.

टेण्टाकराल—४१८, ८४, ८५; ४१९,
१००, १०२, १०९; ४२१, १२३.

डाकिनीक—४१६, ६७; ४२१, १२९.

तक्षशिला—२२५, ११८.

तक्षशिलापुरी—१५८, ७; १७५, २१५.

तन्तुकच्छ—१४८, १३४.

तपन्तक—४६२, ४; ४९७, ३५७;

५००, ३८८; ५४३, ३०, ३३;

५५०, ११८; ५५१, १२८, ५८९,

५८३; ५९२, ६१९.

तपोदत्त—४९६, ३३५, ३४३.

तपोवन—६१८, ११.

तरुणचन्द्र—४९८, ३६५.

तामलिप्ता—५९, १६७, १७३; ६०,
१८५; ६५, २४६; २२६, १३९;
४९७, २०९.

तारादत्ता—१६०, ३४, ३७; १६५,
८९.

तारावली—१४०, ३९; २२५, १२७;
३३२, ५५५; ३३३, ५००.

तारावलोक—५३४, २९०; ५३५, ३११;
६१६, २०४.

तुहिनाचल—६१८, १६.

तेजोवती—७९, १२६; ८४, १८७,
१९८; १८३, ३०३; १८६, ३३७,
३३८.

त्यागसेन—५०३, ४२७; ५०४, ४३७;
५०५, ४५५.

त्रिशूटकटक—१५०, १६०.

त्रिपट्टनामा—१२७, १५२.

त्रिविक्रमसेन—२८९, १९.

दपिकर्ण—५७८, ४६१.

दन्तघाटक—२९५, ९६, १०१; २९६,
१०३; २९९, १४३.

दमधि—२३१, १९६.

दमन—५६१, २६४; ५७२, ३९१.

दमनक—५६२, २६६, २७३; ५६३,
२८२; ५६५, ३०३; ५६७, ३२६;
५६८, ३४५.

दमयन्ती—५३७, ३३४, ३३६; ५३८,
३४०, ३४१, ३४३, ३४६, ३४९;
५३९, ३५४, ३६४; ५४०, ३६९.

दक्षुर—२३९, २९३; २४०, ३०८;
२४१, ३१३.

दशरथ—५१२, ३३.

दामोदर—१३९, ३८; १५०, १६७.

दारवती—३९०, १२८८.

दातिका—२७९, ७८५.

दीधितिमान्—५५७, २०९.

दीपकर्ण—२६, १९; २८, ३४.

दीप्तविद्य—२६४, ६०१, ६०४; २७७,
७६६.

दीर्घतपा—१२०, ७३, ७६.

दीर्घदर्शी—३३४, ५८५; ३३५, ५८६;
३३६, ६०१, ६०५, ६१०; ३४०,
६५५, ६५८.

दुःशीलनामा—१९३, ४३०.

दुःशीला—५५१, १२९.

दुःखलब्धा—८८, २३९; ९१, २७३.

दुरासेह—१४८, १३४.

दुर्गपिशाच—२३६, २४९; २६२, ५८१.

दृढमुष्टि—२२१, ७६; ३८७, १२४७,
१२५३.

दृढवर्मा—१९१, ४०२; १९४, ४४०.

दृढमन—४४८, ९४, ९९.

देवजय—५५९, ३२७, २२८, २३१.

देवदाता—१०४, १६; १३३, २३३;
१३४, २४४; ३३३, २४६.

देवदत्त—२६५, ६०८, ६११.

देवदास—२२, २८४, २९०, २९३,
२९४; ९३, २९७, २९९; ३६३,
४०, ४३; ५५१, १३९, १३७.

देवदास—६१३, १४८.

देवदास—४८०, १४०.

देवदास—२५६, ५००.

देवदास—५३३, २८२.

देवदास—५८६, ५५०.

देवदास—४४८, १०१.

देवदास—७०, २३; ८८, २१९; ८२,
२५०; ९३, २७३; ३७६, २२१,
२२३; ३७९, २५८, २६०; ४२४,
१६६.

देवदास—८, २०.

देवदास—५९, १७३; ६०, १८५;
६३, १८८; ६२, २०५, २०७, २१०,
२१९; ६३, २२३, २२४; ६४,
२२८.

देवदास—३३३, २६७; ३३८, ३०८;
३६६, ९७६; ३८०, ११६५.

देवदास—५९, १६७, १७०, १८५.

देवदास—३०३, २०९; ३०५, २२६;
३२३, ४९१, ४९२; ३६७, १०१५.

देवदास—३७६, २२०.

देवदास—३६७, १०१७; ४६२, १५०;
५०६, २७; ५९३, ३६.

देवदास—१००, १९०.

देवदास—१०९, ७२, १३६,
८०, १४३.

देवदास—२२३, १०१.

देवदास—२६०, ३९; ३२७, ४९२;
३३०, ५३४, ५२७; ३३३, ५४३;
५४८.

देवदास—३३२, ५५४.

देवदास—५७०, ३६९, २७१,
७७३, ३७८.

देवदास—५३३, १६, १८.

देवदास—५३६, १३९.

देवदास—३३९, ३६६; ३२०, ४०२,
४०५.

देवदास—५३२, १०५.

देवदास—५७३, ५०.

देवदास—६३२, १५२, १५९; ६३३,
१६६.

देवदास—६३२, १५५, १५७.

देवदास—५९२, २९३.

देवदास—५९३, ३०३; ६३५, १९५.

देवदास—५३३, २९.

देवदास—५३३, १३.

देवदास—१०१, १०१; ३६, ११२, ११३;
३७, १२०, १२९; ३८, १३५; २०,
१६७; २२, १८५, १९३.

देवदास—२०९, ५.

देवदास—४७६, ६८; ४७७, ४९;
४९३, ३५५; ५०२, ४१५, ४१८;
५०७, ४७३; ५०९, ४९८; ६०८,
१०३, ६३५, १८८.

देवदास—३३६, २६०; ३५७, २४३,
३; २०७, ५९७; २०८, ६०४,
६०६; २०९, २; २३०, १८, २२;
२३३, २३; २३३, ५१; २३४,
६०, ६३; २३५, ७३, २, २३६, १४;
२३७, १७, २५; २२०, ५६, ५९;
२३९, ६९, ७०, ४३३, १३८;
४३३, २८७, २८८, ६; ४४०, ८२;

४४१, २; ४४३, ३३, ४५२, २४,
 ३०; ४५५, ६७, ७०; ४५६, ७३,
 ७९; ४५७, ८५, ९१; ४५८, १०२,
 १०४; ४५९, ११६; ४६०, १३४;
 ४६२, १६०, ४६३, १६२, १६४;
 ४६४, १७६, १७९, १८६; ४६५,
 १९७; ४६६, २०४; ४६७, २१९;
 ४६८, २२४, २२७, २३०,
 २३२; ४६९, २, ६; ४७०,
 ११; ४७५, ८२; ४७६, ८६,
 ८७, ९४, ९७; ४७७, १०४;
 ४८८, २४५; ४९५; ३३०; ४९७,
 ३५७; ४९८, ३५८; ५००, ३८७,
 ३९१; ५०१, ४०८; ५०३, ४२४,
 ५०५, ४५९; ५०६, ४७१;
 ५०८, ४८९; ५०९, ५००,
 ५०४; ५१०, १, ९; ५११, १३,
 २०; ५१२, ३०; ५१४, ५२; ५१५,
 ७२; ५१६, ७७, ७८, ८१; ५१७,
 ९६, १००; ५२५, १८५, १८६,
 १९५; ५२६, १९८, २००, २०२;
 ५२८, २१९; ५३०, २४६; ५३३,
 २८१; ५४०, ३७४; ५४३, २८;
 ५५४, १६८; ५५५, १७८, १८१;
 ५८९, ५८३; ५९२, ६१९; ५९४,
 २; ५९५, ९; ५९६, २७, २८;
 ५९७, ३१, ३२, ३६; ५९८, ४५;
 ५९९, ३; ६००, १३; ६०२, ३७;
 ६०३, ४४, ४८; ६०६, ८५; ६०७,
 ८८; ६१५, १९६, १९७; ६१७, १;
 ६१९, २१.

नागद्वय—११४, १३९; १३७,
 १०; २०३, ५४३; २०४, ५५५,
 ५५७, ५६०; २०५, ५७५, ५५१,

१४; ५०३, ४२४; ५०६, ४६३
 ५९७, ३०.

नरसिंह—४१९, १०७; ४८९, २४७,
 २४८; ४९०, २६६.

नल—५३७, ३३१, ३३८; ५३८, ३४०,
 ३४१, ३४२, ३४३, ३४४, ३४९;
 ५३९, ३५८, ३६०; ५४०, ३६६,
 ३६९, ३७०.

नलकृष्ण—१७४, १९८; १८०, २६९;
 २०४, ५६३.

नागलक्ष्मी—१६०, ३९.

नागशूर—२५५, ४९०.

नागस्थलप्राम—६१३, १७०.

नागस्वामी—४६५, १८९.

नागार्जुन—५००, ३९२, ३९३; ५०१,
 ३९८, ३९९, ४००, ४०१, ४०६.
 नागीश—३१५, ३४५, ३१६, ३५०,
 ३५२.

निधिदत्त—३३५, ५९०.

निधिपाल—२०३, ५४७.

निधयदत्त—४८१, १५४, १५८; ४८२,
 १६१, १६३; ४८३, १८२; ४८४,
 १८५; ४८५, १९८; ४८६, १९६;
 ४८७, २३३; ४८८, २४०, २४३.

निषध—५३७, ३३१.

निष्ठुर—४०, ८७.

नीलकण्ठ—२८०, ८०३.

नेपाल—३४५, ७१८.

पद्मकृष्ण—५१७, ९१.

पद्मपुर—५१८, १०६.

पद्माल—२५१, ४६६.

पद्मवृत्त—५५७, २०४.

पद्मार्ज—२७२, ७०५.

पद्मार्ज—४९९, १७३.

पद्मदर्शन—२७७, ७६४.

पद्मप्रभा—४६८, २३४; ४९८, ३६०.

पद्मरति—३२६, ४७६.

पद्मलेखा—५५७, २०८; ५५८, २२०,
२२४, २२६; ५५९, २३१.

पद्मसेन—५०५, ४५०.

पद्मा—५०५, ४५१.

पद्माख्यविषय—९४, ३१९.

पद्मावती—६९, १२; ७४, ७५; ७५,
७८, ८१; ७६, ९३, १००, १०२,
७७, १०७, १११; ८१, १५३,
१६०; ९१, २८०; ९३, ३०१; १८८,
३६७; २०४, ५५४; २९५, १८;
२९६, १०५; २९९, १४८; ४४४,
४७; ४४५, ५५; ४४७, ७९, ८०;
४४८, ९०, १३; ४४९, १०८,
११३; ६१८, १३.

पद्मिष्ठा—२७२, ७०५; २७७, ७६३.

परपुष्पा—१३९, १७.

परानमनेमरी—३०२, १८५.

परोदकारी—११६, १८; १३०, ११६;
१३१, २०५.

पवनदाता—४७९, १२९.

पवनसेन—४८०, १३६.

पवित्रपन—२६३, ५९४.

पाटला—११, ५३; १२; ६६, ६८;
४३९, ६८.

पाटलिपुत्र—१०, १७, १२, ६८; ३०२,
१८५;

पाटलिपुत्रक—७९, १३६; १०४, २१.
४७१, १४; ४८९, ३४६; ५४१,
१३.

पाटलिपुर—९२, २८४.

पाटलिपुरी—२४, २०८.

पाणिनि—१२, ७१.

पारावत—२३२, २१०.

पारावतास—२३३, २२४.

पावक—४८, २८; ५६, १३९; ५७,
१४०; ५८, १५२, १५३, १५४,
१५६; ६०८, १००, १०२, १०७;
६१०, १२८; ६१४, १८१, १८७;
६१५, १९७.

पालकमूर्ति—६१०, १३४.

पालित—६१, १९०, १९९; १९७,
४७७.

पावक—६११, १४३, १४७.

पाशुपताचार्य—२०३, ५४८.

पिङ्गल—५६१, २६३; ५६३, २७७;
५६५, ३०२.

पिङ्गलक—५७२, ३९०.

पिङ्गलगान्धार—४६२, १५८.

पिङ्गला—१०५, ३०; १०६, ३८.

पिङ्गलजट—२२०, ६५; २२१, ६७;
६१८, १.

पुण्ड्रपेनपुर—८८, २३७; ९२, ९८५.

पुण्यसेन—७२, ५३; ३१७, ३६६,
३६९.

पुत्र—१०, ४४.

पुत्रक—१०, ४०, ४३, ४६, ४७, ४८;
१२, ६०, ६१, ६७, ६८.

पुस्तका—७७, ११४.

पुस्तक—५५६, ११४.

पुष्टिदक—१०, ६३; ५८, १६२.

पुष्टर—५३८, ३४६; ५४०, ३७०.

पुष्टगङ्गा—२२५, १२३, १२६; २२६,
१३४; १३६; २२९, १६८; १६९.

पुष्टरावती—१६९, १४३.

पुष्टरावतीपुरी—४९८, १००.

पुष्टदन्त—६, ६९; ७, १, ७, ८, २९,
५४; ३२, ८३; ३३, २.

मद्र—५२७, २०३.

मद्राहु—२२३, १०१, १०३; २२०,
११६.

मद्रा—८७, २३२; ८८, २३६; ९०,
२६७, २६९, २७०, २७१.

मद्रोह—६१५, १९६.

मद्रोह—४८५, २०५; ४८६, २१४;
५०१, ६१३.

मद्रोह—५६८, २३७, २४०.

मद्रोह—२०६, ५०८, ५८१.

मद्रोह—४१, ९७, ९९.

मद्रोह—१३८, १७.

मीम—५३७, २३३.

मीमप्राकम—२२१, ७७; २२२, ७६;
२२३, ६२; २२९, १७६; २३०,
१७८; २३७, २७३; २३८, २७५;
४१०, १०१.

मीमप्रा—२७२, ७८९, ७९१; २८०,
७९५, ७९६, ७९९; २८१, ८०५,
८१०; २८२, ८२३; २८३, ८३७,
८३९; २८४, ८४२, ८४८, ८५७,
८६०; २८६, ८६६, ८६८, ८७०,
८७४.

मीमप्रा—२९, ५३.

मीमप्रा—२६६, ६२४; २६८, ६५७;
२७०, ६७५; २७१, ६९३.

मीमप्रा—२५६, ५००.

मीमप्रा—२१, १७६, १७७, १७८.

मीमप्रा—३१५, ३४५; ३१६, ३५०.

मीमप्रा—५२, ६३; ७३, १०२; ५५,
११६; ५६३, ४८.

मीमप्रा—५७८, २२२, २२६;
५७९, २३२, २३३; ५८०, २४०,
२४३, २४६.

मीमप्रा—१७६, २२१.

मीमप्रा—२३७, २६३.

मीमप्रा—२५०, ४२९, ४३०.

मीमप्रा—३७६, १११२, १११४;
३७८, ११३७.

मीमप्रा—२०९, ६०.

मीमप्रा—६४, २३६.

मीमप्रा—४५४, ४७.

मीमप्रा—२१२, ४२, ४५; २९३, १३२७.

मीमप्रा—६०७, ९९; ६१५, १८८.

मीमप्रा—५१, ७६; २०८, ६०२.

मीमप्रा—५०४, ४४०, ४४३.

मीमप्रा—२०४, ५५७; २०५, ५७५;
२०६, ५८४; २०८, ६०९; २१४,
६५, ६७; २१५, ७२, ७५, २;
२१६, १५, १६; २२०, ६१; २२१,
६६, ७०; ४११, ११७; ४१२, २;
४१३, ११४; ४१०, ८; ४१२, २३,
२८, २९; ४१३, ३८; ४१४, ५०,
५५; ४१५, ५९, ६८; ४१८, १०१,
१०२, १०७; ४१९, ११२, ११४,
११८; ४२८, २२६; ५९८, ४७;
६०१, २३; ६१७, ५; ६१८, ८, १४.

मीमप्रा—४१४, ४२, ५३१, २६१.

मीमप्रा—४८२, २५०; ४९०, २६४.

मीमप्रा—१२६, १४१.

मीमप्रा—६८०, २७०, २००, ५०६;
२०१, ५२१; ३७१, ६६६; ६०७,
९८.

मीमप्रा—३१५, ३६६; ३२०,
४०२.

मीमप्रा—१३९, ३४; ३२७, ४९१.

मीमप्रा—४३५, १४, २२; ४३६,

२६, ३१; ४३८, ५७, ५९; ४३९,
६४, ६९.

मधुकर—३५०, ७८२; ३५५, ८४८.

मनःशामी—३४५, ७१९; ३४७, ७३६,
७४३; ३४८, ७५५, ७५८, ७५९;
३४९, ७६४.

मनोरथप्रसा—५५७, २०५; ५५९,
२२८, २३१; ५६०, २४३, २४७.

मनोरथसिद्धि—२३९, २८७; २४५,
३६३; २४७, ३९६.

मनोरमा—२७९, ७८३, ७८९; २८६,
८६९.

मनोवती—१०९, ७५, ७९, ८३, ८४;
१४८, ११४.

मनोहरा—४४७, ८३, ८५.

मन्त्रगुप्त—२२३, १०३.

मन्यर—५७३, ३९९.

मन्दारदेव—३९१, ११९३; ३९२,
१३१६; ३९४, १३३७; ४६८,
२२९; ५९५, १३; ५९६, २२, २७;
५९७, २९, ३४; ६१८, १९.

मन्दारदेवी—५९७, ३१, ३८.

मन्दारवती—३००, १५८; ३९१,
१२९४; ३९२, १३१३; ३९३,
१३१८; ३९७, १३४४, १३७८;
४००, १४१९; ४०१, १४११.

मन्दिरिष्ठा—४६८, २२८.

मय—१३८, १९; १४२, ६३, ६६;
१४३, ७५; १४५, ९८, १००,
१०२, १०३, १०४; १४८, १३८,
१४०, १४१, १४२, १४४, १५१,
१४०; १६९, १३९, १४१; १७४,
१५, १६, १८९, ३७५.

मरुभूति—११३, १३२; ११४, १४१;
२०४, ५६१; २०७, ५९६; ४५२,
२२; ४६३, १६५; ४६६, १९९;
४८८, २४५; ४९१, २७०; ४९६,
३३३, ३४४, ३४५; ५००, ३९१;
५०१, ४०८; ५२३, १६७, १७०;
५३०, २४७; ५३१, २५८; ५३३,
२८१; ५४०, ३७४; ५४३, ३०,
३२; ५४७, ८३; ५५३, १५७.

मलयप्रम—२५६, ५११.

मलयमाली—२५९, ५३६.

मलयवती—१०७, ५९, १०९, ८४;
१११, १०७; ३५३, ८१६; ३५६,
८५२; ३६०, ९०४; ३६१, ९२१;
३६२, ९२७; ४२४, १६६.

मलयविह—४२४, १६५; ६११, १५०.

महालिङ्गा—१४८, १३३.

महावंद्—४६८, २३३.

महावल—५०६, ४६४.

महामति—४१२, १६.

महार्य—१३८, १७; १४५, १०५.

महावराह—५१८, १०१.

महासेन—६५, २४८; ८३, १७६;
१५१, १७६; १५३, १९८, १९९,
२०१; १५५, २२१; १५६, २३०;
१८२, २९८; ३८९, ११९७;
३९२, १११०, ११११, १११६;
३९५, ११४७, ११५३; ४००,
१४११; ४०१, १४१६.

महिषनाल—२१९, ४२.

महीपरा—२११, २०; ६१३, १७०.

महीनाल—५३३, २८३; ५३४, २८९,
५३५, ३११; ५४०, ३७१,
महेश्वरी—११, ५३; ४७, १४.

महेन्द्रादित्य—४१२, १२.

माणिभद्र—४१४, ४२.

मातङ्गी—६१०, १२८.

मातापरा—५०७, ४०५.

मानुल—६०६ ८५; ६०७, ८९, ९३;

६१७, ३; ६१८, २०.

माघय—११७, ३५, ३७; ११८, ४७,
५०, ५२.

मानसमेव—२०८, ६०५; ४५३, ४९;

४५४, ५३, ५४; ४५९, ११९;

४६०, १२५, १३१; ४६३, १६१,

१६९; ४६४, १७८; ४६५, १८७;

४६७, १२२; ४६८, २२४; ६१८,

१५.

मानसा—४०३, १६.

मायावृद्ध—२३५, २४७; २३६, २४९,

२६१; २३७, २६३, २६४; २४३,

४२३; २५०, ४२४, ४२६; ४२९,

४३३; २६२, ५८२; ४०७, ६८;

४०९, ९५; ४१०, १०४.

मायावती—५८, १६०; ६११, १५०.

माटीय—५५६, १९४.

मालविद्या—३७७, ११२६.

मालपदेय—३९, ७०.

मालापर—२५८, ५३२.

माणिनी—५९२, ६२०.

मात्सर्य—२५, १; २९, ५४; ३०,
६०.

मित्रावमु—१०७, ५९; १०९, ८५;

११०, ८८; १११, ९९; ३५७, ८६३,

८६४, ८६६, ८६८.

मिरि—९५, ३२७.

मिरिगोप्य—५६१, २५६; ५७२,
१९२.

मुक्केतु—४४३, ३०, ३३, ३४; ४४४,

४६, ४९, ५०; ४४५, ५३, ५९,

६३; ४४६, ७३, ७५; ४४७, ७८,

८१, ८४, ८८; ४४८, १००; ४४९,

१०८, ११०.

मुक्कवज—४४९, १०३, १०३, १०६.

मुक्कसेन—५०५, ४५०.

मुक्ककेतु—६१८, १३.

मुक्कदीप—५१४, ५६.

मुक्कपुर—५०५, ४४९.

मुक्कालता—५५५, १८४.

मुक्काल—२६५, ६१५; २७२, ६९६,

७०५; २७३, ७१०, ७१६.

मूलदेव—३४६, ७२९, ७३०, ७३२;

३४८, ७५६; ७५७; ३४९, ७६२;

४३२, २७०; ४३३, २८४.

मृगदत्त—५६१, २५३.

मृगादत्त—२२१, ७१, ७४; २२२,

८४, ९०; २२९, १७०, १७२,

१७४; २३०, १८७, २३३,

२१४, २१७, २२३; २३४, २२७;

२३५, २४२, २४४, २४७; २३६,

२५५, २५९; २३७, २६२, २६४,

२६७, २७०, २७३; २५०, ४३०,

४३५; २६२, ५८०; २७८, ७६९,

७७५, ७७८; २७२, ७८१; २८६,

८७५; २८७, ८७९, ८८०, ८८१,

१; २८८, १०; ३८५, १२३४; ३८६,

१२३६, १२३७; ३८८, १२६२;

४०२, ३; ४०७, ६४, ६६; ७१,

४०८, ७६, ७९, ८३; ४०९, ९७;

४१०, १०२, १०५; ४१३, ११५,

११७; ६१८, १०.

मृगादत्ता—३२२, ४२६.

मृगाङ्गवती—४१, १३; ४३, ११८;
 ३३२, ५५५; ३३४, ५७४; ३३९,
 ६४६; ३४७, ७४८.
 मृगाङ्गसेन—३३९, ६४६.
 मृगावती—३५, २८; ३६, ३६; ३८,
 ६४; ४५, १४१.
 मृगेधर—४४१, ९; ४४३, २८.
 मेखलिका—४३४, १०.
 मेघमाली—२३९, २८९; २४२, २२८,
 ३२९; २४८, ४०५.
 मेघवल—२२१, ७६; ३८७, १२४७,
 १२५३.
 मेघवर्ण—५८३, ५२३.
 मेघवृज—४४८, १०१.
 म्लेच्छशक—४२२, १३५.
 मल्लाली—४०४, २६, २८; ४०५,
 ४२.
 मल्लकेतु—३१९, ३९०.
 मल्लसोम—३८०, ११६३.
 मल्लस्थलामहार—३८०, ११६३.
 यमजिह्वा—५४४, ३८; ५४६, ६६, ६८.
 यमदंष्ट्र—३५, २१; ९०, २६४.
 यमशिख—४१६, ६४.
 यमुना—२१२, ४४; ३९३, १३२८.
 यश.केतु—३३४, ५८२; ३३६, ६०५;
 ३३७, ६२३; ३३८, ६२९, ६३२;
 ३४५, ७१८; ३४६, ७३३.
 यशस्कर—४३४, ९.
 यशोधन—३६३, ९३७.
 यशोधर—५८९, ५८४.
 यशोधर्मा—५२९, २२९, २३२.
 युगन्धर—३४, १२; ३६, ३९; ४५,
 १४३.

योगकरणिक—२४, ३०८.
 योगकरणिका—६०, १८६; ६२, २०७;
 ६३, २२३; ६४, २३१.
 योगनन्द—७, १; १७, १२४, १२७;
 २३, २०४, २०६; २४, २०१,
 २१२, २१७.
 योगेश्वर—५१, ६६; १९५, ४४८;
 १९७, ४७२.
 योगन्धर—१९७, ४७०.
 योगन्धरायण—३६, ३९; ४५, १४४;
 ४६, ३; ४७, १६, १७; ४८, ३०;
 ५०, ५९; ५१, ६९, ७३; ५६, १३३;
 ५८, १६३; ६६, २५७; ६८, ३; ७२,
 ५०; ७३, ५५; ७४, ७१; ७६,
 ९६; ७७, १०४; ७८, १२५; ८२,
 १७१; ८३, १७४; ९१, २८१; ९३,
 ३०७; ९४, ३०९; १०२, ४१२;
 १०६, ४७; ११३, ११३; ११४, २;
 १८७, ३५४, ३६०; १८८, ३६७;
 १९५, ४५०, ४५१; १९७, ४७४;
 २००, ५१०, ५१४; २०३, ५४५;
 २०४, ५६१; २०८, ६०६, ६०७;
 ४९१, १३; ४७६; ८६; ४७७, ९९.
 रक्षिमिका—६१२, १५५.
 रङ्गमाली—२२५, १२७; २२९, १६८.
 रत्नकूटाभिषेक—४७७, १०८.
 रत्नगुप्त—११३, १२९.
 रत्नचन्द्रमति—२५३, ४७०, ४७३.
 रत्नदत्त—१५८, ११; ३४३, ६९०;
 ५४१, ७.
 रत्नधर्मा—५४३, ३६.
 रत्नपुर—११७, ३५.
 रत्नप्रभ—१४९, १४८.
 रत्नप्रभा—४७१, ७३, ७७, ८३;

४७६, ८८; ४७७, -९९, १००;
१०१, १०२, १०६; ४८१, १४८;
४८८, २४५; ४९५, २२०; ४९७,
३५६, ३५७; ५००, ३९१; ५०२,
४११, ४२०; ५०९, ५०७, ५०८;
५५७, २०५; ६१८, १६.

रत्नवती—३४३, ६९०.

रत्नाक्षरपुर—५५६, १९६.

रत्नाधिप—४७७, १०८; ४७९, १३४;
४८०, १३८.

रत्ना—१६७, ११७; १६८, १२५;
१२१, १२२; १६९, १३३, १३५.

रत्नामिथ—१४०, ३९.

रत्नोदय—१४२, ६४.

रत्नमाला—५५७, २१०.

रत्नप्रदानिथ—६१३, १५०.

रत्नदत्ता—४७८, १२२; ४७९, १२८,
१३२.

रत्ना—२७९, ७८३.

रत्ना—५१२, ३३, २७.

रत्नदत्ता—६१३, १७५.

रत्ना—५१२, ३६.

रत्नदत्त—५७६, ४३८.

रत्नदेव—२०९, ६; २१०, २२;
२११, २४; २१४, ६२.

रत्नमाला—६६, २६०; ६७, २६५;
३०१, १६९.

रत्नपुर—४१२, १६.

रत्नमाला—३६, २९; ४५, १४४; ६६,
२५७; ६८, ३; ७४, ७४; ११३,
११३; ४५०, ४.

रत्न—३६२, १३७.

रत्नपुर—५१४, ५८; ५१५, ६७;

रत्नपुर—५१४, ५७.

रत्नमाला—५१४, ५७, ६१; ५१५,
६८, ७१.

रत्नवती—२२८, १५८; ४२८, २१३;
४२९, २२३, २२६, २२७, २३२.

रत्नमाला—४९३, २९६, २९८, ३०४;
४९४, ३०९, ३१६; ४२५, ३२६.

रत्नमाला—५०५, ४५०.

रत्नी—५२, ७८; ५३, १०१; ५४,
११३, ११४; ५५, ११७.

रत्नमाला—५१२, ३४.

रत्नीदत्त—३३७, ६१३; ५९२, ६२०.

रत्नीधर—५८९, ५८४; ५९०, ५९६;
५९७, ६१७.

रत्नीधर—२०९, ६.

रत्नीधर—५९४, ६४१.

रत्नीधर—५७२, ३९२; ५७५, ४२३.

रत्नदत्त—५२३, १७१.

रत्नधर—५२२, १४७.

रत्नविह—१२७, १५३.

रत्नबाहु—५२५, १८६, १९५.

रत्नमुख—५१७, ९७.

रत्नलोचना—२२०, ५४, ५९,

रत्नी—३८, ५८.

रत्नपुर—३६९, १०१४.

रत्नमाला—३४३, ६६७.

रत्नमाला—९५, ११३.

रत्नी—५७९, ७८९, ७९२.

रत्नी—१४५, १०३.

रत्नी—५२, ८१; ५६, १३०, १३१.

रत्नधर—५७७, ४४९.

रत्नधर—१३७, ८.

रत्नधर—४५४, ४५.

रत्नधर—५६९, ३४५.

वज्रधर—५०६; ४६४; ५०७, ४७३;

५०८, ४८८; ५०९, ५०५.

वज्रप्रभ—१३७, ८; ४७४, ७१; ४७५,

७४; ४७७, ९८; ६१७, ५.

वज्रमुकुट—२९३, ७४.

वज्रसार—५५२, १४०, १४३, १४७.

वत्स—२५, ४; २६, १०; १३७, ११.

वत्सनेश्वर—५०, ५८, ८१, १५३.

२००, ५०८, ४५०, ३; ४५१, १३;

४५२, २९; ४६२, १५४, १५६;

४७७, १००; ५०२, ४०३, ४१९;

५०३, ४२३; ५४१, २.

वत्सवृषति—५६, १३८. ७४, ६९; ७७,

१०८.

वत्सभूप—५४१, ८.

वत्सभूपति—७५, ८६; १०३, १२;

१८९, ३७७; ५९८, ४४.

वत्सभूपाल—५५५, १७८.

वत्सभूमज—६७६, ८५.

वत्समहीपति—६०२, ४२.

वत्सपान—५०, ६३; ७४, ७०; ७६,

९७; ७९, १३४; ८३, १७७; १३६,

२६२; १३७, ४; १५७, २; १८१,

२८५; १८२, २९४; १८६, ३४१;

१८७, ३५६, ३५७; १९५, ४५४;

२००, ५१०; २०१, ५१७, ५१९;

२०५, ५६५, ५६८; २११, २३;

४००, ३; ४६२, १५९; ४७५,

८४; ५०२, ४१०; ५१६, ७८,

५२७, २०४; ५४३, २७, ५५२,

१४०; ५९८, ५४; ६१७, ४

६१८, १०.

वर्धेश—४९, ७६; ५८, १५७; ६८, २;

७८, ५०; ७९, ११३; ११३, ११४;

१३७, २; १८७, ३५५; २००,

५०७; २१४, ६५; ४९५, ३३१;

५०९, ५०६.

वत्सेश्वर—५०९, ५०२.

वत्सेशात्मज—४५९, ११४; ५१६, ८२.

वत्सेश्वर—४५९, २; ४६, ७, १०; ४९,

४४; ५१, ७३; ५७, १४०, १४२;

६५, २४८; ६७, २६९; ९१,

२७५; ९४, ३०८; ३१५; १०६,

४०; ११२, ११३; १३६, २६०;

१८६, ३४४, ३४७; १९५, ४४९;

१९६, ४५८; २००, ५१६; २०१,

५२१, ५२३; २११, २४; ५४३,

२६; ५९४, ६४६; ६०१, ३१;

६०५, ७०; ६०८, १०७.

वत्सेश्वरसुत—४५२, ३१; ५०८, ४६३.

वत्सेश्वरात्मज—२१४, ६१; ४६०, १२६;

४८१, १४८; ५२३, १६६; ५२५,

१९४; ५५०, ११७; ५९४, ६४२.

वत्सपि—६, ७०; ९, ३४; १५, १०३;

२०, १६३; २५, २२३; २०६,

५०८, ५८०.

वत्सहस्त—४८४, ११०.

वर्णमेघ—५७६, ४३७.

वर्धमानक—५६१, २५७.

वर्धमानपुर—११६, १८; १३१, २०५;

४९१, २७१.

वर्ध—८, १२, २३; ९, २४; १९, ३०;

३४; १०, ३६; १२, ७१.

वर्धन्त—५१, ६८.

वर्धन्तक—३६, ३१; ४५, १४४; ५०,

६२; ५१, ७३, ७५; ५६, ११६;

५८, १६२; ५९, १६६; ६५, १४७;

६७, २७३; ६८, २७४; ७४, ७९,

- २८; ५९९, २; ६०३, ४६, ४८;
 ६०७, ९८; ६१४, १८०, १८५;
 ६१५, १९२, १९९; ६१७, १, ५;
 ६१८, ९, १४, १६, १९.
 विद्याधरपति—६१८, १७.
 विद्याधराधीश—५९८, ४९; ६०७, ९४.
 विद्याधरी—६०२, ३७, ३८; ६०७,
 ९९; ६१४, १७८; ६१७, ६;
 ६१८, १५.
 विद्याधरेन्द्र—५९९, ५५; ६०५, ६९;
 ६१६, २१३.
 विद्याधरेश्वर—६१५, १८८.
 विद्युब्धि—२५२, ४५३.
 विद्युत्क्षेत्री—१२६, १४९.
 विद्युत्प्रम—४४३, ३५.
 विद्युत्प्रभा—१२६, १४९.
 विद्युत्कुल—४६८, २३३.
 विद्युत्ता—२०, १५८.
 विद्युत्पोता—१९६, ४६६.
 विद्युत्तज—४४३, ३८, ४४४, ४०,
 ४१, ५१; ४४५, ६३; ४४६, ७३,
 ७५.
 विद्युन्मती—१३४, २३७; १३५,
 २४७.
 विद्युन्माला—१३९, ३५.
 विद्युन्म—३५, २९.
 विनयपुत्रि—२५९, ५४२.
 विनयवती—२२६, १३४; २२८, १५६;
 ४१३, २६.
 विनयवान्—२२९, १७३.
 विनयवत्य—६६, २६०.
 विनीतमणि—२५१, ४४८; २५२, ४५६,
 ४५९, ४६१; २५३, ४६४, ४६९;
 २५४, ४८५, ४८६; २५५, ४९८;
 २६१, ५६८, ५६९; २६२, ५७१,
 ५७२, ५७५.
 विन्दुमती—१३२, २१६, २२१; १३३,
 २२७, २२९.
 विन्दुलेखा—१३३, २२७, २३०, २३२;
 १३५, २५४, २५५.
 विन्ध्यकेतु—४००, १४०९; ४०१,
 १४२६.
 विन्ध्याटवी—२३२, २१०; २३३,
 २१५.
 विभूतिवसु—२६७, ६३३.
 विभूतिसोम—४९७, ३४६.
 विमलपी—२२१, ७६.
 विमलपुद्गि—२३४, २२८; २४९, ४१९.
 विमलाकर—२३८, २८२.
 विहंसाक्ष—२०३, ५४७, ५४९.
 विलासवती—४२७, २०६.
 विशाखिल—६९, १८.
 विशाला—३७६, ११११.
 विश्वदत्त—४३, १२२, १२३.
 विश्वावसु—१०७, ५९; ३५३, ८१६.
 विषमशील—४१२, १३, १५; ४१४,
 ४१; ४१५, ५८; ४१७, ७५; ४२२,
 १३५; ४२७, १९९, २०१; ४३१,
 २५६; ६१८, ११.
 विष्णुदत्त—१२२, ९९; १८९, ३७९;
 १९०, ३९१, ३९७, ३९८.
 विष्णुमती—३४, १४.
 विष्णुसामी—९९, ३७५; १००, ३८६;
 ३१५, ३४०; ३७९, ११४५.
 विहितयेन—७९, १२६.
 वीणादत्त—४५५, ६९; ४५६, ७३.
 वीतमय—१५१, १७५, १५६, २३१.
 वीरकेतु—३४३, ६८९.

वीरदेव—३२६, ४७६; ३२७, ४८६.

वीरपुर—५१२, १२४.

वीरमातु—३२७, ४९०.

वीरभुज—४९१, २७१.

वीरवती—३१२, ३११.

वीरवर—३०९, २७०, २७१; ३११, २८९, २९३, २९७; ३१२, ३०१, ३०३, ३१२, ३१३; ३१३, ३२२, ३२४; ३१४, ३२६, ३२८, ३२९, ३३१; ५२५, १८९.

वीरसेन—४४, १३४; ४१३, २३.

वैगवती—४५३, ४१; ४५५, ६२; ४५८, १०१, १०७; ४५९, १२२; ४६२, १५३; ६१८, १४.

वैगवान्—४५३, ४०.

पेल—२१२, ४६.

पैद्वैकान्ति—२३२, २११.

पैद्यालिका—२०९, ५.

पैधानर—३०, ५७.

पैधानरामिध—९५, ३२०.

व्याघ्रसेन—२२१, ७६; ३८७, १२४७, १२४८; ४०२, ३०.

व्याधि—८, १७; १२, ७१; १६, ११२, ११७; १७, १२०, १२२, १२८.

व्योमावती—४६९, ५.

शक—४२३, १५०.

शकद्राल—१६, ११८; १७, १२१, १२३, १२४, १३०, १२१; १८, १२४, १४२; २०, १६२, १६३, १६८; २१, १७०, १७३; २२, १८४, १८९; २३, २०४; २४, २१३, २१५, २१६, २१८.

शक्तिदेव—११५, १४; ११६, १७, २४; १२०, ७६; १२१, ८९; १२२, ८१.

१२, ९९; १२८, १६६; १२९, १८१; १३०, १९८; १३१, २०४, २०६; १३२, २१२, २१९; १३३, २२४, २२७, २३०; १३५, २५०; १३६, २५७, २५९.

शक्तिमती—२७, ९०; ६४, २३५; ६५, २३७.

शक्तिमता—५५५, १७६; ५६०, २४९; ५९४, ६४३; ६१८, १८.

शक्तिरक्षित—२३०, १८२; २३२, २०७; ४०७, ६८.

शक्तिवर—३१२, ३०२, ३०४, ३०७; ३१४, ३३२.

शक्तिवेग—१३६, २५९; ६१७, ४.

शंकरदत्त—११७, ३८.

शंकरदेव—१०५, ३०.

शंकरस्वामी—९, २४.

शङ्करण—५६९, ३४८, ३५०, ३५३.

शङ्करचूड—११०, ८९; १११, ९९; ३५७, ८७४; ३५८, ८८१, ८८२; ३५९, ८९१, ८९३, ३६०, ९०७; ३६१, ९१५; ३६२, ९२१, ९२९.

शङ्करदत्त—२८०, ७९५, ७९९; २८१, ८०९; २८३, ८४०; २८४, ८४१; २८५, ८५८; २८६, ८६९.

शक्तानीक—३४, ६; ३५, २२, २६.

शक्तुप्रनामा—२०७, ५९२.

शक्त्याचक्र—३१५, ३४५; ३१६, ३५५, ३५७, ३६२.

शक्तिवर्मा—२८, ४२; २९, ४५.

शक्तिपथि—२३५, २४६.

शक्त्यावती—२२२, ८६; २२९, १७१, १७४; २३०, १८३; २६२, ५८२; २८७, ८८०; ३८५, १२२४; ४०२,

७, ९; ४०८, ७८; ४१०, १०४,
 १११; ४११, ११६; ६१८, १०.
 शशिखण्डाख्य—१२९, १८४.
 शशिप्रभ—१५८, ९.
 शशिप्रभा—१२९, १८५; ३४५, ७१८;
 ३४६, ७३५; ३६७, ९९३; ३८९,
 १२७१; ३९५, १३५०.
 शशिलेखा—१२९, १८५; ५४७, ८५;
 ५५७, २१२.
 शशी—३४६, ७२९; ३४८, ७५७;
 ३४९, ७६१, ७६४.
 शाकलपुर—१३७, १३.
 शाण्डिल्य—३४, १५.
 शातनामा—२७, ३०.
 शातवाहन—२५, १; २६, ११, १८;
 २८, ३३, ३४; ३२, ८६, ९२;
 ३३, १, २; ६१९, २७.
 शान्तिकर—१०५, ३३.
 शान्तिकरामिध—१०५, ३१.
 शान्तिमती—२३१, १९६.
 शिखर—२११, ३२; २१२, ४५.
 शिव—११७, ३५, ३६; ११८, ४५,
 ४८, ५०.
 शिवदत्त—२८२, ८२४.
 शिवधर्मा—८३, १८४.
 शिवभूति—४४१, ५.
 शिवधर्मा—२१, १७५, १७७.
 शिवस्वामी—३४१, ६६६.
 शिवि—३२, ८१.
 शीलवती—४७८, ११९, १२१, १२२;
 ४८०, १४६.
 शीलवर—५००, १२१.
 शुक—१४५, १०७.
 शुकधीर्षि—२३२, २०८.

शुद्धपट—३२०, ४०३.
 शुभदत्त—५४१, १२.
 शुभनय—२५८, ५२५.
 श्रद्धक—३०८, २६४; ३११, २९९;
 ३१३, ३२२.
 श्रद्धपट—३२०, ४०१.
 श्रद्धेव—३२६, ४७८.
 श्रद्धपुर—५१८, १०१.
 श्रद्धवर्मा—५६१, २५२, २५४.
 श्रद्धेन—४३, १२४; ४४, १३१; २०८,
 ६०२; ६००, १८, २१.
 श्रद्धभुज—४९१, २७८; ४९२, २८८,
 २९२; ४९३, ३०४, ३०७; ४९५,
 ३२१, ३२८.
 श्रद्धारवती—४२८, २२२.
 श्रद्धोत्पादिनी—४८२, १७०.
 शोखरद्युति—२५८, ५२७.
 शैलदंष्ट्र—५०४, ४३९.
 शैलपुर—५०४, ४३९.
 शोकवती—१५२, १८३.
 शोभावती—३०८, २६३; ३१९, ३९०;
 ४३४, ९.
 शमशान—६११, १४२.
 श्वेनजित्—१८२, ३००; १८६, ३४१,
 ३४२.
 श्रावस्ती—१९९, ४९८.
 श्रीकण्ठविषय—९५, ३२८; ४९८, ३५९.
 श्रीगर्भनामा—४८४, १९०.
 श्रीदण्ड—४३, ११७; ४४, ११४, ११५.
 श्रीदत्त—३९, ७२, ७५; ४१, ९३,
 ९५, ९७; ४३, १२०.
 श्रीदर्शन—२६५, ६०९, ६१२, ६१४;
 २७२, ६९६, ६९७; २७३, ७१२,
 ७१६; २७४, ७२१, ७२५, ७२८;
 २७५, ७३२, ७३५, ७३६; २७६,

७४६, ७५०, ७५३, ७५५; २७७,
७६४.
श्रीदेवधारण्य—६२०, ४१.
श्रीधर—५४२, ११०; ५८९, ५८४;
५९०, ५९९, ६०१; ५९२, ६०७,
६०९; ५९२, ६१७.
श्रीपर्वत—२२०, ५३.
श्रीसेन—२७२, ६९९.
श्रुतधर—६, ७०; ८, १५; ९, ३१,
३२, ३३.
श्रुतवि—२३१, १९७, २३२, २०२;
२३४, २२७; २३५, २४६; २४९,
४२१, ४२३; २५०, ४२४, ४२६;
४२८; २८८, ८; ३८६, १२३६,
१२३८; ४०२, ४; ४०८, ७६;
४१०, १०८.
श्रुतवर्धन—४९१, २७१.
श्रुतशर्मा—१४०, ५०; १४१, ५६; १४२,
६९, ७३; १४६, ११३, ११९;
१४८, ११९; १४९, १५५.
श्रुतसेन—१९६, ४५८, ४६४.
श्रुताया—२५, ४, ५.
श्रुतिशर्मा—१३८, २५, २६; १५०,
१६०, १६१, १६७; १५६, २३३,
२३६, २३७.
श्रुतिसौम—४२५, १९३.
श्वेत—४७७, १०९.
श्वेतप्रभ—४८०, १४०.
संयत—४७८, ८९.
संगमक—३९, ६८; ४४, ११८.
संगमदत्त—१३६, ३१८.
संगमनगर—५०६, ४६०.
संग्रामवर्धन—२९५, ९६; २९६, १०२;
२९९, १५०.
सर्गीयक—५६१, २६०; ५६३, २७८,
२८१; ५६५, ३०४.

स्तन—१२०, ७५; १२२, ६४, ९६;
१२८, १६४; १२९, २१३, २१५;
६१३, १६९.
सत्त्वशील—३२२, ४२१; ४७१, २४,
३१.
सङ्काप—४३५, १०.
समर—५१९, १२४.
समरमङ्ग—५४७, ८७.
समरमठ—२७९, ७८९; २८५, ८६९;
२८६, ८६८.
समुद्रस्त—१२४, १२१; ३०५, २२७;
३२९, ५१८; ३३१, ५४७; ३३२,
५५०; ५२३, १६२.
समुद्रमाल्य—१२१, ७७; १३२, २१०.
समुद्रशूल—५२७, २०७, २१३.
सरोजिनी—५२०, २४३.
सहसारीक—३५, १८; ३८, ६२; ४१,
१४५.
साकशिकपुरी—११, ५२.
सागरदत्त—६४, २३६; ४५५, ७०;
५२२, १६०.
सायंवर—५३४, २८८, २९१.
सानित्री—४११, ९, १२.
साहसिक—१०१, ४००.
सिंहपराक्रम—११२, १२३; ३८३,
११९४.
सिंहलद्वीप—२६०, ५५२.
सिंहलेख—४२२, १३५.
सिंहवती—११३, १२९.
सिंहवर्मा—९३, २०१.
सिंहवख—५५३, १५८, १६२; ५५४,
१६७.
सिंहविक्रम—२६०, ५५२; ५५८, २२१.
सिद्धार्थक—१३८, १७.

विदिकरी—६१, १९०; ६२, २०६;
६४, २२७.

सीता—५१२, १४, ३५.

सुखधन—५०७, ४७८.

सुप्रीव—५१२, ३७.

सुदर्शन—५२२, १५३.

सुनीय—१४५, १००, १०१, १०२,
१०४; १४९, १५०.

सुन्दरक—९९, ३७६, ३७७, ३७८.

सुन्दरपुर—५११, १५.

सुन्दरसेन—३८८, १२६३; ३८९,
१२७२; ३९२, १३१०; ३९४,
१३३१, १३३३, १३३६; ३९५,
१३५६; ३९६, १३६९; ३९७,
१३७३, १३७५; ३९८, १३९२;
३९९, १३९६; ४००, १४११;
४०१, १४२५, १४२९, १४३३.

सुन्दरी—१४८, १३५; १५६, २२९;
५४४, ४३, ४६, ४८; ५४५, ५२,
६२; ५४६, ७३, ७५; ५४७, ७७.

सुप्रविष्ठाक्य—६१०, ११७.

सुप्रवीप—३४, १३; ३६, ३९.

सुप्रहार—६१२, १५२; ६१३, १६९.

सुभट—१३९, ३६.

सुमन्वीकर—१४५, १०४.

सुमति—३७५, १०९१.

सुमदा—४८५, २०५, २०७; ४८६,
२१०.

सुमानव—५५५, १८३; ५६०, २४४.

सुमाना—४०५, ४३, ४८; ४०६,
५१, ५४.

सुमेरु—१४९, १५०; १५६, २४०.

सुरगमप्री—६०७, ९९; ६०८, १०२,

१०४; ६१४, १८३; ६१५, १९०,
१९२, १९६.

सुरमिदत्ता—१६०, ३५; ५१७, ९८.

सुरम्म—१३९, ३५; १४२, ६४.

सुलोचना—१३९, ३३; १५४, २१६;

१६८, १२८, १३०; १६९, १३१,

१३५; ५९४, ६४३.

सुवचन—२११, २८.

सुतासा—१४९, १५१; १५०, १५७,
१६०.

सुपेण—१६७, ११३.

सूचीमुख—५७०, ३६२, ३६४.

सुर्यतपा—१२०, ७०.

सुर्यप्रभ—१३७, १०, ११; १३८, १६,

२४; १३९, २९; १४०, ४६; १४१,

५७; १४२, ६५, ६७, ६९, ७३;

१४५, १०४, १०८; १४६, ११४,

१२०; १४७, १२१, १२४, १३१;

१४८, १३५, १४२, १४४; १४९,

१४६, १५१; १५०, १५७, १६३,

१६८; १५१, १६९, १७४, १७५;

१५६, २३१, २३५, २३६; १५७,

२४१, २४३, २४५, २; ३६९,

१०१४; ३७०, १०२३; ३७१,

१०४८; ३७२, १०५६; ६१७, ५

सेनाजित—१८१, २८८, २८९; ६१०,

१३७; ६११, १४७.

सोमक—५९, १६८.

सोमदत्त—६, ६९; ८, १४; ९५, १२०;

३२१; १८३, ३०९; ४३५, १३.

सोमदत्ता—३८०, ११६४.

सोमप्रभ—५५६, १९७; ५५८, २२०;

५५९, २२३, ५६०, २४३.

सोमप्रभा—७२, १३६; १६९, १३९;
 १७३, १८९; १७४, १९६; २०३;
 १७५, २१५; १७६, २१६; १८०,
 २६६; १८१, २८९; १८२, २९९;
 १८६, ३४४; १८७, ३५२; १८९,
 ३७६; १९५, ४४७; २०१, ५२७;
 २९३, ७३; ३०९, २६८; ३१७,
 ३६७; ४४१, ५.
 सोमशर्मा—२५, ४, ५; ५८६, ५५५.
 सोमशर—२६१, ५६८; २६२, ५७३.
 सोमधम—२५५, ४८९.
 सोमस्वामी—३७०, १०३५; ४०४ २९;
 ४८४, १८९; ४८८, २४३.
 सौदामिनी—२६४, ५९५, ५९९, ६०४.
 स्कन्दवास—८९, २५३, २५५; ९१,
 २७३.
 स्थूलबाहु—२२१, ७६; ३८७, १२४७,
 १२५३.
 स्थूलभुज—५१७, ९७.
 स्वयंप्रभा—१७४, १९७; १७५, २०७,
 २१५.
 हंसद्वीप—३९२, १३१०; ३९४, १३३१.
 हंसावली—२३८, २८६; २३९, २९०,
 २९८; २४१, ३१४; २४२, ३२८,
 ३३१, ३३३; २४३, ३३९, ३४३,
 ३४५, ३४७; २४४, ३५५; २४५,
 ३६५; २४६, ३७६, ३७८; २४७,
 ३९०, ३९२, ३९९; २८४, ८४३,
 ८४७; २८५, ८५४; २८६, ८७१.
 हठशर्मा—५१६, ८५; ५१७, ९६.
 हनुमान्—५१३, ४०.
 हमीलक—१४८, १३३.
 हरदत्त—२०४, ५६२.

हरस्वामी—१६९, ५८, ६१, ८२, ६४;
 ३१७, ३७१, ३७४; ३१८, ३८०.
 हरिगुप्त—२२, १९१.
 हरिवर—५२०, १३५; ५२१, १४२.
 हरिचर्मा—१८३, ३१३; १८४, ३२२.
 हरिचिख—११३, १३३; ४६७, २१४;
 ४९१, २७०, ४९५, ३३०; ४९६,
 ३४५; ५२७, २०३, २०६; ५३०,
 २४७, २४९; ५५१, १२८; ५५२,
 १३९; ६०८, १०३.
 हरिस्वामी—३१७, ३६६; ३४१, ६६६.
 हर्षगुप्त—४७८, ११८.
 हर्षपुरी—५९३, ६३९, ६३३; ५९४,
 ६३९.
 हलभूति—९४, ३२५; १०१, ३९८,
 ४०२, ४०५; १०२, ४०८, ४०९,
 ४११.
 दाखिनपुर—५२८, २२४.
 हिरण्य—५७३, ३९६, ४०१; ५७५,
 ४२४.
 हिरण्यगुप्त—१३, ७५; १४, ८६, ९५;
 १५, ९७, १०३, १०८; ५२२,
 १५६; ५४१, ६.
 हिरण्यदत्त—१०९, ८२.
 हिरण्यवती—३६९, १०१६.
 हिरण्यवर्ण—५३१, २६०; ५३३, २८०.
 हिरण्याख्य—५७३, ३९५.
 हेमपुर—५४४, ४१.
 हेमपुरी—१३१, २०२, २०७.
 हेमप्रभ—२५७, ५१६; ४७०, १६,
 २०; ४७४, ६८, ६९; ४७५, ७६,
 ७७, ८३; ४७६, ९७; ४९८, ३५८,
 ६१८, १६.
 हेमप्रभा—११६, १८, ५५५, १७६.

बृहत्कथामञ्जर्याः परिशिष्टम् ।

पुनः स्कन्धस्वितः प्राह निर्वन्धोऽयमहो नु ते ।
 सुहृद्व्य गत्वा श्रियं राजन्नो चेदेकां कथां शृणु ॥ १ ॥
 श्रीमान्वेव्रवतीपूरुमेस्रलायां महीपतिः ।
 नगर्यां विदिशास्यायां क्षमापतिः शत्रुकोऽभवत् ॥ २ ॥
 तस्मै कदाचिदास्थाने चण्डालपतिपुत्रिका ।
 तपायनीचकारैकं रत्नं सर्वविद्रं शुक्रम् ॥ ३ ॥
 राज्ञा कृतफलाहारः स पृष्टः स्वकथां निधि ।
 रुचे दीर्घास्ति वेणीव देव विन्ध्याटवी भुवः ॥ ४ ॥
 तस्यां पम्पासरस्तीरे मदोदत इवोन्नतः ।
 शुक्रकोटिनिवासोऽस्मि जीर्णः शास्त्रमल्लिपादपः ॥ ५ ॥
 तस्मिन्पृष्ठशुक्रस्याहं जातश्छिन्नगतेः सुतः ।
 प्रसवकेशनिर्जीवा जननी पञ्चतां ययौ ॥ ६ ॥
 तातेन द्विगुणशेहात्पद्मगर्भादनुज्झितः ।
 पृतोऽहं जननीश्लेहाच्छुष्कौषधिफलाभ्युभिः ॥ ७ ॥
 एकदा शबरमातेः सनिपातेरिवोत्कर्षटः ।
 कानने भृगयासक्तैः सवेप्राणिमये कृते ॥ ८ ॥
 अप्राप्तवन्त्यपिशितस्यं समारब्ध शास्त्रमलिम् ।
 एकश्चकार शबरः स्खरिः शुक्रसंलयम् ॥ ९ ॥
 तातं विषाय निर्जीवं पद्माच्छादितमचनुम् ।
 क्षितिर्धितः शुक्रैरन्यैस्तमादाय जगाम सः ॥ १० ॥
 अहं तु तातपद्मान्तर्लम्बमानतनुश्च्युतः ।
 निचये जीर्णेपर्णानां पुण्यदोषेण सञ्जितः ॥ ११ ॥

१. सर्गोऽयमस्मादुल्लेखे न श्रुत इति तस्यैवत्वमिति श्रीमद्विः द्र. प. ३. ५७.
 स्वामी-शास्त्रिभिः कथया त्रैवित्रो मुद्रितोऽस्माभिः.

ततस्तत्सरसि स्नातुं प्राप्तेन मुनिसूनुना ।
 हारीतनाम्ना नीतोऽहं कृपया स्वतपोवनम् ॥ १२ ॥
 जावाल्लिर्जनकस्तस्य तत्राब्जज इवापरः ।
 स सर्वान्विसितः ग्राह मामालोक्य महामुनिः ॥ १३ ॥
 स्वस्यैव कर्मणः पाकं स्नेहादनुभवत्यसौ ।
 श्रुत्वैतन्मुनयः सर्वे पप्रच्छुर्मम चेष्टितम् ॥ १४ ॥
 सोऽब्रवीदुज्जयिन्याख्या पुरी रम्यास्त्यवन्तिषु ।
 विधातुर्विविधाश्चर्यनिधानानामिवावधिः ॥ १५ ॥
 तारापीडाभिधस्तस्यां यमूवावनिवासवः ।
 देवी विलासवत्यस्य शुक्नासश्च मद्यवित् ॥ १६ ॥
 निरपत्यतयार्त्तायाः पत्न्याः शोकेन दुःखितः ।
 स्वप्नेऽपश्यत्स तद्वक्त्रं प्रविशन्तं निशाकरम् ॥ १७ ॥
 विलासवत्यथानन्दमिवासूत जनप्रियम् ।
 चन्द्रसंदर्शनात्स्वप्ने चन्द्रापीडाभिधं सुतम् ॥ १८ ॥
 पत्नी च शुक्नासस्य पुत्रं प्राप मनोरमा ।
 वैशम्पायननामानं स्वप्नेऽब्जप्राप्तिसूचितम् ॥ १९ ॥
 कुमारस्याप्तविद्यस्य जनन्याः शासनादभूत् ।
 फन्यका पत्रलेखाख्या ताम्बूलदलवाहिनी ॥ २० ॥
 यौवराज्याभिषेकार्द्रः कुमारः सोऽथ शक्तिमान् ।
 वर्षत्रयं महासेनः पृथ्वीं बभ्राम दिग्जयी ॥ २१ ॥
 कदाचिदुत्तराशान्ते मृगयार्थी चचार सः ।
 अध्विजन्मानमारुह्य हयमिन्द्रायुधाभिधम् ॥ २२ ॥
 स दृष्ट्वा किंनरद्वन्द्वं मनोहरतराकृति ।
 वेगाज्जिहृक्ताज्ञासीलहितां विपुलां भुवम् ॥ २३ ॥
 तस्मिन्वने तु दीर्घाश्वघ्नान्तः कैलसभूमृतः ।
 प्रापाच्छोदं सरः पार्श्वे स्फटिकस्वच्छमुन्दरम् ॥ २४ ॥

आश्रासिताश्वः सलिलैस्तत्र शुश्राव सुखम् ।
 दूराद्वीतश्वानि त्यक्त्वा सैराकणितं भृगैः ॥ २५ ॥
 गत्वा सुदूरं सोऽपश्यच्चतुर्मुखशिवालये ।
 कन्यां मूर्तिमतीं शम्भोश्चूडानन्दकलामिव ॥ २६ ॥
 दृष्ट्वोपवीणयन्तीं तां ततस्तद्विरतौ शनैः ।
 सोऽपृच्छज्जन्मवृत्तान्तं निवेद्य स्वकथां पुरः ॥ २७ ॥
 सा नाम्ना प्राह हंसोऽस्ति गन्धर्वाधिपतिर्गिरौ ।
 हेमकूटे स मां गौर्या महाधेतामजीजनत् ॥ २८ ॥
 सरः स्नातुमिदं मात्रा सह संप्राप्तया मया ।
 दृष्टौ मुनिमुतौ कान्तौ पुण्डरीककपिञ्जलौ ॥ २९ ॥
 पुण्डरीकः स मे कर्णे स्वकर्णादिव्यमजरीम् ।
 चकार कौतुकार्तायाश्चित्तवृत्ते ज्वार च ॥ ३० ॥
 आहूता छत्रधारिण्या ततोऽहं मातुराज्ञया ।
 नाज्ञासिपं स्वभवनं प्राप्य काहमिदं च किम् ॥ ३१ ॥
 तदीयसुहृदाम्येत्य मन्मथव्यग्रता तवा ।
 तथा मे कथिता तस्य गताहं तत्पदं यथा ॥ ३२ ॥
 गत्वा व्यसुं प्रियं दृष्ट्वा तत्राहं मरणोधता ।
 भविता प्रियलामस्ते भीर्मेत्युक्त्वा सुधांशुना ॥ ३३ ॥
 पुण्डरीकं गृहीत्वेन्दौ प्रयाते सकपिञ्जले ।
 स्वितासि न सहे दाहं तच्चानन्रतसंयुता ॥ ३४ ॥
 सुहृच्चित्ररथाल्योऽस्ति गन्धर्वेन्द्रः पितुर्मम ।
 मदिरायां प्रिया तस्य जाता कादम्बरी सुता ॥ ३५ ॥
 तथा बहुःखतुल्यत्वाद्विवाहे नियमः कृतः ।
 तां प्रेषिता बोधयितुं सखी तरलिका मया ॥ ३६ ॥
 इति स्मृतिनवीभूतशोकया कथिते तथा ।
 श्रुत्वा संक्रान्ततत्पीडश्चन्द्रापीडोऽनयनिशाम् ॥ ३७ ॥

प्रातर्ज्ञात्वा महाश्वेता ततस्तरलिकागिरा ।
 अत्यन्तदुर्ग्रहामेव सखीं चित्ररथात्मजाम् ॥ ३८ ॥
 गन्धर्वनगराश्चर्यदर्शनप्रणयार्थिनम् ।
 चन्द्रापीडं समादाय कादम्बर्यास्पदं ययौ ॥ ३९ ॥
 चन्द्रापीडोऽपि गन्धर्वपुरे रत्नगृहे स्थिताम् ।
 कादम्बरीं नयनयोर्ददर्श प्रमदप्रदाम् ॥ ४० ॥
 तयोः सकौतुकाकृष्टविलोकनरतोत्सवे ।
 मनः परस्परप्रेमसूत्रस्यूतमिवामवत् ॥ ४१ ॥
 प्रेमोद्यानात्कुमारोऽथाकृष्टः स्वनगरीं ययौ ।
 पितुः शासनलेखेन पवनेनेव षट्पदः ॥ ४२ ॥
 त्वरया न्यस्तसैन्यान्विं दृष्ट्वा प्राप्तं सुतं नृपः ।
 किं वैशम्पायनं त्यक्त्वा संप्राप्तोऽसीत्यमर्त्सयत् ॥ ४३ ॥
 पश्चात्सैन्ये समायाते तत्रैवावस्थितं वने ।
 वैशम्पायनमाकर्ण्य शुकनासः शशाप तम् ॥ ४४ ॥
 चन्द्रापीडं प्रभुं त्यक्त्वा जनकं मां च दुर्बनः ।
 स्थितस्तत्रैव पक्षीव शुकपाठी शुकस्तु सः ॥ ४५ ॥
 कादम्बरीवियोगार्तः सुहृदं दूरवर्तिनम् ।
 चन्द्रापीडस्तमन्वेष्टुं प्रययौ शासनात्पितुः ॥ ४६ ॥
 महाश्वेताश्रमं प्राप्य साश्रुधारामघोमुखीम् ।
 वैशम्पायनवृत्तान्तमपृच्छत्साव्रवीच्च तम् ॥ ४७ ॥
 आविष्ट इव संछेपं ययाचे चपलः स माम् ।
 शुरुवचादुक्कलीतः शापेन शुकतां मया ॥ ४८ ॥
 त्वन्मित्रमिति विज्ञाय पश्चान्मोहान्ध्यमाश्रिता ।
 श्रुत्वैतद्दुःसहतरं चन्द्रार्पाडोऽभवद्व्यसुः ॥ ४९ ॥
 कादम्बरीं प्रियं श्रुत्वा महाश्वेताश्रमे स्थितम् ।
 सहिताभ्याययौ पूर्वस्थितया पत्रलेखया ॥ ५० ॥

विजीवितं प्रियं दंष्ट्रा मोहं कादम्बरी ययौ ।

इन्द्रायुधं समादाय पत्रलेखाविशत्सरः ॥ ५१ ॥

तदैव सरसस्तसादुदतिष्ठत्कपिञ्जलः ।

अभ्येत्य स महाश्वेतां ग्रीत्या पृष्टस्तयाव्रवीत् ॥ ५२ ॥

उत्क्षिप्तः पुण्डरीकोऽसौ पृष्टः पश्चान्मया दिवि ।

मामुवाच शशाङ्कोऽहं शप्तस्त्वत्सुहृदामुना ॥ ५३ ॥

मत्तुल्यव्ययैवार्तिं यास्यस्यपरजन्मनि ।

मया च प्रतिशप्तोऽयं त्वमप्येवं भविष्यसि ॥ ५४ ॥

शापान्तावधि तस्यापि देहमस्य समण्डले ।

मद्वंशजा महाश्वेता जामाता तत्पतिर्भम ॥ ५५ ॥

श्रुत्वाहमेतच्चन्द्रोक्तं पुण्डरीकपितुर्मुनेः ।

श्वेतकेतोः पदं गन्तुं प्रवृत्तस्तत्कार्षकः ॥ ५६ ॥

वैमानिकः खे प्रजता मया वेगेन लङ्घितः ।

अशपन्मां जवोदग्रं तुरगस्त्वं भविष्यसि ॥ ५७ ॥

ततोऽहमव्यौ पतितः क्षणादध्वः समुत्थितः ।

इन्द्रायुधामिधः प्राप्तश्चन्द्रापीडस्य बाहताम् ॥ ५८ ॥

अधुना मुक्तशापोऽहं गच्छामि श्वेतकेतवे ।

वक्तुं वृत्तान्तमित्युक्त्वा ययौ व्योम्ना कपिञ्जलः ॥ ५९ ॥

कादम्बरीं लब्धसंज्ञां प्रवेष्टुं बहिर्मुद्यताम् ।

वर्षन्निवामृतं चन्द्रः प्रोवाच गगनस्थितः ॥ ६० ॥

त्वं चन्द्रकान्तपर्यङ्गे देहं रक्षास्य निर्व्यथा ।

अचिरात्प्राप्तजीवोऽयं भविष्यति पतितस्त्व ॥ ६१ ॥

श्रुत्वैतद्गदितं खे च संशयाश्वासिताशया ।

चन्द्रापीडशरीरस्य परिचर्यास्तामवत् ॥ ६२ ॥

देशं ततस्त्रं सहितः शुकनासेन शोकवात् ।

पत्न्या विलासवत्या च तारापीडः समाययौ ॥ ६३ ॥

वैशम्पायनतां यातः पुण्डरीकः क्षितावयम् ।
 इति जावालिकथितं श्रुत्वा जातिः स्मृता मया ॥ ६४ ॥
 कपिञ्जलोऽथ मामेत्य समाधास्याविशन्नमः ।
 महाश्वेताश्रमं गन्तुमुद्यतोऽहं च्युतः श्रमात् ॥ ६५ ॥
 बद्धश्चाण्डालजालेन प्राप्तः कुत्सितपङ्कणम् ।
 चण्डालकन्यया तत्र क्षिप्तोऽहं हेमपङ्कजरे ॥ ६६ ॥
 न वेद्मि हेतुना केन देवस्योपायनीकृतः ।
 शुकेनेत्यं कथितया कथया सह सा क्षपा ॥ ६७ ॥
 क्षयं ययौ सयेनेव सौरविस्मेरतारका ।
 कादम्बरीं सरन्दीव इव राजा समीक्ष्य ताम् ॥ ६८ ॥
 पप्रच्छ प्रातराहूय चण्डालीं तामुवाच सा ।
 देवः कुमुद्वतीकान्तस्त्वं शंकरशिरोमणिः ॥ ६९ ॥
 कादम्बरी विरहिणी सूर्यतां सरसुन्दर ।
 माताहं पुण्डरीकस्य पद्मलक्ष्मीरसंशया ॥ ७० ॥
 वैशम्पायनतां यातः शापादेव गुरोः शुक्रः ।
 अद्यापि चपलः शापभीत्यायं परिरक्षितः ॥ ७१ ॥
 प्राप्ता चण्डालता राजजनस्पर्शभयान्मया ।
 इत्युक्त्वा साविशद्वयोम तेजपिञ्जरिताम्बरा ॥ ७२ ॥
 जीवं च दयिते स्मृत्वा जहतुः शुक्रशृङ्गौ ।
 चन्द्रापीडः क्षणे तस्मिन्सहसावाप्तजीवितः ॥ ७३ ॥
 कण्ठे कादम्बरीं चक्रे रत्नशय्यासनोत्थितः ।
 पुण्डरीकश्च तत्काले निर्गतश्चन्द्रमण्डलात् ॥ ७४ ॥
 महाश्वेतां समम्येत्य चक्रे हर्षसुधाश्रुताम् ।
 हंसचिररथावेत्य गन्धर्वाधिपती ततः ॥ ७५ ॥
 दुहित्रोश्चक्रतुः प्रीत्या विवाहोत्सवः
 । कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ भग

अनुरागोऽधिकः कस्य राजनेतेषु कथ्यताम् ।
 राजा तमब्रवीन्मन्ये चन्द्रापीडोऽनुरागवान् ॥ ७७ ॥
 सुहृद्वृचान्तमाकर्ण्य यस्य चेतस्तदास्फुटत् ।
 इति श्रुत्वैव वेतालो गत्वा पुनरलम्बत ॥ ७८ ॥

इति चतुर्विंशो वेतालः ।



शुद्धिपत्रम् ।

| पृष्ठे | श्लोके | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|--------|-----------------------|-----------------------|
| ११ | ५२ | वृद्धा गृहे | वृद्धागृहे |
| १५ | ९८ | विद्यतेऽस्मिन् | विद्यतेऽस्मिन् |
| १९ | १५३ | देवदेवीनां | देव देवीनां |
| २१ | १७० | शकटालः | शकटाल |
| २८ | ३६ | मणिच्छापा | मणिच्छाया |
| ३५ | १९ | प्रोल्लाम | प्रोल्लास |
| ३६ | ३३ | च घीरणम् | ऽवघीरणम् |
| ४० | ८५ | कोऽपि कम्पितः | कोपकम्पितः |
| ४१ | ९३ | भूपतिर्विम्बकेः सुतां | भूपतेर्विम्बकेः सुता |
| ४३ | १२० | श्रीदत्तकृपया | श्रीदत्त कृपया |
| ४३ | १२७ | ब्राह्मणीमध्ये | ब्राह्मणी मध्ये |
| ४४ | १३५ | ***शबरार्जिताम् | श्रियं च शबरार्जिताम् |
| ४४ | १३६ | विम्बकः | विम्बकेः |
| ४५ | १४० | विशोकाक्षः | विकासाक्षः |
| ५० | ६३ | कार्यशेषे | कार्यशेषे |
| ५१ | ७६ | शक्रपुरी रम्या | शक्रपुरीरम्या |
| ५५ | १२३ | लक्ष्मता | ऽलक्ष्यतां |
| ५७ | १४७ | मेघं संसर्ग | मेघसंसर्ग |
| ५८ | १५९ | भद्रवतीजलम् | भद्रवती जलम् |
| ६० | १७७ | विरहो हि | विरहे हि |
| ६० | १८५ | स्ते संगमाशया | स्तत्संगमाशया |
| ६१ | १८८ | नुवाच ताप | नुवाच च ताप |
| ६१ | १९४ | पाशनिःशेष | पाशं नि शेष |
| ६२ | २०५ | सिता संगमं | सितासंगमं |